

3009

अस

स्मृतितत्त्वस्य द्वितीयोभागः ।

[एकादशीतत्त्वम् + उद्वाहृतत्त्वम् + व्रततत्त्वम् + दायतत्त्वम् +
 व्यवहारतत्त्वम् + शुद्धितत्त्वम् + वास्तुयागतत्त्वम् + कृत्य-
 तत्त्वम् × यजुर्वेदिश्राद्धतत्त्वम् + देवप्रतिष्ठातत्त्वम् +
 जलाशयोत्सर्गतत्त्वम् + वृषोत्सर्गतत्त्वम् +
 श्रीपुरुषोत्तमतत्त्वम् + दिव्यतत्त्वम् +
 मठप्रतिष्ठातत्त्वम् + शूद्रकृत्य-
 विचारणतत्त्वम् + यजुर्वेदि-
 वृषोत्सर्गतत्त्वम् + दीक्षा-
 तत्त्वम् + दुर्गाचर्न-
 पद्धतिः]

महामहोपाध्याय श्रीरघुनन्दन भट्टाचार्य्य-
 विरचितः ।

वि, ए, उपाधिधारिणा पण्डितकुलपतिना

श्रीजीवानन्दविद्यासागरभट्टाचार्य्येण

संस्कृतः प्रकाशितः ।

द्वितीय संस्करणम् ।

कलिकातानगर्याम् ।

सिद्धेश्वरयन्त्रे

मुद्रितः ।

आ. श्री केल्लसामर सूरि ज्ञान मंदिर
 श्री महाशार जैन आराधना केंद्र, कोबा
 भा. क.



पण्डितकुलपति:

श्रीजीवानन्दविद्यासागर वि, ए,

PANDIT JIBNDA VIDYASAGARA B. A.

Superintendent Free Sanskrit College, Calcutta.

स्मृतितत्त्वद्वितीयभागस्य सूचीपत्रम् ।

| विषय | पृष्ठायां | विषय | पृष्ठायां |
|----------------------------|-----------|--------------------------------|-----------|
| एकादशीतत्त्वम् । | | उद्वाहृतत्त्वम् । | |
| अथैकादशीव्रतं | २ | अथोद्वाह निर्ययः | १०६ |
| अथ कलजाधिकरणं | ३ | एष संक्षेपः | ११७ |
| अथैकादशीव्रतं | १७ | अथ कन्यादानाधिकारः | १२६ |
| अथ ब्रह्मिण्याङ्ग विषयः | १८ | व्रततत्त्वम् । | |
| अथोपवाससमन्वयः | १९ | अथ व्रतानुष्ठानं | १५१ |
| अथैकादशीभोजननिन्दा | २३ | अथ व्रतप्रतिष्ठाविधिः | १५३ |
| अथैकादश्युपवासाधिकारिणः | ३५ | अथ व्रतप्रतिष्ठाप्रयोगः | १५६ |
| अथ पूर्णतिथिलक्षणं | ४१ | अथ व्रतप्रयोगः | १६० |
| अथ पूर्णैकादश्युपवासः | “ | दायतत्त्वम् । | |
| अथ त्रिसृशैकादशी | ४३ | अथ दायभागः | १६१ |
| अथ दशमीविज्ञैकादशी | ४५ | अथ पितृकृत विभागः | १६५ |
| तत्रसंक्षेपः | ५५ | अथोपरते पितरि भ्रातृणां विभागः | १६६ |
| अथ दशमी नियमाः | “ | अथ विभागानधिकारिणः | १७२ |
| अथैकादशी नियमाः | ५६ | अथ विभाज्याविभाज्ये | १७३ |
| अथ विष्णुपूजन विधिः | ५८ | अथ व्रतविभागसन्देह निर्ययः | १७६ |
| अथ द्वादशी नियमाः | ७७ | अथ चिरप्रोषितामतस्य वंशस्य | |
| अथ जलाशयीक्षर्गः | ८५ | विभागः | १८० |
| अथ रजःस्त्रला सूतकिनीव्रतं | ८६ | अथ विभागकाले निजुतस्य पश्चादव- | |
| अथोपवासानुकल्पः | ८७ | गतस्य विभागः | १८१ |
| अथोद्वाह व्यवस्था | ८८ | अथ स्त्रीधनं | १८४ |
| अथैकभक्तं | ९२ | अथ स्त्रीधनाधिकारिणः | १८५ |
| अथ नक्तव्रतं | ९३ | अथापुत्रधनाधिकारिणः | १८८ |
| अथ हविष्यान्नं | “ | व्यवहारतत्त्वम् । | |
| अथ पुत्रादि प्रतिनिधिः | ९५ | अथ व्यवहार दर्शनं | १९७ |
| अथ पारण नियमः | १०० | अथ व्यवहार पाद निर्ययः | २०३ |
| अथ भेमी | १०१ | अथ भाषा पादः | २०३ |
| अथ शयनादिकालः | १०१ | अथोत्तर पादः | २०५ |

[२]

| विषय | पृष्ठायां |
|-----------------------|-----------|
| अथ क्रिया पादः | २१० |
| अथ लिखितं | २२० |
| अथ भुक्तिः | २२२ |
| अथ भुक्तिस्वत्वापवादः | २२७ |
| अथ युक्तिः | २२७ |
| अथ श्रपथः | २२७ |
| अथ निर्णयः | २२६ |

शुद्धितत्त्वम् ।

| | |
|-----------------------------|-----|
| अथ सुहानुगमनं | २३४ |
| तदयं प्रयोगः | २४२ |
| अथाशौच सङ्करः | २४४ |
| अथ गर्भस्त्रावाशौचं | २६० |
| अथ स्त्र्यशौचं | २६२ |
| अथ बालाद्यशौचं | २६५ |
| अथ सगुणाद्यशौचं | २७२ |
| अथ विदेशस्थाशौचं | २७४ |
| अथ सपिण्डाद्यशौचं | २७६ |
| अथ सृत्युविशेषाशौचं | २८३ |
| अथ सद्यः शौचं | २८६ |
| अथ श्रवानुगमनाद्यशौचं | २८३ |
| अथ द्रव्यशुद्धिः | २८५ |
| अथ सुसूक्ष्मकृत्यानि | २८८ |
| अथाख्यलाभे पर्जन्यरदाहः | ३०६ |
| अथोदकादिदानं | ३११ |
| अथ शोकापनोदनादि | ३१८ |
| अथ पिण्डोदकादिदानं | ३२१ |
| अथाशौचान्त द्वितीयदिनकृत्यं | ३३७ |
| अथ दानं | ३४५ |
| अथ वृषोत्सर्ग विचारः | ३७२ |
| अथ प्रेतक्रियाधिकारिणः | ३८२ |
| अथ सपिण्डादि विचारः | ३८५ |

| विषय | पृष्ठायां |
|---------------------|-----------|
| अथाशौच संक्षेपः | ४०१ |
| अथ विदेशस्थाशौचं | ४०२ |
| अथ गर्भस्त्रावाशौचं | ४०३ |
| अथ स्त्र्यशौचं | ४०३ |
| अथ बालाद्यशौचं | ४०३ |
| अथ सपिण्डाद्यशौचं | ४०४ |
| अथासपिण्डाद्यशौचं | ४०५ |
| अथ सृत्युविशेषाशौचं | ४०५ |
| अथ श्रवानुगमनाशौचं | ४०६ |
| अथार्क्याष्टपद्धतिः | ४०७ |

वास्तुयागतत्त्वम् ।

| | |
|--|-----|
| वास्तुशोधन प्रकारः | ४१२ |
| वास्तुपरीक्षानन्तर वास्तुदोषोपशमन प्रकारः | ४२२ |

कृत्यतत्त्वम् ।

| | |
|--|-----|
| यवश्राद्धं | ४२८ |
| एकादशीव्रतम् | ४२८ |
| ज्यैष्ठकृत्यं | ४३० |
| आरण्यवष्टी | ४३० |
| दशहरा | ४३१ |
| महाज्यैष्ठी | ४३१ |
| यज्ञं | ४३२ |
| आषाढकृत्यं | ४३४ |
| नवोदकश्राद्धं | ४३४ |
| चातुर्मास्यव्रतं | ४३४ |
| विर्णाः श्रयनं | ४३६ |
| श्रावणकृत्यं | ४३७ |
| भाद्रकृत्यं | ४३८ |
| हरेः पार्श्वपरिवर्त्तनं | ४४२ |
| सिंहाके चतुर्थीचन्द्रदर्शनप्रायः चित्तं | ४४२ |

[३]

| विषय | पृष्ठायां | विषय | पृष्ठायां |
|---------------------|-----------|----------------------------------|-----------|
| अनन्तव्रतं | ४४३ | प्रयोगः | ४७२ |
| अगस्त्यार्घ्यं दानं | ४४३ | विद्यारम्भः | ४७५ |
| आश्विनकृत्यम् | ४४४ | गृहकारणः | ४७६ |
| दुर्गोत्सवः | ४४४ | प्रवेशविधिः | ४७८ |
| कोजागरकृत्यम् | ४४५ | कृषिकर्म | ४७९ |
| कार्तिककृत्यं | ४४७ | बीजवपनं | ४८० |
| भूतचतुर्दशी | ४५० | धान्यच्छेदनं | ४८१ |
| दीपान्वितामावस्था | ४५१ | धान्यस्थापनं | ४८१ |
| द्यूतप्रतिपत् | ४५२ | अदभूतशान्तिः | ४८२ |
| भाद्रहितीया | ४५३ | | |
| विष्णूत्थानं | ४५४ | यजुर्वेदिश्राद्धतत्त्वम् । | |
| मार्गशीर्षकृत्यम् | " | पार्वणश्राद्ध प्रमाणं | ४८३ |
| पौषकृत्यं | ४५५ | एकोद्दिष्टं | ४८५ |
| माघकृत्यं | " | सपिण्डीकरणं | ४८६ |
| रटन्तीचतुर्दशी | ४५७ | सांवत्सरिकश्राद्धं | ४८७ |
| श्रीपञ्चमी | " | आभ्युदयिकश्राद्धं | ४८७ |
| माघसप्तमी | ४५८ | | |
| विधानसप्तमीव्रतं | " | देवप्रतिष्ठातत्त्वम् । | |
| आरोग्यसप्तमी | ४६० | देवप्रतिष्ठा | ५०२ |
| भीष्माष्टमी | ४६१ | प्रतिष्ठितमूर्त्तौ कदाचित् पूजा- | |
| फाल्गुनकृत्यं | " | भावे प्रतीकारः | ५११ |
| शिवरात्रिव्रतं | " | असृश्वस्पर्शन प्रतीकारः | ५१२ |
| चैत्रकृत्यं | ४६२ | जलाशयोत्सर्गतत्त्वम् । | |
| वारुण्यादि | " | जलाशय दाने फलं | ५१४ |
| अशोकाष्टमी | ४६३ | तडागप्रतिष्ठाकाल नियमः | ५१६ |
| श्रीरामनवमी | ४६४ | कुन्दोगवृषोत्सर्गतत्त्वम् । | |
| मदनत्रयोदशी | ४६५ | वृषोत्सर्गं | ५२८ |
| मदनचतुर्दशी | ४६६ | प्रेत वृषोत्सर्गे वृद्धभावः | ५३२ |
| मङ्गलार्घ्यकापूजा | " | वृषलक्षणं | ५३२ |
| रोगशान्तिः | ४६८ | आज्यस्थालीविधानं | ५३८ |
| जन्मतिथिकृत्यं | " | अरुस्थालीपरिमाणं | ५४० |
| सूतिकाषष्ठीपूजा | ४७१ | ऋक्परिभाषाकथनं | ५५१ |
| | | सामपरिभाषा | ५५३ |

[४]

| विषय | पृष्ठायां |
|---------------------------------|-----------|
| आहतवस्त्रलक्षणं | ५५३ |
| श्रीपुरुषोत्तमतत्त्वम् । | |
| पुरुषोत्तमदर्शनविधानादि | ५६४ |
| एकात्मकाननकथनं | ५७३ |
| दिव्यतत्त्वम् । | |
| दिव्यानि | ५७४ |
| दिव्यदेवाः | ५७६ |
| दिव्यकालाः | ५७६ |
| दिव्यविशेषाधिकारिणः | ५७७ |
| द्रव्यसंख्यया दिव्यविशेषः | ५८० |
| घटोत्पत्तिविधिः | ५८१ |
| घटारोपणविधिः | ५८२ |
| तत् प्रयोगः | ५८१ |
| अग्निपरीक्षा | ५८४ |
| तत् प्रयोगः | ५८८ |
| सदकपरीक्षा | ५८९ |
| तत् प्रयोगः | ६०२ |
| विषयविधिः | ६०३ |
| कीर्णविधिः | ६०४ |
| तण्डुलविधिः | ६०६ |
| तप्तमाषकविधिः | ६०७ |
| फालविधिः | ६०८ |
| धर्मराजविधिः | ६०९ |
| तत् प्रयोगः | ६११ |
| अपघविधिः | ६११ |
| मठप्रतिष्ठादितत्त्वम् । | |
| मठप्रतिष्ठा | ६१३ |

| विषय | पृष्ठायां |
|--|-----------|
| तत् प्रतिष्ठाप्रमाणं | ६१८ |
| देवसम्प्रदानकदानानि | ६२७ |
| विष्णुसम्प्रदानकदानानि | ६२८ |
| शूद्रकृत्यविचारणतत्त्वम् । | |
| शूद्रकृत्यविचारणं | ६३३ |
| चतुर्वर्णकृत्यकथनं | ६३४ |
| यजुर्वेदिद्विषोत्सर्गतत्त्वम् । | |
| यजुर्वेदिद्विषोत्सर्गः | ६३६ |
| द्विषोत्सर्वविधानं | ६३६ |
| दीक्षातत्त्वम् । | |
| दीक्षाकालकथनं | ६४५ |
| तत् प्रयोगः | ६५३ |
| दुर्गाचनपद्धतिः । | |
| नवम्यादिकल्पः | ६५८ |
| बोधनम् | ६६१ |
| प्रतिपदादिकल्पः | ६६३ |
| षष्ठ्यादिकल्पः | ६६३ |
| सप्तम्यादिकल्पः | ६६४ |
| सप्तमीकृत्यम् | ६६५ |
| महाष्टमीपूजा | ६७२ |
| आवरणपूजा | ६७६ |
| सन्धिपूजा | ६८१ |
| नवमीकृत्यम् | ६८१ |
| दशमीकृत्यम् | ६८२ |

एकादशीतत्त्वम् ।



प्रणम्य सच्चिदानन्दं परमात्मानमौश्वरम् । मुनीन्द्राणां
स्मृतेस्तत्त्वं वक्ति श्रीरघुनन्दनः । अज्ञानतिमिरध्वंसिहरिपाद-
नखत्विषम् । गत्वा वच्मि तत्र तत्त्वमेकादशीव्रतादिषु । एका-
दशीव्रतं तत्र कलञ्जन्यायनिर्णयः । पुण्यकाले तु संक्रान्ते-
र्विधिवत्प्रतिषेधनम् । व्रतस्य लक्षणं तत्र ग्रहसम्भार्जनं तथा ।
वैदिके कर्ममात्रे च नारायणनतिस्मृती । विष्णुनामादिसाङ्गार्थं
तथाच्छिद्रावधारणम् । ओं तत्सदितिनिर्देशः कर्मणां प्राग्भवेत्
व्रतम् । कङ्कल्पविषयो नित्यं काम्यञ्चैकादशीव्रतम् । वृद्धि-
श्राद्धस्य विषय उपवाससमन्वयः । दयादिलक्षणान्यत्र व्रते
गन्धादिवर्जनम् । ऋतौ व्रते स्त्रीगामित्वं श्राद्धाद्दे न च तद्व-
वेत् । चतुर्थाहपरित्यागः प्रशस्तसुतकाङ्क्षिणः । एकादशी-
भोजने तु निन्दानित्यत्वसाधकम् । नित्यं सदादिविश्वजिद्-
यावज्जीवनयौ तथा । अशक्तौ मनसा कर्मनित्यात् पापक्षया-
दिकम् । एकादशीव्रतफलं रात्रिसन्नयस्तथा । न्यायः संयोग-
पार्थक्यं वृद्धिश्राद्धस्य नित्यता । एकस्य नित्यकाम्यत्वे योषित्-
श्राद्धविवेचनम् । अपिण्डकमघाश्राद्धात् पक्षश्राद्धान्तरं न च ।
पार्वणासनदानादौ ये चात्रत्वेति निर्णयः । पर्युदासस्तथा
सायमुषाद्यघटिकास्तथा । उपवासाधिकारी च कृष्णाया-
मधिकारिता । वैष्णवानां सपुत्राणां तत्र वैष्णवलक्षणम् ।
नित्योपवासे रव्यादिदोषाभाव उपोषणम् । सप्तवारिष्वथाग्नेयः
पितृशेष उपोषणे । पूर्णतिथिस्वरूपञ्च पूर्णैकादशिका तथा ।

२

एकादशीतत्त्वम् ।

त्रिष्टुथैकादशी चैव दशम्या संयुता सदा । नोपोष्या तासु
 संक्षेपोदशमी नियमास्तथा । एकादश्याञ्च सङ्कल्पः श्रीशपूजा-
 विवेचनम् । षट्त्रिंशदुपचारादिजपपर्वनिरूपणम् । द्वादशी-
 नियमस्तद्वदुपवाससमर्पणम् । पारणायास्तथा कालः सङ्कटे
 जलपारणम् । तुलसीमहिमा तत्र तथा रुद्राक्षधारणम् ।
 स्वदत्तदेवनैवेद्याद्युपयोगः स्त्रियास्तथा । आक्षिपिण्डादनन्तरं
 कृपादित्यागयागता । त्यक्तुस्तत्रोपयोगश्च रजः सुतकिनोर्ब्रतम् ।
 उपवासानुकल्पश्च तथैवोद्भव्यवस्थितिः । एकभक्तं तथा नक्तं
 हविष्यद्रव्यनिर्णयः । स्निग्धधान्यस्य भक्षत्वं प्रातिनिध्यविवे-
 चनम् । चान्द्रायणादौ ग्रासानां परिसंख्याव्यवस्थितिः । पार-
 णानियमः पानेत्वपामनशनाशनम् । व्यवस्था शयनादीनां
 संकथ्यन्ते जगत्पतेः ।

अथ एकादशीव्रतम् । तत्र बराहपुराणम् । ‘एकादश्यां
 निराहारो यो भुङ्क्ते द्वादशीदिने । शुक्ले वा यदि वा कृष्णे
 तद्व्रतं वैष्णवं महत्’ । महत्त्वमाह । ‘यदीच्छेद्दिष्णुना वासं
 पुत्रसस्यदमात्मनः । एकादश्यां न भुञ्जीत पचयोरुभयोरपि’ ।
 एतद्विद्वन् सुघोराणि हन्ति पापानि पार्थिव । योग्यहीत्वा
 व्रतं मोहादेकादशीदिने नरः । न समापयते तस्य गतिः
 पापीयसी भवेत्’ । अत्र ‘एकादश्यां प्रकुर्वन्ति उपवासं मनो-
 षिणः’ । इति भविष्यपुराणे उपवासपदान्निराहारपदं नैका-
 दशीकालमात्राभोजनपरम् । किन्तु तदयुक्ताहोरात्राभोजन-
 परम् । तत्रैवोपवासपदव्यवहारात् । न च वैपरीत्यम् । उप-
 वासपदस्याहाराभावमात्रपरत्वे लक्षणाप्रसङ्गात् । निराहार-
 पदस्योपवासपरत्वे तु न लक्षणा सामान्यशास्त्रस्य विशेषतात्-
 पर्यकत्वात् । तथाच कात्यायनः । ‘नित्योपवासी यो मर्त्यः
 सायं प्रातर्भुजिक्रियाम् । सन्त्यजन्मतिमान् विप्रः संप्राप्ते हरि-

एकादशीतत्त्वम् ।

३

वासरे' । सायं प्रातरिति रात्रिदिवोपलक्षणम् । 'सुनिभिर्द्विर-
शनमुक्तं विप्राणां मर्त्यवासिनां नित्यम् । अहनि च तथा
तमस्त्रिन्धां सार्द्धप्रहरयामान्तः' इति छन्दोगपरिशिष्टैकवाक्य-
त्वात् । अतएव खण्डतिथेरप्यहोरात्रत्वकीर्तनम् अहोरात्र-
साध्यकर्माङ्गत्वार्थम् । तथाच विष्णुधर्मोत्तरे । 'सा तिथिस्तद-
होरात्रं यस्यामभ्युदितोरविः । तथा कर्माणि कुर्वीत क्वास-
वृद्धी न कारणम् । सा तिथिस्तदहोरात्रं यस्यामस्तमितोरविः ।
तथा कर्माणि कुर्वीत क्वासवृद्धी न कारणम् । शुक्लपक्षे तिथि-
र्ग्राह्या यस्यामभ्युदितोरविः । कृष्णपक्षे तिथिर्ग्राह्या यस्या-
मस्तमितोरविः' । तच्च तिथ्यान्तरसहायभावं विना प्रायो न
सम्भवति अतएव गृह्यपरिशिष्टे युग्माग्नीत्यभिधाय तिथ्यो-
र्युग्मं महाफलमित्युक्तम् अस्य प्रयोजनन्तु तिथेः खण्डविशेष-
नियमनम् । स्वतिथ्या कर्मानिर्वाहे सहायभावेनान्यतिथ्यनु-
प्रवेशेनाहोरात्रसाध्योपवासाद्याचरणञ्च । एवञ्च प्रातःकाले
तत्तिथ्यलाभे तिथ्यन्तरेऽप्युपवाससङ्कल्पः अहोरात्राभोजनरूपस्य
तस्य प्रातरारम्भाह्त्वात् । संवत्सरप्रदीपेऽपि 'प्रातःसम्यां ततः
कृत्वा सङ्कल्पं वुध आचरेत्' इत्युक्तम् । अत्र च कर्मण स्तावद-
पूर्वजनकत्वेन प्राधान्यम् । तिथ्यादेर्गुणत्वेन क्वचिदुपलक्षणत्व-
माह गर्गः । 'तिथिनक्षत्रवारादिसाधनं पुण्यपापयोः । प्रधान-
गुणभावेन स्वातन्त्र्येण न ते क्षमाः' इति प्रधानस्य कर्मणो-
गुणभावेनाङ्गत्वेन । एवञ्च निराहारपदस्योपवासपरत्वेन कल-
ञ्जाधिकरणन्यायान्नैकादशीक्षणमतिवाह्य भोजनम् । किन्त्वे-
कादश्यामिति विहितैकादशीयुक्ताहोरात्रपरम् ।

अथ कलञ्जाधिकरणम् । तत्र श्रुतिः । 'न कलञ्जं
भक्षयेत्' इति कलञ्जभक्षणाभावविषयकं कार्यमित्यर्थः ।
तत्र कालविशेषानुपादानान्निषिध्यमान क्रियायां प्रवृत्ति-

४

एकादशीतत्त्वम् ।

मतो निषेधविधावधिकारादयावत्कालमेव तस्यां तस्य निवृत्तिः । न हि कलञ्जभक्षणादयतः कुतश्चित् कारणाद्ब्रह्मत्तस्य निषेधानुपालनं सकृद्वृत्तिमिति कलञ्जभक्षणनिषेधो न पुनस्तं निवर्त्तयति किन्तु भक्षणप्रवृत्तिमत्तामात्रमधिकारिविशेषणं यदा यदा भवति तदा तदा एव निषेधविधिरपि तं निवर्त्तयति । न हि कलञ्जस्य भक्षणमुपक्रम्य यावत् कालं तद्वर्त्तयति । अतस्तदितरकाली निवृत्तिः सिद्धेवेति भवति विफलोविधिः । ननु नासौ निवृत्तिरप्रवृत्तस्य निवृत्त्यनुपपत्तेः । सत्यं प्रवृत्त्युपाधिना विनाशं प्राप्स्यन् प्रागभाव एव प्रवृत्तिनिराकरणात् साध्यमानोनिवृत्तिरुच्यते । न तु प्रवृत्तिरपि साध्यतयोपदिश्यते किन्तु रागप्राप्तप्रवृत्तिमतएव निषेधविधावधिकारः । यत्तु 'मनसा तु प्रवृत्तस्य भूतचेष्टावतोऽपि वा । यदनागतभावस्य वर्जनं तद्विवर्त्तनं' इति । अत्रापिशब्देन अप्रवृत्तमात्रसमुच्चयान्न विरोधः भूतचेष्टावत इति । 'भूतं क्ष्मादौ पिशाचादौ जन्तौ क्लीवं त्रिषूचिते । प्राप्ते वृत्ते समे सत्ये देवयोन्यन्तरे तुना इति मेदिन्युक्तेः । भूते प्राप्ते निषेधे चेष्टाव च इत्यर्थः । ततश्च प्रागभाव एव कालान्तरसम्बन्धितया साध्यत्वेनोपदिश्यते । प्रागभावश्चानादिसंसर्गाभावमात्रपरः स च अप्रवृत्तस्य भक्षणकारणमननुतिष्ठतः सिद्धत्येव । तस्मात् सकृत्क्रियापर्यवसायित्वे विफलोविधिः । कादाचित्काकरणस्य निषेधमन्तरेणापि प्राप्तेः । न च स्वर्गकामादिवत् साध्यतया प्रवृत्तिमत्कर्तृकत्वमप्यङ्गं विषयमात्राननुष्ठानाधीनसिद्धत्वान्निषेधनियोगानामिति कर्त्तव्यता काङ्क्षाविरहात् अतएव शुचित्वमपि तत्र नाङ्गम् । तस्मान्निषेधविधिषु काकवन्तोदेवदत्तस्य गृहा इत्यादिवत्तटस्थत्वेनाधिकारिविशेषणीभूतायाः प्रवृत्तेर्यावत्कालमनुवृत्तिस्तावत्कालमेव निवृत्तौ साफल्यं पुन-

एकादशीतत्त्वम् ।

५

निमित्तान्तरवन्न सकृदनुष्ठानेनैव शास्त्रार्थसिद्धिः । नैमित्तिक-
 आद्यादावमावास्यावच्छिन्नजीवनस्याधिकारिविशेषणस्यैकत्वात्
 सकृत्करणेनैव शास्त्रस्य सफलकत्वं नैकामावास्यायामेव पुनः
 पुनः क्रियया तथात्वं विधिगौरवापत्तेः । न हि तत्र सकृत्-
 करणमेव शास्त्रं विना सिध्यति । अतएव स्मृतिः । 'यथा-
 ष्ढेनाष्टिकं कर्म मासेनैव च मासिकम् । न्यूनाधिकं न
 कर्त्तव्यं नचैकत्र क्रियाद्वयम्' । एकस्याः क्रियाया एकदा
 वारद्वयविधानं न युक्तमिति हलायुधः । 'अमावास्याभेदे
 पुनस्तदवच्छिन्नजीवनभेदादधिकारावृत्त्या शास्त्रार्थोऽप्यावर्त्तते
 इत्येतत् न्यायमूलमेव व्याख्यात्वचनद्वयं जीमूतवाहनेन
 लिखितं यथा । 'निमित्तं कालमादाय वृत्तिर्विधिनिषेधयोः ।
 तत्र पूज्ये विधेर्वृत्तिर्निषेधः कालमात्रके । तिथीनां पूज्यता
 नाम कर्मानुष्ठानतो मता । निषेधस्तु निवृत्त्यात्मा कालमात्र-
 मपेक्षते' । पूज्ये युग्मादिनेति शेषः । कालमात्रवीये वृद्ध-
 गर्गः । 'निमित्तं कालमादाय वृत्तिर्विधिनिषेधयोः । विधिः
 पूज्य तिथौ तत्र निषेधः कालमात्रके । तिथीनां पूज्यता
 नाम कर्मानुष्ठानतो मता । निषेधस्तु निवृत्त्यात्मा कालमात्र-
 मपेक्षते' । रविसंक्रान्ती तु तदुपलक्षितपुण्यकाल एव ग्राह्यो-
 विधिवन्निषेधेऽपि । कालान्तरकल्पने गौरवाद्वचनाभावाच्च ।
 संक्रान्त्युपवासस्य व्रतत्वेन भावरूपत्वात्तद्वटितत्वाद्वा उभय-
 थापि तत्र पूज्ये विधेर्वृत्तिरित्यनेन पुण्यकालयुक्ताहोरात्र-
 कर्त्तव्यता एवमेव गुरुचरणाः । प्रत्युत एकस्मिन् काले विधेय-
 प्रतिषेधयोः पुण्यपापयोः प्रतिपादकं कामधेनुनैयतकालिकक-
 ल्पतरुक्त्य-चिन्तामणिहेमाद्रिवाचस्पतिमिश्रपृष्ठतदेवीपुराणम् ।
 'अतीतानागतो भोगो नाद्यः पञ्चदश स्मृताः । सान्निध्यन्तु भवे-
 तत्र ग्रहाणां संक्रमे रवेः । व्यवहारो भवेत्लोके चन्द्रसूर्याप-

६

एकादशीतत्त्वम् ।

लक्षितः । काले विकल्पते सर्वं ब्रह्माण्डं सचराचरम् । पुण्य-
पापविभागेन फलं देवी प्रयच्छति । एकधापि कृतं तस्मिन्
कोटि कोटिगुणं भवेत् । धर्माद्विवर्धते ह्यायूराज्यं पुन-
सुखादि च । अधर्माद्विनाशिकादिविषुवायनसन्निधौ । विषु-
वेषु च यद्दत्तं जप्तं भवति चाक्षयम् । एवं विष्णुपदे चैव
षडशीतिमुखेषु च । भोगोव्याप्तिः सूक्ष्मसंक्रमणकालसन्नि-
धाने पुण्यतमत्वमिति यावदिति कल्पतरुः । वस्तुतस्तु
भुज्यत इति भोगोभोग्यः रविसंक्रमणे । अतीतानागतः
कालोभोग्यस्तन्निमित्तपुण्यपापजननयोग्य इति यावत् । अत-
एव 'पुण्यपापविभागेन फलमित्युपसंहृतम्' । यत्तु 'अर्द्ध-
रात्र व्यतीते तु संक्रान्तिर्यदहर्भवेत् । पूर्वं व्रतादिकं कुर्यात्
पर्युः स्नानदानयोः' इति तत् 'उपोष्यैव च संक्रान्त्यां स्नात्वा
योऽभ्यर्चयेद्रविम् । स्नातः पञ्चोपचारेण सकामफलमाप्नुयात् ।
इति भीमपराक्रमीयैकवाक्यतया परादिवसीयस्नानदाननिमि-
त्तकं प्राग्दिनोपवाससंयमरूपव्रतादिपरम् । अन्यथा प्रागुक्त-
विरोधापत्तेः । स कालः कियानित्याह । नाड्यः पञ्चदशेति
उभयतः पञ्चदशदण्डपुण्यत्वं दिवा विष्णुपदौविषयमिति
तिथितत्त्वे वक्ष्यते । सान्निध्यमित्यादिना तस्यैव कालस्य
स्तुतिः । विकल्पते स्वभावात् प्रचवते । देवी संक्रान्ति-
कालस्वरूप संक्रान्त्युपक्रमे देवीपुराण एव । 'समायनमृतु-
र्मासः पञ्चोदश क्रमेण तु । स्थूलसूक्ष्मविभागेन देवी सर्वगता-
विभो' इत्यभिधानात् । 'कलाकाष्ठादिरूपेण परिणामप्रदा-
यिनी' इति मार्कण्डेयपुराणाच्च । तस्मादमावास्यायां हरि-
तमपि न क्लिन्यादित्यादेर्निषेधविधित्वेन कलञ्जभक्षणन्यायात्
यावत् कालभावित्वं निराहारस्य तु वैधोपवासरूपत्वात् व्रत-
रूपत्वाच्च न तदवसरः तयोर्भावघटितत्वात् ।

एकादशीतत्त्वम् ।

७

अथ व्रतलक्षणम् । दीर्घकालानुपालनीयः सङ्कल्पोव्रत-
मिति नारायणोपाध्यायानां स्वरसः । स्वकर्त्तव्य विषयो-
नियतः सङ्कल्पोव्रतमिति श्रीदत्तहरिनाथवर्द्धमानप्रभृतयः ।
सङ्कल्पश्च भावे मयैतत् कर्त्तव्यमेव निषेधे न कर्त्तव्यमिति
ज्ञानविशेषः अतएव सङ्कल्पः कर्ममानसमित्याभिधानिकाः ।
वस्तुतस्तु पूर्वोक्तवराहपुराणवचनेनैकादश्युपवासस्य व्रतत्वाभि-
धानात् । ‘एकभक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च । उपवासेन
चैकेन पादकच्छ उदाहृतः’ । इत्यादि याज्ञावल्क्याद्युक्तेषु
एकभक्तनक्तायाचितभोजनोपवासादिषु पादकच्छादित्वाभि-
धानाच्च न सङ्कल्पोव्रतं किन्तु सङ्कल्पविषयतत्तत्कर्मैव व्रत-
मिति । अतएव व्रतानां सङ्कल्पसम्भवत्वमाह मनुः । ‘सङ्कल्प-
मूलः कामो वै यज्ञाः सङ्कल्पसम्भवाः । व्रतानियमधर्माश्च
सर्वे सङ्कल्पजाः स्मृताः’ । अनेन कर्मणा इदमिष्टं फलं
साध्यते इत्येवं विषया बुद्धिः सङ्कल्पस्तदनन्तरमिष्टसाधनतया
अवगते तस्मिन् इच्छा जायते ततस्तदर्थं प्रयत्नं कुर्वीत इत्येवं
यज्ञाः सङ्कल्पसम्भवाः । व्रता नियमरूपा धर्माश्चतुर्थाध्याये वक्ष्य-
माणाः । सर्वे इत्यनेन अन्येऽपि शास्त्रार्थाः सङ्कल्पादेव जायन्ते
इति कुल्लूकभट्टः । सङ्कल्पमाह वराहपुराणम् । ‘प्रातःसङ्कल्प-
येद्विद्वानुपवासव्रतादिकम् । नापराह्णे न मध्याह्णे पितृय-
कालौ हि तौ स्मृताः’ सङ्कल्पो व्रतस्यारम्भ इत्युक्तं राघवभट्ट-
भृतोविष्णुः । ‘व्रतयज्ञविवाहेषु आह्वे होमेऽर्चने जपे । आरब्धे
सूतकं न स्यादनारब्धे तु सूतकम् । आरम्भोवरणं यज्ञे
सङ्कल्पोव्रतजापयोः । नान्दीआह्वं विवाहादौ आह्वे पाक-
परिष्क्रिया । निमग्न्यण्णन्तु वा आह्वे प्रारम्भः स्यादिति
श्रुतिः’ । पाकपरिष्क्रियेति साग्नेर्दर्शआह्वविषयं तत्रैव तस्या-
ग्न्युद्धरणविधानेन तदग्निपाकस्यासाधारणत्वात् । सङ्कल्प-

८

एकादशीतत्त्वम् ।

विधानन्तु संवत्सरप्रदीपे । 'प्रातःसन्ध्यां ततः कृत्वा सङ्कल्पं
 धुध आधरेत्' । शान्तिपर्वणि 'गृहीत्वौडुम्बरं पात्रं वारिपूर्ण-
 सुदङ्मुखः । उपवासन्तु गृहीयाद्यद्वा सङ्कल्पयेद्बुधः । देवता-
 स्तस्य तुष्यन्ति कामिकं तस्य सिद्धाति । अन्यथा तु वृथा
 मर्त्याः क्लिश्यन्ति स्वल्पबुद्धयः' । यद्देति पक्षान्तरम् । तेन
 ताम्रपात्राभावे सङ्कल्पमात्रं कल्पतरौ तु यद्देति नक्तादिव्रत-
 परम् । तदयुक्तं तत्पदाध्याहारापत्तेः । यत्सङ्कल्पयेत्तद्गृही-
 यादित्यनेनैवोपपत्तौ वाकारोपवासपदवैयर्थ्यापत्तेश्च । तथाच
 कालमाधवीये वराहपुराणं गृहीत्वौडुम्बरं पात्रं वारिपूर्ण-
 सुदङ्मुखः । उपवासन्तु गृहीयात् यद्वा वार्येव धारयेत्' ।
 यद्यपि व्रतं शास्त्रविहितोनियम इति यथा अश्राद्धभोजी
 अर्थित्वात् प्रवृत्तौ नियम इति सति भोजने अश्राद्धमेव भुङ्क्ते
 इति वैयाकरणाः 'तथा नियमो व्रतमस्त्री तच्चोपवासादि-
 पुण्यकम्' इत्याभिधानिकाः । शास्त्रविहितोनियमोव्रतमिति
 तच्च उपवासादिलक्षणमित्यर्थः । तथापि तस्मात् व्रतमिति
 न वाच्यम् ऋतुकालाभिगामी स्यादित्यादावतिव्याप्तेः । गृहीत-
 व्रताकरणे दोषमाह ऋगलेयः । 'पूर्वं व्रतं गृहीत्वा यो नाच-
 रेत् काममोहितः । जीवन् भवति चाण्डालो मृतः स्वां चैव
 जायते । द्वादशीव्रतमादाय व्रतभङ्गं करोति यः । द्वाद-
 शाब्दं व्रतं चीर्णं निष्फलं तस्य जायते' इति नारदीयवचनात्
 द्वादश्यां विशेषोऽपि । प्रायश्चित्तमाह पद्मपुराणं 'लोभा-
 न्नोहात् प्रमादाद्वा व्रतभङ्गो यदा भवेत् । उपवासत्रयं
 कुर्यात् कुर्याद्वा केशमुण्डनम् । प्रायश्चित्तमिदं कृत्वा पुन-
 रेव व्रती भवेत् । वा शब्दः समुच्चये तेन मुण्डनञ्च कर्त्त-
 व्यमिति प्रायश्चित्तविवेकः । प्रमादस्य सकृत्कृतत्वे प्रति-
 प्रसूते देवतः । 'सर्वभूतभयं व्याधिः प्रमादीगुरुशासनम् ।

एकादशीतत्त्वम् ।

२

अव्रतज्ञानि कथ्यन्ते सकृदेतानि शास्त्रतः । इति कर्त्तव्य-
तायां स एव । 'अभुक्त्वा प्रातराहारं स्नात्वाचम्य समाहितः ।
सूर्यादिदेवताभ्यश्च निवेद्य व्रतमाचरेत् । ब्रह्मचर्यं तथा
सत्यं शौचं मामिषवर्जनम् । व्रतेष्वेतानि चत्वारि वरिष्ठानीति
निश्चयः । प्रातः व्रतमाचरेदित्यन्वयः । प्रधानपदार्थान्वयस्या-
भ्यर्हितत्वात् । प्रातःसङ्कल्पयेदिति वचनैकवाक्यत्वाच्च । अभुक्त्वा
आहारमित्यर्थात् पूर्वदिने एकभक्तत्वमायाति । नन्वाहारस्य
रागप्राप्तत्वात् अनुपादेयतया उद्देश्यस्य एकत्वसंख्यायाः
सम्मार्जनन्यायेनाविवक्षितत्वं युक्तमिति । स च न्यायस्तृतीया-
ध्याये निरूपितः । यथा ज्योतिष्टोमे । कुशपवित्रेण ग्रहं संमा-
ष्टीति श्रूयते तत्र संशयः किमेकग्रहस्य सम्मार्जनमुत ग्रहैर्जुहो-
तीति वाक्येन प्राप्तानां दशग्रहाणां तदर्थं किमुद्देश्यगता
संख्या विवक्षिता नवेति । यथा पशुना यजेतेत्यत्र एकवचन-
श्रुतिवलादुपादेयपशुगता संख्या विवक्षिता तथैव ग्रहमित्येक-
वचनश्रुतिवलादुद्देश्यगतापि संख्या विवक्षिता भवितुमर्ह-
तीति । तस्मदेकस्यैव ग्रहस्य सम्मार्जने प्राप्ते सिद्धान्तयति
पशोर्वाक्यान्तरेणाप्राप्तत्वादानेनैव वाक्येन यागसम्बन्धावगमाद्-
यागं प्रति पशोर्गुणैर्भावात् यावद्गुणं प्रधानस्य प्रवृत्त्यभावात्
कियता पशुनेत्यवच्छेदकाकाङ्क्षायां तदवच्छेदकत्वेनैकत्व-
संख्या संवध्यत इत्युपादेयगतायाः संख्याया विवक्षितत्वं युक्तं
ग्रहाणान्तु वाक्यान्तरेण यागसम्बन्धावगमात् सम्मार्जनवाक्ये
द्वितीयश्रुत्या सम्मार्जनं प्रतिग्रहस्य प्राधान्यावगमात् यावत्
प्रधानं गुणस्य सम्मार्जनस्यावर्त्तनीयत्वात् कियन्तोग्रहाः सम्मा-
र्जनीया इत्याकाङ्क्षायामनुपादेयग्रहगता संख्या न विवक्षितेति
माधवाचार्यः । उत्तरमीमांसायां कल्पतरुस्तु किञ्चिद्विधातुं
सिद्धवन्निर्देश्यत्वम् उद्देश्यत्वम् अनुष्ठेयत्वेन निर्देश्यत्वमुपा-

१०

एकादशौतस्त्वम् ।

देयत्वम् उद्देश्यगतसंख्याया अविवक्षायां ग्रहं सम्मार्ष्टीत्यत्र उद्देश्यग्रहस्याविवक्षा स्यात् साम्यात् । तथाच चमसादेरपि सम्मार्जनप्रसङ्गः सचायुक्तः चमसाधिकरणे हि प्रकृतयागसम्बन्धिसोमपात्रत्वाविशेषेण ग्रहपदस्य चोपलक्षणार्थत्वेन चमसानामपि सम्मार्जनमाशङ्क्य सिद्धान्तितं 'अनुवाद्यमनुक्ता तु न विधेयमुदीरयेत् । नञ्चलब्धास्पदं किञ्चित् कुत्रचित् प्रतिष्ठति' इति न्यायेन केवलं सम्मार्गविध्ययोग्यत्वादुद्देश्येन भाव्यम् । तच्च ग्रहशब्देन समर्पितं न च चमसलक्षणार्थि-ग्रहशब्दः । ग्रहयागावान्तरापूर्वसाधनस्यान्तरङ्गस्य तेन लक्ष्यमाणत्वात् । अन्यथा तदसाधनस्यापि ग्रहस्य सम्मार्गः प्रसज्येत त्रीहिवयोस्त्ववान्तरापूर्वभेदाभावात् त्रीहिन् प्रोक्षतीत्यत्र त्रीहिशब्दो यवोपलक्षणार्थ इति उक्तं ततश्च ग्रहेषु एव सम्मार्ग इति । ननु यदि ग्रह उद्देश्यत्वेन विधिपरिगृहीतस्तर्हि तदेकत्वमपि पक्षेकत्ववद्विवक्षितं स्यात् । मैवं ग्रहगतत्वेकत्वं ग्रहान् प्रत्यवच्छेदकत्वेन रूपेण न विवक्षितं युक्ताहि पशुना यजेत इत्यत्र उपादेयविशेषणत्वादेकत्वविवक्षा एकप्रसवतयैकपशुविशिष्टयागविधिसम्भवात् । अत्र तु ग्रहत्वैकत्वयोः सम्मार्गविधावुद्देश्यमानयोर्गुणानाञ्च पदार्थत्वादसम्बन्धः समत्वात् स्यादिति न्यायेन परसम्बन्धादेकग्रहस्यैव उद्देश्यत्वेन पर्यवसानात् प्रत्युद्देश्यं वाक्यसमाप्तिः स्यात् । ग्रहमेकं सम्मार्ष्टीति ततश्च वाक्यभेदः स्यात् अतो-ग्रहत्वेन सर्वान् प्रकृताननूद्य सम्मार्गमात्रं विधेयम् एवं यज्ञोभयं हविरन्विच्छेत् स ऐन्द्रं पञ्चशरां चरुं निर्वपेत् इत्यत्र उभयत्वमविवक्षितं तदुक्तं प्रकृत्यर्थोऽपि खल्वेतदुद्देशस्य विशेषणम् । संख्यया तुल्यनीतित्वादविवक्षां प्रपद्यते । एवं स्वर्गकाम इत्यत्र पुंस्त्वमविवक्षितम् । अतएवोक्तं 'प्राप्ते

एकादशीतत्त्वम् ।

११

कर्मणि नानेकोविधातुं शक्यते गुणः । अप्राप्ते तु विधीयन्ते
 बह्वोऽप्येकयत्नतः । इति किञ्च सर्वेषामेकसंस्काराकाङ्क्षित-
 त्वेन एकत्वाविवक्षा युक्ता तस्मात् सर्वे ब्रह्माः सम्मार्जनीया
 इति एवमभुक्ता प्रातराहारमित्यत्राप्येकत्वाविवक्षा अस्तु सत्यम्
 अविशेषिताहार-निवृत्तिपरत्वासम्भवाद्विशेषापेक्षायामेक-वचनं
 नियामकमन्यथानध्यावसायापत्तेः । आङ्गिर्यते इत्याहार-
 मन्नादि ततश्च पूर्वाह्णे एकाहारं भुक्त्वा पराह्णे प्रातःकाले
 कृतस्नानाचमनः । 'सूर्यः सोमो यमः कालः सन्धे भूता-
 न्यहः क्षपा । पवनोदिकपतिभूर्मिराकाशं खचरामराः ।
 ब्राह्मं शासनमास्थाय कल्पध्वमिह सन्निधिम' इत्यनेन सूर्या-
 दीन् निवेद्य व्रतं सङ्कल्पयेत् । मैथिलास्तु अद्य भगवन् सूर्य
 भगवत्योदेवता एतद्व्रतमाचरिष्यामीत्यनेन सूर्याय देवता-
 भ्यश्च निवेद्य सङ्कल्पं कुर्यात् अनेकाहसाध्ये तु अद्यारभ्येति-
 विशेष इत्याह । हारीतः पतितपाषण्डनास्तिकसम्भाषणा-
 नृतास्त्रीलादिकमुपवासदिने विवर्जयेत् । कुर्मपुराणे 'वहि-
 र्यामान्यजान् सूतीं पतितञ्च रजस्वलाम् । न स्पृशेन्नाभि-
 भाषेत नैक्षेत व्रतवासरे' । व्रौधायन उद्योगपर्व च । 'अष्टौ
 तान्यव्रतघ्नानि आपोमूलं फलं पयः । हविर्ब्राह्मणकाम्या च
 गुरोर्वचनमौषधम्' । अतएव फलाहारादावपि मूलजलाद्य-
 विरुद्धम् । ब्राह्मणकाम्यादिषु न न्यूनत्वनियमः । धर्मार्था-
 रब्धव्रतस्यासमाप्ती मरणेऽपि तत्फलप्राप्तिमाहाङ्गिराः ।
 'यो यदर्थं चरेद्धर्ममसप्ताप्य मृतो यदि । स तत्पुण्यफलं
 प्रेत्य प्राप्नुयान्नरव्रवीत्' । प्रेत्य परलोके । प्रायश्चित्तविवे-
 कोऽप्येवं वैदिके कर्ममात्रे नारायणस्मरणनमस्कारौ आह
 योगि याग्यवल्काः 'ध्यायेन्नारायणं नित्यं स्नानादिषु च
 कर्मसु । प्रायश्चित्तपि सर्वस्मात् दुःकृताभ्युच्यते पुमान् । प्रमा-

१२

एकादशीतत्त्वम् ।

दात् कुर्वतां कर्म प्रच्यवेताद्वरेषु यत् । स्मरणादेव तद्विष्णोः
 संपूर्णं स्यादिति श्रुतिः । तद्विष्णोरिति मन्त्रेण मज्जेदेषु
 पुनः पुनः । गायत्री वैष्णवी ह्येषा विष्णोः संस्मरणाय वै
 मन्त्रश्च 'तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव
 चक्षुराततम्' । वामनपुराणे । 'सर्वमङ्गलमङ्गल्यं वरेण्यं
 सर्वतोमुखम् । नारायणं नमस्कृत्य सर्वकर्माणि कारयेत्' ।
 शातातपपराशरौ । 'अच्छिद्रमिति यद्वाक्यं वदन्ति क्षिति-
 देवताः । प्रणम्य शिरसा ग्राह्यमग्निष्टोमफलैः समम्' ।
 क्षितिदेवता विप्राः । अग्निष्टोमफलैरिति स्तुतिः । विष्णुः
 'ब्राह्मणानां प्रसादेन दिवि तिष्ठन्ति देवताः । ब्राह्मणाभिहितं
 वाक्यं न मिथ्या जायते क्वचित् । यत् ब्राह्मणास्तुष्टतमा
 वदन्ति तद्देवताः कर्मभिराचरन्ति । तुष्टेषु तुष्टाः सततं
 भवन्ति प्रत्यक्षदेवेषु परोक्षदेवाः' । तदपि ब्राह्मणाय दक्षि-
 णारूपं किञ्चिद्दत्त्वा ग्राह्यम् । तथाच गोविन्दमानसोल्लासे नार-
 दीयम् । 'सर्वेषामप्यलाभेषु यथोक्तकरणं विना । विप्र-
 वाक्यं तथा सुभ्रु व्रतस्योद्यापलक्षणम् । वृथा विप्रवचो यस्तु
 गृह्णाति मनुजः शुभे । अदत्त्वा दक्षिणां वापि स याति
 नरकं ध्रुवम्' । उद्यापः प्रतिष्ठा । ब्राह्मणलक्षणमाह पैठौ-
 नसिः 'क्षमा दया दमो दानं धर्मः सत्यं श्रुतं वृणा । विद्या-
 विज्ञानमास्तिक्यमेतद् ब्राह्मणलक्षणम्' । श्रुतमर्थावबोधः ।
 अतएव मनुः 'चतुर्भिरपि चैवैतैर्नित्यमाश्रमिभिर्हिजैः । दश-
 लक्षणकोधर्मः सेवितव्यः प्रयत्नतः । धृतिः क्षमा दया स्तेयं
 शौचमिन्द्रियनिग्रहः । धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म-
 लक्षणम् । धृतिरिष्टवियोगानिष्टप्राप्तौ चित्तस्य यथा पूर्व-
 मवस्थानम् । इन्द्रियनिग्रहः अप्रतिषिद्धेऽपि विषयेऽनति-
 प्रसङ्गः । धीर्हिताहितविवेकशस्त्रार्थज्ञानं विद्या आत्म-

एकादशीतत्त्वम् ।

१३

तत्त्वज्ञानम् । सत्ये विशेषमाह गोतमः । 'नानृतवचने दोषो जीवनञ्चेत्तदधीनं न तु पापौयसां जीवनमिति' । काशी-
खण्डञ्च 'सर्पिलवणतैलादिक्षये चापि पतिव्रता । पतिं नास्तीति न ब्रूयादायादर्थं न योजयेत्' । क्षयेऽपि घृतं वह्नितमित्यादिप्रयोज्यम् । शपथेऽपि मनुः 'कामिनीषु विवा-
हेषु गवां भक्ष्ये तथेन्धने । ब्राह्मणाभ्युपपत्तौ च शपथे नास्ति पातकम् । इन्धने होमार्थमपहृते ब्राह्मणाभ्युपपत्तौ ब्राह्मण-
रक्षार्थमङ्गीकृतधनादौ मिथ्याशपथे पापं नास्तीति कुल्लूक-
भट्टः । यमः 'न नर्मयुक्तं वचनं हिनस्ति न खैरवाच्यं न च मैथुनार्थं । प्राणात्यये सर्वधनापहारे पञ्चानृतान्याहुर-
पातकानि' । नर्म क्रौडापरिहास इति यावत् । अतएव मिताक्षरायां स्मृतिः । 'गुरुणापि समं हास्यं कर्तव्यं कुटिलं विना' खैरवाच्यं स्नानर्थपरौहाराय कपटेनान्याभिलापः ।
अतएव शङ्खः । 'यस्य यस्य तु वर्णस्य वृत्तिच्छेदं समाचरेत् । तस्य तस्य बन्धः प्रोक्तं प्रायश्चित्तं समाचरेत्' । वायुपुराणे । 'यदेतद्भविष्यं नाम प्राणान्ते तु वह्निश्चराः । स तस्य हरते प्राणान् यो यस्य हरते धनम् । आदित्यपुराणेऽपि । 'षष्टिं वर्षसहस्राणि स्वर्गं वसति भूमिदः । उच्छेत्ता चानुमन्ता च तान्येव नरके वसेत्' । महाभारते 'सत्यं भूतहितं प्रोक्तं मनसोदमनं दमः । तपः स्वधर्मवर्त्तित्वं शौचं सङ्करवर्जनम् । सन्तोषो विषयत्यागो क्षीरकार्यनिवर्त्तनम् । क्षमाहन्धसहिष्णु-
त्वमार्जवं समचित्तता । ज्ञानं तत्त्वार्थं सम्बोधः शमश्चित्त-
प्रशान्तता । दया भूतहितैषित्वं ध्यानं निर्विषयं मनः' । हन्धं शीतोष्णादि । वैदिके कर्मणि प्रथमतः ओं तत्सदिति निर्देशोऽपि । तथाच भगवद्गीता । 'ओं तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः । ब्राह्मणास्तेन वैदाश्च यज्ञाश्च

१४

एकादशीतत्त्वम् ।

विहिताः पुरा' । ओं तस्मादिति त्रिविधो ब्रह्मणो जगदी-
 श्वरस्य निर्देशोऽभिधानं ब्रह्मविद्भिश्चिन्तितम् । तत्र तावदो-
 मिति ब्रह्मेत्यादि श्रुतिप्रसिद्धेः ओमिति ब्रह्मणो नाम । पात-
 ञ्जलिरप्याह अस्यैव वाचकः प्रणव इति । अस्य ब्रह्मणः ।
 ओंकारो भगवान् विष्णुरित्यादि तु वाच्यवाचकयोरभेदेन ।
 तथाच जगत्कारणत्वेन प्रसिद्धत्वादविदूषां परोक्षत्वाच्च ।
 तच्छब्दोऽपि ब्रह्मणो नाम । एवं परमार्थसत्त्वसाधुत्वप्रशस्त-
 त्वादिभिः सच्छब्दोऽपि । अतस्तेन त्रिविधनिर्देशेन यद्वा
 यस्यायं त्रिविधो निर्देशस्तेन परमात्मना ब्राह्मणादयो
 निर्मिताः । तथाच 'तस्मात् ओमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपः-
 क्रियाः । प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनां यस्मादेवं
 ब्रह्मणो निर्देशस्तस्मात् ओमित्युदाहृत्य उच्चार्य कृतावेदवा-
 दिनां यज्ञाद्याः शास्त्रोक्ताः क्रियाः सततमङ्गवैकल्येऽपि प्रकर्षण
 वर्तन्ते सगुणा भवन्तीति भगवच्छङ्कराचार्यचरणाः । व्यक्त-
 माह योगियाज्ञवल्करः । 'यन्नूनञ्चातिरिक्तञ्च यच्छिद्र'
 यदयन्नियम् । यदमेध्यमशुद्धञ्च यातयामञ्च यद्भवेत् । तदो-
 ङ्कारप्रयुक्तेन सर्वञ्चाविकलं भवेत्' । भगवद्गीतायाम् । 'तदित्य-
 नभिसन्धाय यज्ञदानतपःक्रियाः । दानक्रियाश्च विविधाः
 क्रियन्ते मोक्षकाङ्क्षिभिः' । तदिति ब्रह्मणाभिधानमुदाहृत्ये-
 त्यनुषङ्गः अनभिसन्धाय कर्मणः फलमिति शेषः । तस्मात्
 फलाभिसन्धानं विना सुमुच्युणा कर्म कर्तव्यमित्यपि बोध्यम् ।
 'सङ्गावे साधुभावे च सदित्येतत् प्रयुज्यते । प्रशस्ते कर्मणि
 तथा सच्छब्दः पार्श्वं युज्यते । यतो विद्यमानजन्मनि उत्कृष्ट-
 चरिते च सदित्येतत् प्रयुज्यते । अतो यज्ञादौ कर्मणि प्रथमतः
 सच्छब्दः प्रयुज्यत इति । तेनैतादृशेति कर्तव्यताकः सङ्कल्प-
 विषयो व्रतमिति व्रतलक्षणम् । सङ्कल्पविषयस्य व्रतत्वं वाच्यः

एकादशीतत्त्वम् ।

१५

स्मृतिमिश्रोऽप्याह यथाकर्त्तव्यतया सङ्कल्पितं व्रतमिति ।
 अमरसिंहोऽपि उपवासादौ व्रतशब्दसङ्केतमाह 'नियमो व्रत-
 मस्त्रीतञ्चोपवासादिपुण्यकं तच्च व्रतमुपवासादिलक्षणं पुण्यकं
 पुण्यजनकमित्यर्थः । अत्र च नियमशब्दः कर्मणि व्युत्पन्नः ।
 यत्तु व्रतपदं नियतसङ्कल्पविशेषवाचकमिति प्रायश्चित्तविवेक-
 कङ्कितं तदपि नियतः सङ्कल्पविशेषो यत्र द्वादशवार्षिक-
 व्रतादौ तस्य वाचकमित्येतत्परम् । अन्यथा व्रतपदं मरणेऽपि
 मनुना प्रयुक्तं यैर्यैर्व्रतैरपोहेतेत्युक्त्वा मरणस्यापि तेनोक्तत्वा-
 दिति व्रतपदं द्वादशवार्षिकादिपरमेवेत्याभ्यां स्ववाक्याभ्यां
 विरुद्धं स्यात् । न च नागृहीतविशेषणा बुद्धिर्विशेष्य
 उपजायत इति न्यायात् सङ्कल्पवाचित्वमिति वाच्यं श्रीदत्ता-
 दीनां मतेऽपि स्वकर्त्तव्यविषयो नियतः सङ्कल्पो व्रतमिति लक्षणे
 स्वकर्त्तव्यविषयस्य तथात्वात् विनिगमकन्तु प्रागुक्तवराहपुराण-
 याज्ञवल्क्यादिवचनम् । एवञ्च सङ्कल्पविषयस्य अनन्तं पूज-
 येद्धरिमित्यादौ भावत्वं नक्षेतोद्यन्तमादित्यमित्यादौ चाभाव-
 रूपत्वम् । ननु तर्हि व्रतस्य क्वचिदप्यभावरूपत्वान्निषेधः
 कालमात्रके इत्यस्यैव विषयत्वं स्यादिति चेन्न तस्य केवल-
 निषेधविषयकत्वात् अस्य तु सङ्कल्पादौतिकर्त्तव्यतायोगित्वेन
 भावघटितत्वात् तत्र पूज्ये विधेर्वृत्तिरित्यस्यैव विषयत्वमिति ।
 जीमूतवाहनेनापि एकादश्यां भोजने दोषं दर्शयन्नुपवासं
 नियमयति । न चायं निषेध इतिकर्त्तव्यताविधानात्
 निषेधे चेतिकर्त्तव्यताविरहाद्व्रतपदाप्रयोगाच्चेत्युक्तम् । यत्तु
 निषेधप्रकरणस्थदेवलवचनं । 'न शङ्केन पिवेत्तोयं न खादेत्
 कूर्मशूकरौ । एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि' इत्यत्र
 नञोनिषेधे मुख्यत्वाद्भोजनाभावः प्रतीयते न त्वभोजनसङ्कल्प-
 रूपं व्रतं लक्षणाप्रसङ्गात् । एकेनैव मत्स्यपुराणकृता 'दशम्यां

१६

एकादशीतत्त्वम् ।

नियताहारो मांसमैथुनवर्जितः । एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि । इति दशमौनियमपूर्वकं व्रतमभिधाय 'रटन्तीह पुराणानि भूयोभूयो वरानने । न भोक्तव्यं न भोक्तव्यं सम्प्राप्ते हरिवासरे' इत्यादिविधेरनन्यगतिकतया निषेधकत्वमवश्यं वाच्यम् । तथाच निषिद्धे भोजने दोष-
 श्रवणं निषेधातिक्रमजन्यतयैवोपपद्यमानं न फलश्रुत्या कास्य-
 तथा निरुद्धस्य व्रतस्य नित्यत्वे प्रमाणमिति तच्चिन्त्यं न खलु न शङ्केन पिवेत्तोयमित्यादिभिः प्रतिपन्ननिषेधभावैः
 साहचर्येण नैकादशीभोजननिषेधकमात्रमुत्तराहं किन्तु 'एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि । वनस्थयतिधर्मोऽयं शुक्तामेव सदा गृही' इति गोभिलवचने धर्मशब्दसमभि-
 व्याहारेणैकादश्यामुपवसेदित्यनेनैकवाक्यतया चोषवाम-
 विधायकमपि न हि निषिद्धानां ब्रह्महत्यादीनां त्यागेन कश्चिद्धर्मो जायते किन्तु भावरूपाङ्गानुगृहीतो निषिद्धो धर्मो भवेदिति वैधोपवासे च 'उपावृत्तस्य पापेभ्यो यश्च वासो गुणैः सह । उपवासः स विज्ञेयः सर्वभोगविवर्जितः' । इति भविष्यपुराणवचनेन भोगमात्रस्यैव वर्जने प्राप्ते वचनान्तरा-
 दहोरात्रा भोजनस्यैव पापनिवृत्तिगुणवामयुक्तस्य प्राधान्य-
 मन्यभोगवर्जनस्याङ्गत्वम् । तथाच 'सूतके स्मृतके चैव प्रणम्य मनसा हरिम् । एकादश्यां न भुञ्जीत व्रतमेतद्धि वैष्णवम्' ।
 अत्र एकादश्यामुपवासमात्रस्य व्रतत्वमुक्तम् एकादश्यां न भुञ्जीतेत्यस्य व्रतपरत्वेन नाभोजनपरता तस्याश्च पूर्वं दूषित-
 त्वात् । ततश्च यथा एकादश्यां न भुञ्जीत इत्यत्र वचना-
 न्तरादुपवासरूपव्रतपरत्वं तथा न भोक्तव्यमित्यत्रापि । वस्तु-
 तस्तु वराहपुराणे एकादशीव्रतसन्दर्शमध्ये न शङ्केन पिवेत्तोय-
 मिति न भोक्तव्यं न भोक्तव्यमिति वचनद्वयसमिधाय व्रता-

एकादशीतत्त्वम् ।

१७

करणे प्रत्ययाय उक्तः । न च पोतकृत्यभिया तस्य निषेधक-
त्वमिति वाच्यम् । तथात्वे एतद्वचन एव न भोक्तव्यमिति
पुनरुपादानं व्यर्थं स्यात् किन्तु वीक्षया तस्यैव व्रतस्य
नित्यत्वस्थापनमिति । अन्यथा निषेधः कालमात्रक इत्यने-
नैव एकादशीक्षण एव भोजननिषेधः स्यात् । न खादेत्
कूर्मशूकरावित्यस्य विशेषो बोध्यः । 'चक्राङ्कितस्तु यः कूर्मी
रोहितः कनकप्रभः । वराहः श्वेतवर्णस्तु त्रयमेतन्न भक्षयेत्'
इति समुद्रकरधृतकूर्मपुराणवचनात् । वाल्यावस्थायां चक्रा-
ङ्कितत्वेन तदानीं कूर्मस्याभक्ष्यत्वम् । अशनन्तीत्यनुवृत्तौ
हारीतः । महारण्यवासिनश्च वराहांस्तथेति । एवञ्च विव-
दन्ते अग्राम्यशूकरांश्चेति वशिष्ठोक्तं श्वेताश्वेतया व्यवस्थितम् ।
कल्पतरुस्तु । आढे नियुक्तानियुक्ततयेति । विष्णुपासकस्य
सर्वथा निषेधः । यथा वाराहे भगवद्वाक्यम् । 'भुक्त्वा वराह-
मांसन्तु यस्तु मामुपसर्पति । वराहो दशवर्षाणि भूत्वा वै
चरते वने' । यदपि हरिवासरपदादहोरात्राभोजनप्रतीत-
निषेधः कालमात्रक इत्यनेनैकादशीक्षणमतिवाह्य भोजन-
मिति तदपि न किञ्चित् । यतो हरिवासरपदाद्वरितियेरे-
कादश्येव प्रतीयते । तथाच स्कन्दपुराणं 'प्रतिपत्प्रभृतयः
प्रोक्ता उदयादोदयाद्वेः । संपूर्णा इति विख्याता हरिवासर-
वर्जिताः' । भविष्योत्तरं 'हिताय सर्वलोकानां तिथिमेकादशीं
स्वयम् । निर्ममे स्वग्ररीरात्तु सेयं वै वैष्णवी तिथिः' ।
अथवा हरिवासरौ द्वादश्याः प्रथमः पादस्तत्र पारणं न
कुर्यात् । तथाच विष्णुधर्मोत्तरे । 'द्वादश्याः प्रथमः पादो
हरिवासरसंज्ञितः । तमतिक्रम्य कुर्वीत पारणं विष्णुतत्परः' ।

अथैकादशीव्रतम् । नित्यं काम्यञ्च गोविन्दमानसोक्तास-
कृत्यमहार्णवयोर्भविष्योत्तरे । 'एकादशीव्रतं नाम नित्यं वा

५८

एकादशीतत्त्वम् ।

काम्यमेव वा । कथं वा क्रियते तत्तु नियमो वात्र कीदृशः ।
 इत्यादि युधिष्ठिरप्रश्नमभिधाय 'अहं ते कथयिष्यामि शृणु
 पाण्डुकुलोद्भव । नित्यमेतद्व्रतं नाम कर्त्तव्यं सार्ववर्णिकम् ।
 वाञ्छद्भिः सर्वदा सद्भिः पुरुषार्थचतुष्टयम् । न भोक्तव्यं न
 भोक्तव्यं सम्प्राप्ते हरिवासरे' इति श्रीकृष्णवचनमभिहितम् ।
 अत्र नित्यमिति श्रवणात् नित्यत्वं पुरुषार्थचतुष्टयमिति श्रव-
 णात् काम्यत्वञ्च । कालमाधवीये ब्रह्मवैवर्तः । 'इति विज्ञाय
 कुर्वीतावश्यमेकादशीव्रतम् । विशेषनियमाशक्तोऽहोरात्रं भुक्ति-
 वर्जितः । निगृहीतेन्द्रियः शुद्धोऽसहायो विष्णुतत्परः । उपो-
 श्यैकादशीं पापान्मुच्यते नात्र संशयः' । इदं तु नित्यम् अत-
 एव 'जह्याद्भक्तदयं नित्ये काम्ये भक्तचतुष्टयम्' इत्युक्तम् । एतच्च
 नित्ये भक्तदयवर्जनशक्तावश्यकत्वार्थं नित्ये किञ्चिदङ्गहानावपि
 सिद्धिरिति न्यायात् काम्ये तु सर्वशक्त्यधिकरणन्यायात् सर्वा-
 ङ्गोपेतस्यैव सम्पूर्णफलत्वेन भक्तचतुष्टयवर्जनमभिहितम् ।
 शक्तौ तु कात्यायनः । 'शक्तिमांस्तु नरः कुर्यान्नियमं सविशे-
 षणम्' । कृत्यकल्पलतायां भविष्यपुराणम् । युधिष्ठिर उवाच ।
 'एकादशीव्रतं देव नित्यं वा काम्यमेव वा । तन्मे कथय
 गोविन्द श्रोतुं कौतुहलं मम' । श्रीभगवानुवाच । 'नित्य-
 मेतद्व्रतं नाम कर्त्तव्यं सार्ववर्णिकम् । सर्वाश्रमाणां सामान्यं
 सर्वधर्मेष्वनुत्तमम् । एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि'
 एवञ्चैकादशीव्रतस्य नित्यत्वेऽपि शक्तेन तदङ्गतया संयमपारण-
 नियमोऽवश्यमनुष्ठेयः ।

अथ वृद्धिश्राद्धविषयः । ननु व्रतस्य वैदिकत्वेन 'नानिष्ट्वा
 तु पितॄन् श्राद्धैः कर्मवैदिकमारभेत्' इति । शातातपवचना-
 दारम्भे कथं न वृद्धिश्राद्धम् । उच्यते । नेदं श्राद्धविधायकं
 गौरवात् किन्तु यत्र कर्मणि वचनान्तरप्राप्तं श्राद्धं तत्र पौर्वा-

एकादशीतत्त्वम् ।

१८

पर्यमात्रविधायकमिति । अथैवं 'नाष्टकासु भवेत् आङ्गं न
 आङ्गे आङ्गमिष्यते । न सोष्यन्ती जातकर्म प्रोषितागम-
 कर्मसु' इत्यादिना कृन्दोगपरिशिष्टोक्तनिषेधस्यानुपपत्तिः
 तत्तत्कर्मणि आङ्गविधायकाभावात् । सोष्यन्ती सोष्यन्ती
 होमः । स च शूलायन्तीमासप्रसवां ज्ञात्वा होमः ।
 सुप्रसवे इत्यस्माद्जातोरिति भट्टभाष्यदर्शनादन्त्यादिरयं शब्दः ।
 मैवं तेष्वपि गोभिलेन खोक्तगृह्यकर्मत्वेन आङ्गविधानात्
 यथा सर्वाण्येवान्वाहार्थ्यवन्तीति । अस्यार्थः सर्वाण्येव वक्ष्य-
 माणानि अन्वाहार्थ्यवन्ति अन्वाहार्थ्यं नान्दीमुखआङ्गं दक्षिणा
 च तदुभययुक्तानि । तथाच गृह्यान्तरम् । 'यत् आङ्गं कर्मणा-
 मादौ या चान्ते दक्षिणा भवेत् । आमावस्यं द्वितीयं यदन्वा-
 हार्थ्यं तदुच्यते' । अतएव कृन्दोगपरिशिष्टकृता यानि पर्यु-
 दस्तानि तानि सर्वाणि गोभिलोक्तानि । अत्र जातकर्मणि
 आङ्गनिषेधात्तत्र तद्विधायकं वचनं शास्यन्तरीयम् । न चैवं
 सन्ध्यावन्दनादेर्गोभिलोक्तत्वात् तत्र कथं न वृद्धिआङ्गमिति
 वाच्यम् । यस्मादथातो गृह्यकर्माण्युपदेक्ष्याम इत्यादि पुन-
 र्यज्ञविवाहयोश्चेत्यन्तसूत्ररूपगृह्याङ्गिन्न एव अथातः सन्ध्यापा-
 सनविधिं वक्ष्याम इत्याद्यमावास्यायां सर्वमित्यन्तग्रन्थः सन्ध्या-
 तर्पणविधायकः । उभयत्रैव शेषसूत्रे द्विर्वचनं ग्रन्थसमाख्यर्थ-
 मिति तद्भाष्यव्याख्यानम् । एवञ्च गोभिलानुक्तेष्वन्नप्राशना-
 दिषु यद्वृद्धिआङ्गं तन्मलमासतत्त्वे मत्स्यपुराणादिवचनाद्वक्ष्यते ।
 तर्हि न आङ्गे आङ्गमिष्यत इति पर्युदासानुपपत्तिरिति चेत्
 सत्यं गोभिलगृह्येऽप्यन्वष्टकादिआङ्गविधानात् । तस्मादेका-
 दश्यादित्रते गोभिलगृह्यानुक्तत्वाद्विशेषवचनाभावाच्च न वृद्धि-
 आङ्गमिति । एवमन्यत्रापि सुधीभिर्भाव्यमिति ।

अथोपवाससमन्वयः । भविष्ये । 'उपावृत्तस्य पापेभ्यो

२०

एकादशीतत्त्वम् ।

यस्तु वासो गुणैः सह । उपवासः स विज्ञेयः सर्वभोगविवर्जितः । उपावृत्तस्य निवृत्तस्य पापेभ्यः पापकर्मभ्यः । मैथिलास्तु । दोषेभ्य इति पठित्वा दोषेभ्यो रागद्वेषमात्सर्यादिनिषिद्धात्मधर्मेभ्य इत्यर्थमाहुः । गुणानाह गोतमः । ‘दया सर्वभूतेषु क्षान्तिरनसूया शौचमनायासो मङ्गलमकार्षणमसृहा चेति’ । दयादिलक्षणान्याह बृहस्पतिः । ‘परे वा बन्धुवर्गे वा मित्रे द्वेष्टरि वा सदा । आत्मवद्वर्त्तितव्यं हि दयैवैषा प्रकीर्त्तिता’ । परे उदासीने । आपत्सु रक्षितव्यन्विति कल्पतरौ पाठः आत्मवदिति व्यक्तमाह दक्षः । ‘यथैवात्मा परस्तद्वद्व्यः सुखमिच्छता । सुखदुःखानि तुल्यानि यथात्मनि तथापर’ । बृहस्पतिः । बाह्ये चाध्यात्मिके चैव दुःखे चोत्पादिते क्वचित् । न कुप्यति न वा हन्ति सा क्षमा परिकीर्त्तिता । न गुणान् गुणिनो हन्ति स्तौति मन्दगुणानपि । नान्यदोषेषु रमते मानसूया प्रकीर्त्तिता । अभक्ष्यपरिहारस्तु संसर्गश्चाप्यनिन्दितैः । स्वधर्मे च व्यवस्थानं शौचमेतत् प्रकीर्त्तितम् । शरीरं पीड्यते येन सुशुभेनापि कर्मणा । अत्यन्तं तन्न कुर्वीत अनायासः स उच्यते । प्रशस्ताचरणं नित्यमप्रशस्तविवर्जनम् । एतद्धि मङ्गलं प्रोक्तमृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः । स्तोकादपि च दातव्यमदौर्नैव चात्मना । अहन्यहनि यत् किञ्चिदकार्षणं हि तत् स्मृतम् । यथोत्पन्नेन सन्तोषः कर्त्तव्योऽप्यल्पवस्तुना । परस्या चिन्तयित्वायं सासृहा परिकीर्त्तिता’ । देवीपुराणम् । ‘तद्व्यानं तज्जपः स्नानं तत् कथाश्रवणादिकम् । उपवासकृतो ह्येते गुणा प्रोक्ता मनोषिभिः’ सर्वभोगविवर्जितः शास्त्रानुमतनृत्यगीतादिसुखरहितः । अत्र मैथिलाः बृहद्वातातपो भोगविशेषान् प्रतिप्रसूते । ‘गन्धालङ्कारवस्तूनि पुष्पमाख्यानुलेपनम् । उपवासेन दुष्येत दन्त-

एकादशीतत्त्वम् ।

२१

धावनमञ्जनम् । गौडीयस्मृतिः । ‘उपवासे तथा आद्ये न
 खादेदन्तधावनम् । दन्तानां काष्ठसंयोगो दहत्या सप्तमं
 कुलम्’ । तत्र योगीश्वरः । ‘तस्मात् सर्वप्रयत्नेन भक्षयेदन्त-
 धावनम्’ इत्यभिधाय दन्तकाष्ठसंयोगो निषिद्धः तर्पणादिना
 दन्तधावनमिति विरोधं परिजहारेति वदन्तो नजर्थं व्याचक्रुः
 तन्न वृद्धशातातपेन ‘मुखे पर्युषिते नित्यं भवत्यप्रयतो नरः ।
 तस्मात् सर्वप्रयत्नेन भक्षयेदन्तधावनम्’ इत्यभिधाय तद्वचना-
 भिधानेन दन्तधावने दोष एवोक्तः । अन्यथा पीनरुक्त्यापत्तेः ।
 ‘अञ्जनं रोचनञ्चापि गन्धान् सुमनसस्तथा । पुण्यके चोपवासे
 च नित्यमेव विवर्जयेत्’ इति हरिवंशात् । मिताक्षरायां
 ‘गात्राभ्यङ्गं शिरोभ्यङ्गं ताम्बूलं चानुलेपनम् । व्रतस्थो वर्ज-
 येत् सर्वं यच्चान्यद्वलरागकृत्’ इत्यनेनानुलेपनरागकृन्निषे-
 धाच्च । अतएव प्रायश्चित्तविवेककङ्किः सुष्ठूक्तमुपवासे न हेतु-
 नेति । जीमूतवाहनेनापि उपवासे चेति पठित्वा चकारा-
 दनुक्तादिष्वपीति व्याख्यातम् । तस्मादन्त्येत्यादि सर्वभोगस्यैव
 प्रदर्शकं तेन विलासार्थं गन्धादिवर्जनं कार्यम् । देवलः
 ‘उपवासः प्रणश्येत दिवास्वापाक्ष मैथुनैः । अत्यये चाम्बूपाने
 च नोपवासः प्रणश्यति’ । उपवासोऽपि नश्यतेति कल्पतरु-
 पाठे अपि नान्यद्व्रतं समुच्चीयत इति विशेषः । अक्षैर्द्युतैः ।
 अत्यये नाशे सम्भाव्यमाने । मैथुने विशेषमाह देवलः । ‘उप-
 वासे तथा यौनं हन्ति सप्तकुलानि वै । स्त्रीणां संप्रेक्षणात्
 स्पर्शात्ताभिः संकथनादपि । ब्रह्मचर्यं विपद्येत न दारेष्व तु
 सङ्गमात्’ संप्रेक्षणात् संकथनादित्यत्र स रागत्वं संशब्दस्यार्थः
 साहचर्यात् स्पर्शोऽपि तथेति प्रायश्चित्तविवेकः । कात्यायनो-
 ऽपि । ‘रितःसेकात्मकं भोगमृतेऽप्यत्र क्षयः स्मृतः’ । तथाच
 दक्षः । ‘स्मरणं कौर्त्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम् । सङ्कल्पो-

२२

एकादशीतत्त्वम् ।

ऽध्वसायश्च क्रिया निष्पत्तिरेव च । एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रव-
दन्ति मनीषिणः । अनुरागात् कृतञ्चैव ब्रह्मचर्यविरोधकम् ।
यान्नवल्काः । 'षोडशर्तुर्निशास्त्रीणां तासु युग्मासु संविशेत् ।
ब्रह्मचार्येव पर्वाण्याद्याश्चतस्रश्च वर्जयेत्' । स्त्रीणां गर्भधारण-
योग्यावस्थोपलक्षितः कालः ऋतुः । स च रजोदर्शनमारभ्य
षोडशाहोरात्रात्मकः तस्मिन् ऋतौ युग्मासु समासु रात्रि-
ग्रहणाद्विसप्रतिषेधः । संविशेत् गच्छेत् पुत्त्रार्थमेवं गच्छन्
ब्रह्मचारौ भवति अतो यत् ब्रह्मचर्यं आद्यादिषु चोदितं तत्र
गच्छतोऽपि ब्रह्मचर्यस्खलनदोषो नास्ति । किन्तु पर्वाण्या-
द्याश्चतस्रश्च वर्जयेदिति मिताक्षरा । अत्र आद्यावासरे यदभि-
गमनमुक्तं तदयुक्तं कल्पतरुष्टवचनविरोधात् । यथा आद्या-
नन्तरं शङ्खलिखितौ । 'ऋतुस्मातां तदहोरात्रं परिहरेत् ।
नात्तं वै दिवामैथुनं व्रजेत् क्लीवाल्पवीर्याश्च दिवा प्रसूयन्ते
अल्पायुषस्तस्मादेतत् विवर्जयेत् प्रजाकामः । पितृणां नोहवै
तन्तुं विच्छिन्द्यात् प्रयतेताच्छेदाय येनाप्रतिष्ठस्तस्मात्
प्रतिष्ठाकामः प्रजया प्रतिष्ठेतेति' । नो निषेधे । तन्तुं
सन्तानम् अच्छेदाय अविच्छेदाय सन्तानस्य । येन यस्मा-
दप्रतिष्ठः प्रजानुत्पत्त्या अप्रतिष्ठः स न पतति तस्मादुत्प-
त्त्यर्थं यतितव्यम् । विष्णुपुराणम् । 'आद्ये नियुक्तो भुक्ता वा
भोजयित्वा नियोज्य च । व्यवायी रेतसो गर्तं मज्जयत्यात्मनः
पितृन्' । शूलपाणिस्तु । ब्रह्मचार्येव भवति ब्रह्मचर्यफलं
प्राप्नोति । पर्वणि अमावास्यादौ वर्जयेत् । तेन ऋतौ सकृद-
गमनात् व्रतादिषु न दोषः स्यात् एतच्च पुत्त्रोत्पत्तिपर्यन्तम् ।
तथाच आचारमाधवीये कूर्मपुराणम् । 'ऋतुकालाभिगामी
स्याद्यावत् पुत्त्रोऽभिजायते । ऋणापकरणार्थं हि पुत्त्रस्योत्-
पादनश्रुतिः । चतुर्थार्हवर्जनं प्रशस्तपुत्त्रार्थं चतुर्थीप्रभृत्युत्तर-

एकादशीतत्त्वम् ।

२३

क्षराप्रजानिःश्रेयसार्थमित्यापस्तम्बवचनात् । तदनर्थिनस्तु महाभारते । 'स्नातां चतुर्थदिवसे रात्रौ गच्छेद्विचक्षणः' । शङ्खः । 'शुद्धा भर्तुस्तुर्थेऽङ्गि' इति ।

अथैकादशीभोजननिन्दा । विष्णुधर्मोत्तरे । 'एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि । एकादश्यां हि भुञ्जानो विष्णु-लोकाच्चुप्रतो भवेत्' । तथा 'प्रतिग्रासं स भुङ्क्ते तु किल्बिषं श्वानविट्समम् । एकादश्यां द्विजश्रेष्ठ यो भुङ्क्तेऽन्नं द्विजो मनाक्' । भविष्ये । 'यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादि-कानि च । अन्नमाश्रित्य तिष्ठन्ति संप्राप्ते हरिवासरे । अघं स केवलं भुङ्क्ते योभुङ्क्ते हरिवासरे । तद्दिने सर्वपापानि भवन्त्यन्नाश्रितानि च' । सनत्कुमारः । 'मद्यपानान्मुनिश्रेष्ठ पातैव नरकं व्रजेत् । एकादश्यन्नकामस्तु पितृभिः सह मज्जति' । अत्र दोषश्रुतेर्नित्यत्वम् । अतएव यदकरणे प्रत्य-वायस्तन्नित्यमित्युक्तम् । तथाच 'नित्यं सदा यावदायुर्न कदा-चिदतिक्रमेत् । उपेत्यातिक्रमे दोषः श्रुतेरत्याग चोदनात् । फलाश्रुतेर्वीप्सया च तन्नित्यमिति कौर्त्तितम्' इत्यष्टधानित्य-त्वसाधकम् । अतएव माधवाचार्येणात्रैवोपवासे सर्वमुदा-हृतम् । ग्रन्थगौरवभयान्न लिखितम् । यत्तु फलाश्रुतेर्नित्यत्व-मभिहितम् । तत् फलाश्रुतौ विश्वजिज्ञायात् स्वर्गः कल्पयत इत्यनेन विरुद्धमिति । स च न्यायो यथा । विश्वजिता यजेत इत्यादिश्रूयते । अत्राश्रुताधिकारं लिङ्गप्रकरणालम्बाधिकार-ओदाहरणम् । निषेधे हि सामर्थ्यात् प्रवृत्तक्रियोऽधिकारी लभ्यते । अङ्गविधिषु प्रकरणादिति । न चिन्ताधिकारः । एवं सतीह सन्देहः किं नियोज्याध्या क्रियते नवेति । अत्र च लोके द्वारमित्यादौ क्रियया विना कारकाकाङ्क्षायामविरता-भधाना पर्यवसानात् युक्तोऽध्याहारः । इह तु विषये कार्यः

२४

एकादशीतत्त्वम् ।

स्यान्विताभिधानपर्यवसानादनध्याहारप्राप्ते । उच्यते । अत्रा-
 प्यभिधेयापर्यवसानं द्वाराभिधानापर्यवसानमिव कार्यं हि
 साध्यत्वेन कृतिनिरूप्यं नरव्यापाररूपाकृतिः । सा यथा
 स्वसाध्यधात्वर्थनिरूप्या तथा स्वाश्रयनरनिरूप्या च । तदेवं
 कृतेः कर्त्तापि कार्यस्य कृतिद्वारा स्वसम्बन्धित्वेन निरूपक इति
 तमन्तर्भाव्येव नियोगधीः एवञ्च रथोगच्छतीत्यादावाख्याते
 व्यापारलक्षणा । तदुक्तं भट्टपादैः 'स्त्रीत्वाभावेऽपि अद्वादी
 टावादिप्रत्ययो यथा । प्रयुज्यते तथाख्यातो यन्नाभावेऽप्य-
 चेतने । वोदृक्षादिगतो यन्नो रथादावुपचर्यया । उपपाद्य-
 प्रयोगोऽत्र मुख्यार्थानुपपत्तितः' न ह्यबोद्धात्मनः कार्येण
 सम्बन्धः स्वतस्तेन सम्बध्यते । स्वसम्बन्धिकार्यबोद्धा च
 नियोज्य इति सोऽध्याहार्य इति स्थिते चिन्ता किं सर्वेषा-
 मधिकार उत एकस्येति अत्राविशेषात् सर्वेषामिति प्राप्ते
 उच्यते । एकेनाकाङ्क्षाशान्तरेकस्येत्येवं स्थिते विचारः किं यस्य
 कस्यचिन्नियोज्यास्याध्याहार उत स्वर्गकामस्येति तत्राविशेषा-
 दनियमे प्राप्ते । उच्यते । स स्वर्गः स्यात् सर्वान् प्रत्यविशिष्ट-
 त्वादिति जैमिनिसूत्रात् । स्वर्गकाम एवाध्याहार्यः विशेषो
 हि न गम्यते पुरुषाणां सुखाभिलाषित्वात् । दुःखनिवृत्तेरपि
 तत्रैवान्तर्भावात् दुःखनिवृत्तिस्तु न सुखं विना भूता सुषुप्तौ
 सत्यामपि तस्यां सुखजन्मादर्शनात् अनवच्छिन्नसुखस्य स्वर्ग-
 त्वात् तस्य सर्वसुखविशेषान् प्रत्यविशिष्टत्वात् विशेषे माना-
 भावात् स्वर्ग एव नियोज्य विशेषणं स्यादित्युत्तरमौमांसायां
 कल्पतरुः । यदुक्तं 'यन्न दुःखेन संभिन्नं न च ग्रस्तमनन्तरम् ।
 अभिलाषोपनौतं यत्तत् सुखं स्वःपदास्यदम्' इति । ननु
 फलाश्रुतिमात्रात् कथं नित्यत्वमिति चेदुच्यते । फलाश्रुतौ
 नित्यप्रकरणे नित्यत्वं काम्यप्रकरणे काम्यत्वमिति । एवञ्चैका-

एकादशीतत्त्वम् ।

२५

दशौव्रतस्य नित्यत्वात् किञ्चिदङ्गवैकल्येऽपि प्रधानोपवासादे-
 राचरणं यावज्जीवाधिकरणन्यायात् । स च न्यायो यथा ।
 यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहुयादिति श्रूयते तत्र किं सर्वाङ्गोप-
 संहारेणैवाधिकारः उत यावज्जीवपदेन यावन्ति शक्नोतीत्युप-
 संहर्तुं यदा तदा तावद्भिरङ्गैरुपेतं प्रधानं कुर्वन्नधिकरोति
 इति संशयः । तत्राद्ये सर्वाङ्गोपेतस्य प्रधानस्य फलसाधन-
 त्वादङ्गवैकल्ये फलानुदयात् सर्वाङ्गोपसंहार इति पूर्वपक्षः
 तत्र सिद्धान्तः सायंप्रातर्जुहोतीति श्रुतेः सायंप्रातःकाला-
 वच्छिन्नं जीवनमग्निहोत्रस्य निमित्ततया श्रूयते नत्वङ्गानां
 सति निमित्ते नैमित्तिकमवश्यम्भावि अन्यथा निमित्तत्वासम्भ-
 वात् । अतोऽशक्याङ्गपरित्यागेन प्रधानं कर्तव्यम् । तावतैव
 शास्त्रवशात् फलसिद्धिरिति अतएव नित्यनैमित्तिकाधिकारि-
 काधिकारे औधरस्वामिपृता श्रुतिः यथा शक्नुयात्तथा कुर्या-
 दिति । बौधायनोऽपि स्मरति । ‘यथाकथञ्चिन्नित्यानि शक्य-
 वस्तुनिरूपितः । येन केनापि कार्याणि नैव नित्यानि लोपयेत्’
 शक्यं वस्तु निरूपितं येन स तथा अत्र प्रथमा न लोपयेदित्य-
 पेक्षया प्रधानशक्त्यभिधाने गुणशक्तिरनभिहितवत् प्रकाशते
 इति न्यायात् अतएवात्यन्ताशक्तौ गोतमः । ‘मनसा चैवं सम्य-
 गाचारमनुपालयेदापत् कल्पे’ इति तस्मात् सायंप्रातःकालाव-
 च्छिन्नजीवनमात्रेऽग्निहोत्रहोमो विधीयते । योगियाज्ञ-
 वल्क्योऽपि । ‘सर्वावस्थोऽपि यो विप्रः सम्योपासनतत्परः ।
 ब्राह्मणात्तु न हीयेत अन्यजन्मगतोऽपि वा’ । सर्वावस्थोऽपि
 निन्दितसेवादिकरः । सम्यक्शौचाद्यसमर्थ इति कल्पतरुः ।
 अन्यजन्मगतस्त्राहेण शूद्री भवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयी इति
 मन्वादुक्तः । एवञ्च सम्यगाचमनाद्यसमर्थानामन्वादीनामपि
 नित्ये कर्मणि सन्त्यादावधिकारः । अतएव केनापि मुनिना

२६

एकादशीतत्त्वम् ।

न तेषामनधिकार उक्तः किन्तु क्वचित् काम्ये सर्वशक्त्यधिकरणन्यायाच्चेष्टामनधिकारः । अतएव तिथिविवेके स्वर्गकाम-
 श्रुतेः सामान्यप्रवृत्ताया अपि समर्थनरगोचरोपसंहारे
 अन्वादिपक्षे दर्शपोर्णमासादेर्बाध इत्युक्तमित्यनेन काम्य एव
 दर्शादौ विशेषोऽभिहितः । एवञ्च नित्ये वाक्यान्तरश्रुतस्य
 स्वर्गादेर्न भाव्यत्वम् । सर्वदा तस्येष्टत्वासम्भवात् । तथा हि
 अविवेकिनामेव तदिच्छा विवेकिनां पुनः स्वर्गेऽपि पातभौ-
 त्वात् क्षयिणोर्नास्ति निष्कृतिरिति न्यायाद्वैयर्थ्यबुद्धिस्ततः
 सर्वावस्था साधारणेच्छागोचरतया उपात्तदुरितक्षय एव
 भाव्यः । यद्यपि 'विहितस्थाननुष्ठानाबिन्दितस्य च सेवनात् ।
 अनिग्रहाच्चेन्द्रियाणां नरः पतनमृच्छति' । इति याज्ञवल्कर-
 वचनादकरणभाव्यनिष्ठपरिहारार्थत्वं सम्भवति तथापि तत्त-
 द्विधिवाक्येषु भावना एव विधेयत्वात्तस्याः किङ्केन कथमित्यपे-
 क्षितांशत्रयवत्त्वाद्भावं विना विधिरूपत्वासिद्धेस्तत्कालीना-
 करणप्रत्यवायपरिहारस्य तत्प्रतियोगिनः कदाचिदनुत्पत्त्या
 तदत्यन्ताभावरूपस्य नित्यतया भाव्यत्वायोगाद्विधिप्रत्ययेन
 चेष्टस्यैव भाव्यत्वप्राप्तेर्धात्वर्थादेर्भाव्यत्वायोगादश्रुतफलेषु विश्व-
 जिदादिषु दुरितक्षयस्य दुरितानिष्ठत्वोपाधिकेच्छाविषयत्वात्
 तत्त्यागेन निरुपधीच्छाविषयस्वर्गस्यैव भाव्यत्वावधारणेऽपि
 नात्र तथेति कर्तृणां कदाचिद्भगवदनुग्रहाद्वैराग्योत्पत्तौ स्वर्गे-
 ऽपौच्छानिष्ठत्वेर्यावज्जीवानुष्ठेयकर्मसु स्वर्गस्य भाव्यत्वानुप-
 पत्त्या सर्वस्य सर्वदेच्छागोचर उपात्तदुरितक्षय एव भाव्यः
 कल्प्यते । धात्वर्थरूपाणि भावनायां केनेत्यपेक्षितकरणत्वे-
 नान्वीयन्ते । 'विधाने चानुवादे च यागः करणमिष्यते'
 इति न्यायात् करणस्य कर्तृव्यापारलक्षणस्येति कर्तृव्यता-
 ख्योपकारकव्यापारं विनासम्भवात् । कथमित्यपेक्षितश्रुत्यादि-

एकादशीतत्त्वम् ।

२७

समर्पिताङ्गजातान्येव भाष्यं भावयन्तीति । तत्र पूर्वजन्मा-
 र्जितानामिहापि जन्मनि । ‘ऊनषोडशवर्षेण बाल्ये यत् किल्बिषं
 कृतम् । पश्चाद्धर्मप्रवृत्तेन तत्सर्वमुपशाम्यति’ इति वचनादि-
 प्राप्तानां दुरितानां क्षयः । तथाच तैत्तिरीयश्रुतिः । ‘धर्मो
 विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा लोके धर्मिष्ठं प्रजा उपसर्पन्ति धर्मेण
 पापमपनुदति धर्मेण सर्वं प्रतिष्ठितं तस्माद्धर्मं परमं वदन्ति’
 इति । जाबालभविष्यपुराणे ‘क्षयं केचिदुपात्तस्य दुरितस्य
 प्रचक्षते । अनुत्पत्तिं तथा चान्ये प्रत्यवायस्य मन्वते । नित्य-
 क्रियां तथा चान्ये ह्यनुसङ्गफलां श्रुतिम्’ । नित्यक्रियां नित्या
 क्रिया यस्याः तां प्राप्येति शेषः । फलमिति पाठे ह्यान्द-
 सत्वम् । ततश्च फलस्य कर्मनिष्पत्तेस्तेषां लोकवत् परिमाणतः
 फलविशेषः स्यादिति न्यायेन नित्यकर्माणि कृथादिषु दृष्ट-
 साधनवत् साधनकर्मानुरूपेण किञ्चित् किञ्चित् कृत्वा दुरि-
 तानि नाशयन्ति अकरणभाविप्रत्ययानुत्पादनाय भवन्ति च ।
 तथाच आपस्तम्बः । प्रयोजयिता चानुमन्ता कर्त्ता चेति सर्वे
 स्वर्गनरकफलभोक्तारो योभूय आरभते तस्मिन् फले विशेष
 इति । ‘एवं फलं विनाप्यनुष्ठानं नित्यानामिष्यते स्फुटम्’ इति
 भविष्यपुराणीयम् । पापक्षयानुषङ्गिकफलातिरिक्तफलपरम् ।
 तथाच यमः । ‘सन्ध्यामुपासते ये तु सततं शंसितव्रताः ।
 विधूतपापास्ते यान्ति ब्रह्मलोकमनामयम्’ । शंसितव्रताः
 दृढव्रताः । एतेन सङ्गिनामानुषङ्गिकं फलं मुमुक्षूणां मोक्ष
 एव । अन्यथा तेषामनर्थापत्तेः । अन्येषास्त्वन्यथापि । शारी-
 रकभाष्ये आपस्तम्बः । आम्ने फलार्थे निर्मिते ह्यायागन्धः’
 इत्यनुत्पद्यते । एवं धर्मं चर्यमाणं अर्था अनुत्पद्यन्त इति ।
 शक्यसम्पादनेषु अपि यदङ्गं विस्मृतं तस्याप्यशक्यान्तर्भावात्
 तदभावेऽपि फलं भवत्येव किन्त्वत्र साङ्गार्थमच्युतस्मरणादिकं

२८

एकादशीतत्त्वम् ।

विधेयम् । 'यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु ।
 न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमुच्यतम्' इति स्कन्दपुरा-
 णात् । तत्त्वगागरः । 'प्रसङ्गाद्वाथ दम्भाद्वा लोभाद्वा त्रिदशा-
 धिप । एकादश्यां मनःकृत्वा सर्वदुःखादिमुच्यते' । नार-
 दीयम् । 'व्याजेनापि कृता राजन् नो दर्शयति सान्तकम्' ।
 सा एकादशी । अन्तकं यमम् । कात्यायनः । 'संसार-
 सागरोत्तारमिच्छन् विष्णुपरायणः । ऐश्वर्यं सन्ततिं स्वर्गं
 मुक्तिं वा यद् यदिच्छति । एकादश्यां न भुञ्जीत पचयो-
 रुभयोरपि' । यत्तु याज्ञवल्क्यटीकायाम् । 'एकादशी द्वादशी
 च तत्रोपोथ्य कृतोः फलम् । अहोरात्रेण चैकेन ब्रह्महत्यां
 व्यपोहति' इति भविष्यपुराणादिफलमर्थवादमात्रं वर्णितं
 तत्र । अधिकारिविशेषणापेक्षया आर्थवादिकफलस्वीकारस्य
 रात्रिसत्राधिकरणन्यायेन कर्तुमुचितत्वात् ब्रह्महत्यादिव्यपो-
 हनस्यापि फलत्वात् ब्रह्महा द्वादशीयुक्तेकादश्यामुपवसेदिति
 विहितम् । हीनतमब्रह्मबधविषये रहः प्रायश्चित्तं सम्भवतीति
 अमीमांसकवचनं हेयमिति जीमूतवाहनः । स च न्याय-
 सतुर्थाध्याये चिन्तितः यथा । प्रतितिष्ठन्ति हवाय एता
 रात्रौरुपयजन्तीति श्रूयते । तत्र रात्रिशब्देन अथैष आयु-
 रथैष ज्योतिरित्यादिवाक्यविहितास्तत्तन्नामका सोमयाग-
 विशेषा उच्यन्ते । अत्र संशयः किमत्र स्वर्ग एवाधिकारि-
 विशेषणमुत प्रतिष्ठेति अत्रैवं काम इत्यश्रवणात् विधिशक्ति-
 लभ्यः स्वर्ग एव विशेषणं सन्देहे हि वाक्यशेषस्वीकारो न
 निश्चये निश्चितश्चेह सर्वाभिलषितः स्वर्गो विधिसामर्थ्यान्नि-
 योज्य विशेषणम् । या तु प्रतिष्ठाविषया श्रुतिः सा चापि
 लक्षणया स्वर्गपरैरकल्प्यते । इहैव जैमिनिसूत्रम् । 'कृती
 फलार्थवादमङ्गवत्कार्णाजिनिरिति' । यथा प्रजायाद्यङ्गेषु

एकादशीतत्त्वम् ।

२८

फलश्रुतिरर्थवादरूपा तथा क्रतौ रात्रिसत्रादौ प्रतिष्ठादि-
श्रुतिम् । फलार्थवादमाह कार्णाजिनिरित्येवं प्राप्ते सिद्धान्त-
सूत्रं फलमात्रेयो निर्देशादश्रुतौ ह्यनुमानं स्यादिति । प्रतिष्ठा-
फलस्य निर्देशात्तदेवाधिकारिविशेषणम् । यत्तु विधिशक्त्या
स्वर्ग इति तत्र मुख्यार्थस्तुतिवादोक्तफलात् विधिशक्तौ पर्यवसि-
तायामानुमानिकस्वर्गफलकल्पनानवकाशात् । सर्वथा फला-
श्रुतेरेव स्वर्गानुमानम् । तस्मादाक्यशेषस्यमेव फलमिति
आत्रेयो मुनिराह । ततश्च प्रतिष्ठाकामो वायुना यजेत
प्रतिष्ठाकामो ज्योतिषा यजेत इत्यादिविधयः कल्पन्ते महा-
भारते 'सायमाद्यन्तयोरङ्गोः सायंप्रातश्च मध्यमे । उपवास-
फलं प्रेक्षोर्वर्ज्यं भक्तचतुष्टयम्' इत्यत्र सायमित्यविवक्षितम् ।
हविरुभयत्ववत् भक्तचतुष्टयवर्जनस्यैव विवक्षितत्वात् । अतएव
वाराहे सायमिति नोक्तं यथा । 'अङ्गोराद्यन्तयोर्भक्तमैकैकं
मध्यतो द्वयम् । चतुर्भक्तनिषेधोऽयमुपवासविधिः स्मृतः'
पाश्चात्यनिर्णयान्ते स्मृतिः । 'नाद्याङ्गद्वयं नित्ये काम्ये
भक्तचतुष्टयम्' । भक्तद्वयवर्जनमशक्तस्य । शक्तस्य तु नित्येऽपि
भक्तचतुष्टयवर्जनम् । 'शक्तिमांस्तु प्रकुर्वीत निधमं सविशे-
षणम्' इत्युक्तौ नित्यकाम्यत्वेन विशेषाभावात् । पूर्णैकादशी-
व्यवस्थायाम् । 'पूर्णमुपवसेत् कामी निष्कामस्तूत्तरां सदा'
इत्यादिपुराणवचनेन विधानभेदात् कालभेदाच्च । नित्यत्व-
काम्यत्वप्रतिपादकं तत्तद्वचनैरेकादश्युपवासस्य नित्यत्वं
काम्यत्वञ्च तत्र कालाभेदस्थले काम्यकरणे नित्यसिद्धिरित्यु-
क्तम् । ननु काम्यत्वमनित्यत्वम् असति कामे परित्यक्तुं शक्य-
त्वात् तथा सत्येकस्य कर्मणो नित्यत्वकाम्यत्वाभ्यां द्वैरूप्याङ्गी-
कारे नित्यानित्यसंयोगविरोधः भवेत् संयोगपृथक्त्वन्यायात्
स च न्यायः खादिरे पशुं बध्नाति खादिरं वीर्यकामस्य

३०

एकादशीतत्त्वम् ।

यूयं कुर्वीतेति श्रूयते । अत्र संशयः किं काम्यस्यैव खादिरता नित्येऽपि स्यात् । उत नेति । तत्र फलार्थत्वेनानित्यतया नित्यप्रयोगाङ्गता न युक्ता । यत्तु नित्येऽपि खादिरत्वश्रवणं तत् काम्यस्यैव पशुबन्धनाश्रयज्ञानार्थम् अतो न नित्ये खादिरतेति प्राप्तेराह्वान्ताय चतुर्थाध्यायसूत्रम् एकस्य तु उभयत्वे संयोगपृथक्त्वमिति । अत्र संयोगः सम्बन्धमात्रम् एकस्य खादिरस्य क्रत्वर्थत्वपुरुषार्थत्वरूपोभयात्मकत्ववाक्य-
द्वयेन क्रतुशेषत्वफलशेषत्वलक्षणसंयोगभेदावगमान्न नित्या-
नित्यसंयोगविरोधः । न च आश्रयज्ञानार्थं नित्यवाक्यं सन्नि-
धानादेवाश्रयलाभात् अत उभयार्था खादिरतेति । एवं
दध्ना जुहोति दध्नेन्द्रियकामस्य इत्यादावुभयार्थतैव दधित्वस्य
द्वेधा श्रवणात् । ननु विषमो दृष्टान्तः नित्यः खादिरः क्रत्वर्थः
उपवासस्तु नित्योऽपि पुरुषार्थः । न हि स क्रत्वर्थः क्रत्वङ्गत्वे
प्रमाणाभावात् सत्यम् । प्रमाणद्वयस्य हेतुप्रयोजकस्य
केवलपुरुषार्थोपवासेऽपि सत्त्वादवैषम्यम् । यदि च बुद्ध्या-
रोहसदृशो दृष्टान्तोऽपेक्षितस्तदा अग्निहोत्रादिदृष्टान्तः ।
न हि स क्रत्वर्थः किन्तु स्वयमेव क्रतुः पुरुषार्थोऽपि । तथाच
यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहोति इति नित्यत्वबोधकम् अग्निहोत्रं
जुहुयात् स्वर्गकाम इति काम्यत्वबोधकं यस्य पर्णमयी जुह-
रित्यत्र नोभयार्थत्वं द्वेधाश्रवणाभावात् । अतएव नारायणो-
पाध्यायेन दधिखादिरन्यायेन शिखाबन्धोपवीतधारणयोरुभ-
यार्थत्वमुक्तम् । कल्पतरुक्ततापि ब्रह्मचारिकाण्डे पञ्चमादिषु
येषु वर्षेषु नित्योपबन्धः काम्योपबन्धनश्च श्रूयते ते संयोग-
पृथक्त्वन्यायेन नित्याः काम्याश्च । यथा पैठीनसिः । गर्भ-
पञ्चमेऽष्टे ब्राह्मणमुपनयेत् । उपनीय इत्यनुवृत्तौ आप-
स्तम्बोऽपि । 'अथ काम्यानि सप्तमे ब्रह्मवर्चसकामम् अष्टमे

एकादशीतत्त्वम् ।

११

आयुष्कामं दशमे अर्थाव्यकामम् एकादशे इन्द्रियकामं द्वादशे पशुकामम्' इति मनुः । 'ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पञ्चमे' इति ब्रह्मवर्चसं वेदाध्ययनं तदर्थज्ञानप्रकर्षकृतं तेजः । येषां तु राज्ञो धर्मार्थिनः षष्ठे इत्यादीनां कामनोपनिबन्धेनैव स्मरणं तेषां काम्यत्वं किन्तु स्वरूपसिद्धेस्तस्मादेवोपनयनरूपः संस्कारो नित्यः सिद्धः । गोदोहेन प्रणयनसिद्धेर्यथा न क्रतूपकारार्थं चमसेन पुनः प्रणयनं नापि त्रिवर्षस्योपनयनमाशङ्कनीयं पञ्चमादौ तु विशेषोल्लेखेनानुष्ठानाक्षेपस्य सत्त्वात् शरावादिना यथा न प्रणयनमित्युक्तम् अथैवमाभ्युदयिकं 'आह' नित्यं काम्यञ्च । यथा देवौपुराणम् । 'अष्टकामाध्यभ्युदयास्तीर्थयात्रोपपत्तयः । पितॄणामतिरेकोऽयं मासिकान्नाध्रुवः स्मृतः' । मासिकान्नादमावास्यायाद्वात् अयमतिरेकोऽष्टकादि-आहकालो ध्रुवः आवश्यकः । विष्णुः । 'आदित्यसंक्रमणं विषुवद्वयं विशेषेणायनं द्वयं व्यतीपातो जन्मर्चमभ्युदयश्च ।' एतांस्तु आहकालान् वै नित्यानाहं प्रजापतिः । आहमेतेषु यद्वृत्तं तदानन्त्याय कल्पयते' । अभ्युदयो विवाहादिः । तत्र विवाहान्तसंस्काराङ्गनान्दीमुखआहं पितुरधिकारमाह कुन्दोगपरिशिष्टम् । 'स्वपितृभ्यः पिता दद्यात् सुतसंस्कारकर्मसु । पिण्डानोदहनात्तेषां तदभावेऽपि तत्क्रमात्' । सुतसंस्कारकर्मसु सुतसंस्कारजनककर्मसु संस्कारग्रहणात् पुत्रस्य विवाहान्तरे पित्रा नाभ्युदयिकं कार्यम् । आद्येन संस्कारसिद्धौ द्वितीयादेस्तदजनकत्वात् । तथाच आश्वलायनगृह्यपरिशिष्टं सौमन्तोन्नयनं प्रथमे गर्भे । सौमन्तोन्नयनसंस्कार इति श्रुतिः । गर्भपात्रयोरयं गर्भपात्रः गर्भस्य उदरस्थस्य पात्रस्य तदाधारस्थ स्त्रियाः इति कल्पतरुः । हारीतोऽपि । 'सकृत् कृतसंस्काराः सौमः

३२

एकादशीतत्त्वम् ।

न्तेन द्विजस्त्रियः । यं यं गर्भं प्रसूयन्ते स गर्भः संस्कृतो भवेत् । अत्र सकृत् संस्कृतपात्रजातानां सर्वेषां संस्काराभिधानेन प्रत्येककृतजातकर्मादिसंस्काराणां सुतरां सकृत् सकृत् कृते कृतः शास्त्रार्थ इति न्यायाच्च । पिण्डानिति आहपरं कन्यापुत्रविवाहेषु इति आहविधायकविष्णुपुराणैकवाक्यत्वात् । तदेकवाक्यतया च सुतपदं कन्यापुत्रपरम् । उदहनादित्यत्र अभिविधावाङ् । तदभावेऽपि संस्कार्यक्रम-
 बाधकस्य पितुरभावेऽपि पुनरन्यः संस्कार्यः सपिण्डादिर्वा तत्क्रमात् । 'चित्कर्म यथानेकैरङ्गैरुन्नील्यते शनैः । ब्राह्मण्यमपि तद्वत् स्यात् संस्कारैर्विधिपूर्वकैः' । इत्याङ्गिरसोक्तफलभागितया प्रधानस्य संस्कार्यस्य क्रमात्तेषां पितृणां दद्यात् । ततश्च संस्कार्यं पित्रादित्यमातामहादित्येभ्यः आहं कुर्यात् । न तु संस्कार्यपितरमादाय तेषां पितुः सम्प्रदानभूतानां पितृनुप्रवेशात् वृद्धप्रपितामहेतरपञ्चानामिति नारायणोपाध्यायमतं युक्तमिति वाच्यम् । पितृनुप्रवेशेन संस्कार्यस्य पितृपितामहप्रपितामहानां आहं तन्मातामहपक्षस्यैव 'पितरो यत्र पूज्यन्ते तत्र मातामहा ध्रुवम्' इत्यनेन युक्तत्वात् । न वा तेषां संस्कर्तृपितृणां संस्कार्यपितुः पितृगणमातामहगणानां वा ग्रहणं तत्क्रमादित्यनुपपत्तेः । आद्ये संस्कर्तुरनुपात्तत्वात् तच्छब्देनानुपस्थितेः द्वितीये तेषामित्यनेनैव तेषां प्राप्तित्वात् क्रमादित्यनुवादकतापत्तेः । एवञ्च अभ्युदयमात्रस्य नित्यत्वात् द्वितीयविवाहेऽपि इतराङ्गवत् वोढुराभ्युदयिकआहमावश्यकम् । सर्वाण्येवान्वाहार्यवन्तीत्यत्र मत्तर्थायेनाविशेषादङ्गत्वप्राप्तेः । न च 'असकृत् यानि कर्माणि क्रियेरन् कर्मकारिणा । प्रतिप्रयोगं नैव स्युर्मातरः आहमेव च' इति छन्दोगपरिशिष्टान्न तत्र वृद्धिआहमिति

एकादशीतत्त्वम् ।

३३

वाच्यम् । तस्यासकृत्त्वेन येषां नियतकरणमुक्तम् तत्परत्वान्नत्व-
 नियतपुनःकरणकर्मपरम् । अतएव यानि कर्माणि पुनः
 पुनः प्रतिदिनं प्रतिमासं प्रतिवत्सरं क्रियन्ते वैश्वदेवबालिकर्म-
 दर्शपौर्णमासश्रावण्याग्रहायण्यादीनि तेषु प्रथमप्रयोग एव
 श्राद्धं मातृपूजा चेति परिशिष्टप्रकाशप्रभृतिभिर्नियत पुनः
 पुनः कर्मस्वेव विषयो दर्शितः । विष्णुपुराणेऽपि । 'नाम-
 कर्मणि बालानां चूडाकर्मादिके तथा । इत्यत्र बालानामिति
 बहुत्वेन निर्दिष्टम् । अतएव ब्रह्मपुराणम् । विवाहस्य
 शुद्धत्वे श्राद्धं हेतुरित्याह । यथा 'नान्दीमुखेभ्यः श्राद्धन्तु
 पितृभ्यः कार्यमृद्धये । ततो विवाहः कर्त्तव्यः शुद्धः शुभफल-
 प्रदः' । अतएव मुखदर्शनावृत्तौ श्राद्धावृत्तिप्रसङ्गः स्यात्
 विवाहवदिति श्राद्धविवेकः । एतेन पुत्रविवाहादौ वृद्धि-
 श्राद्धं नैमित्तिकमित्युक्तमिति निरस्तम् । 'सपितुः पितृ-
 कृत्येषु अधिकारो न विद्यते' इति छन्दोगपरिशिष्टेन जीवत्-
 पितृकस्यावश्यकश्राद्धनिषेधेऽपि अङ्गत्वादेव च निषेकादौ
 जीवत्पितृकेणापि जीवन्तमतिदद्यादित्यनेन पितामहा-
 दीनां वृद्धिश्राद्धमावश्यकं क्रियते । जीवत्पितृकादिना क्रिय-
 माणे श्राद्धे पित्रादिस्थाने पितामहायूहमाह विष्णुधर्मो-
 त्तरम् । 'येषां श्राद्धं पिता दद्यात् तेषामेव स कारयेत् ।
 मन्त्रोद्देशेन न कर्त्तव्यं तेन श्राद्धं नराधिप' । स जीवत्-
 पितृकः प्रतिनिधिना तु अमुकस्य पितुरित्यभिलाषे योज्यं
 मन्त्रे तु न तथेति वक्ष्यते । एवञ्च वृद्धिश्राद्धं यदर्थं कृतं तत्
 कर्म चेत् तद्दिने विघ्नान्न क्रियते तदा दिनान्तरे तत् कर्मणि
 पुनर्वृद्धिश्राद्धं करणीयं 'प्रधानस्याक्रिया यत्र साङ्ग' तत्
 क्रियते पुनः । तदङ्गस्याक्रियायान्तु नावृत्तिर्न च तत् क्रिया'
 इति छन्दोगपरिशिष्टेन साङ्गकरणाभिधानात् । नान्दीमुखे

३४

एकादशीतत्त्वम् ।

कन्दोगैर्योषितां आहं न कर्त्तव्यम् । 'न योषिज्ञाः पृथक् दद्यात् अवसानदिनादृते । स्वभर्तृपिण्डमात्राभ्यस्तृप्तिरासां यतः स्मृता' इति कन्दोगपरिशिष्टनिषेधात् । न च अत्र योषिज्ञोऽपृथक्त्वादिति वाच्यम् । तथात्वे अवसानदिनादृते इति व्यर्थं स्यात् । तथाहि परिप्राप्ते योषितां आहोऽपृथक्त्वं विधीयते किंवाऽपृथक्त्वविशिष्टं आहं विधीयते । नान्यः अमावास्यादौ योषिहानाप्राप्तौ कथं तदनूयापृथक्त्वमात्र-विधानम् । नान्यः तथापि अवसानदिनादृते इत्यस्य वैयर्थ्यापत्तेः । अवसानदिने तु 'स्त्रीणामप्यवमेवैतदेकोद्दिष्टमुदाहृतम् । मृताहनि यथान्यायं नृणां यदयदिहोदितम्' इति मार्कण्डेयपुराणीयेन पृथक् आहप्राप्त्या विशिष्टविधित्वानुपपत्तेः तस्मादवसानदिनादृते इति वाक्यस्य सार्थकत्वाय पृथक्पदमेतानुवादः । न च वैपरीत्यं तथात्वे वाक्यानुवादः स्यात् । अव्ययपदानुवादे तु विभक्तेर्नानुवादकतेति । एवमेवेशानाचार्याः । 'यस्मान्मातृश्राद्धन्तु पूर्वं स्यात् पितृणां तदनन्तरम् । ततो मातामहादीनां हृदौ श्राद्धत्रयं स्मृतम्' इति शातातपवचनात् । 'अन्वष्टकास्वष्टकावदग्नौ हुत्वा देवपूर्वं मात्रे पितामह्यै पूर्ववत् ब्राह्मणान् भोजयित्वा' इति विष्णुसूत्रात् 'मृताहनि तु कर्त्तव्या स्त्रीणामप्युत्तरा क्रिया' । इति विष्णुपुराणात् । हृद्धान्वष्टकावसानदिननिमित्तकश्राद्धेषु कन्दोगोऽवसानदिनव्यतिरेकेण योषिदितरेभ्यो दद्यात् ततश्च योषिदितरेभ्य इति विशेषणसार्थकत्वाय तासां दानाभावे तत्र तदयोषितं कथं तदतिरिक्त्यपेक्षयामाह स्वभर्त्रिति । ननु अमावास्यादिसामान्यनिमित्तकश्राद्धे कथं तासां तदतिरिति चेत् 'सपिण्डीकरणादूर्ध्वं यत् पितृभ्यः प्रदीयते । सर्वेष्वंशहरा माता इति धर्मेषु निश्चयः' इति शातातपवचनात् ।

एकादशीतत्त्वम् ।

३५

इति छन्दोगेतरो योषिद्भ्यः पृथक्श्राद्धं दद्यादिति वाच्यं विधेयप्रागर्थापोषकत्वेन स्वभर्तृपिण्डमात्राभ्यो यतस्तृप्तिरित्यस्यान्वयानुपपत्तेः किन्तु न योषिद्भ्य इत्यस्य योषिदितरेभ्य इत्यर्थे वृद्धादौ योषित्संप्रदानकविधीनां छन्दोगेतरपरत्वं प्रतीयते यजमानावेक्षितं हविर्जुहोतीत्यनुरोधेन स्वर्गकामपदस्यान्वेतरपरत्ववत् । अथवा न योषिद्भ्य इत्यस्य छन्दोगेतरो वृद्धादौ योषिद्भ्यः पृथक्श्राद्धं दद्यादित्येवार्थः । ततश्च वृद्धादौ छन्दोगयोषितां कथं तृप्तिरित्याकाङ्क्षामुत्थाप्य उत्तरार्द्धान्वय इति अन्वष्टकायान्तु साम्नीनामेवाधिकारः । विष्णुवचने होमत्वादेवाग्निप्राप्तेरग्निग्रहणं तन्नियमार्थम् । न चानग्नीनामग्नीकरणहोमे विप्रपाण्यादेर्विधानादत्रापि तथेति वाच्यं प्रकृतौभूत आहविध्युक्ताधारस्य विकृतौभूत आहविहिताधारण बाधात् । शरमयवर्हिषा कुशमयवर्हिर्बाधवत् । न वा लौकिकाम्नी होमः । 'न पैत्रयज्ञियो होमो लौकिकाम्नी विधीयते' । इति मनुना निषेधात् वाचस्पतिमिश्रोऽप्येवम् ।

अथैकादश्यपवासाधिकारिणः । 'यावन्नोपवसेज्जन्तुः पञ्चनाभदिनं शुभम्' इत्यत्र जन्तुपदश्रवणात् 'अष्टाब्दादधिको मर्त्यो ह्यपूर्णाशीतिवत्सरः । भुङ्क्ते यो मानवो मोहादेकादश्यां स पापकृत्' इति कालमाधवीयधृतनारदवचने मर्त्यमानवपदयोः श्रवणात् मनुष्यमात्रस्याधिकारो न जात्याश्रमविचारः । एवञ्च 'नित्योपवासी योमर्त्यः सायं प्रातर्भुजिक्रियाम् । संत्यजेन्मतिमान् विप्रः संप्राप्ते हरिवासरे' इति कात्यायनवचने मर्त्य इत्यभिधानानन्तरं यद्विप्रपदं तत्तस्याधिकदोषार्थम् । अन्यथा मर्त्यपदवैयर्थ्यापत्तेः । न च 'अनङ्गान् ब्रह्मचारी च आहिताग्निस्तथैव च । अग्नन्त एव सिद्ध्यन्ति

३६

एकादशीतत्त्वम् ।

नैषां सिद्धिरनश्नताम्' । इति स्मरणात् साग्निब्रह्मचारिणो-
 रत्रानधिकार इति वाच्यं हेमाद्रिदृष्टताग्निपुराणवचनेन तयो-
 रप्यधिकारावगमात् यथा 'गृहस्थो ब्रह्मचारी च आहिताग्नि-
 स्तथैव च । एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि' ।
 सभर्तृकायास्तु व्रतोपवासादिः पृथङ्निषिद्धो मनुना यथा
 'नास्ति स्त्रीणां पृथक्यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषणम् । पतिं
 श्रुश्रूयते यत्तु तेन स्वर्गं महीयते । विष्णुनापि 'भर्तुः समान-
 व्रतचारित्वमुक्तं समानव्रतचारित्वं भर्तृव्रताचरणे तदानु-
 कूल्यकारित्वम् । यत्र तु सावित्रीव्रतादौ विशेषविधिस्तत्र
 भर्तृनुज्ञया पृथगपि । यथा शङ्खः । 'कामं भर्तृनुज्ञया
 व्रतोपवासनियमेज्यादीनामभ्यासः' । स्त्रीधर्म इति । यत्तु
 'पत्न्यौ जीवति या नारी उपोष्य व्रतमाचरेत् । आयुः संहरते
 पत्युः सा नारी नरकं व्रजेत्' इति विष्णूक्तं तदननुज्ञातविष-
 यम् । कात्यायनः 'विधवा या भवेन्नारी भुञ्जीतैकादशी-
 दिने । तस्यास्तु सुकृतं नश्येत् भ्रूणहत्या दिने दिने' ।
 जीमूतवाहनः । 'एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि ।
 वनस्थयतिधर्मीऽयं शुक्लामेव सदा गृही' इति गोभिलवचनात्
 गृहिणः शुक्लैकादश्यामेवाधिकारः । न च गृहीतरपरत्वे
 कृष्णैकादश्याः कथं 'दशम्यां नियताहारो मांसमैथुनवर्जितः ।
 एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि' इति विष्णुधर्मीत्तर-
 वचने उभयपक्षीयदशम्यां मांसमैथुनवर्जनमिति वाच्यं वान-
 प्रस्थस्यापि ऋतो मैथुनसम्भवात् अत एव पुराणे ऋषिकुमाराः
 श्रूयन्ते 'पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य वनं गच्छेत् सहैव वा' । इति
 मनुवचनाच्च । तस्य मांसभोजनमप्याह कात्यायनः । 'अथ
 वानप्रस्थदेविध्यं पचमानका अपचमानकाश्च इत्युपक्रम्य
 क्रियद्दूरे स्वतो वसितस्याममांसं व्याघ्रवृकश्येन हतमित्येव-

एकादशीतत्त्वम् ।

३७

मादिभिरन्यैर्वा हतमानीय अपयित्वा सायंप्रातरग्निहोत्रं कृत्वा अथत्यतिथिप्रतिभ्यश्च दत्त्वा अथेतरवच्छेषभक्ष्य इति । मधुमांसवर्जनन्तु वनस्थानाममांसवृत्तीनामित्यादि । तस्मात् कथं दशम्यां नियताहार इत्यादिवचनादपुत्रस्य गृहिणोऽप्युभयैकादश्युपवासव्रतमिति । तथा 'इन्दुक्षयेऽकंसंक्रान्त्यामेकादश्यां सितेतरि । उपवासं न कुर्वीत पुत्रबन्धुधनक्षयात्' इति वायुपुराणवचने बन्धुपदश्रवणाच्च । न हि बन्धुशून्यः कश्चिद्गृही पित्रभ्रात्रादिषु बन्धुपददर्शनात् । बन्धुपदस्थाने दारिति क्वचित् पाठः । तत्रापि तथैवेति । यत्तु न क्षुर्यात् पुत्रवान् गृहीत्यत्र पुत्रवानिति पदं तत्पुत्रवतामपि वानप्रस्थादीनामपि निषेधार्थमित्याह । हेमाद्रिरपि 'शुक्लमेव सदा गृही' इति वचनपर्यालोचनया सकलकृष्णैकादशीषु उपवासाभावप्राप्ती 'शयनीबोधनीमध्ये या कृष्णैकादशी भवेत् सेवापांथ्या गृहस्थेन नान्या कृष्णा कदाचन' इति ब्रह्मवैवर्त्तवचने शयनबोधनमध्यवर्त्तिकृष्णैकादशीषु उपवासविधानात् तासु एव गृहिणोऽधिकारः नान्यत्र प्राप्त्यभावात् सामान्यविशेषयोर्विकल्पासम्भवात् पर्युदास एव तेन शयनबोधनमध्यवर्त्तिकृष्णैकादशीष्वपि गृहस्थस्याधिकारमित्याह । अत्रोच्यते । 'गृहस्थो ब्रह्मचारी च आहिताग्निस्तद्वै च । एकादश्यां न भुञ्जीत पचयोरुभयोरपि' इति हलायुधहेमाद्रिधृताग्निपुराणवचने गृहस्थमात्रस्य कृष्णैकादश्युपवासप्राप्ती शुक्लमेव सदा गृहीति पुत्रवद्गृहिविषयम् । तस्यैव कृष्णायां निषेध श्रुतेः । तथाच उपवासमधिकृत्य ब्रह्मपुराणम् । 'एकादशीषु कृष्णासु रविसंक्रमणे यथा । चन्द्रसूर्योपरागे च न कुर्यात् पुत्रवान् गृही' इति । न च बन्धुमत्त्ववत् पुत्रवत्त्वमपि अप्रयोजकम् । बन्धुपदं दोषकथनानु-

३८

एकादशीतत्त्वम् ।

वादमात्रं न तु कर्तृविशेषणार्थं न कुर्यात् पुत्रवान् गृहीति विधिवाक्ये पुत्रवानिति तु कर्तृविशेषणमिति विशेषः । अतएव भीमांसायाम् । आम्नायस्य क्रियार्थत्वादानर्थक्य-मतदर्शानामिति सूत्रेण आम्नायस्य वेदस्य क्रियार्थत्वात् कार्यार्थत्वात् अतदर्शानां कार्यप्रतिपादकानामानर्थक्यम-ग्रामाख्यमिति पूर्वपक्षयित्वा सिद्धान्तसूत्राभ्यां विधिना तु एकवाक्यत्वात् स्तुत्यर्थत्वेन विधीनां स्मरिति तद्भूतार्थानाञ्च क्रियार्थत्वेन समाम्नायादित्येताभ्यां कचिद्विधिशक्तिरवावसी-दन्ती स्तुत्यादिभिरुक्तभ्यते इति न्यायात् । कचिद्भूतार्थानां सिद्धान्तार्थानां क्रियार्थत्वेन सहैकवाक्यत्वाच्च ग्रामाख्यमप्युक्तम् । न कुर्यात् पुत्रवान् गृहीति निषेधविधौ पुत्रवत्त्वेनैवाधि-कारित्वम् । अत्रैव पुत्रवन्पुत्रनक्षयानुवादः अतः पुत्रवत एव गृहस्थस्य कृष्णायामनधिकारः । अत्रैव शयनबोधनमध्ये प्रतिप्रसवः । जोमूतवाहनश्च । 'यदीच्छेद्विष्णुना वासं पुत्र-सम्पदमात्मनः । एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि' । इति गृहिणो न निषिद्धं काम्यत्वात् । अत्र पुत्रार्थिनः सकृद्विधानम् । विष्णुमहवामार्थिनस्तु यावज्जीवाचरणम् । काम्ये रथ्यादिदोषो नास्ति नित्यं स इत्याह । हेमाद्रिरपि । केचित्तु । वैष्णवस्य गृहिणः पुत्रिणो रुक्माङ्गदादेः कृष्णेका-दश्युपवासश्रवणात् सर्वपासुभयेकादश्यां नित्यव्रतोपवासे-ऽधिकारः । कृष्णानिषेधस्तु गृहिविषयः काम्य एवेत्याहुः । तत्र 'पुत्रवाञ्छैव भार्यावान् धर्मयुक्तस्तथैव च । उभयोः पक्षयोः काम्यं कुर्याच्च वैष्णवं व्रतम्' इति वचनेन काम्य एवाधिकारो न नित्य इत्याह । वस्तुतस्तु वैष्णवानां सपुत्राणां गृहस्थानामपि सर्वाः कृष्णा नित्या हलायुधहेमाद्रिद्विततत्त्व-सागरवचनात् । तदुच्यते । 'यथा शक्ता तथा कृष्णा यथा

एकादशीतत्त्वम् ।

३८

कृष्णा तथेतरा । तुल्ये ते मन्यते यस्तु स वैष्णव उच्यते' काल-
 माधवीये नारदः । 'नित्यं भक्तिसमायुक्तैर्नरैर्विष्णुपरायणैः ।
 पक्षे पक्षे च कर्त्तव्यमेकादश्यामुपोषणम्' । अत्र विष्णुपरा-
 यणानां पक्षे पक्षे चेति वीक्षया यावत् पक्षैकादश्युपवासस्य
 नित्यताप्रतीतिः । श्रीपतिव्यवहारनिर्णये । 'शुक्ले वा यदि
 वा कृष्णे विष्णुपूजनतत्परः । एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयो-
 रुभयोरपि' इति वचनाच्च । नित्यं भक्तिसमायुक्तैरित्यन्तरम् ।
 'मपुत्रश्च सभार्यश्च सजनैर्भक्तिसंयुतैः । एकादश्यामुपवसेत्
 पक्षयोरुभयोरपि । ब्रह्महा च सुरापश्च कृतघ्नो गुरुतल्पगः ।
 विवेचयति यो मोहादेकादश्यौ सितेतरौ । गृहस्थो ब्रह्मचारी
 च आहिताग्निर्यतिस्तथा । एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयो-
 रुभयोरपि' । इत्येतैर्हलायुधेन तथा व्यवस्थापितत्वात् ।
 वैष्णवानां तथा व्यवहाराच्च । मुमुक्षुत्वेन सुतरामेव । तथा
 भविष्ये 'शुक्लागृहस्थैः कर्त्तव्या भोगमन्तानवर्द्धिनो । मुमु-
 क्षुभिस्तथा कृष्णा तेन तेनोपदर्शिता' । वाराहेऽपि । यथा
 शुक्ला तथा कृष्णा उपोष्या च प्रयत्नतः । शुक्ला भक्तिप्रदा
 नित्यं कृष्णा मुक्तिं प्रयच्छति' । द्विजन्मनो विशेषतोऽपि
 गोविन्दमानसोक्तासक्त्यमहार्णवयोर्भविष्यपुराणम् । 'उभयोः
 पक्षयो राजन्नेकादश्यां द्विजन्मवान् । योभुङ्क्ते नीरुजः
 सोऽपि प्रेत्य चाण्डालतां व्रजेत्' । एतद्वचनं भविष्यपुराणीय-
 मिति कृत्यकल्पलता । सोऽपौत्यत्र सोऽर्थेति विशेषः । अत्र
 कश्चित् । 'आदित्येऽहनि संक्रान्त्यामसितैकादशीदिने । व्यती-
 पाते कृते श्राद्धे पुत्री नोपवसेद्गृह्यौ' इति ब्रह्मपुराणवचना-
 देकादश्यां रविवारादावुपवासनिषेधमाह । 'उपवासनिषेधे
 तु किञ्चिद्भयं प्रकल्पयेत् । उपवासो न दुष्येत उपवासफलं
 लभेत्' इति वराहपुराणादनोदनादिकमप्याह । तत्र विष्णु-

४०

एकादशीतत्त्वम् ।

धर्मोत्तरे । 'एकादश्यां यदा राम आदित्यस्य दिनं भवेत् । उपोष्या सा महापुण्या पुत्रपौत्रविवर्द्धिनी । भृगुभानुदिनोपेता सूर्यसंक्रान्तिसंयुता । एकादशी सदोपोष्या पुत्रपौत्रविवर्द्धिनी' । इत्यादिवचनेषु एकादश्यां रविवारादौ प्रत्युत आनुषङ्गिकफलश्रुतेः । न च नित्ये निषेधः काम्ये फलमिति जौमूतवाहनोक्तं युक्तम् इति वाच्यं सदा पदश्रुतेः । कामित्वाकामित्वरूपविशेषाभावात् किन्तु संक्रान्त्यादिषु उपवासनिषेधस्तु तत्तन्निमित्तोपवासपरः । 'तन्निमित्तोपवासस्य निषेधोऽयमुदाहृतः । नानुसङ्गकतो ग्राह्यो यतो नित्यमुपोषणम्' इति जैमिनिस्मृतेः । संक्रान्त्यादिनिमित्तकोपवासः संवर्त्तोक्तः । 'अमावास्या द्वादशी च संक्रान्तिश्च विशेषतः । एताः प्रशस्तास्तिथयो भानुवारस्तथैव च । अत्र स्नानं जपो होमो देवतानाञ्च पूजनम् । उपवासस्तथादानमेकैकं पावनं स्मृतम्' । तथा 'उपवासश्च ये कुर्युरादित्यस्य दिने तथा । जपन्ति च महाश्वेतां ते लभन्ते यथेष्टितम्' । महाश्वेतामन्त्रस्वागमे । 'हामित्युक्त्वा ततो ह्रीन्तु सकारश्च विसर्गवान् । महाश्वेताख्यमन्त्रोऽयं भानोस्त्र्यक्षर ईरितः' । संवत्सरप्रदीपे । 'सप्तवारानुपोष्यैव सप्तधा संयतेन्द्रियः । सप्तजन्मकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति' । कृते आह्वे इति काम्ये । नित्ये तु वराहपुराणविष्णुधर्मोत्तरकात्यायनाः । 'उपवासो यदा नित्यः आह्वं नैमित्तिकं भवेत् । उपवासं तदा कुर्यादाघ्राय पितृसेवितम्' । यत्तु 'रविवारेऽर्कसंक्रान्त्यामेकादश्यां सितेतरि । पारणञ्चोपवासश्च न कुर्यात् पुत्रवान् गृही' इति पारणनिषेधो रविवारसंक्रान्तिप्राप्तोपवासनिषेधवत् रविवारसंक्रान्तिमात्रप्राप्तपारणपरः । तयोरेव पारणन्तु प्रागुक्तशनिवारोपवासानन्तरं रविवारे । 'नित्यं द्वयोरयनयो-

एकादशीतत्त्वम् ।

४२

नित्यं' विमुक्तोद्भवोः । चन्द्रार्कयोर्ग्रहणयोर्व्यतीपातेषु पर्वेषु ।
अहोरात्रोषितः स्नानं दानं होमं तथा जपम् । यः करोति
प्रसन्नात्मा तस्मादप्यक्षयश्च तत्' । इति ब्रह्मपुराणोक्तपूर्व-
दिनोपवासानन्तरं संक्रान्त्यां प्राप्तमिति ।

अथ पूर्णतिथिलक्षणम् । स्कन्दपुराणे । 'प्रतिपत्त्यभृतयः
सर्वा उदयादोदयाद्रवेः । संपूर्णा इति विख्याता हरिवासर-
वर्जिताः' । हरिवासर एकादशी । अतएव सौरधर्मे ।
'आदित्योदयवेलायाः प्राद्युहर्त्तदयान्विता । सैकादशीति
संपूर्णा विद्यास्या परिकीर्त्तिता' । अत्र तिथेरुदयानन्तराव-
स्थितावपि यदुदयात् प्राक् संपूर्णत्वकीर्त्तनं तदुदयानन्तरं
तत्तिथेः सत्त्वेऽपि अशुद्धत्वेन कर्मानर्हत्वादसत्त्वख्यापनाय ।
तथाच कालमाधवौये नारदौयम् 'आदित्योदयवेलाया
आरभ्य षष्टिनाडिका । तिथिस्तु सा हि शुद्धा स्यात् सार्व-
तिथ्या ह्ययं विधिः' । सूर्यसिद्धान्तेऽपि । 'सर्वा ह्येतस्य
तिथय उदयादोदयस्थिता । शुद्धा इति विनिश्चेयाः षष्टि-
र्नाड्यो हि वै तिथिः' । एतस्य रवेः । कालविवेके । षष्टि-
दण्डात्मिकायाश्च तिथेर्निष्क्रमणे परे । अकर्मण्यं तिथिमलं
विद्यादेकादशीं विना' ।

अथ पूर्णैकादश्युपवासः । प्रचेताः । 'पूर्णैकादशी
त्याज्या वर्द्धते हितयं यदि । द्वादश्यां पारणालामे पूर्णैव परि-
गृह्यते' । हितयमेकादशीद्वादशौ । भृगुः । 'संपूर्णैकादशी
यत्र प्रभाते पुनरेव सा । अत्रोपोष्या द्वितीया तु परतो
द्वादशी यदि' । विष्णुधर्मोत्तरे बृहद्विश्वसंहितायाश्च ।
'संपूर्णैकादशी यत्र प्रभाते पुनरेव सा । लुप्यते द्वादशी
तस्मिन् उपवासः कथं भवेत् । उपोष्ये द्वे तिथौ तत्र विष्णु-
प्रीणनतत्परैः' । एवमेव गारुडे । मध्याह्नमेवम् । 'त्रयोदशी

३२

एकादशीतत्त्वम् ।

उपःकाले उपोष्या तत्र का भवेत्' इति । अत्र द्वैतनिर्णयः ।
 एकादशी द्वादश्योरुभयत्र सर्वेषामुपवासविधानं तत्तदङ्गसुक-
 श्रद्वाजडविषयम् । एकेनैवोपवासेन फलसिद्धावपरर्वैयर्थ्या-
 दिति । तत्र एकेनैवोपवासेनेत्यादिस्वीकृतहेतोरैकैकपुरुषस्य
 उभयत्राकाङ्क्षाविरहाद्युक्तो विकल्पः तथाच भविष्ये । 'स्मृति-
 शास्त्रे विकल्पस्तु आकाङ्क्षापूरणे सति' । एतेन साकाङ्क्षत्व
 एव स्मृतीनां परस्परान्वयः सूचितः तत्र नेच्छाविकल्पोऽष्ट-
 दोषथासात् तथाच प्रमाणत्वाप्रमाणत्वपरित्यागप्रकल्पनात् ।
 तदुज्जीवनहानां प्रत्येभ्यामष्टदोषता ब्रौहिभिर्यजेत यवैर्यजेत
 इति श्रूयते । तत्र ब्रौहिप्रयोगे प्रतीतयवप्रमास्यपरित्यागः
 अप्रतीतयवप्रामास्यकल्पनम् इदं तु पूर्वस्मात् पृथक् अन्यथा-
 समुच्चयेऽपि यागसिद्धिः स्यात् । अतएव विकल्पेनोभयः
 शास्त्रार्थः इत्युक्तम् । तथा प्रयोगान्तरे यवे उपादीयमाने
 परित्यक्तयवप्रामास्योज्जीवनं स्वीकृतयवप्रामास्यहानिरिति
 चत्वारो दोषाः । एवं ब्रौह्मावपि चत्वारः । इत्यष्टौ दोषा
 इच्छाविकल्पे । तथाचोक्तम् । 'एवमिष्टोऽष्टदोषोऽपि यद्-
 ब्रौह्मियववाक्ययोः । विकल्प आश्रितस्तत्र गतिरन्या न
 विद्यते' । इति । ननु पुरोडाशाय ब्रौह्मियवौ विहितौ तर्ह्य-
 ण्येयादिवत् समुच्चयरूपा गतिरस्त्विति चेन्न । प्रकृतक्रतु-
 साधनीभूतपुरोडाशद्रव्यप्रकृतितया हि परस्परानपेक्षौ ब्रौहि-
 यवौ विहितौ शक्नुतश्चैतौ प्रत्येकं पुरोडाशं सम्पादयितुम् ।
 तत्र यदि मिश्राभ्यां पुरोडाशः सम्पाद्येत तदा परस्परानपेक्षे
 ब्रौह्मियवविधातनी उभे शास्त्रे बाध्येतामिति । ननु माभू-
 द्वाक्यद्वयसामर्थ्यात् समुच्चयः । अङ्गसहितप्रधानानुष्ठापेक्ष-
 प्रयोगविधिब्रौह्मियवौ समुच्चेतुमर्हतीति चेन्न । स हि यथा-
 भिहितान्यङ्गानि समीक्ष्य प्रवर्त्तमानो न एतानि अन्यथयति

एकादशीतत्त्वम् ।

४३

मिश्रणे चान्यथात्वं तेषामिति । ननु मामिश्रेतां ब्रौह्मिवो
 उभयविध्यनुरोधादेकस्मिन्नेव प्रयोगे ब्रौहिभिरेकं वारं यवै-
 रप्यपरवारमिच्यतामिति चेन्न । अङ्गानुरोधेनाश्रुतप्रधाना-
 भ्यासस्यायुक्तत्वात् एवञ्च न केवलं ब्रौह्मिवसमुच्चये प्रमाणा-
 भावः किन्तु प्रमाणविरोधोऽपि तथाहि पुरोडाशविधाना एव
 ओषधिद्रव्ये यस्मिन् कस्मिंश्चित् प्राप्ते ब्रौह्मयोऽपि पक्षे प्राप्ताः
 तत्प्राप्तांशे प्रापणार्थानिरपेक्षब्रौह्मश्रुतिर्ब्रौहिभिरेवेति निय-
 मनं गमयेत् । एवञ्च तथाच तत्र यवसमुच्चये निरपेक्षब्रौहि-
 श्रुतिबाधः स्यात् । एवं यवश्रुतेरपि नियमार्थत्वाद्ब्रौह्मसमुच्चये
 तद्बाधः स्यादिति । अतएवोक्तं गतिरन्या न विद्यते । एकार्थ-
 तया विविधं कल्प्यत इति विकल्पः । तस्मादष्टदोषभिर्या
 उपोष्ये हे त्रयो इत्यत्र न इच्छाविकल्पः । किन्तु व्यवस्थित-
 विकल्पः । अतएव हैतनिणये स्कन्दपुराणे । ‘सम्पूर्णैका-
 दशी यत्र प्रभाते पुनरेव सा । उत्तरान्तु यतिः कुर्यात्
 पूर्वामुपवसेद्गृही’ । कूर्मपुराणेऽपि । ‘एकादशीप्रवृद्धा
 चेच्छुक्ले कृष्णे विशेषतः । तत्रोत्तरां यतिः कुर्यात् पूर्वामुप-
 वसेद्गृही’ । एकादश्येव प्रकर्षेण वृद्धा परदिने निर्गता न
 दशमी नापि द्वादशी चेत्यर्थः । ‘पुनः प्रभातसमये घटिकैका-
 यदा भवेत् । तत्रोपवासो विहितो वनस्थस्य यतस्तथा ।
 विधवायाश्च तत्रैव परतो द्वादशी न चेत्’ । एतेन पारणदिने
 द्वादशीलाभे सर्व एव पूर्णां त्यक्त्वा खण्डामुपवसेत् इति ।
 तदलाभे गृही पूर्वामपरस्तूत्तरां विधवापीति लभ्यते ।

अथ त्रिस्थैकादशी । यदा पूर्वदिने दशमी परदिने
 चैकादशी स्वल्पा ततो द्वादशीरात्रिशेषे त्रयोदशी तदा सैव
 सर्वैरुपोष्या । ‘एकादशी द्वादशी च रात्रिशेषे त्रयोदशी ।
 अत्र क्रतुशतं पुण्यं त्रयोदश्यान्तु पारणम्’ । इति हलायुधः

४४

एकादशीतत्त्वम् ।

धृतवचनात् । हेमाद्रिस्तु परिशेषखण्डे स्कान्दम् 'एकादशी कला यत्र द्वादशी च क्षयङ्गता । नक्तं तत्र प्रकुर्वीत नोपवासो गृह्णाश्रमे' । अत्र चोपवासविधायकसामान्यशास्त्रस्य नक्तं विधायकविशेषशास्त्रेण बाधः । एकादशी कलाप्येका द्वादशी यत्र लुप्यते । तत्रोपवासं कुर्वीत निष्कामो विष्णुतत्परः' इत्याह । परवचनपर्यालोचनया नक्तं विधानं कामिनः काम्यव्रतविषयम् । निष्कामस्य नित्योपवासार्थिनो विष्णुपरायणस्य गृहस्थस्याप्युपवास इति तत्त्वम् । अतएव नित्यं भक्तिसमायुक्तैरित्यनेन पक्षे पक्षे नित्यमुपोषणमित्युक्तम् । अतएवात्र द्वादशीहानियुक्ता विद्वाधिकेति विद्वायाः सप्तमे प्रकारे पूर्वोक्तरूपे सप्तम्यां तु व्यवस्थितिरित्यनेन स्ववाक्येन विश्वरूपेणाप्येषैव व्यवस्थाक्ता । न चात्र 'निष्कामस्तु गृह्यो कुर्यात् उत्तरैकादशीं तथा । सकामस्तु तदा पूर्वां कुर्याद्द्वौधायनो मुनिः' । इति विष्णुरहस्यवाक्यात् सकामेन दशमौ-विद्वा कार्या निष्कामेन द्वादशीयुक्तैकादशीति वाचस्पति-मिश्रोक्ता व्यवस्था युक्ता । पूर्वापदार्शतानक्तं बोधकवक्ष्यमाण-दशमौविद्वा नित्यावचननिरोधात् । विष्णुरहस्यानार्थत्वस्य दानसागरे अनिरुद्धभट्टेनाभिहितत्वाच्च । यथा लोकप्रसिद्ध-मेतद्विष्णुरहस्यं शिवरहस्यञ्च । द्वयमिह न परिगृहीतं संग्रहरूपञ्च यत्नतोऽवधार्यति । यत्तु शिवरहस्यमिति कृत्वा तिथिविवेकेऽभिहितं तन्मूलनवचनस्वव्याख्यानसंवादाय । अत्रापि विष्णुरहस्यं वक्ष्यमाणशुक्लपक्षौयारुणोदयवेधे वैष्णवा-वैष्णवगृह्णिविधिसंवादायेति । समयप्रदीपोऽपि यत्र पूर्व-दिने दशमौविद्वा परदिने द्वादशीमिश्रा दिनान्तरे च द्वादशी न वर्द्धते तदा द्वादशीमिश्रैवोपोष्या प्रधानकालानु-रोधात् । पारणादौ तु द्वादशीबाध एव तन्मूलकमेव गौडीय-

एकादशीतत्त्वम् ।

४५

वचनं 'द्वादशैकादशीमित्रा परतोऽपि न वर्धते । गृहिभिर्यतिभिश्चैव सैवोपोष्या सदा तिथिः' । एतद्विस्तृप्तिं त्रिस्तृप्तिं च सम्भवत्यविशेषात् ।

अथ दशमीविद्देशिकादशी । सा च द्वेधा । पूर्वाह्ने दशम्या उत्तराह्ने द्वादश्या च युता दशम्यनिर्मुक्ता चेति तत्रोभयीं पूर्वत्र दशमीयुतामनुपोष्य द्वादशीयुतामैकादशीं उत्तरत्र शुद्धां द्वादशीमुपवसेत् । 'एकादशीमुपवसेद्द्वादशीमथवा पुनः । विमित्रां वापि कुर्वीत न दशम्यायुतां क्वचित्' इति वचनाद्वक्ष्यमाणवचनजाताश्च । उत्तरपक्षे विशेषोऽपि वक्ष्यते । यत्तु यानि दशमीविद्देशा निन्दाबोधकवचनजातानि तानि उभयतो वेधे द्रष्टव्यानि । दशमीमात्रवेधे तु सैवोपोष्या । 'एकादशी न लभ्येत सकला द्वादशी भवेत् । उपोष्या दशमीविद्देशा ऋषिरुहालकोऽब्रवीत्' इति ऋथ्यशृङ्गस्मृतेः । ज्ञेये पूर्वान्तु कारयेदिति विश्वरूपनिबन्धाच्च । न द्वादश्युपवासः प्रमाणाभावात् । 'एकादशीमुपवसेद्द्वादशीमथवा पुनः' । इत्यस्य भोजराजाद्यलिखितत्वेनामूलकत्वादिति वर्धमानोपाध्यायवाचस्पतिमित्रमते तन्न । तदुपजोष्यहरिनाथोपाध्यायेन महाजनपरिगृहीतत्वेन तद्वचनस्याभिधानात् । न हि भोजराजाद्यलिखितमेवाप्रमाणं रामायणादेस्तथात्वापत्तेः । न हि दशमीविद्देशेति वचनं भोजराजलिखितम् । तस्मान्नानादेशीयसंग्रहकारलिखितवचनसंवादादेव प्रामाण्यपरिग्रहः । इति उपोष्या दशमीविद्देशस्य विषय उदयपूर्ववेधो वक्ष्यते न वानानासंग्रहधृतनानावचनान्यनादृत्य संग्रहकर्तुर्विश्वरूपस्य वाक्यादयस्यायुक्ता । तथाच समयप्रदीपे श्रीदत्तोपाध्यायाः यदि तु 'एकादशीमुपवसेद्द्वादशीमथवा पुनः । विमित्रां वा प्रकुर्वीत न दशम्या युतां क्वचित्' इति गौडीयवचनं प्रमाणं

४६

एकादशीतत्त्वम् ।

तदा अनेनेव द्वैधे एकादशीकार्यं द्वादशीविधेर्युक्त एव
द्वादश्युपवासः । न चेदं व्रतान्तरमेव एकादशीसंदंशपाठात् ।
अथवेत्यनेन पूर्वापेक्षितविधेश्च । ‘पक्षहानौ स्थिते सोमे
लङ्घयेद्दशमीयुतां’ इति वाच्यम् । उदयपूर्वकालीनदशमी-
योगविषयम् । वचनान्तरबलादिति प्रपञ्चितं जितामित्रा-
दिभिरित्याहुः । तथाच कालविवेककृत्यमहार्णवयोर्भविष्य-
पुराणम् । ‘एकादशीं दशायुक्तां वर्द्धमाने विवर्द्धयेत् ।
पक्षहानौ स्थिते सोमे लङ्घयेद्दशमीयुताम्’ इति । वर्द्धमाने
सोमे शुक्लपक्षे । पक्षहानौ स्थिते सोमे कृष्णपक्षे । लङ्घयेत्
उपवसेत् । ‘पक्षमार्गस्थिते सोमे कुर्वीत दशमीयुतां’ इति
कालमाधवीयपाठे व्यक्त एवार्थः । केचित्तु । ‘विज्ञाप्येका-
दशीं ग्राह्या परतो द्वादशी न चेत्’ इति ‘मुहूर्त्तं द्वादशी न
स्यात् त्रयोदश्यां यदा मुने । उपोष्या दशमीविज्ञा सर्वैरेका-
दशी तदा’ इति । ‘त्रयोदश्यां यदा न स्यात् द्वादशीघटिका-
द्वयम् । दशम्यैकादशी विज्ञा सैवोपोष्या सदा तिथिः’ इति
मत्स्यकूर्मनारदीयवचनैः एवम्भूता दशमीविज्ञैवोपोष्या त्रयो-
दश्यां द्वादशीनिर्गमे तु मुमुक्षुभिर्द्वादश्युपोष्या सकामैस्तु
अत्रापि दशमीविज्ञैव । ‘शुद्धैव द्वादशी राजद्रुपोष्या मोक्ष-
काङ्क्षिभिः’ । तथा ‘निष्कामस्तु गृही कुर्यादुत्तरैकादशीं
सदा । सकामस्तु सदा पूर्वामिति बोधायनोऽब्रवीत्’
इति विष्णुरहस्यवचनादिति वदन्ति । अत्र विज्ञाप्येका-
दशीत्यादिवचनानां नानादेशीयसंग्रहकारधृतनानावचनतत्त-
द्वाख्यानात् अनुपदं विषयः स्फुटीभवति । अनार्घविष्णु-
रहस्यवाक्यमपि उत्तरैकादशीमित्यभिधानान्नोक्तविषयं किन्तु
वक्ष्यमाणारुणोदयबेधविषयम् । यदपि ‘कुर्यादलाभे संयुक्तां
नालाभेऽपि प्रवेशिनीम् । उपोष्या द्वादशी तत्र त्रयोदश्यान्तु

एकादशीतत्त्वम् ।

४७

पारणम् । उदयात् प्राग्दशम्यान्तु शेषः संयोग इष्यते । उपरिष्ठात् प्रवेशस्तु तस्मात्तां परिवर्जयेत्' इति । अनयोः समूलत्वेऽपि अलाभे त्रयोदश्यां द्वादश्यालाभे । संयुक्तां सूर्योदयात् प्राक् वक्तावलोकनसमये दशम्यायुतां षष्टिदण्डात्मिकामेकादशीं कुर्यादित्यर्थः । 'द्वादश्यां पारणालाभे पूर्णैव परिगृह्यते' इति प्रचेतो वचनैकवाक्यत्वात् लाभे तु संयुक्ता न ग्राह्या अलाभे इति वचनस्वरसात् । पूर्णार्थ्येकादशी त्याज्या इत्यनेनैकश्रुतिमूलकत्वाच्च । नालाभेऽपि प्रवेशिनीमिति द्वादश्यास्त्रयोदश्यामनिर्गमेऽप्येत्यर्थः । यत्र दशमी सूर्योदयात्परतः परदिने चैकादशी द्वादशी रात्रिशेषे त्रयोदशी चेति त्रिष्टया तत्र दशमीविद्वैकादशीनिषेधकमिदम् । अयमाशयः । 'एकादश्यां प्रकुर्वन्ति उपवासं मनोषिणः । उपोषणाय द्वादश्यां विष्णोर्यद्विद्वैकं तथा' इति भविष्यपुराणवचनात् परदिने द्वादश्यां विष्णुपामनार्थत्वमेकादश्युपवासस्यावगतम् । तच्चोक्तविषये दशमीविद्वैकादश्युपवासमन्तरेण न सम्भवति सोऽप्यस्त्वित्याशङ्केत्युक्तमुपोष्या द्वादशी तत्रेति । 'एकादशी द्वादशी च रात्रिशेषे त्रयोदशी । तत्र क्रतुशतं पुण्यं त्रयोदश्यान्तु पारणं' इति वचनात् त्रयोदश्यामिति न तु द्वादश्यां विष्णुपूजां कृत्वा । न च एकादश्याः परदिने द्वादशीसम्बन्धे द्वादश्यागोष्या इत्यसङ्गतम् । एकादशीयुक्तं द्वादश्या अपि द्वादशीत्वाच्चनेरित्याहुः । तदप्यशङ्केयम् । यतो जौनूतवाहनइलागुधप्रभृतिभिस्तद्वचनमभिहितं यथाश्रुतं व्याख्यातञ्च । हेमाद्रिमाधवाचार्यप्रभृतिधृतवचनान्तरसंवादिशिष्टाचारपरिगृहीतञ्च । ततश्च तद्वचनस्यार्थान्तरकल्पनं कल्पनमेव । तथाहि 'एकादशीमुपवसेत् द्वादशीमथवा पुनः । विमिश्रां वापि कुर्वीत न दशम्या युतां क्वचित्' इत्यभिधाय

४८

एकादशीतत्त्वम् ।

कुर्यादलाभ इत्यादिवचनद्वयं कीर्म एवाभिहितम् । तत्र
 प्रकृतत्वाद् दशम्या युतामित्यस्यैवापवादकं विधायकञ्च कुर्या-
 दलाभ इत्यादि । एवञ्च संयुक्तैकादशीकरणविधानादलाभ
 इत्यत्राप्येकादश्या एव परदिनेऽलाभ इति प्रतीयते न
 तु त्रयोदश्यां द्वादश्यामलाभे अनुपस्थितेः । यदुक्तं पूर्ण-
 वेत्येकवाक्यत्वं तदपि न भवदुक्तविषये पूर्णत्वायोगात् ।
 तथाच सौरधर्मे । ‘आदित्योदयवेलाया प्राङ्मुहूर्तद्वया-
 न्विता । सैकादशीति संपूर्णा विद्वान्या परिकीर्त्तिता’
 इत्यनेनैकादशी पूर्णत्वस्य सूर्योदयप्राक्कालीनमुहूर्तद्वया-
 न्वितत्वेन विशिष्टाभिधानात् । स्कान्देऽपि ‘प्रतिपत्प्रभृ-
 तयः सर्वा उदयादोदयाद्वेः । संपूर्णा इति विख्याता हरि-
 वासरवर्जिताः’ । अतस्तदुक्तपूर्णाविषये पूर्वाया विद्वत्वात्
 परैकादश्युपोष्ठा । कुर्यादलाभे संयुक्तामित्यनेन द्वादश्या-
 मेकादश्यलाभे संयुक्तां प्रातरर्कानवलोकनसमयविद्वां कुर्यात्
 अर्थाद्द्वादश्यामेकादशीलाभे तादृशविद्वां न कुर्यादित्यवगते-
 स्तत्र परोपोष्येति गम्यते । एतद्विषये ‘षष्टिदण्डात्मिकायाश्च
 तिथेर्निष्क्रमणे परे । अकर्मण्यं तिथिमलं विद्यादेकादशीं
 विना’ इति सङ्गच्छते । तथा कालमाधवीये गारुडम् ।
 ‘आदित्योदयवेलाया आरभ्य षष्टिनादिकाः । संपूर्णैकादशी
 नाम त्याज्या धर्मफलेषुभिः’ । अत्रापि त्रयोदश्यां द्वादश्य-
 लाभे एव परोपोष्येत्यवधेयं न चेत्तत्र पूर्वामुपोष्य परदिने
 एकादशीं द्वादश्याद्यपादमुत्तार्य पारणं कुर्यादिति ‘विद्वान-
 येकादशी आह्वा परतो द्वादशी न चेत्’ इत्यादि प्रागुक्त-
 वचनेभ्यः । अथैवं विद्वत्पूर्णयोर्व्यवस्थायामविशेष इति चेत्
 ‘द्वादश्यां पारणालाभे पूर्णैव परिगृह्यते’ इत्यविशेषाद्वैष्णवे-
 नापि पूर्णोपोष्ठा । अरुणोदयविद्वानु द्वादशी पारणस्या-

एकादशीतत्त्वम् ।

४८

लाभेऽपि वैष्णवेर्नोपोष्या । किन्तु खण्डिकादश्युपोष्येति विशेषः । ‘दशमीशेषसंयुक्तो यदि स्यादरुणोदयः । नैवोपोष्यं वैष्णवेन तद्दिनैकादशीव्रतम्’ इति गारुडे वैष्णवेत्यभिधानात् । तत्रापि कृष्णपक्षेऽरुणोदयविद्वैवोपोष्या । शुक्लपक्षे तु न तथेति विशेषः । ‘एकादशीं दशायुक्तां वर्द्धमाने विवर्जयेत् । पक्षहानी स्थिते सोमे लङ्घयेद्दशमीयुताम्’ इत्येकवाक्यत्वात् एतच्छुक्लपक्षैकादशीसंवादाय ‘निष्कामस्तु गृही कुर्यादुत्तरैकादशीं सदा । सकामस्तु तदा पूर्वामिति बोधायनोऽब्रवीत्’ इति विष्णुरहस्यवाक्यमिति । अथारुणोदयविद्वोत्तरैकादशी पूर्णोत्तरैकादशी च द्वादश्यास्त्रयोदश्यामनिर्गमे सर्वैरेव कथं नोपोष्यते । ‘एकादशी द्वादशी च परतो द्वादशी न च । तत्र क्रतुशतं पुण्यं त्रयोदश्यान्तु पारणम्’ इति वचनादिति चेन्न । अस्योदयोपरि विद्वैकादशी परदिने विषयसम्भवात् नारुणोदयविद्धा पूर्णविषयकविशेषवचनबाधकत्वमिति । अस्मन्मते तु नालाभेऽपि प्रवेशिनीमित्यनेन अलाभेऽपि परदिने एकादश्यलाभेऽपि सूर्योदयानन्तरबधमात्रनिषेधः । भवतां मते तु परदिने एकादशीलाभ एवेति सङ्कोचः स्यात् । उपोष्या द्वादशीत्यत्र द्वादशीपदस्य एकादशीयुक्तद्वादशीपरत्वे प्रमाणं नास्ति लक्षणा च स्यात् । किन्तु द्वादशीमथवा पुनरित्यस्य प्रवेशिन्यन्तरितकेवलद्वादशीपरत्वप्रदर्शनार्थम् । नालाभेऽपि प्रवेशिनीमिति । तथा च कालविवेके जीमूतवाहनः । ‘एकादशी दशाविद्धा परतोऽपि न वर्द्धते । गृहिभिर्यतिभिश्चैव सैवोपोष्या सदा तिथिः’ इति भविष्यपुराणीयात् । दशा दशमी । तत्र द्वादशीदिने एकादशीकलार्द्धमात्रस्याप्यनिर्गमे दशम्या विद्वैकादशी उपोष्येति प्रचरति शास्त्रार्थः स तु सौरधर्मोत्तरकूर्म-

५०

एकादशीतत्त्वम् ।

पुराणादिविरुद्धः । तथाच सौरधर्मोत्तरे । 'एकादशीमुप-
 वसेत् द्वादशीमथवा पुनः । विमिश्रां वा प्रकुर्वीत न दशम्या-
 युतां क्वचित्' । कौर्म । 'एकादश्यामुपवसेत् द्वादशीमथवा
 पुनः । विमिश्रां वा प्रकुर्वीत न दशम्या युतां क्वचित् ।
 कुर्यादलाभे संयुक्तां नालाभेऽपि प्रवेशिनीम् । उपोष्या
 द्वादशी तत्र त्रयोदश्यान्तु धारणम् । उदयात् प्राग्दशम्यास्तु
 शेषः संयोग इष्यते । उपरिष्ठात् प्रवेशस्तु तस्मात्तां परिवर्ज-
 येत्' । अस्यार्थः । द्वादश्यां कलार्द्धमात्रमप्येकादश्याम-
 निर्गमे यदि दशमी उदयं न स्पृशति तदा संयुक्ता उच्यते
 सैवोपोष्या । अथोदयं स्पृशति तदा सैव प्रवेशिनौपदवाच्या
 तां विहाय द्वादशीमवोपवसेत् । तदिदमुक्तं नालाभेऽपि
 प्रवेशिनीमिति । सौरधर्मोत्तरे सूत उवाच । 'कौटुशस्तु
 भवेद्बेधो योगो विप्रेन्द्र कौटुशः । योगवेधौ समाचक्ष्व याभ्यां
 दुष्टमुपोषणम्' । व्यास उवाच । 'या तिथिः स्पृशते राजन्
 प्रातर्वक्त्रावलोकिनी । स वेध इति विज्ञेयो योगः सूर्योदयौ
 मतः' । सूर्योदयात् प्राक् अन्योन्यमुखावलोकनयोग्यं प्रातः-
 कालं यदि दशमी स्पृशति न तु उदयं स वेध इति परि-
 भाषितम् । यस्य कूर्मपुराणवचने शेषः संयुक्त इत्युक्तम् ।
 यस्य तु उपरिष्ठात् प्रवेशस्त्वित्युक्तम् । सोऽनेन योगः सूर्यो-
 दयीमत इत्युक्तम् । परिभाषितत्वादेव अस्य परस्परविरोधो न
 वाच्यः । तेन सूर्योदयकाले दशमीस्पृष्टैकादशी न कदाचित्
 उपोष्या किन्तु एकादशी निःसरतु न निःसरतु वा द्वादश्येवो-
 पोष्या । यदा तु वक्त्रावलोकनमात्रं स्पृशति दशमी नोदयम् ।
 परदिने चैकादशी न निःसरति तदा एकादशीं वेधवतीमुप-
 वसेत् । एकादशी दशायुक्ता इत्यादि दशमीयुक्तामिति
 दशम्याहीत्यादिकमप्यस्मिन् विषये बोद्धव्यमित्याह स स्मृति-

एकादशीतत्त्वम् ।

५१

महार्णवे भोजदेवोऽप्येवमेव स वचनमाह एवमेव कालकौमुदी
 तस्मात् पूर्वोक्तमाख्यकौर्मनारदीयवचनानां दिग्भीरुदे समा-
 युक्ते चयेऽहनि तथापरे । उपवासस्तु पूर्वद्युर्नोपवासः परे-
 ऽहनि' इति विष्णुधर्मोत्तरीयस्यापि अरुणोदयविज्ञायामेषा
 व्यवस्था न तु व्यवस्थान्तरम् । जीमूतवाहनादिलिखितकूर्म-
 पुराणसौरधर्मोत्तरविरोधात् एवमन्यान्यपि वचनानि व्याख्ये-
 यानि संवत्सरप्रदीपे हलायुधोऽप्येतन्मतानुमारी सन्निदमुक्त-
 वान् । यथा 'अरुणोदयवेलायां दशमी सङ्गता यदि ।
 उपोष्या द्वादशी शुद्धा त्रयोदश्यान्तु पारणम् । दशमीशेष-
 संयुक्तो यदि स्यादरुणोदयः । वैष्णवेन न कर्तव्यं तद्दिनेका-
 दशीव्रतम्' इत्यादिवचनेषु अरुणशब्द आदित्यवाचको
 बोद्धव्यः । अरुणो भास्करेऽपि स्यादित्यभिधानात् । तस्मा-
 देकादशी त्याज्या दशमीपलमिश्रिता । उपोष्या द्वादशी
 शुद्धा त्रयोदश्यान्तु पारणम्' इति । यत् 'द्वादशद्वादशीर्हन्ति
 त्रयोदश्यान्तु पारणम्' इति तत्परदिने द्वादशीलाभे तां त्यक्त्वा
 पारणे बोध्यम् । हेमाद्रिरपि दशमीविज्ञायामुपवासानुवास-
 विधायकानि वचनानि यथाक्रमं सकाममुमुक्षुविषयकाणि ।
 यथा कौर्म । 'द्विष्टुशैकादशी यत्र तत्र सन्निहितो हरिः ।
 तामिवोपवसेन्मर्त्यः सकामो विष्णुतत्परः' । दशमीं द्वादशीञ्च
 या स्पृशति सैकादशी द्विष्टुक् सुमन्तुसत्यव्रतौ । 'दिनक्षये
 तु शुद्धा च द्वादशी मोक्षकाङ्क्षिभिः । उपोष्या दशमी विज्ञा
 नोपोष्यैकादशी सदा' । पुत्रवद्गृहिमात्रेण दशमीविज्ञा
 नोपोष्या शुद्धा द्वादश्युपोष्या । यथा पितामहः । 'एका-
 दशीदिनक्षये उपवासं करोति यः । तस्य पुत्रा विनश्यन्ति
 मघायां पिण्डदो यथा । दिनक्षये तु संप्राप्ते नोपोष्या दशमी-
 युता । यदौच्छेत् पुत्रपौत्राणामृद्धिं सम्पदमात्मनः । एकाः

५२

एकादशीतत्त्वम् ।

दश्यां यदा वत्स दिनक्षयतिथिर्भवेत् तन्नोपोष्या द्वादशी
 स्यात्त्रयोदश्यान्तु पारणम् । व्यासः । 'दशमीमिश्रिता पूर्वा
 द्वादशी यदि लुप्यते । एकादश्यां महाप्राज्ञ उपवासः कथं
 भवेत् । शुद्धैकादशी राजन्नुपोष्या मोक्षकाङ्क्षिभिः । पार-
 णन्तु त्रयोदश्यां पूजयित्वा जनार्दनम्' । भविष्ये । 'दशमी-
 शेषसंयुक्तो यदि स्यादरुणोदयः । वैष्णवेन न कर्त्तव्यं तद्दिनैका-
 दशीव्रतम्' । ब्रह्मवैवर्त्तः । 'चतस्रो घटिका प्रातररुणोदय
 उच्यते । यतीनां स्नानकालोऽयं गङ्गाभ्यःसदृशः स्मृतः ।
 त्रियामां रजनीं प्राहुस्त्यक्ताद्यन्तचतुष्टयम् । नाडीनां तदुभे
 सन्ध्ये दिवाद्यन्तसंज्ञिते' । तथा 'नन्दा शरीरं देवस्य भद्रा
 ह्यात्माक्षयो मतः । तस्मात् सरोगं त्यक्त्वाङ्गमात्मानमुपवास-
 येत्' । नन्दा एकादशी भद्रा द्वादशी तथा 'वरमेकादशी
 त्याज्या न कार्या दशमी युता' इत्यरुणोदयवेधनिषेध-
 वाक्यम् । यदा द्वादश्यां कियन्मात्राप्येकादशी दृश्यते
 तदा पूर्वा त्याज्या काम्यैकादशीव्रतविषयम् । 'अरुणोदय-
 काले तु दशमी यदि दृश्यते । न तत्रैकादशी त्याज्या धर्म-
 कामार्थदायिनी' इति श्रवणादित्याह । पाश्चात्यनिर्णयामृते
 भविष्योत्तरीयम् । 'अरुणोदयकाले तु दशमी यदि दृश्यते ।
 सा विद्धैकादशी तत्र पापमूलमुपोषणम्' । भविष्यपुराणीय-
 मेतदिति माधवाचार्यः ततश्चारुणोदयवेधे तु भागवतेर्नोप-
 वासः कार्यः । सकालः स्कान्दे उक्तः । यथा 'उदयात् प्राक्
 चतसस्तु नाडिका अरुणोदयः । तत्र स्नानं प्रशस्तं स्यात्तच्चि
 पुण्यतमं स्मृतम्' इति कविकान्तसरस्वती विश्वादर्शे वेध-
 स्तूदये निषिद्धः 'दशम्याः प्रान्तमाटाय यदोदेति दिवाकरः ।
 तेन दुष्टं हरिदिनं तद्दत्तमसुराय हि' इति स्मृतः । अत्र दत्तं
 जम्भासुराय तु इति माधवाचार्यः पठति । कालमाधवीये

एकादशीतत्त्वम् ।

५३

साधवार्योऽपि ब्रह्मवैवर्तः । 'कौटुम्भस्तु भवेद्वेधो योगो विप्रेन्द्र कौटुम्भः । योमवेधो समाचक्ष्य याभ्यां दुष्टमुपोषणम् । चतस्रो घटिका प्रातररुणोदयनिश्चयः । चतुष्टयविभागोऽत्र वेधादीनां क्लिप्तोदितः । अरुणोदयवेधः स्यात् सार्धेन घटिकाद्वयम् । अतिवेधो द्विघटिका प्रभासन्दर्शनाद्वेधः । महावेधोऽपि तत्रैव दृश्यतेऽर्को न दृश्यते । तुरीयस्तत्र विहितो योगः सूर्योदये बुधैः' । तथा 'यातुधानव्रतं योगे महावेधे तु राक्षसम् । जन्मासुरस्यातिवेधे मोहिते वै प्रवेशिनी' इति अनेन तत्तदेकादशीफलं तत्तदसुरः प्राप्नोतीति विशेषः । घटिका दण्डः । 'उदयात् प्राक् चतस्रस्तु नाडिका अरुणोदयः' इति स्कान्दे नारदवचनैकवाक्यत्वात् कण्वः । उदयोपरिविद्धा तु दशम्येकादशी यदि । दानवेभ्यः प्रीणनार्थं दत्तवान् पाकशासनः' । गार्ङ्गे । 'दशमीशेषसंयुक्तो यदि स्यादरुणोदयः । नैवोपोष्य' वैष्णवेन तद्दिनेकादशीव्रतम् । उदयात् प्राग्यदा विप्र मुहूर्त्तद्वयसंयुता । संपूर्णेकादशी ज्ञेया तत्रैवोपवसेद् गृही' । इत्यादिवचनजातात् सूर्योदयानन्तरविद्धा सर्वैरेव नोपोष्या । अरुणोदयविद्धा तु विष्णुवैर्नोपोष्या इत्याह । तेन जीमूतवाहनप्रभृतीनां मते सूर्योदयानन्तरदशमीविद्धैकादशीं परित्यज्य शङ्कां द्वादशीमुपोष्य त्रयोदश्यां पारणमिति वर्तुलार्थः । तथाच कालनिर्णये स्मरति । अतिवेधा महावेधा ये वेधास्तथिषु स्मृताः । सर्वेऽप्यवेधा विज्ञेया वेधः सूर्योदये सत्रि' । एवञ्च सूर्योदयकालौनवेधः सर्वथा त्याज्यः । अरुणोदयवेधे तु प्रतिप्रसवसत्त्वात् क्वचिदग्राह्यत्वमिति । अत्र गौडीयानां विशेषतो देशाचारात् । उदयोपरिविद्धा तु सर्वथा नोपोष्या तथाच मरीचिः । येषु स्थानेषु यच्छौचं धर्माचारश्च ग्राह्यः ।

३५

एकादशीतत्त्वम् ।

तत्र तन्नावमन्येत धर्मस्तत्रैव तादृशः । येषु देशेषु ये देवा
 येषु स्थानेषु ये द्विजाः । येषु स्थानेषु यत्तोयं या तु यत्रैव
 सृष्टिका । सैव तत्र प्रपूज्यास्यात्तेषु कृत्यं विधीयते । अत-
 एव न्यायागमयोर्न निर्णायकता । तत्रायोगिनोऽसर्वज्ञस्य
 धर्मतत्त्वसाक्षात्कारासम्भवात् । शिष्टाचारप्रामाण्याच्च हेमा-
 द्रिप्रबन्धे व्यासः । 'तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्ना नासौ
 मुनिर्यस्य मतं न भिन्नम् । धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां
 महाजनो येन गतः स पन्थाः' । स्कान्दे । 'येषां विश्वे-
 श्वरे विष्णौ शिवे भक्तिर्न विद्यते । न तेषां वचनं ग्राह्यं
 धर्मनिर्णयसिद्धये' । कालमाधवीये 'यस्मिन् देशे यस्मिन्
 काले येषु शिष्टेषु नीरागद्वेषस्य स्वस्य प्रामाण्यातिशयबुद्धि-
 स्तदा तादृशस्याचारस्य मुख्यत्वमिति । एतदभिप्रेत्य गुरोः
 शिष्यानुशासने तैत्तिरीयाः समामनन्ति अथ ते यदि धर्म-
 विचिकित्सावृत्तिचिकित्सा वा स्यात् । ते तत्र ब्राह्मणः सम्यग्-
 दर्शिनो युक्ता आयुक्ता अरुचा धर्मकामाः स्युः यथा ते तत्र
 वर्त्तेरन् तथा तत्र वर्त्तेथा इति । सम्यग्दर्शिनः शास्त्रतत्पराः
 युक्तायुक्तिकुशलाः आयुक्तास्तदर्थानुष्ठाननिरताः अरुचाः
 क्रोधादिवर्जिताः धर्मकामाः जीवन्मुक्तवत् कर्मस्थौदासिन्यम-
 कुर्वाणा इत्यर्थः अतो दशमीविद्वानिन्दाबोधकवचनानि अवि-
 शेषाद्दशम्यनिर्मुक्तायामपि । यथा स्कन्दपुराणम् । दशम्यैका-
 दशी विद्धा गान्धारी तामुपोषिता । तस्याः पुत्रशतं नष्टं
 तस्मात्तां परिवर्जयेत् । तथा 'सुराया विन्दुना स्पृष्टं यथा
 गाङ्गं जलं त्यजेत् । तथा चैकादशीं रम्यां दशम्या दूषितां
 त्यजेत् । ये कारयन्ति कुर्वन्ति दशम्यैकादशी युताम्
 अलोक्य तन्मुखं ब्रह्मन् सूर्यदर्शनसाचरेत् । यैः कृता दशमी
 विद्धा जडवाक्यास्तु मानवैः । ते गता नरकं घोरं युगानामेक-

एकादशीतत्त्वम् ।

५५

विंशतिम्' । ब्रह्मवैवर्तः । 'दशमी शेषसंयुक्तां यः करोति विमूढधीः । एकादशीफलं तस्य नश्येद्वादशवार्षिकम्' ।

तत्र संचेपः पारणदिने द्वादशीलाभे सर्व एव पूर्णां त्यक्त्वा खण्डामुपवसेत् । गृही पूर्वां तदन्यः परां विधवापि । यदा तु पूर्वदिने दशम्या उत्तरदिने द्वादश्यायुतैकादशी तदोत्तरा-
मुपोष्य द्वादश्यां पारणं कुर्यात् परदिने द्वादश्यनिर्गमे त्रयो-
दश्यामपौति यदा तु सूर्योदयानन्तरं दशमीयुतैकादशी
अथच परदिने न निःसरति तदा तां विहाय द्वादशीमुप-
वसेत् । यदा तु सूर्योदयात् प्राक्कालीनदशमीविद्वैकादशी
परदिने न निःसरति तदा तामुपवसेत् । यदा तु तथाविधा
सति परदिनेऽपि निःसरति तत्परदिने च द्वादशी तदा तां
विहाय खण्डामुपोष्य द्वादश्यां पारयेत् । यदा तु उभयदिने
तद्विधैकादशी परदिने च न द्वादशी तदा षष्टिदण्डात्मिकां
विहामुपोष्य परदिने द्वादश्याः प्रथमपादमुत्तार्य पारयेत् ।
वैष्णवस्तु तत्रापि शुक्लपक्षे परामुपोष्य त्रयोदश्यां पारयेदिति ।
सर्वस्यां कृष्णैकादश्यां वैष्णवानां सपुत्राणां गृहस्थानामप्युप-
वासो नित्यः । ब्राह्मणस्य तु विशेषतो नित्यः । वैष्णवेतरेषान्तु
तादृशानां हरिशयनमध्यवर्त्तिनौषु कृष्णैकादशीषु उपवासो
नित्यः । अपुत्रवतां गृहिणान्तु सर्वास्वेव नित्याधिकारः ।
काम्योपवासे तु अविशेषेणैव सर्वेषामधिकारः । नित्योपवासे
तु रविशुक्रादिदोषो नास्ति अष्टाब्दादधिको मर्त्यो ह्यपूर्णा-
शतिवत्सरो नित्याधिकारी विधवायास्तु सर्वास्वेव नित्याधि-
कारः । अत्र मलमासादिदोषो नास्ति । यथा ज्योतिःपरा-
शरः । अनादिदेवतार्चासु कालदोषो न विद्यते । नित्यास्व-
भ्यासयोगेन तथैवैकादशीव्रते' ।

अथ दशमीनियमाः । सूरिसन्तोषे । 'कांशं मांसं

५६

एकादशीतत्त्वम् ।

मसूरश्च चनकं कोरदूषकम् । शाकं मधुपराक्षश्च त्वज्जदुपसन्
 स्त्रियम् । अत्रोपवसन्निति तद्दिने भोजनासम्भवात् सामी-
 प्यात् पूर्वापरदिनयोर्ग्रहणं स्मृतिः । 'शाकं माषं मसूरश्च
 पुनर्भोजनमैशुने । द्युतमत्यम्बुपानश्च दशम्यां वैष्णवस्त्व-
 जेत् । कांस्यं मांसं सुरां क्षौद्रं लोभं वितथभाषणम् । व्याया-
 मश्च व्यवायश्च दिवास्वप्नं तथाञ्जनम् । तिलपिष्टं मसूरश्च
 दशम्यां वर्जयेत् पुमान् । दशम्यामेकभक्तश्च कुर्वीत निय-
 तेन्द्रियः । आचम्य दण्डकाष्ठश्च खादेत् तदनन्तरम् । पूर्वं
 हरिदिनाज्ञोक्ताः सेवध्वं चैकभोजनम् । अवनीपृष्ठशयना-
 स्त्रियाः सङ्गविवर्जिताः । सेवध्वं देवदेवेशं पुराणं पुरुषो-
 त्तमम् । सङ्गज्ञोजनसंयुक्ता द्वादश्याश्च भविष्यथ' अत्रैक-
 भोजनपदम् । 'मुनिभिर्द्विरशनमुक्तं विप्राणां मर्त्यवासिनां
 नित्यम् । अहनि च तमस्त्रिन्यां सार्द्धप्रहरयामान्तः' इति
 छन्दोगपरिशिष्टोक्तभोजनद्वयस्येकमात्राचरणार्थं न तु सङ्गदेव-
 द्रव्यस्य गलाधःकरणं विवृतमेतत् प्रायश्चित्ततत्त्वे । अत्र वैष्णव-
 ग्रहणं तस्यातिशयदोषार्थम् ।

अथैकादशीनियमाः । प्रातरुत्थायैकादश्यां वाङ्मोक्षान्तर-
 शौचं कुर्यात् । तत्प्रकारस्तु । 'उपविष्टो जपन् स्नातः क्षत-
 प्रस्त्वलितादिषु । पूजायां नाम कृष्णस्य सप्तवारान् प्रकीर्तयेत् ।
 पाषण्डिनो विकर्मस्थान्नालपेक्षैव नास्तिकान् । सम्भाष्य तान्
 शुचिपदं चिन्तयेदच्युतं बुधः । इदञ्चोदाहरेत् सम्यक् कृत्वा
 तत्प्रवणं मनः । शरीरमन्तःकरणोपजातं वाङ्मयं विष्णुर्भग-
 वानशेषः । शमं नयत्वञ्च ममेह शर्मयोगादनन्ते हृदि सन्नि-
 विष्टे । अन्तःशुद्धिं वहिः शुद्धिं शुद्धो धर्ममयोऽच्युतः । स
 करोतु ममेतस्मिन् शुचिरेवासि सर्वदा । वाङ्मोक्षोपजातनिरया
 नौद्रांश्च भगवानजः । शमं नयत्वनन्तात्मा विष्णुश्चेतसि

एकादशीतत्त्वम् ।

५७

संस्थितः । एतत् सन्नाथं जप्तव्यं पांषण्डादीनुपोषितैः ।
 उपोषितैर्नियमस्थितैः । एते च मन्त्राः शर्मफलकामना-
 रहितैनापि मुमुक्षुणा जप्तव्याः । अविशेषणविधानात् यथा
 योऽस्मान् हेष्टि यच्च वयं द्विषा इति मन्त्रो द्वेषाभावेऽपि
 स्यादिति निर्णीतम् । तथाहि मन्त्रस्य शर्मसाधनतां प्रकाश-
 समर्थ्यलक्षणलिङ्गेनेतत्साधनकर्मणस्तत्साधनतां सिद्धिर्वक्तव्या ।
 लिङ्गन्तु न तत्र साक्षात् प्रमाणं किन्वेतत् काम इदं कुर्या-
 दिति श्रुत्यनुमापकतयैव तत्र तु इष्टसाधनतापरेण विधि-
 प्रत्ययेनेष्टमेवशर्म एतद्भाव्यमितिपादनात् अनिष्टस्य कुतो
 भाव्यता । यथा स्वर्गादिसाधनस्याप्यग्निहोत्रादेर्मुमुक्षुं प्रति न
 तज्जनकवेति । ततश्च प्रातः सङ्कल्पं कुर्यात् । तद्विधानं वराह-
 पुराणे । ‘गृहीत्वौडम्बरं पात्रं वारिपूर्णमुदङ्मुखः । उपवासन्तु
 गृहीयात् यद्वा वार्य्यैव धारयेत् । एकादश्यां निराहारो भूत्वा
 चेवापरेऽहनि । भोक्ष्येऽहं पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाच्युत ।
 इत्युच्चार्य्य ततो विद्वान् पुष्पाञ्जलिमथार्पयेत्’ इत्युत्तरार्द्धम-
 धिकं विष्णुनोक्तम् । ततस्तत्पात्रस्थजलं किञ्चित् पिबेदाच-
 मनजलपानवन्नात्र दूषणम् । यथा स्कान्दे । ‘रात्रिं नयेत्ततः
 पश्चात् प्रातःस्नायी समाहितः । उपवासन्तु सङ्कल्प्य मन्त्र-
 पूतं जलं पिबेत्’ । मन्त्रस्तु कात्यायनैनोक्तः कालमाधवीर्यै ।
 ‘अष्टाक्षरेण मन्त्रेण त्रिजपेनाभिमन्त्रितम् । उपवासफलं
 प्रेषुः पिबेत् पात्रगतं जलम्’ । अष्टाक्षरेण नारायणमन्त्रेण ।
 ततःप्रार्थयेत् । ‘इदं व्रतं मया देव गृहीतं पुरतस्तव । निर्विघ्नां
 सिद्धिमाप्नोतु त्वत्प्रसादाज्जनार्दन’ । ततो विष्णुपूजनम् । तथाच
 ब्रह्मपुराणम् । ‘एकादश्यामुभे पक्षे निराहारः समाहितः ।
 स्नात्वा सम्यग्विधानेन धीतवासा जितेन्द्रियः । संपूज्य
 विधिवद्विष्णुं अद्वया सुसमाहितः । पुष्पैर्गन्धैस्तथाधूपैर्दीपै-

५८

ऐकादशीतत्त्वम् ।

नैवेद्यकैः परैः । उपचारैर्बहुविधैर्जपहोमप्रदक्षिणैः । स्तोत्रै-
र्नानाविधैर्द्रव्यैर्गीतवाद्यमनोहरैः । दण्डवत्प्रणिपातैश्च जय-
शब्दैस्तथोत्तमैः । संपूज्य विधिवद्गोत्रौ कृत्वा चैव प्रजागरम् ।
कथाद्या गीतिका विष्णोर्गायन् विष्णुपरायणः । याति विष्णोः
परं स्थानं नरो नास्त्यत्र संशयः । उपचारैर्बहुविधैः षट्त्रिंश-
दुपचारादिभिः ।

अथ विष्णुपूजनविधिः । जमदग्निः । 'चिन्मयस्याप्रमेयस्य
निष्कलस्याशरीरिणः । उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणो रूप-
कल्पना' । रूपस्थानां देवतानां पुंस्त्र्यंशादिककल्पना ।
तथाचाधिकारिमाह विष्णुपुराणम् । 'वर्णाश्रमाचारवता पुरु-
षेण परः पुमान् । विष्णुराराध्यते षष्ठ्या नान्यत् तत्तोषकार-
णम्' । मत्स्यपुराणम् । 'आरोग्यं भास्करादिच्छेद्वनमिच्छे-
दुताशनात् । ज्ञानञ्च शङ्करादिच्छेत् मुक्तिमिच्छेज्जना-
र्दनात् । अपि स्यात् सकुलेऽस्माकं सर्वाभावेन यो हरिम् ।
प्रययौ शरणं विष्णुं प्रजेशं मधुसूदनम्' । आङ्गिकचिन्ता-
मणौ । 'आसनाभ्यञ्जने तद्वदुद्धर्तननिरूक्षणे । सम्भार्जनं
सर्पिरादिस्त्रपनावाहने तथा । पादाध्याचमनीयञ्च स्नानीयं
मधुपर्ककौ । पुनराचमनीयञ्च वस्त्रयज्ञोपवीतके । अल-
ङ्कारो गन्धपुष्पधूपदीपौ तथैव च । ताम्बूलादिकनैवेद्यं
पुष्पमाला तथैव च । अनुलेपश्च शय्या च चामरं व्यजनं
तथा । आदर्श दर्शनञ्चैव नमस्कारोऽथ नर्तनम् । गीतवाद्ये
च दानानि स्तुतिहोमप्रदक्षिणम् । दन्तकाष्ठप्रदानञ्च ततो-
देवविसर्जनम् । उपचारा इमे ज्ञेयाः षट्त्रिंशत्सुरपूजने' ।
वाद्यं विशेषयति योगिनीतन्त्रे । 'पूजाकाले सदा विष्णो-
र्दिण्डिमं न प्रवादयेत्' । देवस्य सत्त्वानुत्पादनात् दानपदं
गौणं पूजादक्षिणादितद्धर्मप्राप्त्यर्थम् । षोडशोपचारादीनाह

एकादशीतत्त्वम् ।

५६

प्रपञ्चसारे । 'आसनं स्वागतं पादमर्घ्यमाचमनीयकम् । मधु-
पर्काचमनस्नानवसना भरणानि च । सुगन्धिसुमनोधूपदीप-
नैवेद्यवन्दनम् । प्रयोजयेदर्चनायामुपचारांश्च षोडश । अर्घ्य-
पाद्याचमनकमधुपर्काचमनान्यपि । गन्धादयो निवेद्यान्ता
उपचारा दश क्रमात् । गन्धादयो निवेद्यान्ताः' पूजाः पञ्चोप-
चारिकाः । उपचारैर्यथाशक्ति देवतामन्वहं यजेत्' । ब्रह्म-
पुराणे । 'ओङ्कारादिसमायुक्तं नमस्कारान्तकीर्तितम् । स्वनाम
सर्वसत्त्वानां मन्त्र इत्यभिधीयते । अनेनैव विधानेन गन्धपुष्पे
निवेदयेत्' । गन्धपुष्पमात्रं पञ्चोपचारासम्भवे । मन्त्रनिर्णये ।
'मन्त्रपाशेन देवेशि देवता नोयते ध्रुवम् । साधकस्य विना
कार्यसिद्धिं कृत्वा न गच्छति' । ब्रह्मपुराणम् । 'देवानां
प्रतिमा यत्र तैलाभ्यङ्गक्षमा भवेत् । पलानि तस्यै देयानि
अद्वया पञ्चविंशतिः । अष्टोत्तरशतपलं स्नाने देयञ्च सर्वदा' ।
अत्र 'पञ्चकृष्णलकोमासस्ते सुवर्णस्तु षोडश । पलं सुवर्णाश्च-
त्वारः' इति मनूक्तमष्टरत्तिकाधिकलौकिकमाषकद्वयाधिक-
तोलकत्रयेण पलं भवति । तत्पञ्चविंशत्या अष्टरत्तिकाधिक-
लौकिकमाषद्वयाधिकत्रयोतिशतितोलकानि भवन्ति । एवं
तथाविधाष्टोत्तरपलशतेन लौकिकषष्ट्यधिकशतत्रये तोलकानि
भवन्ति । उद्धर्तननिरुद्धेण आह नरसिंहपुराणम् । 'यव-
गोधूमजैशूर्णैरुद्वर्त्येणैव वारिणा । प्रक्षाल्य देवदेवेशं वारुणं
लोकमाग्नयात् । पादपीठन्तु यो दद्यात् विल्वपत्रैर्निघर्षयेत् ।
उष्णाम्बुना च प्रक्षाल्य सर्वपापैः प्रमुच्यते' । शारदायाम् ।
'गन्धपुष्पाक्षतयवकुशाग्रफलसर्षपैः । सदूर्वैः सर्वदेवानामर्घ्य-
मेतदुदीरितम्' । आहरन्तीत्युपक्रम्य कात्यायनः । 'मधुपर्कं
दधिमधुघृतमपि हितं कांस्ये कांस्येनेति' । अपिहित-
माच्छादितम् । होमसंख्यामाह देवीपुराणे । 'होमो ग्रहादि'

६०

एकादशीतत्त्वम् ।

पूजायां शतमष्टोत्तरं भवेत् । अष्टाविंशतिरष्टौ वा यथाशक्ति विधीयते । द्रव्यमाह कात्यायनः । 'आज्यं द्रव्यमनादेशे ब्रुहोतिषु विधीयते' । नरसिंहपुराणम् । 'दन्तकाष्ठस्य वक्ष्यामि समासेन प्रशस्तताम् । सर्वे कण्टकिनः पुण्याः क्षीरिणश्च यशस्विनः । अष्टाङ्गुलेन मानेन तत्प्रमाणमिहोच्यते' । कालिकापुराणम् । 'यद्दीयते च देवेभ्यो गन्धपुष्पादिकं तथा । अर्घ्यपात्रस्थितैस्तोयैरभिषिच्य तदुत्सृजेत्' । शारदायाम् । 'तत्र तत्र जलं दद्यात् उपचारान्तरान्तरे' । नरसिंहपुराणम् । 'स्नाने वस्त्रे च नैवेद्ये दद्यादाचमनीयकम्' । भविष्यदेवीपुराणयोः । 'शुचिः सुवस्त्रधृक् प्राञ्जो-मौनी ध्यानपरायणः । गतकामभयहन्दोरागमात्सर्यवर्जितः । आत्मानं पूजयित्वा च सुगन्धसितवाससा । सुमुहूर्ते यजेद्देवान् स्वकीयासनसंस्थितान्' । सुमुहूर्ते पूर्वाह्णादिकाले । स्मृतिः । 'मृत्कुम्भात्ताम्रकुम्भैश्च स्नानं दशगुणं स्मृतम् । रूप्यैः शतगुणं प्रोक्तं हेमैः कोटिगुणं स्मृतम् । एवमर्घ्येषु नैवेद्य बलिपूजादिषु क्रमात् । पात्रान्तरविशेषेण फलञ्चैवोत्तरोत्तरम् । विभवे सति यो मोहान्न कुर्यात् विधिविस्तरम् । नैतत् फलमवाप्नोति देवद्रोहः स उच्यते' । भविष्ये । 'वस्त्रङ्गुलविहीनन्तु न पात्रं कारयेत् क्वचित्' । स्मृतिः । 'देवानां दर्शनं पुण्यं दर्शनात् स्पर्शनं वरम् । स्पर्शनादर्चनं श्रेष्ठं घृतस्नानमतः परम् । अष्टकृत्वो मन्त्रजपैः सुप्रसूनैः सुगन्धिभिः । प्राहुर्गङ्गाजलैः स्नानं घृतस्नानसमं बुधाः' । हयश्रीर्षे । 'चित्रस्थं पुण्डरीकाक्षं सविलासं सविभ्रमम् । दृष्ट्वा प्रमुच्यते पापैर्जन्मकोटिसुसञ्चितैः' । तथा । 'अर्चकस्य तपोयोगादर्चनस्यातिशायनात् । आभिरूप्याश्च विम्बानां देवः साद्विध्यमुच्छति' । स्वप्नेऽपि दर्शनं पुण्यवतामेव । तथाच

एकादशीतत्त्वम् ।

६१

ब्रह्मपुराणे इन्द्रद्युम्नं प्रति भगवद्वाक्यम् । ‘महर्शनमपुण्यानां
स्वप्नेऽपि न हि विद्यते । त्वं पुनर्दृढभक्तित्वात् प्रत्यक्षं दृष्ट-
वानसि’ । संवत्सरप्रदीपे । ‘केशवार्चा गृहे यस्य न तिष्ठति
महोपते । तस्यान्नं नैव भोक्तव्यमभक्ष्येण समं स्मृतम्’ ।
अर्चा शालग्रामशिलादिका । नरसिंहपुराणम् । ‘तस्मादेक-
मना भूत्वा यावज्जीवप्रतिज्ञया । पूजनाम्बरसिंहस्य संप्राप्नो-
त्यभिवाञ्छितम्’ । ब्रह्मपुराणम् । ‘ये पूजयन्ति तं देवं शङ्ख-
चक्रगदाधरम् । वाङ्मनःकर्मभिः सम्यक् ते यान्ति परमं
पदम्’ । विद्याकरधृतम् । ‘तर्जनी रूप्यसंयुक्ता हेमयुक्ता
त्वनामिका । सैव युक्ता तु दर्भेण कार्या विप्रेण सर्वदा’ ।
विष्णुः । ‘स्नात्वा सुप्रक्षालितपाणिपादवदनः शुचिर्बद्धशिखः ।
दर्भपाणिराचान्तः प्राङ्मुख उदङ्मुखो वा उपविष्टो ध्यानौ
देवताः पूजयेत्’ । मत्स्यसूक्ते । ‘शस्ताः समूला दर्भाश्च गुच्छेन
चाधिकं फलम्’ । हारीतः । ‘मार्जनार्चनवलिकर्मभोजनानि
दैवेन’ इति । अत्र तीर्थेनेति शेषः । वायुपुराणम् । ‘दानं
प्रतिग्रहो होमो भोजनं वलिरेव च । साङ्गुष्ठेन सदा कार्य-
मसुरेभ्योऽन्यथा भवेत् । एतान्येव च कर्माणि दानानि च
विशेषतः । अन्तर्जानुविशेषेण तद्वदाचमनं नृप’ । साङ्गुष्ठे-
नेति अङ्गुष्ठसहितेन करेणेत्यर्थः । अन्तर्जानु जानुनोर्मध्ये
यथा बाहुर्भवति तथा कार्यमित्यर्थः । अतएव आचमने
गोभिलः । ‘दक्षिणं बाहुं जान्वन्तरक्तत्वेति’ । यमः । इष्टं
निवेदितं यद् यद्वत् जप्तं श्रुतं तपः । यातुधानाः प्रलुम्पन्ति
शौचभ्रष्टदिजन्मनः’ । स्मृतिः । ‘द्विषार्त्ताः पशवो रुद्धाः
कन्यका च रजस्वला । देवता च सनिर्माण्या हन्ति पुण्यं
पुराकृतम्’ । गोतमः ‘रात्रावुदङ्मुखः कुर्याद्देवकार्यं सदैव
हि । शिवार्चनं सदाप्येवं शुचिः कुर्यादुदङ्मुखः’ । दानः

६२

एकादशीतत्त्वम् ।

धर्मे विष्णुं प्रति नारदवाक्यम् । 'अभुक्त्वा देव कार्याणि कुर्वते येऽविकल्पनाः । सन्तुष्टाश्च क्षमायुक्तास्तान्नमस्याम्बहं विभो' । अविकल्पना अनात्मज्ञाघाकारिणः । स्कन्दपुराणे । 'सर्ववाद्यमयी घण्टा केशवस्य सदा प्रिया । वादनाल्लभते पुण्यं यज्ञकोटिसमुद्भवम्' । संवत्सरप्रदीपे । 'यस्य घण्टा गृहे नास्ति शङ्खो वा पुरतो हरेः । कथं भागवतो नाम गीयते तस्य देहिनः' । तथा । सर्वे दोषाः प्रलीयन्ते घण्टा-नादे कृते हरे' । तथा 'नदीतडागसम्भूतं वापीकूपद्भ्यो-द्भवम् । गङ्गोदकं भवेत् सर्वं शङ्खेनैव समुद्भूतम्' । वराह-पुराणे । 'अर्घ्यं कृत्वा तु शङ्खेन यः करोति प्रदक्षिणम् । प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा' । कल्पतरौ तु दक्षिणावर्त्ते विशेषमाह । 'दक्षिणावर्त्तशङ्खेन पात्रे श्रीङ्मुखे स्थितम् । उदकं यः प्रतीच्छेत्तु शिरसा दृष्टमानसः । सप्त-जन्मकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति' । श्रीङ्मुखे ताम्रमये । स्कान्दे 'दक्षिणावर्त्तशङ्खस्य तोयेन योऽर्चयेद्धरिम् । सप्तजन्म-कृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति' । पूजाधारमाह मोतमीय-तन्त्रम् । 'शालग्रामे मनौ यन्त्रे मण्डले प्रतिमासु च । नित्यं पूजा हरेः कार्या न तु केवलभूतले' । हरेरित्युपलक्षणम् । तथाच पद्मपुराणं 'शालग्रामशिलारूपी यत्र तिष्ठति केशवः । तत्र देवासुरा यक्षा भुवनानि चतुर्दश' । तत्र ब्रह्मादयो देवा इति क्वचित् पाठः अतएवास्य दाने भूचक्रदानमप्याह तत्रैव । 'शालग्रामशिलाचक्रं यो दद्याद्दानमुत्तमम् । भूचक्रं तेन दत्तं स्यात् सशैलवनकाननम्' । पूजाप्रदीपे । 'अनुक्तकल्पे मन्त्रं तद्विद्धेत् पञ्च दलाष्टकम् । षट्कोणकर्णिकं तत्र वेद-हारोपशोभितम्' । राघवभट्टकृतम् । 'शालग्रामे स्थावरे वा तावाहनविसर्जने । शालग्रामशिलादौ यच्चित्यं सच्चिद्वितो

एकादशीतत्त्वम् ।

६३

हरिः । गृहे लिङ्गद्वयं नार्थं गणेशद्वयमेव च । शक्तिचयं
 तथा शङ्खं मत्स्यादिदशकाङ्कितम् । द्वौ शङ्खौ नार्चयेच्चैव
 शालग्रामशिलाद्वयम् । द्वे चक्रे द्वारकायान्तु तथा सूर्यद्वयं
 बुधः । एतेषामर्चनाशित्वमुद्देशं प्राप्नुयाद्गृही' । एकादश-
 स्कन्धेऽपि । 'उद्वासावाहने नस्तः स्थिरायामुद्भवार्चने ।
 अस्थिरायं विकल्पः स्वात् स्थण्डिले तु भवेद्द्वयम्' । विष्णो-
 र्चनमुपक्रम्य बोधायनः । 'प्रतिमास्थानेष्वस्वम्नौ आवा-
 हनविसर्जनवर्जम्' । इति रत्नाकरे । 'स्निग्धा तु श्रीकरौ
 नित्यं कृत्वा दारिद्र्यदायिका । कृष्णा भोगवती नित्यं स्थूला
 एकान्तदायदा । कपिला दहते पापं ब्रह्मचर्येण पूजिता' ।
 दायदा धनदा । तथा 'व्यात्तानना तथा भग्ना विषमा वक्र-
 चक्रिका । नैकचक्रं न भग्मारं दद्रुणं सुखकालिमम् । नृसिंह-
 मूर्त्तिनचक्रं नार्चयेच्च सदा गृही । शायिता न प्रचलते
 यस्मिन् देशे च संस्थिता । तस्यास्तदासनं विद्धि ततो मूर्त्तिं
 प्रकल्पयेत्' । तथा 'संवत्सरन्तु यः कुर्यात् पूजां स्पर्शन-
 दर्शने । विना साङ्गेन योगेन मुच्यते नात्र संशयः । भक्त्या
 वा यदि वा भक्त्या चक्रं पूजयते नरः । अपि चेत् सुदुरा-
 चारे मुच्यते नात्र संशयः' । लिङ्गपुराणम् । 'कामासक्तोऽपि
 नैवेद्य भक्तिभावविवर्जितः । शालग्रामशिलां पुत्र योऽर्चयेत्
 सोऽश्नुते भवेत् । शालग्रामशिला यत्र तत्तीर्थं योजनद्वयम् ।
 तत्र दानञ्च होमञ्च सर्वं कीटिगुणं भवेत्' । भक्तिरूपास्यत्वेन
 निर्णयः । भावः अद्वा आस्त्रार्थे दृढप्रत्ययरूपा । अन्या
 भक्तिरवश्यकी । तथाच भागवते । 'नालं द्विजत्वं देवत्व-
 मृषित्वं वा सुरात्मजाः । प्रीणनाय मुकुन्दस्य न वृत्तं न
 बहुधृता । न दानं न तपो नेज्या न शौचं न व्रतानि च ।
 प्रीयतेऽमलया भक्त्या हरिरन्यद्विदुस्वनम्' । वृत्तं यथा 'गुरु-

६४

एकादशीतत्त्वम् ।

पूजा घृणा शौचं सत्यमिन्द्रियनिग्रहः । प्रवर्त्तनं हितानाञ्च
 तत्सर्वं वृत्तमुच्यते । भक्तिश्च नवधा 'श्रवणं कीर्तनं विष्णोः
 स्मरणं पादसेवनम् । अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवे-
 दनम् । इति पुंसापिप्ता विष्णौ भक्तिष्वेकवलक्षणा' । तथा
 'कथं विना लोमहर्षं द्रवता चेतसा विना । विनानन्दाशु-
 कलया शुद्धेयज्ञत्वा विना शमः । वाम्बदगदा द्रवते यस्य यस्य
 चित्तं रोदित्यभीष्टां हसति कचिच्च विलज्ज उद्गायति नृत्वते
 च मङ्गक्तियुक्तो भुवनं पुनाति' । वराहपुराणे । 'संस्मृतः
 कीर्त्तितो वापि दृष्टः स्पृष्टोऽथवा प्रिये । पुनाति भगवद्भक्त-
 खाण्डालोऽपि यदृच्छया । एतत् ज्ञात्वा तु विद्वद्भिः पूज-
 नीयो जनार्दनः । वेदोक्तविधिना भद्रे आगमोक्तेन वा
 सुधीः' । सुधीरिति पृथिवीसम्बोधनम् । तथा 'यावत् सर्वेषु
 भूतेषु मङ्गावो नोपजायते । तावदेवमुपासीत वाङ्मनःकाय-
 कर्मभिः' । हरिवंशे वलिं प्रति भगवद्वाक्यं 'पुण्यं मन्त्रेष्णिनां
 यच्च मङ्गलहेष्णिस्तथा । तत्सर्वं तव दैत्येन्द्र मत्प्रसादाद्भवि-
 ष्यति' । अत्राङ्गिरसौ । सर्वपापप्रसक्तोऽपि ध्यायन्निमिषमच्यु-
 तम् । पुनस्तपस्वी भवति पंक्तिपावनपावनः' । गारुडे 'यद्-
 दुर्लभं यदप्राप्यं मनसो यन्न गोचरम् । तदप्यप्रार्थितं ध्यातो
 ददाति मधुसूदनः' । विष्णुपुराणम् । 'ध्यायन् कृते यजन्
 यज्ञैस्तेतायां हापरेऽर्चयन् । यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ
 संकीर्त्यं केशवम्' । योगियाज्ञवल्करः । 'ध्यात्वा प्रणवपूर्वन्तु
 देवतन्तु समाहितः । नमस्कारेण पुष्पादि विन्यसेत्तु पृथक्
 पृथक्' । आग्नेये । 'तल्लिङ्गैः पूजयेन्मन्त्रैः सर्वं देवान् समा-
 हितः । धात्वा प्रणवपूर्वन्तु तन्नाम्ना सुसमाहितः । नम-
 स्कारेण पुष्पादि विन्यसेत्तु पृथक् पृथक्' । मन्त्रतन्त्रप्रकाशे
 मन्त्रमधिकृत्य । नमोऽन्ते न नमो दद्यात् स्वाहान्ते द्विद-

एकादशीतत्त्वम् ।

६५

भैव च । पूजायामाहुती चैव सर्वत्रायं विधिः स्मृतः । द्विठः
 स्वाहा । स्मृतिः । पञ्चवयान्विता दूर्वा प्रशस्ता चार्घ्य-
 कर्मणि । कालिकापुराणम् । 'यद्दीयते च देवेभ्यो गन्ध-
 पुष्पादिकं तथा । अर्घ्यपात्रस्थतोयेन चाभिषिच्य तदुत्सृजेत्' ।
 विष्णुधर्मोत्तरे । 'चन्दनागुरुकपूर्ं ऋगसारन्तथैव च । जाती-
 फलं तथा दद्यादनुलेपनकारणात् । अतोऽन्यन्नैव दातव्यं
 किञ्चिदेवानुलेपनम्' । विष्णुधर्मोत्तराग्निपुराणयोः । सुग-
 न्धैश्च मुरामांसी कपूर्ं रागुरुचन्दनैः । तथान्यैश्च शुभैर्द्रव्यैरर्च-
 येज्जगतीपतिम्' । कालिकापुराणे । यद्यपि देव्या इत्युप-
 क्रम्य नैवेद्यादौ दिङ्नियम उक्तस्तथापि आकाङ्क्षाया
 अत्राप्यन्वेति । यथा 'नैवेद्यं दक्षिणे वामे पुरतोऽपि न
 दृष्टतः । दीपं दक्षिणतो दद्यात् पुरतोऽपि न वामतः ।
 वामतस्तु तथा धूपमग्रे वा न तु दक्षिणे । निवेदयेत् पुरो-
 भागे मन्त्रं पुष्पञ्च भूषणम् । दीपञ्च तथा स्थापयेच्च यथा
 क्वायां न चाश्रयेत् । विभीतकार्ककारञ्चक्षुहीच्छायां न
 चाश्रयेत् । स्तम्भदीपमनुष्ठाणामन्येषां प्राणिनां तथा' इति
 प्रयोगसारात् । संवत्सरप्रदीपे । 'यो हि भागवतो भूत्वा
 कलौ तुलसिचन्दनम् । न चार्पयति वै विष्णौ न स भागवतो
 जरः' । आग्नेये । 'चन्दनागुरुकपूर्ं रकुङ्कुमोशीरपद्मकैः ।
 अनुलिप्तो हरिभक्त्या वरान् भोगान् प्रयच्छति । कालेयर्क
 तुरुष्कश्च रक्तचन्दनमेव च । नृणां भवन्ति दत्तानि पुण्यानि
 पुरुषोत्तमे' । विष्णुधर्मोत्तरे । 'अनुलिप्तं जगन्नाथं ताल-
 वृक्षेन वीजयेत् । वायुलोकमवाप्नोति पुरुषस्तेन कर्मणा ।
 चामरैर्वीजयेद् यस्तु देवदेवं जनार्दनम् । तिलप्रस्थप्रदानस्य
 फलं प्राप्नोत्यसंशयः' । राघवभट्टवृत्तं 'शङ्खपात्रस्थितं गन्धं
 मन्त्रैर्दद्यात् कनिष्ठया । कनिष्ठाङ्गुलिसंयुक्ता गन्धमुद्रा प्रकी-

६६

एकादशीतत्त्वम् ।

त्तिता' नारसिंहे । 'अपर्युषितनिष्क्रिद्रेः प्रोक्षितैर्जन्तुवर्जितैः ।
 आत्मारामोद्भवैर्वापि पुष्पैः संपूजयेद्धरिम्' देवीपुराणम् ।
 'स्वयं पतितपुष्पाणि त्यजेदुपहृतानि च' । शातातपः 'शिवे
 विवर्जयेत् कुन्दमुन्मत्तञ्च हरौ तथा । देवीनामकर्मन्दारी
 सूर्यस्य तगरन्तथा' । विष्णुधर्मोत्तरे 'धर्मार्जितधनक्रीतैः यः
 कुर्यात् केशवार्चनम् । उद्धरिष्यत्यसन्दिग्धं दशपूर्वान् दशा-
 परान्' । नारसिंहे 'मल्लिकामालती जाती केतकाशोक-
 चम्पकैः । पुन्नागनागवकुलैः पद्मैरुत्पलजातिभिः । तुलसी-
 करवीरैश्च पलाशावन्तिकुच्छुकैः । एतैरन्यैश्च कुसुमैः प्रशस्तै-
 रच्युतं नरः । अर्चन् दशसुवर्णस्य प्रत्येकं फलमाप्नुयात्' ।
 पुन्नागः पुनाङ्ग मिथिलायां प्रसिद्धः । नागो नागकेशरः ।
 'नारदीसप्तसाहस्रैर्मालतीवकुलाशोकशेफाली नवमालिका ।
 अस्त्रानतगराङ्गोच मल्लिका मधुपिण्डिका । शृङ्गिका षट्पदं
 कुन्दं कदम्बं मधुपिङ्गलम् । पाटला चम्पकं कृष्णं लवङ्गमति-
 मुत्तकम् । केतकं कुरुवकं विल्वं कङ्गारं करकं द्विज । पञ्च-
 विंशतिपुष्पाणि लक्ष्मीतुल्यप्रियाणि मे' । कुरुवकं रक्तभिण्डि-
 कम् । यत्तु 'सुरभीणि तथान्यानि वर्जयित्वा च केतकीम्'
 इति वामनपुराणवाक्यं तन्नरसिंहेतरावतारविषयम् । 'केतकी-
 पत्रपुष्पञ्च भृङ्गराजस्य पत्रकम् । तुलसी कृष्णतुलसी सदा-
 स्तुष्टिकरं हरैः' इति नरसिंहपुराणात् । वामनपुराणे 'पारि-
 भाद्रं पाटला च वकुलं गिरिशालिनी । तिलकं जम्बुवनजं
 पीतकं तगरन्त्वपि । एतानि हि प्रशस्तानि कुसुमान्यच्युता-
 र्चने' । गिरिशालिनी अपराजिता । जम्बुवनजं श्वेतजवा-
 पुष्पम् । विष्णुधर्मोत्तरे । रक्ताशोकस्य कुसुममतसीकुसुमं
 तथा' । अतसी शनः तथाच 'चम्पकस्य च देयानि तथा
 भूचम्पकस्य च' । आग्नेये । 'पद्मान्यम्बुसमुत्थानि रक्तनीले

एकादशीतत्त्वम् ।

-६७

तथोत्पले । सितोत्पलश्च कणस्य दयितानि सदा नृप' ।
 तथा 'पाटला करवीरश्च जवा जयन्तिरेव च । कुञ्जकस्तगर-
 शम्पः कर्णिकारः कुरुण्टकः' । चम्पश्चम्पककुसुमम् । अत्र
 विशेषो मत्स्यतन्त्रे । 'गोपाले वर्जयेज्जिह्वां वकचम्पकवासकं
 चम्पकं कनकचम्पकम् । तथाच स्कन्दपुराणे । 'जवाकुरु-
 ण्टकं वन्यं वकं कनकचम्पकम् । विवरणं क्षमिसन्दष्टं न
 देयं भजताच्युतम्' । जवा रक्तजवा कुरुण्टकं पीतभिण्डि-
 कम् । भविष्ये । 'पद्मानि सितरक्तानि कुसुदान्युत्पलानि च ।
 एषां पर्युषिता शङ्का कार्या पञ्चदिनोत्तरे । तुलस्यगस्थ-
 विस्वानां नास्ति पर्युषितात्मता' । अगस्थं वकम् ।
 योगिनीतन्त्रे । 'विल्वपत्रश्च माध्यञ्च तमालामलकीदलम् ।
 कङ्कारं तुलसी चैव पद्मञ्च मुनिपुष्पकम् । एतत् पर्युषितं न
 स्याद् यच्चान्यत् कलिकात्मकम्' । राघवभट्टधृतम् । 'कलि-
 काभिस्तथा नित्यं विना चम्पकपङ्कजैः । शुष्केन पूजयेद्दिष्णुं
 पत्रैः पुष्पैः फलैरपि' । विष्णुधर्मोत्तरे । 'उग्रगन्धीन्धुगन्धीनि
 कुसुमानि न दापयेत् । अन्यायतनजातानि कण्टकीनि
 तथैव च । रक्तानि यानि धर्मज्ञ चैत्यवृक्षोद्भवानि च । यानि
 श्मशानजातानि यानि चाकालजानि च' । तथा 'कुटञ्जं
 शाल्मलीपुष्पं शिरीषञ्च जनार्दने । निवेदितं भयं रोगं
 निःस्वत्वञ्च प्रयच्छति । बभ्रुजोवकपुष्पाणि रक्तान्यपि च
 दापयेत् । अनुत्तररक्तकुसुमदानाद्दीर्घायुमाप्नुयात्' । आगस्थे ।
 'परारोपितवृक्षेभ्यः पुष्पमानीय योऽर्चयेत् । अनुज्ञाप्य च
 तस्यैव निष्फलं तस्य पूजनम्' । एतत् द्विजेतरपरं 'द्विज-
 स्तृणैः पुष्पाणि सर्वतः स्वयमाहरेत्' इति याज्ञवल्क्यात् ।
 देवतार्थन्तु कुसुममस्तेयं मनुरब्रवीत्' इति वचनात् ।
 'गोऽग्न्यर्थदणमेधांसि वीरुवनस्पतीनां पुष्पाणि स्रवदाचरेत्'

६८

एकादशीतत्त्वम् ।

इति याज्ञवल्करात् । 'देवतार्थन्तु कुसुममस्तेयं मनुरब्रवीत्'
 इति वचनानि 'स्वदाददीत फलानि चापरिहृंहितानाम्'
 इति गोतमवचनाच्च । अत्र विशेषो ज्ञेयः । त्वं वा यदि
 वा काष्ठं पुष्पं वा यदि वा फलम् । अप्रयच्छन्निगृह्णानो
 हस्तच्छेदनमर्हति' इति स्मृतेः । 'देवोपरिधृतं मस्तकोपरि-
 धृतम् अधोवस्त्रधृतमन्तर्जलप्रक्षालितञ्च पुष्पं दुष्टम्' इति
 हरिभक्तिनामके ग्रन्थे । अभिवाद्याभिवादककरस्थपुष्पादि-
 प्रोक्षणात् कर्मण्यमिति केचित् । अतएव तयोरभिवादन-
 निषेधमाह बौधायनः । 'समिहार्युदकुम्भपुष्पाक्षहस्तो नाभि-
 वादयेत् यच्चाप्येवं युक्तमिति' । एवं युक्तं समिदादियुक्तम् ।
 लघुहारीतः । 'जपयज्ञजलस्थांश्च समित्पुष्पकुशानलान् ।
 दन्तकाष्ठञ्च भैक्षञ्च वहन्तं नाभिवादयेत्' । अभिवादयेदित्यनु-
 वृत्तौ शङ्कल्लिखितौ । 'न पुष्पाक्षतपाणिर्नाशुचिर्नाजपन्नदेव
 पित्रां कार्यं कुर्वन्निति । अक्षतास्तु यवाः प्रोक्ता भृष्टाधाना
 भवन्ति ते' इति भट्टनारायणधृतात् । अतएव अमरसिंहः ।
 धाना भृष्टयवे स्त्रियः । ब्राह्मणागमने तु वशिष्ठः । 'जप-
 काले न भाषेत व्रतहोमादिकेषु च । एतेषु चैवासक्तस्तु
 यद्यागच्छेद्विजोत्तमः । अभिवाद्य ततो विप्रं योगक्षेमञ्च कीर्त्त-
 येत्' । अत्र द्विजोत्तमपदं निषादस्थपतिवत् कर्मधारय-
 समासस्यैव युक्तत्वात् अपतितत्रैवर्णिकपरमिति विद्याकरः ।
 वस्तुतस्तु विप्रपदश्रवणात्तन्मात्रपरम् । 'याचितं निष्फलं पुष्पं
 क्रयक्रीतञ्च निष्फलम्' इति वदन्ति । तथा 'न पुष्पच्छेदनं
 कुर्यात् देवार्थं वामहस्ततः । न दद्यात्तानि देवेभ्यः संस्थाप्य
 वामहस्ततः' । हारीतशातातपौ । 'समित्पुष्पकुशादौनि
 ब्राह्मणः स्वयमाहरेत् । शूद्रानीतैः क्रयक्रीतैः कर्म कुर्वन्
 पतत्यधः' । क्रये प्रतिप्रसूते ब्रह्मपुराणं 'पुष्पैर्धूपैश्च नैवेद्येर्वीर-

एकादशीतत्त्वम् ।

६८

क्रयक्रिया हृतैः' । वीरवत् याज्ञाशून्येन विक्रोतुरुपन्यस्त-
 मूखेन क्रयः । विष्णुधर्मोत्तरे 'भृङ्गराजस्य विस्वस्य वकपुष्पस्य
 च द्विजाः । जम्बूमान्वीजपूराणां पत्राणि विनिवेदयेत्' । तथा
 'पुष्पाणि यदि ते न स्युः प्रशस्तैरपि पक्षवैः । दूर्वाङ्गुरै-
 रपि ब्रह्मांस्तद्भावेनार्चयाच्युतम्' । वामनपुराणे । 'विस्वपत्रं
 शमीपत्रं भृङ्गराजस्य पत्रकम् । तमालामलकीपत्रं शस्तं
 केशवपूजने' । ज्ञानमालायाम् । 'पुष्पं वा यदि वा पत्रं
 फलं नेष्टमधोमुखम् । पुष्पाञ्जलिविधिं हित्वा यद्योत्पन्नं
 तथार्पणम्' । लघुहारीतः । 'स्नानं कृत्वा च ये केचित्
 पुष्पं गृह्णन्ति वै द्विजाः । देवतास्तत्र गृह्णन्ति भस्मीभवति
 काष्ठवत्' । एतत्तु द्वितीयस्नानाभिप्रायकमिति रत्नाकरः ।
 व्यक्तं मत्स्यसूक्ते । 'स्नात्वा मध्याह्नसमये न क्षिन्द्यात् कुसुमं
 नरः । तत्पुष्पस्यार्चने देवि ! रौरवे परिपच्यते' । स्कान्दे ।
 'न धात्री सफला यत्र न विष्णोस्तुलसीवनम् । तन्मेच्छ-
 सदृशं स्थानं यत्र नायान्ति वैष्णवाः । यत्र मातृपरो मर्त्या
 यत्र द्वादशिकृत्तरः । तुलसी मालती धात्री तत्र विष्णुः
 श्रिया सह । दूर्वा दहन्ति दुःखानि धात्री हरति पातकम् ।
 हरीतकी हरेद्रोगं तुलसी हरते त्रयम् । तुलसीं प्राप्य
 यो नित्यं न करोति समार्चनम् । तस्याहं प्रतिगृह्णामि न
 पूजां दशवार्षिकीम्' । अतएव 'गृह्णाति तुलसीं शुष्कामपि
 पर्युषितां हरिः' । तथा 'वर्ज्यं पर्युषितं तोयं वर्ज्यं पर्युषितं
 जलम् । न वर्ज्यं जाङ्गवीतोयं न वर्ज्यं तुलसीदलम् । तुलसी-
 पत्रमादाय यः करोति समार्चनम् । न पुनर्योनिमाप्नोति
 मुक्तिभागी भवेद्भि सः' । तथा 'समञ्जरिदलैर्युक्तं तुलसी-
 सन्धवैः क्षिती । कुर्वन्ति पूजनं विष्णोस्ते कृतार्थाः कलौ
 युगे । स्नाने दाने तथा ध्याने प्राशने केशवार्चने । तुलसी

७०

एकादशीतत्त्वम् ।

दहतै पापं कीर्त्तने रोपणे कलौ । तुलस्यमृतनामासि सदा
 त्वं केशवप्रिये ! । केशवार्थं चिनोमि त्वां वरदा भव शोभने ।
 तदङ्गसम्भवैः पत्रैः पूजयामि यथा हरिम् । तथा कुरु पवि-
 त्राङ्गि कलौ मलविनाशिनि । मन्त्रेणानेन यः कुर्यात्
 गृहीत्वा तुलसीदलम् । पूजनं वासुदेवस्य लक्षकोटिफलं
 लभेत् । राघवभट्टवृत्तम् । 'सद्यः पर्युषितं वापि निर्माणं
 नैव दुष्यति । तथान्येन हरेस्तुष्टिस्तलस्या तुष्यते यथा' ।
 गरुडपुराणे । 'गवामयुतदानेन यत् फलं लभते खग । तुलसी-
 पत्रकेकेन तत् फलं कार्त्तिके स्मृतम्' । तथा 'तुलसीं विना
 या क्रियते न पूजा ज्ञानं न तद् यत्तुलसीं विना कृतम् । भुक्तं
 न तद् यत्तुलसीविवर्जितं पीतं न तद् यत्तुलसीविवर्जितम्' ।
 अन्यत्रापि 'तुलसीदलसंमिश्रं यत्तोयं शिरसा वहेत् । सर्व-
 तीर्थाभिषेकस्य तेन प्राप्तं फलं भ्रुवम्' । वैष्णवावृत्ते व्यासः ।
 'जलक्लिन्ना भवेद् यावत्तुलसीमूलमृत्तिका । तावग्रीणाति
 भगवान् विश्वात्मा पिष्टभिः सह । मनःप्रसादजननी सुख-
 सीभाग्यवर्द्धिनी । आधिव्याधिहरे नित्यं तुलसि त्वं नमोऽस्तु
 ते' । इति नमस्कारमन्त्रः । 'श्रियः प्रिये श्रियावासे नित्यं
 श्रीधूरसत्कृते । भक्त्या दत्तं मया देवि गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु
 ते । श्रियं देहि यशो देहि कीर्त्तिमायुस्तथा सुखम् । बलं
 पुष्टिं तथा धर्मं तुलसि त्वं प्रयच्छ मे' । इत्यनेन पूजा ।
 विष्णुधर्मोत्तरे । 'पुण्याभावेऽपि देयानि पत्राणि च जनार्दने ।
 पत्राभावे जलं देयं तेन पुण्यमवाप्यते । न रत्नैर्न सुवर्णेन न
 च वित्तेन भूरिणा । तथा प्रसादमायाति यथा पुष्पैर्जनार्द-
 र्दनः' । ज्ञानमालायाम् । 'नाक्षतैरर्चयेद्विष्णुं न तुलस्या
 विनायकम् । न दूर्वया यजेद्गुर्गां नाम्नातकैर्दिवाकरम्' ।
 विष्णुधर्मोत्तरे । 'धूपदः सर्वमाप्नोति दीपदः सर्वमश्नुते' ।

एकादशीतत्त्वम् ।

७१

वामनपुराणे । 'रुहिकाख्यं कणं दारुं सिद्धकं सागुरु' सितम् ।
 शङ्खं जातीफलं श्रीशे धूपानि स्युः प्रियाणि वै । रुहिका
 मांसीकणं महिष्याख्यगुग्गुलुः । सितं कर्पूरम् । सितेति-
 पाठे सिता शर्करा । शङ्खो नखी श्रीशे विष्णौ । कालिका-
 पुराणे । 'गन्धं पुष्पं धूपदीपौ उपचारांस्तथा परान् ।
 घ्रातान्निवेद्य देवेभ्यो नरो नरकमाप्नुयात् । न भूमौ वितरेद्भूपं
 नासने न घटे तथा । यथातथा धारयतं कृत्वा तं विनि-
 वेदयेत्' । तथा 'सर्वं सहा वसुमती सहते न त्विदं द्वयम् ।
 अकार्यपादघातञ्च दीपतापं तथैव च' । तथा 'नैव निर्वा-
 पयेद्दीपं देवार्थमुपकल्पितम् । दीपहर्त्ता भवेदन्धः काणो
 निर्वापको भवेत्' । विष्णुधर्मोत्तरे । 'यावदक्षिणिमेषाणि
 दीपो देवालये ज्वलेत् । तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके मही-
 यते' । तथा 'यः कुर्यात्तेन कर्माणि स्यादसौ पुष्पितेक्षणः' ।
 तेन देवदत्तदीपेन । विष्णुसंहितायाम् । 'घृतं तिलतैलं
 विना न किञ्चिद्दीपार्थं' इति । दद्यादित्युच्यते । नरसिंह-
 पुराणे । 'मोचकं पनसं जम्बूं तथान्यस्तवलीफलम् । प्राची-
 नामलकं श्रेष्ठं मधुकोडुम्बरं तथा । यत्नपक्वमपि ग्राह्यं
 कदलीफलमुत्तमम्' । प्राचीनामलकं करमर्दकम् । वराह-
 पुराणम् । 'अपर्युषितपक्वानि दातव्यानि प्रयत्नतः । खण्डा-
 ज्यादिकृतं पक्वं नैव पर्युषितं भवेत्' ब्रह्माण्डपुराणे' ।
 'ताम्बूलमुज्ज्वलं दद्यात् यो विप्रेभ्यः समाहितः । शिवाय
 केशवायाथ नाकलोके स पूज्यते' । श्रीभागवते । 'यद्यदिष्ट-
 तमं लोके यच्चापि प्रियमात्मनः । तत्तन्निवेदयेन्मह्यं तदान-
 न्धाय कल्पते' । मह्यं वासुदेवाय । विष्णुसंहितायाम् ।
 'नाभक्ष्यं नैवेद्यार्थं भक्ष्येष्वजामहिषीक्षीरे वर्जयेत् । पञ्चनख
 मत्स्यवराहमांसानि चेति' । नाभक्ष्यमिति यद्वर्ण्यं यदभक्ष्यं

७२

एकादशीतत्त्वम् ।

स्वरूपतो लशुनादि तत्तेन न देयम् । न तु रात्रौ दध्याद्यपि ।
 पञ्चनखश्च शशातिरिक्तः । 'भागं मांसं तथा क्वागं शाशं
 समनुयुज्यते । एतानि हि प्रियाणि स्युः प्रयोज्यानि वसु-
 न्धरे' । इति वराहपुराणे भगवद्वाक्यात् । तथा 'माहिषश्चा-
 विकं क्वागमयान्निकमुदाहृतम् । माहिषं वर्जयेन्मांसं क्षीरं
 दधि घृतं तथा' । देवलः । 'चाण्डालेन शुना वापि दृष्टं
 हविरयान्निकम् । विडालादिभिरुच्छिष्टं दुष्टमन्नं विवर्जयेत् ।
 अन्यत्र हिरण्योदकस्पर्शात्' इति । कालिकापुराणे । 'यस्य
 यद्दीयते वस्त्रमलङ्कारादि किञ्चन । तेषां देवतमुच्चार्य कृत्वा
 प्रोक्षणपूजने । उल्लूज्य मूलमन्त्रेण प्रतिनाम्ना निवेदयेत्' ।
 प्रोक्षणादिलक्षणन्तु । 'उत्तानेन तु हस्तेन प्रोक्षणं समुदा-
 हृतम् । न्यक्षताभ्युक्षणं प्रोक्तं तिरश्चावोक्षणं स्मृतं' विष्णु-
 धर्मोत्तरे । द्रव्याणां तत्तद्देवतमभिधाय । 'गृह्णन्तु सर्व-
 देवस्य' यदनुक्तं द्विजोत्तमाः । तज्ज्ञेयं विष्णुदेवस्य सर्वं वा
 विष्णुदेवतम्' । गोतमः । 'अन्तर्जानु करं कृत्वा सकुशन्तु
 तिलोदकम् । फलांशमभिसन्धाय प्रदद्यात् अङ्गयान्वितः' ।
 योगियाज्ञवल्करः । 'अदृष्टविग्रहो देवो भावग्राह्यो मनोमयः ।
 तस्योद्धारः स्मृतो नाम तेनाहृतः प्रसीदति' । विष्णुपुराणे ।
 'ओद्धारो भगवान् विष्णुस्त्रिधामा वचसाम्पतिः । तदुच्चारण-
 तस्ते तु विनाशं यान्ति राक्षसाः । त्रिधामा त्रीण्यकारो-
 कारमकाररूपाणि सामान्युत्पत्तिस्थानानि यस्य स तथा ।
 तथा 'गत्वा गत्वा निवर्तन्ते चन्द्रसूर्यादयो ग्रहाः । अद्यापि
 न निवर्तन्ते द्वादशाक्षरचिन्तकाः' । नारसिंहे । 'सर्ववेदान्त-
 सारार्थसंसारार्णवतारकः । गतिरष्टाक्षरो नृणामपुनर्भवकाङ्क्षि-
 णाम् । यस्य यावांस्तु विश्वासस्तस्य सिद्धिस्तु तावती ।
 एतावानिति नैतस्य प्रभावः परिमीयते' । तथा 'हृत्पुण्ड-

एकादशीतत्त्वम् ।

७१

रीकममध्यस्थं शङ्खचक्रगदाधरम् । एकाग्रमानसो ध्यात्वा
विष्णुं कुर्याज्जपं द्विजः । तथा 'अष्टाक्षरस्य मन्त्रस्य
ऋषिर्नारायणः स्वयम् । कन्दश्च देवी गायत्री परमात्मा
च देवता । नमो नारायणायेति मन्त्रः सर्वार्थसाधकः ।
भक्तानां भजतां तात स्वर्गमोक्षप्रदायकः' । जपमानसे चेति
गणपाठात् व्यक्तवचने मानसे च जपशब्दार्थसिद्धिः । देवतां
ध्यायन् जपं कुर्यात् इत्यादिना ध्यानमवाङ्मुक्तम् । यत्तु ।
'मन्त्रार्थं चिन्तनाभ्यासः स उक्तो मानसो जपः' । इत्यनेन
शब्दार्थयोश्चिन्तनमुक्तम् । तत्रापि जपशब्दबलात् शब्दचिन्तनं
प्रधानम् अर्थचिन्तनमन्वङ्गम् । तथाच योगियाज्ञवल्करः ।
'वाच्यः स ईश्वरः प्रोक्तो वाचकः प्रणवः स्मृतः । वाचकेऽपि
च विज्ञाते वाच्य एष प्रसीदति' । अतएव 'मनसा धारयन्
मन्त्रं जिह्वोष्ठौ नैव चालयेत् । अभावे त्वक्षमालायाः
कुशग्रन्थ्या च पर्वणा' । हारीतः । 'मन्त्रार्थज्ञो जपन्
जुह्वत्तथैवाध्यापयन् द्विजः । स्वर्गलोकमवाप्नोति नरकन्तु
विपर्यये' । नरकस्थितिं निन्दा मन्त्रार्थज्ञानप्रशंसापरा
मन्त्रकवाक्यत्वात् । न तु सर्वथा निषेधपरा । अन्यथा
'वेदार्थोपनिबन्धत्वात् प्राधान्यं हि मनोः स्मृतम् । मन्त्रार्थ-
विपरीता या सा स्मृतिर्न प्रशस्यते' इति ब्रह्मसूत्र्युक्तविरुद्धा
स्यात् । मनुस्तु क्रमाच्छेष्टमाह । 'अज्ञेभ्यो ग्रन्थिनः श्रेष्ठा-
ग्रन्थिभ्यो धारिणो वराः । धारिभ्यो ज्ञानिनः श्रेष्ठा ज्ञानिभ्यो
व्यवसायिनः' । ग्रन्थिनो ग्रन्थसापेक्षपाठिनः । धारिणस्तद-
नपेक्षपाठिनः । ज्ञानिनोऽधीतशास्त्रार्थज्ञाः । एवं 'वेदस्या-
ध्ययनं सर्वं धर्मशास्त्रस्य चापि यत् । अज्ञानतोऽर्थं तत्सर्वं
तुषाणां कण्ठनं यथा' इति व्यासवचनं तथैव व्याख्येयम् ।
व्यवसायिनः शास्त्रार्थानुष्ठायिनः । जपविधिमाह पुरश्चरण-

७४

एकादशीतत्त्वम् ।

चन्द्रिकायाम् । 'कनिष्ठानामिका मध्या चतुर्थी तर्जनी मता ।
 तिस्रोऽङ्गुल्यस्त्रिपर्वणो मध्यमा चैकपर्विका । पर्वद्वयं मध्य-
 माया जपकाले विवर्जयेत् । एवं मेरुं विजानीयात् दूषितं
 ब्रह्मणा स्वयम् । आरभ्यानामिकामध्यात् प्रदक्षिणक्रमेण तु ।
 तर्जनीमूलपर्यन्तं जपेद्दशसु पर्वसु । अङ्गुलिर्न वियुञ्जीत
 किञ्चित् सङ्कोचयेत्तलम् । अङ्गुलीनां वियोगे तु छिद्रेषु
 स्रवते जपः । अङ्गुल्यग्रेषु यज्जप्तं तज्जप्तं मेरुलङ्घने । पर्व-
 सन्धिषु यज्जप्तं तत्सर्वं निष्फलं भवेत्' । मन्त्रतन्त्रप्रकाशे
 'तत्राङ्गुलिजपं कुर्वन् साङ्गुष्ठाङ्गुलिभिर्जपेत् । अङ्गुष्ठेन कृतं कर्म
 विना तदफलं भवेत्' । मन्त्रकोषे । 'हृदये हस्तमादाय
 तिर्यक् कृत्वा कराङ्गुलीः । आच्छाद्य वाससा हस्तौ दक्षि-
 णेन सदा जपेत्' । कल्पान्तरमाह 'अनुलोमविलोमस्यैर्विन्दु-
 युञ्जाटकाक्षरैः । क्षमेरुक्षैः साष्टवर्गैः कृतया वर्णमालया ।
 प्रत्येकं वर्णयुञ्जन्नाजप्ताः स्युः क्षिप्रमिद्विदा' । तामाहुः
 'अकारादिलकारान्तं पञ्चाशन्मणिसूत्रकम् । क्षकारं मेरु-
 संस्थाने लकारादिविलोमतः । वर्गाष्टकविभेदेन शतमष्टोत्तरं
 भवेत् । वैरिमन्त्रा अपि नृणामन्ये मन्त्राश्च किं पुनः' ।
 अकारादिलकारान्तता अनुलोमता लकारादयराकान्तता
 विलोमता क्षकारस्तु मेरुतया न संख्याघटकः । साष्टवर्गैः
 अकचटतपयशवर्गयुतैः । 'एकैकान्तरितं मन्त्रं जपेदेवं फल-
 प्रदम्' । अन्यत्र च । 'ब्रह्मनाडीगतानादिचान्तवर्णान्
 विभाव्य च । अणं विन्दुयुतं कृत्वा अष्टं मन्त्रं जपेत् पुनः ।
 अकारादिषु संयोज्य तथाकादिषु च क्रमात् । तदा लिपि-
 र्भवेदर्णमालार्द्धशतसंख्यया । अनया सर्वमन्त्राणां जपः सर्वार्थ-
 साधकः । ग्रथिता शक्तिसूत्रेण' इति तन्त्रान्तरदर्शनात् ।
 कुण्डलिनी सूत्रत्वेन भावनीया । जपसमर्पणमाह 'गुह्याति-

एकादशीतत्त्वम् ।

७१

गुह्यगोप्ता त्वं गृहाणास्मत् कृतं जपम् । सिद्धिर्भवतु मे देव
 त्वत्प्रसादात् त्वयि स्थिते । मन्त्री श्लोकं पठित्वा तु दक्षहस्तेन
 विष्णवे । मूलानुनार्घ्यं तोयिन दक्षहस्ते निवेदयेत् । अनु-
 र्मन्तः । विद्याकरधृतम् । 'सहस्रं वा शतं वापि दश वानु-
 दिनं जपेत् । कुर्यादष्टाधिकं तेषामिति जप्ये विधिः स्मृतः' ।
 तन्त्रान्तरे । 'विज्ञेपादथवालस्याज्जपहोमार्चनान्तरा । उत्ति-
 ष्ठति तदा न्यासं षडङ्गं विन्यसेत् पुनः' । पञ्चरत्ने 'अपवित्र-
 करो लग्नः शिरसि ग्राह्यतोऽपि वा । प्रलपन् वा जपेद् याव-
 त्तावन्निष्फलमुच्यते' । विष्णुपुराणे । 'सर्ववेदेषु यत् पुण्यं
 सर्वतीर्थेषु यत् फलम् । तत् फलं नर आप्नोति स्तुत्वा देवं
 जनार्दनम्' । स्कान्दे । 'अहत्यहनि यो मर्त्या गीताध्यायन्तु
 संपठेत् । द्वाविंशदपराधैश्च अहत्यहनि मुच्यते' । ते च अप-
 राधा वराहपुराणे दर्शिताः । श्रीभागवते 'नानातन्त्रविधानेन
 कलावपि तथा शृणु । धैर्यं सदा परिभवधर्मभीष्टदोहं तीर्था-
 स्मदं शिवविरिञ्चिनुतं शरण्यम् । भृत्यार्तिहं प्रणतपाल-
 भवाश्विपोतं वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् । त्यक्त्वा सुदु-
 स्थजसुरेक्षितराज्यलक्ष्मीं धर्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यम् ।
 मायामृगं दयितयेक्षितमन्त्रधावद् वन्दे महापुरुष ते चरणार-
 विन्दम् । एवं युगानुरूपाभ्यां भगवान् युगवर्तिभिः । मनुजै-
 रिज्यते राजन् श्रेयसामौश्वरो हरिः । स्तुत्वा प्रसीद भगव-
 न्निति वन्देत दण्डवत् । शिरो मत्पादयोः कृत्वा बाहुभ्याञ्च
 परस्परम् । प्रपन्नं पाहि मामौश भूतं मृत्युभयार्णवात्'
 इति भगवद्वाक्यम् । स्मृतिः । 'न देवं पृष्ठतः कृत्वा प्रणामं
 क्वचिदाचरेत् । वरमुत्थाय कर्त्तव्यं न वृथा भ्रमणञ्चरेत्' ।
 एतद्विदुषोति । 'पश्चात् कृत्वा तु यो देवं भ्रमित्वा प्रणमे-
 द्भरः । तस्यैहिकं फलं नास्ति न परत्र दुरात्मनः । तथा

७६

एकादशीतत्त्वम् ।

भ्रान्त्वा चतुःपार्श्वं श्रीकृष्णं यो नमेन्नरः । साष्टाङ्गप्रणि-
 पातेन तस्य मुक्तिः करे स्थिता । स्मृतिः । ‘अर्घ्यं कृत्वा तु
 शङ्केन यः करोति प्रदक्षिणम् । प्रदक्षिणी कृता तेन सप्त-
 द्वीपा वसुन्धरा’ । वामनपुराणे । ‘प्रदक्षिणं यस्त्रिः कुर्यात्
 साष्टाङ्गप्रणामकम् । दशाश्वमेधस्य फलं प्राप्नुयान्नात्र
 संशयः’ । नारसिंहे । ‘उरसा शिरसा दृष्ट्या वचसा मनसा
 तथा । पद्भ्यां कराभ्यां जानुभ्यां प्रणामोऽष्टाङ्ग ईरितः’ ।
 विष्णुधर्मोत्तरे । ‘जानुभ्याञ्चैव पाणिभ्यां शिरसा च विच-
 क्षणः । कृत्वा प्रणामं देवेशे सर्वान् कामानवाप्नुयात्’ ।
 ‘के धृताञ्जलिभिर्नमः’ इति भागवतीयात् । शिरोऽञ्जलि-
 संयोगोऽपि नमस्कारः स्मृतिः । ‘देवताप्रतिमां दृष्ट्वा यतिञ्चैव
 त्रिदण्डिनम् । नमस्कारं न कुर्याच्चेदुपवासेन शुद्धिः’ । ब्रह्म-
 पुराणे । ‘यत् किञ्चित् क्रियते कर्म सदा सकृददुष्कृतम् । तत्
 सर्वं त्वयि संन्यस्तं तत्प्रयुक्तः करोम्यहम्’ इत्यनेन समर्पयेत् ।
 भागवते । ‘मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं जनार्दन ! । यत्
 पूजितं मया देव ! परिपूर्णं तदस्तु मे’ । पूजानन्तरं शङ्खपूजा-
 माह मन्त्रतन्त्रप्रकाशे । ‘पूजयेद्भस्मपुष्पाद्यैः शङ्खं वै देववद्
 बुधः’ । नारसिंहे ‘अतःप्रभृति निर्मात्रं मा लङ्घय महामते ! ।
 नरसिंहस्य देवस्य तथान्येषां दिवौकसाम् । भविष्ये ।
 ‘यश्च पूजयते देवान् ब्राह्मणो द्रव्यलोभतः । भृत्या भरत-
 शार्दूल स याति नरकं ध्रुवम्’ । भृत्या वेतनेन । देवलः ।
 ‘इष्टं दत्तमधीतञ्च तप्तं वाप्यात्मनातपः । प्रयच्छत्यपरेभ्यश्च
 धनार्थं धर्मविक्रयो’ । संवत्सरप्रदीपे । ‘विष्णालयसमीप-
 स्थान् विष्णुसेवा समागतान् । चारुण्डालान् पतितान् वापि न
 स्पृष्ट्वा स्नानमाचरेत् । उक्तवे वासुदेवस्य स्नायाद् योऽशुचि-
 शृङ्गया । तादृशं कश्मलं दृष्ट्वा सवासा जलमाविशेत्’ ।

एकादशीतत्त्वम् ।

७७

अथ द्वादशीनियमाः । द्वादश्यामपि विष्णुपूजनम् । एकादश्यां प्रकुर्वन्ति उपवासं मनीषिणः । उपासनाय द्वादश्यां विष्णोर्यद्वदियन्तथा । इति भविष्यपुराणात् । यद्वत् यथा द्वादश्यां विष्णुपासनाय एकादश्यामुपवासं प्रकुर्वन्ति तथा इयमपि षष्ठ्युक्ता सप्तमी उपोष्या सप्तम्यां सूर्योपासनाया इत्यर्थः । तत्र ब्रह्माण्डपुराणम् । 'कांस्थं मांसं सुरां चौद्रं लोभं वितथमापणम् । व्यायामञ्च व्यवायञ्च दिवास्वप्नं तथा-
 ज्ञनम् । शिला पिष्टं मसूरांश्च द्वादशैतानि वैष्णवः । द्वादश्यां वर्जयेन्नित्यं सर्वपापैः प्रमुच्यते । पुनर्भोजनमध्वानं यानमायासमैथुने । उपवासफलं हन्युर्दिवा निद्रा च पञ्चमी' । इदं शातातपः । 'उपवासं द्विजः कृत्वा ततो ब्राह्मणभोजनम् । कुर्यात्तथास्य सगुण उपवासो हि जायते' । सगुणः साङ्गः । नारायणमन्त्रजपश्च पाश्चात्यनिर्णयामृते कात्यायनः । 'मिथ्या-
 वादे दिवास्वप्नं बहुशो जलसेवने । अष्टाक्षरं व्रती जप्त्वा शतमष्टोत्तरं शुचिः' । तथा 'मन्त्रं निवेद्य हरये निवेद्यो-
 पोषणं व्रती । द्वादश्यां पारणं कुर्याद्वर्जयित्वाप्युपोदकीम्' । उपोदकी पूतिकाशकम् । कूर्मपुराणे । 'कांस्थं मांसं सुरां चौद्रं हिंसां तैलमसत्यताम् । द्यूतक्रीडां दिवानिद्रां व्यायामं क्रोधमैथुनम् । द्वादश्यां द्वादशैतानि वैष्णवः परिवर्जयेत्' । संवत्सरप्रदीपे । 'अभ्यङ्गञ्च परान्नञ्च तैलं निर्मात्यलङ्घनम् । तुलसी चयनं द्यूतं पुनर्भोजनमेव च । वस्त्रपीडां तथाक्षारं द्वादश्यां वर्जयेद्बुधः । अभ्यङ्गो येन केनापि तैलं तिलतैलं मार्ष्टावापि निषिद्धम् । स्मृतिः । 'घृतञ्च सार्धपं तैलं यत्तैलं पुष्पवासितम् । अदुष्टम् अक्ततैलञ्च स्नानाभ्यङ्गेषु नित्यशः' । अभ्यङ्गे द्वादशीतरपरं नित्यश इति पर्ववारादावपि । वारे द्रव्यदानेनापि प्रतिप्रसवमाह स्मृतिः । 'रवौ पुष्पं गुरौ दूर्वां

७८

एकादशीतत्त्वम् ।

भूमिं भूमिजवासरे । भार्गवे गोमयं दद्यात्तैलदोषोपशान्तये' ।
 दद्यात्तैले इति शेषः । सूरिसन्तोषे । 'कांस्यं मांसं मसूरञ्च
 चणकं कीरद्रूषकम् । शाकं मधु परान्नञ्च त्यजेदुपवसन्
 स्त्रियम्' । निर्मात्य लङ्घनमन्यत्रापि निषिद्धमत्राधिकदोषकरं
 व्रतहानिकरं वा । चारं वस्त्रस्य । 'मन्दमङ्गलघष्टौषु द्वादश्यां
 श्राद्धवासरे । वस्त्राणां चारसंयोगो दहत्या समं कुलम्' ।
 इति यमवचनात् । 'गुर्वन्नं मातुलान्नञ्च श्वशुरान्नं तथैव च ।
 पितुः पुत्रस्य चैवान्नं न परान्नमिति स्मृतम् । केशवार्चा गृहे
 यस्य नातिष्ठति महौपते ! । तस्यान्नं नैव भोक्तव्यमभक्ष्येण
 समं मतम्' । अर्चा शालग्रामादिप्रतिमा । यद्यपि यमेन
 'परपाकेन भक्तेन पुष्टस्य गृहमेधिनः । इष्टं दत्तं तपोऽधीतं
 यस्यान्नं तस्य तद्भवेत् । यस्यान्नेन तु भुक्तेन भार्यां समधि-
 गच्छति । यस्यान्नं तस्य ते पुत्रा अन्नाद्रेतः प्रवर्तते' ।
 हारोतजमदग्निभ्याम् । 'ब्राह्मणान्नेन दारिद्र्यं क्षत्रियान्नं न
 प्रेथ्यताम् । वैश्यान्नेन तु शूद्रत्वं शूद्रान्नैर्नरकं व्रजेत्' इति
 परान्नं सामान्यतो निषिद्धम् । तथापि अधिकदोषकरं व्रत-
 हानिकरं वा । वराहपुराणम् । 'अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां षष्ठ्याञ्च
 द्वादशीन्तथा । अमावास्यां चतुर्थ्याञ्च मैथुनं योऽधिगच्छति ।
 तिर्यग् योनीं समागच्छेन्नम लोकं न गच्छति' । मम
 विष्णोः । द्वादशीमधिकृत्य कात्यायनः । प्रातःस्नात्वा हरिं
 पूज्य उपवासं समर्पयेत् । अज्ञानतिमिरान्यस्य व्रतेनानेन
 केशव ! । प्रसीद सुमुखो नाथ ! ज्ञानदृष्टिप्रदो भव । कृष्ण-
 कृष्णकपालुस्त्वमगतौनां गतिर्भव । संसारार्णवमग्नानां प्रसीद
 मधुसूदन' ! । विष्णुधर्मोत्तरे । 'द्वादश्याः प्रथमः पादो हरि-
 वासरसंज्ञकः । तमतिक्रम्य कुर्वीत पारणं विष्णुतत्परः' । पारण-
 कालः । स्वल्पापि द्वादशी । ननु 'त्रयोदश्यां यदा न स्याद्वा-

एकादशीतत्त्वम् ।

७६

दशी घटिकाद्वयम् । उपोष्या दशमीविद्धा सर्वैरेकादशी तदा' इति नारदीयवाक्यात् घटिकाद्वयमेव पारणकालः । घटिकादण्डः । यथा ब्रह्मसिद्धान्ते । 'घटी षष्ठ्या दिवानिशम्' । इति अत्र केचित् घटिकाद्वयमिति पारणकालोपलक्षणम् अन्यथा तदधिकेऽपि द्वादशीनिर्गमे प्रातर्वक्त्रावलीकनविद्याप्ये कादश्युपोष्या स्यात् न च घटिकात्रयादिषु अपि द्वित्वमस्तीति तत्रापि तद्वाक्यादर इति वाच्यं पूर्वसंख्यानाशेनैवोत्तरसंख्योत्पादनात् । अन्यथा पशुना यजेत इत्यत्र एकत्वसंख्याविवक्षायामपि उपात्तपश्ववयवविनाशे पश्वन्तरावयवेन सहानुष्ठानं प्रतिपद्येत । तस्माद् यथा काकेभ्यो दधि रक्षतामित्यनेन उपघातकमात्रं लक्ष्यते तेन श्वादिभ्योऽन्नं रक्षत एव । तथाच भट्टपादाः । 'काकेभ्यो रक्षतामन्नमिति बालोपदेशतः । उपघातप्रधानत्वात् श्वादिभ्यो न हि रक्षते' । तथाच घटिकाद्वयमित्यनेनापि पारणयोग्यकालोऽपि लक्ष्यत इत्याहुः तन्न । प्रत्यक्ष एव पूर्वसंख्याप्रत्ययनाशादुत्तरसंख्याप्रत्ययोत्पादनियमः शाब्दबोधे तु न तथा नियम इति सिद्धान्तः । पशुना यजेतत्यत्र विधेयविशेषणत्वेन एकत्वस्य विवक्षितत्वाद्वित्वव्यवच्छेदः । अत्र तु कालद्वयं त्रयं वापीत्यनास्थयोक्तेः स्वल्पेति श्रवणात् जलेन पारणाश्रवणाच्च । घटिकाद्वयं न नियमः किन्तूपलक्षणम् । तथाच नारदीये । 'एकादश्याः कलाह्येका द्वादश्याश्च कलाद्वयम् । द्वादश द्वादशीर्हन्ति त्रयोदश्यान्तु पारणम् । कलाद्वयं त्रयं वापि द्वादशी च यदा भवेत् । पारणे मरणे वापि तिथिस्तात्कालिकी स्मृता' । तात्कालिकी न तु उपवासादिवृत्तिथ्यन्तरसहायतापि । तथा 'स्वल्पायामपि राजेन्द्र ! द्वादश्यामरुणोदये । स्नानार्चनक्रियाः कार्त्तुं दानहोमादिसंयुताः' । गारुडे । 'यदा स्वल्पा

८०

एकादशीतत्त्वम् ।

द्वादशी स्यादपकर्षस्ततो भवेत् । अपकर्षः कर्मण इति शेषः । भागवतटीकायाम् । ‘कलादीं द्वादशीं दृष्ट्वा निशीथा-
 दूर्द्धमेव हि । आमध्याह्नाः क्रियाः सर्वाः कर्त्तव्याः शम्भु-
 शासनात्’ । निशीथात् महानिशायाः । ‘विशेषतो निशीथे
 च शुभं कर्म न शर्मणे । अतो विवर्जयेत् प्राज्ञो दानादिषु
 महानिशाम्’ इत्यनेन निशीथमहानिशयोरैकत्वश्रुतेः पूर्ववच-
 नेऽरुणोदय इति श्रुतेश्च । स कालश्च स्कान्दनारदीययोः ।
 ‘उदयात् प्राक् चतस्रस्तु नाडिका अरुणोदयः’ । तथा हला-
 युधधृता स्मृतिः । ‘प्रदोषे घटिकायुग्मं प्रभाते घटिकाद्वयम् ।
 दिनवत् सर्वकर्माणि कारयेन्न विचारयेत्’ । अत्रापि सामर्थ्यं
 कात्यायनः । ‘सन्ध्यादिकं भवेन्नित्यं पारणन्तु निमित्ततः ।
 अङ्गिस्तु पारयित्वा तु नैत्तिकान्ते भुजिक्रिया’ । देवलः ।
 ‘सङ्कटेऽरिचये प्राप्ते द्वादश्यां पारयेत् कथम् । अङ्गिस्तु
 पारणं कृत्वा पुनर्नक्तं न दोषभाक्’ । नक्तं नक्तव्रतम् ।
 एतदप्युपलक्षणं सङ्कल्पविषये इत्युपक्रमात् । अङ्गिः पारण-
 विधानात्तन्त्रियमः । द्वादश्यनिगमे तु नारदीयं ‘त्रयोदश्यान्तु
 शुद्धायां पारणं पृथिवीजलम् । शतयज्ञाधिकं वापि नरः
 प्राप्नोत्यसंशयम्’ । पारणं तुलसीमिश्रितनैवेद्येन कुर्यात् ।
 तथाच स्कन्दपुराणम् । ‘कृत्वा चैवोपवासन्तु भोक्तव्यं द्वादशी-
 दिने । नैवेद्यं तुलसीमिश्रं हत्वाकोटिविनाशनम्’ । अस्य
 व्रतस्य न व्रतिनां व्रते इति विष्णुवचनाद्दशीचेऽपि कर्त्तव्यता
 अत्र व्रतिनामारब्ध व्रतिनामित्यर्थतया अशीचे आरम्भो न
 कार्यः । विष्णुधर्मोत्तरे । ‘असम्भाष्यान् हि सम्भाष्य तुलस्याः
 कालिकादलम् । आमलक्याः फलं वापि पारणे प्राश्य
 शुध्यति’ । संवत्सरप्रदीपे । ‘यस्य नाभौ स्थितं पत्रं मुखे
 शिरसि कर्णयोः । तुलसीसम्भवं नित्यं तीर्थैस्तु स मुखे

एकादशीतत्त्वम् ।

८१

किम् । युक्तो यदि महापापैः सुकृतं नार्जितं यदि । तथापि
 गौयते मोक्षस्तुलसी भक्षिता यदि' । विद्याकरष्टानि ।
 'यः कश्चिद्वैष्णवो लोके मिथ्याचारोऽप्यनाश्रमी । पुनाति सक-
 लान् लोकान् शिरसा तुलसीं वहन् । विष्णोःशिरःपरिभ्रष्टां
 भक्त्या यस्तुलसीं वहेत् । सिद्ध्यन्ति तस्य कार्याणि मनसा
 चिन्तितान्यपि । न धारयन्ति ये मालां तुलसीकाष्ठसम्भवाम् ।
 नरकान्न निवर्तन्ते दग्धाः कोपाग्निना हरेः । अरुद्राक्षधरो
 भूत्वा यत् यत् कर्म च वैदिकम् । करोति जपहोमादि तत्
 सर्वं निष्फलं भवेत्' । स्कान्दे । 'ध्यानधारणहीनोऽपि
 रुद्राक्षं धारयेत्तु यः । सर्वपापविनिर्मुक्तः स याति परमां
 गतिम्' । तथा 'कृत्वा चैवोपवासन्तु भोक्तव्यं द्वादशीदिने ।
 नैवेद्यं तुलसीमिश्रं हत्वाकोटिविनाशनम्' ।

अथ स्वदत्तनैवेद्यभक्षणम् । ननु दत्तस्याविनियोज्यत्वात्
 स्वदत्तनैवेद्यं कथं भुञ्जीतेति चेत् । वचनात्तथा यथा स्वदत्ते-
 ऽपि तस्मात् क्रयणात् स्वोपयोगः । तथाच आश्वमेधिके पर्वणि
 युधिष्ठिरं प्रति व्यासवचनम् । 'दत्तैषा भवता मर्ह्यं तां ते
 प्रति ददाम्यहम् । हिरण्यं दौयतामेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो धरास्तु
 ते' । यथा वा मध्यमपिण्डभोजनं पत्नीः । तथाच यमः ।
 'स्नाता वै मध्यमं पिण्डं पत्नी प्राश्नाति वाग्यता' । शङ्ख-
 लिखिते । 'पत्नी वा मध्यमं पिण्डमश्नीयादार्त्तवस्नाता' ।
 वायुपुराणे । 'पत्नैः प्रजार्थं दद्याद्भि मध्यमं मन्त्रपूर्वकम्' ।
 सामगानां मन्त्रस्तु । 'आधत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्कर-
 स्रजम्' । यथेह पुरुषः स्यात् इति । मत्स्यपुराणे । 'पत्नीन्तु
 मध्यमं पिण्डमाशयेद्दिनयान्विताम् । आधत्त पितरोगर्भं
 स्रजः सन्तानवर्द्धनम्' । एष मन्त्रः पौराणिकत्वात् साधारणः ।
 अकृते तु विष्णुधर्मोत्तरम् । 'पत्रं पुष्पं फलं तोयमन्नपानाद्य-

८२

एकादशीतत्त्वम् ।

मौषधम् । अनिवेद्य न भुञ्जीत यदाहाराय कल्पितम्
 अनिवेद्य हरिर्भुञ्जन् सप्तजन्मानि नारकी' । स्मृतिः 'भक्त
 चणःचणो विष्णोः स्मृतिः सेवा स्ववेश्मनि । स्वभोज्यस्यार्पणं
 दानं फलमिन्द्रादिदुर्लभम्' । स्वभोज्यस्य मनूक्तवैश्वदेवाद्य-
 वशिष्टरूपस्य । यथा 'अघं स केवलं भुङ्क्ते यः पचत्यात्म-
 कारणात् । यज्ञे शिष्टाशनं ह्येतत् सतामन्नं विधीयते ।
 भुक्तवत्सु च विप्रेषु स्वेषु भृत्येषु चैव हि । भुञ्जीयातां ततः
 पश्चादवशिष्टन्तु दम्पती' । अतएव स्मृतिः । 'यस्य चाम्नौ
 न ह्येत यस्य चाग्रं न दीयते । न तद्भोज्यं द्विजातीनां
 भुक्ता तूपवसेदहः' । शङ्खलिखितौ । 'न तदग्न्यादयदन्नं
 देवपितृमनुष्यार्थं न कुर्यादिति' । अत्र पितृार्थमित्यनेन
 पितृवलिनित्यस्याद्वावशिष्टं प्रतीयते । ध्यक्तं मार्कण्डेय-
 पुराणे । 'देवतातिथिभृत्येषु भूतेष्वभ्यागतेषु च । अभुक्तवत्सु
 येऽश्रन्ति तद्वत्पितृग्नपक्षिषु । दुष्टान्नपूयनिर्यासभुजः शूची-
 मुखास्तु ते । जायन्ते गिरिवर्माणः पश्येते यादृशा नराः' ।
 नरा इत्यत्र कर्मकर्त्तृतोभयप्राप्तौ कर्त्तृत्वमेव । 'अपादान-
 सम्पादानकरणाधारकर्मणाम् । कर्त्तृत्वान्योन्यसन्देहे परमेकं
 प्रवर्त्तते' इति सञ्क्षिप्तसारात् । ततश्च तदन्नं विष्णवे निवेद्य
 भोक्तव्यम् । यत्तु 'पितृशेषन्तु यो दद्यात् हरये परमात्मने ।
 रेतोधाः पितरस्तस्य भवन्ति क्लेशभागिनः' इति भागवतोक्तं
 तत् पितृदत्तप्रतिगृहीतविषयमिति । मत्स्यसूक्तम् । 'अनि-
 वेद्य न भोक्तव्यं मत्स्यमांसादिकञ्च यत् । अन्नं विष्टा पयोमूत्रं
 यद्विष्णोरनिवेदितम्' । अनेन स्वभोज्यं मत्स्यादिदेयमुक्तम् ।
 प्रागुक्तविष्णुपुराणवचनेनानेवंविधं निषिद्धमित्यविरोधः । अत-
 एव अयोध्याकाण्डे श्रीरामवाक्यम् । 'यदन्नः पुरुषो राज-
 स्तदन्नास्तस्य देवताः' इति । भागवते 'त्वयोपभुक्तसगन्ध-

एकादशीतत्त्वम् ।

८३

वासोऽलङ्कारचर्चिताः । उच्छिष्टभोजिनोदासास्तव मायां जये महि' । तथा हृदिरूपं मुखे नाम नैवेद्यमुदरे हरेः । पादोदकञ्च निर्माल्यं मस्तके यस्य सोऽच्युतः' । तस्यैव षष्ठस्कन्धीयपयोव्रते । 'उद्वास्य देवं स्वे धाम्न तन्निवेदितमग्रतः । अद्यादात्मविशुद्ध्यर्थं सर्वकामसमृद्धये' । उद्वास्य विमृज्य अत्र चित्तशुद्ध्यादिफलकथनादन्यथापि भोजनाग्रतः स्वदत्त-नैवेद्यभक्षणमवगम्यते । अन्यथा व्रताङ्गत्वे फलानुपपत्तिः । अष्टमस्कन्धेऽपि 'गन्धपुष्पादिभिश्चार्त्तद्वादशाक्षरविद्यया । शृतं पयसि नैवेद्यं शाल्यन्नं विभवे सति । ससर्पिः सगुडं दत्त्वा जुहुयान्मूलविद्यया । निवेदितं तद्भक्ताय दद्याद्भुञ्जीत वा स्वयम्' । यत्तु 'देवद्विजद्रव्यापहर्त्ताऽसु निमग्नोऽधमर्षण-मावर्त्तयेत्' इतिस्मृत्यन्तूक्तम् । 'अपि दीपावलोकं मे नोपयुञ्जान-निवेदितम्' इति श्रीभागवतीयञ्च तद्देवोपभुज्यमानद्रव्य-परम् । अतएव योगिनीतन्त्रे । 'मणिमुक्तासुवर्णानां देव-दत्तानि यानि च । न निर्माल्यं द्वादशाब्दं ताम्रपात्रं तथैव च । पटौ शाटी च प्रण्मासं नैवेद्यं दत्तमावृतः । मोदकं कृषरञ्चैव यामार्द्धेन महेश्वरि ! । पट्टवस्त्रं त्रिमासञ्च यज्ञसूत्रं त्वहःस्मृतम् । यावद्दुष्टं भवेदन्नं परमान्नं तथैव च' । विसर्ज-नीये देवे तु विसर्जनात्तदीयद्रव्यप्रतिपत्तिव्यवहारः । संवत्-सरप्रदीपे ब्रह्मपुराणम् । 'अम्बरीष नवं वस्त्रं फलमन्नं रसा-दिकम् । कृत्वा कृष्णोपभोग्यञ्च सदा सेव्यं हि वैष्णवैः । अम्बरीष हरेर्लङ्गं नीरं पुष्पं विलेपनम् । भक्त्या न धत्ते शिरसा चाण्डालादधिको हि सः' । तथा 'अग्निष्टोमसहस्रैश्च वाजपेयशतैस्तथा । तुल्यं फलं भवेद्देवि ! विष्णोर्नैवेद्य-भक्षणात्' । मत्स्यसूक्ते । 'एकान्तभक्तो देवस्य भोजनादौ मनोरमे । श्रुत्वा परेरितं नाम मुच्यते दिनकिल्बिषात् ।

८४

एकादशी तत्त्वम् ।

स्त्रीशूद्रोक्तं न शृणुयादभावे त्रिर्जपेत् स्वयम्' । तत्र मन्त्रः ।
 'उच्छिष्टभोजिनस्तस्य वयमुच्छिष्टकाङ्क्षिणः । येन लीला-
 वराहेण हिरण्याख्यो निपातितः' । तथा 'पादोदकञ्च निर्मात्यं
 नैवेद्यञ्च विशेषतः । महाप्रसाद इत्युक्त्वा ग्राह्यं विष्णोः प्रय-
 त्ततः' । पादोदकग्रहणे मन्त्रः । 'क्षणं क्षणं महावाहो !
 भक्तानामार्त्तिनाशन । सर्वपापप्रशमनं पादोदकं प्रयच्छ
 मे' । तद्धारणमन्त्रः । 'अकालमृत्युहरणं सर्वव्याधिविना-
 शनम् । विष्णोः पादोदकं पुण्यं शिरसा धारयाम्यहम्' ।
 तत्रानुष्ठानकरणत्वेन विधानात् पूर्वसिद्धमन्त्राणामस्यैव करण-
 त्वान्मन्त्रान्ते कर्मारम्भः । तीर्थकाण्डकल्पतरौ नरसिंहपुरा-
 णम् । 'गङ्गाप्रयागगयनैमिषपुष्कराणि पुण्यानि यानि कुरु-
 जाङ्गलयामुनानि । कालेन तीर्थसलिलानि पुनन्ति पापात्
 पादोदकं भगवतस्तु पुनर्जाति सद्यः' । पद्मपुराणे । 'ये पिबन्ति
 नरानित्यं शालग्रामशिलोदकम् । प्रक्षालयन्त्यसन्दिग्धं ब्रह्म-
 हत्यादिपातकम्' । वशिष्ठसंहितायाम् । 'शालग्रामशिला-
 तोयमपीत्वा यस्तु मस्तके । प्रक्षेपणं प्रकुर्वीत ब्रह्महा स
 निगद्यते' । स्मृतिः । 'नैवेद्य प्राशनात् पूर्वं देवपादोदका-
 हुतिः । होतव्या जठरे वक्त्रौ स्नेह पाणितलेन तु' । तेन
 पादोदकेनापोशनं कृत्वा प्राणाहुतिर्नैवेद्येन कार्या । बह्वृच-
 गृह्यपरिशिष्टे । 'पवित्रं विष्णुनैवेद्यं सुरसिद्धिर्षिभिः स्मृतम् ।
 अन्यदेवस्य नैवेद्यं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् । अग्राह्यं शिव-
 निर्मात्यं पत्रं पुष्पं फलं जलम् । शालग्रामशिलास्पर्शात्
 सर्वं याति पवित्रताम्' । कालिकापुराणम् । 'यो यद्देवार्चन-
 रतः स तन्नैवेद्यभक्षकः । केवलं सौरशैवे तु वैष्णवो नैव भक्ष-
 येत् । समानं त्वन्यनैवेद्यं भक्षयेदन्यदेवतः' । भविष्ये ।
 'निर्मात्यं नोपयोक्तव्यं रुद्रस्य तपनस्य च । उपयुज्य च

एकादशीतत्त्वम् ।

८५

तन्मोहात् नरके पच्यते ध्रुवम्' । अतएव पुरश्चरणचन्द्रिकायाम् । 'सुसुम्ना वर्त्मना पुष्पमाघ्रायोहासयेत् सुधीः । निर्माल्यं शिरसा धार्यं सर्वाङ्गेष्वनुलेपनम् । नैवेद्यञ्चोपयुञ्जीत दत्त्वा तद्भक्तिशालिने' । नन्दिकेश्वरपुराणे । 'दत्त्वा नैवेद्यवस्त्राणि नाददीत कदाचन । त्यक्तव्यं शिवमुद्दिश्य तदा दानेन तत्फलम्' इति शिवदत्ते विशेषः । स्मृतिः । 'ब्रह्मचारिगृहस्थैश्च वनस्थयतिभिः सह । भोक्तव्यं विष्णुनैवेद्यं नात्र कार्यं विचारणा' । 'यत्तु यद्वन्तकारं नैवेद्यं भुक्त्वा कृच्छ्रं यतिश्चरेत्' इति वचनं तद्विष्णुनैवेद्येतरपरम् ।

अथ जलाशयोत्सर्गः । 'प्रदद्यात् सर्वभूतेभ्यो जलपूर्णं जलाशयम्' इति मत्स्यपुराणाज्जलाशयोत्सर्गस्य सर्वभूतसम्पदानकत्वेनापकृष्टचेतनोद्देश्यकत्वादुद्देश्यगतस्वामित्वाजननात् यागत्वम् । तथाच आहविवेकः । देवतोद्देश्यकद्रव्यत्यागो यागः । देवतात्वञ्च वेदमेयत्यागोद्देश्यत्वम् । उद्देश्यत्वञ्च तस्येदमित्यारोपविषयत्वमिति । अतएव जलाशयोत्सर्गमुपक्रम्य मत्स्यपुराणे 'प्राप्नोति तदयागबलेन भूयः' इति यागत्वेनाभिहितम् । ततश्च तज्जलं स्वस्वत्वदूरीकरणेन नद्यादिवत् साधारणीकृतम् । 'सामान्यं सर्वभूतेभ्यो मया दत्तमिदञ्चलम् । रमन्तु सर्वभूतानि स्नानपानावगाहनैः' इति मन्त्रलिङ्गादुपादानं विना कस्यापि न स्वत्वमिति । ततश्चान्ययागवदुत्तरप्रतिपत्तेरश्रुतत्वेन साधारणजलस्य परिग्रहमात्रेण गोतमोक्तेन नात्र स्वामित्वश्रुतेर्यजमानस्यापि तथात्वेन स्वामित्वात् तत्र स्नानादावदोष इति । तथाच गोतमः । 'स्वामी ऋक्थक्रयसंविभागपरिग्रहाधिगमेषु । ब्राह्मणस्याधिकं लब्धं क्षत्रियस्य विजितं निर्विष्टं वैश्यशूद्रयोः' इति परिग्रहोऽनन्यपूर्वस्य जलदणकाष्ठादेः स्वीकार इति मित-

८६

एकादशीतत्त्वम् ।

चरा । वृत्त्यधिकारे व्यक्तमाह आपस्तम्बः । 'दायाद्यं शिलोऽञ्जौ चान्यच्चापरिगृहीतम्' इति । अपरिगृहीतमन्या-
स्वीकृतमस्वामिकमिति यावत् । निर्विष्टं वेतनलब्धं
निर्वेशो भृतिभोगयोरित्यमरत्रिकाण्डशेषयोः ।

अथ रजःस्वलासूतकिनोर्व्रतम् । पुलस्त्यः । 'एकादश्यां
न भुञ्जीत नारी दृष्टे रजस्यपि' । नारी विधवा । सधवाया
निषेधात् । तथाच विष्णुः । 'पत्न्यौ जौवति या नारी उपोष्य
व्रतमाचरेत् । आयुष्यं हरते पत्युर्नरकञ्चैव गच्छति' ।
'तथाच बहुकालिकसङ्कल्पो गृहीतश्च पुरा यदि । सूतके
सूतके चैव व्रतं तन्नैव दुष्यति' । एतेन काम्यव्रतारम्भोऽशीचे
न कार्यः । 'सूतके सूतके चैव न त्याज्यं द्वादशीव्रतम्' ।
तथा 'सूतके सूतके चैव प्रणम्य मनसा हरिम् । एकादश्यां
न भुञ्जीत व्रतमेतन्न लुप्यते' । सूतके च नरः स्नात्वेति प्रथम-
चरणे पाठो वराहपुराणे भविष्योत्तरपञ्चपुराणयोः । 'एकादश्यां
न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि । सूतके सूतके वापि अन्य-
स्मिन्नप्यशीचके । सर्वथा न परित्याज्या इच्छता श्रेय आत्मनः'
तत्र यदि देवात् परित्यक्तं देवार्चनादिकं तदा सूतकान्ते
कुर्यात् । तथा मत्स्यपुराणे । 'व्रतस्यान्ते नरः स्नात्वा पूज-
यित्वा जनार्दनम् । दानं दत्त्वा विधानेन व्रतस्य फलमश्नुते' ।
एकादशीमुपक्रम्य वराहपुराणम् । 'तस्मात्प्रमादे दुःखे वा
सूतके सूतकेऽपि वा । स्नात्वा काम्यव्रतं कुर्यात् दानार्चन-
विवर्जनम्' । मत्स्यपुराणम् । 'गर्भिणी सूतिका नक्तं कुमारी
च रजस्वला । यदा शुद्धा तदान्येन कारयेत् क्रियते सदा' ।
उपवामाचरणे गर्भादिपौडासम्भावनायाम् । नक्तं भोजनं
कुर्यात् । 'उपवासेष्वशक्तस्य तदेव फलमिच्छतः । अनभ्या-
सेन योगानां किमिष्टं व्रतमुच्यताम्' इति नारदप्रश्नान्तरम्

एकादशीतत्त्वम् ।

८७

‘उपवासेष्वशक्तानां नक्तं भोजनमिष्यते’ इति मत्स्यपुराण एव ईश्वरवचनात् । स्वयमशुद्धा शुद्धद्वारा पूजादि कारयेत् । कार्याकमुपवासादि सदा शुद्धशुद्धिकाले स्वयं क्रियते । स्मृति-परिभाषायामप्येवम् ।

अथ उपवासानुकल्पः । मनुः । ‘विश्वैश्च देवैः साध्यैश्च ब्राह्मणैश्च महर्षिभिः । आपत्सु मरणाङ्गीतैर्विधिः प्रतिनिधिः कृतः । प्रभुः प्रथमकल्पस्य योऽनुकल्पेन वर्तते । न साम्प्रत-यिकं तस्य दुर्मतेर्विद्यते फलम्’ । अत्र आपत्तिनिध्यनुकल्पानां पर्यायता कालविवेकघृतवराहपुराणञ्चाशक्तौ । ‘उपवासा-समर्थस्तु किञ्चिद्भक्ष्यं प्रयोजयेत्’ । तथा एकादशीमधिकृत्य स्मृतिः । ‘एकभक्तेन नक्तेन भक्षन् वृद्धातुरः क्षिपेत्’ । नारदीये ‘अनुकल्पो नृणां प्रोक्तः क्षीणानां वरवर्णिनि । मूलं फलं पय-स्तोयमुपभोग्यं भवेच्छुभम् । न त्वेवं भोजनं कैश्चिदेकादश्यां प्रकीर्तितम्’ । एवमनुकल्पातिरिक्तम् । ब्रह्मवैवर्तः । ‘उप-वासासमर्थश्चेदेकं विप्रन्तु भोजयेत् । तावन्नानि वा दद्यात् यज्ञक्ताद्विगुणं भवेत् । सहस्रसन्नितां देवीं जपेद्वा प्राणसंय-मान् । कुर्याद्वादशसंख्याकान् यथाशक्ति व्रते नरः’ । देवीं गायत्रीम् । वायुपुराणे ‘उपवासनिषेधे तु किञ्चिद्भक्ष्यं प्रक-ल्पयेत् । न दुष्यत्युपवासेन उपवासफलं भवेत् । नक्तं हविष्यान्नमनोदनं वा फलं तिलाक्षीरमथाम्बु चाज्यम् । यत् पञ्चगव्यं यदि वाय वायुः प्रशस्तमत्रोत्तरमुत्तरञ्च’ । उपवास-निषेधस्तु असामर्थ्यादपीति । तत्रापि हविष्यादिरनुकल्पः । अत्र सर्वत्र तुलसीं भक्षयेत् । ‘तुलसीं विना या क्रियते न पूजा स्नानं न तद् यत्तुलसीविवर्जितम् । भुक्तं न तद् यत्तुलसीविवर्जितं पीतं न तद् यत्तुलसीविवर्जितम्’ इति आरुडात् । अनुकल्पेऽपि द्वादश्यां विष्णुपासनं पारणं कर्त्त-

८८

एकादशीतत्त्वम् ।

व्यम् । एकभक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च । उपवासेन दानेन नैवाद्वादशिको भवेत्' इति वचनात् ।

अथोहव्यवस्था । अत्रैकभक्तादीनामुपवासकार्यं विधानात् । सोमधर्माणां फलचमसप्राप्तिरिव एषु अपि मन्त्रादिप्राप्त्यामन्त्रस्य ऊहेन प्रयोगः कार्यः । अतएव एकभक्तादावपि पूर्वापरदिनयोरैकभक्तादिको धर्मः कार्यः । यद्वा द्वादशीव्रतं खल्वेतद्भगवतो वासुदेवस्यार्चनं जपहोमादिकं प्रधानं कर्म उपवासादिकन्तु कर्त्तृसंस्कारकं लिङ्गात् । अङ्गभूतोपवासप्रकाशकमन्त्रो नक्तादिपक्षे निवर्तते ब्रौहिमन्त्र इव यवेऽतोऽस्यायोग एवेति जौमूतवाहन आह स्म तत्र ऊहं प्रकृत्य न प्रकृतावपूर्वत्वादिति कात्यायनसूत्रात् प्रकृतावूहायोगात् विकृतावेवोह इति । अपूर्वीत्प्रेक्षणमूह इति तल्लक्षणात् । अत एकभक्तादीनां प्रकृतावुक्तत्वान्नोह इति । यदप्युक्तमङ्गत्वान्मन्त्रबाध इति तदपि न युक्तम् । एकोद्दिष्टे पार्वणविकृतावेवावाहनाद्यङ्ग एवोह दर्शनात् । अतएव 'एकभक्तेन यो मर्त्य उपवासव्रतश्चरेत् । उपोष्य नक्तेन विभो' इत्यादि स्कन्दपुराणादिवचनादेकभक्तादिषु उपवासपदप्रयोगेण तद्धर्मातिदेशान्मन्त्रपाठ इति परिशेषखण्डे हेमाद्रिणा अप्युक्तम् । तथाच जैमिनिः । 'उक्तं क्रियाभिधानमन्यत्र तत् श्रुतौ विधेः प्रदेशः स्यादिति' । ब्रौहिमन्त्रस्य तु यवे बाधोऽनङ्गत्वात् । किन्तु प्रकृतावेव ब्रौहिभिर्यजेत यवैर्यजेतेति विकल्पेन श्रवणात् प्रकृतिविकृतिभावाभावान्नोहः । अतोऽसमवेतार्थत्वाद्बाध इति । न च हुं फडादिवत् मन्त्रस्यादृष्टार्थकतास्तु कथम् असमवेतार्थत्वाद्बाध इति वाच्यम् । यस्य सर्वथा दृष्टार्थत्वासम्भवस्तस्यैव तथा कल्पनात् तथाच जैमिनिः । 'अर्थाभिधानसामर्थ्यान्मन्त्रेषु शेषभावः स्यात् तस्मात् उत्पत्ति-

एकादशीतत्त्वम् ।

८६

संयोगोऽर्थेन नित्यसंयोगात् । अस्यार्थः । यतोऽर्थ्याभिधान-
 सामर्थ्यान्मन्त्र शेषभावोऽङ्गाभावश्च तस्मादुत्पत्तिसंयोगः । औत्-
 पत्तिके न मुख्यार्थेन संयोगः सम्बन्धः स्यात् कुतः नित्यसंयो-
 गात् तेनैव अव्यभिचारितया संयोगात् । गौणप्रत्यायनेऽपि
 यतो मुख्यप्रत्यायने तु गौणप्रत्ययमपेक्षते अतो मुख्येन अस्य
 अव्यभिचारितया संयोगः । तथा गौणे सदपि सामर्थ्यं न प्रमा-
 णान्तरं विना । 'आविर्भवति मुख्ये तु शब्दादेवाविरस्ति
 तत् । तात्पर्यञ्च स्वतो मुख्यं गौणार्थपरता पुनः । प्रमाणा-
 न्तरविज्ञेया तदभावाच्च सिध्यति' । तथाच 'यस्यादृष्टं न
 लभ्येत तस्यादृष्टप्रकल्पनम् । लभ्यतेऽर्थस्मृतिर्दृष्टा न ततो
 द्वारतस्त्वित् । अर्थस्मृतिः प्रयोगार्था प्रयोगाच्च फलोदयः'
 इति दृष्टार्थमस्यत्तौ नादृष्टमिह कल्पते इति । अतो यस्य
 कचिद्ब्रह्मदेवतादिप्रकाशकरूपदृष्टार्थतासम्भवस्तस्य मन्त्रस्य
 तदसम्भवे वैकल्पिकेऽर्थे बाध एव । अतएव विद्याकरः ।
 शास्त्रावधारणवेलायां यत्र हि प्रयोजनाभावनिश्चयस्तत्रैव
 तदुपादानलोपः शास्त्रार्थः । यथा कटले अवघातादिलोपः ।
 यत्र तु अनुष्ठानवेलायामिव पुरुषदोषेण प्रयोजनाभावो
 जायते तदा प्राक् तन्निश्चयात् । शास्त्रप्रापितः पदार्थो नियमा
 पूर्वमात्रार्थमनुष्ठेय एव अतएव प्रकृतावपि आज्ञास्यादिना
 ब्रौह्मादिस्थाने तण्डुलादिषु गृहीतेषु अवघातं समाचरन्ति
 यान्निकाः पठन्ति च । 'घाते न्युने तथा छिन्ने सान्नाय्ये
 सान्निके तथा । यज्ञमन्त्राः प्रयोक्तव्या मन्त्रा यज्ञार्थसाधकाः'
 इति । सान्निके मन्त्रसाध्यं अवघातादौ तत्काले मन्त्रपाठा-
 भावेऽपि यज्ञकाले मन्त्राः प्रयोक्तव्याः आसिंस्तु पक्षे मन्त्रार्थ-
 ज्ञानस्य नास्त्युपयोग इति इत्थं सम्प्रति प्रयोगानुष्ठानमाह ।
 एवञ्च उपवासविधौ प्रकृतावेवाशक्तविषयत्वेन अतुल्यबलानां

३४

एकादशीतत्त्वम् ।

विकल्पायोगात् एकभक्तादीनां प्रतिनिधित्वमेव । तदा तु प्रतिनिधौ यथाश्रुतमन्त्रपाठः । समवेतार्थता तु गौण्या लक्षणया वेति । तथाच प्रथमाध्याये कात्यायनसूत्रम् । ‘शब्दे अविप्रतिपत्तिरिति’ । प्रतिनिहितद्रव्ये श्रुतशब्दः प्रयोज्यः । श्रुतद्रव्यबुद्ध्या प्रतिनिध्युपादानात् शब्दान्तर-प्रयोगे द्रव्यान्तरबुद्धिप्रसङ्गात् । यथा ‘अग्न्यभावे तु विप्रस्य पाणाविव जलेऽपि वा’ मत्स्यपुराणदर्शनात् जलाद्वस्तुहोमपक्षे अग्नी करिष्ये इत्यनूह एव प्रयोग इति । अतएव यज्ञपार्श्वः । ‘तैलं प्रतिनिधिं कुर्याद् यज्ञार्थं याज्ञिको यदि । प्रकृत्यैव तदा होता ब्रूयाद् दृतवतौमिति’ अत्र द्रव्यपदमुपलक्षणम् । एवं सर्वप्रतिनिधाविव न उहो न बाधः । किन्तु अविकृत एव मन्त्रः पठनीय इति एतेन यौगिकोक्तम् । ‘एकभक्तेन यो विप्र उपवासव्रतश्चरेत्’ इति । उपोष्य नक्तेन विभो इत्यादिषु उप-वासपदप्रयोगान्वासमग्निहोत्रं जुहोतीतिवन्मात्रोऽतिदेशात् । प्राप्तस्य ऊहेन प्रयोग इति तथा समवेतार्थाय एकाहारादिपदं प्रयोज्यमिति हेमाद्रिणा उक्तमपि निरस्तम् । एवं नरं पञ्चत्व-मागतमिति न लिङ्गोहः स्त्रीपुंदाहस्य समविधाने प्रकृति-विकृतिभावाभावात् । न च वैभक्तिकार्यपुंस्त्वविशिष्टबोधात् स्त्रियां बाध इति वाच्यं प्राथमिकत्वाद्बलीयसः प्रातिपदि-कार्यस्य समवेतत्वेन स्त्रीपक्षेऽपि विनियोगात् किन्तु वैभक्ति-कलिङ्गस्य स्त्रियां प्रयोगसाधुतामात्रं पुंसि तु अर्थसाधुतापि । अतएव एकपाशिके दैक्षे पशौ आन्नातस्य अदितिः पाशं प्रमुमोक्तु इति । निःसन्दिग्धार्थपाशप्रातिपदिकलिङ्गेन विनि-योगो न तु पश्चाद्भाविना बहुवचनेन बहुपाशिकायां विकृता-वुत्कर्षः । नापि प्रकृताविव पाशपदे अवयवलक्षणा किन्तु प्रयोगसाधतयैव बहुवचनस्य इत्युक्तम् एवञ्च ‘एतदः पितरो

एकादशीतत्त्वम् ।

६१

वास इति जल्पन् पृथक् पृथक्' इति ब्रह्मपुराणे पित्रादिषु प्रत्येकं एतद्वो बहुवचनान्तमन्त्रप्रयोगात् तत्रानर्थक्यात् तद्विक्रतावेकोद्दिष्टेऽपि बहुवचनान्तप्रयोगो न तु एकवचनान्त ऊह्यः । तद्वचनादूर्जं वहन्तीति मन्त्रे पितृनित्यादिमन्त्रान् प्रकृतौ समवेतार्थान् एकोद्दिष्टे एकवचनवदूहेत पितर-मित्यादि विकृतान् कुर्यात् एकस्मिन् पितरि बहुवचनस्य अस-मवेतार्थत्वात् अतएव दैक्षे पशौ अदितिः पाशं प्रमुमोक्षिति अदितिः पाशान् प्रमुमोक्षिति पाशमन्त्रौ एकवचनान्तबहु-वचनान्तश्रुतौ अदितिः खण्डनरहितेति देवमातेति भाष्य-व्याख्यानात् अदितिरित्यवपाठः । त्रैकवचनान्तस्य प्रकृतौ समवेतार्थत्वात् बहुपाशिकायां विकृतौ द्विवचनोहः कार्यः प्रकृतौ असमवेतार्थत्वात् । विक्रतावपि तथैव युक्तत्वान्नोहः बहुवचनान्तस्यैव प्रयोग इत्युक्तः । यत्तु द्वैतनिर्णये एतद्व इति वाक्यं पृथगिति पदं वीष्माश्रयवर्णेन पार्वणमात्रविषयकम् एतेन तन्मन्त्रस्थबहुवचनान्तस्य पार्वण एव प्रयोगसाधुतामात्रं न तु एकोद्दिष्टेऽपि तत्र वीष्मासहितावाक्यप्रवृत्तेरिति तन्न तद्वाक्यप्राप्तौ कथं तन्मात्रलाभः प्रकृतिवद्विकृतिरिति न्याया-क्लाभः इति चेत्तदा द्विपाशिकायां बहुवचनान्नोह इव अत्राप्य-न्नोह एव पितृपदस्य तु प्रकृतौ समवेतार्थत्वात् प्रेतैकोद्दिष्टे तत्र प्रेतपदोह इति प्रोद्गातृणां भव्यः फलचमस इत्यादौ मन्त्रेतर-स्मिन् प्रोद्गात्रे विनियोगविभक्त्यर्थान्वयव्युत्पत्तेः मन्त्रे तु व्युत्-पत्तिमात्रेणार्थपरतया किन्तु प्रातिपदिकलिङ्गेनैव विनियोगः सम्भूयकारिता तु पाशात् इति मोचनकर्मतापरत्वेनापि अत-एवोक्तं न विभक्तेर्वचनमेकैकं प्रयोजनमिति अतएव बहुपाशि-कायां विक्रतावपि न उत्कर्षः । तथाच भट्टवार्तिकम् । प्रकृ-त्यर्थस्य पाशस्य विभक्त्यर्थस्य कर्मणः । उभयोः प्रकृतौ भावा-

८२

एकादशीतत्त्वम् ।

नोत्कर्षस्य विकल्पप्रते' इति अस्मात् त्वमपि जातोऽसि इति साग्नेर्मन्त्रस्य स्त्रियां बाधः पाशवैधर्म्यात् तथाहि अस्मादिति इदमः सर्वनामत्वेन सन्निहितार्थपरत्वात् एतद्वाक्यरूपान्तर-सन्निधानात् स्वपदीपात्तलिङ्गसंख्याविशिष्टैव व्यक्तिरिदम-पदार्थः । पुमानेक इति यावत् । ततश्च प्रातिपदिकलिङ्गा-देव पुं सि मन्त्रविनियोग इति । नरं पञ्चत्वमागतमित्यादिस्तु असर्वनामत्वान्न सन्निधेरपेक्षा किन्तु लिङ्गसंख्यानपेक्षस्यैव प्रातिपदिकार्थता । न चैवं तदेवं संशयापन्नमिति याज्ञ-वल्कीयमन्त्रस्य स्त्रीपरीक्षायां बाधः स्यात् । एनमित्यस्य सर्वनामत्वेन अस्माच्चमितिवात् सन्निहितविभक्त्युपजीतपुंस्त्व-विशिष्टस्य व्यक्तिपरत्वेन पाशवैधर्म्यादिति वाच्यम् एनमित्यस्य मानुषः शुद्धिमिच्छतीति स्त्रवाक्य एव मानुषत्वेन स्त्रिया अपि सन्निधेस्तत् परत्वात् न तु पञ्चाङ्गाविपुंस्त्वविशिष्टोऽर्थः अतो मानुषत्वेन स्त्रिया अपि सन्निधेस्तत् परप्रातिपदिकस्य न विभक्त्या सङ्कोचः पाशव्यायतीत्यात् ।

अथैकभक्तम् । स्कान्दे 'दिनार्द्धसमयेऽतीते भुज्यते निय-मेन यत् । एकभक्तमिति प्रोक्तं रात्रौ तन्न कदाचन' इत्य-नेन अभिहितम् । नियमेन 'ब्रह्मचर्यं तथाशौचं सत्यमामिष-वर्जनम्' इत्यादिसामान्यव्रतधर्मेण चतुर्थचरणे तु न्यूनं ग्रास-त्रयेण तु इति देवलः । द्वात्रिंशत् गृहस्थस्येति पञ्चपुराणोक्त-भोजनस्य ग्रासस्य ग्रासत्रयन्यूनतेति । अत्र च परदिनार्द्धा-तीतकाले तत्तिथ्यलाभेऽपि परदिन एव तत्समये एकभक्तं कुर्यात् । 'तिथौ यत्रोपवासः स्यादेकभक्तेऽपि सा तथा' इति सुमन्तुवचनेन उपवासार्हतिथिखण्डविशेषसम्बन्धिदिन एव प्रतिनिधितयैकभक्तविधानात् । स्वतन्त्रैकभक्त एव दिनार्द्ध-समयातीतकाले तत्तिथिनियम एवं नक्तादिष्वपि ।

एकादशीतत्त्वम् ।

८३

अथ नक्तव्रतम् । तथाच स्कन्दपुराणे । 'प्रदोषव्यापिनी
ग्राह्या सदा नक्तव्रते तिथिः । उदयात् तदा पूज्या हरेर्नक्त-
व्रते तिथिः' । नियमश्च सामान्यव्रतधर्मत्वेनोक्तं 'ब्रह्मचर्यं
तथाशीचं सत्यमामिषवर्जनम्' इत्यादि ग्राह्यः । नक्तलक्षणञ्च
भविष्यदेवीपुराणयोः । 'हविष्यभोजनं स्नानं सत्यमाहार-
लाघवम् । अग्निकार्यमधःशय्यां नक्तं भोजी सदाचरेत्' ।
एवं नक्तव्रतस्य गुरुत्वेन प्रागुक्तवायुपुराणवचने नक्तमिति
हविष्यान्नादिभोजनस्य कालपरं न तु नक्तव्रतपरं तथात्वे
उत्तरोत्तरगुरुव्रतोपदेशप्रस्तावे तदनन्तरं केवलं हविष्यान्नोप-
देशानुपपत्तेः ।

अथ हविष्यान्नम् । स्मृतिः । 'हैमन्तिकं मितास्त्रिन्नं
धान्यं' मुद्गा यवास्तिलाः । कलाय कङ्गुनीवारा वास्तूकं
हिलमोचिका । यष्टिकाकालशाकञ्च मूलकं केमुकेतरत् ।
लवणे सैन्धवसामुद्रे गव्ये च दधिसर्पिषी । पयोऽनुद्धतसारञ्च
पनसाम्भरौतकी । तिन्तिडी जीरकञ्चैव नागरङ्गञ्च पिप्पली ।
कदली लवली धात्री फलान्यगुडमैक्षवम् । अतैलपक्कं मुनयो
हविष्यान्नं प्रचक्षते' । अत्रास्त्रिन्नधान्यमित्यभिधानादन्यत्र
स्त्रिन्नधान्ये न दोषः । अतएव हारौतः । 'अथ सूनां व्याख्या-
स्यामो जङ्गमस्यावरादीन् प्राणिनः सूनयन्तीति सूनाः । ताश्च
पञ्च विधा भवन्तीति उपक्रम्य चतुर्थीपर्यन्तमभिधाय आदी-
पनतापनस्नेदनभर्जनपचनादिभिः पञ्चमौ तदेवं पञ्चता निरय-
योनीरहरहः प्रजाः कुर्वन्ति पञ्चभिः । पञ्चभिर्यज्ञैर्गृहस्थ-
वानप्रस्थं पावयन्तीति । एषामर्थः कल्पतरुकृता कृतः ।
सूदयन्ति प्राणैर्वियोजयन्ति । आदीपनं काष्ठादीनां तापनं
तोयादेः स्नेदनं धान्यादेर्भर्जनं यवादेः पचनं तण्डुलादेः । पञ्च-
सूनाः पञ्चयज्ञैः सूनादोषात्पावयन्तीत्यर्थः । एतेन धान्य-

८४

एकादशीतत्त्वम् ।

स्वेदनं गृहस्थवानप्रस्थाभ्यां कर्त्तव्यमिति प्रतीयते किन्तु तत्र धान्यस्याङ्गरजननयोग्यतानाशदेव पापं भवति तच्छान्तिरपि पञ्चयज्ञैर्ज्ञेया अतएव । मनुनापि पञ्चसूनाविवरणे चुल्लो-
 त्युक्तम् । धान्यादौ स्वेदनविधानात् कृता कृत एव पाकशुद्धि-
 विवेचनम् । द्विःस्विन्नतादिदोषश्चनाकृते । तद्विद्वत् कात्या-
 यनेन । कृतमोदनशक्तादितण्डुलादिकृता कृतं ब्रीह्यादिचा-
 कृतं प्रोक्तमिति हव्यं विधानतश्च । अतो लाजमोदकादि
 यथायथा पक्वमपि आढादौ दीयते । अगस्त्यसंहितायाम् ।
 'दधिक्षीरं घृतं गव्यमैक्षवं गुडवर्जितम् । नारिकेलफलञ्चैव
 कदलीं लवलीं तथा । आम्बमामलकञ्चैव पनसञ्च हरी-
 तकीम् । व्रतान्तरप्रशस्तञ्च हविष्यं मन्वते बुधाः' हैमन्तिकं
 मितास्विन्नमित्यादिवचनानुसारादेव भोजनादौ व्यवहारः ।
 'हविष्येषु यवामुख्यास्तदनुब्रीहयः स्मृताः । माषको द्रवगौरा-
 दौन् सर्वाभावेऽपि वर्जयेत्' इति कात्यायनवचनन्तु होम-
 करणात्तत्रैव नारायणोपाध्यायेन अप्येतद्वचनम् अथ हविष्यान्न-
 स्यान्नौ जुहुयादिति गोभिलोक्तं हव्यं स्पष्टयतीति व्याख्यातम् ।
 एकेन 'कार्तिकं मकलं मासं प्रातःस्नायी जितेन्द्रियः । हविष्य-
 भुग् जपन् स्नातः सर्वपापैः प्रमुच्यते' इति विष्णुवचनं हविष्येषु
 यवामुख्या इत्यादिवचनविरोधितमिति कल्पतरुक्तं निरस्तम् ।
 एवञ्च 'ब्रीहयो सुष्टमात्राः स्युर्माषमुक्ता यवा अपि' इति
 शारदातिलकोक्तं यत्तद्विशिष्य जपहोमे माषाविहितास्तत्परि-
 माणपरमिति बोध्यम् । एवञ्च स्नानस्य वैदिककर्मकर्माङ्गत्वेन
 सामान्यव्रतधर्मत्वे सिद्धे नक्तव्रते पुनरुपादानमादरातिशया-
 र्थम् । स्मृतिः । 'नक्तं निशायां कुर्वीत गृहस्थो विधिसंयुतः ।
 यतिश्च विधवा चैव कुर्यात्तत् सदिवाकरम् । सदिवाकरन्तु
 तत्रोक्तमन्तिमे घटिकाद्वये । निशानक्तन्तु विज्ञेयं यामार्द्धं

एकादशीतत्त्वम् ।

८५

प्रथमे सदा' सौरनक्तकालस्तु तिथितत्त्वेऽनुसन्धेयः । मार्कण्डेयः । 'एकभक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च । उपवासेन दानेन नैवाद्वादशिको भवेत्' । अत्र विष्णुपूजापारणयोरङ्गान्तरापेक्षया प्राधान्यमवगम्यते । आनुकल्पिकेऽप्यावश्यकत्वात् ।

अथ पुक्षादिप्रतिनिधिः । स्कन्दपुराणम् । 'पुक्षश्च विनयोपेतं भगिनीं भ्रातरन्तथा । एषामभावे एवान्यं ब्राह्मणं विनियोजयेत्' । गरुडपुराणं 'भार्याभर्तृव्रतं कुर्याद्भार्यायाश्च पतिस्तथा । असामर्थ्यं द्वयोस्ताभ्यां व्रतभङ्गो न जायते' । वराहपुराणे 'पितृमातृपतिभ्रातृस्वसृगुर्वादिभूभुजाम् । अष्टष्टार्थमुपोषित्वा स्वयञ्च फलभाग्भवेत्' । अत्रैव विप्रये कात्यायनः । दक्षिणा नात्र कर्त्तव्या शुश्रूषा विहिता च सा' । ननु प्रतिनिधौ ममेह शर्म इत्यादि मन्त्रस्थफलं कुत्रान्वेतु इति चेन्नयान एव । तथाच शरीरकभाष्ये श्रुतिः । 'यां वै काञ्चनयज्ञ आशिषमाशासते यजमानायैव तामाशासते इति होवाच' इति । ब्राह्मणं सर्वस्वे यजमानायेत्यत्र यजमानस्येतिपाठः । सरलायां सूत्रं यां वै काञ्चन-ऋत्विगाशिषमाशास्ते सा यजमानस्यैवेति । अत्र ऋत्विग्यजमानपदे प्रतिनिधिप्रधानपरे आकाङ्क्षितत्वात् । अतएव प्रतिनिधिपुक्षादिना आयान्तु नः पितर इत्यादिरनूह एव पठ्यते वाक्यस्य काव्यनिकत्वान्न तथेति । कालमाधवीये । 'काम्ये प्रतिनिधिर्नास्ति नित्यनैमित्तिके हि सः । काम्येषूपक्रमादूर्ध्वमन्ये प्रतिनिधिं विदुः' । यथानित्यं नैमित्तिकञ्च प्रतिनिधिनाप्युपक्रम्य कारयेत् काम्ये तु स्वसामर्थ्यं परीक्ष्य स्वयमेवोपक्रम्य कुर्यात् । असामर्थ्यं उपक्रमादूर्ध्वं प्रतिनिधिनापि कारयेत् । एतच्च श्रौतकाम्यपरं स्मार्त्तकाम्यन्तु अन्य द्वारा प्युपक्रम्य कार्यम् । तथाच पराशरभाष्ये शातातपः 'श्रौतं कर्म स्वयं

८६

एकादशीतत्त्वम् ।

कुर्यादन्योऽपि स्मार्त्तमाचरेत् । अशक्तौ श्रौतमप्यन्यः कुर्या-
 दाचार मन्ततः । अन्तत उपक्रमात् परतः एतच्च काम्येऽपि
 प्रतिनिधिविधायकं नैमित्तिकमात्रपरत्वे श्रौतस्मार्त्तभेदोपा-
 दानं व्यर्थं स्यात् तयोरविशेषादेव प्रतिनिधिभावात् । अत-
 एव भारतपाठादौ तथासमाचारः । स्मृत्यर्थसारे 'नाभावस्य
 प्रतिनिधिरभावान्तरमिष्यते' । सजातीयत्वेऽप्यभावान्तरम-
 भावस्य प्रतिनिधिर्नश्यते । भावस्तु कदाचिद् यथोपवासादौ
 ब्राह्मणभोजनादौति 'नापि प्रतिनिधातव्यं निषिद्धं वस्तु
 कुत्रचित् । श्रोत्रियाणामभोज्यं यद्द्रव्यं हि तदशेषतः ।
 ग्राह्यं प्रतिनिधित्वेन होमकार्यं न कुत्रचित् । द्रव्यं वैक-
 ल्पिकं किञ्चिद् यत्र सङ्कल्पितं भवेत् । तदभावे सट्ग्राह्यं
 न तु वैकल्पिकान्तरम् । उपात्ते तु प्रतिनिधौ मुख्यार्थो लभ्यते
 यदि । तत्र मुख्यमनादृत्य गौणेनैव समापयेत् । संस्कारा-
 णामयोग्योऽपि मुख्य एव हि लभ्यते । न तु संस्कारयोग्यो-
 ऽन्यो गृह्यते प्रतिरूपकः । मुख्ये कार्यासमर्थं तु लब्धेऽप्येतस्य
 नादरः । प्रतिरूपकमादाय शक्तमेवोपयुज्यते । कार्यं रूपै-
 स्तथा पत्रैः क्षीरैः पुष्पैस्तथा फलैः । गन्धै रसैः सट्ग्राह्यं
 पूर्वालाभे परं परम् । ग्राम्याणान्तु भवेद्ग्राम्यमारणानाम-
 रण्यजम् । यवालाभे तु गोधूमास्तथा रेणु यवादयः । हविष्ये
 गोघृतं ग्राह्यं तदभावेऽपि माहिषम् । आजं वा तदभावे तु
 साक्षात्तैलं प्रयुज्यते । तैलाभावे ग्रहीतव्यं तैलजं तिलसम्भ-
 वम् । तैलजं तैलभृष्टं तिलसम्भवं तिलपिष्टादि । 'तद-
 भावे तु सा स्नेहं कौसुभं सर्षपोद्भवम् । वृक्षस्नेहस्तथा ग्राह्यः
 पूर्वाभावे परः परः । तदभावे गवादीनां क्रमात् क्षीरं विधी-
 यते । तदभावे दधि ग्राह्यमलाभे तिल इष्यते । यत्र मुख्यं
 दधि क्षीरं तत्रापि तदलाभतः । अजादेः क्षीरदध्यादि

एकादशीतत्त्वम् ।

६७

तदभावेऽपि गोष्ठतम् । मुख्यासन्नोऽथवा ग्राह्यं कार्यकारण-
 सन्ततौ' अतएव घृताभावे पूर्वं दधि ततः पयः । तथा 'सर्वत्र
 गौणकालेषु कर्म चोदितमाचरेत् । प्रायश्चित्तं व्याहृतिभिर्हुत्वा
 कर्म समाचरेत्' । मत्स्यसूक्ते । 'घृतं न लभ्यते यत्र शुष्क-
 क्षीरेण होमयेत् । क्षीरस्य च दधि ज्ञेयं मधुनश्च गुडो भवेत्' ।
 आयुर्वेदेऽपि । 'मधु यत्र न लभ्येत तत्र जीर्णो गुडो भवेत्' ।
 पैठौनसिः । 'काण्डमूलपर्णपुष्पफलप्ररोहरसगन्धादीनां साट्ट-
 श्येन प्रतिनिधिं कुर्यात् । सर्वाभावे यवप्रतिनिधिर्भवतीति'
 काण्डं नालं प्ररोहोऽङ्कुरः । सर्वालाभे यव इति कल्पतरुः
 अवयव इति नारायणोपाध्यायाः । शान्तिदौपिकायां नार-
 दीयपञ्चरात्रम् । 'अभावे चैव धातूनां हरितालं विधीयते ।
 बीजानामप्यभावे तु यव एकः प्रशस्यते । ओषधीनामभावे
 तु सहदेवा प्रशस्यते । रत्नानामप्यभावे तु मुक्ताफलमनुत्तमम् ।
 लौहानामप्यभावे तु हेमपात्रं प्रकल्पयेत् । लौहानां तैजस-
 पात्राणाम् । न्यायप्राप्तप्रतिनिधिमधिकृत्य जैमिनिः । 'न देव-
 ताग्निशब्दक्रियाणामिति । अस्यार्थः देवताया अग्नेश्च आह-
 वनीयादेः शब्दस्य मन्त्रस्य क्रियाया प्रयाजाद्यदृष्टार्थकर्मणश्च
 अदृष्टमात्रार्थकत्वेनारात् उपकारकत्वान्न प्रतिनिधिः व्रीह्यादी-
 नान्तु सन्निपत्योपकारकाणां पुरोडाशसाधनं दृष्टमेव प्रयोज-
 नमिति तत्र प्रतिनिधिरुचित इत्युक्तम् । परिशिष्टं 'मुख्य-
 काले तु मुख्यच्चेत् साधनं नैव लभ्यते । तत्कालद्रव्ययोः कस्य
 गौणता मुख्यतापि वा' । तत्र भरद्वाजः । 'मुख्यकालमुपा-
 श्रित्य गौणमप्यस्तु साधनम् । न मुख्यद्रव्यलाभेन गौणकाल-
 प्रतीक्षणम् । गौणेषु तेषु कालेषु कर्म चोदितमारभेत् । प्राय-
 श्चित्तप्रकरणप्रोक्तां निष्कृतिमाचरेत्' । उत्तरमतं सिद्धान्तमिति
 केचित् । तदभिप्रायकं मौमांसाष्टाध्यायसूत्रम् । 'पौर्वा-

८८

एकादशीतत्त्वम् ।

पर्य्येऽपि पूर्वदौर्बल्यं प्रकृतिवदिति' । ज्योतिष्टोमेऽन्योन्यं सखध्य-
यज्ञशालातो वह्निर्निर्गच्छतामृत्विजां विच्छेदनिमित्तं' प्राय-
श्चित्तं श्रूयते यद्युद्गाता विच्छिन्द्यादक्षिणेन यजेत यदि प्रति-
होता सर्वस्वदक्षिणेनेति । तत्र उद्गातृप्रतिहोत्रोःक्रमेण विच्छेदे
विरुद्धप्रायश्चित्तयोः समुच्चयासम्भवात् । किं पूर्वं कार्यम् उत
वा परमिति संशये हि अनुपजातविरोधात् पूर्वमिति पूर्वपक्षे
गङ्गान्तः । पौर्वापर्य्यं सति निमित्तयोः पूर्वस्यैव निमित्तस्य
दौर्बल्यम् । उत्तरस्य पूर्वनिरपेक्षस्य तद्बाधकतया उदितत्वात्
पूर्वोदयकाले उत्तरस्याप्राप्तत्वेन पूर्वेण बाध्यत्वायोगात् । उक्तं
हि 'पूर्वं परमजातत्वादबाधित्वैव जायते । परस्यानन्यथोत्-
पादादुक्तबाधेन सम्भवः' इति प्रकृतिवदिति तथा हि प्रकृतौ
क्षमोपकाराः कुशाः प्रथममतिदेशेन विज्ञतावुपकाराका-
ङ्क्षिण्यां प्राप्ताः कल्योपकारतया चरमभाविभिरपि शरैर्निर-
पेक्षैर्बाध्यन्ते तद्वदिति अतएव शारीरकभाष्यटीकायां वाच-
स्पतिमिश्राः । ज्येष्ठत्वञ्च अनापेक्षितस्य बाध्यत्वे हेतुर्न बाधकत्वे
रजतज्ञानस्य ज्यायसः शुक्तिज्ञानेन कनीयसा बाधदर्शनात्
तदनपबाधने तदपवधात्मनस्तस्योत्पत्तेरनुत्पत्तेः तथाच 'पूर्वात्-
पर बलीयस्त्व' तच्च नाम प्रतीयताम् । अन्योन्यनिरपेक्षाणां
यत्र जन्मधियां भवेत्' इति । यदि च पूर्ववचनस्य पूर्वपक्षत्वे
वैयर्थ्यं स्यात् अत उभयवचनार्थौ विवक्षणीयौ तदा विषयभे-
देन व्यवस्थापनीयौ । तथाहि यत्राष्टकाश्चाद्यादौ कालान्त-
राभावस्तत्र तत्कालानुरोधाद्विहितद्रव्यालाभेऽपि प्रतिनिहि-
तद्रव्यमादाय मुख्यकाल एव तत्करणं न तु वचनानुपात्तस्वे-
च्छाकल्पगौणकालप्रतीक्षणम् । तथाच कुन्दोगपरिशिष्टम् ।
'स्थालीपाकं पशुस्थाने कुर्याद् यद्यानुर्कल्पिकम् । अपयेत्तं
स्रवत्सायास्तृणखागोः प्रग्रस्य तु' इत्यादि । यत्रादिक-

एकादशीतत्त्वम् ।

८६

आद्यादौ कृष्णैकादश्यादिगौणकालोऽस्ति तत्र मृताहादाव-
 न्नाद्यभावे तदनुरोधेन उपवासादिरूपं प्रायश्चित्तं कृत्वा गौण-
 काले तत् कर्त्तव्यम् । तथाच लघुहारीतः । 'एकोद्दिष्टन्तु
 कर्त्तव्यं पाकेनैव सदा स्वयम् । अभावे पाकपात्राणां तदहः
 समुपोषणम्' । तथाच कृन्दोगपरिशिष्टम् । 'संस्कारा अति-
 पत्येरन् स्वकालाश्चेत् कथञ्चन । हृत्वैतदेव कुर्वीत ये तूपनय-
 नादधः' । यत्र तु विनिगमकवचनाभावस्तत्र यद्यपि क्रियायाः
 प्राधान्यात् कालो द्रव्यं इयमपि गुणभूतमेव तथाप्युभयोपसंहा-
 रासामर्थं द्रव्यादरः कालस्य सूर्यादिक्रियाघटितस्य कर्त्तव्येन-
 त्वाभावाद्दर्जनीयत्वमिद्धिः असन्निधिकत्वान्निमित्तत्वमात्रेण
 वहिरङ्गत्वात् । कालस्य निमित्तत्वं व्यक्तं भविष्ये 'अतः कालं
 प्रवक्ष्यामि निमित्तं कर्मणामिह' । द्रव्यस्य तु यागस्वरूपनि-
 र्वाहकत्वेन अभ्यर्हितत्वात् कर्मणः कारकत्वेनान्तरङ्गत्वाच्च ।
 पुत्रादिप्रतिनिध्यभावे तु ब्रह्मवैवर्त्तः । 'उपवासासमर्थश्चेदेकं
 विप्रन्तु भोजयेत् । तावन्नानि वा दद्याद् यद्भक्ताद्विगुणं
 भवेत् । सहस्रसन्मितां देवीं जपेद्वा प्राणसंयमान् । कुर्याद्वा-
 दशसंख्याकान् यथाशक्ति व्रते नरः' । देवीं गायत्रीम् । अत्र
 चान्द्रायणादौ परिसंख्या । काश्यपपञ्चरात्रे 'मच्छयने मनु-
 र्याने मत्पार्श्वपरिवर्त्तने । फलमूलजलाहारी हृदि शल्यं
 समर्पयेत् । अत्र यो दीक्षितः कश्चिद्वैष्णवो भक्तितत्परः ।
 निर्निमित्तमदीक्षायां न च क्षुद्राधिपौडितः । अन्नं वा यदि
 भुञ्जीत मूलं फलमथापि वा । अपराधमहं तस्य न क्षमामि
 तु काश्यप । क्षिपामि नरके घोरे हृच्छल्यं मम जायते' ।
 निमित्तं प्रारब्धचान्द्रायणादिव्रतविरोध इत्यादि दीक्षायां
 चरुशेष प्राशनस्य विहितत्वाददीक्षायामित्युक्तम् । क्षुद्राधिना
 पौडितः सर्वमेतत् प्रदर्शनमात्रं शक्नोति निर्विरोध इत्यर्थः ।

१००

एकादशीतत्त्वम् ।

अन्नादिकमप्युपलक्षणमिति जीमूतवाहनः । अत्र निमित्तं प्रारब्धचान्द्रायणादीति यदुक्तं तन्न चान्द्रायणादौ भोजनस्य आवश्यकत्वाभावात् किन्तु निमित्तं रविवाराद्युपवासपारणं जलपानरूपं दीक्षायामपि चरुप्राशनं घ्राणरूपम् अन्यथा 'पुरोडाशोऽपि सोमो वा संप्राप्ते हरिवासरे । अभक्ष्येण समः प्रोक्तः किं पुनश्चाशनक्रिया' इति नारदीयं विरुध्येत तद्घ्राणस्य भोजनरूपतामाह कालादर्शं श्रुतिः 'पित्रमाघ्रेयं तन्नैवं प्राशितं भवति' इति पित्रमुपलक्षणम् । आकाङ्क्षाया अविशिष्टत्वात् तेन एकादश्यां तदुभयोर्जलपारणं चरुशेषघ्राणञ्च उपवासः कार्यः ।

अथ पारणनियमः । यद्यपि अत्र चान्द्रायणादिवत् परिसंख्यासम्भवस्तथापि पारतौरिकर्मसमाप्तावित्यस्माद्वातांरुत्पन्नः पारणशब्दः । यद्यपि समाप्तिमात्रमभिधातुं समर्थस्तथापि उपवाससमापकभोजन एव लोकशास्त्रयोः प्रयोगात् पङ्कजादिपदवत् प्रयोगाधीनयौगिकस्तस्मादुपवासव्रतस्य चरमाङ्गम् । भोजनमभिधत्ते पारणशब्दः । तथाच देवलः । 'उपवासेषु सर्वेषु पूर्वाह्णे पारणं भवेत् । अन्यथा तु फलस्याहं धर्ममेवापसर्पति' । धर्मो यमः । किञ्च यदि पारणमङ्गं न स्यात्तदा प्रतिनिधिविधानं नोपपद्येत तदाह स एव । 'सङ्कटे विषमे प्राप्ते द्वादश्यां पारयेत् कथम् । अङ्गिस्तु पारणं कुर्यात् पुनर्नक्तं न दोषकृत्' । पारणन्तु भवेत् कथमिति वर्षकृत्ये पाठः । नक्तं त्रयोदशीनक्तं भोजनव्रतमिति । अभक्षणस्य अशितानशितत्वेन श्रुतावभिधानात् तदुभयव्रतसिद्धिः यथा आपो वै सर्वमश्वसामशनेन अशितोऽनशितश्च भवतीति । एवञ्च 'जनस्यापि नरश्रेष्ठ भोजनाङ्गे षजादृते । नित्यक्रिया निवर्त्तत सह नैमित्तिकैः सदा' इति कालिकापुराणीयरामप्राप्तपरम् । अतः

एकादशीतत्त्वम् ।

६०२

एव आदिपुराणे । 'पारणान्तं व्रतं ज्ञेयं व्रतान्ते द्विजभोजनम् । असमाप्ते व्रते पूर्वं नैव कुर्याद् व्रतान्तरम्' । इत्यञ्च उपवास-व्रते पारणनियमात् जलेन पारणं विधाय तद्दिने उपवासादिः कार्यः ।

अथ भैमी । विष्णुधर्मोत्तरे । 'सृगशीर्षे शशधरे माघे मासि प्रजायते । एकादश्यां सिते पक्षे सोपवासो जितेन्द्रियः । द्वादश्यां षट्तिलाचारं कृत्वा पापात् प्रमुच्यते । तिलस्त्रायी तिलोद्वर्त्ती तिलहोमी तिलोदकी । तिलस्य दाता भोक्ता च षट्तिली नावसीदति' । मत्स्यपुराणे । 'यद्यष्टम्यां चतुर्दश्यां द्वादश्यामथ भारत । अन्येष्वपि दिनर्क्षेषु न शक्तस्त्वमुपोषितुम् । ततः पुण्यामिमां भीमतिथिं पापप्रणाशिनीम् । उपोष्य विधिनानेन गच्छेद्विष्णोः परं पदम्' । भीमतिथीं भैमीत्वेन ख्यातामेकादशीम् । अथ पार्वतीमहोत्तरैकादश्यामुपवासः । आश्विन-शुक्लपक्षमधिकृत्य । कल्पतरौ ब्रह्मपुराणम् । 'उपवासश्च कर्त्तव्य एकादश्यां प्रजागरः । द्वादश्यां वासुदेवस्य पूजितव्यश्च सर्वदा' ।

अथ शयनादिकालः । भविष्यनारदीययोः । 'मैत्राक्षपादे स्वपितीह विष्णोर्वैष्णव्यमध्ये परिवर्त्तते च । घौष्णावसाने च सुरारिहन्ता प्रबुध्यते मासचतुष्टयेन' । मैत्रमनुराधा वैष्णव्यं श्रवणा पोष्णं रेवती । भविष्ये । 'निशि स्वापो दिवोत्थान सन्ध्यायां परिवर्त्तनम् । अन्यत्र पादयोगे तु द्वादश्यामिव कारयेत्' । इत्यञ्च नक्षत्रयोगप्राप्तौ फलातिशयः । एतद्विधानं वामनपुराणे । 'एकादश्यां जगत्स्वामिशयनं परिकल्पयेत् । शेषाहिभोगपर्यङ्कं कृत्वा संपूज्य केशवम् । अनुज्ञां ब्राह्मणेभ्यश्च द्वादश्यां प्रयतः शुचिः । लब्ध्वा पीताम्बरधरं देवं निद्रां समानयेत्' । अनुज्ञां लब्ध्वा इत्यन्वयः । एकादशीसमये

१०२

एकादशीतत्त्वम् ।

दिवाशयनीयपरिकल्पनम् । रात्रौ द्वादशीक्षणे निद्रेति विष्णु-
धर्मोत्तरे । 'स्वास्तीर्णशयनं कृत्वा प्रीणयेद्भोगशायिनम् ।
आषाढशुक्लद्वादश्यां विष्णुलोके महीयते । स्वास्तीर्णशयनं
शोभनास्तरणयुक्तं खट्वादि । वराहपुराणे श्रीभगवानुवाच ।
'अन्यत्तु संप्रवक्ष्यामि कर्म संसारमोचनम् । कदम्बकुटजश्चैव
धवकोऽर्जुनकस्तथा । एभिरभ्यर्चनं कुर्याद्विधिदृष्टेन कर्मणा ।
ततः संस्थापनं कृत्वा मम मन्त्रविधिः स्मृतः । नमो नाराय-
णायोक्ता इमं मन्त्रमुदीरयेत् । मेघान्यपि मेघस्यामं ह्युपागतं
सिच्यमानं महीमिमां निद्रां भगवान् गृह्णातु लोकनाथ वर्षा-
स्त्रिमं पश्यतु मेघद्वन्द्वम् । ज्ञात्वैव पश्यैव च लोकनाथ मासा-
श्चत्वारि वैकुण्ठस्य तु पश्य नाथ आषाढशुक्लद्वादश्यां सर्वशा-
न्तिकरं शिवम् । यत्र तेन विधानेन भूमि मे कर्म कारयेत् ।
सपुमान्न प्रणयेत्तु संसारेषु युगे युगे' । शयने कुटजविधानात्
विष्णुधर्मोत्तरीयनिषेधोऽन्यत्र । धवकः कपित्थः संस्थापनम्
समापनम् । भूमि इति पृथिव्याः सम्बोधनम् । 'एवमुक्तेन
मन्त्रेण कृष्णं सुष्वापयेत्ततः । सुप्ते त्वयि जगन्नाथ ! जगत्सुप्तं
भवेदिदम् । विबुद्धे त्वयि बुद्धे त जगत् सर्वं चराचरम्' इति
मन्त्रेण पूजयेत् । 'प्राप्ते भाद्रपदे मासि एकादश्यां सितेऽहनि ।
कटदानं भवेद्विष्णोर्महापूजा प्रवर्त्तते' । कटदानं पार्श्वपरि-
वर्त्तः । कामरूपीयनिबन्धे । 'एवं संपूज्य विधिवद्द्वादश
द्वादशीदिने । मन्त्रेणानेन देशेन पार्श्वेन परिवर्त्तयेत् ।
वासुदेव ! जगन्नाथ ! प्राप्तेयं द्वादशी तव । पार्श्वेन परि-
वर्त्तस्व सुखं स्वपिहि माधव ! । त्वयि सुप्ते जगन्नाथे
जगत् सुप्तं भवेदिदम् । विबुद्धे त्वयि बुद्धे त जगदेत-
च्चराचरम्' । ब्रह्मपुराणे । 'एकदश्यान्तु शुक्लायां कार्तिके
मासि केशवम् । प्रसुप्तं बोधयेद्रात्रौ अद्वाभक्तिसमन्वितः' ।

एकादशीतत्त्वम् ।

१०३

रात्री प्रसुप्तमित्यन्वयः बोधनन्तु द्विवैव । वाराहै । 'कौमु-
दस्य तु मासस्य या सिता द्वादशी भवेत् । अर्चयेद् यस्तु मां
तत्र तस्य पुण्यफलं शृणु । यावन्नोका हि वर्त्तन्ते यावत्
त्वच्चैव माधवि ! । मङ्गलौ जायते तावदन्यभक्तौ न जायते' ।
कौमुदस्य कार्तिकस्य । माधवीति पृथिव्याः सम्बोधनम् ।
'कृत्वा वै मम कर्माणि द्वादश्यां मत्परो नरः । ममैव बोधना-
र्याय इमं मन्त्रमुदीरयेत् । महेन्द्ररुद्रैरभिनयमानो भवा-
नृषिर्वन्दितवन्दनीयः । प्राप्ता तवेयं किल कौमुदास्या जागृष्व
जागृष्व च लोकनाथ ! । मेघागता निर्मलपूर्णचन्द्रः शारद-
पुष्पाणि च लोकनाथ ! । अहं ददानीति च पुण्यहेतोर्जागृष्व
जागृष्व च लोकनाथ ! । एवं कर्माणि कुर्वीरन् द्वादश्यां ये
यशस्विनि । मम भक्ता नरश्रेष्ठास्ते यान्ति परमां गतिम्' ।
अत्र मन्त्रद्वयपाठान्तरम् 'उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द ! त्यज निद्रां
जगत्पते ! । त्वया चोत्थीयमानेन उत्थितं भुवनत्रयम्' इति
सम्प्रदायागतस्तृतीयश्लोके इति वाचस्पतिमिश्राः । शयनो-
त्थानमन्त्रास्तु कल्पतरुप्रभृतिग्रन्थसंवादाङ्गिखिताः । तदेवं
द्वादश्याम एकादश्यां वा रेवत्यन्तपादयोगवशाद्विवोत्थानं
नक्षत्रयोगाभावे तु द्वादश्यामेव कारयेदिति गुरुचरणाः ।
जीमूतवाहनस्तु भविष्ये । 'आभाकासितपक्षेषु मैत्र श्रवण-
रेवती । आदिमध्यावसानेषु प्रस्त्रापावर्त्तबोधनम् । आभा-
कासितपक्षेषु आषाढभाद्रकार्तिकशुक्लपक्षेषु एषाञ्च द्वादश्यां
प्राप्नो मुख्यः कल्पः । भविष्यपुराणम् । 'निशि स्वापो दिवो-
त्थानं सन्ध्यायां परिवर्त्तनम् । अन्यत्र पादयोगे तु द्वादश्यामेव
कारयेत्' । विष्णुधर्मोत्तरे । 'विष्णुर्दिवा न स्वपिति न च रात्री
प्रवृध्यते । द्वादश्यामृक्षसंयोगे पादयोगो न कारणम् । अप्राप्ते
द्वादशीमृक्षे उत्थानशयने हरः । पादयोगे न कर्त्तव्ये नाहो-

१०४

एकादशीतत्त्वम् ।

रात्रं विचिन्तयेत्' । वचनान्तरम् । 'रेवत्यन्तो यदा रात्रौ द्वादश्या च समन्वितः । तदा विबुध्यते विष्णुर्दिनान्ते प्राप्य रेवतीम्' । दिनान्ते त्रिधा विभक्तदिनतृतीयभागे दिवोत्थानमित्यनुरोधात् । अतएव 'रात्रौ विबोधो विनिहन्ति पौरान् । स्वापो दिवा राष्ट्रकुलं नृभर्तुः । सन्ध्यादये स्वल्पफला धरित्रौ भवेन्नराणामपि रोगदुःखम्' इति श्रुतेः । वराहपुराणे । 'द्वादश्यां सन्धिसमये नक्षत्राणामसम्भवे । आभाकासितपक्षेषु शयनावर्तनादिकम् । तदेवं शयनादौ कालचतुष्टयं द्वादश्यां निशादौ नक्षत्रयोगः । तदभावेऽपि निशाद्यनादरेण तिथ्यन्तरे षादयोगः । तस्याप्यभावेऽपि सन्ध्यायां नक्षत्रमात्रयोगः तस्याप्यभावे द्वादश्यामेव सन्ध्यायामिति । विष्णुधर्मोत्तरे । 'किं तस्मैत्राद्यपादेन दशस्यंशेन यो दिवा । पौष्णशेषेण किन्तेन प्रतिपद्यथो निशि' इति दशमीप्रतिपदोर्निषेधादेकादश्यादि-पौर्णमास्यन्तानां तिथीनामभ्यनुज्ञानम् । पद्मपुराणे सर्वदेव-शयनावर्तनादिकमुक्तं यथा । 'प्रतिपद्नदस्योक्ता पवित्रा-रोहणे तिथिः । श्रिया देव्या द्वितीया तु तिथीनामुत्तमा स्मृता । तृतीया तु भवान्याश्च चतुर्थी तत् सुतस्य च । पञ्चमी सोमराजस्य षष्ठी प्रोक्ता गुह्यस्य च । सप्तमी भास्करस्योक्ता दुर्गायाश्चाष्टमी स्मृता । मातृणां नवमी प्रोक्ता दशमी वासु-केस्तथा । एकादशी ऋषीणान्तु द्वादशी चक्रपाणिनः' । चक्र-पाणिन इति पणव्यवहार इत्यस्मात् । 'त्रयोदशी त्वनङ्गस्य शिवस्योक्ता चतुर्दशी । मम चैव मुनिश्रेष्ठ ! पौर्णमासी तिथिः स्मृता । यस्य यस्य तु देवस्य यन्नक्षत्रं तिथिश्च या । तस्य देवस्य यस्मिंश्च शयनावर्तनादिकम्' । अत्र हरिशयनाद्याषाढादिविधानात्तत्साहचर्यादन्येषामपि तथा । ज्योतिषेऽपि । 'व्रजति यदा मिथुनं विहाय कर्कं त्यक्त्वा राजविवर्जितां तिथिं सूर्यः । भवति

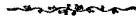
एकादशीतत्त्वम् ।

१०५

तदा नियतं द्विषाढः सुरशयनविधिर्द्वितीये मासि' । राज्ञा चन्द्रेण विवर्जिताम् अमावास्याम् । पूर्वं कृष्णपक्षे मिथुने संक्रान्ते इति शेषः । हरिनाथोपाध्यायास्तु यमः । 'क्षीराब्धौ शेषपथ्यङ्गे आषाढ्यां संविशेद्हरिः । निद्रां त्यजति कार्त्तिक्यां तयोस्तं पूजयेत् सदा । ब्रह्महत्यासमं पापं क्षिप्रमेव व्यपोहति । हिंसात्मकैश्च किं तस्य यज्ञैः कार्यं महात्मनः । प्रस्वापे च प्रबोधे च पूजितो येन केशवः' । आषाढशुक्लैकादशीमारभ्य पौर्णमासौ पर्यन्तं विष्णोर्निद्राग्रहणरूपशयनसमयः । अतएव एकादश्यां शयनमभिधाय तदादिदिनपञ्चके कर्म कथनं ब्रह्मपुराणे । वराहपुराणीये तु । एकादशीकालीनमन्त्रे निद्राग्रहणाभिधानम् । यमस्मृतौ पौर्णमास्यां शयनाभिधानम् आषाढीपदस्यानुपाधिस्तत्रैव प्रवृत्तेः । एवञ्च ब्रह्मपुराणे । यद्यपि एकादश्यां प्रबोधनमुक्तं तथापि तदादिदिनपञ्चकमेव प्रबोधसमयः । तेन वराहपुराणे द्वादश्यां प्रबोधाभिधानम् । यमस्मृतौ कार्त्तिक्यां प्रबोधाभिधानं सर्वसमञ्जसमिति । एवमेव श्रीदत्तोपाध्यायाः । कल्पतरुस्तु एकादश्यामेव शयनं प्रबोधश्च । यमस्मृतावाषाढीकार्त्तिकीपदमेकादशीपरम् आषाढस्येयं कार्त्तिकस्येयमिति व्युत्पत्त्या न तत्प्रत्ययानुपपत्तिः । अपवादविषयके कचिदुत्सर्गप्रवृत्तिरित्याहुः श्रीभगवद्वाक्यम् । 'मच्छयने मदुत्थाने मत्पार्श्वपरिवर्त्तने । फलमूलजलाहारी हृदि शल्यं ममार्पयेत्' । फलाहारपदमशनगर्भं तेन सर्वथा अनशनपरत्वम् । अत्र मलमासादिकृतविशेषो मलिन्मुचतत्त्वेऽनुसन्धेयः । विरुद्धं गुरुवाक्यस्य यदत्र भाषितं मया । तत्क्षान्तव्यं बुधैरेव स्मृतितत्त्वबुभुत्सया ।

इति वन्द्यघटीयहरिहरभट्टाचार्यात्मज-श्रीरघुनन्दनभट्टा-
चार्यविरचिते तितत्त्वे स्मृ एकादशीतत्त्वं समाप्तम् ।

उद्वाहतत्त्वम् ।



प्रणम्य कमलाकान्तं वागौशं जगतां प्रभुम् । उद्वाहकर्मण-
स्तत्त्वं वक्ति श्रीरघुनन्दनः । अथ उद्वाहनिर्णयः । मनुशाता-
तपौ । ‘असपिण्डा च या मातुरमगोत्रा च या पितुः । सा
प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने’ । दारकर्मणि भार्या
त्वमम्यादके कर्मणि । तच्च कर्म ग्रहणरूपम् । ‘सदृशानाह-
रेहारान्’ इति यमवचनात् । ‘अतःपरं समावृत्तः कुर्याद्धार-
परिग्रहम्’ इति संवर्त्तवचनात् भार्यां विन्देतेत्यादि विष्णु-
दिवचनाच्च । तेन भार्यात्वमम्यादकं ग्रहणं विवाहः । तस्य
स्वीकाररूपज्ञानविशेषस्य समवायविषयतयोर्भेदात् वरकन्य-
योर्विवाहकर्तृत्वकर्मत्वे अतएव कन्यापुत्रविवाहेषु इति विष्णु-
पुराणोक्तं संगच्छते । भार्या त्वस्य स्वरूपसद्विशेषणत्वेन नेतरे-
तराश्रयदोष इति विवाहमम्यादकदानादिभेदात् ब्राह्मादि-
भेदः अतएव ‘ब्राह्मो विवाह आहूय दौयते शक्त्यलङ्घता’ इति
याज्ञवल्करवचने सब्राह्माभिधानो विवाहो यस्मिन् उक्तलक्षण-
वराय आहूय यथाशक्त्यलङ्घितकन्या दौयते इति मिताक्षरा
यस्मिन्निति ग्रहण इत्यर्थः । एवञ्च ‘आच्छाद्य चार्चयित्वा च
श्रुतशीलवते स्वयम् । आहूय दानं कन्याया ब्राह्मो धर्मः प्रकी-
र्त्तितः’ । इति मन्वादिवचने यद्दानपदं तद्दौयते यस्मै ग्रहणाय
इति व्युत्पत्त्या कृत्यजुटौ बहुलमिति जुटासिद्धमिति । ग्रहण-
परं न तु भावसाधनपरं तथात्वे दातुरेव विवाहकर्तृत्वा-
पत्तेः । अत्र प्रत्ययार्थग्रहणनिमित्तीभूतप्रकृत्यर्थत्यागेनैककर्तृ-
कत्वमाह्वानस्य स्थितादीत्यध्याहाराद्वा । यत्त ‘पाणिग्रहणिका

उद्वाहृतत्वम् ।

१०७

मन्त्रा नियतं दारलक्षणम् । तेषां निष्ठा तु विज्ञेया विद्वद्भिः
 सप्तमे पदे' इति मनुवचनं तद्विवाहगतविशेषसंस्कारार्थम्
 अतएव निष्ठेत्युक्तं तथाच रत्नाकरः । 'पाणिग्रहणिका मन्त्रा
 विवाहकर्माङ्गभूता' इति व्यक्तमाह रत्नाकरधृतो लघुहारीतः ।
 'तत्रापि पाणिग्रहणेन जाया त्वं कृतस्त्र' हि जायापतित्वं सप्तमे
 पदे' इति विवाहस्तु पाणिग्रहणात् पूर्वं वृत्त एवेति । सुव्यक्तं
 हरिवंशौयात्रशङ्कूपाख्याने 'पाणिग्रहणमन्त्राणां विघ्नं चक्रे
 स दुर्मतिः । येन भार्या हृता पूर्वं कृतोद्वाहा परस्य वै' ।
 कृतोद्वाहा पाणिग्रहणात् पूर्वं हृता इत्यर्थः । 'पाणिग्रहण-
 संस्कारः सवर्णासूपदिश्यते । असवर्णा स्वयं ज्ञेयो विधिरुद्वाह-
 कर्मणि । शरः क्षत्रियया ग्राह्यः प्रतोदो वैश्यकन्यया । वसनस्य
 दशा ग्राह्या शूद्रयोत्कृष्टवेदने' । इति मनुवचनान्तरेऽपि उद्वा-
 हपाणिग्रहणयोः पृथक्त्वं प्रतीयते । मैथुने मिथुनशब्दवाच्य-
 स्त्रीपुंससाध्ये आधानपुत्रोत्पत्त्यादौ सा प्रशस्ता अतएव
 भट्टभाष्ये स्मृतिः । 'न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते ।
 तथा हि सहितः सर्वान् पुरुषार्थान् समश्नुते' । याज्ञवल्करः ।
 लोकानन्त्यं दिवः प्राप्तिः पुत्रपौत्रप्रपौत्रकैः । यस्मात्तस्मात्
 स्त्रियः सेव्या भर्त्तव्याश्च सुरचिताः' । सापिण्ड्यमाह मत्स्य-
 पुराणम् । 'लेपभाजश्चतुर्थाद्याः पित्राद्याः पिण्डभागिनः ।
 पिण्डदः सप्तमस्तेषां सापिण्ड्यं साप्तपौरुषम्' । एतत् प्रप-
 च्चितं श्रद्धितत्त्वे । असपिण्डा च या मातुरिति चकारात्
 मातुरसगोत्रा च 'सगोत्रां मातुरप्येके नेच्छन्त्युद्वाहकर्मणि' इति
 व्यासोक्तेः असगोत्रा चेति चकारात् पितुरसपिण्डा च विष्णु-
 पुराणे । पितृपक्षे सप्तमौनिषेधात् यथा 'सप्तमीं पितृपक्षाच्च
 मातृपक्षाच्च पञ्चमीम् । उद्वाहेत द्विजो भार्यां न्यायेन विधिनो
 नृप' ।। सप्तमीं पञ्चमीं परिहृत्येति शेषः । अतएव एकपितृ-

१०८

उद्वाहतत्त्वम् ।

कस्यापि पित्रपेक्षया सप्तमवर्जनाय मनुवचने पितुरिति सार्थकं न वरापेक्षयेति शूलपाणिमहामहोपाध्यायैस्तु क्षेत्र-मात्रगोत्रस्य द्विपितृकस्य क्षेत्रजादेर्वीजिसगोत्रावर्जनाय पितुरित्युक्तम् उद्वाहेत द्विजो भार्यामित्यादौ भाविनि भूतवदुपचारः । विवाहानन्तरमेव भार्यात्वनिष्पत्तेः न सगोत्रां न समानप्रवरां भार्यां विन्देत मातृतत्त्वापञ्चमात् पितृतत्त्वासप्तमादिति विष्णुसूत्रे सप्तमीनिषेधाच्च अत्र मातृपदेन मातामहो लक्षणीयः । अथात्मौयां स्त्रीन् पितृतत्त्वात् मातृतः तत्पत्नीश्चेति पितृतर्पणमिति गोभिलसूत्रे त्रीनिति पुलिङ्गनिर्देशेन तत्पत्नीश्चेति पृथगुपादानेन च मातृत इति मातामहपरत्ववत् । अन्यथा 'अप्रत्तानां तथा स्त्रीणां सापिण्ड्यं साप्तपौरुषम् । प्रत्तानां भर्तृसापिण्ड्यं प्राह देवः पितामहः' । इति रत्नाकरधृतकूर्मपुराणवचनान्मातृविवाहेन तत्पितृकुले सापिण्ड्यनिवृत्तेः भर्तृसापिण्ड्येन सापिण्ड्यसिद्धेः विवाहेन च तस्याः पितृगोत्रत्वनिवृत्तेः पितृसपिण्ड्यापितृसगोत्रावर्जनादेव तत्सिद्धेरसपिण्ड्या च या मातुरित्यत्र मातृरुपादानं व्यर्थं स्यात् एवमेव विवेककृतः मातामहपक्षे तु 'सापिण्ड्यं पाञ्चपौरुषम् । पञ्चमात् सप्तमादूर्ध्वं मातृतः पितृतः क्रमात् । सपिण्ड्यता निवर्त्तते सर्ववर्णेष्वयं विधिः' इति हरिनाथोपाध्यायधृतनारदवचनात् । 'पिण्डनिवृत्तिः सप्तमे पञ्चमे वा' इति हारलताधृतगोतमसूत्रे पञ्चम इत्येतस्यापि मातामहपक्षविषयत्वाच्च पिण्डनिवृत्तिरित्यत्र सापिण्ड्यनिवृत्तिरित्याचारमाधवीये पाठः तदा व्यक्त एवार्थः एवञ्च अदत्तकन्यानां पितृपक्षे सापिण्ड्यं साप्तपौरुषं मातामहपक्षे पाञ्चपौरुषं सापिण्ड्यञ्चः ववाहमात्रे पूर्वोक्तविष्णुपुराणविष्णुसूत्राभ्यां 'असमानार्थेयीं क्रिन्यां वरयेत् पञ्च मातृतः परिहरेत् सप्त पितृतः त्रीन् मातृत

उद्वाहतस्त्वम् ।

१०८

पञ्च पितृतो वा' इति पैठीनसिवचनैकवाक्यत्वात् त्रीन् पञ्चे-
 त्यासुरादिविवाह एव विषयं क्षत्रियादिविवाहविषयं वा इति
 विवेककृतः असमानजातीया विवाहे त्रीनित्यादि व्यवस्थित-
 विकल्पित इति रत्नाकरादयः । असमानजातीया च मूर्धाभि-
 भिषिक्तादेः । वस्तुतस्तु त्रीनित्यादि अधिकदोषार्थम् अन्यथा
 'मातृस्वसृपितृस्वसृदुहितरो मातुलसुताश्च धर्मतस्ता भगिन्यो
 भवन्ति ता वर्जयेत्' इति पैठीनसिवचनान्तरस्य का गतिः ।
 एवञ्च त्रीन् मातृत इति प्रमातामह वृद्धप्रमातामह मातृबन्धु-
 पेक्षया सन्ताने बोद्धव्यम् । एवं मातामहापेक्षया मातृस्वसृ-
 दुहितमातुलदुहितोस्त्रितवान्तर्गतत्वेऽपि पृथक् निषेधः प्रमा-
 तामहवृद्धप्रमातामहमातृबन्धुसन्तानत्रितयेभ्योऽपि अधिक-
 दोषाय एवं पितृपक्षेऽपि । यत्तु मातृपितृसम्बन्धा आसप्तमाद-
 विवाह्याः कन्या भवन्ति । आपञ्चमादन्येषां मतमिति सुमन्तु-
 वचने मातृकुलेऽप्यासप्तमत्वमुक्तं तद्वचनान्तरैकवाक्यतया वरं
 तन्मातरश्च आदायैव गणनया बोध्यं सन्तानवर्जने तु न सप्तम-
 त्वम् । किन्तु वचनान्तरैकवाक्यतया मातामहादिपञ्चाना-
 मेव पञ्चमी ग्राह्या अन्यथा नानाश्रुतिकल्पना स्यात् । एवमा-
 पञ्चमादिति पैठीनस्युक्तं त्रीन् मातृत पञ्च पितृतः इत्यस्य
 समानम् अत्रापि मातृपक्षे वरं तन्मातरश्चादाय गणनाया न
 विरोधः । एतेन आसप्तमादिति पितृपक्षपरम् । आपञ्चमादिति
 मातृपक्षपरं 'सप्तमीं पितृपक्षाच्च मातृपक्षाच्च पञ्चमीम् इत्या-
 द्यनेकवचनैकवाक्यत्वादिति निरस्तम् । भवन्तीत्यनेन उभय-
 पक्षे स्वमतमभिधाय आपञ्चमादन्येषामित्यस्य उभयपक्षे परम-
 ताभिधानेनैव युक्तत्वात् । एवञ्च सुमन्तुवचने मातृकुले सप्तम-
 वर्जनेन अन्यवचनोक्तपञ्चमादिवर्जने मातृपदे मातामहल-
 क्षणा स्फुटैव । एतेन जनन्यपेक्षया वा अप्रत्तानां त्रिपौरुष-

११०

उदाहृतत्वम् ।

मिति वशिष्ठोक्तानूठाकालीनत्रिपुरुषसपिण्डापेक्षया वरापेक्षया वा पैठीनस्युक्तमाहपक्षपञ्चमत्वविवेचनं निरस्तम् । अतएव याज्ञवल्क्यटीकायां शूलपाणिमहामहोपाध्यायैर्मातामहस्यो-
पर्यधःसपिण्डसन्ततिः पञ्चमी परिहरणीयेत्युक्तम् । एवञ्च मनुवचने चकारादुक्तव्याख्यानेन माहपितृसगोत्रावर्जनेनैव तत् सपिण्डयोर्निषेधसिद्धेर्यदसपिण्डेति पृथगुक्तं तत् सपिण्ड-
कन्यापरम्पराजाताया अपि पञ्चमीसप्तमीपर्यन्ताया निषे-
धार्थम् अतएव बन्धमाणत्रिगोत्रात् परतो यदौति प्रतिप्रसवः
सार्थकः सपिण्डारूपकन्यामात्रवर्जने तु व्यर्थः स्यादिति । अत्र केवलपितृमाहशब्दाभ्यां पितृमाहसम्बन्धित्वेन पितृसपिण्ड-
मातामहसपिण्डपितृबन्धुमाहबन्धुपरिग्रहात् तत्सन्ततीनां निषेधः । बन्धु निषेधे नारदः । 'आसप्तमात् पञ्चमाच्च बन्धुभ्यः
पितृमाहतः । अविवाह्या सगोत्रा च समानप्रवरा तथा । सप्तमे पञ्चमे वापि येषां वेवाहिकी क्रिया । ते च सन्तानिनः
सर्वे पतिताः शूद्रतां गताः' । माहतः पितृतो बन्धुभ्य इति पञ्चमीविभक्तिर्विनिगमकाभावात् पूर्वापरावधिकार्था बान्ध-
वाश्च 'पितुः पितुः स्वसुः पुत्राः पितुर्मातुः स्वसुः सुताः । पितु-
र्मातुलपुत्राश्च विज्ञेयाः पितृबान्धवाः । मातुर्मातुः स्वसुः
पुत्रा मातुः पितुः स्वसुः सुताः । मातुर्मातुलपुत्राश्च विज्ञेया
माहबान्धवाः' । तेन पितामहभगिनीपुत्रः पितामहीभगि-
नीपुत्रः पितामहीभ्रातृपुत्रश्चेति त्रयः पितृबान्धवाः । तथा मातामहीभगिनीपुत्रो मातामहभगिनीपुत्रो मातामहीभ्रा-
तृपुत्रश्चेति त्रयो माहबान्धवा भवन्ति । अत्र च 'जमदग्नि-
र्भरद्वाजो विश्वामित्रात्रिगोतमाः । वशिष्ठकाश्यपागस्त्यामुन-
यो गोत्रकारिणः एतेषां यान्यपत्यानि तानि गोत्राणि मन्वते'
इति स्मृतेः । गोत्राणि तत्तन्नामकगोत्रभागीनि वंशपरम्परा-

उद्धाहृतत्वम् ।

१११

प्रसिद्धमादिपुरुषब्राह्मणरूपं गोत्रं तेन काश्यपोगोत्रं यस्य स काश्यपगोत्रः प्रवरस्तु गोत्रप्रवर्त्तकस्य मुनेर्व्यावर्त्तको मुनिगण इति माधवाचार्यः । एवञ्च यद्यपि राजन्यविशां प्रतिस्विक- गोत्राभावात् प्रवराभावस्तथापि पुरोहितगोत्रप्रवरौ वेदितव्यौ तथा यजमानस्यार्पणान् गोत्रप्रवरान् प्रवृणोतेत्युक्ता पुरोहि- त्यान् राजन्यविशां प्रवृणोतेति आश्वलायन इति मिताक्षरा अतएवासमानार्पणगोत्रजामिति ब्राह्मणादिवर्णत्रयविषयमिति सम्बन्धविवेकः तर्हि शूद्रस्य आद्यादावधिकारश्रुतेः कथं गोत्रो- च्चारणमिति चेत् 'गोत्रं स्वरान्तं सर्वत्र गोत्रस्याक्षय्यकर्मणि । गोत्रस्तु तर्पणे प्रोक्तः कर्त्ता एवं न मुह्यति' इति गोभिलीय- दर्शनादाकाङ्क्षितत्वेन 'शूद्राणां मासिकं कार्यं वपनं न्याय- वर्त्तिनाम् । वैश्यवच्छौचकल्पश्च द्विजोच्छिष्टस्य भोजनम्' इति मनुवचने चकारसमुच्चितगोत्रेऽपि वैश्यधर्मातिदेशात् पूर्वपुरोहितगोत्रभागित्वं प्रतीयते । तर्हि न समानगोत्रां समानप्रवरां भार्यां विन्देतेत्यनेन शूद्रस्यापि सगोत्रा कथं न निषिध्यते इति चेदत्रोपदिष्टातिदिष्टगोत्रस्यैव निषेधो न तु अतिदिष्टातिदिष्टशूद्रगोत्रादेः अन्यथातिदेशे क्षत्रियवैश्यमात्रो- पादानं व्यर्थं स्यादिति न्यायमूलं प्रागुक्तमनुशातातपवचने द्विजातिग्रहणं सगोत्रावर्जने शूद्रव्यावृत्त्यर्थं सपिण्डसमानोद- कता तु शूद्रेऽप्यविशिष्टा अन्यथा 'पञ्चमात् सप्तमादूङ्घ्रिमातृतः पिबतः क्रमात् । सपिण्डता निवर्त्तते सर्ववर्णेष्वयं विधिः' इति । हरिनाथोपाध्यायभृतनारदवचने चातुर्वर्ण्यसाधारणं वैवाहिकसापिण्डप्रविवेचनं व्यर्थं स्यात् । वीधायनः 'सगोत्रा- च्छेदमत्वा उपयच्छेन्मातृवदेनां विभ्रयादिति' सुमन्तुः 'पिब- स्वसृसृतां मातृस्वसृसृतां मातुलसृतां मातृसगोत्रां समानार्पणीं विवाह्य चान्द्रायणं चरेत् परित्यज्य चैनां विभ्रयात्' इति

११२

उदाहृतस्त्वम् ।

आचारमाधवीयमदनपारिजातयोरापस्तम्बः 'समानगोत्रप्र-
 वरां समुदाहोपगम्य च । तस्यासुत्पाद्य चाण्डालं ब्राह्मण्या-
 देव हीयते' समानप्रवरत्वं सञ्ज्ञासंख्ययोरन्यूनानतिरिक्तत्वेन
 भिन्नगोत्रेऽपि समानप्रवरत्वं यथा वात्स्यसावर्णिगोत्रयोरीर्व-
 च्यवनभार्गवजामदग्न्याध्रुवत् प्रवराः । एकगोत्रेऽपि प्रवरान्यत्वं
 यथा घृतकौशिकगोत्रस्य कुशिककौशिकघृतकौशिकाः प्रवराः ।
 कौशिककुशिकबन्धुलाक्षेति प्रवराः । अतो गोत्रप्रवरयोः पृथङ्-
 निषेध इति सगोत्रा समानप्रवरा ग्रहणमविवाह्यस्त्रीमात्रो-
 पलक्षणमिति प्रायश्चित्तविवेकः । अतोऽसवर्णाविवाहेऽपि
 चान्द्रायणं 'चान्द्रायणेन चैकेन सर्वपापक्षयो भवेत्' इति
 आपस्तम्बवचनात् । कलौ त्वसवर्णाया अविवाह्यत्वमाह
 बृहन्नारदीयं 'समुद्रयात्रास्त्रीकारः कमण्डलुविधारणम् ।
 द्विजानामसवर्णासु कन्यासूपयमस्तथा । देवरेण सुतोत्पत्ति-
 र्मधुपर्कं पशोर्वधः । मांसादनं तथा आह्वे वानप्रस्थाश्रम-
 स्तथा । दत्तायाश्चैव कन्यायाः पुनर्दानं परस्य च । दीर्घ-
 कालं ब्रह्मचर्यं नरमेधाश्वमेधकौ । महाप्रस्थानगमनं गोमे-
 धश्च तथा मखम् । इमान् धर्मान् कलियुगे वर्ज्यानाहुर्मनी-
 षिणः' । मांसादनं गोमहिषादेः । हेमाद्रिपराशरभाष्ययो-
 रादित्यपुराणम् । 'दीर्घकालं ब्रह्मचर्यं धारणञ्च कमण्डलोः ।
 देवरेण सुतोत्पत्तिर्दत्तकन्या प्रदौयते । कन्यानामसवर्णानां
 विवाहश्च द्विजातिभिः । आततायिद्विजाग्रयाणां धर्मयुद्धे
 निहिंसनम् । वानप्रस्थाश्रमस्यापि प्रवेशो विधिदेशितः ।
 वृत्तस्त्राध्यायसापेक्षमधसङ्कोचनं तथा । प्रायश्चित्तविधानञ्च
 विप्राणां मरणान्तिकम् । संसर्गदोषः पापेषु मधुपर्कं पशो-
 र्वधः । दत्तौरसेतरेषान्तु पुत्रत्वेन परिग्रहः । शूत्रेषु दास-
 गोपालकुलमित्राद्वैसीरिणाम् । भोज्यान्नता गृहस्थस्य तीर्थ-

उदाहृतत्त्वम् ।

११३

सैवातिदूरतः । ब्राह्मणादिषु शूद्रस्य पक्वतादिक्रियापि च ।
 भृग्वग्निमरणञ्चैव ब्रह्मादिमरणं तथा । इत्यादीनि अभिधाय
 'एतानि लोकगुप्त्यर्थं कलेरादौ महात्मभिः । निवर्त्तितानि
 कर्माणि व्यवस्थापूर्वकं बुधैः । समयस्यापि साधूनां प्रमाणं
 वेदवद्भवेत्' इति समयः संवित् सा च प्रतिज्ञा 'समयाः
 अपथाचारकालसिद्धान्तसंविदः' इत्यमरोक्तेः 'संविदागूः प्रति-
 ज्ञानं नियमाश्रवसंश्रवाः' इति तेनैवोक्तेः संसर्गदोषः पापेषु
 इत्यत्र विशेषयति पराशरः । 'त्यजेद्देशं कृतयुगे त्रेतायां
 ग्राममुत्सृजेत् । हापरे कुलमेकन्तु कर्त्तारन्तु कलौ युगे ।
 कृते सम्भाषणादेव त्रेतायां स्पर्शनेन च । हापरे त्वर्थमादाय
 कलौ पतति कर्मणा' देशं पापियुतं एवमन्यत्रापि कर्मणा
 बन्धादिकर्मणेति माधवाचार्यः । वस्तुतस्तु कर्त्तारं तु इत्यनेन
 कर्त्तृसंसर्गनिषेधात् कर्मणेति सम्भाषणस्पर्शनधनग्रहणेतरगुरु-
 संसर्गपरम् । अतएव स्कान्दे परदाराभिगामिनमुपक्रम्य
 'एतैः सह समायोगं यः करोति दिने दिने । तुल्यतां याति
 विप्रेन्द्र ! कलौ संवत्सरे गते' । याज्ञवल्क्यटीकायां बृहस्पतिः
 कलावित्याधिकृत्य 'अनेकधाकृताः पुत्रा ऋषिभिर्यैः पुरातनैः ।
 न शक्यन्तेऽधुना कर्त्तुं शक्तिहीनैरिदन्तनैः' । दत्तकपुत्रमाह
 याज्ञवल्क्यः 'दद्यान्माता पिता वा यं स पुत्रो दत्तको
 भवेत्' । तत्प्रकारमाह वशिष्ठः 'शुक्रशोणितसम्भवः पुत्रो
 मातापितृनिमित्तकः । यस्य प्रदानविक्रयत्यागेषु माता-
 पितरौ प्रभवतः नतु एकं पुत्रं दद्यात् प्रतिगृह्णीयाद्वा स हि
 सन्तानाय पूर्वेषां स्त्रीपुत्रं न दद्यात् प्रतिगृह्णीयात् वा अन्य-
 त्वानुज्ञानाद्भर्तुः पुत्रं प्रतिग्रहीष्य न बभूनाह्य राजनि निवेद्य
 निवेशनस्य मध्ये व्याहृतिभिर्हुत्वा प्रतिगृह्णीयादिति' अत-
 स्त्रिया अपि पत्यनुमत्या दानप्रतिग्रहयोः श्रुतेः प्रतिग्रहे

११४

उद्वाहतत्त्वम् ।

हुत्वेति श्रवणं व्रतादिप्रतिष्ठावत् ब्राह्मणद्वारा होमे नावि-
 रुद्धम् । एवं शूद्रस्यापीति एतयोर्हीमाधिकारः पश्चादुपपा-
 दयिष्यते । प्रपञ्चस्तु मलिन्मुचतत्त्वेऽनुसन्धेयः । 'गोत्र ऋक्थे
 जनयितुर्न हरेद्दत्तिमः सुतः । गोत्र ऋक्थानुगः पिण्डो
 व्यपैति ददतः स्वधा' इति मनूक्तेः अत्र स्वधाशब्दः पितृभक्ष्या-
 र्थकः तथाच गुणविष्णुधृता स्मृतिः स्वधा वै पितृणामन्नमिति
 जनकगोत्र ऋक्थग्राहित्वेन तत् पिण्डश्चाहकर्तृत्वेन च प्रति-
 ग्रहीतुरेव गोत्रादिभागित्वं दत्तकस्य प्रतीयते । कालिका-
 पुराणे 'श्रीरसः क्षेत्रजश्चैव दत्तः कृत्विम एव च' इत्यादीनुप-
 क्रम्य 'पितुर्गोत्रेण यः पुत्रः संस्कृता पृथिवीपते' । आचूडान्तं
 न पुत्रः सपुत्रतां याति चान्यतः । चूडाद्या यदि संस्कारा
 निजगोत्रेण वै कृताः । दत्ताद्यास्तनयास्ते स्युरन्यथा दास
 उच्यते । ऊर्ध्वंन्तु पञ्चमादृषान्न दत्ताद्याः सुता नृप ! । गृहीत्वा
 पञ्चवर्षीयं पुत्रेष्टिं प्रथमं चरेत्' । श्रीरसमाह बौधायनः ।
 'सवर्णायां संस्कृतायां स्वयमुत्पादितमौरसं विद्यादिति' । अलं
 प्रकृतमनुसरामः व्यासः । 'सगोत्रां मातुरप्येके न च्छन्युद्वाह-
 कर्मणि । जन्मनाम्नो रविज्ञानेऽप्युद्वाहेदविशङ्कितः' । तेन
 मातामहसमानोदकाप्यविवाहोत्थः । एतदेकवाक्यतया मनु-
 वचने चकारानुषक्तं 'मातुरसगोत्रेतिपदं माहामहसमानो-
 दकापरम् । यत्तु 'मातुः सपिण्डा यत्नेन वर्जनीया द्विजातिभिः'
 इति व्यासवचनान्तरं तदयत्नेनेति ग्रहणादतिशयदोषार्थं
 मातृसपिण्डसन्ततिकन्या परम्परायाः पञ्चमीपर्यन्ताया वर्ज-
 नार्थश्च । कश्चित् एतद्वचनस्य असुरादिविवाहपरत्वेन तादृश-
 विवाहे समानोदकापि विवाहोत्थाह तन्न प्रमाणाभावात् ।
 मत्स्यसूक्तमहातन्त्रे 'मातुर्यन्नाम गुह्यं' स्यात् सुप्रसिद्धमथापि
 वा । तन्नाम्नौ या भवेत् कन्या मातृनाम्नी प्रचक्षते । प्रमा-

उदाहृतत्त्वम् ।

११५

दादयदि गृह्णीयात् प्रायश्चित्तं समाचरेत् । ततश्चान्द्रायणं कृत्वा तां कन्यां परिवर्जयेत् । यत्तु 'मातृनाम्नी यदा कन्या विवाहे कुलजा हि सा । विप्रैर्नामान्तरं कार्यं तस्याः पित्रो-रनुज्ञया' । इति राजमार्त्तण्डीयवचनं तद्वाग्दानोत्तरज्ञाने बोध्यम् अन्यथा पूर्वोक्तनिषेधवैयर्थ्यापत्तेः । गृहस्थरत्नाकरे । 'त्रिविवाहं कृतं येन न करोति चतुर्थकम् । कुलानि पातयेत् सप्त भूणहत्याव्रतं चरेत्' । एतद्वचनं वर्त्तमानस्त्रीत्रिकपर-मिति वदन्ति । अत्र पित्रबन्धुसप्तमीपञ्चमीपरिहारे पितृ-बन्धुमातृबन्धुविरहेऽपि तयोर्योग्यतामवलम्ब्य सप्तमीपञ्चमी-पर्यन्तायाः कन्यायाः परीहारः अन्यथा पित्रमातामहमातृ-मातामहप्रभृतिपूर्वतनपञ्चत्रिपुरुषान्यतममादाय अधस्तनसप्त-पञ्चान्तर्गतायाः कन्यायाः पित्रबन्धुमातृबन्धुसत्त्वे विवाहाभावः तदसत्त्वे विवाह इति महाजनविरोधः स्यात् एष एवार्थो याज्ञवल्क्यटीकायां शूलपाणिमहामहोपाध्यायैः एतेन पितु-र्मातुश्च मातामहोपरितनपुरुषेषु अपि पित्रबन्धुमातृबन्धु-निपातोऽपि न विवाह इत्यनेन निर्दिष्ट इति एवञ्च पितु-र्मातुश्च मातामहकन्यान्तरसत्त्वे तस्याः परतः तत्सहितसप्तमी-पर्यन्तायाः परीहारः एवं बन्धन्तरेऽप्युच्यम् । अत्र सप्तमगण-नप्रतियोगि-पितृपितृबन्धु-पञ्चमगणनप्रतियोगिमातामह-मातृ-बन्धुगोत्रमादायैव प्रतिप्रसवे त्रिगोत्रगणनम् । न तु वरगोत्रा-पेक्षया तस्य गणनायामप्रतियोगित्वात् । न वा तच्चतुष्टयगोत्रं परित्यज्य त्रिगोत्रगणनं तथात्वे शूलपाणिमहामहोपाध्या-योक्तं पञ्चमीकन्याया विवाहाभ्यनुज्ञानं नोपपद्येत । न च तदेवायुक्तमिति वाच्यं मर्यादाभिविधिसन्देहे कार्यान्वित-त्वेनाभिविधेरेव युक्तत्वात् तदयथा 'सन्निकर्षेऽपि कर्त्तव्यं त्रिगोत्रात् परतो यदि' इति मत्स्यपुराणवचनं सन्निकर्षेऽपि

११६

उदाहृतत्वेम् ।

प्रतियोगिचतुष्टयापेक्षया सप्तपञ्चमाभ्यन्तरे बृहन्मनुरपि ।
 'असम्बन्धा भवेद् या तु पिण्डेनैवोदकेन वा । सा विवाह्या
 द्विजातीनां त्रिगोत्रान्तरिता च या' । एवं प्रतियोगिचतु-
 ष्टयापेक्षया सप्तमपञ्चमगणने पूर्वत्र यतो यतः सन्तानभेदः
 तं तमादाय परत्रैतच्चतुष्टयमादाय गणयेत् यावत् सप्तमं
 यावत् पञ्चमञ्च यथा विश्वरूपसमुच्चये 'एवमुक्तप्रकारेण पितृ-
 बन्धुषु सप्तमात् । ऊर्द्धमेव विवाह्यत्वं पञ्चमात् मातृबन्धुतः ।
 सन्तानो भिद्यते यस्मात् पूर्वजादुभयत्र च । तमादाय गणे-
 ष्ठीमान् वरं यावच्च कन्यकाम्' । वरं यावदिति तु मातामह-
 पक्षे सुमन्तूक्तसप्तमादिगणनस्य वरापेक्षितत्वेन तत्परम् । अत्र
 पूर्वजादित्युपादानात् पितृबन्धुपेक्षया पूर्वेषां षष्ठां चतुर्णां
 प्रत्येकापेक्षया सप्तमपञ्चमोर्द्धत्वं बन्धूनां परतस्तु न प्रत्येका-
 पेक्षया किन्तु बन्धुपेक्षयैव सप्तमपञ्चमोर्द्धत्वं गणनायां बोध्यम्
 एवं यस्य सापिण्ड्यं विविच्यते तस्य तद्गणनायां पूर्वेषां षष्ठां
 प्रत्येकापेक्षया तत्परजातसप्तान्यतमान्तर्भावः परेषां षष्ठान्तु
 प्रत्येकापेक्षया न गणना किन्तु स्वमात्रापेक्षयैव अन्यथा स्वापे-
 क्षयाधस्तनाष्टमस्य स्वपुत्रापेक्षया सप्तान्तर्गतत्वात् सापिण्ड्यं
 स्यात् अतएव स्वापेक्षया प्राक्तनाष्टमस्य स्वपित्राद्यपेक्षया
 सप्तान्तर्गतत्वेऽपि न सापिण्ड्यं पिण्डतल्लेपदाढभोक्तृत्वरूप-
 सम्बन्धाभावात् अतएव हेतुनिर्णयेऽपि सापिण्ड्यगणने वीजि-
 नमारभ्येत्युक्तम् एवं मातामहापेक्षया पञ्चमगणनेत्यपि बोध्यम्
 अत्र च पितृबन्धुमातृबन्धु पूर्वेषां वर्जने पितृबन्धुत्वसम्बन्ध-
 वीजीभूतानां पितुः पितामहादिमातामहादीनां मातृबन्धु-
 त्वसम्बन्धवीजीभूतानां मातुः पितामहादिमातामहादीनाञ्च
 पुरुषपरम्पराणामेव ग्रहणं न तु पितृमातुलपुत्रमातृमातुल-
 शुद्धेतरपितृबन्धुमातृबन्धुपितृप्रभृतौनां ग्रहणं सम्बन्धवीजि-

उद्वाहृतत्त्वम् ।

११७

त्वायोगादिति बन्धपेक्षया गणनेऽपि पूर्वेषां तत्तत्सन्तानभेद-
 कानां सप्तपञ्चान्तर्गतानां पुंसामेव ग्रहणं न तूपदिष्टमातृबन्धु-
 पितृबन्धुमातृव्यतिरिक्तानां मातामह्यादिपितामह्यादिस्त्रीपर-
 म्पराणां ग्रहणम् 'आसप्तमात् पञ्चमाच्च बन्धुभ्यः पितृमातृतः' ।
 इति नारदवचने पुंस्त्वस्य विधेयविशेषणत्वेन विवक्षितत्वात्
 एवमेव विवाहृतत्त्वार्णवः अत्र यद्यपि पितामहस्वसृपुत्ररूप-
 बन्धोर्ये मातामहाद्यास्ते पितृसपिण्डत्वेन निषिद्धास्तथापि
 तद्बन्धुपादानं तदपेक्षयाधस्तनसप्तमनिषेधाय एवं यद्यपि
 मातामहस्वसृपुत्ररूपबन्धोर्ये मातामहाद्यास्ते मातामहसपि-
 ण्डत्वेन निषिद्धास्तथापि तद्बन्धुपादानं तदपेक्षयाधस्तनपञ्चम-
 निषेधाय यद्यपि पितुर्मातृस्वसृपुत्ररूपबन्धोर्ये मातामहा-
 द्यास्ते पितुर्मातुलपुत्रस्य पितामहाद्या एवेति पूर्ववचने पृथ-
 गुपादानं व्यर्थं तथापि पूर्ववदधस्तनतत्तत्सप्तमवर्जनाय एवं
 तद्रूपमातृबन्धुद्वयोपादानं तदपेक्षयाधस्तनतत्तत्पञ्चमवर्जनाय
 तथा सप्तमपञ्चममध्ये पुरुषाणां पुरुषान्तरेण विवाह्यत्वाप्रसक्तोः
 तत्परम्पराजातायाश्च सप्तमपञ्चमान्तर्वर्तिन्याः कन्याया अवि-
 वाह्यत्वं ज्ञेयम् अतएव मार्कण्डेयपुराणम् । 'उद्वाहेत् पितृमा-
 त्रोस्तु सप्तमीं पञ्चमीं तथा' इत्यत्र स्त्रीत्वेन निर्देशः । सप्तमीं
 पञ्चमीं परित्यज्येत्यर्थः ।

एष संक्षेपः । पितृपितामहादीनां सप्तानां सन्ततिः सप्त-
 मीपर्यन्ता नोद्वाह्या । एवं पितृबन्धुप्रभृतिसम्बन्धघटकानां
 सप्तानां सन्ततिः सप्तमीपर्यन्ता नोद्वाह्या एवं मातामहप्रमा-
 तामहादीनां पञ्चानां सन्ततिः पञ्चमीपर्यन्ता नोद्वाह्या एवं
 मातृबन्धुप्रभृतिसम्बन्धघटकानां पञ्चानां सन्ततिः पञ्चमीप-
 र्यन्ता नोद्वाह्या बन्धुतन्मात्रोरसत्त्वेऽपि पितृमातामहमातृ-
 मातामहप्रभृत्युपरितनानां पञ्चानां त्रयाणां सप्तमीपञ्चमी-

११८

उदाहृतम् ।

पर्यन्ता नोदाह्येति एवञ्च पितुर्मातुश्च मातामहकन्यान्तरसत्त्वे
 तामादाय सप्तमीपञ्चमीपर्यन्तायाः परीहारः एवं बन्धन्तरे-
 ऽप्युच्चं बन्धपेक्षया त्रिगोत्रगणनं परतः सर्वत्र । पूर्वतस्तु पितु-
 र्मातुश्च मातुलपुत्ररूपबन्धोरपि स्वापेक्षया अन्येषां बन्धूनां
 मातामहगोत्रापेक्षया त्रिगोत्रगणनं सर्वसामञ्जस्यं स्यात्
 अन्यथा पितुः पितामहदौहित्रीकन्यायाः पितामहभगिनी-
 पुत्रबन्धुपेक्षया त्रिगोत्रात् पराया विवाहः प्रसज्येत स चायुक्तः
 पितृगोत्रापेक्षया तस्यास्त्रिगोत्रमध्यवर्त्तित्वात् । एवं पितुः
 प्रमातामहदौहित्रीकन्यायाः पितामहभगिनीपुत्रबन्धुपेक्षया
 त्रिगोत्रात् पराया विवाहः प्रसज्येत स चाप्ययुक्तः पितामहभ्रा-
 तृपुत्रबन्धुपेक्षया तस्यास्त्रिगोत्रमध्यवर्त्तित्वात् । एवं मातुः
 प्रपितामहदौहित्रीकन्यायाः मातामहभगिनीपुत्रबन्धुपेक्षया
 त्रिगोत्रात् परायाविवाहः प्रसज्येत स चायुक्तः । वरस्य माता-
 महापेक्षया तस्यास्त्रिगोत्रमध्यपातित्वात् एवं मातुः प्रमाता-
 महदौहित्रीकन्याया मातामहभगिनीपुत्रबन्धुपेक्षया त्रिगो-
 त्रात् परायाविवाहः प्रसज्येत स चायुक्तः । मातामहभ्रातृ-
 पुत्रबन्धुपेक्षया तस्यास्त्रिगोत्रमध्यवर्त्तित्वादिति । मातृसपत्नी-
 भ्रातृसन्तरेरपि न विवाह्येतेत्याह सुमन्तुः 'मातृपितृसम्बन्धा
 आसप्तमादविवाह्याः कन्याभवन्ति आपञ्चमादन्येषां सर्वाः
 पितृपत्न्यो मातरस्तदभ्रातरस्तु मातुलास्तददुहितरो भगिन्यस्त-
 दपत्यानि भागिन्यानि ताश्च अविवाह्याः अन्यथा सङ्करकारि-
 ण्यस्तथाध्यापयितुरेतदेवेति' । यद्यपि तेषां मातुलत्वेनार्था-
 त्तदुदुहिततदपत्ययोर्भगिनीत्वभागिनेयत्वे तथापि तदुपादानं
 तयोरेव वर्जनार्थम् अनर्थं पुनर्वचनमिति दर्शनात् अनर्थं
 तदितरार्थमधिकार्थमिति यावत् आदिष्टत्वेन च मुख्यमातुल-
 तोजघन्यतायुक्तेति अन्यथैताः कन्यकाः परिणीताः सङ्करात्त-

उद्वाहितस्वम् ।

११८

क्वाऽधर्मकारिण्यो भवन्ति इति तथाऽध्यापयितुस्तद्विवाहम-
 न्त्राध्यापयितुरेतदेव सङ्करकारित्वमेवेत्यर्थः इति रत्नाकरः
 अन्यथेत्यत्र ताः परिणीताः इति पठितं व्याख्यातञ्च हरिना-
 थोपाध्यायैः ताः कन्यका विवाहिता इति स्मृतिसारे । वस्तुतस्तु
 अध्यापयितुर्गुरोस्तथा कन्यका उद्वाहिताः एतदेव सङ्करात्मका-
 ऽधर्मकारित्वं भजन्त एवेत्यर्थः । अतएव आदिपर्वणि 'प्रस्थितं
 त्रिदशावासं देवयान्यब्रवीदिदम् । गृहाण विधिवत् पाणिं
 मम मन्त्रपुरस्कृतम्' । कच उवाच । 'त्वं भद्रे ! धर्मतः पूज्या
 गुरुपुत्री सदा मम । यथा मे सगुरुर्नित्यं मान्यः शुक्रः पिता
 तव । देवयानि तथैव त्वं नैव मां वक्तुमर्हसि । गुरुपुत्रीति
 कृत्याहं प्रत्याचक्षे न दोषतः' । दोषतो दृष्टदोषतः । व्यक्तं
 मत्स्यसूक्ते । 'समानप्रवरा वापि शिष्यसन्ततिरेव च । ब्रह्म-
 दातुर्गुरोश्चैव सन्ततिः प्रतिषिध्यते' । काश्यपः । 'सप्तपीन-
 र्भवाः कन्या वर्जनीयाः कुलाधमाः । वाचा दत्ता मनोदत्ता
 कृतकौतुकमङ्गला । उदकस्पर्शिता या च या च पाणिगृही-
 तिका । अग्निं परिगता या च पुनर्भूः प्रभवा च या । इत्येताः
 काश्यपेनोक्ता दहन्ति कुलमग्निवत्' । कृतकौतुकमङ्गला
 बद्धकङ्कणा । उदकस्पर्शिता उदकपूर्वं दत्तेति रत्नाकरः ।
 हारीतः । 'ज्येष्ठेऽनिर्विष्टे कनीयान् निर्विशन् परिवेत्ता
 भवति परिविन्नो ज्येष्ठः परिवेदनीया कन्या परिदायी दाता
 परिकर्त्ता याज्ञकः ते सर्वे पतिता इति' । ज्येष्ठमाह देवलः ।
 'वह्निर्वर्णेषु चारित्र्याद् यमयोः पूर्वजन्मतः । यस्य जातस्य
 यमयोः पश्यन्ति प्रथमं सुखम् । सन्तानः पितरश्चैव तस्मिन्
 ज्येष्ठं प्रतिष्ठितम्' । जन्मप्राथम्यात् ज्येष्ठं यमजयोः न तु निषे-
 कप्राथम्याज्जन्मप्राथम्यसन्देहे सुखदर्शनप्राथम्यात् ज्येष्ठं प्रति-
 स्थितं तस्मिन् सन्तानः प्रतिष्ठितः पितरश्च प्रतिष्ठिताः । अन्ति-

१२०

उद्वाहृतत्त्वम् ।

विष्टे अकृतविवाहे अकृताग्निहोत्रे च निष्ठानिर्देशादेकदापि ज्येष्ठकनिष्ठाभ्यां विवाहो न कर्त्तव्यः अग्निहोत्रश्च न कर्त्तव्यम् । कालादर्शे वार्हस्पत्यम् 'एकोदरप्रसृतानामेकस्मिन्नपि वासरे । विवाहो नैव कर्त्तव्यो गर्गस्य वचनं यथा' । मत्स्य-सूक्तमहातन्त्रेऽपि । 'एकस्मिन् दिवसे चैव सोदराणां तथैव च । युग्ममुद्वाहिकं वर्च्यं कन्यादानद्वयं तथा' । पूर्ववचने वासर इत्यत्र वत्सर इति श्रोद्धदेशीयाः पठन्ति व्यवहरन्ति च । क्रन्दोगपरिशिष्टं 'देशान्तरस्थक्लीवैकवृषणानसहोदरान् । व्रेश्याभिषक्तपतितशूद्रतुल्यातिरोगिणः । जडमूकाम्बबधिर-कुलकुण्ठकवामनान् । अतिवृद्धानभार्यांश्च कृषिसक्तान् नृपस्य च । धनवृद्धिप्रसक्तांश्च कामतः कारिणस्तथा । कुलटोन्मत्त-चौरांश्च परिविन्दन्न दुष्यति । धनवार्हुषिकं राजसेवकं कर्षकं तथा । प्रोषितञ्च प्रतीक्षेत वर्षत्रयमपि त्वरन् । प्रोषितं यद्य-मृग्वानमब्दादतिसमाचरेत् । आगते च पुनस्तस्मिन् पादं तच्छुद्ध्ये चरेत्' । देशान्तरपरिभाषायां बृहन्ननुः । 'वाचो यत्र विभियन्ते गिरिर्वा व्यवधायकः । महानद्यन्तरं यत्र तद्देशान्तरमुच्यते । देशनामनदीभेदान्निकटोऽपि भवेद् यदि । तत्तु देशान्तरं प्रोक्तं स्वयमेव स्वयम्भुवा । दशरात्रेण या वार्त्ता यत्र न श्रूयतेऽथवा' । बृहस्पतिः । 'देशान्तरं वदन्येके षष्टि-योजनमायतम् । चत्वारिंशददन्येके त्रिंशदेके तथैव च' । मुनिद्वयवचनोक्तवागादियोजनादिभेदानां सामञ्जस्यार्थमेवं व्याख्यायते त्रितयवैशिष्ट्ये त्रिंशद्योजनाभ्यन्तरे द्वितयवैशिष्ट्ये तदुपरि चत्वारिंशद्योजनाभ्यन्तरे एकवैशिष्ट्ये चत्वारिंशद-योजनोपरि षष्टियोजनाभ्यन्तरे वाणीगिरि महानद्यन्तरित-त्वभेदाभावेऽपि वैदेश्यमिति शुद्धिचिन्तामणिः । क्लीवमाह कात्यायनः । 'न मूलं फेनिलं यस्य विष्ठा चाष्णु निमज्जति ।

उद्वाहतत्त्वम् ।

१२१

मेद्रुक्षोन्मादशुक्राभ्यां हीनं क्लौवः स उच्यते' । एकवृषण
 एकाण्डः पण्डविशेष इति रत्नाकरः । शूद्रतुल्यानाह मनुः ।
 'गोरक्षकान् वाणिजिकान् तथा कारुकुशीलवान् । प्रैथान्
 वार्हुषिकांश्चैव विप्रान् शूद्रवदाचरेत्' । जडो विकलान्तः-
 करणः हिताहितावधारणाक्षम इति यावदिति मिताचरा ।
 'कुण्ठः सर्वक्रियालसः कुण्ठो मन्दः क्रियासु यः' इति अम-
 रोक्तेः अभार्यान् शास्त्रनिषिद्धभार्यासम्बन्धान् नैष्ठिकब्रह्म-
 चारिवानप्रस्थभिच्छुस्वरूपान् । नृपस्य चेति चकारेण सक्ता-
 नित्यनुकृष्यते । कामतः कारिणः श्रौतस्मार्त्तनिरपेक्ष्य
 स्वच्छन्दव्यवहारिणः । कुलटः कुलान्यटतीति परकुलाटन-
 शील इति नारायणमहामहोपाध्यायाः तेषामयमाशयः
 कुलं परकुलम् अटति गच्छति प्राप्नोति यो दत्तकः स कुलटः
 चौरानित्यत्र पौरानिति पाठे पुरजनप्रैथान् धनवार्हुषिकादि-
 त्वयं देशान्तरस्थितश्च ज्येष्ठं त्वरन्नपि वर्षत्रयं प्रतीक्षेत ततश्च
 पूर्ववचने एतान् परिविन्दन्न दुष्यति इत्युक्तम् अत्र परेर्लक्ष-
 णार्थत्वात् द्वितीया तत्र देशान्तरस्थकर्षसक्तनृपसक्तधनवृद्धि-
 प्रसक्तान् प्रति वर्षत्रयादूर्द्ध्वमिति बोद्धव्यम् अत्रापि प्रोषिते
 यत्र त्रयप्रतीक्षणं तद्विद्याधर्मधनेतरार्थप्रोषितपरं वक्ष्यमाण-
 वशिष्ठगोतमवचनात् अशृण्वानं प्रत्ययव्यत्ययेन अश्रूयमाण-
 मिति परिशिष्टप्रकाशकारः अशृण्वान इति पाठस्तु रत्नाकरे
 प्रोषितस्य कल्याणवार्त्तामशृण्वन् वर्षं प्रतीक्ष्य परिनयनं
 करोति तत्र समागते ज्येष्ठे कनिष्ठः परिवेदनं शुद्धये परि-
 वेदनप्रायश्चित्तस्य कृच्छ्रपादं चरेत् एवमन्यत्रापि प्रायश्चित्त-
 सङ्कलनाऽन्वेष्टा । वशिष्ठः 'अष्टौ दशहादशवर्षाणि ज्येष्ठं
 भ्रातरमनिर्विष्टमप्रतीक्षमाणः प्रायश्चित्तीभवतीति' तत्र
 श्लोकौ 'द्वादशैव तु वर्षाणि ज्ञायान् धर्मार्थयोगतः । न्याय्यः

१२२

उदाहृतत्वम् ।

प्रतीक्षितुं भ्राता श्रूयमाणः पुनः पुनः । उन्मत्तः किल्बिषी
 कुष्ठो पतितः क्लौव एव वा । राजयक्ष्मामयावीच न न्याय्यः
 स्वात् प्रतीक्षितुम् । गौतमश्च 'द्वादशवर्षाणि प्रतीक्ष्यं
 ब्राह्मणस्य विद्यासम्बन्धे भ्रातरि चैवं ज्ञायसि जवीयान्
 कन्यामन्युपयमेषु षडित्येके' इति विद्यार्थं प्रोषितस्य ब्राह्म-
 णस्य दारा अपत्योत्पादनार्थं तदभिगमने द्वादशवर्षाणि
 प्रतीक्षेरन्नित्युक्त्वा भ्रातरि चैवमित्यनेन सर्वमतिदिष्टम् एतेनैत-
 दवसीयते विद्याधनधर्मार्थं गतानां ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राणां
 क्रमशो द्वादशदशाष्टषड्वर्षाणि क्षपणमिति प्रायश्चित्त-
 विवेकः । रत्नाकरकृद्भिस्तु श्रूयमाणेऽभिमुखगमनं प्रव्रजिते
 गमनस्य निवृत्तिप्रसङ्गादित्यधिकं गौतमीयं विलिख्य प्रोषिते
 भ्रातरि ज्येष्ठे विवाहान्याधाने तं कारयितुमभिमुखगमनं
 जवीयसा कर्त्तव्यं कृतसम्यासे च ततो निवृत्तिरिति व्याख्या-
 तम् । शातातपः 'क्लौवे देशान्तरगते पतिते भिक्षुकेऽपि वा ।
 योगशास्त्राभियुक्ते च न दोषः परिवेदने' । योगशास्त्राभि-
 युक्ते । विषयात्यन्तविरक्ते इति रत्नाकरः । अतएव दक्षः
 'वृत्तिहीनं मनः कृत्वा क्षेत्रज्ञं परमात्मनि । एकीकृत्य
 विमुच्येत योगोऽयं मुख्य उच्यते' । तेन विषयानासक्तमनसा
 जीवपरमात्मनोरभेदचिन्तनविशेषो योग इति । छन्दोगपरि-
 शिष्टं 'नाग्नयः परिविन्दन्ति न यज्ञा न तपांसि च । न च
 आङ्गं कनिष्ठस्य या च कन्या विरूपिका' विकला या च
 कन्यकेति पाठः शातातपोये । नाग्नयः परिविन्दन्तीति
 ज्येष्ठाननुमत्या यथा उशना 'ज्येष्ठभ्राता यदा तिष्ठेदाधानं
 नैव कारयेत् । अनुज्ञातस्तु कुर्वीत शङ्कस्य वचनं तथा' ।
 वशिष्ठः । 'अग्रजोऽस्य यदा नग्निरधिकार्योऽनुजः कथम् ।
 अग्रजानुमतः कुर्यादग्निहोत्रं यथाविधि' । एतेन विवाहः

उद्वाहतत्त्वम् ।

१२३

स्वनुमत्यापि दोषायेति प्रायश्चित्तविवेकः । विवृतरूपा
 कन्याऽनूढा ज्येष्ठाकनिष्ठायाः सहोदराया उद्यायाः परिवेद-
 नाय न भवति अप्रसक्तप्रतिषेधानुपपत्त्या नञः पर्युदासवृत्ति-
 त्वादेतदतिरिक्तायां परिवेदनदोष इति परिशिष्टप्रकाशकारः
 देवलस्त्वत्र विषयेऽग्रेदिधिषु दिधिषुत्वमाह 'ज्येष्ठायां विद्य-
 मानायां कन्यायामुद्धतेऽनुजा । सा चाग्रे दिधिषुर्ज्ञेया पूर्वा
 च दिधिषुः स्मृता' । विद्यमानायामित्यत्र यद्यनूढायामिति
 लोकाक्षिः । प्रायश्चित्तमाह वशिष्ठः । 'अथाग्रे दिधिषुपतिः
 कृच्छ्रं द्वादश रात्रं चरित्वा निर्विशेत् तास्यैवोपायच्छेत्
 दिधिषुपतिः कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ चरित्वा तस्मै दत्त्वा पुनर्निर्विशेत्'
 इति द्वादशरात्रं पराकरूपं निर्विशेत् अन्यामुद्धते तां
 कनिष्ठां ज्येष्ठाया वराय उपयच्छेत् उपपादयेत् एवं ज्येष्ठा-
 मपि कनिष्ठाया वराय एतच्चानुमत्यर्थं शास्त्रेणोक्तं न तु
 तयोरप्यभिगमः । परिवेदनाधिकारे 'न भूयश्चैनामुपगच्छेत्'
 इति सुमन्तुवचनात् भवदेवभट्टघृतं 'परित्यक्ता च सा पोष्या
 भोजनाच्छादनेन च' । अङ्गिराः 'आवृत्ते तीर्थगमने प्रति-
 ज्ञाते च कर्मणि । कालात्यये च कन्यायाः कालदोषो न
 विद्यते । अष्टवर्षा भवेद्द्विरी नववर्षा तु रोहिणी । दशमे
 कन्यकाप्रोक्ता अत ऊर्ध्वं रजस्वला । तस्मात् संवत्सरे प्राप्ते
 दशमे कन्यका बुधैः । प्रदातव्या प्रयत्नेन न दोषः काल-
 दोषतः' । कालदोषस्य विषयो राजमार्त्तण्णीये व्यक्तीभवि-
 श्यति । यमः । 'कन्या द्वादशवर्षाणि याऽप्रदत्ता गृहे वसेत् ।
 ब्रह्महत्या पितृस्तस्याः सा कन्या वरयेत् स्वयम्' । महा-
 भारते । 'त्रिंशद्वर्षः षोडशवर्षा भार्यां विन्देत नग्निकाम् ।
 अतोऽप्रवृत्ते रजसि कन्यां दद्यात् पिता सक्तः । महादोषः
 सृष्टेदेनमन्यथैष विधिः सताम्' । नग्निकाऽनागतार्त्तवा अन्यथा

१२४

उद्वाहृतस्त्वम् ।

प्रवृत्ते रजसि अत्रिकाश्रयी 'पितुर्गृहे च या कन्या रजःपश्यत्य-
 संस्कृता । भ्रूणहत्या पितुस्तस्याः सा कन्या वृषली स्मृता ।
 यस्तु तां वरयेत् कन्यां ब्राह्मणो ज्ञानदुर्वलः । अत्राहेयमपौक्त्यं
 तं विद्याद्वृषलीपतिम्' । यत्तु मनुवचनम् । 'काममार-
 णात्तिष्ठेदगृहे कन्यर्तुमत्यपि । न चैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय
 कर्हिचित्' । इति मनुक्तगुणहीनसद्भावमात्रविषयम् । अत-
 एव गुणवतेऽष्टवर्षन्यूनापि देयेत्याह मनुः । 'उत्कृष्टाया-
 भिरूपाय वराय सदृशाय च । अप्राप्तमपि तां कन्यां
 तस्मै दद्याद्यथाविधि' । अप्राप्तमप्राप्तविवाहप्रशस्तकालाम् ।
 स्मृतिः । 'सप्तसंवत्सरादूर्ध्वं विवाहः सार्ववर्णिकः । कन्यायाः
 शस्यते राजन्नन्यथा धर्मगर्हितः' । राजमार्त्तच्छीये । 'अयुग्मे
 दुर्भगा नारी युग्मे च विधवा भवेत् । तस्माद्भर्ग्विते युग्मे
 विवाहे सा पतिव्रता । मासत्रयादूर्ध्वमयुग्मवर्षे युग्मे च
 मासत्रयमेव यावत् । विवाहशुद्धिं प्रवदन्ति सर्वे व्यासादयो
 ज्योतिषि जन्ममासात् । आषाढे धनधान्यभोगरहिता नष्ट-
 प्रजा आवणे वेश्या भाद्रपदे इषे च मरणं रोगान्विता
 कार्तिके । पौषे प्रेतवती वियोगबहुला चैत्रे मदान्मादिनौ
 अन्येष्वेव विवाहिता सुतवती नारी समृद्धा भवेत् । राज-
 ग्रस्ते तथा युद्धे पितृणां प्राणसंशये । अतिप्रौढा च या कन्या
 नानुकूल्यं प्रतीक्षते । अतिवृद्धा च या कन्या कुलधर्मविरो-
 धिनौ । अविशुद्धापि सा देया चन्द्रलग्नबलेन तु' । भुज-
 बलभीमे । 'ग्रहशुद्धिमद्शुद्धिं शुद्धिं मासायनर्तुं दिवसानाम् ।
 अर्वाक् दशवर्षेभ्यो मुनयः कथयन्ति कन्यकानाम्' । दश-
 वर्षाभ्यन्तरे शुद्धौ ग्रहाब्दादीनां विशेषोपादानात् तदूर्ध्वताव-
 न्मात्रानियमः । अत्रैव विषये 'मङ्गल्येषु विवाहेषु कन्या-
 संवरणेषु च । दशमासाः प्रशस्यन्ते चैत्रपौषविवर्जिताः' इति

उद्वाहतत्त्वम् ।

१२५

राजमार्तण्डोक्तम् । एतदेकवाक्यतया पूर्ववचनेऽविशुद्धेत्येताव-
 भावविषयं न तु मलमासशुक्रास्तादिसमयाशुद्धिप्रतिप्रसवपरं
 तस्याः स्त्रीषु साधारणत्वेन प्रतिप्रसवास्पर्शात् कृत्यचिन्ता-
 मण्यादिषु गोचराद्यशुद्धिप्रतिप्रसवसमयाशुद्धिप्रतिप्रसवयोः
 प्रकरणभेदेनोपादानाच्च 'कालात्ययेऽपि कन्यायाः कालदोषो
 न विद्यते' । इत्यङ्गिरसोक्तमपि तथैव 'उदगयने आपूर्यमाणे
 पक्षे कल्याणे नक्षत्रे चौडकर्मोपनयनगोदानविवाहाविवाहः
 सार्वकालिकः इत्यपरे' इत्याश्वलायनवचनेऽपि सार्वकालिक
 इत्यनेन प्रागुक्तवचनेकवाक्यतया दशाब्दोत्तरे स्त्रीक्तोदगयनादे-
 रनियम उक्तः अतएव गर्भकृत्यादिप्रतिप्रसववन्मलमासादावति-
 प्रौढा विवाहे प्रतिप्रसवः केनापि विशिष्य नोक्तः अङ्गिरोवचने
 आवृत्ते तीर्थगमने इति तु 'मलमासेऽप्यनावृत्तं तीर्थस्नानमपि
 त्यजेत्' इति दर्शनान्मलमासादिप्रतिप्रसवपरं स्मृत्यर्थसन्देहे
 स्मृत्यन्तरसंवादादेवार्थनिर्णय इति निबन्धारः 'भाविनोऽर्था
 भवन्त्येव हठेनानिच्छतोऽपि हि' इति मत्स्यपुराणोक्तावश्य-
 भाविशुभाशुभेषु ग्रहादिदोषशान्त्यर्थं होमहिरण्यादिदानं
 विवाहात् प्राक्कर्त्तव्यं भगवत्या रुक्मिण्या भविष्यद्विवाहे तथा
 दर्शनात् यथा भागवते 'चक्रुः सामर्गयजुर्मन्त्रैर्वध्वा रक्षां
 द्विजोत्तमाः । पुरोहितोऽथर्वविद्वे जुहाव ग्रहशान्तये । हिरण्य-
 रूप्यवासांसि तिलांश्च गुडमिश्रितान् । प्रादाद्वेनूश्च विप्रेभ्यो
 राजा विधिविदांवरः । अतएव दीपिकायां 'ये ग्रहारिष्टि-
 सूचकाः' इत्यनेन ग्रहाणां पूर्वसिद्धपापबोधकत्वमिति न तु
 पापजनकत्वम् । तथाच मत्स्यपुराणम् । 'पुरा कृतानि
 पापानि फलन्त्यस्मिंस्तपोधनाः । रोगदौर्गत्यरूपेण तथैवेष्ट-
 वधेन च । तद्विघाताय वक्ष्यामि सदा कल्याणकारकम्' ।
 अतएव याज्ञदल्करः । 'दैवे पुरुषकारे च कर्मसिद्धिर्व्यव-

१२६

उद्वाहतस्वम् ।

स्थिता । तत्र दैवमभिव्यक्तं पौरुषं पौर्वदेहिकम् । कर्म-
सिद्धिः शुभाशुभकर्मसिद्धिः पूर्वकालीनदेहेन पुरुषनिष्पन्नं
सुकृतं दुष्कृतञ्च फलोन्मुखीभूतं सुदेवं दुर्देवञ्चेत्युक्तं मत्स्य-
पुराणञ्च 'प्रतिकूलं तदा देवं पौरुषेण विहन्यते । मङ्गला-
चारयुक्तानां नित्यमुत्थानशालिनाम्' । पौरुषेणेहिकदेहिक-
यागादिना उत्थानशालिनां कर्मारम्भवतां ततश्च अमुकस्य
अमुकाया वा विवाहे ग्रहादिस्वचनीयदोषोपशमनकाम इति
हिरण्यदानादौ प्रयोज्यं ग्रहहोमे तु आकृष्णेनेत्यादि मन्त्राः
सर्ववेदसाधारणाः पुराणोक्तत्वात् तथाच मत्स्यपुराणम् ।
'आकृष्णेनेति सूर्याय होमः कार्यो द्विजन्मना । आप्याय-
स्वेति सोमाय मन्त्रेण जुहुयात् पुनः । अग्निर्मूर्द्धादिवोमन्त्र-
मिति भीमाय कौर्त्तयेत् । अग्ने विवस्वदुष्पस इति सोम-
सुताय च । बृहस्पते परिदीया रथेनेति गुरोर्मतः । शुक्र-
न्तेऽन्यदिति चैव शुक्रस्यापि निगद्यते । शनैश्चरायेति पुनः
शन्नोदेवौति होमयेत् । कथानश्चित् आभुवदूतीराहोरुदा-
हृतम् । केतुं कृण्वन्निति कुर्यात् केतूनामुपशान्तये' । अत-
एव भवदेवभट्टेनापि तथा लिखितम् । मत्स्यसूक्ते 'भूकम्पादेर्न
दोषोऽत्र बृद्धिश्चाङ्गे कृतेऽपि वा' ।

अथ कन्यादानाधिकारः । विष्णुः 'पिता पितामहो
भ्राता सकुल्यो मातामहो माता चेति कन्याप्रदः पूर्वाभावे
प्रकृतिस्थः परः परः' इति प्रकृतिस्थः पातित्योन्मादादिरहितः ।
अप्रकृतिस्थेन पित्रादिना कृतमप्यकृतमेव तदाह नारदः ।
'स्वतन्त्रोऽपि हि यत् कार्यं कुर्यादप्रकृतिं गतः । तदप्यकृत-
मेव स्यादस्वातन्त्रस्य हेतुतः' । पितृत्वादिना स्वतन्त्रोऽपि
सन् अप्रकृतिस्थत्वेन हेतुना परतन्त्रो भवति तदा तत्कृतं
वाग्दानादिकमकृतमेव यदि तु विवाहो निवृत्तः तदा प्रधाः

उद्वाहृतत्त्वम् ।

१२७

नस्य निष्पन्नत्वेनाधिकारवैकल्यान्न तस्य पुनरावृत्तिरिति ।
मातुः पूर्वं मातुलो बोध्यः यथा नारदः । ‘पिता दद्यात् स्वयं
कन्यां भ्राता वानुमतः पितुः । मातामहो मातुलश्च सकुल्यो
बान्धवस्तथा । माता त्वभावे सर्वेषां प्रकृतौ यदि वर्त्तते ।
तस्यामप्रकृतिस्थायां कन्यां दद्युः स्वजातयः’ । इत्यर्द्धमधिकं
पराशरभाष्ये माधवाचार्येण लिखितं मातुः कन्यादातृत्वे
वृद्धिश्चाद्याभावो बोध्यः बान्धवः पितामहः विष्णुवचनैकवाक्य-
त्वात् एवमेव रत्नाकरः एवञ्च सकुल्यपितामहयोर्नारदोक्तक्रमो
न ग्राह्यः किन्तु विष्णुवक्तव्यमाणयाज्ञवल्क्योक्तक्रमो ग्राह्यः
पाठक्रमाच्छाब्दक्रमस्य बलवत्त्वात् तस्यामित्यनेन मातुरुप-
स्थितत्वात् स्वजातय इत्यनेन मातामहमातुलेतरमातृपक्ष-
सकुल्या उच्यन्ते । संस्कृतानामधिकारमाह याज्ञवल्क्यः ।
‘असंस्कृतास्तु संस्कार्या भ्रातृभिः पूर्वसंस्कृतैः । भगिन्यश्च
निजादंशादृत्वांशन्तु तुरीयकम्’ । असंस्कृता भ्रातरः भगि-
न्यश्च पूर्वसंस्कृतैरुपनीतैः । अन्यथा मन्त्रपाठानधिकारापत्तेः
तुरीयकं विवाहोचितद्रव्यमिति दायतत्वे विवेचितम् ।
तत्र विवाहोचितद्रव्यदाने संस्कृतासंस्कृतभेदानुपयोगात् पूर्व-
संस्कृतैरिति कन्यासंस्कार एव उपयुक्तं तथा ‘पिता पिता-
महो भ्राता सकुल्यो जननी तथा । कन्याप्रदः पूर्व नाशे
प्रकृतिस्थः परःपरः । अप्रयच्छन् समाप्नोति भ्रूणहत्या-
मृतावृत्तौ । गम्यन्त्वभावे दातृणां कन्या कुर्यात् स्वयं
वरम् । सकृत् प्रदीयते कन्या हरंस्तां चौरदण्डभाक् ।
दत्तामपि हरेत् कन्यां श्रेयांश्चेद्वर आब्रजेत्’ । तथेत्यनेन नार-
दोक्तमातामहाद्याः समुच्चिताः । गम्यं सर्वणत्वादिना स्वप्रा-
पणाहं वरं स्वप्रदानेन पतिं कुर्यादित्यर्थः । ‘दत्तात्मा तु स्वयं
दत्ता’ इति याज्ञवल्क्योक्तं स्वयं दत्तपुत्रस्य स्वादनवत् दत्ता

१२८

उद्वाहृतस्त्वम् ।

षाग्दत्ताम् इयं कन्या अमुकाय दातव्येति प्रतिश्रुतामिति यावत् अत्र विशेषमाह नारदः । 'ब्राह्मादिषु विवाहेषु पञ्च-
 स्वेष्टविधिः स्मृतः । गुणापेक्षं भवेद्दानमरासुरादिषु च त्रिषु' ।
 एष विधिः सकृद्दानविधिः । गोतमः । 'प्रतिश्रुत्याप्यधर्मसंयुक्ताय
 न दद्यादिति' अधर्मोऽत्र दानानर्हताप्रयोजक इति विवादरत्ना-
 करः । वशिष्ठः । 'कुलशीलविहीनस्य पण्डादिपतितस्य च ।
 अपक्षारि विधर्मस्य रोगिणां वेशधारिणाम् । दत्तामपि हरेत्
 कन्यां सगोत्रोटां तथैव च' । नारदः । 'प्रतिगृह्य च यः कन्या-
 मदुष्टामुत्सृजेन्नरः । विनेयः सोऽर्थदण्डेन कन्यां तामेव चोद-
 हेत्' । विनेयो दण्डनीयः । ब्राह्मादीनाह याज्ञवल्करः ।
 'ब्राह्मो विवाह आह्वय दीयते शक्त्यलंक्षता । तज्जः पुनात्युभ-
 यतः पुरुषानेकविंशतिम् । यज्ञस्थायत्विजे देव आदायार्षस्तु
 गोयुगम् । चतुर्दशप्रथमजः पुनात्युत्तरजश्च षट् । इत्युक्ताच-
 रतां धर्मं सह या दीयतेऽर्थिने । सकायः पावयेत्तज्जः षड्-
 वंश्यांश्च महात्मना । आसुरो द्रविणादानाद् गन्धर्वः समया-
 न्निधः । राज्ञसो युद्धहरणात् पैशाचः कन्यकाच्छलात्' । एक-
 विंशतिमिति दश पूर्वान् दशापरान् । आत्मानश्चैकविंशति-
 मिति मनुवचनसमानार्थकं पुनाति 'पित्वादीन् पापान्नरकाच्च
 समुद्धरति पुत्त्रादीन् निष्पापान् जनयति आत्मानमपि निष्पापं
 करोति आदायेति गोह्वयं वरादगृहीत्वा तेनैव सह कन्यादान-
 मार्षः सह गोमिथुनेन ऽचेति देवलवचनात् सहधर्मश्चरता-
 मिति नियमं कृत्वा कन्यादानं कायः कः प्रजापतिर्देवताऽस्येति
 प्राजापत्य इत्यर्थः । शास्त्रीयसंख्यानियमम् । विना धनग्रहणा-
 दासुरः अतो नार्षस्य तथात्वं कन्यावरयोः परस्पररामाद् यः
 समयः त्वं मे भार्या त्वं मे पतिरिति निश्चयः स गान्धर्वः ।
 युद्धेति बलात्कारोपलक्षणम् । 'प्रसह्य कन्याहरणं राज्ञसो

उद्वाहतत्त्वम् ।

२२९

विधिरिष्यते' इति मनुवचनात् क्लृप्ताह मनुः । 'सुप्तां मत्तां प्रमत्तां वा रक्षो यत्नोपगच्छति । स पापिष्ठो विवाहानां पैशाचः कथितोऽष्टमः' । एवम्भूतत्यागानन्तरग्रहणे ब्राह्म्याद्यष्टनामको विवाह इति वर्तुलार्थः । गान्धर्वादौ विधिमाह देवलः । 'गान्धर्वादिविवाहेषु विधिर्वैवाहिको मतः । कर्त्तव्यश्च त्रिभिर्वर्णैः समयेनाग्निसाक्षिकः' । क्षतयोन्म्या अपि संस्कारमाह याज्ञवल्क्यः । 'अक्षता च क्षता चैव पुनर्भूः संस्कृता पुनः' इति घृताभ्यक्तत्वादिना नयोगधर्ममुपक्रम्य मनुः । 'यस्यास्त्रियेत कन्याया वाचा सत्यकृते पतिः । तामनेन विधानेन निजो विन्देत देवरः । यथाविध्यभिगम्येनां शुक्लवस्त्रां शुचिव्रताम् । मिथोभजेताप्रमवात् सकृत् सकृद्वतावृत्तौ' । आगर्भग्रहणात् सकृद्गमनोपदेशाच्च यस्मै वाग्दत्ता तस्मैवापत्यं भवतीति कुल्लूकभट्टः । एतच्च कन्यानुमतिसत्त्वे तदनुमत्या तु नेत्याह वशिष्ठः । 'कन्यायां दत्तशुल्कायां स्त्रियते यदि शुल्कदः । देवराय प्रदातव्या यदि कन्यानुमन्यते । अङ्घ्रिर्वाचा प्रदत्तायां स्त्रियेतोद्ध' वरो यदि । न च मन्त्रोपनीता स्यात् कुमारौ पितुरेव सा' । प्राग्वचनं मनोरपि मन्त्रोपनीता पाणिग्रहणमन्त्रजन्यसंस्कारवती कुमारी पितुरेव सेति अन्यस्मै यादृशेन सस्वन्धेन पित्रा विवाह्यते तादृक् पितृसस्वन्धवती एतत्परमेव 'नोदकेन न वाचा वा कन्यायाः पतिरिष्यते । पाणिग्रहणसंस्कारात् पतित्वं सप्तमे पदे' इति यमवचनम् । कन्यायाः सकृद्दानन्तु पाणिग्रहणसंस्कारयुक्ताकन्यादानविषयं कात्यायनः । 'अनेकेभ्योऽपि दत्तायामन्दायान्तु यत्र वै । वरागमश्च सर्वेषां लभेताद्यवरस्तु ताम् । पश्चादरेण यद्वत्तं तस्याः प्रतिलभेत सः । तथा गच्छेत् समूढायां दत्तं पूर्ववरो हरेत्' वरो विवाहोपस्थितः तथा 'प्रदाय शुल्कं गच्छेद् यः कन्यायाः

१३०

उदाहृतस्त्वम् ।

स्त्रीधनं तथा । धार्या सा वर्षमेकन्तु देयान्यस्मै विधानतः ।
 अथ प्रहृत्तिरागच्छेत् प्रतीचेत समात्रयम् । अत ऊर्ध्वं प्रदा-
 तव्या कन्यान्यस्मै यथेच्छतः । प्रहृत्तिरागमनवार्त्ता । मनुः ।
 ‘मङ्गलार्थं स्वस्वयनं यज्ञस्तासां प्रजापतेः । प्रयुज्यते विवा-
 हेषु प्रदानं स्वाभ्यकारणम् । पाणिग्रहणिका मन्त्रानियतं
 दारलक्षणम् । तेषां निष्ठा तु विज्ञेया विद्वद्भिः सप्तमे पदे’ ।
 स्वस्वयनं कुशलेन कालातिवाहनहेतुकं करणसाधनात् कन-
 कधारणादि शोभं स्वस्ति भवन्तो ब्रूवन्त्विति च यश्च प्रजा-
 पतिदेवतो वैवाहिको होमस्तत्सर्वं मङ्गलार्थम् अभिमतार्थ-
 सिद्धिर्मङ्गलं तदर्थमवैधव्यार्थमिति यावत् । स्वाभ्यकारणन्तु
 प्रदानं न तु वाग्दानं रत्नाकरकृतापि प्रदाने नैव कन्यायां
 धरस्य स्वाभ्यं जायते कन्यादातुः स्वाभ्यं निवर्त्तते इति व्याख्यातं
 निष्ठा भार्यात्वस्य समाप्तिरूपा सप्तमे पदे गतायां कन्याया-
 मिति बोध्यम् । तदानीं गोत्रापहारमाह लघुहारीतः ।
 ‘स्वगोत्राद् भ्रश्यते नारी विवाहात् सप्तमे पदे । पतिगोत्रेण
 कर्त्तव्या तस्याः पिण्डोदकक्रिया’ । पाणिग्रहणादपि पितृ-
 गोत्रापहारमाह आहविवेके । वृहस्पतिः । ‘पाणिग्रहणिका
 मन्त्राः पितृगोत्रापहारकाः । भर्तृगोत्रेण नारीणां देयं पिण्डो-
 दकं ततः’ । यत्तु सपिण्डनस्य गोत्रापहारित्वप्रतिपादकव-
 चनं ‘संहितायान्तु भार्यायां सपिण्डीकरणान्तिकम् । पैत्रिकं
 भजते गोत्रमूर्ध्वन्तु पतिपैत्रिकम्’ । इति कात्यायनीयं तत्-
 शास्त्रन्तरौयं शिष्टव्यवहाराभावात् । अतएव अनुमन्विता गुरु-
 गोत्रेणाभिवादयेत इति गोभिलोक्तं सप्तपदीगमनानन्तरं पत्यु-
 रभिवादनं तत्पतिगोत्रेण कर्त्तव्यमिति भट्टनारायणैरुक्तम् एतेन
 पितृगोत्रेणेति सरलाभवदेवभट्टाभ्यामुक्तं हेयम् । एतत्पत्य-
 भिवादान्त एव सामगानां विवाहः तावुभौ ततः प्रभृति-

उदाहृतम् ।

१११

त्रिरात्रमक्षारलवणान्नाशिनौ ब्रह्मचारिणौ भूमौ सह शयी-
यातामिति तत्सूत्रे ततः प्रभृति विवाहकर्मण ऊर्द्धमिति भट्ट-
नारायणव्याख्यानात् । अतएव तत्पत्यभिवादनानन्तरं भव-
देवेनापि प्रायश्चित्तहोमवामदेव्यगानदक्षिणा लिखिताः ।
यजुर्वेदिनान्तु प्रेक्षकाभिमन्त्रणानङ्गुष्ठमोपवेशनान्तो विवाहः
आचार्याय वरं ददातीति पारस्करसूत्रेण तदनन्तरं वरशब्द-
वाच्यगवादिदक्षिणादानस्योक्तत्वात् । अतएव 'विवाहादिः
कर्मणो य उक्तो गर्भाधानं शुश्रुम यस्य चान्ते । विवाहादा-
वेकमेवात्र कुर्यात् आहं नादौ कर्मणः कर्मणः स्यादिति'
छन्दोगपरिशिष्टवचने विवाहादिरिति समशनीयचरुहोम-
गृहप्रवेशयानारोहणचतुष्पथामन्त्रणाक्षभङ्गसमाधानार्थ-होम-
चतुर्थीहोमादिशब्देन ग्रहणम् । एषु विवाहादिगर्भाधानान्त-
कर्मसु एकमेव आहं कार्यमिति आहविवेकः । अतः सम-
शनीयचरुहोमादयः साङ्गविवाहाङ्गिना इति । ततश्च नाशौचं
राज्ञां राजकर्मणीत्यधिकृत्य न देवप्रतिष्ठाविवाहयोः पूर्वसंभू-
तयोरिति विष्णुसूत्रेणारब्धविवाह एव अशौचाभावो न तु सम-
शनीयचरुहोमादौ विवाहारम्भश्च वृद्धिआहं 'व्रतयज्ञविवाहेषु
आहे होमेऽर्चने जपे । आरब्धे सूतकं न स्यादनारब्धे तु
सूतकम् । आरम्भो वरणं यज्ञे सङ्कल्पो व्रतजापयोः । नान्दी-
आहं विवाहादौ आहे पाकपरिष्क्रिया' इति राघवभट्टवच-
नात् पाकपरिष्क्रियेति साम्नेर्दर्शआहविषयं तत्र तस्य तदुद्घ-
रणस्य असाधारणाङ्गत्वात् । न चैवं विवाहपूर्वकृतेन नान्दी-
मुखआहेन सर्वेषां आहवत्त्वात् सर्वेषामेवारम्भो भूतः इति
वाच्यं विवाहार्थं कृतवृद्धिआहसमशनीयादीनामारम्भकत्वा-
भावात् उद्देश्यत्वगर्भकत्वादारम्भपदार्थस्य अन्यथा अन्यार्थ-
वरणादावन्यारम्भः स्यात् । अक्षभङ्गाभावात् तदर्थहोमाकरणे ।

१३२

उद्वाहतत्त्वम् ।

विवाहार्थं कृतश्राद्धेन तस्याप्यारम्भादारम्भाकरणे प्रत्यवायश्च
 स्यात् । अतएव अग्न्याधानार्थं विवाहार्थं वा कृते श्राद्धेऽशौचे
 तु न वैश्वदेवस्य गर्भाधानस्य वा करणम् । एवञ्च विवाहकाले-
 ऽशौचे समशनीयचरुहोमादयोऽशौचगते महाव्याहृतिहोम-
 प्रायश्चित्तं कृत्वा कर्त्तव्याः । 'गौणेषु तेषु कालेषु कर्म चोदित-
 मारमेत् । प्रायश्चित्तप्रकरणप्रोक्तां निष्कृतिमाचरेत्' इति भर-
 द्वाजवचनात् । गौणकालमाह हरिहरपद्धतौ । 'यद्वागामिक्रिया-
 मुख्यकालस्याप्यान्तरालवत् । गौणकालत्वमिच्छन्ति केचित्
 प्राक्तनकर्मणि' । अन्तरालवत् मध्यकालस्यैव श्राद्धचिन्तामणि-
 कृत्यतत्त्वार्णवयोः 'एवमागामियागौयमुख्यकालादधस्तनः ।
 स्वकालादुत्तरो गौणः कालः पूर्वस्य कर्मणः' । एवञ्च सर्वा-
 ख्येवान्वाहार्थवन्तीति गोभिलगृह्येण 'यच्छ्राद्धं कर्मणामादौ
 या चान्ते दक्षिणा भवेत् । अमावास्यां द्वितीयं यदन्वाहार्थं
 विदुर्बुधाः' । इति गृह्यान्तरे नान्दीमुखश्राद्धदक्षिणयोरन्वा-
 हार्थत्वप्रतिपादनात् गृह्योक्तकर्मणामाद्यन्ताङ्गत्वेन नान्दी-
 मुखश्राद्धदक्षिणानियमाभिधानात् विवाहमात्रस्य गृह्यकर्म-
 त्वेन तदादौ द्विश्राद्धमवश्यं कर्त्तव्यं तत्राद्यविवाहे पित्रा तत्
 कर्त्तव्यं 'स्वपितृभ्यः पिता दद्यात् सुतसंस्कारकर्मणि । पिण्डा-
 नोदहनात्तेषां तस्याभावेऽपि तत् क्रमात्' । इति छन्दोगपरि-
 शिष्टात् सुतसंस्कारग्रहणात् पुत्रस्य विवाहान्तरे पित्रा नाभ्यु-
 दयिकं कार्यम् आद्येन संस्कारसिद्धौ द्वितीयादेस्तदजनकत्वात्
 तथाचाश्वलायनगृह्यपरिशिष्टं 'सौमन्तोन्नयनं प्रथमे गर्भे
 सौमन्तोन्नयनसंस्कारो गर्भपात्रसंस्कारः' इति श्रुतिरिति गर्भ-
 पात्रयोरयं गर्भपात्रः गर्भस्य उदरस्थस्य पात्रस्य तदाधारस्य
 स्त्रिया इति कल्पतरुः । हारीतोऽपि । 'सकृत् कृतसंस्काराः
 सौमन्तेन द्विजस्त्रियः । यं यं गर्भं प्रसूयन्ते स गर्भः संस्रुतो

उद्वाहतत्त्वम् ।

१३३

भवेत् । अत्र सकृत् संस्कृतपात्रजातानां सर्वेषां संस्काराभिधानेन प्रत्येककृतजातकर्मादिसंस्काराणां सुतरां संस्कृतत्वं सकृत् कृते कृतः शास्त्रार्थ इति न्यायात् । पिण्डानिति आह-परं कन्यापुत्रविवाहेषु इति आहविधायकविष्णुपुराणैकवाक्यत्वात् तदेकवाक्यतया एकशेषात् सुतसंस्कारकर्मणीत्यत्र सुतपदं कन्यापुत्रपरम् । आ उद्वाहनादित्यभिविधावाङ् । तस्याभावेऽपि संस्कार्यक्रमवाधकस्य पितुरभावेऽपि पुनरन्यः संस्कार्यः सपिण्डादिर्वा तत्क्रमादिति 'चित्रं कर्म यथानकैरङ्गैरुन्मील्यते शनैः । ब्राह्मण्यमपि तद्वत् स्यात् संस्कारैर्विधिपूर्वकैः' । इत्यङ्गिरसोक्तफलभागितया तस्य प्रधानस्य क्रमात्तेषां पितृणां दद्यात् । ततश्च संस्कार्यं पितादित्रयमातामहादित्रयेभ्यः आहं कुर्यात् । न च संस्कार्यं पितरमादाय तेषां पितुः संप्रदानभूतानां तत्क्रमादित्यनेन पितुः प्रवेशात् पितुः प्रपितामहेतर पञ्चानामिति नारायणोपाध्यायमतं युक्तमिति वाच्यं पितृनुवेशेन संस्कार्यं पितृपितामहप्रपितामहानां आहं तन्मातामहपक्षस्यैव 'पितरो यत्र पूज्यन्ते तत्र मातामहाभ्रवम्' इत्यनेन युक्तत्वात् न वा तेषां संस्कर्तृपितृणां संस्कार्यं पितुः पितृगणमातामहगणानां वा ग्रहणं तत्क्रमादित्यनुपपत्तेः तथाहि आद्ये संस्कर्तुरनुपात्तत्वेन तच्छब्दादनुपस्थितिः । द्वितीये तेषामित्यनेनैव प्रक्रान्तत्वेन तथाविधानं प्राप्या तत्क्रमादित्यस्यानुवादकतापत्तिरूपानुपपत्तिः एवं तस्याभावे त्विति मैथिलपाठे प्रक्रान्तव्यवच्छेदकतुकारेण द्वितीयपक्षस्य सुतरां बाधितत्वमिति । ततश्च तेषामिति निर्विशेषितपितृमात्रपरामर्शकमिति । एवञ्च भ्रात्रापि संस्कार्यं देवदत्तादिपितुरिति प्रयोज्यम् । नान्दौमुखे तु छन्दोगैर्योषितां आहं न कर्त्त-

१३४

उद्वाहतस्त्वम् ।

व्यम् । 'न योषिङ्गः पृथग्दद्यादवसानदिनादृते । स्वभर्तुः
 पिण्डमात्राभ्यस्तृप्तिरासां यतः स्मृता' इति छन्दोगपरिशिष्टे
 पर्युदस्तत्वात् न च अवसानदिनेतरत्र योषिङ्गोऽपृथग्दद्यात्
 यतः स्वभर्तुः पिण्डांशेभ्य उभयोद्देश्यकदत्तेभ्य एव योषितां
 तृप्तिः पुरुषाणां योषिज्जीवनादौ पृथक्पिण्डादपि तृप्तिसत्त्वात्
 योषित्वदमपि सार्थकमिति वाच्यं तथात्वेऽवसानदिनादृते
 इति व्यर्थं स्यात् तथाहि परिप्राप्ते योषितां आहोऽपृथक्त्वं
 विधीयते किंवा अपृथक् आह्वं विशिष्टं विधीयते नाद्यः
 अमावस्यादौ योषिदानाप्राप्ती कथं तदन्वयाऽपृथक्त्वमात्र-
 विधानं न च अमावास्यायां पितृभ्यो दद्यादित्यत्र प्रेते पितृ-
 त्वमापन्ने सपिण्डीकरणादन्विति विष्णुपुराणीयेन योषिता-
 मपि पितृत्वात् आह्वप्राप्तिरिति वाच्यं पितृभ्यो दद्यादित्यत्र
 पितृपदं न प्राप्तपितृलोकमात्रपरम् । किन्तु पितृपितामह-
 प्रपितामहमात्रपरम् असावेतत्ते इति यजमानस्य पित्रे असा-
 वेतत्ते इति यजमानस्य पितामहाय असावेतत्ते इति यज-
 मानस्य प्रपितामहायेति श्रुत्याद्येकवाक्यत्वात् 'त्रयाणामुदकं
 कार्यं त्रिषु पिण्डः प्रवर्तते । चतुर्थः सम्प्रदातैषां पञ्चमो
 नोपपद्यते' इति मनुवचने त्रयाणामित्यनेन पितृपिता-
 महप्रपितामहानां पत्नीनिरपेक्षाणां तर्पणवद्देवतात्वावगमाच्च
 मातामहादिलाभस्तु 'पितरो यत्र पूज्यन्ते तत्र मातामहा-
 भ्रुवम् । अविशेषेण कर्त्तव्यं विशेषान्नरकं व्रजेत्' इति वृद्ध-
 याज्ञवल्क्यवचनात् मातामहा इति तदादित्रिकपरम् इत्यादि
 बहुवचनान्ता गणस्य संसूचका इत्युक्तेः आह्वेति कर्त्तव्यतायां
 मातामहादित्रिकोपादानाच्च । नान्यः तदा ह्यवसानदिना-
 दृत इति व्यर्थं स्यात् अवसानदिने तु 'ध्रुवाणि तु प्रकुर्वीत
 प्रसौताहनि सर्वदा' इति छन्दोगपरिशिष्टवचनेन स्त्रीपुंसयोः

उद्वाहृतत्त्वम् ।

१३५

आधारणत्वेन आह्वप्राप्त्या 'स्त्रीणामप्येवमेवैतदेकोद्दिष्टं प्रकीर्तितम् । सृताहनि यथान्यायं नृणां यद्वदिहोदितम्' इति मार्कण्डेयपुराणीयेन च विशेषतः आह्वप्राप्त्या च विशिष्टविधित्वानुपपत्तेः तस्मादवसानदिनादृत इति वाक्यस्य सार्थकत्वाय पृथक्पदमेवानुवादः न च वैपरीत्यं तथात्वे वाक्यानुवादः स्यात् अव्ययपदानुवादे तु विभक्तेर्नानुवादकतेति एवमेवेशानन्यायाचार्याः तस्मात् 'मातृआह्वन्तु पूर्वं स्यात् पितृणां तदनन्तरम् । ततो मातामहानाञ्च वृद्धौ आह्वे त्रयं स्मृतम्, इति शातातपवचनात् 'अन्वष्टकाष्वष्टकावदग्नौ हुत्वा देवपूर्वकमेव मात्रे पितामह्यै प्रपितामह्यै पूर्ववद्ब्राह्मणान् भोजयित्वा' इति विष्णुसूत्रात् 'सृताहनि तु कर्त्तव्या स्त्रीणामप्युत्तरक्रिया' इति विष्णुपुराणात् 'आह्वं सपिण्डकं कुर्यात् स्वसूत्रोक्तविधानतः । अन्वष्टकासु वृद्धौ च गयायाञ्च क्षयाहनि । मातुः आह्वं पृथक् कुर्यादन्यत्र पतिना सह' इति । वृद्धिआह्वे च मात्रादिगयायां पितृपूर्वकमिति तीर्थचिन्तामणिधृतवायुपुराणवचनात् वृद्धअन्वष्टकाऽवसानदिनगयानिमित्तकआह्वहरणेषु न योगिज्ञ इत्यादिना छन्दोगेतरोऽवसानदिनेतरत्र वृद्धादौ योषिज्ञः पृथक् आह्वायाञ्च दद्यात् छन्दोगो वृद्धादौ योषिज्ञो न दद्यात् अवसानदिने तु छन्दोगाच्छन्दोगोभयमेव योषिज्ञः पृथक् दद्यादित्यर्थात् सिद्धम् । ततश्च वृद्धादौ छन्दोगयोषितां कथं त्सिरित्याकाङ्क्षामुत्पाप्य उत्तरार्धान्वय इति । एतदर्थमेव स्वसूत्रोक्तविधानत इत्युक्तं सूत्रेति गृह्यशास्त्रपरम् अन्यत्रामावास्यादौ पतिना सह भोग्यं आह्वं कर्त्तव्यमित्येवार्थः असावेतत्त इति यजमानस्य पित्रे इति प्रागुक्तश्रुत्या आह्वे पत्नीनिरपेक्षपित्रादिबोधिकया 'सपिण्डौकरणादूह्वं' यत् पितृभ्यः प्रदीयते ।

१३६

उद्वाहतत्त्वम् ।

‘सर्वेष्वंशहरा माता इति धर्मेषु निश्चयः’ इति स्मृत्या भर्तृदत्ता-
 शहारकत्वबोधिकाया च एकवाक्यत्वात् अन्वष्टकायान्तु साम्ने-
 रेवाधिकारः विष्णुवचने हि हुत्वेत्यनेनाग्निप्राप्तेरग्नाविति
 ग्रहणं तन्नियमार्थं न च अनग्नीनामग्नीकरणहोमे विप्र-
 पाण्यादिविधानादत्रापि तथेति वाच्यं प्रकृतिभूतश्राद्धविध्युक्त-
 स्य आधारान्तरस्य विकृतिभूतश्राद्धविशेषस्य विहिताधारेण
 बाधात् शरमयवर्हिषा कुशमयवर्हिर्वाधवत् नवालौकिकाग्नी-
 होमः न पैत्रयज्ञियो होमो लौकिकाग्नी विधीयते इति मनुना
 निषेधात् । वाचस्पतिमिश्रोऽप्येवम् । प्रागुक्तपर्युदामात्
 वृद्धिश्राद्धे कन्दोगपरिशिष्टेन ‘षड्भ्यः पितृभ्यस्तदनुश्राद्ध-
 दानामुपक्रमेत्’ इत्युपक्रम्य षष्णामिवानुष्ठानमुक्तं न तु
 मातृणामिति एतेन षड्भ्यः इति जीवन्मातृकविषयमिति
 निरस्तम् । जीवन्मातृकेण कन्दोगेतरणं पितामह्यादीनां
 श्राद्धे क्रियते जीवन्तमतिदद्याद्वा प्रेतायान्नोदके द्विजः’ इति
 कन्दोगपरिशिष्टात् जीवन्तमित्यत्र निमित्तविशेषत्वेन पुंस्त्व-
 मविवक्षितम् । अतएव लघुहारीतेनाप्युक्तं ‘स्वेन भर्ता सहै-
 वास्याः सपिण्डीकरणं स्त्रियाः । एकत्वं सा गता यस्माच्चरुमन्त्रा-
 हुतिव्रतैः । तस्मिन् सति सुताः कुर्युः पितामह्या सहैव तु ।
 तस्याञ्चैव तु जीवन्त्यां तस्याः श्वश्रूति निश्चयः’ । पितुर्देश-
 न्तरस्थायित्वे च तत्प्रतिनिधित्वेन पुत्रादिना वृद्धिश्राद्धं
 कर्तव्यं तथाच हारीतः । ‘जीवति पितरि पुत्राणामर्थादान-
 विसर्गान्निषेषु न स्वातन्त्र्यं कामं दीने प्रोषिते चार्त्तिं गते
 ज्येष्ठोऽर्थान्श्चिन्तयेत्’ इति अर्थान् दृष्टादृष्टप्रयोजनानि ।
 दक्षोऽपि । ‘ऋत्विक्पुत्रो गुरुभ्राता भागिनयोऽथ विट्पतिः ।
 एभिरेव हुतं यत् स्यात्तद्धुतं स्वयमेव हि’ । स्वयं प्रवृत्तस्यापि
 ऋत्विक्त्वमाह विवादचिन्तामणी नारदः । ‘ऋत्विक् च

उद्वाहतत्त्वम् ।

१२७

द्विविधो दृष्टः पूर्वजुष्टः स्वयंकृतः । यदृच्छया च यः कुर्या-
 दात्विर्यं प्रीतिपूर्वकम् । यदृच्छया स्वेच्छया मरणादिना
 पितुरनधिकारे द्वितीयादिविवाहे वा विवाहाधिकारिणा
 स्वयमवश्यं स्वपितृभ्यः आहं कर्त्तव्यम् । 'नान्दीमुखेभ्यः
 आहन्तु पितृभ्यः कार्यमृद्धये । ततो विवाहः कर्त्तव्यः शुद्धः
 शुभसुतप्रदः' इति ब्रह्मपुराणे आहनेन विवाहस्य शुद्धत्वाभि-
 धानेन तदभावादशुद्धत्वप्रतीतिः अङ्गत्वादेव जीवत्पितृकेणापि
 जीवन्तं विहायापरमादायावश्यं वृद्धिआहं कार्यं 'जीवे
 पितरि वै पुत्रः आहकालं विवर्जयेत् । येषां वापि पिता
 दद्यात्तेषामिके प्रचक्षते' । इति हारीतवचनोत्तरार्द्धेन प्रधान-
 साङ्गतादर्थ्यं आहविधानात्तत्र पितामहाद्यूहमाह विष्णुधर्मो-
 त्तरं 'येषां आहं पिता कुर्यात्तेषामेव स कारयेत् । मन्त्रोद्देशेन तु
 कर्त्तव्यं तेषां आहं नराधिप !' । स जीवत्पितृकः प्रतिनिधिना-
 तु असुकपितुरित्याद्याभिलापे प्रयोज्यम् । आयान्तु नः पितरः
 इत्यादौ तु न तथा 'या वै काञ्चनयज्ञे ऋत्विज आशिषमाशा-
 सते यजमानस्य वा तामाशासत इति होवाच' इति श्रुतेः एवञ्च
 अङ्गत्वात् पितामहादिर्ज्ञेयमाणे कन्यादाने वृद्धिआहान्युप-
 पद्यते । मात्रा जीवत्पित्रादितिकवद्वृद्धिआहं विना कन्या
 दीयते तदनधिकारात् तथाहि पार्वणाधिकारे विष्णुः 'पितरि
 पितामहे प्रपितामहे च जीवति नैव कुर्यात्' इति तद्विकृति-
 त्वाद्द्विआहोऽप्यनधिकारः । 'एवं सृताहनि तु कर्त्तव्या
 स्त्रीणामप्युत्तरक्रिया । प्रतिसंवत्सरे राजन्नेकोद्दिष्टविधानतः'
 इति विष्णुपुराणीये सपिण्डनोत्तरक्रियायामेकोद्दिष्टविधाने-
 नान्यत्रानधिकारः । अत्र स्त्रीणामिति प्रकरणात् कर्त्तरि
 षष्ठी ननु एवं व्रतप्रतिष्ठादिषु स्त्रीकथं ब्राह्मणान् हावयतीति
 चेन्न तत्र तद्विधानात् तथाहि जुहुयाद्वावयेद्देति गोभिल-

१३८

उद्धाहृतत्वम् ।

सूत्रेण विकल्पदर्शनात् 'सूतके च प्रवासे च अशक्तौ आह-
 भोजने । एवमादिनिमित्तेषु हावयेदिति योजयेत्' इति
 कृन्दोगपरिशिष्टीये आदिशब्दात् होममात्रे हावयेदिति
 श्रुतेस्तथाकल्प्यते एवं शूद्रस्यापि ब्राह्मणद्वारा विवाहादौ
 होमाधिकारः । विष्णुधर्मोत्तरे 'विवाहादिक्रियाकाले तत्-
 क्रियासिद्धिकारकम् । यः प्रयच्छति धर्मज्ञः सोऽश्वमेधफलं
 लभेत्' । आदिशब्दात् यज्ञोपनयनप्रतिष्ठादिग्रहणमिति
 दानवाक्यावली मनुः 'अङ्गिरेव द्विजाश्रयणां कन्यादानं प्रश-
 स्यते । इतरेषास्तु वर्णानामितरेतरकास्यया' । उदककरणक-
 मेव ब्राह्मणानां कन्यादानं प्रशस्यते क्षत्रियादीनां पुनर्दाह-
 प्रतिग्रहीत्वोर्दानग्रहणेच्छाकरणेन जलं विनापि दानं प्रशस्यते
 न तु जलकरणकत्वं तेषां निषिद्धयते व्यवहारोऽपि यथा रक्षा-
 करकङ्गिस्तु कन्यावरयोः परस्परानुरागेण इति । वीधायनः
 'श्रुतशौलिने विज्ञाय ब्रह्मचारिणेऽर्थिने देया' इति सव्रह्म
 इति ब्रह्मचारिणे अजातस्त्रीसम्पर्कायेति कल्पतरुयाज्ञवल्कर-
 दीपकलिके । जातपरिणीतस्त्रीसङ्गमस्य द्वितीयविवाहे
 विवाहाष्टकवहिर्भावापत्तेस्तदुपादानं प्राशस्त्यर्थमिति तत्त्वं
 ब्राह्मणानुवृत्तौ संवर्तः 'तां दत्त्वा तु पिता कन्यां भूषणाच्छा-
 दनासनैः । पूजयन् स्वर्गमाप्नोति नित्यमुत्सववृत्तिषु' । स्वर्गं
 नित्यं चिरकालीनम् उत्सवानां वाद्यादीनां वर्तमानेषु
 सत्सु दत्त्वेति सम्बन्धः । तत्फलमाहः सत्स्वपुराणम् ।
 'मङ्गल्यानि च वाद्यानि ब्रह्मघोषञ्च गीतकम् । ऋडार्थं
 कारयेद्दौमानमङ्गल्यविनाशनम्' । यमः । 'कूपारामप्रपा-
 कारौ तथा वृक्षादिरोपकः । कन्याप्रदः सेतुकारी स्वर्ग-
 माप्नोत्यसंशयम्' । अतएव सत्स्वपुराणम् 'शास्त्रे युक्तमस-
 न्दिग्धं बहुद्वारमहाफलम् । दशपुत्रसमा कन्या यापि

उदाहृतत्त्वम् ।

१३८

स्याच्छीलवर्जिता' अतएव । अनपत्यस्य गत्यभावस्तत्रैवोक्ता यथा । 'अनपत्यस्य लोकेषु गतिः का च न विद्यते' । भविष्योत्तरे 'कन्याञ्चैवानपत्यानां ददतां गतिमुत्तमाम्' । अनपत्यानामनपत्येभ्यः प्रकृष्टां गतिं जानौयादिति शेषः । विष्णु-प्रीत्यर्थमपि कन्या दीयते 'देयानि विप्रमुख्येभ्यो मधुसूदन-तुष्टये' । इति वामनपुराणेन सामान्यतोऽभिधानात् विष्णु-पुराणञ्च 'विशिष्टफलदा कन्या निष्कामानाञ्च मुक्तिदा' । मनुः । 'येन येन हि भावेन यद्दानं संप्रयच्छति । तेन तेन हि भावेन प्राप्नोति प्रतिपूजितः' । येन येन हि भावेन सात्विकराजसतामसान्यतमेन तेन तेन हि भावेन देवमानुष-पशुभावेन । यमः 'परञ्चानुपहत्येह दानं दद्याद्विचक्षणः । सुखोद्भवं शुभोदकं प्रेत्यैव लभते फलम्' । इत्येतयोर्दानमात्रे यद्दातुनिष्ठं फलं यच्च कन्यादाने प्रागुक्तं दातुनिष्ठं फलं तदौत्सर्गिकं किन्तु तत्पित्रादिनिष्ठमपि कल्प्यते । 'ततश्चोद्देश्य पितरं ब्राह्मणेभ्यो ददौ धनम्' इति अयोध्याकाण्डे । 'रत्नवस्त्र-महीयानसर्वभोगादिकं वसु । विभवे सति विप्रेभ्यो योऽस्मानुद्दिश्य दास्यति' । इति विष्णुपुराणीयपितृगौतायाञ्च पितृ-निष्ठफलजनकत्वाभिधानात् तदीयन्तु कन्यादि तदर्थं देय-माह आपस्तम्बः 'अन्तेवास्यार्थास्तदर्थेषु धर्मकृत्येष्वेव योजयेत् दुहिता वेति । तदर्थेषु मासिकादिना तद्गोमार्थं धर्मकृत्येष्वेवेत्यदृष्टार्थमिति' अतएव व्यासः । 'आयासशतलब्धस्य प्राणे-भ्योऽपि गरीयसः । एकैव गतिरर्थस्य दानमन्या विपत्तयः' एवञ्च पितृादिनारब्धदेवगृहपुष्करिण्यादि तद्धनस्वामिना तदर्थं देयं तदाह विवादरत्नाकरे कात्यायनः 'सुस्थेनार्त्तेन वा दत्तं आवितं धर्मकारणात् । अदत्त्वा तु मृते दाप्यस्तत्सुतो नात्र संशयः' । एवञ्च सुमुषुदत्तस्य यद्दानोपसर्गत्वाभिधानं

१४७

उदाहृतत्वम् ।

तद्वर्माथैतरदानपरम् । एवञ्च शास्त्रदेशितं फलं प्रयोक्तरोति-
 न्यायेन पित्रादयो न व्यावर्त्तन्ते । तेषामपि शास्त्रदेशित-
 फलभागित्वात् किन्तु वेतनेन प्रवर्त्तमाना होमदेवगृहतडा-
 गादिषु ऋत्विक्स्वपतिस्वनिहप्रभृतयो न फलभागिनः ।
 अतएव ऋत्विक्विषयिका श्रुतिः दीक्षितमदीक्षिता दक्षिणा-
 दिभिः क्रीता ऋत्विजोयाजयेरन्निति इतरेषामपि लोकव्यव-
 हारादेव धनार्थित्वमात्रम् । काश्यपः । 'शुल्केन ये प्रयच्छन्ति
 स्वसुतां लोभमोहिताः । आत्मविक्रयिणः पापा महाकिल्बिष-
 कारिणः । पतन्ति नरके घोरे घ्नन्ति चासप्तमं कुलम् । गमना-
 गमने चैव सर्वः शुल्कोऽभिधीयते' । गमनागमने पारितोषिक-
 द्रव्यमादाय कन्याप्रदानार्थं कन्यापितृवेश्मयातायाते अत्र लोभ-
 मोहिता इत्यनेन स्वार्थं न ग्राह्यं कन्यार्हणार्थन्तु ग्रहणे न
 दोषः 'यासां नाददते शुल्कं ज्ञातयो न स विक्रयः । अर्हणं
 यत् कुमारीणामानृशंस्यं हि केवलम्' । आनृशंस्यमनुकम्पा
 अतएव मनुः । 'आददीत न शूद्रोऽपि शुल्कं दुहितरं ददत्'
 एवञ्च रत्नाकरधृतयमवचने यत् शूद्रसम्प्रदानकदानमुक्तं तत्
 कन्यादानविषयकमपि तदुच्यते 'शूद्रे सप्तगुणं दानं वैश्ये
 द्विगुणमुच्यते । क्षत्रिये षड्गुणं प्रोक्तं विप्रे दशगुणं स्मृतम्' । अत-
 एव मदनपारिजाते भरद्वाजः 'साधारणं स्यात्त्रिविधं विदुस्तच्च
 क्रमागतम् । प्रीतिदानं तथैवात्र प्राप्तञ्च सह भार्यया । अवि-
 शेषेण वर्णानां सर्वेषां त्रिविधं धनम्' । यत् 'चतुरो ब्राह्मण-
 स्याद्यान् प्रशस्तान् कवयो विदुः । राक्षसं क्षत्रियस्यैक-
 मासुरं वैश्यशूद्रयोः' । इति मनुना प्रशस्तत्वेनाभिहितं
 तदपि प्रागुक्तकन्यार्हणार्थविषयम् । याज्ञवल्क्यः । 'दत्तां
 कन्यां हरन् दण्डो व्ययं दद्याच्च सोदयम् । मृतायां दत्तमा-
 दद्यात् परिशील्यो भयव्ययम्' । वाचा दत्तां कन्यां कारण-

उद्वाहतत्त्वम् ।

१४१

मन्तरेण हरन् दण्डो भवति यच्च वरेण दत्तं हिरण्यादिकं
तत् सवृद्धिकं कन्यापिता दद्यात् वाग्दत्तायां सृतायां वरो
दत्तमादद्यात् उभयव्ययं परिशोधयदवशिष्टमिति । दत्तः ।
‘मातापितृविहीनन्तु संस्कारोद्बहनादिभिः । यः स्थापयति
तस्येह पुण्यसंख्या न विद्यते’ । मत्स्यसूक्ते ‘वलिकर्मणि
यात्रायां प्रवेशे नववेश्मनः । महोत्सवे च मङ्गल्ये तत्र स्त्रीणां
ध्वनिः शुभः’ । ध्वनिः हुलुहुलुध्वनिः । दक्षिणात्यास्तु
‘आसने शयने दाने भोजने वस्त्रसंग्रहे । विवादे च विवाहे
च क्षुतं सप्तसु शोभनम्’ । अन्यत्र तु विष्णोरित्यधिकृत्य विष्णु-
धर्मोत्तरे ‘नामसंकीर्तनं नित्यं क्षुब्धशमलितादिषु । वियोगं
शीघ्रमाप्नोति सर्वानर्थो न संशयः’ अतएव विष्णुपुराणम् ।
‘स्मृते सकलकल्याणभाजनं यत्र जायते । पुरुषं तमजं नित्यं
व्रजामि शरणं हरिम्’ । विष्णुधर्मोत्तरे ‘नासंवृतमुखः कुर्या-
द्वास्यं जृम्भां तथा क्षुतम्’ । श्रीपतिरत्नमालायाम् । ‘आज्ञया
नरपतेर्द्विजन्मनां दारकर्मसूतसूतकेषु च । बन्धमोक्षमख-
दीक्षणेऽपि क्षीरमिष्टमखिलेषु च चोडुषु’ । क्षीरं क्षुरिकर्म
तेन स्त्रिया अपि नष्टकुन्तनम् । महाभारते ‘रात्रौ दानं न
शंसन्ति विना चाभयदक्षिणाम् । विद्यां कन्यां द्विजश्रेष्ठा-
दौपमन्नं प्रतिश्रयम्’ । अभयदक्षिणाम् अभयदानं तथाच
रामायणं ‘पर्याप्तदक्षिणस्यापि नाश्वमेधस्य तत्फलम् । यत्-
फलं याति सन्नासे रक्षिते शरणागते’ । अकरणे निन्दामाह
महाभारते ‘प्राणिनं बध्यमानं हि यः सक्तः समुपेक्षते । स
याति नरकं घोरमिति प्राहुर्मनीषिणः’ । प्रतिश्रयं प्रवा-
सिनामाश्रयम् । विवाहे रात्रौ दानान्तरमप्याह देवलः
‘राहुदर्शनसंक्रान्तिं विवाहात्ययवृद्धिषु । स्नानदानादिकं
कुर्यान्निशि काम्यव्रतेषु च’ । ज्योतिःसारसंग्रहे ‘विवाहे तु

१४२

उदाहृतत्वेम् ।

दिवाभागे कन्या स्यात् पुत्रवर्जिता । विवाहानलदग्धा सा
 नियतं स्वामिघातिनी । व्यासः । 'संपूज्य गन्धपुष्पाद्यै-
 ब्राह्मणान् स्वस्तिवाचयेत् । धर्मे कर्मणि मङ्गल्ये संग्रामा-
 न्नतदर्शने' । गन्धादौ तु विशेषमाह विष्णुधर्मोत्तरे 'मात्स्यानु-
 लेपनादग्रं न प्रदद्यात् कस्यचित् । अन्यत्र देवताविप्र-
 गुरुणां भृगुनन्दन' । धर्मे कर्मणीति सप्तमी निर्देशादसुक-
 कर्मणि स्वस्तिभवन्तो ब्रूवन्त्विति ब्रूयात् । यमः 'पुण्याह-
 वाचनं देवे ब्राह्मणस्य विधौयते । एतदेव निरोद्धारं कुर्यात्
 क्षत्रियवैश्ययोः । सोद्धारं ब्राह्मणे ब्रूयान्निरोद्धारं मही-
 पतौ । उपांशु च तथा वैश्ये शूद्रे स्वस्ति प्रयोजयेत्' ।
 सौभाग्यतिलकमाह मत्स्यपुराणम् । 'गोरोचनं सगोमूत्रं
 शुल्कं गोशक्तं तथा । दधिचन्दनसंमिश्रं ललाटे तिलकं
 न्यसेत् । सौभाग्यारोग्यकृदयस्मात् सदा च ललिताप्रियम्' ।
 ललिता परमेश्वरी । तत्र कन्यावरयोर्मात्याद्युत्सवेन सहितं
 सांसुख्याचरणमाह हरिवंशः 'आशौर्भिवर्द्धयित्वा तु देवर्षिः
 कृष्णमब्रवीत् । अनिरुद्धस्य वीर्याख्यो विवाहः क्रियतां
 विभो ! । जम्बूलमालिकां द्रष्टुं वाञ्छा हि मम जायते' ।
 तामाह हारावली 'जम्बूलमालिकाकन्यावरयोर्मुखचन्द्रिका' ।
 मुखदर्शनमिति रभसः वाक्ये तु 'अद्यसोमार्कग्रहणसंक्रान्त्यादौ
 सुतौर्थके' । इत्यग्निपुराणोपदाननिमित्तोल्लेखे सोमग्रहणे-
 ऽपि अद्येति श्रवणादन्यत्र रात्रावपि अद्येत्युल्लेख्यम् । अहः
 पदस्याहोरात्रपरत्वादविरुद्धम् । विवाहादिसंस्कारकर्मणि
 सौरिणैव वाक्यम् 'आर्द्धिके पितृकृत्ये च मासश्चान्द्रमसः स्मृतः ।
 विवाहादौ स्मृतः सौरो यज्ञादौ सावनो मतः' इति पितामह-
 वचनात् 'तिथिकृत्ये च कृष्णादिं व्रते शुक्लादिमेव च । विवा-
 हादौ च सौरादिं मासं कृत्ये विनिर्दिशेत्' । इति रत्नाकर-

उद्वाहतस्त्वम् ।

१४३

धृतब्रह्मपुराणवचनाच्च सौरः सूर्यसंक्रमः । विनिर्दिशेत्
 उल्लिखेत् । सौरे रविराशुल्लेखोऽपि 'संक्रान्तिविहिते कृत्ये
 संक्रान्तिः परिकीर्त्तिता । मासोल्लेखश्चेतरस्मिन् रविराशि-
 स्थितिस्तथा' इति गारुडात् । संक्रान्तिनिमित्तके संक्रान्तिः
 कीर्त्तिता । उल्लेखनोयत्वेन कथिता अत्रैव चान्द्रमासोल्लेखश्च
 मासपदस्य तत्रैव शक्तेः । इतरस्मिन् संक्रान्तिविहितेतर-
 कर्मणि । संक्रान्तेः सौरत्वेन सौरकर्मणीति यावत् । तत्र
 रविराशिस्थितिरुल्लेखनीया । तथेति मासोल्लेखोऽपि इत्यर्थः ।
 कल्पतरुतन्त्राकरयोगर्ट्छपरिशिष्टे 'कन्यां वरयमानानामेष
 धर्मो विधीयते । प्रत्यङ्मुखः वरयन्ति प्रतिगृह्णन्ति प्राङ्-
 मुखः । वरयन्ति गोत्रप्रवराभिधानपूर्वकं ददति प्रति
 गृह्णन्ति इति श्रवणात् । अतएव दानधर्मोत्तरे 'सर्वत्र प्राङ्-
 मुखो दाता ग्रहीता च उदङ्मुखः । एष दानविधिर्दृष्टो
 विवाहे तु विपर्ययः' । विपर्यय इति प्रत्यङ्मुखः संप्रदाता
 प्रतिग्रहीता प्राङ्मुखः । तथाच शङ्खः 'प्राङ्मुखाभिरूपाय
 वराय शुचिसन्निधौ । दद्यात् प्रत्यङ्मुखः कन्यां क्षणे लक्षण-
 संयुते' । इति भवदेवभट्टीयसम्बन्धविवेके । प्रवराभिधान-
 माह मत्स्यपुराणं 'तुलापुरुषदाने च तथाच हाटकाचले ।
 कन्यादाने तथोत्सर्गे कीर्त्तयेत् प्रवरादिकम्' इति हरिशर्म-
 धृताश्वलायनवचनं शिवदत्तप्रपौत्री विष्णुदत्तपौत्री हरिदत्त-
 पुत्री यज्ञदत्ता कन्या शिवमित्रप्रपौत्राय विष्णुमित्रपौत्राय
 राममित्रपुत्राय रुद्रमित्राय तुभ्यं संप्रदत्तेति दृष्टार्थत्वात्
 पुं वचसां क्लृप्तप्रत्ययार्था विवक्षा तेन संप्रददे इत्येव प्रयोगः न
 संप्रदत्तेति । तथाच व्यासः 'नामगोत्रे समुच्चार्य प्रदद्यात्
 श्रद्धयान्वितः । परितुष्टेन भावेन तुभ्यं संप्रददे इति' नाम-
 प्रदेशमाह विष्णुपुराणं 'ततश्च नाम कुर्वीत पितैव दशमे-

१४४

उद्वाहृतत्वम् ।

ऽहनि । देवपूर्वं नराख्यं हि शर्मवर्मादिसंयुतम् । नर-
 माचष्टे इति नराख्यं नरनामस्त्रयाख्यवन्मूलविभुजादिभ्यश्चेति
 क इति जिनेन्द्रबुद्धिः अन्यतोऽपि चेति इति वररुचिः । देव-
 पूर्वं देवात् पूर्वं तच्च 'विशिष्ट' शर्मयुक्तं शर्मा देवश्च विप्रस्य
 वर्मत्राता च भूभुजः । भूतिर्दत्तश्च वैश्यस्य दासः शूद्रस्य
 कारयेत्' इति यमवचनेऽपि समुच्चयलब्धः 'शर्मान्तं ब्राह्मणस्य
 स्यात्' इति शातातपीयेन शर्मान्तिता च । एवं 'षष्ठेऽन्नप्राशनं
 मासि यद्वेष्टं मङ्गलं कुले' इति मनुवचनात् चूडा कार्या
 यथा कुलमिति याज्ञवल्क्यवचनात् 'देशानुशिष्ट' कुलधर्ममग्रं
 स्वगोत्रधर्मं न हि संत्यजेच्च' इति वामनपुराणवचनाच्च ।
 संस्कारमात्रेण कुलधर्मानुरोधेन कालान्तरेऽपि मङ्गलविशेषा-
 चरणम् । शूद्राणां नामकरणे वसुघोषादिपद्धतियुक्तनाम-
 त्वञ्च बोध्यम् । देव्यन्तास्तु स्त्रियः स्मृता इति द्विजातिस्त्री-
 परं 'शूद्रौदासान्तकाः स्मृता' इति वचनात् तत्पत्न्याश्च
 पुंयोगाज्जातेश्चेति ईप्रत्ययेन दास्यन्तता शूद्रे शिष्टव्यवहारो-
 ऽपि तथा यत्तु सर्ववर्णस्त्रीपरं देव्यन्ता इति तन्न प्रकरणात्
 द्विजातिपुंयोगबाधाञ्च शर्मणी वर्मणीप्रयोगस्तु न व्यवहार्यः
 देवपूर्वं नराख्यं स्यादित्यस्य तत्परत्वानौचित्यात् एवमेव
 कुल्लूकभट्टः तेन वाक्येऽपि तथा कल्पना । अहं पदप्रयोगस्तु
 'अहमस्मै ददानीति एवमाभाष्य दीयते' इति कृन्दोगपरि-
 शिष्टे तथादर्शनात् ददानीति परगामिनि फले ददे इति
 आत्मगामिफले वाच्यम् । 'देवं गुरुं गुरुस्थानं क्षेत्रं क्षेत्राधि-
 देवताः । सिद्धं सिद्धाधिकारांश्च श्रीपूर्वं समुदीरयेत्' । इति
 राघवभट्टधृतप्रयोगसारदर्शनेन स्वर्गकाम्यत्वादिना सिद्धोऽधि-
 कारो येषां तानित्यनेन जीवतां श्रीशब्दादित्वं नाम्नि स्मृता-
 नान्तु न तथेति शिष्टाः । आद्यादौ फलभागिनां गोत्रा-

उद्वाहतत्त्वम् ।

१४५

द्युल्लेखदर्शनात् तदितरत्रापि तथोल्लेखाचारः एवं आह्वे
 'अमुकामुकगोत्रे तत्तुभ्यमन्नं स्वधा नमः' इति ब्रह्मपुराणादि-
 दर्शनाद्देयविशेषणत्वेन एतच्छब्दप्रयोग इति अत्र कन्यावरयो-
 रिति पाठक्रमात् ऋथशृङ्गोक्तशब्दक्रमस्य बलवत्त्वात् वर-
 कुलाभिधानानन्तरं कन्याकुलाभिधानसमाचारः । यथा
 हेमाद्रिदृष्टम् ऋथशृङ्गवचनं 'वरगोत्रं समुच्चार्य प्रपितामह-
 पूर्वकम् । नाम संकीर्तयेद् विद्वान् कन्यायाश्चैवमेव हि' ।
 धनञ्जयकृतसम्बन्धविवेके 'नान्दीमुखे विवाहे च प्रपितामह-
 पूर्वकम् । वाक्यमुच्चारयेद्विद्वानन्यत्र पितृपूर्वकम् । एतदेव
 त्रिरुच्चार्य कन्यां दद्याद् यथाविधि । विवाहे यो विधिः प्रोक्तो
 वरणे स विधिः स्मृतः । वाक्यं त्रैपुरुषिकं कार्यं त्रिरावृत्ति-
 विवर्जिते' । इति वचनान्तरात् त्रिरावृत्तिविवर्जिते प्रपिता-
 महपूर्वकं वरणे । नान्दीसमृद्धिरिति कथ्यते इति ब्रह्म-
 पुराणात् नान्दीमुखे पुत्रादिसमृद्धौनामादिकारणरूपे विवाहे
 विवाहस्य विशेषणन्तु विवाहादेव पुत्रादीनां लाभप्रापनाय
 चकारस्त्वर्थः अन्यत्र प्राप्तपित्रादिक्रमव्यवच्छेदाय नान्दीमुख-
 पदस्य आह्वपरत्वेऽनेकवचनप्राप्तपितृपूर्वकाभिलाषबाधापत्तेः
 वाक्यभेदापत्तेश्च । एतदिति प्रपितामहपूर्वकं वाक्यं तच्च
 ऋथशृङ्गवचनात् कन्यानामान्तमिति न तु संप्रददे ददानि
 वेत्यन्तं 'सकृदंशो निपतति सकृत्कन्या प्रदीयते । सकृदाह
 ददानीति त्रीण्येतानि सकृत् सकृत्' इति मनुवचनात्
 'वेदार्थोपनिबन्धत्वात् प्राधान्यं हि मनोः स्मृतम् । मन्वर्थ-
 विपरीता या सा स्मृतिर्न प्रशस्यते' । इति बृहस्पत्युक्तेश्च अत्र
 च पारस्करेण वह्निःशालायामुपलिप्ते देशे उद्धृतावेक्षिते अग्नि-
 मुपसमाधायेति सूत्रात् प्रधानगृहाङ्गनेऽग्निस्थापनानन्तरं
 कुमार्याः पाणिं गृह्णीयात् त्रिषु त्रिषु उत्तरादिषु इति सूत्रा-

१४६

उदाहृतत्वम् ।

न्तरेण पाणिग्रहणविधानात् । यजुर्वेदिनां सामगदेयकन्या-
 ग्रहणेऽपि दानात् पूर्वमग्निस्थापनम् । त्रिषु त्रिषु उत्तरादिषु
 नवसु नक्षत्रेषु । ततश्च ज्योतिषानुक्तेषु अपि चित्राश्रवणा-
 धनिष्ठाश्विनीनक्षत्रेषु निरपेक्षकर्मत्वे यजुर्वेदिनां विवाह
 इति । तत्र अयं क्रमः प्राङ्मुखाय वराय प्रत्यङ्मुखः संप्रदाता
 एकादशीतत्त्वोक्तप्रमाणं सर्वकर्मसाधारणं ओम् नमो नारा-
 यणायेत्युच्चार्य नत्वा ओम् तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति
 सूरयः । दिवौ च चक्षुराततम् इत्यनेन विष्णुं संस्मृत्य ओम्
 तत्सदित्युच्चार्य च तिलकुशत्रयसहितं जलं गृहीत्वा अद्य
 अमुके मासि अमुकराशिस्थे भास्करेऽमुकपक्षेऽमुकतिथौ
 अमुकगोत्रोऽमुकदेवशर्मा स्वर्गकामो विष्णुप्रौतिकामो वा
 इत्यन्तं सकृदुच्चार्य अमुकगोत्रस्य अमुकप्रवरस्य अमुकदेव-
 शर्मणः प्रपौत्राय अमुकगोत्रस्य अमुकप्रवरस्य अमुकदेवशर्मणः
 पौत्राय अमुकगोत्रस्य अमुकप्रवरस्य अमुकदेवशर्मणः पुत्राय
 अमुकगोत्राय अमुकप्रवराय अमुकदेवशर्मणे वराय अमुक-
 गोत्रस्य अमुकप्रवरस्य अमुकदेवशर्मणः प्रपौत्रौम् अमुक-
 गोत्रस्य अमुकप्रवरस्य अमुकदेवशर्मणः पौत्रौम् अमुकगोत्रस्य
 अमुकप्रवरस्य अमुकदेवशर्मणः पुत्रौम् अमुकगोत्राम् अमुक-
 प्रवराम् अमुकदेवौमित्यन्तं त्रिरुच्चार्य सालङ्कारां वस्त्रा-
 च्छादितां प्रजापतिदेवताकामिनां कन्यां तुभ्यमहं सम्प्र-
 ददे । इति दद्यात् परार्थं चेद्ददानीति विशेषः अमुकगोत्र
 इत्यादौ षष्ठ्यन्ततानिर्द्देशश्च वीरेश्वरवामदत्तादयोऽप्येवं
 विवाहे दानान्तरमप्याह हेमाद्रिधृतं व्यासवचनं 'ग्रहणो-
 दाहसंक्रान्ति याचार्त्तिप्रसवेषु च । दानं नैमित्तिकं ज्ञेयं
 रात्रावपि न दुष्यति' । विवाहप्रवर्तने रजोयोगेऽपि होमा-
 दिकं कार्यं तथा च गृहस्थरत्नाकरे बृहयाज्ञवल्करः 'विवाहे

उदाहृतत्वम् ।

१४७

वितते तन्मै हीमकाले उपस्थिते । कन्याया ऋतुरागच्छेत् कथं
 कुर्वन्ति याज्ञिकाः । स्नापयित्वा तु तां कन्यामर्चयित्वा
 यथाविधि । हुत्वाज्यञ्चैव लाजांश्च ततस्तन्त्रं प्रवर्त्तयेत् ।
 हुत्वाचाज्याहुतीस्तत्रेति यज्ञपार्श्वः मन्त्रानादेशे गायत्री
 हविषो नादेशे आज्यमिति कात्यायनसूत्रात् गायत्र्याहोम
 इति पशुपतिः । श्वश्रू स्नुषायै वस्त्रादिदेयमाह हरिवंशः
 ‘उषां प्रद्युम्नगृहिणी स्नुषां दृष्ट्वा सुमध्यमाम् । वासो-
 भिरन्नपानैश्च पूजयामास सुन्दरीम्’ । मनुः ‘अर्थस्य
 संग्रहे चैनां व्यये चैव नियोजयेत् । शौचे धर्मेऽन्नपक्वौ च
 पारिणायकस्य रक्षणे’ । पारिणायकस्य गृहोपकरणस्य शय्या-
 सनादेः । ‘पानं दुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहोऽटनम् । स्वप्नो-
 ऽन्यगृहवासश्च नारीणां दूषणानि षट्’ । बृहस्पतिः । ऋतु-
 कालाभिगमनं पुंसां कार्यं प्रयत्नतः । सदैव वा पर्ववर्जं
 स्त्रीणामभिमतं हि तत् । कूर्मपुराणे ‘ऋतुकालाभिगामी
 स्यात् यावत् पुत्रो न जायते’ । विष्णुधर्मोत्तरे ‘मण्डनं
 वर्जयेन्नारौ तथा प्रोषितभर्तृका । देवताराधनपरा तिष्ठे-
 द्भर्त्तृहिते रता । धारयेन्मङ्गलार्थाय किञ्चिदाभरणं तथा ।
 न जातु विधवावेशं कदाचिदपि धारयेत्’ । तथा ‘येनच्छे-
 दिपुलां प्रीतिं तेन सार्धमरिन्दम । न कुर्यादर्थसम्बन्धं दार-
 सन्दर्शनं तथा’ । हेमाद्रिधृताग्निपुराणम् ‘अप्रजायान्तु कन्यायां
 न भुञ्जीत कदाचन । दौहित्रस्य मुखं दृष्ट्वा किमर्थमनुशो-
 चसि । महासत्वसमाकीर्णान्नास्ति ते नरकाद्भयम् । तीर्णस्त्व-
 सर्वदुःखेभ्यः परं स्वर्गमवाप्स्यसि’ । अतएव आदिपर्वणि
 मान्धारौवाक्यम् ‘एकाशताधिका कन्या भविष्यति कनीयसौ ।
 ततो दौहित्रजाल्लोकादवाञ्छोऽसौ पतिर्मम’ । कामधेनौ
 आदित्यपुराणं ‘विष्णुं जामातरं मन्ये तस्य मन्युं न कारयेत् ।

१४८

उदाहृतस्त्वम् ।

अप्रजायान्तु कन्यायां नाश्रीयान्तस्य वै गृहे । ब्राह्मदेया विशि-
 षेण नैव भोज्यं सदैव तु । मत्स्यसूक्ते 'भुक्ता पिष्टगृहे कन्या
 भुङ्क्ते स्वामिगृहे यदि । दीर्भाग्यं जायते तस्याः श्रपन्ति
 कुलनायिकाः' । दत्तः । 'अनाश्रमी न तिष्ठेत्तु दिनमेक-
 मपि द्विजः । आश्रमेण विना तिष्ठन् प्रायश्चित्तीयते त्वसौ ।
 जपे होमे तथा दाने स्वाध्याये वा रतः सदा । नासौ फलं
 समाप्नोति कुर्वाणोऽप्याश्रमच्युतः' । विष्णुपुराणञ्च 'व्रतेषु
 लोपको यश्च आश्रमाद्विच्युतश्च यः । संदंशयातना मध्ये पत-
 तस्तावुभावपि' । अत्र आश्रमाद्विच्युतश्च य इति सामान्येन
 दोषाभिधानात् शूद्रस्यापि तथात्वमिति पूर्ववचने द्विज इत्युप-
 लक्षणम् । शूद्रस्याप्याश्रममाह पराशरभाष्ये वामनपुराणम् ।
 'चत्वार आश्रमाश्चैव ब्राह्मणस्य प्रकीर्त्तिताः । गार्हस्थ्यं ब्रह्म-
 चर्यञ्च वानप्रस्थञ्च भिक्षुकम् । क्षत्रियस्यापि कथिता
 आश्रमास्तथैव एव हि । ब्रह्मचर्यञ्च गार्हस्थ्यमाश्रमद्वितयं
 विशः । गार्हस्थ्यमुचितत्वेकं शूद्रस्य क्षणमाचरेत्' । क्षण-
 मुत्सवरूपम् । अत्र विशेषयति भविष्यपुराणं 'चत्वारिंशद-
 वत्सराणां साष्टानाञ्च परे यदि । स्त्रिया विद्युज्यते कश्चित्
 स तु रण्डाश्रमी मतः । अष्टचत्वारिंशदब्दं वयो यावन्न
 पूर्यते । पुत्रभार्यावियुक्तस्य नास्ति यन्नाधिकारिता' । एवञ्च
 प्रौढकन्याया दोषदृष्ट्या विवाहार्थं यथा महागुरोः सपिण्ड-
 नापकर्षाधिकारस्तथाऽनाश्रमिणोऽपीति । एवञ्च प्रत्यवाय-
 श्रुतेः कन्यालाभसत्त्वेऽपि स्वेच्छया विवाहाकर्तुर्जेष्ठस्य
 कामतः कारिणस्तथेति प्रागुक्तकण्डोगपरिशिष्टेन परिवेदने
 पर्युदस्तत्वात् तथाविधज्येष्ठे कनिष्ठस्य विवाहे परिवेदन-
 दोषो नास्तीति । पैठीनसिः । 'अलाभे चैव कन्यायाः
 स्नातकव्रतमाचरेत्' । एतच्च सत्यासानधिकारिणः तदधिकारी

उदाहृतत्त्वम् ।

१४८

तु गीतासुबोधिन्यां वशिष्ठोक्तः 'प्राणे गते यथा देहः सुख-
दुःखे न विन्दति । तथा चेत् प्राणयुक्तोऽपि स कैवल्याश्रमे
वसेत्' । अन्यत्र वशिष्ठोऽपि 'गृहस्थो विनीतवेशोऽक्रोधहर्षो
गुरुणानुज्ञातः स्नात्वा असमानार्षेयीमस्पृष्टमैथुनामवरवयस्कां
सदृशीं भार्यां विन्देत' इति गृहस्थ इति भाविनि भूतवदुप-
चारस्तद्धर्मप्राप्त्यर्थः तेनाकृतदारोऽपि गार्हस्थ्यसङ्कल्पवाना-
श्रमान्तरनिवृत्तो गृहस्थधर्मेषु अधिक्रियते इति यज्ञपाश्वं
इति कल्पतरुः 'न समानगोत्रां न समानप्रवरां विन्देत' इति
विष्णुसूत्रादौ नञःपर्युदासपरता वैधविषयकत्वात् प्रसज्य
प्रतिषेधपरता च निन्दाप्रायश्चित्ताभ्यां रागप्राप्तविषयकत्वात्
पर्वणि ऋत्वभिगमनवत् अतएव भार्याशब्दो यूपाहवनी-
यादिवदलौकिकाङ्गसङ्गेन अलौकिकसंस्कारयुक्ता स्त्रीवचनः
ततश्च । सपिण्डसन्ततिसमानार्षादिषु परित्यागप्रायश्चित्त-
श्रुतेरदृष्टार्थनिषिद्धासु भार्यात्वमेव नोपपद्यते तेन तथा-
विधासु परिवेदनादिदोषानिष्पत्तिः धर्मकर्मानुपयोगश्च
'नोद्धृत्कपिलां कन्यां नाधिकाङ्गीं न रोगिणीम् । नालोमिकां
नातिलोमां न वाचालां न पिङ्गलाम् । नर्त्तवच्चनदीनाम्नीं
नान्यपर्वतनामिकाम्' इत्यादिना निषिद्धासु 'मनुष्यदेव-
जातीनां शुभाशुभनिवेदकम् । लक्षणं हस्तपादादौ विहितं
वैधसा किल' इति मत्स्यपुराणायुक्ताशुभसूचकत्वेन दृष्टदोषासु
भार्यात्वमुपपद्यते । किन्तु दृष्टदोष एवेति मीमांसकभाष्य-
कारेणापि स्मृत्यधिकरणे उक्तं ये दृष्टार्थास्ते तत्रैव प्रमाणं
येतु अदृष्टार्थास्तेषु वैदिकशब्द एव प्रमाणमिति । मनुः 'न
निष्क्रयविसर्गाभ्यां भर्तुर्भार्या विमुच्यते' । निष्क्रयो विक्रयः
विसर्गस्त्यागः । कात्यायनः । 'दासो नोदात्वदासी या सापि
दासीत्वमाप्नुयात् । यस्माद्भर्ता प्रभुस्तस्याः स्वाम्यधीनः प्रभु-

१५०

उडाहतत्त्वम् ।

मंतः' । पदिन्यायात् सप्रतियोगिकदासपदात् यो यस्य दासः तेन तद्दासी परिणीता तस्य दासी भवतीत्यर्थः । तद्दासी च द्विविधा कस्यापि न दासी अन्यस्य दासी वा । तत्र पूर्वा सर्वथैव दासीपरत्वे तत् प्रभोरनुमत्या दासी तदनुमत्या न दासी न वा तत्पतिः । कन्येश्वरस्य वड्वाकृतोदासस्तयोस्तत्तत्प्रभुतन्त्रत्वात् । वड्वादासमाह नारदः । 'भक्तदासस्य विज्ञेयस्तथैव वड्वाकृतः' । भक्तेनान्नेन दासः वड्वादासी तया कृतः तत्तल्लोभादङ्गीकृतदास्य इत्यर्थ इति रत्नाकरः । 'व्यक्तमाह बृहस्पतिः' यो भुङ्क्ते परदासीन्तु स ज्ञेयो वड्वाकृतः । कर्म तत् स्वामिनः कुर्याद् यथान्नेन भृतो नरः' । तत्स्वामिनो दासीश्वरस्य ततश्च तयोरपत्यं द्वयोरैव स्वामिनो विभाज्यं रत्नाकरादयोऽप्येवम् । यत्तु 'ओघवाताहृतं वीजं यस्य क्षेत्रे प्ररोहति । क्षेत्रिकस्यैव तद्वीजं न वप्ता फलमर्हति । एष धर्मो गवाश्वस्य दास्यष्ट्राजाविकस्य च । विहङ्गमहिषाणाञ्च विज्ञेयः प्रसवं प्रति' इति मनुवचनं तत्र दासीपदं परोढापरम् । तस्यामन्येन जातो दासीभर्तुर्न वीजिभर्तुः । हारीतः 'गर्भिणीमधोवर्णगां शिथ्यसुतगामिनीं पापव्यसनासक्तां धनधान्यक्षयकरीं वर्जयेत्' । यमः 'स्वच्छन्दगा हि या नारी तस्यास्यागो विधीयते । न चैव स्त्रोबधः कार्यो न चैवाङ्गवियोजनम्' । बृहस्पतिः 'हीनवर्णोपभुक्ता या त्याज्या बध्यापि वा भवेत्' विशेषयति मिताक्षरायां स्मृतिः 'ब्राह्मणक्षत्रियविशां भार्याः शूद्रेण सङ्गताः । अप्रजास्ता विशुद्धान्ति प्रायश्चित्तेन नेतराः' एतत् बलात्कारविषयमिति ।

इति वन्द्यघटीयश्रीरघुनन्दनभट्टाचार्यविरचिते

स्मृतितत्त्वे विवाहतत्त्वं समाप्तम् ।

व्रततत्त्वम् ।

— — — — —

प्रणम्य सच्चिदानन्दं रामं कामदमीश्वरम् । व्रततत्त्वं
मुदे विष्णोर्वक्ति श्रीरघुनन्दनः । अत्र व्रतविधिः । तदारम्भ-
प्रतिष्ठाकालमाह ज्योतिषे । ‘गुरोर्भृगोरस्तवात्ये वार्द्धके
सिंहके गुरौ’ । इति वृद्धे बाले दिनत्रयमित्यन्तं मठप्रतिष्ठा-
तत्त्वेऽनुसन्धेयम् । बुधाष्टमौव्रते विशेषो राजमार्त्तण्डोक्तो
यथा ‘द्विजेन्द्रसुतसंयुक्ता पूर्णा या च सिताष्टमी । तस्यां
नियमकर्त्तारो न स्युः खण्डितसम्पदः । पतङ्गे मकरे याते देवे
जाग्रति माधवे । बुधाष्टमीं प्रकुर्वीत वर्जयित्वा तु चैत्रकीम् ।
प्रसुप्ते च जगन्नाथे सन्ध्याकाले मधौ तथा । बुधाष्टमीं न
कुर्वीत कृता हन्ति पुरा कृतम्’ ।

अथ व्रतानुष्ठानम् । तत्र देवलः । ‘अभुक्त्वा प्रातराहारं
स्नात्वा चैव समाहितः । सूर्यादिदेवताभ्यश्च निवेद्य व्रत-
माचरेत् । व्रतचर्यं तथा शौचं मत्स्याद्यामिषवर्जनम् ।
व्रतेष्वेतानि चत्वारि वरिष्ठानीति निश्चयः’ । अत्र प्रातरि-
त्यस्य भुक्त्वेत्यत्र नान्वयः । किन्तु व्रतमित्यनेनान्वयाव्यवहित-
त्वात् । ‘प्रातः सङ्कल्पयेद्विद्वानुपवासव्रतादिषु । नापराह्णे
न मध्याह्णे पितृकालौ हि तौ स्मृतौ’ । इति वराहपुराण-
वाक्यत्वाच्च । ततश्चाभुक्त्वा प्रातराहारमिति ‘मुनिभिर्द्विरशनं
प्रोक्तं विप्राणां मर्त्यवासिनां नित्यम् । अहनि च तमस्विन्यां
सार्द्धं प्रहरयामान्तः’ इति छन्दोगपरिशिष्टादेकाहारं पूर्वदिने
कृत्वा परदिने स्नात्वा आचम्य सूर्यादिदेवेभ्यो निवेद्य । ओम्
सूर्यः सोमो यम इत्यादि मन्त्रेण सान्निध्यं प्रार्थ्य व्रतमा-
चरेत् । ततः सङ्कल्पयेत् यद्वा सूर्यादिदेवेभ्यो निवेद्य पूज-

१५२

व्रततत्त्वम् ।

नौयद्रव्यादि दत्त्वा व्रतमाचरेत् । व्रतं कुर्यात् तद्विधानञ्च
 शान्तिपर्वणि 'गृहीत्वौदुम्बरं पात्रं वारिपूर्णमुदञ्चुखः ।
 उपवासन्तु गृहीयात् यद्वा वार्येव धारयेत्' । कर्मादौ
 सूर्यपूजामाह ब्रह्मपुराणम् । यावन्न दीयते चार्घ्य-
 मित्यादि नवग्रहपूजामाह मत्स्यपुराणम् । नवग्रहमखं
 कृत्वा इत्यादि आदित्यादिपूजामाह पद्मपुराणम् । 'आदित्यं
 गणनाथञ्च देवीं रुद्रं यथाक्रमम् । नारायणं विशुद्धाख्यम्
 अन्ते च कुलदेवताम्' । यत्तु 'देवतादौ यदा होमात् गणे-
 शञ्च न पूजयेत् । तदा पूजाफलं हन्ति विघ्नराजो गणा-
 धिपः' । इत्यनेन गणेशपूजनस्य नित्यत्वमुक्तम् । तत् सूर्ये-
 तरपरम् । कुलदेवतेत्यत्र कुलाद्युपलक्षणम् । 'व्रतयज्ञविवा-
 हेषु आद्ये होमेऽर्चने जपे । आरब्धे सूतकं न स्यादनारब्धे
 तु सूतकम्' । तत्र विशेषयति मत्स्यपुराणम् । 'गर्भिणी
 सूतिका नक्तं कुमारी च रजस्वला । यदाशुद्धा तदान्येन
 कारयेत् क्रियते सदा । उपवासाशक्ती तु भोजनं कुर्वीत
 'उपवासेष्वशक्तानां नक्तं भोजनमिष्यते' । इति वचनान्तरात् ।
 अशुद्धा पूजां कारयेत् । कायिकञ्चोपवासादिकं सदा शुद्धया-
 शुद्धया च स्वयं क्रियते । गरुडपुराणम् । 'भार्या भर्तृव्रतं
 कुर्यात् जायायास्तु पतिस्तथा । असामर्थ्यात् इयोस्ताभ्यां
 व्रतभङ्गो न जायते । पूर्वां वा विनयोपेतां भगिनीं भ्रातरं
 तथा । एषामभाव एवान्यं ब्राह्मणं विनियोजयेत्' । आरब्ध-
 व्रतस्य असमाप्ती मरणेऽपि तत्फलप्राप्तिमाह अङ्गिराः । 'यो
 मदर्थं चरेद्धर्मं न समाप्य मृतो भवेत् । स तत् पुण्यफलं प्रेत्य
 प्राप्नुयान्ननुब्रवीत्' । प्रेत्य परलोके पद्मपुराणं 'लोभाभ्योहात्
 प्रमादाद्वा व्रतभङ्गो यदा भवेत् । उपवासत्रयं कुर्यात् कुर्यात्
 वा केशमुण्डनम् । वपनं नैव नारीणां नानुव्रज्या जपादि-

व्रततत्त्वम् ।

१५३

कम् । न गोष्ठे शयनं तासां न च दध्याद्वाजिनम् । सर्वान्
 केशान् समुद्धृत्य छेदयेदङ्गुलिद्वयम् । एवमेव तु नारीणां
 मुण्डमुण्डनमादिशेत् । इति गोबधप्रकरणे विवेचितम् ।
 'प्रायश्चित्तमिदं कृत्वा पुनरेव व्रती भवेत् । पूर्वं गृहीत्वा
 सङ्कल्पं प्रमादान्नाचरेद् यदि । जीवन् भवति चण्डालो मृतः
 श्वा चाभिजायते' । इति प्रायश्चित्तविवेकधृतवचनम् । 'अथ
 सर्पभयं व्याधिः प्रमादो गुरुशासनम् । अव्रतघ्नानि कथ्यन्ते
 देवतानि च शास्त्रतः' । अथ कथाश्रवणमाह देवीपुराणम् ।
 'तद्भयानं तज्जपः स्नानं तत्कथाश्रवणादिकम् । उपवासकृतो
 ह्येते गुणाः प्रोक्ता मनोषिभिः' ।

अथ व्रतप्रतिष्ठाविधिः । श्रीभगवानुवाच । 'गोपथा-
 रामसेतूनां मठसंक्रमवेश्मनाम् । नियमव्रतकुच्छाणां प्रतिष्ठां
 शृणु सत्तम । ब्राह्म्येण विधिना वङ्गि समाधाय विचक्षणः ।
 शिलां पूर्णघटं कांस्यं सभारं स्थापयेदुबुधः । ब्रह्मन् सर्वं
 समासाद्य अपयेद् यवमयं चरुम् । क्षीरेण कपिलायास्तु
 तद्विष्णोरिति साधकः । प्रणवेनाभिघार्याथ दर्व्यां संचट्टये-
 त्ततः । साधयित्वावघार्याथ तद्विष्णोरिति होमयेत् । व्याहृत्या
 चैव गायत्र्या तद्विप्रासेति होमयेत् । विश्वतश्चक्षुरित्युक्त्वाव-
 दाय होमयेत्तथा' ओं भूरग्नये स्वाहा ओं प्रजापतये स्वाहा
 ओं अन्तरीक्षाय स्वाहा ओं द्यौः स्वाहा ओं ब्रह्मणे स्वाहा ओं
 पृथिव्यै स्वाहा ओं महाराजाय स्वाहा ओं सोमं राजानमिति
 जुहुयात् । ओं लोकपालेभ्यः स्वस्वमन्त्रैर्जुहुयादग्रहेभ्यश्च ।
 'एवं हुत्वा चरोर्भागं दद्याद्दश दिशां बलिम् । ततः पलाश-
 समिधा हुनेदष्टोत्तरं शतम् । आज्यन्तु जुहुयात् पश्चात्
 एभिर्मन्त्रैर्द्विजोत्तमः । ततः पुरुषसूक्तस्य मन्त्रैराज्यन्तु
 होमयेत् । इरावतीति जुहुयात् तिलान् घृतपरिभुतान् ।

१५४

व्रततत्त्वम् ।

हुत्वा ब्रह्मविष्णुशिवदेवानामनुयायिनम् । ग्रहाणामाहुतिर्हुत्वा
 लोकेशानामथो पुनः । पर्वतानां नदीनाञ्च समुद्राणां तथैव
 च । हुत्वा व्याहृतिभिर्दद्यात् सुचा पूर्णाहुतित्रयम् । वौ षड-
 न्तेन मन्त्रेण वैष्णवेन सुरोत्तम । पञ्चगव्यञ्च संप्राश्य दद्यादा-
 चार्थदक्षिणाम् । तिलपात्रं हेमयुक्तं सवस्त्रं गामलङ्कृतम् ।
 प्रीयतां भगवान् विष्णुरित्युत्सृजेद् व्रतं बुधः । आरामं
 कारयेद् यस्तु नन्दनेषु चिरं वसेत् । मठप्रदानात् स्वर्लोकं
 प्राप्नोति पुरुषः सदा । सेतुप्रदानात् इन्द्रस्य लोकमाप्नोति
 मानवः । प्रपादानात् वारुणं लोकमाप्नोत्यसंशयम् । संक्र-
 माणान्तु यः कर्त्ता दुर्गतिं तरते नरः । स्वर्गलोके च निवसेत्
 इष्टकारामकृततथा । गोमार्गस्य तथा कर्त्ता गोलोके क्रीडते
 चिरम् । नियमव्रतकृदुयाति विष्णुलोकं नरोत्तम । कृच्छ्र-
 कृत् स्वर्गमाप्नोति सर्वपापविवर्जितः । अनेन विधिना मर्त्यः
 सम्पूर्णं फलमाप्नुयात् । इयं प्रतिष्ठा सामान्या सर्वसाधा-
 रणानघम् । कर्त्तव्या देशिकेन्द्रैस्तु प्रतिष्ठा यत्र विद्यते ।
 इति संक्षेपतः प्रोक्तः समुदायविधिस्तव । सर्वेषामेव वर्णानां
 सर्वकामफलप्रदः । सर्वेषु कर्त्तव्या प्रतिष्ठा विधिना
 बुधैः । फलार्थिभिस्त्वप्रतिष्ठं यस्मान्निष्फलमुच्यते । इति
 हयशीर्षे समुदायप्रतिष्ठापटलः । ब्राह्मणेण वैदिकेन स्वगृह्ये-
 नेति यावत् । शिलेति उदूखलोपलक्षणम् । कांस्यम् अग्नि-
 प्रणयनार्थम् । कांस्ये अग्निप्रणयनमाह गृह्यसंग्रहे । 'शुभं
 पात्रन्तु कांस्यं स्यात्तेनाग्निं प्रणयेद् बुधः । तस्याभावे शरावेण
 नवेनाभिमुखञ्च तम् । सर्वतः पाणिपादान्तः सर्वतोऽक्षि
 शिरोमुखः । विश्वरूपो महानग्निः प्रणीतः सर्वकर्मसु' एव-
 ञ्चाग्निप्रणयनानन्तरं सर्वत इत्यस्य पाठो युक्तः । प्रणीत इति
 मन्त्रलिङ्गात् । अन्यथा स्थापनानन्तरम् एतद्विधानं व्यर्थं

व्रततत्त्वम् ।

१५५

स्यात् । अत्र च पाकाङ्गत्वात् साहसनामानमग्निमाह
 गृह्यसंग्रहः । 'प्रायश्चित्ते विधुश्चैव पाकयज्ञे तु साहसः ।
 पूर्णाहुत्यां गृहीनाम शान्तिके वरदस्तथा । आह्वय चैव
 होतव्यं यत्र यो विहितोऽनलः' । प्रायश्चित्ते होमकर्मवैगुण्य-
 समाधानार्थं प्रायश्चित्तात्मकमहाव्याहृतिहोमादौ । तथा
 छन्दोगपरिशिष्टम् । 'यत्र व्याहृतिभिर्होमप्रायश्चित्तात्मको-
 भवेत् । चतस्रस्तत्र विज्ञेया स्त्रीपाणिग्रहणे तथा । अपि वा
 ज्ञातमित्येषां प्राजापत्यापि वा हुतिः । होतव्या त्रिविकल्पोऽयं
 प्रायश्चित्तविधिः स्मृतः' । अत्र त्रिविकल्प इत्यभिधानात्
 सामगानां भवदेवभट्टोक्तशाखायनहोमो निष्प्रामाणिकः ।
 अत्रासुकाग्ने इहागच्छागच्छ इत्युच्चार्य यवाभावे ब्रीह्यादि-
 रपि । 'हविष्येषु यवा मुख्यास्तदनुब्रीहयः स्मृताः । माषको-
 द्रवगौरादीन् सर्वाभावे विवर्जयेत् । यथोक्तवस्त्वसम्पत्तौ
 ग्राह्यं तदनुकारि यत् । यवानामिव गोधूमाब्रीहीणामिव
 शालयः' । इति छन्दोगपरिशिष्टात् । तत्र गोभिलेन अथ
 हविर्निर्वपति ब्रीहीन् यवान् वा कांस्ये चरुस्थाल्यां वा
 अमुष्मै त्वाजुष्टं निर्वपामीति देवतानामोद्देशः । सकृदयजुषां
 हुयात् द्विस्तूष्णीमित्यनेन निर्वापक्रमाभिधानात् । सामगेन
 तन्मात्रं कर्त्तव्यम् । अत्र च विष्णवे त्वाजुष्टं निर्वपामीत्यनेन
 यजुषा चरुम् इत्यभिधानात् हवनीयनिर्वापनादिचरुनिस्यत्तिः
 कर्त्तव्या । तत्र छन्दोगपरिशिष्टम् । 'देवतासंख्यया गृह्य-
 निर्वापांश्च पृथक् पृथक् । तूष्णीं द्विरेव गृह्णीयादोमश्चापि
 पृथक् पृथक्' । यवादिनिर्वापः अनुनिर्वापस्तन्त्रेणैव होमेऽपि
 पृथक् पृथगिति । आलस्यादिपुरुषदोषेण गृहीततण्डुलेनापि
 मन्त्रेणापि निर्वापादिकं समाचरन्ति याज्ञिकाः । 'घाते
 न्यूनं तथाच्छिन्ने सान्नाज्ये मान्निके तथा । यज्ञे मन्त्रः

१५६

व्रततत्त्वम् ।

प्रयोक्तव्या मन्त्रा यच्चार्यसाधकाः' । इत्युक्ते मान्त्रिके मन्त्र-
 साध्ये अवघातादौ तत्काले न्यूनं मन्त्रं पाठाभावे मन्त्राः
 प्रयोक्तव्याः । कपिलाया अभावे अन्यधेनोरपि घृतेन सप्रणव-
 तद्विष्णोरित्यनेन घृतेनाभिघार्य दर्व्या दक्षिणावर्त्तेन संमिश्र-
 येत् । दर्वी च प्रादेशप्रमाणा इक्षुलविस्तारा याज्ञा ।
 इध्मजातीयमिध्मार्द्धप्रमाणं मेक्षणं भवेत् । 'वृत्तं वार्त्तञ्च
 पृथग्रमवदानक्रियाक्षमम् । एषैव दर्वी यस्तत्र विशेषस्तमहं
 ब्रुवे । दर्वी इक्षुलपृथ्व्यातुरीयोऽनञ्च मेक्षणम्' । इति
 कन्दोगपरिशिष्टात् । इध्मार्द्धप्रमाणं प्रादेशद्वयमिध्मस्य प्रमाणं
 परिकीर्तितम् । इति कन्दोगपरिशिष्टोक्तेः । अथेत्यनेन
 स्वगृह्योक्तशेषकर्मसमापनानन्तरं प्रकृतहोमः । अत्र बहु-
 देवताक्चरुहोमादुपघातहोमः । 'चरौ तु बहुदेवत्यो होमः
 स्यादुपघातवत्' । इति कन्दोगपरिशिष्टघृतवचनात् । उप-
 घातलक्षणमाह गृह्यसंग्रहः । 'पाणिना मेक्षणेनाथ सुवेणैव
 तु यद्विः । ह्यते चानुपस्तीर्य उपघातः स उच्यते । यद्युप-
 घातं जुहुयाच्चरावाज्यं समावपेत् । मेक्षणेन तु होतव्यं
 नाज्यभागो न स्विष्टिक्तत्' । अनुपस्तीर्येत्यनेन सूचि यच्चतुरा-
 वर्त्तः पञ्चावर्त्तं घृतोपस्तरणादिकं तदत्र नास्ति तेन मेक्षणा-
 दिना सकृद् गृहीत्वा होतव्यं प्रकृतहोमात् प्राक् वज्रिपूजन-
 माह मार्कण्डेयपुराणम् । 'पूजयेच्च ततो वज्रि' दद्याच्चाप्या-
 हुतौः क्रमात्' । तत इति वज्रेर्नामकरणध्यानानन्तरम् ।
 होमानुष्ठाने स्मृतिः । 'मन्त्रेणोङ्कारपूतेन स्वाहान्तेन विच-
 क्षणः । स्वाहावसाने जुहुयाद्व्रायन् वै मन्त्रदेवताम्' । ततस्त-
 द्विष्णोरित्यनेन चरुणा होमयेत् । एवं व्याहृत्या प्रत्येकं
 भूरित्यादिना गायत्र्यादिना सावित्र्या तद्विप्रासेति तद्विप्रासो
 विपण्यवोजागृवांस इत्यादिना विश्वत इति । विश्वतश्चतुरत

व्रततत्त्वम् ।

१५७

विश्वतोमुख इत्यादिना वेदाद्यैः अग्निमीले इत्यादिना
 इषेत्योर्ध्वेत्वा इत्यादिना अग्न आयाहीत्यादिना शन्नोदेवीत्या-
 दिना भूरग्नये इत्याद्यष्टभिः ततः सोमं राजानमित्यादिना
 ततो लोकपालेभ्य इत्यादिना स्वस्वमन्त्रैस्तत्तद्देवोक्तदशदिक्-
 पालमन्त्रैः । तत्र सामगानाम् इन्द्रस्य त्रातारमित्यादिना
 अग्नेश्च अग्निं दूतं वृणोमहे इत्यादिना यमस्य नाके सुपर्ण-
 मित्यादिना निऋतेर्विण्याहिनिऋतीनामित्यादिना ईशा-
 नस्य अभित्वाशूरणोनुम इत्यादिना ब्रह्मणो ब्रह्मयज्ञानां
 प्रथममित्यादिना । अनन्तस्य चर्षणीवृतमित्यादिना । तथाच
 गोभिलीयकर्मप्रदीपे । ‘त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रमिन्द्रस्य
 परिकीर्तितः । अग्निं दूतं वृणोमहे वज्रमन्त्रो यमस्य वै ।
 नाके सुपर्णमित्यादिविण्याहि निऋतेस्तथा । वृतवतीति
 वरुणस्य वातु आवातु भेषजं वायोर्मन्त्रः समुद्दिष्टः सोमं
 राजानमित्युक्त्वा सोमस्य मन्त्रः कथितस्त्वभित्वेतीश उच्यते’ ।
 ईशे ईशानस्य ‘ब्रह्मयज्ञानां प्रथमं ब्रह्मणः परिकीर्तितः’ ।
 चर्षणीवृतमिति । च सर्पस्य समुदाहृतमिति ग्रहेभ्य नव-
 ग्रहेभ्यः । स्वमन्त्रैः सर्ववेदसाधारणैः । सूर्यस्याकृष्णेनेत्या-
 दिना । सोमस्याप्यायेत्यादिना । मङ्गलस्याग्निर्मूर्द्धा इत्या-
 दिना । बुधस्याग्ने विवस्वेत्यादिना । वृहस्पतेः वृहस्पते
 परिदीयेत्यादिना । शुकस्य शुकन्तेऽन्य इत्यादिना । शनैश्चरस्य
 शन्नोदेवीरित्यादिना । राहोः कयानस्थित्वेत्यादिना । केतोः
 केतुं कृन्वन्नित्यादिना । तथाच मत्स्यपुराणम् । ‘आकृष्णेनेति
 सूर्याय होमः कार्यो विजानता । आप्यायस्वेति सोमाय
 मन्त्रेति जुहुयात् पुनः । अग्निर्मूर्द्धादिवो मन्त्रमिति भीमाय
 कीर्तयेत् । अग्ने विवस्वदुष्स इति सोमसुताय च । वृहस्पते
 परिदीयारथेनेति गुरोर्मतः । शुकन्तेऽन्यदिति शुकस्यापि

१५८

व्रततत्त्वम् ।

निगद्यते शनैश्चरायेति पुनः शन्नोदेवोति होमयेत् । कयान-
 खित आभुवदूतीराहोरुदाहृतः । केतुं कन्वन्निति कुर्यात् केतू-
 नामुपशान्तये' । एवं चरुहोमं समाप्य चरुशेषेण प्राच्यादि-
 दिग्भ्यः पायसबलिं दद्यात् । तदयथा । एष पायसबलिः ओम्
 प्राच्ये दिशि नम इत्यादिना दक्षिणायै दिशि स्वाहा इति श्रुति-
 दर्शनात् इति हरिहरकृत्यप्रदीपाभ्यां दशदिग्भ्यो बलिं दद्यात् ।
 वस्तुतस्तु बलिप्रकरण एव प्राच्यूर्ध्वावाचीभ्योऽहरहर्नित्यं प्रयोग
 इति गोभिलसूत्रे स्त्रीलिङ्गनिर्देशात् दिशां देवतात्वं बली
 प्रतीयते । अत्र तु अवाचीतिपाठात् श्रुत्युक्तहोमीयदक्षिणायै
 इत्यनादृत्य ओम् प्राच्ये दिशि नम इति बली प्रयुज्यते । एभि-
 र्मन्त्रैस्तद्विष्णोः परमं पदम् इत्यादि यावन्मन्त्रैः आद्यस्त्विति-
 शब्देन समिहोमस्तेषां व्यावर्त्तनात् मन्त्राकाङ्क्षायां प्राथमिक-
 त्वेन तद्विष्णोरित्यस्य परिग्रहः । ततस्तद्विष्णोरिति मन्त्रेण
 स्वाहान्तेन घृताक्तपलाशसमिद्धिरष्टोत्तरशतं जुहुयात् । पूर्वोक्त-
 मन्त्रैः पूर्वोक्तदेवताभ्यः सुवेणाहुतीर्जुहुयात् पुरुषसूक्ततत्त-
 हेदोक्तस्य तत्र सामगानाम् । ओम् इदं विष्णोरिति प्रेक्षकस्य
 विष्णोरिति प्रकाव्यमुषलेव इति सहस्रशीर्षेति त्रिपादूर्ध्वं इति
 पुरुष एवेदमिति एतावानस्य इति ततो विराडिति कयान
 इत्यादि पुरुषसूक्तम् । तथाच सामधेनी श्रुतिः । 'इदं विष्णुः
 प्रेक्षकस्य विष्णुप्रकाव्यमुषलेव ब्रुवानः' इति 'वाराहमन्थ'
 पुरुषव्रते चैषा वैष्णवी नाम सङ्गितेनां प्रयुज्यन् विष्णुः
 प्रीणाति' इति प्रकाव्यमुषलेव ब्रुवान इति वाराहमन्थमित्य-
 नेन एको मन्त्रः प्रकाशितः पुरुष इत्यनेन पुरुषपदयुक्तपञ्च-
 मन्त्राः । व्रते इत्यनेन कयानखित इत्येको मन्त्रः सामगो
 जुहुयात् । यजुर्वेदी तु तत्र प्रसिद्धाभिः सहस्रशीर्षेत्यादि
 ऋग्भिः षोडशाहुतीर्जुहुयात् इरावतीति घृताक्तान् सकृज्जुहु-

व्रततत्त्वम् ।

१५८

धात् । एवं ब्रह्मानुयायिभ्यः स्वाहा विष्णुनुयायिभ्यः स्वाहा
 ईशानानुयायिभ्यः स्वाहा एवं पूर्वोक्तनवग्रहमन्त्रैर्दिक्पाल-
 मन्त्रैर्जुहुयात् । एवं पर्वतेभ्यः स्वाहा नदीभ्यः स्वाहा नदेभ्यः
 समुद्रेभ्यः स्वाहा भूः स्वाहा भुवः स्वाहा इति जुहुयात् । ततः
 परिभाषासिद्धं स्वशास्त्रोक्तपूर्णहोमः । ततः पञ्चगव्यं चरुशेषं
 प्राश्य ब्राह्मणा वा ईमयुक्तं सवस्त्रं तिलपात्रम् अलङ्घ्यतां गात्रं
 दक्षिणामाचार्याय दद्यात् आचार्यश्च 'उदाहरति वेदार्थान्
 यज्ञविद्याः स्मृतौरपि । श्रुतिस्मृतिसमापन्नमाचार्यं तं विदु-
 र्बधाः' । इति कन्दोगपरिशिष्टात् कर्मोपदेष्टुराचार्यत्वेन
 आचार्यपदं स्वयं होतृपक्षे ब्रह्मपरम् अन्यहोतृपक्षे ब्रह्महोतृ-
 हयपरम् । स्वयं ब्रह्महोतृकर्मकरणपक्षे पुस्तकधारणपरम् ।
 'ब्रह्मणे दक्षिणे देया यत्र या परिकीर्त्तिता । कर्मान्तेऽनुच्य-
 मानायां पूर्णपात्रादिका भवेत् । विदध्याहोत्रमन्यसेहृत्ति-
 णाईहरो भवेत् । स्वयञ्चेदुभयं कुर्यादन्यस्मै प्रतिपादयेत्' ।
 इति कन्दोगपरिशिष्टेकवाक्यत्वात् । एवं ब्रह्म विधिना अग्नि-
 स्थापनादिप्रौयतां भगवान् विष्णुरित्यन्त कर्मसंस्कृतगो-
 पथादिदाननियमव्रतकृच्छादिकरणान्यतररूपा समुदाय-
 प्रतिष्ठा कर्त्तव्या समुदायस्य प्रकृतगोपथादेः प्रतिष्ठासमुदायः ।
 तथाच कापिलपञ्चरात्रं 'प्रतिष्ठाशब्दसंसिद्धिः प्रतिपूर्वा च
 तिष्ठते । वद्वर्थता निपातानां संस्कारादौ प्रति स्थितिः' ।
 तथाच गोपथादेरुक्तकर्मसंस्कृतस्य फलजनकत्वम् । अप्रतिष्ठन्तु
 निष्फलमित्युक्तेः । एतद् व्रतकर्मणा प्रौयतां भगवान् विष्णु-
 रिति समाप्नुयात् ।

अथ व्रतप्रतिष्ठाप्रयोगः । तत्र कृतनित्यक्रियः कथान्तं
 व्रतं समाप्य तत्तद्देवताप्रौतिकामो यथाशक्ति दानादि कृत्वा
 ओम् तत्सदित्युच्चार्य ओम् अद्येत्यादि असुकगोत्रोऽसुकदेव-

१६०

व्रततत्त्वम् ।

शर्मा तत्तद्व्रतफलकामः कृतैतत् अमुकव्रतप्रतिष्ठामहं करिष्ये । स्त्रीचेद्व्रतकारिणी तदा अमुकगोत्रामुकीदेवीत्याद्युह्यम् इति सङ्कल्पं कुर्यात् ततो घटं संस्थाप्य पञ्च देवान् संपूज्य गौर्यादिषोडशमातृकाः संपूज्य पुरुषश्चेत्तदा नान्दी-आहं कुर्यात् । तत उत्तराभिमुखं ब्राह्मणमुपवेश्य तत्समीपे आसनमानीय प्राङ्मुखो यजमानः । ओम् साधु भवानास्ताम् इति कृताञ्जलिर्वदेत् ओम् साध्वहमासे इति वचनम् ओम् अर्चयिष्यामी भवन्तम् इति पुनरुक्ते ओम् अर्चयेति प्रतिवचनम् । ततो वस्त्रालङ्कारगन्धपुष्पादिभिरभ्यर्च्य दक्षिणं जह्नु धृत्वा ओम् अद्येत्यादि अमुकगोत्रममुकदेवशर्माण-मर्चितं कृतैतदमुकव्रतप्रतिष्ठाकर्मणि होमादिकर्मकरणाय भवन्तमहं हणे ओम् हतोऽस्मीति प्रतिवचनम् ओम् यथा-विहितं कर्म कुरु ओम् यथान्नानं करवाण्येति प्रतिवचनम् । ततो वेदीं पञ्चगव्येनाभ्युक्ष्य पूर्वं पञ्चघटान् घटमेकं वा संस्थाप्य प्रथमलिखितक्रमेण भूतशुद्ध्यादिगणेशादिपूजां विधाय तत्तद-देवतां क्रमेण पूजयेत् । ततो होता स्वगृह्योक्तविधिना अग्निं संस्थाप्य ब्रह्मस्थापनानन्तरं चरुश्रपणं कुर्यात् । अन्यत् सर्वं प्रतिष्ठापद्धतौ ज्ञेयम् ।

अथ व्रतप्रयोगः । स्वस्तिवाचनं कृत्वा सूर्यः सोम इति पठित्वा सङ्कल्पं कुर्यात् । अद्येत्यादि अमुककामोऽमुकव्रत-महं करिष्ये । व्रताहन्ती आहवत्तिसंख्यामुलिखेत् अद्या-रभ्येति च । उदङ्मुखो भूत्वा एतत् कुर्यात् । ओम् यूँ सः क्षित्ये नमः स्थण्डिलं मार्जयेत् । ओम् सः इत्यभ्युक्षयेत् । वामहस्तेन स्थण्डिलं गृहीत्वा कुशेन प्रणवपूर्वकं चतुर्थ्यन्त-व्रतदेवतानाम लिखेत् हस्तप्रमाणं स्थण्डिलं चतुरस्रं सित-तण्डुलेनापूर्य मध्ये वितस्त्यूङ्गं कर्णिकं हरिद्राचर्णेन तद्वि-

दायतत्त्वम् ।

१६१

र्वितस्तिप्रमाणान्यन्योन्यासक्तानि अष्टदलानि सिततण्डुलचूर्णेन
पत्रमूले केशराणि कुसुमचूर्णेन पत्रसन्धीर्वित्त्वादिपत्रचूर्णेन
पीठगात्राणि दग्धपुलाकजेन कृत्वा घटं संस्थाप्य सामान्यार्घ्यं
कृत्वा तदुदकेनात्मानं पूजोपकरणञ्चाभ्युक्ष्य गणेशादीन् नव-
ग्रहांश्चैव पूजयेत् । ततो व्रतदेवतां पूजयेत् ।

इति श्रीहरिहरभट्टाचार्यात्मज श्रीरघुनन्दनभट्टाचार्यकृत
व्रततत्त्वं समाप्तम् ।

दायतत्त्वम् ।

प्रणम्य सच्चिदानन्दं वासुदेवं जगत्पतिम् । दायभाग-
स्मृतेस्तत्त्वं वक्ति श्रीरघुनन्दनः । निरूप्यन्तेऽत्र संचेपादाय-
भागविनिर्णयः । पितृकृतविभागश्च भ्रातृभागक्रियास्तथा ।
अनधिकारिणो भागेष्वविभाज्यविभाज्यता । विभक्तसंशयच्छेदो
विभागो निष्ठुतस्य च । स्त्रोधनं तद्विभागार्होऽपुत्रधनाधि-
कारिणः ।

अथ दायभागः । तच्च नारदः । 'विभागोऽर्थस्य पितॄस्य
पुत्रैर्यत्र प्रकल्प्यते । दायभाग इति प्रोक्तं तद्विवादपदं बुधैः' ।
अर्थो धनम् । पितॄः पितृसम्बन्धात्तत्त्वः । यत्र विवादपदे ।
दौयते इति व्युत्पत्त्या दायशब्दः । तत्र ददातिप्रयोगो गौणः ।
सुतप्रव्रजितादिस्वत्वनिवृत्तिपूर्वकपरस्वत्वोत्पत्तिफलसाम्यात् ।
न तु सुतादीनां स्वत्वध्वंसफलको न ममेदमिति संकल्पात्मक-
स्यागस्तत्रास्ति । एवं तद्धने दायपदप्रयोगात् पूर्वस्वामिनः
स्वत्वापगमोऽवतीयते । तत्रान्येषाञ्च पूर्वस्वामिसम्बन्धाधीनं

१६२

दायतत्त्वम् ।

स्वत्वं जायते । 'सत्सङ्गजेषु तन्नामी ह्यर्थो भवति' । इति बोधायनवचनात् । पितृस्वत्वोपरमे पुत्रेषु विद्यमानेषु पुत्र-गतं तत्सत्त्वास्पदं धनं भवतीत्यर्थः । यत्तु मिताक्षरायाम् 'उत्पत्त्यैवार्थं स्वामित्वाल्लभेत इत्याचार्याः' इति गौतमवचनं तदपि पितृस्वत्वोपरमेऽङ्गजत्वहेतुत्वेनोत्पत्तिमात्रसम्बन्धेनान्य-सम्बन्धाधिकेन जनकधने पुत्राणां स्वामित्वादनं पुत्रो लभेत नान्यसम्बन्धीत्याचार्या मन्यन्ते । नच पितृस्वत्वे विद्यमानेऽपि जन्मना तद्धने पुत्रस्वत्वमिति वाच्यम् । देवलवचनविरोधात् । तदयथा । 'पितर्युपरते पुत्राः विभजेशुर्द्धनं पितुः । अस्वाम्यं हि भवेदेषां निर्दोषे पितरि स्थिते' । निर्दोषेऽप-तिते । अतएव विभागं प्रक्रम्य नारदः । 'विनष्टे वाप्य-शरणे पितर्युपरतसृहे' । विनष्टे पतिते । अशरणे गृहस्था-श्रमरहिते । तेन मरणपातित्यगार्हस्थ्येतराश्रमगमनः स्वत्व-ध्वंसे उपरतसृहे सत्यपि स्वत्वे स्वगतधनेच्छारहितं च पुत्राणां विभागाधिकारः । अत्र पतितानामपि स्वधन साध्यप्राय-श्चित्तश्रुतेः पातित्येन स्वत्वनाशः प्रायश्चित्तवैमुख्ये बोध्यः स्वत्व-समान-कालीनेच्छाप्रागभावासमानकालीनेच्छाध्वंस्त्वमुपरत-सृहत्वम् । अत्रोपेक्षया स्वत्वे नाशिते पुनरिच्छया न स्वत्वमिति बोध्यम् । तस्मात् देवलवचने पितरि विद्यमाने तद्धने पुत्राणामस्वाम्यश्रुतेः 'उत्पत्त्यैवार्थं स्वामित्वाल्लभेत इत्याचार्याः' इति गौतमवचनम् । पितृस्वत्वोपरमानन्तरमेव जन्मना पुत्रस्वत्वसम्पादनात् स्वामित्वेन तद्धने पुत्रो लभेतेत्ये-तत्परम् । न तु पितृस्वत्वकाले जन्मानन्तरम् । नारद-प्रथमवचने पितृपुत्रेति सम्बन्धिमात्रोपलक्षणम् । दायभाग-मुपक्रम्य 'पत्नी दुहितरश्चैव पितरौ भ्रातरस्तथा । तस्मृतो गोत्रजो बन्धुः शिष्यः सत्रह्यचारिणः । एषामभावे पूर्वस्व

दायतत्त्वम् ।

१६३

धनभागुत्तरोत्तरः । स्वर्यातस्य ह्यपुत्रस्य सर्ववर्णेष्वयं विधिः ।
 इति याज्ञवल्क्योक्तेः । उत्तरोत्तर इति वीष्माश्रुतेः पूर्वस्थेत्य-
 त्नापि तथा तेन यत्र द्रव्ये यत् स्वामिनः पुत्रत्वादिसम्बन्धा-
 धीनं तत्स्वत्वोपरमे तत्सम्बन्धिनः स्वत्वं तत्र तं प्रति निरुद्धो
 दायशब्दः । पुत्रत्वादिसम्बन्धाधीनं न तु क्रयाद्यधीनं स्वत्वो
 परमे न तु पतिस्वत्वसमकालीनपत्नीस्वत्वयुक्तेः । तत्र विभा-
 गस्तु सम्बन्धन्तरसद्भावेन भूहिरण्यादावुत्पन्नस्य एकदेशगत-
 स्वत्वस्य विनिगमनाभावात् विशेषव्यवहारानर्हस्य गुटिका-
 पातादिना अमुकस्येदमिति विशेषेण भजनं स्वत्वज्ञापनमिति
 वदन्ति तत्र समौचीनम् । यत्र अस्य स्वत्वं तत्रैव गुटिकापात
 इति कथं वचनाभावान्नित्येत्यः । यत्र वा पितुर्निधनानन्तरं
 तदीयाश्वयोरेकतरमादाय भ्रात्रा यदर्जितं तत्रार्जकस्य
 द्वावंशावपरस्यैकः सर्वसम्मतः तत्र यदि प्राचीनधनविभागे
 गुटिकापातादर्जकेन स एवाश्वः पश्चात्तद्व्यः तदा प्रादेशिक-
 स्वत्ववादिमते प्रागर्जकस्यैव सोऽश्व इति तेनार्जितधने कथं
 भ्रात्रन्तरस्य भागः । यदि चार्जकेतरेण सोऽश्वो लब्धः तदा
 तेनार्जितधनस्य समभागो युक्तः । एकस्य स्वायासेन अप-
 रस्य अश्वायासेनार्जितत्वात् । वस्तुतस्तु पूर्वस्वामिस्वत्वोपरमे
 सम्बन्धाविशेषात् सम्बन्धिनां सर्वधनप्रसूतस्वत्वस्य गुटिका-
 पातादिना प्रादेशिकस्वत्वव्यवस्थापनं विभागः । एवं कृत्स्न-
 धनगतस्वत्वोत्पादविनाशावपि कल्पेऽपि संसृष्टतायां प्रादेशिक-
 स्वत्वनाशकृत्स्नधनगतस्वत्वोत्पादाविव । एतच्च 'विभक्तो यः
 पुनः पित्रा भ्रात्रा चैकत्र संस्थितः । पितृव्येणाथवा प्रीत्या
 स तु संसृष्ट उच्यते' । इति बृहस्पतिवचने येषामेव हि पितृ-
 भ्रातृपितृव्यादीनां पितृपितामहोपार्जितद्रव्येण अविभक्तत्व-
 सुत्पत्तितः सम्भवति त एव विभक्ताः सन्तः परस्परप्रीत्या पूर्व-

१६४

दायतत्त्वम् ।

कृतविभागध्वंसेन यत्तव धनं तन्मम धनं तत्तवापि इत्येकस्मिन् कार्ये एकगृहिरूपतया स्थिताः संसृष्टाः । न तु अनैवरूपाणां धनसंसर्गमात्रेण सम्भूयकारिणां वणिजामपि संसर्गित्वं नापि विभक्तानां धनसंसर्गमात्रेण प्रीतिपूर्वकाभिसन्धानं विना इत्यभिदधता दायभागकृतापि स्वहस्तिताम् । साधारणस्वत्वादेव हि । 'बन्धूनामविभक्तानां भोगं नैव प्रदापयेत्' । इति कात्यायनवचनं यथाश्रुतं सङ्गच्छते द्रव्यमात्रे स्वत्वस्यापि सम्भवात् अतएव अत्र चौर्यं न भवतीति वक्ष्यते । एवञ्च 'साक्षित्वं प्रातिभाव्यञ्च दानग्रहणमेव च । विभक्ता भ्रातरः कुर्युर्नाविभक्ताः परस्परम्' । इति नारदवचनेन अविभक्तपरस्परदानादिनिषेधोऽपि न्यायादेव संगच्छते । दानात् पूर्वमपि तद्धने प्रतिग्रहीतृस्वत्वसम्भवात् दानग्रहणयोरसम्भवः । एवं साक्षित्वप्रातिभाव्ययोर्ज्ञेयम् । स्वत्वाविशेषादेवाविभक्तद्रव्येण यत् कृतं तत्र दृष्टादृष्टे कर्मणि सर्वेषां फलभागित्वम् । तथाच नारदः । 'भ्रातृणामविभक्तानामेको धर्मः प्रवर्तते । विभागे सति धर्मोऽपि भवेत्तेषां पृथक् पृथक्' । व्यासः । 'स्थावरस्य समस्तस्य गोत्रसाधारणस्य च । नैकः कुर्यात् क्रयं दानं परस्परमतं विना' । अत्र समस्तस्येतिविशेषेण कृत्स्नधनविषयकमेव प्रत्येकस्वत्वं प्रतीयते । तस्मात्तुल्यसम्बन्धन्तरस्वत्वे सम्बन्धिसकाशात् संक्रान्तधनं तस्यापि ममापीति सम्बन्धिना प्रतीयते । तद्विमती स्वार्थं दानादिकं प्रतिषिद्धम् । अतो न त्वेकदेशगतस्वत्वमिति सिद्धम् । भागं विशेषयति ब्रह्मस्यतिः । 'पितरिक्थहराः पुत्राः सर्व एव समांशतः । विद्याधर्मयुतस्त्वेषामधिकं लब्धुमर्हति । विद्याविज्ञानशौर्यार्थं ज्ञानदानक्रयेषु च । यस्येह प्रथिता कीर्तिः पितरस्तेन पुत्त्रिणः' । कालभेदेनापि विभागमाह ब्रह्मस्यतिः । 'एकां स्त्रीं

दायतत्त्वम् ।

१६५

कारयेत् कर्म यथांशेन गृहे गृहे' । अत्र एकस्यापि एकस्यां व्यक्तौ सामयिकनानास्त्वविनाशकल्पनं स्फुटमिति । सर्वेषां सामयिकनानास्त्वसङ्कीर्णो वा । देशादिभेदेनापि विभागमाह कल्पतरुनाकरयोः कात्यायनः । 'देशस्य जातेः संघस्य धर्मो ग्रामस्य यो भृगुः । उदितः स्यात् स तेनैव दायभागं प्रकल्पयेत्' । भृगुराहेति शेषः ।

अथ पितृकृतविभागः । हारौतः । 'जीवन्नेव वा प्रविभज्य वनमाश्रयेत् वृद्धाश्रमं वा गच्छेत् स्वल्पेन वा संविभज्य भूयिष्ठमादाय वसेत् यद्युपदिश्येत् पुनस्तेभ्यो गृह्णीयात्' इति । वृद्धाश्रमः प्रव्रज्या । अनेन स्वल्पस्य विभागो भूयिष्ठद्रव्यग्रहणञ्च पितुरभिहितम् । विष्णुः । 'पिता चेत् पुत्रान् विभजेत् तस्य स्वेच्छा स्वयमुपात्तेऽर्थे पैतामहे तु पितापुत्रयोस्तुल्यं स्वामित्वम्' इति । स्वार्जितेऽपि स्वेच्छया न्यूनाधिकविभागो भक्तत्वबहुपोष्यत्वाच्चमत्वादिसत्त्वासत्वकारणात् यथा कात्यायनः । 'जीवद्भिभागे तु पिता नेकं पुत्रं विशेषयेत् । निर्भाजयेन्न चैवैकमकस्मात् कारणं विना' । उक्तकारणशून्ये तु नारदः । 'व्याधितः कुपितश्चैव विषयासक्तचेतनः । अयथा शास्त्रकारी च न विभागे पिता प्रभुः' । विषयासक्तत्वं सुभगापुत्रत्वादिना यत्र तु भ्रातर एव विभागमर्थयन्ते तत्र विषमभागाभावमाह मनुः । 'भ्रातृणामविभक्तानां यद्युत्थानं भवेत् सह । न तत्र भागं विषमं पिता दद्यात् कथञ्चन' । पैतामहमन्यैर्हृतं पित्रोद्धृतं तदकामतो न विभजनीयम् । यथा मनुविष्णू । 'पैतृकन्तु पिता द्रव्यवनवाप्तं यदाप्नुयात् । न तत् पुत्रैर्भजेत् सार्द्धमकामः स्वयमर्जितम्' । तत् स्वयमर्जितमिति कृत्वा न विभजदित्यन्वयः । अन्योद्वारे तु वक्ष्यमाणशङ्खवचनाद्व्यवस्था सामान्यविशेषन्यायात् । एतत्तु

१६६

दायतत्त्वम् ।

स्थावरविषयम् । मण्द्यादावनुवृत्ते तु पितुरेव स्वाच्छन्द्यम् ।
यथा याज्ञवल्करः । 'मणिसुक्ताप्रक्षालानां सर्वस्यैव पिता
प्रभुः । स्थावरस्य तु सर्वस्य न पिता न पितामहः' । पिता-
महश्चुतेस्तदनविषयमिदम् । एवञ्च 'पूर्वनष्टाश्च यो भूमि-
मेकश्चेदुद्धरेच्छमात् । यथाभागं भजन्त्यन्ये दत्त्वांशन्तु तुरी-
यकम्' इति शङ्खवचनं भ्रात्राद्युद्धृतविषयम् । अत्र स्वयं
तुरीयांशं गृहीत्वा भ्रात्रादिभिः सहोद्धर्त्ता गृहीयात् अन्यथा
विषमसृष्टं स्यात् । पितुर्भागकरणे तु अपुत्रपत्न्यै पुत्रतुल्यांश-
दानमाह व्यासः । 'अपुत्राश्च पितुः पत्न्यः समानांशाः
प्रकीर्त्तिताः । पितामहश्च सर्वास्ता मातृतुल्याः प्रकीर्त्तिताः' ।
एतच्च अदत्ते स्त्रीधने । यथा याज्ञवल्करः । 'यदि कुर्यात्
ससानंशान् पत्न्यः कार्याः समांशिकाः । न दत्तं स्त्रीधनं
यासां भर्त्ता वा श्वशुरेण वा' । एतद्वचनेकवाक्यतया व्यास-
वचने पितुः पत्न्य इति नान्वयः । न च वैपरीत्यं स्पष्टस्य
तु विधेर्नान्यैरुपसंहार इष्यते इति न्यायात् । तेन पुत्रकृत-
विभागे विमातुर्नांशिता स्त्रीधने दत्ते तु अर्द्धं पुत्रांशस्य पत्या
देयम् । 'अधिविब्रस्त्रियै देयमाधिवेदनिकं समम् । न दत्तं
स्त्रीधनं यस्यै दत्ते त्वर्द्धं प्रकीर्त्तितम्' इति विवाहे याज्ञवल्कर-
दर्शनेन 'बह्वनामेकधर्माणामेकस्यापि यदुच्यते । सर्वेषामेव
तत् कुर्यादेकरूपा हि ते स्मृताः' । इति बौधायनोक्तेन तथा
प्रतीतेः पितामहधनस्य पौत्रैर्विभागे पितामह्यै मातृवद्भागो
देय इति 'पितामहे तु पितापुत्रयोस्तुल्यं स्वामित्वम्' इति
विष्णुक्तम् । भूर्या पितामहोपात्ता निबन्धो द्रव्यमेव वा ।
तत्र स्यात् सदृशं स्वाम्यं पितुः पुत्रस्य चोभयोः' । इति याज्ञ-
वल्क्योक्तञ्च । निबन्ध आकरादौ राजादिदत्तं नियतलभ्य-
मिति कल्पतरुक्तं द्रष्टव्यम् । द्रव्यं द्विपदरूपं भूसाहचर्यात् ।

दायतत्त्वम् ।

१६७

तथाच 'स्यावरं द्विपदश्चैव यद्यपि स्वयमर्जितम् । असम्भूय
 सुतान् सर्वांश्च दानं न च विक्रयः' । इत्येतेषु निबन्धभूमि-
 द्विपदेषु पितामहोपात्तेषु पितुर्यथा पार्वणपिण्डदातृत्वेन
 तत्पितृधने स्वत्वं तथा तन्मरणादिना तत्स्वत्वोपरमे तत्-
 पुत्राणां पितृयोग्यांश्च सत्यपि पितृव्येऽंशिता । अतएव व्यक्त-
 माह रत्नाकरधृतकात्यायनः । 'अविभक्ते मृते पुत्रे तत्सुतं
 रिक्तभागिनम् । कुर्वीत जीवनं येन लब्धं नैव पितामहात् ।
 समेतांश्च सपित्रश्च पितृव्यात्तस्य वा सुतात्' । सति तु
 पितरि पार्वणानधिकारात् पुत्राणां नांशिता । एवं धनिनः
 पौत्रस्वत्वोपरमे तदंशमात्रे प्रपौत्राणामंशिता । सति पौत्रे तु
 नांशिता इति यद्वा पुत्रेभ्यः स्वधनविभागदाने स्वाच्छन्यात्
 यथा न्यूनाधिकदानं तथात्र नास्तीत्येतत्परं न तु पितापुत्रयो-
 स्तुल्यांशित्वम् । 'द्वावंशौ प्रतिपद्येत विभजन्नात्मनः पिता ।
 समांशहारिणौ माता पुत्राणां स्यान्मृते पतौ' । इति नारद-
 वचने पितुर्हंशित्वात् । न चैतत् स्वार्जितपितृद्रव्यपरम् ।
 'तस्य स्नेच्छा स्वयमुपात्तेऽर्थे' इति विष्णुस्नेच्छाया उद्धार-
 रूपाया हंशनिर्णयानर्हत्वात् भूयिष्ठमादाय वसेदित्यनेन
 विरोधात् किन्तु नारदवचनं द्वावंशाविति पितामहादिधन-
 परम् । 'पितुः प्रसादाद्भुज्यन्ते वस्त्राण्याभरणानि च ।
 स्यावरन्तु न भुज्येत प्रसादे सति पैतृके' । इति मिताक्षरा-
 धृतवचनमपि पितामहधनपरम् । पित्रा च स्वोपार्जितं
 स्यावरं दत्तं भुज्येत एवेति अन्यथा मूलभूतश्रुत्यन्तरकल्पना-
 पत्तेः निवृत्तरजस्कायामेव मातरि पितामहधनविभागमाह
 बृहस्पतिः । 'पित्रोरभावे भ्रातृणां विभागः सम्प्रदर्शितः ।
 मातुर्निवृत्ते रजसि जीवतोरपि शस्यते' । अत्र मातृपदं
 विमातृपरमपि पुत्रान्तरोत्पत्तिसम्भावनातौल्यात् । मातु-

१६८

दायतत्त्वम् ।

निवृत्ते रजसीति श्रुतेरेतद्वचनं पितामहधनपरं न तु पित्रधन-
 परं तत्र विभक्तजस्य भागदर्शनात् । यथाह बृहस्पतिः ।
 'पित्रा सह विभक्ता ये सापत्ना वा सहोदराः । जघन्यजाश्च
 ये तेषां पित्रभागहरास्तु ते । अनीशः पूर्वजः पित्रे भ्रातृ-
 भागे विभक्तजः' । विभक्तजो विभागानन्तरं गर्भाधानेन
 जातः । 'यथा धने तथर्णेऽपि दानाधानक्रयेषु च । पर-
 स्परमनीशास्ते मुक्ताशौचोदकक्रियाः' । याज्ञवल्करः ।
 'विभागश्चेत् पिता कुर्व्यादिच्छया विभजेत् सुतान् । ज्येष्ठं
 वा श्रेष्ठभागेन सर्वं वा स्युः समांशिनः' । अत्रेच्छयेति
 स्त्रोपात्तविषयं श्रेष्ठभागेन विंशोद्धारयुक्तभागेन श्रेष्ठसमभागी
 पैतामहधनविषयौ प्रागुक्तवचनसामञ्जस्यात् । एवं 'चोद्ध'ं
 पितुः पुत्रा रिक्थं विभजयुर्निवृत्ते रजसि मातुर्जीवति
 चेच्छति' इति गौतमवचनस्य मातृरजसो निवृत्युक्तेः पैता-
 महधनगोचरत्वं ततश्चोद्धं पितुरिति पितुर्मरणप्रतीतेर्जीवति
 चेच्छतीत्यत्रापि पितुरेवेच्छा प्रतीयते । तेन पितामहधने
 पितुरिच्छया विभागो न पुत्रस्येति सिद्धम् । एवञ्च 'अस्त्राम्यं
 हि भवेदेषां निर्दोषे पितरि स्थिते' । इति देवलवचनं पितु-
 रनुमत्या विभागविषयकमिति बोधायनवचनञ्च पित्रधनवत्
 पैतामहधनपरमप्यविशेषात् । यदि तु निवृत्तरजस्कायां मात-
 र्यपि दैवात् पितामहधनं विभक्तम् । तत्र विष्णुः । 'पित्र-
 विभक्ताविभागानन्तरोत्पन्नस्य विभागं दद्युः' इति । नेदं पित्र-
 धनपरम् । प्रागुक्तबृहस्पतिवचनविरोधात् द्वादशविधात् पुत्रानु-
 द्विष्ट्य देवलः । 'सर्वं ह्यनीरसस्यैते पुत्रादायहराः स्मृताः ।
 औरसे पुनरुत्पन्ने तेषु ज्येष्ठं न विद्यते । तेषां सवर्णा ये पुत्रास्ते
 हृत्तीयांशभागिनः । ह्यनीनास्तमुपजीवेयुर्यासाच्छादनसंहताः' ।
 दायहराः पूर्णांशहराः । तेषामौरसव्यतिरिक्तानां मध्ये ये

दायतत्त्वम् ।

१६८

पितुः सवर्णास्ते सत्यौरसे तृतीयांशहराः । अत्रापि विशेष-
माह मनुः ‘औरसक्षेत्रजौ पुत्रौ पितृरिक्थस्य भागिनी ।
दशापरे च क्रमशो गोत्ररिक्थांशभागिनः’ । सन्ततिकारक-
त्वेन धनिदेयपिण्डदाहत्वेन च प्रथमं पुत्रिकापुत्रस्य तद-
नन्तरं दत्तकस्य गोत्ररिक्थयोर्भागित्वम् । क्रमशः पूर्वपूर्वाभावे
परः परः इत्यं क्रमेण गोत्रधनयोर्भागिनः । शूद्रस्य दासीपुत्र-
विभागमाह याज्ञवल्क्यः । ‘जातोऽपि दास्यां शूद्रेण कामतो-
ऽंशहरो भवेत् । सृते पितरि कुर्युस्तं भ्रातरस्त्वर्द्धभागि-
नम् । अभ्रातृको हरेत् सर्वं दुहितृणां सुतादृते’ । कामतः
पितुरिच्छातः । अंशहरः पुत्रान्तरतुल्यांशहरः । सति तु
दौहित्रे तस्यैव स्त्रीयसन्तानत्वात् । दासीपुत्रस्य अपरिणीता-
जातत्वात् । तयोस्तुल्यांशित्वं युक्तमिति । अनियोगोत्पन्न-
क्षेत्रजस्य औरसेन सह विभागमाह मनुः । ‘यद्येक ऋक्थिनी
स्यातामौरसक्षेत्रजौ सुतौ । यद्यस्य पैतृकं रिक्थं स तद-
गृह्णीत नेतरः’ । एक ऋक्थिनी एकस्यां जातौ ऋक्थिनी ।
यस्य वीजाद् यो जातः स तस्य ऋक्थं गृह्णीयात् । इतरो-
ऽन्यवीजजो न गृह्णीयादित्यर्थः । स्त्रोधने यत् पितृदत्तं यद्धनं
स्त्रीयै तद्वीजजस्तद्धनं गृह्णीयात् नान्य इत्याह नारदः । ‘द्वौ
सुतौ विवदेयातां द्वाभ्यां जातौ स्त्रिया धने । तयोर्यद् यस्य
पितरं स्यात् स तदगृह्णीत नेतरः’ ।

अथोपरते पितरि भ्रातृणां विभागः । तत्र देवलः ।
‘पितर्युपरते पुत्रा विभजियुधनं पितुः’ । पितुःसकाशादागत-
धनमित्यर्थः । नारदः । ‘यच्छिष्टं पितृदायेभ्यो दत्त्वं पैतृकं
ततः । भ्रातृभिस्तद्विभक्तव्यसृणी न स्याद् यथा पिता’ ।
पितृदायेभ्यः पित्रा दत्तप्रतिश्रुतंभ्यः । ऋणी न स्यादित्यने-
नाशक्तौ शोधनौयमित्युत्तमर्णस्थाने स्वीकर्तव्यम् । अत्र

१७०

दायतत्त्वम् ।

मातरि जीवन्त्यां सोदराणां विभागो न धर्म्यः । यथा शङ्ख-
 लिखितौ । ‘ऋक्थमूलं हि कुटुम्बमस्त्रातन्त्राः पितृमन्तो
 मातुरप्येवमवस्थितायाः’ इति । अतएव व्यासः । ‘भ्रातृणां
 जीवतोः पित्रोः सहवासो विधीयते । तदभावे विभक्तानां
 धर्मस्तेषां विवर्द्धते’ । विभक्तानां स्वमात्रधने वैदिककर्म-
 करणात्तन्मात्रत्वेन तद्वृद्धिरित्यर्थः । यदि तु विभज्यते तदा
 मातुर्भागमाह कात्यायनः । ‘मातापि पितरि प्रेते पुत्र-
 तुल्यांशहारिणी’ । समांशता तु मातुरप्राप्तस्त्रीधनायाः ।
 प्राप्तस्त्रीधनायास्तु भागाईं प्रागुक्तवचनात् । सोदरानुदाराभ्यां
 द्विप्रकारविभागमाह बृहस्पतिः । द्विप्रकारो विभागस्तु दाय-
 दानां प्रकीर्तितः । वयोज्येष्ठक्रमेणैकः समापरांशकल्पना’ ।
 वयोज्येष्ठक्रमेणेत्युदाराभिप्रायेण । शूद्रे तु उदाराभावो
 वक्ष्यते । समभागस्य शास्त्रीयत्वेऽपि उदारपक्षो भक्त्यति-
 शयादविरुद्धः । विभागाविभागविकल्पवत् । यथा मनुः ।
 ‘ज्येष्ठ एव तु गृह्णीयात् पितरं धनमशेषतः । शेषास्तमुप-
 जीवेयुर्यथैव पितरं तथा’ । नारदः । ‘विभ्रयाद्देच्छतः सर्वान्
 ज्येष्ठो भ्राता यथा पिता । भ्राताशक्तः कनिष्ठो वा शक्त्यपेक्षा
 कुले स्थितिः’ । मध्यमोऽत्र दण्डापूपन्यायात् सिद्धः । स च
 न्यायो यथा मूषिकस्य दण्डभक्षणं दुष्करं तन्निष्पत्तौ तत्-
 सहचरितापूपभक्षणमिति सुकरत्वात् यथा सन्भाव्यते तथा-
 ब्रापि सहचरितैकमिडावपरमिडेरौचित्यात् तत्सन्भाव्यते ।
 अतएव अविशेषान्नारदः । ‘कुटुम्बार्थेषु चोद्युक्तस्तत् कार्यं
 कुरुते तु यः । स भ्रातृभिर्बृंहणीयो ग्रासाच्छादनवाहनैः’ ।
 एवम्भूतं प्रशंसति व्यासः । ‘जीविते यस्य जीवन्ति विप्रा-
 मित्राणि बान्धवाः । सफलं जीवितं तस्य आत्मारथी को न
 जीवति’ । हरिवंशे वैपरीत्यादोषमाह इन्द्रं प्रति नारदः ।

दायतत्त्वम् ।

१७१

‘अन्योन्यभेदो भ्रातृणां सुहृदां वा वलान्तक । भवत्यानन्द-
 क्कहेव द्विषतां नात्र संशयः’ । अत्र सर्वेच्छया नारदेन सह-
 वास उक्तः । विभागस्तु न तथा । यथा विभागं प्रक्रम्य
 कात्यायनः । ‘अप्राप्तव्यवहाराणां धनं व्ययविवर्जितम् ।
 न्यसेयुर्वन्धुमित्रेषु प्रीषितानां तथैव च’ । अप्राप्तव्यवहाराणां
 बालानां यस्तु स्वयोन्यतया पित्रादिधने निष्पृहः स तण्डुल-
 प्रस्थादि दत्त्वा तत्पुत्रादेर्दुरन्ततानिरासाय विभजनीयः ।
 यथा मनुः । ‘भ्रातृणां यस्तु नेहेत धनं शक्तः स्वकर्मणा ।
 स निर्भाज्यः स्वकादंशात् किञ्चिद्वत्सोपजीवनम्’ । कात्या-
 यनः । ‘दृश्यमानं विभज्येत गृहक्षेत्रचतुष्पदम् । गूढ-
 द्रव्यादिशङ्कायां प्रत्ययस्तत्र कौर्त्तितः’ । प्रत्ययो दिव्यम् ।
 एतदेव स्पष्टयति । ‘गृहोपस्करवाद्यास्तु दोह्याभरणकर्मिणः ।
 दृश्यमाना विभज्यन्ते कोषं गूढेऽब्रवीद् भृगुः’ । गृहोपस्करः
 उदूखलादि कर्मिणो दासादयः कोषो दिव्यविशेषः । स तु
 दिव्यतत्त्वेऽनुसन्धेयः । प्रसिद्धमन्यत् । नारदः । ‘येषान्तु न
 कृताः पित्रा संस्कारविधयः क्रमात् । कर्त्तव्या भ्रातृभिस्तेषां
 पैतृकादेव तद्वनात् । अविद्यमाने पितर्ये स्वांशादुद्धृत्य वा
 पुनः । अवश्यकार्याः संस्काराः भ्रातृभिः पूर्वसंस्कृतैः’ ।
 कन्याभ्यस्तु विवाहोचितद्रव्यदानमाह देवलः । ‘कन्याभ्यश्च
 पितृद्रव्याद्देयं वैवाहिकं वसु । अपुत्रकस्य कन्या स्वा धर्मजा
 पुत्रवद्भरेत्’ । विष्णुः । ‘अनूढानान्तु कन्यानां सवृत्तानु-
 सारेण संस्कारं कुर्यात्’ । एवं तुरीयांशदानप्रतिपादकमपि
 विवाहोचितद्रव्यदानपरम् । पितृव्यातिरिक्तानामपि संस्कर्त्तृत्व-
 माह द्वैतनिर्णयामृतधृतस्मृतिः ‘अष्टौ संस्कारकर्माणि गर्भा-
 धानमिव स्वयम् । पिता कुर्यात्तदन्यो वा तस्याभावे तु
 तत्क्रमात्’ ।

१७२

दायतत्त्वम् ।

अथ विभागानधिकारिणः । आपस्तम्बः । 'सर्वे हि धर्मयुक्ता भागिनो द्रव्यमर्हन्ति । यस्त्वधर्मेण द्रव्याणि प्रतिपादयति ज्येष्ठोऽपि तमभागं कुर्वीत' इति ज्येष्ठोऽपि पुत्र इति शेषः । तथाच ब्रह्मस्यतिः । 'सवर्णाजोऽप्यगुणवान् नार्हः स्यात् पैतृके धने । तत्पिण्डदाः श्रोत्रिया ये तेषां तदभिधीयते' । तत्पिण्डदाः धनिपिण्डदाः अतएव श्रोत्रिया इत्युक्तम् अगुणवान् गुणविरुद्धदोषवान् अगुणवदग्रासाच्छादन-दातार इति रत्नाकरः एतन्मतेऽपि सुतरां धनिपिण्डदाहत्वं प्रतीयते । 'यथा जलं कुप्लवेन तरन्मज्जति मानवः । तथा पिता कुपुत्रेण तमस्यन्धे निमज्जति' । कात्यायनः । 'यज्ञार्थं द्रव्यमुत्पन्नं तस्मात् द्रव्यं नियोजयेत् । स्थानेषु द्रव्ययोगेषु न स्त्रीमूर्खविधर्मिषु' । स्त्रीति पत्न्यादिविशेषविहितेतर-सपिण्डस्त्रीपरं तथा 'शास्त्रशीर्थ्यादिरहितस्तपोदानविवर्जितः । आचारहीनः पुत्रस्तु मूर्खोच्चारसमस्तु सः' । शङ्खः । 'अकृत्वा प्रेतकार्य्याणि प्रेतस्य धनहारकः । वर्णानां यद्वधे प्रोक्तं तद्व्रतं नियतखरेत्' । देवलः । 'मृते पितरि न स्त्रीव-कुष्ठान्मत्तजडान्धकाः । पतितः पतितापत्यं लिङ्गी दायांश-भागिनः । तेषां पतितवर्जभ्यो भक्तवस्त्रं प्रदौयते । तत्सुताः पितृदायांशं लभेरन् दोषवर्जिताः' । जडोधर्मकृत्ये निरुत्साहः अन्धो जन्मान्धः जात्यन्धवधिरौ तथेति मनुवचनात् लिङ्गी कपटव्रतधारौ । नारदः । 'पितृहिट् पतितः पण्डो यश्च स्यादौपपातिकः । औरसा अपि नैतेऽंशं लभेरन् जेव्रजाः कुतः' । पितृहिट् पितरि जीवति तत्ताडनादिकृत् मृते तु तत्त्याद्यादिविमुखः । औपपातिकः उपपातकैः संस्पृष्टः कल्पतरुकृता तु औपपातिक इत्यत्रापपात्रित इति पठित्वा राजवधादि दोषेणवान्धवैर्यस्य घटापवर्जनं कृतमिति

दायतत्त्वम् ।

१७३

विहृतम् । प्रकाशकारेण उपपातकीति पठित्वा उपपातकै-
र्युक्त इति विहृतम् ।

अथ विभाज्याविभाज्ये । तत्र व्यासः । 'अनाश्रित्य
पितृद्रव्यं स्वशक्त्याप्नोति यत्नम् । दायादेभ्यो न तद्दद्यात्
विद्यालब्धञ्च यज्ञवेत्' । विद्याधनमाह कात्यायनः । 'उप-
न्यस्ते तु यज्ञव्यं विद्यया पणपूर्वकम् । विद्याधनन्तु तद्वि-
द्यात् विभागे न नियोजयेत् । शिष्यादार्त्विज्यतः प्रज्ञात्
सन्दिग्धप्रश्ननिर्णयात् । स्वज्ञानसंशनादादाज्ञव्यं प्राध्ययनात्
यत् । विद्याधनन्तु तत् प्राहुर्विभागे न प्रयोजयेत् । शिल्पे-
ष्वपि हि धर्मोऽयं मूल्याद् यच्चाधिकं भवेत् । परं निरस्य
यज्ञव्यं विद्यया द्यूतपूर्वकम् । विद्याधनन्तु तद्विद्यात् न
विभाज्यं हहस्यतिः' । यदि भवान् भद्रमुपन्यस्यति तदा
भवत एव मयैतद्देयमिति पणितं यत्रोपन्यासं निस्तीर्य लभते
तत्र विभाज्यं शिष्यादध्यापितात् आर्त्विज्यतः यजमानाद्दक्षि-
ण्या लब्धधनं न प्रतिग्रहलब्धं वेतनरूपत्वात्तस्य तथा यत्-
किञ्चिद्विद्याप्रश्ने निस्तीर्णोऽपणितं यदि कश्चित् परितोषाद्ददाति
तथा यो ह्यस्मिन् शास्त्रार्थे अस्माकं संशयमपनयति तस्मै धन-
मिदं ददानीत्युपस्थितस्य संशयमपनीय यज्ञव्यं वादिनोर्वा
सन्देहे न्यायकरणार्थमागतयोः सम्यङ्निरूपणेन यज्ञव्यं षष्ठां-
शादिकं तथा शास्त्रादिप्रकटज्ञानं सम्भाव्य यत्प्रतिग्रहादिना
लब्धं तथा शास्त्रज्ञानविवादे अन्यत्रापि यत्र कुत्रचिदन्योन्य-
ज्ञानविवादे निर्जित्य यज्ञव्यम् । तथैकस्मिन् देये बहूना-
मुपप्लवे येन प्रकृष्टात् यज्ञव्यम् । तथा शिल्पादिविद्यया
चित्रकरसुवर्णकारादिभिर्यज्ञव्यम् । तथा द्यूतेनापि परं
निर्जित्य यज्ञव्यं तत् सर्वमविभाज्यमितरैः तस्मादयया कयाचि-
द्विद्यया लब्धमर्जकस्यैव तन्नेतरेषामिति । प्रदर्शनार्थन्तु

१७४

दायतत्त्वम् ।

कात्यायनेन विस्तारितमिति दायभागः । नारदः । ‘कुटुम्बं विभ्रयाद् भ्रातुर्यो विद्यामधिगच्छतः । भागं विद्याधनात्तस्मात् स लभेताश्रुतोऽपि सन्’ । विभ्रयादित्येकवचननिर्देशात् बहवः यदि विद्यामभ्यस्यतो भ्रातुः कुटुम्बमपरो भ्राता स्वधनव्ययशरीरायासाभ्यां संवर्द्धयति तदा तद्विद्यार्जितधने तस्याधिकारः । अश्रुतो मूर्खः । कल्पतरुमिताक्षरादीपकलिकासु । कात्यायनः । ‘परभक्तोपयोगेन विद्या प्राप्ता न्यतस्तु या । तया लब्धं धनं यत्तु विद्यालब्धं तदुच्यते’ । अन्यतः पितृमातृकुलव्यतिरिक्तात् अत्र विशेषयति स एव ‘नाविद्यानान्तु वैद्येन देयं विद्याधनात् क्वचित् । समविद्याधिकानान्तु देयं वैद्येन तद्धनम्’ । तत्रोच्चरितविद्यापदमुभाभ्यां सम्बध्यते तेन समविद्याधिकविद्यानां भागो न तु न्यूनविद्याविद्ययोः वैद्येन विदुषा पुनर्विशेषयति । ‘कुले विनौतविद्यानां भ्रातृणां पितृतोऽपि वा । शौर्यप्राप्तन्तु यद्वित्तं विभाज्यं तद्गृहस्यतिः’ कुले सकुले पितामहपितृव्यादिभ्यः पितृत एव वा शिद्धितविद्यानां भ्रातृणाम् । यद्विद्याशौर्यप्राप्तं धनं तद्विभजनीयमिति कल्पतरुत्नाकरौ पुनः कात्यायनः । ‘हंशहरोऽर्द्धहरो वा पुत्रवित्तार्जनात् पिता’ । पुत्रवित्तार्जनात् । कृदभिहितभावो द्रव्यवत् प्रकाशत इति न्यायात् पुत्रार्जितवित्तात् पितुर्हंशित्वं पितृधनानुपघातविषयं भ्रातृधनोपघातविषयञ्च । अर्जकस्य तु हंशित्वं भ्रातृधनोपघाते तु तेषामप्येकांशित्वं वक्ष्यमाणव्यासवचनात् पितुर्हंशत्वन्तु पितृद्रव्योपघाताद्गुणवत्त्वाच्चेति दायभागः । अनुपघाते पिता हंशहरः अर्जकत्वात् । स्वयमपि हंशहरः इतरेषामनंशित्वं भ्रातृद्रव्योपघाते तु तस्याप्येकांश इति हंशार्द्धांशयोर्भेदकथनम् । पुनः कात्यायनः । ‘गोप्रचारश्च रथ्या च वस्त्रं यच्चाङ्गयोजितम् ।

दायतत्त्वम् ।

१७५

प्रायोज्यं न विभज्येत शिल्पार्थं तु ब्रह्मस्यतिः' । प्रायोज्यं यद् यस्य प्रयोजनाहं पुस्तकादि न तस्मूखादिभिः सह पण्डितादिभिर्विभजनौयम् एवमेव दायभागमदनपारिजातादयः । याज्ञवल्क्यः । 'पितृभ्याश्चैव यद्वत्तं तत्तस्यैव धनं भवेत्' । पुत्रदुहितोर्यदलङ्कारादि दत्तं तत्तस्यैवेति शूलपाण्डुपाध्यायाः । नारदः 'शौर्यभार्याधने चोभे यच्च विद्याधनं भवेत् । त्रीण्येतान्यविभाज्यानि प्रसादो यश्च पैतृकः' । प्राप्तञ्च सह भार्ययेति भरद्वाजवचनात् भार्याप्राप्तिकाले लब्धं धनं भार्याधनमौदाहिकम् इत्यर्थः । चोभे इत्यत्र हित्वेति पाठे एतच्चिकं हित्वान्यद्विभजेदित्यनुवर्तते अत एतान्यविभाज्यानीति । प्रसाददत्तस्य पौर्वापर्यपूर्वसंप्रदानस्यैव तद्व्ययम् । 'सर्वेष्वेव विवादेषु बलवत्युत्तरा क्रिया । आधौ प्रतिग्रहे क्रीते पूर्वा तु बलवत्तरा' इति याज्ञवल्क्यवचनात् । अत्र या बलवती सैव सिद्धतीत्यर्थः । तत्राप्याधिक्रियास्वामिनो यथेष्टविनियोगविरोधिका न तु स्वत्वध्वंसजनिकेति सा पूर्वा परा वा प्रतिग्रहरूपक्रियाभ्यां पूर्वस्वामिस्वत्वध्वंसोत्तरजाताभ्यां बलवतीभ्यां साध्यते अतएव रत्नाकरादिष्टुतस्मृतिः । 'न्यासं कृत्वा परत्राधिं कृत्वा वाधिं करोति यः । विक्रयं वा क्रिया तत्र पश्चिमा बलवत्तरा' । न्यासं कृत्वाधिं करोति आधिं कृत्वा वा विक्रयं करोति विक्रयपदं स्वत्वध्वंसकत्वात् दानं लक्षयति तत्र परा क्रिया सिद्धेत्यर्थः । एवञ्च विक्रेतदात्रोर्मरणादिना आध्यनुद्वारे विक्रयदानाभ्यां तत्कर्तृतुल्यस्वत्वजननात्तत्र तत्क्रेतप्रतिग्रहौट्भ्यामाध्युद्धारः कार्य इति तत्रैवागमविवादे ताभ्यां तयोर्भोग एव व्यवस्थापनीयो नागमादेरिति । शङ्खलिखितौ । 'न वास्तुविभागो नोदकपात्रालङ्कारोपयुक्तस्त्रीवाससामपां प्रचारः

१७६

दायतत्त्वम् ।

रथ्यानां विभागश्च' इति प्रजापतिरिति यस्मिन् वास्तुनि येन गृहोद्यानादिकं कृतमपरेणापि स्थानान्तरे तथाकृतश्चेत्तदा येन यत् कृतं तत् तस्यैव अन्यत्रापि एवं साधारणधनार्जितेऽपि विशेषमाह व्यासः । 'साधारणं समाश्रित्य यत्किञ्चिद्वाहनायुधम् । शौर्यादिनाप्नोति धनं भ्रातरस्तत्र भागिनः । तस्य भागद्वयं देयं शेषास्तु समभागिनः' । अत्र भ्रातर इत्युपलक्षणं पितृव्यादयोऽपि बोद्धव्याः तस्यार्जकस्य साधारणोपघाते यस्य यावतोऽंशस्याल्पस्य महता वोपघातस्तस्य तदनुसारेण भागकल्पना कार्य्येति दायभागः । न च स्थावरस्य समस्तस्य गोत्रसाधारणस्य च । नैकः कुर्यात् क्रयं दानं परस्परमतं विना । विभक्ता अविभक्ता वा सपिण्डाः स्थावरे समाः । एको ह्यनीशः सर्वत्र दानाधमनविक्रये' । इति व्यासवचनाभ्यामेकस्य दानबन्धकविक्रयाधिकार इति वाच्यं यथेष्टविनियोगार्हत्वरूपस्य स्वत्वस्य द्रव्यान्तर इव अत्राप्यविशेषात् वचनञ्च स्वामित्वेन दुर्हत्तपुरुषगोचरविक्रयादिना कुटुम्बविरोधादधर्मज्ञापनार्थनिषेधरूपं न तु विक्रयाद्यनिष्पत्त्यर्थमिति दायभागः विभक्तानामपि यत्रांशविच्छेदो न जातस्तन्मध्यगत एवावतिष्ठते तेन तत्र साधारणत्वमेव तत्रैकोऽनीशः पृथग्भूतेषु स्वतन्त्रकृतस्य सिद्धिरेवेति विवादचिन्तामणिः । वस्तुतस्तु विभक्तेषु अनुज्ञाग्रहणं विभक्ताविभक्तसौमादिसंशयव्युदासाय ग्रामसामन्ताद्यनुमतिग्रहणवत्तदुक्तं मिताक्षरायाम् । 'स्वग्रामज्ञातिसामन्तदायादानुमतेन च । हिरण्योदकदानेन षड्भिर्गच्छति मेदिनी' इति दायादादौहित्रादयः । ज्ञातेः पृथगुपादानात् हिरण्योदकदानेनेति । 'स्थावरे विक्रयो नास्ति कुर्यादाधिमनुज्ञया' इति स्थावरस्य केवलविक्रयप्रतिषेधात् एवं 'भूमिं यः प्रतिगृह्णाति यश्च भूमिं

दायतत्त्वम् ।

१७७

प्रयच्छति । तावुभौ पुण्यकर्माणी नियतं स्वर्गगामिनौ ।
 इति दानप्रशंसादर्शनाच्च विक्रयेऽपि कर्त्तव्ये सहिरण्यमुदकं
 दत्त्वा दानरूपेण स्थावरविक्रय इति विज्ञानेश्वरः । वस्तु-
 तस्तु स्थावरविक्रयनिषेधोऽविभक्तस्थावरविषयः । तत्रापि यदि
 विक्रयं विनाऽवस्थितिर्न भवति तदा विक्रये कर्त्तव्ये दाया-
 दानां दुरन्ततानिहृत्यर्थं क्रैतुरिच्छया दानमप्युक्तम् अतएव
 हारौतेन यच्चोपकारिणे ददाति इति यत् दानोपसर्गत्वमुक्तं
 तद्वामनोपकारिपरं तदितरोपकारिणे दाने फलमाह दत्तः ।
 'मातापित्रोर्गुरौ मित्रे विनौते चोपकारिणे । दीनानाथ-
 विशिष्टेभ्यो दत्तन्तु सफलं भवेत्' । अतएव नारदः । 'स्व-
 भागान् यदि ते दद्याद्विक्रौणीयुरथापि वा । कुर्य्युयथेष्टं
 तत् सर्वमीशास्ते स्वधनस्य वै' । अतएव याज्ञवल्क्यः । 'क्रमा-
 दभ्यागतं द्रव्यं हृतमभ्युद्धरेत्तु यः । दायादेभ्यो न तदद्यात्
 विद्यया लब्धमेव च' । पितृपितामहागतं बलादन्यैर्हृतं
 योऽंश्यन्तराणामनुज्ञया उद्धरति तदंश्यन्तरेभ्यो न दद्यात् ।
 भूमौ तु विशेषयति । शङ्खः । 'पूर्वनष्टाच्च यो भूमिमिक एवो-
 द्दरेच्छमात् । यथाभागं भजन्यन्ये दत्त्वांशन्तु तुरीयकम्' । एत-
 द्दचनं स्मृतिसमहाणैवकामधेनुपारिजातप्रभृतिषु अलिखनाद-
 युक्तमेवेति रत्नाकरः । तन्न दायभागमिताक्षराप्रभृतिष्टतत्वात्
 पूर्वपुरुषाजितनष्टोद्दारे विशेषयति मिताक्षरायाम् । 'स्थावरं
 द्विपदञ्चैव यद्यपि स्वयमर्जितम् । असम्भूय सुतान् सर्वान् न
 दानं न च विक्रयः । ये जाता येऽप्यजाता वा ये च गर्भे
 व्यवस्थिताः । वृत्तिन्तेऽपि हि काङ्क्षन्ति वृत्तिलोपो विगर्हितः' ।
 अस्यापि अपवादमाह 'एकोऽपि स्थावरे कुर्याद्दानाधमनविक्र-
 यम् । आपत्काले कुटुम्बार्थे धर्मार्थे च विशेषतः' । आधमनं
 बन्धकत्वेन ख्यातम् । कुटुम्बार्थं दासकृतस्यापि सिद्धिमाह

१७८

दीयतस्वम् ।

मनुः । 'कुटुम्बार्थेऽप्यधीनीऽपि व्यवहारं यमाचरेत् । स्वदेशे वा विदेशे वा तं ज्ञायान्न विचालयेत्' । तद्देशस्थे देशान्तरस्थे वा स्वामिनि कुटुम्बव्यवहारनिमित्तकं दासोऽपि यदृणादिकं कुर्यात् तत्स्वाम्यनुमन्येतेति कुल्लूकभट्टः । व्यक्तमाह बृहस्पतिः । 'पितृव्यभ्रातृपुत्रस्त्रीदासशिष्यानुजीविभिः । यद्गृहीतं कुटुम्बार्थं तद्गृही दातुमर्हति' । मनुः । 'ग्रहीता यदि नष्टः स्यात् कुटुम्बार्थं कृतव्ययः । दातव्यं बान्धवैस्तु स्यात् प्रविभक्तैरपि स्वतः' । स्वतः स्वधनात् । कात्यायनः 'कुटुम्बार्थमशक्ते तु गृहीतं व्याधितेऽथवा । उपपन्ननिमित्तन्तु विद्यादापत्कृतन्तु तत् । कन्यावैवाहिकञ्चैव प्रेतकार्ये च यत् कृतम् । एतत् सर्वं प्रदातव्यं कुटुम्बेन कृतं प्रभोः' । कुटुम्बमवश्यं भरणीयम् । प्रभोरिति कर्त्तरि षष्ठी तेन प्रभुणा दातव्यमिति रत्नाकरः । दायभागे हारीतः 'जीवति पितरि पुत्राणामर्थादानविसर्गाक्षेपेषु न स्वातन्त्र्यं कामं दीने प्रेषिते आर्त्तिं गते वा ज्येष्ठोऽर्थाश्चिन्तयेत्' । सुव्यक्तमाह तुः शङ्खलिखितौ । 'पितर्यशक्ते कुटुम्बव्यवहारान् ज्येष्ठः प्रतिकुर्यादनन्तरो वा कार्यज्ञस्तदनुमतो नत्वकामे पितरि ऋक्थविभागो बृहत् विपरीतचेतसि दीर्घरोगिणि वा ज्येष्ठ एव पित्रवदर्थान् पालयेत् इतरेषां ऋक्थमूलं हि कुटुम्बमस्वतन्त्राः पित्रमन्तो मातुरप्येवमवस्थितायाः' । एतद्वचनद्वयं कार्यार्त्तमे दीर्घरोगिणि च पितरि विभागं निषिद्धैव ज्येष्ठो गृहं चिन्तयेत् तदनुजो वा कार्यज्ञ इत्याह अनुमतिस्वप्रतिषेधादपि भवति । 'स्वं द्रव्यं दीयमानञ्च यः स्वामी न निवारयेत् । ऋत्विग्भिर्वापरैर्वापि दत्तं तेनेव तदभृगुः' इति प्रायश्चित्तविवेकधृतकात्यायनवचनात् अतएव परमतमप्रतिसिद्धमनुमतं भवतीति न्यायविदः एवं दत्तानिवारणत्वात् सिद्धिरिति ।

दायतत्त्वम् ।

१७८

अथ वृत्तविभागसन्देहनिर्णयः । शङ्कः । 'गोत्रभागविभागार्थे सन्देहे समुपस्थिते । गोत्रजैश्चापरिज्ञाते कुलं साक्षित्वमर्हति' । गोत्रभागविभागार्थे सन्देह इति गोत्रलब्धविभजनोय विभजनविषयके वृत्तविभागवैपरौत्यसन्देहे विभागकरणसन्देहे च कुलं बन्धुः एषामभाव एव अन्यसाक्षी तल्लेख्यमाह वृहस्पतिः । 'भ्रातरः संविभक्ता ये स्वरूपा तु परस्परम् । विभागपत्रं कुर्वन्ति भागलेख्यं तदुच्यते' । व्यवहारमादकायां वृहस्पतिः । 'यद्येकशासने ग्रामक्षेत्रारामाश्च लेखिताः । एकदेशोपभोगेऽपि सर्वे भुक्ता भवन्ति ते' । शासनं पत्रादि तदेकदेशस्यानुपभोगे तु सर्वस्य क्रीतादेर्हानिर्यथा स एव । 'संविभागक्रयप्राप्तं पितॄं लब्धञ्च राजतः । स्थावरं सिद्धिमाप्नोति भुक्त्या हानिसुपेक्षया' । प्राप्तमात्रं येन भुक्तं स्वीकृत्या परिपण्यतम् । 'तस्य तत्सिद्धिमाप्नोति हानिचोपेक्षया तथा' । संविभागक्रयादिलब्धस्यैव सति भोगे सिद्धिः तद्भोगोपेक्षया हानिरिति । नारदः । 'दानग्रहणपञ्चगृहक्षेत्रपरिग्रहाः । विभक्तानां पृथक् ज्ञेयाः पाकधर्मागमव्ययाः । साक्षित्वं प्रातिभाव्यञ्च दानं ग्रहणमेव च । विभक्ता भ्रातरः कुर्युर्नाविभक्ताः परस्परम् । येषामेताः क्रिया लोके प्रवर्तन्ते स ऋक्थतः । विभक्तानवगच्छेयुर्लेख्यमप्यन्तरेण तान्' । अतएव याज्ञवल्करः । 'भ्रातृणामथ दम्पत्योः पितुः पुत्रस्य चैव हि । प्रातिभाव्यमृणं साध्यमविभक्तेन तत् स्मृतम्' । परस्परमिति शेषः यद्यपि जायापत्योर्विभागो न विद्यते तथा 'पुण्यापुण्यफलेषु च इत्यापस्तम्बोक्तेर्विभागाभावः' । पद्मरश्मिकरणेऽपि जीवत् प्रतिधनमात्रे स्वत्वं युक्तञ्च । दम्पत्योर्मध्यगं धनमित्युक्तम् इति श्राद्धविवेकः । मध्यगमुभयस्वामिकमित्यर्थः । तथापि 'यदि कुर्यात् समानांशान् पद्मः कार्य्याः समांशिकाः' इति

१८०

दायतत्त्वम् ।

याज्ञवल्क्येन पुत्रविभागकरणे प्रवृत्तस्याऽपुत्रपत्न्या अपि विभागावगतेस्तदभिप्रायेण दम्पत्योरित्युक्तम् । यत्तु 'भार्या-पुत्रश्च दासश्च त्रय एवाधनाः स्मृताः' । इत्यत्र अधनत्वश्रुतेराप-स्तम्बौयविभागाभिधानं वैदिककर्ममात्रे सहकारित्वेनाधिकारार्थमिति । तन्न तद्वचनोत्तराद्धे 'यत्ते समधिगच्छन्ति यस्यैते तस्य तद्धनम्' इत्यनेन स्वार्जितस्यैव पत्न्यादीनां पत्या-द्यनुमतिमन्तरेण अस्वातन्त्र्याप्रतिपादनात् । आपस्तम्बवचने तथा 'पुण्यापुण्यफलेषु च' इति पृथगुपादानाच्च तस्माद्विभागो न विद्यत इति निषेधस्य प्रवृत्तिपूर्वकत्वादेकस्मिन् धने उभयोः स्वत्वं ज्ञाप्यते । अन्यथाभयोः स्वत्वाभावेन विभागप्रसक्त्यनुपपत्तेर्निषेधविधिर्न स्यात् । 'एकत्वं सा गता यस्माच्चरु-मन्वाहुतिव्रतैः' इति लघुहारीतोक्तैकत्वस्यैतदपि फलम् ।

अथ चिरप्रोषितागतस्य वंशस्य विभागः । तत्र वृहस्पतिः । गोत्रसाधारणं त्यक्त्वा योऽन्यदेशं समाश्रितः । तद्वंशस्यागत-स्यांशः प्रदातव्यो न संशयः । तृतीयः पञ्चमश्चैव सप्तमो वापि यो भवेत् । जन्मनामपरिज्ञानं लभेतांशं क्रमागतम् । यं परम्परया मौलाः सामन्ताः स्वामिनं विदुः । तदन्वयस्या-गतस्य दातव्या गोत्रजैर्मही । भुक्तिस्त्रैपुरुषौ सिद्धेदपरेषां न संशयः । अनिवृत्ते सपिण्डत्वे सकुल्यानां न सिध्यति । अस्वामिना तु यद्भुक्तं गृहक्षेत्रापणादिकम् । सुहृद्वन्यसकुल्यस्य न तद्भोगे न ह्यौयते । विवाह्योऽत्रिदैर्भुक्तं राज्ञामात्येस्तथैव च । सुदौर्बेणापि कालेन तेषां सिध्यति तत्तु न' । गोत्र-साधारणं द्रव्यमिति शेषः आपणः पण्यवौथिका । अपरेषां गोत्रजादपरेषां विवाह्यो जामाता इति व्यवहाराचन्तामणिः । नारदः । 'अन्यायेनापि यद्भुक्तं पित्रा पूर्वतनैस्त्रिभिः । न तच्छक्यमपाकर्तुं क्रमास्त्रिपुरुषागतम्' । पित्रा पूर्वतनैरित्यत्र

दायतत्त्वम् ।

१८१

पित्रा सह पितरमादाय त्रिभिस्तुर्थः समवाप्नुयादिति वच-
नार्थः । भोगं विशिनष्टि व्यासः । 'पिता पितामहो यस्य
जीवेच्च प्रपितामहः । त्रयाणां जीवतां भोगो विज्ञेयस्त्व-
कपुरुषः' । युगपद्भोगे षष्टिवर्षेऽपि न त्रैपुरुषिकः प्रपिता-
महस्य तत्र स्वातन्त्र्यात् तस्यैव भोगः तदा कोनाम
असावित्याह विज्ञेयस्त्वकपुरुष इति । त्रिपुरुषं विशेषयति
व्यासः । 'प्रपितामहेन यङ्गत्वं तत् पुत्रेण विना च तम् ।
तौ विना यस्य पित्रा च तस्य भोगस्त्रिपौरुषः' । कियन्तं
कालमेकैकस्य भोग इत्यपेक्षायां व्यासः । 'वर्षाणि विंशतिं
भुक्त्वा स्वामिना व्याहृता सती । भुक्तिः सा पौरुषी भूमेर्द्विगुणा
च द्विपौरुषी । त्रिपौरुषी च त्रिगुणा न तत्राऽन्वेष्ट्य आगमः' ।
अत्राव्याहृतेति प्रतिवादिसमक्षं लक्ष्यते षष्टिवर्षभोगस्याप्यने-
नैकवाक्यत्वम् । अतः पुनरपेक्षया स्वत्वनाशाद्बृहत्स्यतिरपि
'आहृता शोधयेत् भुक्तिमागमश्चापि संसदि । तत्सुतो भुक्ति-
मेवैकां पौत्रादिषु न किञ्चन' । याज्ञवल्क्यः । 'आगमस्तु
कृतो येन सोऽभियुक्तस्तमुद्धरेत् । न तत्सुतस्तत्सुतो वा भुक्ति-
स्तत्र गरीयसी' । भुक्तिशोधनमाह कात्यायनः 'आगमो दीर्घ-
कालश्च निष्क्रिद्रोऽन्यरवोज्झितः । प्रत्यर्थिसन्निधानञ्च पश्चाज्ज्ञो
भोग इत्यते' ।

अथ विभागकाले निष्कृतस्य पश्चादवगतस्य विभागः ।
तत्र कात्यायनः । 'प्रच्छादितन्तु यद् येन पुनरागत्य तत्समम् ।
भजेरन् भ्रातृभिः सार्द्धमभावे तु पितुः सुताः । अन्योन्याप-
हृतं द्रव्यं दुर्विभक्तञ्च यङ्गवेत् । पश्चात् प्राप्तं विभज्येत सम-
भागेन तद्गुः' । पश्चात्प्राप्तमित्युपादानात् विभक्ते सति
लौकिकप्रमाणेन यस्य कस्यचिन्निष्कृतस्य प्रदर्शनं विनापि न
पुनर्विभागो न वा तत्र दिव्यं विना कश्चिदप्यनिश्चितद्रव्यत्वेन

१८२

दायतत्त्वम् ।

सम्यग्विभागो न स्यात् । दुर्विभक्तमिति असम्यग्विभागस्य पुनर्विभागं दर्शयति । 'सक्तदंशो निपतति सक्तत् कन्या प्रदीयते । सक्तदाह ददानीति त्रीण्येतानि सतां सक्तत्' । इति मनुनारदकात्यायनद्वहस्यतिवचनेऽपि स्वेच्छापदोपादानं सम्यग्विभागविषयम् । 'येनांशो यादृशो भुक्तस्तस्य तन्न विचालयेत् । स्वेच्छाकृतविभागो यः पुनरेव विसंवदेत् । स राज्ञांशे स्वके स्थाप्यः शासनौयोऽनुबन्धकत्' इति रत्नाकरधृत-द्वहस्यतिवचनेऽपि स्वेच्छाकृतपदोपादानात् स्वारसिकन्यूनाधिकपरं न तु भ्रान्त्वादिकृतदुर्विभागपरम् । यथात् प्राप्तमित्यनेन तन्मात्रस्यैव विभागो न पूर्वविभक्तं विभजनीयमित्यवगम्यते । समभागेनेति अपहर्तुरपहर्तृतया भागो न देयोऽल्पो वा देय इति निरासार्थं भृगुराहेति शेषः वाक्यार्थकर्मता च अविभक्तत्वादेव विभागे प्राप्ते वचनारम्भस्यौचित्यदोषाभावं ज्ञापयतीति विश्वरूपहलायुधप्रभृतयः स्तेयधात्वर्थानिष्पत्तिरित्यभिप्रायः । तथाहि 'यत् परद्रव्यहरणं स्तेयं तत् परिकीर्तितम्' इति कात्यायनवचने परशब्दादात्म्यत्वव्यवच्छेदेनैव परकीयत्वस्यावगमात् । यथा मुद्रापचारे प्रतिनिधित्वेन माषप्राप्त इव अयन्निया वै माषा इति माषा निषिद्धाः । तत्र माषमात्रारम्भकमिश्रितानां निषेधो न तु माषमुद्रोभयारम्भकमिश्रितानां तथात्रापि परमात्रद्रव्यस्यापहार एव स्तेयं न तु सपरसाधारणस्याविभक्तदायस्य भोगादिनेति साधारणासाधारणयोश्च असाधारणस्यैव शौघप्रतीतिरिति । अतएव परकीयत्वेन विशेषतो जानतस्तदपहारे स्तेयं न तु स्वद्रव्यभ्रमेण परद्रव्यव्यवहर्तुरपीति जिनेन्द्रदायभागप्रायश्चित्तविवेककृष्णतम् । तत्र स्त्रीयवृद्धा परकीयापहारे यदस्तेयत्वमुक्तं तन्न सप्तौचीनं भागवतीयनृगोपाख्यानविरोधात् तथाहि 'कस्य-

दायतत्त्वम् ।

१८३

चिह्नजमुख्यस्य भ्रष्टा गौर्मम गोधने । संपृक्ताऽविदुषा सा च
मया दत्ता हिजातये । तां नीयमानां तत्स्वामी दृष्ट्वा च
ममेति च । ममेयं प्रतिगृह्णाह नृगो मे दत्तवानिति । विप्रौ
विवदमानौ मामूचतुः सार्थसाधकौ । भगवान् दातापहर्ता
च तच्छ्रुत्वा मेऽभवद्भ्रमः । तत्पापात् क्लकलाशत्वं प्राप्तिश्च मे
यथाभवत् । तावदद्राक्षमात्मानं क्लकलाशतनुं प्रभो' इति ।
यत्तु अनेकेषामङ्गुरीयकसमुदये सदृशतया आत्मीयाङ्गुरीयक-
भ्रमेण परकीयाङ्गुरीयकविक्रये न स्तेयत्वं तदविशेषचिह्नित-
द्रव्याणां कपर्दकादीनां नानास्वामिकानामेकत्र स्थापनदशाया-
मेव परस्परद्रव्यविनिमयादेव परस्परविनियोगे दोषाभाव
इत्यवगत्य एकत्र स्थापनात् अन्यथा दोषशङ्कया न तथा
कुर्व्यादिति एतद्विषये । मत्स्यपुराणम् । 'अज्ञानाद् यः पुमान्
कुर्व्यात् परद्रव्यस्य विक्रयम् । स निर्दोषोऽज्ञानपूर्वं चौर-
वदण्डमर्हति' इति एतदज्ञानकृतदण्डाभाव परमिति । तेन
परमात्रस्वत्वावच्छिन्नद्रव्ये परमाणुमतिमन्तरेण ममेदं यथेष्ट-
विनियोज्यमिति कृत्वा व्यवहारः स्तेयम् । स च कचिन्मानसः
सङ्कल्परूपः क्वचित् कारयिको दानविक्रयादिलक्षणः तस्य
च अविभक्तभ्रात्रादिधनेषु सम्भवः । इदं परकीयमेव इदं
ममेवेति विशेषानिश्चयात् । अतएव कात्यायनः । 'बन्धुनाप-
हृतं द्रव्यं बलान्नैव प्रदापयेत् । बन्धूनामविभक्तानां भोगं नैव
प्रदापयेत्' । अत्रापहृतपदं भाक्तं सामादिना प्रदापयितव्यो
न तु बलात् अविभक्तेन यद्यधिकं भुक्तं तदसौ न दाप्यः ।
एवञ्च निधेर्लामेऽपि न दोषो नष्टस्वामिकत्वात् । तथाच
मनुः । 'राजा लब्ध्वा निधिं दद्याद्विजेभ्योऽर्धं द्विजः पुनः ।
विद्वानशेषमादद्यात् स सर्वस्य प्रभुर्यतः । इतरेण निधौ लब्धे
राजा षष्ठांशमाहरेत् । अनिवेदितविज्ञाता दाप्यस्तं दण्ड-

१८४

दायतत्त्वम् ।

मेव च' । सन्धूय वाणिजिकानान्तु नेतादृशं वचनाभावात् प्रत्युत 'जिह्वा' त्यजेयुर्निलाभम्' इति याज्ञवल्कीयेन वक्ष्यकस्य लाभशून्यं कृत्वा त्याग उक्तः दायद्रव्य इव वाणिजिकानामेक-धनेऽनेकेषां स्वत्वाभावाच्च किन्तु मिलनात्तदनिश्चयमात्र-मिति ।

अथ स्त्रीधनम् । तत्र कात्यायनः । 'प्राप्तं शिल्पैस्तु यद्वित्तं प्रीत्या चैव यदन्यतः । भर्तुः स्वाम्यं भवेत्तत्र शेषन्तु स्त्रीधनं स्मृतम्' । अन्यतः पितृमातृभर्तृकुलव्यतिरिक्ताद् यत्नव्यं शिल्पेन वा यदर्जितं तत्र भर्तुः स्वातन्त्र्यं तेन स्त्रिया अपि धनं न स्त्रीधनं अस्वातन्त्र्यात् एतद्व्यातिरिक्तधने स्वत्वं स्त्रिया एव दानाद्यधिकारात् । मनुविष्णू । 'पत्न्यौ जीवति यः कश्चिदलङ्कारी हृतो भवेत् । न तं भजेरन् दायादा भज-मानाः पतन्ति ते' । पत्युरदत्तेऽपि तदनुज्ञया परिहितो अलङ्कारस्तावतैव भार्यायाः स्त्रीयो भवतीति मेधातिथिः । कात्यायनः । 'ऊदया कन्यया वापि पत्युः पितृगृहेऽथवा । भर्तुः सकाशात् पित्रोर्वा लब्धं सौदायिकं स्मृतम् । सौदायिकं धनं प्राप्य स्त्रीणां स्वातन्त्र्यमिष्यते । यस्मात्तदानृशंस्यार्थं तैर्दत्तं तत्प्रजीवनम् । सौदायिके सदा स्त्रीणां स्वातन्त्र्यं परिकीर्तितम् । विक्रये चैव दाने च यथेष्टं स्थावरेष्वपि' । सुदायेभ्यः पितृमातृभर्तृकुलसम्बन्धिभ्यो लब्धं सौदायिकम् आनृशंस्यमनैष्ठ्यम् । नारदः । 'भर्ता प्रीतेन यद्वित्तं स्त्रियै तस्मिन्मृतेऽपि तत् । सा यथाकाममश्नीयाद्दद्याद्वा स्थावरा-दृते' । भर्तृदत्तविशेषणात् भर्तृदत्तस्थावरादृतेऽन्यस्थावरं देयमेव अन्यथा यथेष्टं स्थावरेष्वपीति कात्यायनोक्तं विरुद्धते । कल्पतरुरद्वाकरयोः कात्यायनः । 'अपकारक्रियायुक्ता निर्लज्जा चार्थनाशिनी । व्यभिचाररता या च स्त्रीधनं न च सार्हति' ।

दायतत्त्वम् ।

१८५

याज्ञवल्क्यः । 'दुर्भिक्षे धर्मकार्ये वा व्याधौ संप्रतिरोधके ।
 ऋहीतं स्त्रीधनं भर्ता नाकामो दातुमर्हति' । संप्रतिरोधके
 भोजनाद्यवरोधकारिण्युत्तमर्णादिके । अन्यत्र तु । कात्या-
 यनः । 'न भर्ता नैव च सुतो न पिता भ्रातरो न च । आदाने
 वा विसर्गे वा स्त्रीधने प्रभविष्णवः' ।

अथ स्त्रीधनाधिकारिणः । देवलः । 'सामान्यं पुत्र-
 कन्यानां सृतायां स्त्रीधनं विदुः । अप्रजायां हरेर्द्वर्त्ता माता
 भ्राता पितापि वा' । अत्र हन्दिर्देशात् पुत्रकन्ययोस्तुल्याधि-
 कारः अन्यतराभावेऽन्यतरस्य तदनम् एतयोरभावे ऊढाया
 दुहितुः पुत्रवत्त्वाः सम्भावितपुत्रायाश्च तुल्याधिकारः स्वपुत्र-
 हारेण पार्वणे 'सपिण्डीकरणादूर्ध्वं यत् पितृभ्यः प्रदीयते ।
 सर्वेष्वंशहरा माता इति धर्मेषु निश्चयः' । इति शातातपोक्त-
 तद्गोप्यपतिपिण्डदानसम्भवात् । तथाच नारदः । 'पुत्रा-
 भावे तु दुहिता तुल्यसन्तानदर्शनात्' । अतएव एतादृश-
 दुहितृभावे पौत्राधिकारः तदभावे दौहित्राधिकारः 'दौहि-
 त्रोऽपि ह्यमुत्रैनं सन्तारयति पौत्रवत्' इति मनुवचने ।
 दौहित्रे पौत्रधर्मातिदेशात् पुत्रेण परिणीतदुहितुर्वाधादाधक-
 पुत्रेण बाध्यदुहितृपुत्रबाधस्य नाय्यत्वात् एवं तदभावे प्रपौत्रः
 तद्गोप्यपिण्डदातृत्वात् तदभावे बन्ध्याविधवयोर्मातृधनाधि-
 कारः तयोरपि तत्प्रजात्वात् तदभावे तु भर्ता । एवञ्च न
 पितृमातृदत्तधनविषयं तत्र भ्रातुरधिकारात् । तथाच बृह-
 कात्यायनः 'पितृभ्याश्चैव यद्वत्तं दुहितुः स्थावरं धनम् । अप्र-
 जायामतीतायां भ्रातृगामि तु सर्वदा । मातुः परिणयन-
 काललब्धन्तु पुत्रस्त्वत्वेऽपि क्रमेण अनूढोदुहितोरेवाधिकारः
 मातुः पारिणायं स्त्रियो विभजेरन्निति वशिष्ठोक्तेः । स्त्रीधनं
 दुहितृणामप्रत्तानामप्रतिष्ठितानाञ्चेति गीतमवचनेन प्रथम-

१८६

दायतत्त्वम् ।

मप्रत्तानामवाग्दत्तानां तदभावे त्वप्रतिष्ठितानां वाग्दत्तानाम्
 ईषदर्थे नञ् तदभावे चकारसमुच्चितानाम् ऊढानां स्त्रीधनं
 दुहितृणामिति सामान्यतः प्रागुक्तत्वात् अप्रत्तानामित्यादेस्तु ।
 क्रमार्थत्वे नोपसंहारार्थत्वात् । व्यक्तमाह मनुः 'मातुश्च
 यौतुकं यत् स्यात् कुमारौ भाग एव सः' इति यौतुकपदं
 युमिश्रणे इत्यस्मात् मिष्टं मिश्रता च स्त्रीपुंसयोर्विवाहाद्
 भवति । यदेतत् हृदयन्तव तदस्तु हृदयं मम यदिदं हृदयं
 मम तदस्तु हृदयं तवेति मन्त्रलिङ्गात् यौतुकं तदिति वाच-
 स्यतिमिश्रायमुकुटधृतात् यौतुकं यौतुकमपि साधु । परि-
 णयनकालः परिणयनपूर्वापरौभूतकालः स च हृद्विश्राद्धा-
 रम्भपत्यभिवादनान्तो विवाहतत्वे विवृतः । यत्तु मनुवचनं
 'स्त्रियांस्तु यज्ञवेदं वित्तं पित्रा दत्तं कथञ्चन । ब्राह्मणी
 तद्धरेत् कन्या तदपत्यस्य वा भवेत्' इति तत्पित्रा दत्त-
 मिति विशेषणाद्विवाहसमयादन्यदपि पितृदत्तं कन्याया
 एवेत्येतदर्थं ब्राह्मणीपदन्तु कन्यामात्रपरम् । यद्वा क्षत्रि-
 यादिस्त्रीणामनपत्यानां पितृदत्तं धनं सपत्नीदुहिता ब्राह्मणी-
 कन्या हरेत् न पुनरप्रजस्त्रीधनं भर्तुरिति वचनावकाश इति
 वचनार्थः । तदभावे पुत्राधिकारः 'दुहितृणामभावे तु रिक्तं
 पुत्रेषु तद्भवेत्' इति मनुवचनात् एवं पुत्राधिकारात् प्राग्-
 दुहितृधिकारविधायकवचनान्तर्गम्यत्वे तद्विषयकारिण पुत्रा-
 द्यभावे तु ब्राह्मणादिपञ्चकविवाहकालीनं स्त्रीधनं भर्तुः
 आसुरादित्रयविवाहकालीनन्तु मातुस्तदभावे पितुः । यथा
 मनुः । ब्राह्मणदेवार्पणान्धर्षप्राजापत्येषु यज्ञनम् । अतीताया-
 मप्रजायां भर्तुरेव तदिष्यते । यत्तस्याः स्याज्जनं दत्तं विवाहे-
 स्वासुरादिषु । अतीतायामप्रजायां मातापित्रोस्तदिष्यते ।
 कन्याधनाधिकारे क्रममाह बौधायनः । 'रिक्तं मृतायाः

दायतत्त्वम् ।

१८७

कन्याया गृह्णीयुः सोदराः स्वयम् । तदभावे भवेन्मातुस्तद-
भावे भवेत् पितुः । अत्र कृतमदर्शनात् पूर्ववचने मातापित्रो-
रित्यत्र पाठक्रमेणाधिकारो न तु इन्द्रनिर्देशात् समुच्चितेन ।
वृहस्पतिः । 'मातुः स्वसा मातुलानौ पितृव्यस्त्रौ पितृस्वसा ।
श्वश्रूः पूर्वजपत्नी च मातृतुल्या प्रकीर्तिताः । यदासामौरसो
न स्यात् सुतो दौहित्र एव वा । तत्सुतो वा धनं तासां
स्वस्त्रीयाद्याः समाप्नुयुः' । औरसपदं कन्यापुत्रोभयपरं सुत
इति सपत्नीपुत्रपरम् । 'सर्वासामेकपत्नीनामेका चेत् पुत्रिणी
भवेत् । सर्वास्तास्तेन पुत्रेण प्राह पुत्रवतीर्मनुः' इति मनु-
स्मृतेः । एकपत्नीनामिति एकः पतिर्यासां ताः न तु सुत-
पदमौरसविशेषणं वैयर्थ्यात् सपत्नीपुत्रसङ्गावे स्वस्त्रीयाद्यधि-
कारापत्तेश्च तत्सुत इति पौत्रसपत्नीपौत्रपरं न तु दौहित्र-
पुत्रपरं तस्य स्वभोग्यभर्तृपिण्डदानानधिकारात् अत्र प्रागु-
क्तानुसारात् दौहित्रपर्यन्तानन्तरमेव सपत्नीपुत्रतत्पुत्रयो-
रधिकारः न तु प्रागुक्तभर्तादिपितृपर्यन्ताभावेऽपीति वाच्यं
भर्तादीनां धनिभोग्यपार्वणपिण्डदानानधिकारात् तस्मादे-
तेषां सपत्नीपौत्रान्तानां तत्सुतो वेति वा शब्दसमुच्चिता-
नाम् । 'सामान्यं पुत्रकन्यानां नृतायां स्त्रीधनं विदुः ।
अप्रजायां हरेद्भर्ता माता भ्राता पितापि वा' इति देव-
लोक्तानां भर्तादिपितृपर्यन्तानाञ्च अभाव एव सत्स्वपि श्वशुर-
भ्रातृश्वशुरादिषु स्वस्त्रीयाद्या इत्यनेन भगिनीसुतभर्तृभागि-
नेय-भर्तृज्येष्ठकनिष्ठोभयरूपभ्रातृसुतस्वभ्रातृपुत्र-जामातृदेव-
राणां मातृस्वसादिधनेऽधिकारः अनन्यगतेर्वचनात् । अत्र
'त्रयाणामुदकं कार्यं त्रिषु पिण्डः प्रवर्तते । चतुर्थः संप्रदा-
तेषां पञ्चमो नोपपद्यते' इति दायभागप्रकरणीयमनुस्मृतेः
'पिण्डदोऽंशहरः' इति याज्ञवल्कीयात् 'मातृतुल्याः प्रकी-

१८८

दायतत्त्वम् ।

र्त्तिताः' इत्यनेन स्वस्रीययादीनां पुत्रत्वज्ञापनेन पिण्डदत्तसूच-
नस्य दायभागप्रकरणे उपकारतारतम्येन धनाधिकारक्रम-
ज्ञापनेनैकप्रयोजनकत्वात् । 'मातुलो भागिनेयस्य स्वस्रीयो
मातुलस्य च । श्वशुरस्य गुरोश्चैव सख्युर्मातामहस्य च ।
एतेषाञ्चैव भार्याभ्यः स्वसुर्मातुः पितुस्तथा । पिण्डदानन्तु
कर्त्तव्यमिति वेदविदां स्थितिः' इति शातातपवचनात् पिण्ड-
दानविशेषेणैव षष्ठांशमधिकारक्रमः प्रतिपत्तव्यः पाठ-
क्रमादर्थक्रमस्य बलवत्त्वात् अन्यथा सर्वशेषे देवराधिकारे
महाजनविरोधः स्यात् । तत्र प्रथमं देवरस्तत्पिण्डतद्भर्त्तृपिण्ड-
तद्भर्त्तृदेयपुरुषद्वयपिण्डदत्त्वात् सपिण्डत्वाच्च भ्रातृस्त्रीधने-
ऽधिकारी तदभावे भ्रातृश्वशुरदेवरयोः सुती तत्पिण्डतद्भर्त्तृ-
पिण्डतद्भर्त्तृदेयपुरुषद्वयपिण्डदत्त्वात् सपिण्डत्वाच्च तयोरभावे
तु असपिण्डोऽपि भगिनौपुत्रस्तत्पिण्डतत्पुत्रदेयतत्पुत्रादि-
पिण्डव्ययदत्त्वात्तदभावे भर्त्तृभागिनेयः पुत्राद्भर्त्तृदुर्बलत्वेन तत्-
स्थानपातिनोरपि भगिनौपुत्रभर्त्तृभागिनेययोस्तथैव बला-
बलस्य न्याय्यत्वेन तद्भर्त्तृदेयपुरुषद्वयपिण्डदत्त्वात् तत्पिण्ड-
दत्त्वात् तद्भर्त्तृपिण्डदत्त्वाच्च मातुलानी धनेऽधिकारी तदभावे
भ्रातृपुत्रः तत्पिण्डतत्पुत्रदेयतत्पुत्रादिपिण्डव्ययदत्त्वात् पितृ-
स्वसुर्धनेऽधिकारी तदभावे श्वशुरयोः पिण्डदानाज्जामाता
श्वश्रूधनेऽधिकारीति क्रमः स्वस्रीययाद्या इति तु अधिकारि-
मात्रपरं न पाठिकक्रमपरम् एषां षष्ठां प्रातिस्विकोक्तानाम-
भावे सपिण्डानन्तर्येण श्वशुरादिवदधिकारी न च सपिण्डा-
भावे मातृस्वसेति वचनं वाच्यम् अस्मिन्नधिकारिगणे देवर-
तत्सुतभ्रातृश्वशुरसुतानामधिकारज्ञापनादासन्नतरश्वशुरभ्रातृ-
श्वशुरादेः परित्यागादिति ।

अथ अपुत्रधनाधिकारिणः । याज्ञवल्क्यः । 'पत्नी दुहि-

दायतत्त्वम् ।

१८९

तरस्यैव पितरौ भ्रातरस्तथा । तत्सुतो गोत्रजो बन्धुः शिष्यः
 सन्नह्यचारिणः । एषामभावे पूर्वस्य धनभागुत्तरोत्तरः ।
 स्वर्थातस्य ह्यपुत्रस्य सर्ववर्णेष्वयं विधिः । तथा विष्णुः ।
 'अपुत्रस्य धनं पत्न्याभिगामि तदभावे दुहितृगामि तदभावे
 दौहित्रगामि तदभावे पित्रगामि तदभावे मातृगामि तद-
 भावे भ्रातृगामि तदभावे भ्रातृपुत्रगामि तदभावे सकुल्य-
 गामि तदभावे बन्धुगामि तदभावे शिष्यगामि तदभावे
 सहाध्यायिगामि तदभावे ब्राह्मणधनवर्जं राजगामि' इति ।
 अत्र अपुत्रपदं पुत्रपौत्रप्रपौत्राभावपरं तेषां पार्वणपिण्डदा-
 त्वाविशेषात् अतएव बौधायनवचनैः पुत्रपौत्रप्रपौत्रानुपक्रम्य
 'सत्स्वङ्गजेषु तन्नामौ ह्यर्थो भवति' इत्युक्तं तदुच्यते प्रपिता-
 महः पितामहः पिता स्वयं सोदर्या भ्रातरः सवर्णायाः पुत्रः
 पौत्रः प्रपौत्र एतानविभक्तदायादान् सपिण्डानाचक्षते
 विभक्तदायादान् सकुल्यानाचक्षते सत्स्वङ्गजेषु तन्नामौ ह्यर्थो
 भवतीति । अस्यार्थः पित्रादिपिण्डत्रयेषु सपिण्डनेन भोक्तृ-
 त्वात् पुत्रादिभिस्त्रिभिस्तत्पिण्डस्यैव दानात् यस्य जीवन्
 यत् पिण्डदाता स मृतः सन् सपिण्डनेन तत् पिण्डभोक्ता
 एवं मध्यस्थितः पुरुषः पूर्वेषां जीवन् पिण्डदाता मृतश्च तत्
 पिण्डभोक्ता परेषां जीवतां पिण्डसम्प्रदानभूत आसीत्
 मृतैश्च तैः सह दौहित्रादिदेयपिण्डभोक्ता अतो येषामयं
 पिण्डदाता ये वा तत्पिण्डदातारस्ते अविभक्तं पिण्डरूपं
 दायमश्नन्तीति अविभक्तदायादाः सपिण्डाः पञ्चमस्य पूर्वस्य
 मध्यमः पञ्चमो न पिण्डदाता न च तत्पिण्डभोक्ता एवमध-
 स्तनोऽपि पञ्चमो न मध्यमस्य पिण्डदाता नापि तत्पिण्डभोक्ता
 तेन वृद्धप्रपितामहात् प्रभृतिवयः पूर्वपुरुषाः प्रतिनमृतः
 प्रभृत्यधस्तनास्त्रयः पुरुषा एकपिण्डभोक्तृत्वाभावाद्भिभक्त-

१६०

दायतत्त्वम् ।

दायादाः सकुल्या इत्याचक्षते । इदं सपिण्डत्वं सकुल्यत्वञ्च
 दायग्रहणार्थमित्युक्तम् अशौचविवाहादयर्थञ्च पिण्डलेपभुजा-
 मपौति विवृतं शुद्धितत्त्वे । पुत्रादिविभागक्रमं व्यक्तमाह
 रत्नाकरधृतकात्यायनः । 'अविभक्ते मृते पुत्रे तत्सुतं रिक्त्य-
 भागिनम् । कुर्वीत जीवनं येन लब्धं नैव पितामहात् ।
 लभेतांशं स पितृन्तु पितृव्यान्तस्य वा सुतात् । स एवांशस्तु
 सर्वेषां भ्रातृणां न्यायतो भवेत् । लभेत तत्सुतो वापि
 निवृत्तिः परतो भवेत्' । जीवनं जीवनोचितद्रव्यं यदा
 भ्रातृणां कश्चिदेको न विद्यते तदा तत्सुतस्य पितृंशो दातव्यः
 यदा विपन्नस्याप्यनेकपुत्रास्तदा एकः पितृंशस्तेषां विभज्य
 दातव्यः एवं तत्सुतोऽप्यंशं लभेत तत्सुतस्य भागो निवर्त्तत
 इत्यर्थः । एतच्च सहवासविषयम् । यथा देवलः । अवि-
 भक्तविभक्तानां कुल्यानां वसतां सह । भूयो दायविभागः
 स्यादाचतुर्थादिति स्थितिः । अविभक्तानां सहवसतां संसृ-
 ष्टानां वा पुनर्धिभागो भ्रातृतत्सुततत्सुतपर्यन्तमेव तत्-
 सुताञ्चतुर्थादिवर्त्तते इति प्रागुक्तसप्तमपुरुषपर्यन्तं विभाग-
 दानन्तु भिन्नदेशादागतानामिति न विरोधः तेन प्रपौत्र-
 पर्यन्तानामभावे पत्नी धनाधिकारिणी । यथा कात्यायनः ।
 'भर्तृदायं मृते पत्नी विन्यसेत् स्त्री यथेष्टतः । विद्यमाने तु
 संरञ्जेत् क्षपयेत्तत्कुलेऽन्यथा । अपुत्रा शयनं भर्तुः पालयन्ती
 व्रते स्थिता । भुञ्जीतामरणात् क्षान्ता दायादा ऊर्द्धमाप्नुयुः' ।
 यथेष्ट इति धर्मार्थम् । तथाच व्यासः । 'लोकान्तरस्थं
 भर्तारमात्मानञ्च वरानने । तारयत्युभयं नारी नित्यं धर्म-
 परायणा' मदनपारिजातधृता स्मृतिः । 'यद् यदिष्टतमं लोके
 यद् यत् पत्युः समौहितम् । तत्तद्गुणवते देयं पतिप्रौणन-
 काम्यया' । भर्तुः शयनं पालयन्ती नान्यगामिनी । अतएव

दायतत्त्वम् ।

१८१

हरिवंशीयपुण्यकत्रतोपाख्याने 'दानोपवासपुण्यानि मुक्तता-
 न्यप्यरुन्धति । निष्फलान्यसतीनां हि पुण्यकानि तथाशुभे' ।
 तथा बृहन्ननुः । 'अपुत्रा शयनं भर्तुः पालयन्ती व्रते स्थिता ।
 पत्न्येव दद्यात् तत्पिण्डं कृत्स्नमंशं लभेत च' । तत्पिण्ड-
 मित्यत्र तदित्यनुषज्यते तच्छब्देन भर्तुः परामर्शाद्भर्तुः कृत्स्न-
 मंशं यावदंशं हरेत् न तु वर्त्तनजीवनोचितमात्रं पत्नी सवर्णा
 ज्येष्ठापत्नीत्यभिधानात् । ज्येष्ठत्वमाह मनुः । 'यदि स्वास्य
 परास्येव विन्देरन् योषितो द्विजाः । तासां वर्णक्रमेणैव ज्यैष्ठं
 पूजा च वैश्वं च' । तदन्यस्या भार्यायाः पोषणमात्रमाह
 नारदः । 'भ्रातृणामप्रजः प्रेयात् कश्चिच्चेत् प्रव्रजेच्च वा ।
 विभजेरन् धनं तस्य शेषास्ते स्त्रीधनं विना । भरणञ्चास्य
 कुर्वीरन् स्त्रीणामाजीवनक्षयात् । रक्षन्ति शय्यां भर्तुश्चेदा-
 ष्चिन्द्युरितरासु च' । प्रेयात् म्रियेत एवं पत्नीभार्याभेदात् ।
 'ततो दायमपुत्रस्य विभजेरन् सहोदराः । तुल्या दुहितरो
 वापि ध्रियमाणः पितापि वा । सवर्णा भ्रातरो माता भार्या
 चैव यथाक्रमम् । तेषामभावे गृह्णीयुः कुल्यानां सहवासिनः'
 इत्यादिवचनानि व्यवस्थेयानि ध्रियमाणो जीवन् । वस्तुतस्तु
 एतदुक्तक्रमः सर्वत्र न ग्राह्यः उपकारतारतम्यमूलकवक्ष्यमाण-
 वचनविरोधात् । अतएव अत्र क्रमानास्यासूचकमपि वापी-
 त्युक्तं पत्न्यभावे दुहितरः अत्र बहुवचनात् कन्योदादौहित्राणां
 परिग्रहः तत्र कन्योदयोस्तु 'अपुत्रस्य मृतस्य कुमारी ऋक्थं
 गृह्णीयात् तदभावे चोदा' इति पराशरवचनात् क्रमः तद-
 भावे दौहित्रः 'पौत्रदौहित्रयोर्लोके विशेषो नास्ति धर्मतः ।
 तयोर्हि मातापितरौ सम्भूतौ तस्य देहतः' इति मनुवचने
 पौत्रतुल्यत्वाभिधानेन यथा पुत्राभावे पौत्रः तथा दुहित्रभावे
 दौहित्रः अतएव गोविन्दराजधृतो विष्णुः । 'अपुत्रपौत्रे

१८२

दायतत्त्वम् ।

संसारे दौहित्रा धनमाप्नुयुः । पूर्वेषां हि स्त्रधाकारे पौत्र-
 दौहित्रकाः समाः । दौहित्राभावे पितरौ तत्र प्रथमं पिता
 ततो माता पूर्वोक्तविष्णुस्मृतेः । तदभावे भ्रातरः अत्रापि
 बहुवचनं सोदरासोदरसंसृष्टत्वभेदेनाधिकारिभेदार्थम् अतएव
 एकपितृजातयोरपि सोदरविमातृजयोर्भूतदेयषट्पुरुषपिण्ड-
 दातृत्वेन सोदरस्यैव धनाधिकारी न तु पित्रादित्रयमात्र-
 पिण्डदातृविमातृजस्य क्वचित्तु संसृष्टत्वेन विमातृजस्याप्य-
 संसृष्टसोदरेण सह तुल्याधिकारिता सोदरस्य संसृष्टत्वेन स एव
 गृह्णीयात् संसृष्टपि विमातृज इति । तथाच याज्ञवल्क्यः ।
 'संसृष्टिनस्तु संसृष्टौ सोदरस्य तु सोदरः । दद्याच्चापहरेदंशं
 जातस्य च स्मृतस्य च । अन्योदर्थ्यस्तु संसृष्टौ नान्योदर्थ्यो-
 धनं हरेत् । असंसृष्टपि चादद्यात् संसृष्टौ नान्यमातृजः' ।
 संसृष्टिनमाह बृहस्पतिः । 'विभक्तो यः पुनः पित्वा भ्रात्रा
 चैकत्र संस्थितः । पितृव्येणाथवा प्रीत्या स तु संसृष्ट उच्यते' ।
 तेन विभागानन्तरं मैत्र्यात् पितृभ्रातृपितृव्यभातृपुत्राणां यथा-
 यथमेकत्रावस्थानं संसर्गः तदयुक्तः संसर्गी एवभूतस्य संसर्गिणो
 स्मृतस्य धनं तज्जातस्यापत्यस्य तदपत्याभावे संसर्गी स्वयं गृह्णी-
 यात् एवं सोदरस्य तु सोदरः । अत्र विशेषयति यमः । 'अवि-
 भक्तं स्थावरं यत् सर्वेषामेव तद्भवेत् । विभक्तं स्थावरं प्राप्तं
 नान्योदर्थ्यैः कदाचन' । सर्वेषां सोदरासोदराणां स्थावराति-
 रिक्तान्तु विभक्ताविभक्तं सोदराणामेवेत्यर्थतः सिद्धं तेषां तत्-
 पिण्डदातृत्वेन तन्मातृभोग्यपार्वण्यपिण्डदातृत्वेन चाधि-
 कारात् । व्यक्तमाह मनुः । 'येषां ज्येष्ठः कनिष्ठो वा ह्यीये-
 तांशप्रदानतः । म्रियेतान्यतरो वापि तस्य भागो न लुप्यते' ।
 अंश प्रदानतो विभागात् पूर्वं ह्यीयेत प्रव्रज्यादिनेति शेषः ।
 केषामंशविभाग इत्यत्राह स एव । 'सोदर्थ्या विभजेरस्तु'

दायतत्त्वम् ।

१८३

समेत्य सहिताः समम् । भ्रातरो ये च संसृष्टा भगिन्यश्च
 सनाभयः' । वृहस्पतिः । 'विभक्ता भ्रातरो ये च संप्रौढैकत्र
 संस्थिताः । पुनर्विभागकरणे तेषां ज्येष्ठं न विद्यते । यदि कश्चित्
 प्रमोयेत प्रव्रजेद्वा कथञ्चन । न लुप्यते तस्य भागः सोदरस्य
 विधोयते । या तस्य भगिनी सा तु ततोऽंशं लब्धुमर्हति ।
 अनपत्यस्य धर्मोऽयमभार्या पितृकस्य च । संसृष्टानान्तु यः
 कश्चिद्विद्याशौर्यादिना धनम् । प्राप्नोति तस्य दातव्यो द्व्यंशः
 शेषाः समांशिनः' । अत्र संसृष्टानां ज्येष्ठांशाभावो वर्ण-
 त्रयाणां बोध्यः शूद्रस्य तु सर्वदा ज्येष्ठांशाभावात् । तथाच
 मनुः । 'समवर्णास्तु ये जाताः सर्वे पुत्रा द्विजन्मनाम् । उद्धारं
 ज्यायसे दत्त्वा भजेरन्नितरे समम् । शूद्रस्य तु सर्वर्णेव नान्या
 भार्यापदिश्यते । तस्यां जाताः समांशाः स्युर्यदि पुत्रशतं
 भवेत्' । समांशाः समभागा एव भवेयुर्नोद्धारः कस्यचिद्देय
 इति कुल्लूकभट्टः युक्तञ्चेतत् तथाहि 'ज्येष्ठस्य विंश उद्धारः
 सर्वद्रव्याच्च यद्वरम् । ततोऽर्द्धं मध्यमस्य स्यात्तुरीयन्तु यवी-
 यसः' इति मनुना सामान्यतो ज्येष्ठादीनामुद्धारविधानात्
 द्विजन्मनाम् इत्यस्य वर्णमात्रोपलक्षकत्वशङ्कानिरासायोत्तर-
 वचनोत्तरार्द्धं न च पुत्रामनरकत्राटत्वाविशेषाच्च द्रव्यस्याप्यधि-
 कार इति वाच्यं तदनिस्तारकमध्यमकनीयसोरर्द्धपादोद्धार-
 दर्शनेन तस्याप्रयोजकत्वात् न चोद्दारांशयोर्भेदात् समांशिता-
 भिधानेन पूर्वोक्ता सवर्णाजातविषमांशभाग एव शूद्रस्य निषि-
 द्यते नोद्धार इति वाच्यं शूद्रस्य तु सर्वर्णेवेति पूर्वार्द्धेनैव
 तत्सिद्धिमिति द्विजन्मनामपि उद्धारनिरासाय समांशता मनुना
 विहिता समानं समवर्णास्त्विति वचनमभिधाय 'द्विप्रकारो
 विभागस्तु दायादानां प्रदर्शितः । वयोज्येष्ठक्रमेणैकः परा
 समांशकल्पना' । इति प्रकीर्तित इत्यत्र प्रदर्शित इति

१८४

दायतत्त्वम् ।

ब्रह्मस्यतिः । अत्र भगिन्यधिकारो विवाहोचितद्रव्यलाभाय
 सुनिभिः संग्रहकृद्भिस्तथोक्तत्वात् अभार्यापितृकस्येत्यत्र पितृ-
 पदमेकशेषात् पितृमातृपरं मातुरभावे भ्रातृधिकारस्य
 विष्णुादिभिरुक्तत्वात् ततश्च संसृष्टिस्तु संसृष्टीत्येतद्वचनं
 तुल्यरूपसम्बन्धिसमवाये संसर्गकृतविशेषप्रतिपत्त्यर्थं तेन सोद-
 राणां सापत्नानां भ्रातृपुत्राणां पितृव्याणां तुल्यानां सद्भावे
 संसर्गी गृह्णीयात् वाक्यादविशेषश्रुतेः पूर्ववचने सर्वेषामेव
 प्रकृतत्वात् सर्वेषु चाक्षेपासम्भवात् अतो न भ्रातृमातृविषय-
 मिदं वचनमिति जीमूतवाहनः । सोदरे त्वसंसृष्टिनि संसृ-
 ष्टिन्यसोदरे च सति कतरस्तावद् गृह्णीयात् एवं सोदरासोद-
 रयोः संसृष्टयोः सद्भावे कतर इत्यत्र प्रथमतः आह अन्योदर्थ-
 स्त्विति अन्योदर्थः पुनः संसृष्टी सन् गृह्णीयात् नान्योदर्थ-
 मात्रः किन्तु असंसृष्ट्यपि पूर्व वचनस्यसोदरपदानुषङ्गात् प्राप्तः
 सोदरश्च गृह्णीयात् तेनैकत्र विषये पूर्ववचनोक्तसंसृष्टत्वसोदर-
 त्वयोरेकशः सम्बन्धेन तुल्यत्वादुभयोर्विभज्य ग्रहणं तदुभयसत्त्वे
 चासोदर्थस्यासंसृष्टिनोऽतुल्यरूपत्वान्नेति द्वितीये आह संसृष्टो-
 नान्यमातृज इति सोदरे संसृष्टिनि सति अन्यमातृजःसंसृष्ट्यपि
 न गृह्णीयात् अर्थात्तत्र संसृष्टी सोदर एव गृह्णीयात् संसृ-
 ष्टत्वाविशेषेऽपि सोदरत्वेन तस्यैव बलवत्त्वात् । दायभाग-
 कारस्तु अन्योदर्थस्तु संसृष्टी सन् सत्यपि सोदरेऽसंसृष्टिनि
 धनं हरेत् नान्योदर्थः संसृष्ट्यपि गृह्णीयादिति पूर्वाह्नस्यार्थः ।
 तत्र किं सोदरस्तदानीं न गृह्णीयादेवेत्यपेक्षायामुत्तरार्द्धनोक्तम्
 असंसृष्ट्यपि च आदद्यात् सोदर इत्यनुषज्यते न संसृष्टोऽन्य-
 मातृजः केवलः किन्तु उभाभ्यामेव विभज्य गृहीतव्य-
 मित्याहुः । मितान्तरादयोऽप्येवम् । यान्नवल्कादीपकलि-
 कायां शूलपाणिमहामहोपाध्यायास्तु 'अन्योदर्थस्तु संसृष्टी

दायतत्त्वम् ।

१८५

नान्योदर्योधनं हरेत्' । असंसृष्ट्यपि सोदर एव गृह्णीयात् न तु संसृष्टः सापत्नो भ्राता संसृष्ट इति गर्भसंसृष्टः सोदर इति केचित् नान्योदर्योधनं हरेदिति पाठे अन्योदर्यः सन् धनं न गृह्णीयात् इति व्याख्या असंसृष्टिसोदरस्याधिकारार्थमिदं वचनमतो न पुनरुक्तिरित्याहुः । रत्नाकरप्रसृतयस्तु यस्तु कल्कतरो नान्योदर्योधनं हरेदिति पाठोदृश्यते समूलभूत-याज्ञवल्करमिताक्षरापारिजातहलायुधग्रन्थेषु नान्योदर्योधनं हरेदिति पाठदर्शनात् तदनुसारव्याख्यादर्शनाच्च लिपिकर-प्रमाद इत्याहुः । भ्रातृणामभावे तत्सुतः तत्र प्रथमं सोदर-पुत्रः । 'स्वेन भर्ता सह आर्द्धं माता भुङ्क्ते स्वधामयम् । पितामही च स्वेनैव, स्वेनैव प्रपितामही' इति वृहस्पति वचनात् । सोदरभ्रातृपुत्रदत्तपितामहपिण्डे धनिमातुर्भोग-श्रुतेस्तद्गतधनत्वेन तथोपकारदर्शनात् तदभावे वैमात्रेयपुत्रः तदभावे गोत्रजः तत्र 'त्रयाणामुदकं कार्यं त्रिषु पिण्डः प्रव-र्त्तते । चतुर्थः संप्रदातैषां पञ्चमो नोपपद्यते । अनन्तरः सपिण्डाद् यस्तस्य तस्य धनं हरेत्' इति मनूक्तात् तस्य मृतस्य धनिनः सपिण्डात् सपिण्डमध्यात् अनन्तरः सन्निहिततरस्तस्य धनं हरेत् एवमेव कुल्लूकभट्टः । 'बह्वी ज्ञातयो यत्र सकुल्या बान्धवास्तथा । योद्धासन्नतरस्तेषां सोऽनपत्यधनं हरेत्' । इति वृहस्पत्युक्तत्वाच्च । पिण्डदानसम्बन्धतारतम्येन आसन्न-जननतारतम्येन च धनेष्वधिकारी तत्र यथा दौहित्रान्त-स्वसन्तानाभावेऽन्योऽधिकारी एवं भ्रातृपुत्राभावे तद्दौहि-त्रान्तः पितुः सन्तानोऽधिकारी तदभावे पितामहः तदभावे पितामही । 'अनपत्यस्य पुत्रस्य माता दायमवाप्नुयात् । मातर्थ्यपि च वृत्तायां पितुर्माता धनं हरेत्, इति मनुवचनात् यथा पितृभावे माता तथा पितामहाभावे पितामही तद-

१८६

दायतत्त्वम् ।

भावे पितामहदौहित्रान्तसन्तानः पितरि तथा दर्शनात् एवं प्रपितामहः प्रपितामहौ तत्सन्ताना अपि मृतभोग्यपिण्डदात्र-भावे बन्धुरिति मातामहमातुलादिः तत्रापि पित्रादिवत् सति मातामहे स एव तदभावे यथाक्रमं मातुलादिः मृत-देयमातामहादिपिण्डदत्वात् तदभावे सकुल्यो विभक्तपिण्डः प्रतिनमृतः प्रभृतिपुरुषत्रयमधस्तनं बृहत्प्रपितामहादिसन्ततिश्च अतएव दायकता ननु सहोदरभ्रातृपुत्रवत् पितृव्यस्यापि धनिदेयपूर्वपुरुषद्वयपिण्डदत्वात् धनिपितृव्यभ्रातृपुत्रयो-स्तुल्योऽधिकारः स्यादुच्यते पितृव्यो हि धनिपितामहप्रपिता-महयोः पिण्डदः भ्रातृपुत्रस्तु धनिपितरं प्रधानमादाय पुरुष-द्वयपिण्डद इति स एव बलवान् इति पितृव्यात् पूर्वमधि-क्रियते इत्युक्तं एवं यत्र मृतस्य पितृव्यमृतपितृव्यपुत्रयोः सत्त्वे धनिदेयपितामहप्रपितामहपिण्डदातृत्वाविशेषेऽपि 'अनेक-पितृकाणान्तु पितृतो भागकल्पना' इत्यत्र जननसान्निध्यता-रतम्येन भागदर्शनात् अत्रापि जननसन्निकर्षाधिक्येन पितृव्य-स्येवाधिकारः अतएव मिताक्षरायां पितामहपितृव्यतत्पुत्राः क्रमेणाधिकारिण इत्युक्तम् । विवादचिन्तामणावपि अपुत्र-धनाधिकारे भ्रातुरभावे तत्पुत्रः तदभावे 'आसन्नपिण्ड इत्युक्तं बृहत्सत्युक्तवान्वा इत्यनेन यथाक्रमम् आसन्नपितृमातृ-वान्वा धनाधिकारिणः ते च 'आत्मपितुः स्वसुः पुत्रा आत्म-मातुः स्वसुः सुताः । आत्ममातुलपुत्राश्च विज्ञेया आत्म-वान्वाः । पितुः पितुः स्वसुः पुत्राः पितुर्मातुः स्वसुः सुताः । पितुर्मातुलपुत्राश्च विज्ञेयाः पितृवान्वाः । मातुर्मातुः स्वसुः पुत्रा मातुः पितुः स्वसुः सुताः । मातुर्मातुलपुत्राश्च विज्ञेया मातृवान्वाः' । आपस्तम्बः । 'अन्तेवासी वार्थास्तदर्थेषु धर्मकृत्येषु योजयेद्द्विहिता वा' । इति । तदर्थेषु मासिका-

व्यवहारतत्त्वम् ।

१८७

दिना तद्गोमार्थं धर्मकृत्येभ्य इति अदृष्टार्थमिति एवञ्च यस्य मृतस्य धनं देशान्तरस्थतद्वनाधिकारिसत्त्वे तद्वनविनाश-सम्भावनायां तदीर्घदेहिककर्माथं तत्पुण्यार्थञ्च येन केनापि दातुं युक्तम् । 'यदृच्छयापि यः कुर्यादात्विज्यं प्रीतिपूर्वकम्' । इति नारदवचने तस्यापि प्रतिनिधित्वात् एतत् प्रपञ्चितं शुद्धितत्त्वे । दायभागकृतापि सर्वत्रोक्तरीत्या मृत-धनस्य मृतार्थत्वमनुसन्धेयमिति वदताप्येतत् स्वरहित-मिति ।

महामहोपाध्याय श्रीहरिहरभट्टाचार्यात्मज श्रीरघुनन्दन-
भट्टाचार्यविरचितं स्मृतितत्त्वे दायतत्त्वं समाप्तम् ।

व्यवहारतत्त्वम् ॥

प्रणम्य सच्चिदानन्दं वागीशं विदुषां मुदे ।

व्यवहारदृशेस्तत्त्वं वक्ति श्रीरघुनन्दनः ।

अथ व्यवहारदर्शनम् । तत्र याज्ञवल्करः । स्मृत्याचार-
व्यपेतेन मार्गेणाधर्षितः परैः । आवेदयति चेद्राज्ञि व्यवहार-
पदं हि तत्' । स्मृतिसदाचारवहिर्भूतेन वर्त्मना परैरर्थतः
शरीरतो वा पीडितश्चेद्राजनि निवेदयेत् तद्व्यवहारदर्शनस्थानं
चेदित्यत्र यदिति मैथिलाः । आवेदयति चेदित्यनेन स्वयं
विवादोत्थापनं राज्ञा न कर्तव्यमिति शूलपाणिमहामहोपा-
ध्यायाः । राज्ञीति व्यवहारप्रदर्शकपरम् । तथाच बृह-
स्पतिः । 'राजा कार्य्याणि संपश्येत् प्राड्विवाकोऽथवा द्विजः' ।
प्राड्विवाकलक्षणमाह स एव 'विवादे पृच्छति प्रश्नं प्रतिपन्नं

१६८

व्यवहारतत्त्वम् ।

तथैव च । प्रियपूर्वं प्राग्बदति प्राड्विवाकस्ततः स्मृतः । कात्यायनः । 'व्यवहाराश्रितं प्रश्नं पृच्छति प्राड्विति स्थितिः । विवेचयति यत्तस्मिन् प्राड्विवाकस्ततः स्मृतः' । अर्थिनं प्रति भाषा ते कीदृशी प्रत्यर्थिनं प्रति च तवापि कीदृश-सुत्तरम् इति पृच्छतीति प्राट् श्रुत्वा च युक्तायुक्तत्वेन जयं पराजयं वा विविनक्ति इति विवाकः प्राट् च स विवाकश्चेति प्राड्विवाकः । कात्यायनः । 'स प्राड्विवाकः सामात्यः स ब्राह्मणपुरोहितः । स्वयं स राजा चिनुयात्तेषां जयपराजयौ । यदा कार्यवशाद्राजा न पश्येत् कार्यनिर्णयम् । तदा नियुञ्ज्याद्विद्वांसं ब्राह्मणं वेदपारगम् । यदि विप्रो न विद्वान् स्यात् क्षत्रियं तत्र योजयेत् । वैश्यं वा धर्मशास्त्रज्ञं शूद्रं यत्नेन वर्जयेत्' । स विनीतवेशः । मनुः । जातिमात्रोपजीवी वा कामं स्याद् ब्राह्मणब्रुवः । धर्मप्रवक्ता नृपतेर्न तु शूद्रः कदाचन । नाध्यापयति नाधीते स ब्राह्मणब्रुवः स्मृतः । व्यासः । 'द्विजान् विहाय यः पश्येत् कार्याणि वृषलैः सह । तस्य प्रचुभ्यते राज्यं बलं कोपश्च नश्यति । यः शूद्रो वैदिकं धर्मं स्मार्त्तं वा भाषते यदि । तस्य दण्डं हे सहस्रे सृक्कणी चैव भेदयेत् । दुःशीलोऽपि द्विजः पूज्यो न शूद्रो विजितेन्द्रियः । दृष्टां गां कः परित्यज्यार्चयेत् शीलवतीं खरीम्' । व्यवहारमाह कात्यायनः । 'विनानार्थेऽव सन्देहे हरणं हार उच्यते । नानासन्देहहरणाद्व्यवहार इति स्थितिः' । नानाविवादविषयः संशयो ह्रियतेऽनेन इति व्यवहारः । भाषोत्तरक्रियानिर्णायकत्वं व्यवहारत्वम् । तथाच ब्रह्मस्यतिः । 'अज्ञानतिमिरोपेतान् सन्देहपटलार्दितान् । निरामयान् यः कुरुते शास्त्रास्त्रनशलाकया । इह कीर्त्तिं राजपूजां लभते सहतिञ्च सः । तस्मात् संशयमूढानां कर्त्तव्यश्च विनिर्णयः' ।

व्यवहारतत्त्वम् ।

(१६६)

अतएव नारदः । 'अनियुक्तो नियुक्तो वा शास्त्रज्ञो वक्तुमर्हति ।
 देवीं वाचं स वदति यः शास्त्रमुपजीवति' । देवीं देवानु-
 मताम् । धर्मशास्त्रयोस्तु विरोधे लोकव्यवहार एवादरणीय
 इत्याह स एव । 'धर्मशास्त्रविरोधे तु युक्तियुक्तो विधिः
 स्मृतः । व्यवहारो हि बलवान् धर्मस्तेनावह्वीयते' । अव-
 ह्वीयते अवगम्यते हिगतावित्यास्माद्वातोः । अतएव बृह-
 स्पतिः । 'केवलं शास्त्रमाश्रित्य न कर्तव्यो विनिर्णयः । युक्ति-
 ह्येनविचारे तु धर्महानिः प्रजायते' । युक्तिर्न्यायः स च
 लोकव्यवहार इति व्यवहारमात्मका । अतएव कात्यायनः ।
 'कुलशीलवयोवृत्तवित्तवद्भिरधिष्ठितम् । वणिग्भिः स्यात् कति-
 पयेः कुलवृद्धैरधिष्ठितम्' । सद इति शेषः । कात्यायनः ।
 'सभ्येनावश्यवक्तव्यं धर्मार्थसहितं वचः । शृणोति यदि नो
 राजा स्यात्तु सभ्यस्तदानृणः' । सभ्यः सभायां साधुः । तथा-
 विधानाह याज्ञवल्क्यः । 'श्रुताध्ययनसम्पन्नाः कुलीनाः सत्य-
 वादिनः । राज्ञा सभासदः कार्य्याः शत्रौ मित्रे च ये समाः' ।
 श्रुताध्ययनसम्पन्नाः धर्मशास्त्रज्ञाः कुलीनाः सङ्करादिदोष-
 शून्यमातापितृपरम्पराकाः । एवम्भूताः सभासदः सभायां
 यथा सौदन्ति उपविशन्ति तथा दानमानसत्कारैराज्ञा
 कर्तव्याः । तथाविधावस्थानेन भूमेः सभात्वमाह मनुः ।
 'यस्मिन् देशे निषीदन्ति विप्रा वेदविदस्त्रयः । राज्ञः प्रति-
 कृतो विद्वान् ब्रह्मणस्तां सभां विदुः । विद्वत्संहतावपि सभा-
 पर्य्यायपरिषच्छब्दमाह स एव । 'त्रैविद्यो हैतुकस्तर्की निरुक्ती
 धर्मपाठकः । त्रयश्चाश्रमिणः पूर्वे परिषत् स्याद्दशावराः' ।
 त्रैविद्यः त्रिवेदपारगः हैतुकः सदयुक्तिव्यवहारी । अतएव
 अमरसिंहः । 'सभासदसि सभ्ये च' अत्र भा दीप्तिः प्रकाशो
 ज्ञानमिति यावत् तथा सह साक्षात् परम्परया वा वर्तते इति

२००

व्यवहारतत्त्वम् ।

सभा । कात्यायनः । 'दिवसस्याष्टमं भागं सुक्ता भागत्रयं तु यत् । सकालो व्यवहाराणां शास्त्रदृष्टः परः स्मृतः' । अष्टमं यमाद्यार्द्धप्रहरं भागत्रयं प्रहरद्वयपर्यन्तम् । मनुः । 'धर्मासनमधिष्ठाय सम्बीताङ्गः समाहितः । प्रणम्य लोकपालेभ्यः कार्यदर्शनमारभेत्' । मनुनारदबोधायनहारीताः । 'पादोऽधर्मस्य कर्त्तारं पादः साक्षिणमृच्छति । पादः सभासदः सर्वान् पादो राजानमृच्छति । राजा भवत्यनेनास्तु मुच्यन्ते च सभासदः । एनो गच्छति कर्त्तारं निन्दार्ही यत्र निन्द्यते' । कर्त्तारं वादिनं राजपदं विवेचकपरम् अनेनाः निष्पापः । अर्थित्वमाह तुर्व्यासनारदौ । 'यस्य चाभ्यधिका षोडश कार्यं वाप्यधिकं भवेत् । तस्यार्थिभावो दातव्यो न यः पूर्वं निवेदयेत्' । अत्रैव 'पूर्वपक्षो भवेत्तस्य' इति कात्यायनीये द्वितीयपादः । न यः पूर्वं निवेदयेदिति तस्योत्तरः पक्ष इति शेषः स यः पूर्वमिति पाठे यः प्रथमं निवेदयति स पूर्ववादी-त्वर्थः । बृहस्पतिः । 'अहं पूर्विकया यातावर्थिप्रत्यर्थिनी यदा । वादो वर्णानुपूर्वेण ग्राह्यः षोडशमवेक्ष्य वा' । यत्र हावेव वदतः प्रभो महाक्यं शृणु इति तत्र ब्राह्मणादिक्रमेणाधिकषोडशदर्शनेन वा वादो ग्राह्यः । स्वयं विवादाशक्तौ प्रतिनिधिमाह नारदः । 'अर्थिना सन्नियुक्तो वा प्रत्यर्थि-प्रहितोऽथ वा । यो यस्यार्थे विवदते तयोर्जयपराजयौ' । तयोर्वादिप्रतिवादिनोः । बृहस्पतिरपि । 'ऋत्विग्वादे नियु-क्तश्च समौ सम्परिकीर्त्तितौ । यज्ञे स्वाम्याप्नुयात् पुण्यं हानिं वादेऽथवा जयम्' । कात्यायनः । 'मनुष्यमारणे स्त्रिये परदाराभिर्मर्षणे । अभक्ष्यभक्षणे चैव कन्याहरणदूषणे । पारुष्ये कूटकरणेऽनुपद्रोहे तथैव च । प्रतिवादी न दातव्यः कर्त्ता तु विवदेत् स्वयम्' । कुलस्त्री प्रभृतीनां प्रतिनिधि-

व्यवहारतत्त्वम् ।

२०१

माह व्यासः । 'कुलस्त्रीबालकोन्मत्तजडात्तर्त्तनाञ्च बान्धवाः ।
 पूर्वपक्षोत्तरे ब्रूयुर्नियुक्तो भृतकस्तथा' । भ्रात्रादीतरस्य पक्ष-
 स्थितस्य दण्डनीयत्वमाह नारदः । 'यो न भ्राता पिता वापि
 न पुत्रो न नियोजितः । परार्थवादी दण्ड्यः स्याद्व्यवहारेषु
 विभ्रुवन् विरुद्धं ब्रुवन् । नारदः 'निर्वेष्टुकामो रोगार्त्ता
 यियक्षुर्व्यसने स्थितः । अभियुक्तस्तथान्येन राजकर्माद्यत-
 स्तथा । गवां प्रचारे गोपालाः शस्यबन्धे कृषीबलाः ।
 शिल्पिनश्चापि तत्काले आयुधौयाश्च विग्रहे । अप्राप्तव्यव-
 हारश्च दूतो दानोन्मुखो व्रतौ । विषमस्थाश्च नासेध्या न
 चैतान्नाह्वयेमृपः' । निर्वेष्टुकामो विवाहप्रवृत्तः अन्येन वादा-
 न्तरेण अप्राप्तव्यवहारः षोडशवर्षावरवयस्कः । तत्काले
 विवाहादि समाप्तिपर्यन्तकाले । एते विषमस्थाश्च उपप्लव-
 देशस्थाश्च उत्तमर्णादिना नासेध्यानावधावनीयाः । एतान्
 प्रागुक्तान् वादिना निवेदितानिति शेषः । यान्नवल्काः ।
 'अभियोगमनिस्तौर्त्य नैनं प्रत्यभियोजयेत्' । अभियुक्तः सन्
 उत्तरमदत्त्वा भाषावादिनमेतं स्वाभियोगानुपमर्दकेन विवादा-
 न्तरेण न योजयित् युगपदनेकव्यवहारासम्भवात् । नारदो-
 ऽपि । 'पूर्ववादं परित्यज्य योऽन्यमालम्बते पुनः । वाद-
 संक्रमणाज्ज्ञेयो ह्येनवादी स वै नरः' । ह्येनवादीत्यनेन
 दण्ड्यतोक्ता न तु प्रकृतार्थाज्ञेयता अन्यथा क्लृपते ।
 पारुष्ये प्रतिप्रसवमाह स एव । 'कुर्यात् प्रत्यभियोगश्च कलहे
 साहसेषु च' । वाक्पारुष्ये शस्त्रादिप्रहारेषु च यथापूर्व-
 महमप्यन्येनाक्रुष्टः शस्त्रेण हत इत्यपराधाभावाय प्रत्यभि-
 योगं कुर्यात् । तथाच ब्रह्मस्यतिः । 'आक्रुष्टस्तु यदाक्रोशं
 स्ताडितः प्रतितोडयन् । हत्वाततायिनश्चैव नापराधी भवे-
 न्नरः' । एतेन वाक्पारुष्यदण्डपारुष्ययोः प्रकृताभियोगे

३०२

व्यवहारतत्त्वम् ।

खण्डकाभिधोगेऽपि न दोषः यत्तु 'पूर्वमाचारयेद् यस्तु नियतं
 स्वात् स दोषभाक् । पश्चाद् यः सोऽप्यसत्कारौ पूर्वं तु विनयो
 गुरुः' इति नारदवचनं तत्पूर्वापेक्षया परस्याधिकवाक्-
 पारुष्योत्पादकस्यापि स्वल्पदण्डविधायकम् । युगपत्संप्रवर्त्तने-
 ऽधिकदण्डाभावमाह स एव । 'पारुष्ये साहसे चैव युगपत्-
 संप्रवृत्तयोः । विशेषश्चेन्न लभ्येत विनयः स्यात् । समस्तयोः' ।
 विनयो दण्डः । एवञ्च दण्डोऽयमनपराधे मयि कृतः 'पीडित-
 त्वादिति भाषायां प्रत्यभियोगः कार्य्य एव । प्रत्यवस्कन्दनो-
 त्तरत्वेन युगपदनेकव्यवहारापत्तिदोषस्याभावात् । सभापतेः
 कर्त्तव्यमाह कात्यायनः । 'अथ चेत् प्रतिभूर्नास्ति वाद-
 योग्यस्तु वादिनोः । स रजितो दिनस्यान्ते दद्याद्भृत्याय
 वेतनम्' । प्रतिभवति तत्कार्य्यं तद्वद्भवतीति प्रतिभूर्लङ्घनकः ।
 वादयोग्यः विवादफलस्य साधितधनादिदानस्य दण्डदानस्य
 च क्षमः । वादिनोर्भाषावादिनः उत्तरवादिनश्च । तथाच
 याज्ञवल्क्यः । 'उभयोः प्रतिभूर्ग्राह्यः समर्थः कार्य्यनिर्णये ।
 प्रतिभुवस्त्वभावे च राज्ञा संज्ञपनं तयोः' । राज्ञा संज्ञपनं
 दण्डतुल्याधिकरणं निर्णयस्य कार्य्यं धनादिदामै राजदन्तादि-
 त्वात् कार्य्यशब्दस्य पूर्वनिपातः श्रुत्यः तद्रक्षको राजनियुक्तः ।
 प्रत्यर्थी यदि कश्चित्कालं प्रार्थयते स लभते अर्थी तु कालं
 प्रार्थयन् अर्थित्वमेव व्याहृत्यादिति तेन कालो न प्रार्थनीयः ।
 तदाह 'प्रत्यर्थी लभते कालं तत्रहं सप्ताहमेव च । अर्थी तु
 प्रार्थयन् कालं तत्क्षणादेव हीयते' । क्वचित् प्रत्यर्थीकालं
 न लभते । याज्ञवल्क्यः । 'साहसस्तेयपारुष्यगोऽभिशापा-
 त्यये स्त्रियाम् । विवादयेत् सद्य एव कालोऽन्यत्रेच्छया
 स्मृतः' । साहसं मनुष्यमारणं गौरव दोह्या अभिशापो महा-
 पातकादिना अत्यये द्रव्यनाशे स्त्रियां कुलस्त्रियां चारित्र-

व्यवहारतत्त्वम् ।

२०३

विवादविषयप्राप्तायां दास्यां स्वत्वविवादे वा एषु सद्य एव उत्तरं दापयेदिति शूलपाणिः । विशेषयति कात्यायनः । 'यस्मात् कार्यसमारम्भश्चिरात्तेन विनिश्चितः । तस्मान्न लभते कालमभियुक्तस्तु कालभाक्' । अपवादमाह बृहस्पतिः । 'अभियोक्ताऽप्रगल्भत्वाद्भक्तुं नोत्सहते यदि । तदा कालः प्रदातव्यः कार्यशक्त्यनुरूपतः' । अत्रापि विशेषयति व्यासः । 'राजदेवकृतो दोषस्तस्मिन् काले यदा भवेत् । अवध्ययोगमात्रेण न भवेत् स पराजितः' । स्वकृतसमयबन्धोऽभियुक्तः । 'राजदेवकृतं दोषं साक्षिभिः प्रतिपादयेत् । जैह्वेन वर्त्तमानस्तु दण्डो दाप्यस्तु तद्धनम्' । अवध्यतिक्रमहेतो राजदेविकदोषस्य प्रमितौ न तदतिक्रामकोऽपराध्यति जैह्वाच्च तदतिक्रमेण दण्डो भङ्गो च भवतीत्यर्थः । कृद्भकाठिन्यादियुक्तो जिह्वः । तथाच हारौतः । 'कृद्भमायाव्याजयुक्ता निष्कृतिः । कौटिल्यकाठिन्यशाठ्यवैरस्य सद्भावयुक्तं जैह्वमिति' । युक्तं योगः ।

अथ व्यवहारपादनिर्णयः । तत्र बृहस्पतिः । 'पूर्वपक्षः स्मृतः पादो द्विपादश्चोत्तरः स्मृतः । क्रियापादस्तथा चान्यश्चतुर्थो निर्णयः स्मृतः । मिथ्योक्तौ च चतुष्पात् स्यात् प्रत्यवस्कन्दने तथा । प्राङ्न्याये च स विज्ञेयो द्विपात् संप्रतिपत्तिषु' । यद्यपि संप्रतिपत्तावपि निर्णयोऽस्ति तथापि उत्तरवादिनैव भाषार्थस्याङ्गीकृतत्वेन क्रियासाध्ये न भवति इति द्विपादतोक्ता ।

अथ भाषापादः । तत्र भाषास्वरूपमाह तुः कात्यायन-बृहस्पती । 'प्रतिज्ञा दोषनिर्मुक्तं साध्यं सत्कारणान्वितम् । निश्चितं लोकोसिद्धञ्च पक्षं पक्षं विदो विदुः । स्वल्पाक्षरः प्रभूतार्थो निःसन्दिग्धो निराकुलः । विरोधिकारणैर्मुक्तो

२०४

व्यवहारतत्त्वम् ।

विरोधिप्रतिरोधकः । यदा त्वेवंविधः पक्षः कल्पितः पूर्व-
वादिना । दद्यात्तत्पक्षसम्बन्धं प्रतिवादी तदोत्तरम् ।
प्रतिज्ञा साध्याभिधायिका वाक् । तस्यादोषैः परस्परविरुद्धार्थ-
पदादिभिस्त्यक्तं साध्यं साधनार्हाभिमतं पक्षं विदुः । अन्यथा
प्रतिज्ञादोषेण साध्यदोषः स्यात् । अतएवोक्तम् । ‘वचनस्य
प्रतिज्ञा त्वं तदर्थस्य च पक्षता । असङ्करेण वक्तव्ये व्यवहारेषु
वादिभिः’ । वक्तव्ये पक्षप्रतिज्ञे पूर्वोक्ते नारदेनापि ‘सारस्तु
व्यवहाराणां प्रतिज्ञा समुदाहृता । तद्वान्नी हीयते वादी
तरंस्तामुत्तरो भवेत्’ । उत्तरो विजयी । यद्यपि अन्यत्र साध्यं
तद्विशिष्टधर्माधर्मीपक्ष इति भेदः तथापि अत्र वाक्प्रत्याय-
र्थादिधर्मविशेषविशिष्टतया धर्मिणोऽधमर्णपदैरेव साध्यत्वात्
साध्यपक्षयोरभेदाभिधानम् उपसंहारे च एवंविधः पक्ष इति ।
मिताक्षरायान्तु भाषाप्रतिज्ञापक्ष इति नार्थान्तरमित्युक्तम् ।
भाषार्थमुक्त्वा भाषास्वरूपप्रपञ्चमाह स्वल्पाक्षर इति । निरा-
कुलः पौर्वापर्यविपर्ययादिशून्यः । तत्र ‘द्युते च व्यवहारे च
प्रव्रते यज्ञकर्मणि । यानि पश्यन्त्युदासीनाः कर्त्ता तानि न
पश्यति’ इति गृह्यसंग्रहवचनादुदासीनेभ्यो ज्ञात्वा शोधयेत् ।
तच्छोधनमाह ब्रह्मस्यतिः । ‘न्यूनाधिकं पूर्वपक्षं तावदादी
विशोधयेत् । न दद्यादुत्तरं यावत् प्रत्यर्थी सभ्यसन्निधौ ।
तल्लिखनप्रकारमाह व्यासः । ‘पाण्डुलेखेन फलके भूमौ वा
प्रथमं लिखेत् । न्यूनाधिकन्तु संशोध्य पश्चात् पत्रे निवे-
शयेत्’ । फलकं काष्ठादिपट्टकम् । कात्यायनः । ‘पूर्वपक्षं
स्वभावोक्तं प्राङ्निवाकोऽथ लिखयेत् । पाण्डुलेखेन फलके
ततः पत्रेऽभिलेखयेत् । शोधयेत् पूर्वपक्षन्तु यावन्नोत्तर-
दर्शनम् । उत्तरेणावरुद्धस्य निवृत्तं शोधनं भवेत् । अन्यदुक्तं
लिखेद् योऽन्यदर्थिप्रत्यर्थिना वचः । चौरवच्छासयेत्तन्तु धार्मिकः

व्यवहारतत्त्वम् ।

२०५

पृथिवीपतिः' । स्वभावोक्तमकृत्रिमम् । एतच्च स्वरविशेषा-
दिना सुज्ञेयम् । अतएव याज्ञवल्क्यः । 'कुलं निरस्य भूतेन
व्यवहारान्नयेन्नृपः । भूतमप्यनुपन्यस्तं हौयते व्यवहारतः' ।
भूतं तत्त्वार्थसम्बन्धम् । नारदः । 'भूतं तत्त्वार्थसम्बन्धं
प्रमादाभिहितं कुलम्' । किन्तु राज्ञा विशेषेण स्वधर्ममभि-
रक्षता । मनुष्यचित्तवैचित्र्यात् परीक्षासाध्वसाधु वा । 'सर्वे-
ष्वर्थविवादेषु वाक्कुले नावसीदति । पशुस्त्रीभूमृणादाने
शास्योऽप्यर्थान्न हौयते' । सर्वेषु अर्थविवादेषु प्रमादाभिधाने-
ऽपि नावसीदति । अत्रोदाहरणं पशुस्त्रीत्यादि अर्थविवाद-
ग्रहणान्नन्युक्तविवादेषु प्रमादाभिधाने प्रकृतार्थादप्यर्था-
न्वीयत इति गम्यते । यथाहमनेन शिरसि पादेन ताडितः
इत्यभिधाय केवलं हस्तेन ताडित इति वदन्न केवलं दण्ड्यः
पराजीयते च । ततश्च त्वं मच्छमृणं धारयसि मत्तच्छणत्वेन
गृहीततावन्धनकत्वादिति भाषाशरीरम् एतच्च संस्कृतदेश-
भाषान्यतरेण यथाबोधं वक्तव्यं लेख्यं वा । मूर्खाणामपि
वादिप्रतिवादिता दर्शनात् अतएवाध्यापनेऽपि तथोक्तं विष्णु-
धर्मोत्तरे । 'संस्कृतैः प्राकृतैर्वाक्यैर्यः शिष्यमनुरूपतः । देश-
भाषाद्युपायैश्च बोधयेत् स गुरुः स्मृतः' ।

अथोत्तरपादः । तत्र कालमाह कात्यायनः । 'सद्यः
कृतेषु कार्येषु सद्य एव विवादयेत् । कालातीतेषु वा कालं
दद्यात् प्रत्यर्थिने प्रभुः' । वा दिनीक्तस्य साध्यस्य प्रतीपमर्थ-
यते इति प्रत्यर्थी । नारदः । 'गहनत्वाद्दिवादानामसामर्थ्यात्
स्मृतेरपि । ऋणादिषु हरेत् कालं कामं तत्त्ववृत्तया' ।
बृहस्पतिः । 'यदा त्वेवंविधः पक्षः कल्पितः पूर्ववादिना ।
दद्यात् तत्पक्षसम्बन्धं प्रतिवादी तदोत्तरम्' । सम्बन्धमुप-
युक्तम् । अन्यथा अन्यवादित्वेन भङ्गप्रसङ्गात् । 'अन्यवादी

२०६

व्यवहारतत्त्वम् ।

क्रियाहेषी नोपस्थायी निरुत्तरः । आहृतः प्रपलायी च
 ह्योनः पञ्चविधः स्मृतः । प्रपलायी त्रिपक्षेण मौनकृत्सभि-
 र्दिनैः । क्रियाहेषी तु मासेन साक्षिभिन्नस्तु तत्क्षणात्
 इति नारदीक्तेः क्रिया लेख्यादिका साक्षिभिन्नः साक्षिभिः
 पराजितः । वादिनोक्तस्य साध्यस्य प्रतीतं वदतीति प्रतिवादी
 उत्तीर्यते निस्तीर्यते प्रकृताभियोगोऽनेनेति उत्तरम् । याज्ञ-
 वल्काः । ‘श्रुतार्थस्योत्तरं लेख्यं पूर्वावेदकसन्निधौ’ । लेख्य-
 मिति वाक्यस्याप्युपलक्षकम् । उत्तरस्वरूपं तद्भेदांश्चाह
 नारदः । ‘पक्षस्य व्यापकं सारमसन्दिग्धमनाकुलम् । अव्या-
 ख्यागम्यमित्येवमुत्तरं तद्विदो विदुः । मिथ्यासंप्रतिपत्तित्वं
 प्रत्यवस्कन्दनन्तथा । प्राङ्न्यायाश्चोत्तराः प्रोक्ताश्चत्वारः शास्त्र-
 वेदिभिः । अभियुक्तोऽभियोगस्य यदि कुर्यादपह्नवम् । मिथ्या
 तत्तु विजानीयादुत्तरं व्यवहारतः’ । पक्षस्य भाषार्थस्य
 व्यापकः आच्छादकम् अभियोगप्रतिकूलमिति यावत् । अत-
 एव पूर्वपक्षार्थसम्बन्धं प्रतिपक्षं निवेदयेदित्युक्तम् । न च
 विप्रतिपक्ष्या न्यायोऽर्थमागतस्य धारयसीत्यभियुक्तस्य धारया-
 मौति संप्रतिपक्षेः कथमुत्तरत्वम् अभियोगा प्रतिकूलत्वादिति
 वाच्यम् । भाषावादिनो मूर्खत्वेनापटुकरणतया वा कदा-
 चिद्भाषाभिवादादेवायं हीयते इति भाषाविमर्षपर्यन्तं विप्रति-
 पक्षस्याप्युत्तरवादिनो भाषार्थं सम्यगवगम्य तन्निषेधार्थं सम्य-
 गुत्तरासम्भवात् विद्वत्सभायां च असत्यवचनमत्यन्ताधर्मकार-
 कम् । परोक्तिपराजये च दण्ड्यत्वं वादिना च वैरमित्यादि
 प्रतिसन्दधतः सम्यतिपक्षेरुत्तरत्वं सम्भवत्येव । एवम् एतेभ्य
 एवानिस्तारात् साध्यत्वेनोपदिष्टस्य पक्षस्य सिद्धत्वेनोपन्यासेन
 साध्यत्वे निवारणात् सिद्धसाधनेनापि वादिनः प्रत्यवस्थाना-
 च्छोत्तरत्वं सम्यतिपक्षेः सिद्धमिति सारं प्रकृतोपयोगि अनाकुलं

व्यवहारतत्त्वम् ।

२०७

पूर्वापरविरोधशून्यम् अव्याख्यागम्यमध्याहारादिकं विनैव प्रतीतम् अभियोगस्य अभियुज्यते इत्यभियोगः सहेतुकं साध्यं तस्यापङ्गवमित्यर्थः । उत्तराभाषामाह कात्यायनः । 'प्रकृतेन त्वसखन्धम् अत्यल्पमतिभूरि च । पक्षैकदेशं व्याप्यैवं तच्च नैवोत्तरं भवेत् । अस्तव्यस्तपदव्यापि निगूढार्थं तथाकुलम् । व्याख्यागम्यमसारञ्च नोत्तरं शस्यते बुधैः' । अस्तव्यस्तपदव्यापि अनन्वितार्थपदव्याप्तमिति व्यवहारतिलके भवदेवभट्टः । मिथ्योत्तरभेदमाह पुनर्व्यासनारदौ । 'मिथ्येतन्नाभिजानामि मम तत्र न सन्निधिः । अजातश्चास्मि तत्काले इति मिथ्या चतुर्विधम्' मिथ्येतदिति शब्दतो नाभिजानामौल्यादिकमर्थतोऽपङ्गवः । तथाच कात्यायनः । 'श्रुत्वा भाषार्थमन्यस्तु यदि तं प्रतिषेधति । अर्थतः शब्दतो वापि मिथ्या तज्ज्ञेयमुत्तरम्' । त्वं मच्छां धारयसीति प्रतिज्ञायां न गृहीतमिति शब्दतः । कालविशेषगर्भायां तस्यां सत्यां तदा नाहं जात इति अर्थतः । देशकालविशेषगर्भायां तदा तत्र नाहमासम् इत्यप्यर्थतः । देशादिमत्यां तच्छून्यायां वा न जानामौत्यर्थत एव योग्यास्मरणे नार्थतस्तदग्रहणप्रतिपादनात् अत्र चरमत्रयं ग्रहणावस्कन्दनमुखेन ग्रहणाभावप्रतिपादकं सापदेशमिथ्योत्तरमात्रम् आद्यं मिथ्योत्तरमात्रम् । वृहस्पतिः । 'श्रुत्वाभियोगं प्रत्यर्थी यदि तं प्रतिपाद्यते । सा तु संप्रतिपत्तिः स्याच्छास्त्रविद्धिरुदाहृता । अर्थिनाभिहितोऽर्थः प्रत्यर्थी यदि तं तथा । प्रपद्य कारणं ब्रूयात् प्रत्यवस्कन्दनं हि तत् । आचारेणावसन्नोऽपि पुनर्लेखयते यदि । सोऽभिधेयो जितः पूर्वं प्राङ्मुखायस्तु स उच्यते' । अभियुज्यते इत्यभियोगः प्रतिपद्यतेऽङ्गीकरोति तं साध्यार्थं तथा प्रपद्य सत्यत्वेनाङ्गीकृत्य कारणं तत्प्रतिकूलरूपं कारणं ब्रूयात्तदा

२०८

व्यवहारतत्त्वम् ।

तदुत्तरं प्रत्यवस्कन्दनं वाद्युक्तस्य प्रतिकूलत्वेन प्रत्यवस्कन्दन-
मित्यर्थः । प्रतिपक्षावस्कन्दनात् प्रत्यवस्कन्दनमिति जीमूत-
वाहनः । तच्च कारणोत्तरं त्रिविधं बलवत्तुल्यबलं दुर्बलञ्च
तत्र बलवदुत्तरं यथा त्वत्तः शतं गृहीतमिति सत्यं किन्तु
परिशोधितमिति अत्रोत्तरवादिन एव क्रियानिर्देशः । तथाच
नारदः । ‘आधर्ष्यं पूर्वपक्षस्य यस्मिन्नर्थवशाद्भवेत् । विवादे
साक्षिणस्तत्र प्रष्टव्याः प्रतिवादिनः’ । आधर्ष्यं दुर्बलत्वं
पूर्वपक्षस्य । ततश्च स्थापकसाध्यस्य धार्यमाणत्वस्य ध्वंस-
कारणं निर्यातनादि तद्रूपमुत्तरं कारणोत्तरम् । अतएव
मिथ्योत्तरादस्य भेदः तद्धि धार्यमाणत्वस्यात्यन्ताभावप्रयोजक-
मग्रहणरूपं न तु ध्वंसरूपं तुल्यबलकारणोत्तरं यथा मदी-
येयं भूमिः । क्रमागतत्वादिति वाद्युक्ते मदीयेयं भूमिः
क्रमागतत्वादिति प्रतिवादिना तथोत्तरमिति तत्र पूर्ववादिनः
साध्युपन्यासः । तदसामर्थ्यं प्रतिवादिनः । तथाच याज्ञ-
वल्क्यः । ‘साक्षिषूभयतः सत्सु साक्षिणः पूर्ववादिनः । पूर्व-
पक्षेऽधरोभूते भवन्त्युत्तरवादिनः’ । दुर्बलकारणोत्तरं यथा
ममेयं भूः क्रमागतत्वादिति वाद्युक्ते ममेयं भूदंशवर्षभुज्यमान-
त्वादिति प्रत्युत्तरं तत्तु धनमात्रप्रयुक्तम् । पश्यतोऽब्रूवतो
हानिर्धनस्य दशवार्षिकी’ इति । याज्ञवल्क्योयं वीजं किन्तु
नैतदयुक्तम् । ‘परेण भुज्यमानाया भूमार्वंशतिवार्षिकी’ इति
भूमिमात्रविषयकं तत्परार्द्धेनापादितत्वादिति भवदेवभट्टः ।
‘पश्यतोऽब्रूवतोहानिर्भूमेर्विंशतिवार्षिकी । परेण भुज्यमा-
नाया धनस्य दशवार्षिकी’ इति शूलपाणिधृतपाठोऽपि तत्त्वार्थं
प्रमाणं ततश्चात्र क्रमागतत्वे पूर्ववादिनः प्रमाणोपन्यासः ।
तथाचोक्तम् । ‘गुरावभिहिते हेतौ प्रतिवादिक्रिया भवेत् ।
दुर्बले वादिनः प्रोक्ता क्रिया तुल्येऽपि वादिनः’ आचारेण

व्यवहारतत्त्वम् ।

२०८

व्यवहारेण अवसन्नो भङ्गो लेखयते भाषामिति शेषः । स
वादी अस्मिन्नर्थे मया पूर्वं पराजितः वाच्यः प्राङ्न्यायो हि
धार्यमाणत्वसामान्याभावज्ञापकः । एतेषां सङ्करे विशेष-
माहतुर्व्यासहारौतौ । 'मिथ्योत्तरं कारणञ्च स्यातामेकत्र
चेदुभे । सत्यञ्चापि सहानेन तत्र ग्राह्यं किमुत्तरम् । मिथ्या-
कारणयोर्वापि ग्राह्यं कारणमुत्तरम् । यत् प्रभूतार्थविषयं
यत्र वा स्यात् क्रियाफलम् । उत्तरं तत्तु विज्ञेयमसंकीर्ण-
मतोऽन्यथा' । शताभियोगे शतग्रहणं मिथ्यापञ्चाशदेव
गृहीतास्ताश्च परिशुद्धा इति मिथ्याकारणांशयोस्तुल्यरूपत्वे
कारणोत्तरं ग्राह्यम् आदौ विचारणीयं परिशोधनस्यार्वाचीन-
त्वेन स्मरणाहंत्वात् पञ्चान्मिथ्योत्तरं तत्र ऋणस्य चिराती-
तस्य कष्टप्रतिपाद्यत्वात् एवञ्च नवत्यभियोगे मिथ्यैतत् षष्टि-
पुराणा एव मया गृहीतास्तत्रापि त्रिंशत् परिशुद्धा स्त्रिंश-
द्वारयामि इति मिथ्याकारणसत्यैः सङ्कीर्णोत्तरेऽपि पूर्ववत्-
कारणोत्तरमेव ग्राह्यं मिथ्याकारणयोर्वापीति वापिशब्दाभ्यां
तथा दर्शितत्वात् सत्योत्तरस्य स्वयं स्वीकृतत्वेन निर्णयानर्ह-
त्वादिति भावः । प्राङ्न्यायेन सह सर्वथैव सङ्करानुपपत्ति-
रिति तन्नोक्तं यदि शतं मिथ्या पञ्चविंशतिपुराणा गृहीतास्ते
च परिशुद्धास्तथा मिथ्यांशस्य प्रचुरार्थविषयस्य विचार उप-
क्रमणीयः । भूयोऽनुरोधस्याभ्यर्हितत्वात् पश्चात् स्वत्वार्थस्य
विचार इति । तुल्यार्थविषयत्वे तु यत्र क्रियायाः साध्यादेः
फलं निर्णयः शीघ्रं भवति तदंशस्यैव प्रमाणं ग्राह्यं तथा
यदि शतग्रहणे पत्रमस्ति शतापङ्कवे च पञ्चाशत्परिशोधने
साक्षिणस्तदा मिथ्योत्तर एवादौ तत्स्वखण्डनाय ग्रहणपत्रं
ग्राह्यं लिखितस्य साक्षिभ्यो बलवत्त्वेन सम्यङ्निर्णयकारित्वात्
पश्चात् परिशोधनसाक्षिणः प्रष्टव्याः । सङ्करोत्तरमप्यसङ्कीर्ण-

२१०

व्यवहारतत्त्वम् ।

मदुष्टम् अतो भिन्नमन्यथा सङ्कीर्णं दुष्टमित्यर्थः । अत्र च अवच्छेदभेदेन मिथ्योत्तरसङ्करे सदुत्तरत्वमेकावच्छेदेन । सङ्करे तु असदुत्तरत्वमाह कात्यायनः । 'पक्षैकदेशे यत् सत्यमेकदेशे च कारणम् । मिथ्या चैकदेशे स्यात् सङ्करात्तदनुत्तरम्' । एकदेशे इत्यत्र एकस्मिन्नेव देशे न भिन्नदेशे यथा शतं धारयास्येव परिशोधितं न गृहीतं वा इति ।

अथ क्रियापादः । उत्तराभिधानानन्तरं याज्ञवल्करः । 'ततोऽर्थी लेखयेत् सद्यः प्रतिज्ञातार्थसाधकम्' । अर्थी वादी प्रतिवादी च स्वपक्षार्थित्वात् । तयोरधिकारे नियममाह व्यासः । 'प्राङ्न्याये कारणोक्ती च प्रत्यर्थी साधयेत् क्रियाम् । मिथ्योत्तरे पूर्ववादी प्रतिपत्तौ न सा भवेत्' । मिथ्योत्तरे न गृहीतं मयेत्यादिरूपे पूर्ववादी भाषावादी साक्षादिकं निर्दिशेन्नोत्तरवादी तत्र तस्य मानुष्याः क्रियाया असम्भवादिति न्यायो मूलम् अत्रापि साक्षाद्यभावे उत्तरवादिन एव दिव्यम् । 'न कश्चिदभियोक्तारं दिव्येषु विनियोजयेत् । अभियुक्ताय दातव्यं दिव्यं दिव्यविशारदैः' । इति कात्यायनोक्तेः । अत्र पूर्वाङ्गेनार्थिनो दिव्यनिषेधेऽर्थात् प्रत्यर्थिनस्तत्प्राप्तौ पराङ्गाभिधानं सिद्धे सत्यारम्भो नियमाय इति न्यायान्नियमार्थं न च व्यासवचने क्रियापदं कारणोत्तरमानुषीदैवोपरमित्येतावदर्थकं मिथ्योत्तरेऽप्यनुयुज्यते इति तत्रापि अर्थिन एव दिव्यमिति वाच्यं श्रूयमाणपदस्य हि पुनरन्वयार्थमेवानुषङ्गः । ननु अर्थवैषम्यसहितस्य गौरवात् पूर्वोक्तन्यायमूलकविषयलक्ष्यौ कात्यायनोक्तदिव्यविषयनियमभङ्गानर्हत्वाच्च यत्र विवादविषये प्रत्यर्थी सन्दिहानस्तत्र तस्योत्तरानर्हतया अर्थिन एव दृष्टक्रिया तदसम्भवे तस्यैव दिव्यं न तु प्रत्यर्थिनः अधिकारनिश्चयाभावात् अर्थिनस्तत् सत्त्वात् न च न कश्चिदभि-

व्यवहारतत्त्वम् ।

२११

योक्तारमित्यादिना विरोधस्तस्योत्तरार्हप्रतियोगिविषयत्वात्
 एतद्विषय एव धनस्वामिनो दिव्यमिति लोकप्रवादः । लिखि-
 ताद्यभावेनापि दिव्यमाह याज्ञवल्क्यः । 'प्रमाणं लिखितं
 भुक्तिः साक्षिण्येति कीर्तितम् । एषामन्यतमाभावे दिव्या-
 न्यतममुच्यते' । अथ दिव्यम् । दिव्यान्याह स एव । 'तुला-
 ग्न्यापो विषं कीषो दिव्यानौह विशुद्धये । महाभियोगेष्वे-
 तानि शीर्षकस्थेऽभियोक्तारि । रूच्या वान्यतरः कुर्यादितरो
 वर्त्तयेच्छिरः । विनापि शीर्षकं कुर्यात् नृपद्रोहेऽथ पातके' ।
 महाभियोगेषु महापातकादिगुरुतराभियोगेषु । शीर्षकस्थः
 शीर्षकं प्रधानं व्यवहारस्य चतुर्थपापो जयपराजयलक्षणः तेन
 दण्डो लक्ष्यते । तत्र तिष्ठति वर्त्तते तदङ्गीकरोतीत्यर्थः ।
 अत्राभियोक्तुः शरोवर्त्तित्वोक्तेरभियोज्यस्य दिव्यकर्त्तृत्वं प्रती-
 यते । प्रत्यर्थीच्छया अर्थिनो दिव्यमाह रूच्येति इतरोऽभि-
 युक्तः एतत् सर्वं दिव्यतत्त्वे विवृतम् । प्रतिज्ञातार्थसाधकमिति
 साधकं साध्यादिकम् । तदाह ब्रह्मस्यतिः । 'द्विप्रकारा
 क्रिया प्रोक्ता मानुषी दैविकी तथा । साक्षिलेख्यानुमानञ्च
 मानुषी त्रिविधा स्मृता । धटाद्याधर्मजान्ता च दैविकी नवधा
 स्मृता' । तत्रानुमानन्तु भुक्त्यादि । तत्र साध्यमाह मनुः । 'सम-
 च्छदर्शनात् साध्यं श्रवणाच्चैव सिध्यति' । एतत् प्रमाणमात्रोप-
 लक्षणम् । 'अनुभावो च यः कश्चित् कुर्यात् साध्यं विवादि-
 नाम्' इति तद्वचनान्तरात् । अतएव अकृतमपि साक्षिणमाह
 मनुः । 'यत्रानिरुद्धो वीक्ष्येत शृणुयाद्वापि किञ्चन । पृष्टस्तत्रापि
 तदब्रूयात् यथादृष्टं यथाश्रुतम्' । अनिरुद्धस्त्वमत्र साक्षि-
 त्वेनानियुक्तः । परम्परयापि श्रवणमाह विष्णुः । 'उद्दिष्ट-
 साक्षिणि सृते देशान्तरगतेऽपि वा । तदभिहितश्रोतारः
 प्रमाणं नात्र संशयः' । अस्योत्तरसंज्ञामाह नारदः । साक्षिणा-

२१२

व्यवहारतत्त्वम् ।

मपि यत् साध्यं स्वपक्षं परिभाषताम् । अवणात् आवणा-
 द्वापि स साध्युत्तरसंज्ञकः । स्वपक्षसम्बन्धिसाध्यं परिभाषतां
 साक्षिणां यः स्वयं शृणोति अर्थिना आव्यते वा स अवणात्
 आवणादुत्तरसाक्षीत्यर्थः । एवं योऽर्थिना गूढतया प्रत्यर्थि-
 वचनं आवितः स गूढसाक्षीत्याह स एव । ‘अर्थिना सार्थ-
 सिद्धार्थं प्रत्यर्थिवचनं स्फुटम् । यः आव्यते तदा गूढो गूढ-
 साक्षी स उच्यते’ । तेनान्यतरवाद्यभिहितार्थविषयकदृष्ट-
 कारणजं विज्ञापनं साध्यमिति स्थितम् । तत्र नारदः ।
 ‘तेषामपि न बालः स्थानैको न स्त्री न दुष्टकृत् । न बान्धवो
 न चारातिब्रूयुस्ते कार्यमन्यथा’ । कार्यं सदपि अन्यथा
 तद्विरुद्धत्वेन । एवञ्च यदि परमधार्मिकत्वेन बान्धवादी-
 नामपि सत्यवादित्वं निश्चीयते तदा तेऽपि साक्षिणो भवितु-
 मर्हन्तीति । तेषां साध्यविधायकं वक्ष्यमाणमनुवचनमपि
 एतादृग्विषयम् । याज्ञवल्करः ‘तत्रवराः साक्षिणो ज्ञेयाः
 श्रौतस्मार्त्तक्रिया रताः । यथाजाति यथावर्णं सर्वे सर्वेषु वा
 स्मृताः’ । त्रयोऽवरा निकृष्टा येषां ते तत्रवराः त्रिभ्योऽन्यूना
 भवन्तीत्यर्थः । यथेति यो यज्जातीयस्तस्य तज्जातीयः साक्षी
 स्त्रीणां स्त्रियोऽन्यजानामन्यजाः यथावर्णं ब्राह्मणानां
 ब्राह्मणाः क्षत्रियादीनां क्षत्रियादयः अभावे तु तत्तद्भेदं विना
 सर्व एव । तत्रवरा इत्यस्यापवादमाह स एव । ‘उभयानु-
 मतः साक्षी भवेदेकोऽपि धर्मवित्’ । उभयानुमतत्वं धर्म-
 विस्त्वच्च नियतं तन्त्रम् । तदाह विष्णुः । ‘अभिमतगुण-
 सम्पन्नस्तुभयानुमतस्त्वेकोऽपि’ इति । अतएव श्रोत्रियम-
 प्येकं निषेधयति ब्रह्मस्यतिः । ‘नव सप्त पञ्च वा स्युश्चत्वार-
 स्त्रय एव वा । उभौ तु श्रोत्रियो ग्राह्यौ नैकं पृच्छेत् कदा-
 चन’ । एको मिलितगुणसम्पन्नः प्रधानकल्पः तदभावे उभ-

व्यवहारतत्त्वम् ।

२१३

यानुमतमात्रोऽपि ग्राह्यस्तदाह नारदः । 'उभयानुमतो यः
 स्याद्वयोर्विवदमानयोः । भवत्वेकोऽपि साक्षित्वे प्रष्टव्यः
 स्यात् स संसदि' । उभयानुमत एकोऽलुब्धत्वादिना सर्व-
 जनप्रसिद्धश्चेत्तदा साक्षित्वे संसदि बहुजनसन्निधौ प्रष्टव्यः
 तथात्वे स्नेहवैरादिसत्त्वेऽप्यकौर्त्तिभयात् सत्याभिधानसम्भ-
 वादित्याशयः । विचारस्य तत्त्वनिर्णयार्थत्वात्तदाह मनुः ।
 'एकोऽप्यलुब्धः साक्षी स्यात् बह्वः शृच्योऽपि न स्त्रियः ।
 स्त्रीबुद्धेरस्थिरत्वात्तु दोषैश्चान्येऽपि ये हताः' । एको-
 ऽलुब्धस्तु साक्षी स्यादिति कुल्लूकभट्टधृतपाठः । एको लुब्ध-
 स्वसाक्षी स्यादिति जीमूतवाहनधृतपाठस्तु न युक्तः लुब्ध-
 स्नेहवोऽप्यसाक्षिणो भवितुमर्हन्तीति एकपदव्यर्थतापत्तेः ।
 भवतु वा तत्पाठः तथापि एक इत्यनुरोधात् तन्निषेध-
 मुखेनालुब्धस्यैकस्यानुमतिसत्त्वे धर्मवित्त्वमन्तरेण साक्षित्वं
 बोध्यं इत्यर्थतो न विरोधः अतएव विश्वरूपप्रभृतीनाम् उभ-
 यानुमत एक एव साक्षीति व्याख्याने धर्मविदिति नोक्तं
 दोषैस्तेयादिभिः । तथाच नारदः । 'स्तेनाः साहसिका
 धूर्ताः कितवा योधकाश्च ये । असाक्षिणस्तु ते दृष्टास्तेषु सत्यं
 न विद्यते' । कितवा द्यूतकराः । अपवादमाह उशनाः ।
 'दासोऽन्धो वधिरः कुष्ठो स्त्रीबालस्थविरादयः । एतेऽप्यनभि-
 सम्बन्धाः साहसे साक्षिणो मताः' । स्थविरो ग्लानेन्द्रिय-
 ग्रामः । आदिशब्दात् कितवादयः उभयानुमताभावे शुचि-
 क्रियत्वादिगुणयुक्तश्चैको ग्राह्यः । तथाच व्यासः । शुचि-
 क्रियाश्च धर्मज्ञो योऽन्यत्राप्यनुभूतवाक् । प्रमाणमेकोऽपि
 भवेत् साहसेषु विशेषतः' । अनुभूतवाक् स्थानान्तरे सत्यत्वे-
 नेति । भवदेवभट्टोऽप्येवम् । साहसमाह नारदः । 'मनुष्य-
 मारणं स्तेयं परदारभिमर्षणम् । पारुष्यमनृतञ्चैव साहसं

२१४

व्यवहारतत्त्वम् ।

पञ्चधा स्मृतम् । कात्यायनः । 'अभ्यन्तरस्तु निःक्षेपे साक्ष्य-
मेकोऽपि दापयेत् । अर्थिना प्रहितः साक्षी भवेदेकोऽपि
याचिते । संस्कृतं येन यत् पण्यं तत्तेनैव विभावयेत् । एक
एव प्रमाणं स विवादे परिकौर्त्तितः । संस्कृतं गठितं पण्यं
कुण्डलादि । विष्णुः । 'स्तेयसाहसवाग्दण्डपारुष्यसंग्रहणेषु
साक्षिणो न परीक्षा' इति स्तेयपरदारगमनादिकार्याणां
निह्वेनेनैव क्रियमाणत्वात् देवादेव परम् । साक्षिणो भवन्तीति
न परीक्षा इत्युक्तं तेषां वाक्यन्तु मित्रारिभावादिनिरूपणे-
नैवोपपत्त्यनुपपत्तिभ्यामालोचनीयं न तु वाक्यमात्रादिति
व्यवहारमाहका । अतएव कात्यायनः । 'ऋणादिषु परी-
क्षेत साक्षिणः स्थिरकर्मसु । साहसात्ययिकेनैव परीक्षा कुत्र-
चित् स्मृता' इति । श्रोत्रियादीनामसाक्ष्यमाह नारदः ।
'श्रोत्रियास्तापमा वृद्धा ये प्रव्रजिता नराः । वचनात्तेष्व-
साक्षित्वं नात्र हेतुरुदाहृतः' । दानरत्नाकरे श्रोत्रियमाह
देवलः । एकां शाखां सकल्यां वा षड्भिरङ्गैरधीत्य वा । षट्-
कर्मनिरतो विप्रः श्रोत्रियो नामधर्मवित्' । सकल्यां कल्प-
समावाङ्महितां षड्भिरिति सहार्थं तृतीया वचनादिति
श्रोत्रियत्वादिरूपाभिधानात् न च तत्रान्यो हेतुरित्यर्थः ।
तथाच स्वीयवैदिककर्मकरणव्यग्रतया परकीयकार्ये विस्मरण-
सम्भवात् साक्षित्वरूपलघुकार्यनियोगे तच्छापभयेन व्यव-
हारद्रष्टारोऽपि तान् पृच्छन्तीति तत्साक्ष्यकरणानर्थक्याच्च न
ते साक्षिणः कर्त्तव्याः किन्तु अकृताः स्वयं साक्षिणो भवन्त्येव ।
उभौ तु श्रोत्रियौ स्यातामिति स्मृतेः । वृद्धस्य अपसाक्षित्वं वृद्ध-
त्वादेव ग्लानेन्द्रियत्वादित्यर्थः । मनुः । 'स्त्रीणां साक्ष्यं स्त्रियः
कुर्युर्द्विजानां सदृशा द्विजाः । शूद्राश्च सन्तः शूद्राणामन्या-
नामन्ययोनयः । 'अन्तर्वेश्मन्यरण्ये वा शरीरस्यात्ययेऽपि

व्यवहारतत्त्वम् ।

२१५

च । स्त्रियाप्यसम्भवे कार्यं बालेन स्थविरेण वा । शिष्येण
 बन्धुना वापि दासेन भृतकेन वा । देवब्राह्मणसान्निध्ये साक्ष्यं
 पृच्छेदृतं द्विजान् । उदङ्मुखान् प्राङ्मुखान् वा पूर्वाह्णे वै
 शुचिः शुचीन् । ब्रूहीति ब्राह्मणं पृच्छेत् सत्यं ब्रूहीति
 पार्थिवम् । गोवीजकाञ्चनैर्वैश्यं शूद्रं सर्वैस्तु पातकैः ।
 गोवीजकाञ्चनापहारे यत् पापं तत्तवानृताभिधाने स्यादिति
 वैश्यम् । एतत् साक्ष्यानृताभिधाने भवान् सर्वैः पातकैः
 सम्बध्यत इत्युक्त्वा शूद्रश्च पृच्छेत् 'ब्रह्मघ्ना ये स्मृता लोके ये च
 स्त्रीबालघातिनः । मित्रद्रुहः कृतघ्नाश्च ते ते स्पर्शदतो मृषा' ।
 इति मनूक्तं दूषणं सत्फलञ्च । 'अश्वमेधसहस्रन्तु सत्यञ्च
 तुलया घृतम् । अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेवातिरिच्यते' । इति
 मनुनारदोक्तं आवयेत् । याज्ञवल्क्यः । न ददाति हि यः
 साक्ष्यं जानन्नपि नराधमः । स कूटसाक्षिणां पापैस्तुल्यो
 दण्डेन चैव हि' । कात्यायनः । 'अवीचिनरके वर्षं वसेयुः
 कूटसाक्षिणः' । याज्ञवल्क्यः । 'सत्यां प्रतिज्ञां यस्योचुः
 साक्षिणः स जयी भवेत् । अन्यथा वादिनो यस्य ध्रुवस्तस्य
 पराजयः । वर्णानां हि बधो यत्र तत्र साक्ष्यनृतं वदेत् ।
 तत्पावनाय निर्वाप्यश्नुः सारस्वतो द्विजैः' । गौतमः ।
 'नानृतवचने दोषो जीवनञ्चेत्तदधीनं न तु पापीयसो जीवनं'
 इति । 'द्वैधे बहूनां वचनं समेषु गुणिनां तथा । गुणिद्वैधे
 तु वचनं ग्राह्यं ये गुणवत्तराः' । तेषामिति शेषः । यत्तु
 'साक्षिणां लिखितानाञ्च निर्दिष्टानाञ्च वादिनाम् । तेषा-
 मेकोऽन्यथावादी भेदात् सर्वेऽप्यसाक्षिणः' । इति कात्यायन-
 वचनं तत्तयाणां तुल्यरूपाणां साक्षिणां मध्ये एकस्याप्यन्यथा-
 वादे अपरस्य तत्तुल्यस्य संप्रतिपक्षतया तृतीयस्य किञ्चित्
 वादित्वे तत्र भेदात् परस्परविरुद्धार्थाभिधाने भेदात् साक्षिभ्यो

२१६

व्यवहारतत्त्वम् ।

न निर्णय इति परम् । बृहस्पतिः साक्षिद्वैधे कर्मनिष्ठानां
 ग्रहणमाह गुणिवैधे क्रियावतामित्यनेन । तथा 'साक्षिणी-
 ऽर्थिसमुद्दिष्टान् सत्सु दोषेषु दोषयेत् । अदृष्टं दूषयन् वादी
 तत्समं दण्डमर्हति' इति । तत्समं विवादसमम् । सभा-
 सदादिविदितसाक्षिदूषणमेव ग्राह्यं न तु त्रयवरादिसाक्षिभिः
 प्रतिपाद्यम् । अनवस्थापातादित्याह नारदः । 'सभासदां
 प्रसिद्धं यल्लोकसिद्धमथापि वा । साक्षिणां दूषणं ग्राह्यमसाध्यं
 दोषवर्जनात् । अन्यैश्च साक्षिभिः साध्ये दूषणे पूर्वसाक्षि-
 णाम् । अनवस्था भवेद्दोषस्तेषामप्यन्यसम्भवात् । असाध्यं
 साधनानर्हं सिद्धत्वादोषवर्जनात्' । अनवस्थाविरहात्तस्मात्
 प्रसिद्धदूषणमेव ग्राह्यम् । दूषणमाह कात्यायनः । 'बालो-
 ऽज्ञानादसत्यात् स्त्री पापाभ्यासाच्च कूटक्रतुः । विब्रूयात्
 बान्धवस्नेहात् वैरनिर्यातनादरिः । यः साक्षी नैव निर्दिष्टो
 नाभूतो नैव दर्शितः । ब्रूयान्मिथ्येति तथ्यं वा दण्ड्य सोऽपि
 नराधमः' । यदुत्तरे येन क्रिया प्रदृश्यते तत्राह । 'मिथ्या-
 क्रिया पूर्ववादे कारणे प्रतिवादिनः । प्राङ्न्याये विधिसिद्धौ
 तु जयपत्रं विनिर्दिशेत्' । मिथ्योत्तरे सति पूर्ववादे पूर्व-
 वादिनि क्रिया प्रष्टव्या इति शेषः । तदानीं सन्धिमाह
 बृहस्पतिः । पूर्वोत्तरेऽभिलिखिते प्रक्रान्ते कार्यनिर्णये ।
 द्वयोरुत्तमयोः सन्धिः स्यादयःपिण्डयोरिव' । उत्तापकारण-
 माह स एव । साक्षिसम्भविकल्पस्तु भवेद् यत्रोभयोरपि ।
 दोलायमानौ यौ सन्धिं कुर्यातां तौ विचक्षणौ' । कात्या-
 यनः । 'क्रिया न दैविकी प्रोक्ता विद्यमानेषु साक्षिषु । लेख्ये
 च सति वादेषु न दिव्यं न च साक्षिणः । समत्वं साक्षिणां
 यत्र दिव्यैस्तत्र विशोधयेत्' । एतत् संशयानुच्छेदे बोध्यम् ।
 याज्ञवल्करः । 'निष्कृते लिखितानेकमेकदेशे विभावितः ।

व्यवहारतत्त्वम् ।

२१७

दास्यः सर्वान्रूपेणार्थान्न ग्राह्यस्त्वनिवेदितः' । यो लिखिता-
 नेकं सुवर्णादिकम् अपलपति स एकद्रव्ये साध्यादिभिर्विभा-
 वितः सन् सर्वान् दद्यात् । यद्येकदेशविभावेन वादिनो-
 ऽवसादमवगम्य इदमपरं मया लेखयितुं विस्मृतमिति ब्रूते
 स तस्मै भाषाकाले अनुपपन्नस्तं न दद्यादेतच्च न केवलं वाच-
 निकं किन्तु एकदेशविभावनाद्विजानत एवास्य तदपलापे
 दुःशीलत्वावधारणादपरांशेऽपि तथात्वमेव सम्भाव्यते सत्य-
 विभावकस्यापि प्रक्रान्तविषये यथा वस्तुवादावधारणाद-
 विभावितांशेऽपि सत्यवादित्वसम्भावनमित्येवंरूपतर्कपरम्परा-
 सम्भावनाप्रत्ययानुगृहीतास्मादेव योगीश्वरवचनात् सर्वं दाप-
 नीयमिति निर्णयः । एवञ्च तर्कवाक्यानुसारेण निर्णये क्रिय-
 माणे वस्तुनोऽन्यथात्वेऽपि व्यवहारदर्शिनां न दोषः । तथाच
 गौतमेनापि न्यायाधिगमे तर्कोऽभ्युपायः तेनापि संगृह्य यथा-
 स्थानं गमयेदित्युक्त्वा तस्माद्राजाचार्यावनिन्द्यावित्युपसंहृतम् ।
 एवञ्चास्य न्यायस्य वादिद्वयसाधारणत्वादुभयविषयत्वं वचना-
 नाम् । अतएव कात्यायनः । 'यद्येकदेशप्राप्तापि क्रिया
 विद्येत मानुषी । सा ग्राह्या न तु पूर्णापि दैविकी वदतां
 नृणाम्' । वदतां विवदतामित्यविशेषेण दर्शयति पूर्णापि
 दैविकी समग्रविषयिकापि न ग्राह्या तेनैकदेशप्रतिपादिकया
 मानुष्या क्रियया समस्तसाध्यसिद्धिरिति । न च यद्येषां मध्ये
 एकमपि मया गृहीतं विभावयसि तदा सर्वमेव दातव्यम्
 इति प्रतिज्ञाविषयकत्वेनैकदेशविभावितत्वं वचनस्येति
 जोम्लोकमतानुसारिमैथिलमतं युक्तमिति वाच्यं प्रतिज्ञा-
 विषयत्वे अनेकार्थाभियुक्तेन सर्वार्थव्यपलापिना विभावितैक-
 देशेन देयं यदभियुज्यते इत्यनर्थकं प्रौढिवादेनाभियुज्यमाना-
 दधिकस्याऽपि प्रतिज्ञातस्य दानावश्यकत्वात् न ग्राह्यस्व-

२१८

व्यवहारतत्त्वम् ।

निवेदित इत्यपि व्यर्थम् अनिवेदितस्यापि प्रागज्ञातत्वेन अप्रतिज्ञातस्य सर्वथैव देयत्वात् न च विभावितैकदेशवचनं व्याप्यभूतैकदेशविषयं तस्मिंस्तु प्रतिपादिते व्यापकैकदेश-प्रतीतिरनुमानात् सम्भवतीति वाच्यं विभावितैकदेशानुमित-व्यापकस्यापि न्यायताग्राह्यत्वे सिद्धे न ग्राह्यत्वनिवेदित इत्यभिधानानुपपत्तेः । एवञ्च 'साध्यार्थांश्चे निगदिते साक्षिभिः सकलं भवेत् । स्त्रीसङ्गे साहसे चौर्यं यत्साध्यं परिकल्पितम्' इति कात्यायनवचनं तद्विषयप्रदर्शकम् ऋणनिक्षेपाद्यपङ्कवेऽपि योज्यमिति । यत्तु 'अनेकार्थाभियोगे तु यावत् संशोध-येदनी । साक्षिभिस्तावदेवासी लभते साधितं धनम्' । तद्व्यायनभिन्नपुत्रादिविषयकं तथाहि नानाविधपित्रर्णा-द्यभियुक्तेन अजानता नाहं जानामीति उत्तरवादिना साक्षादिभिर्यावद्वनं प्रतिपादयति तावदेव पुत्रेण दातव्यम् एवमेव विश्वरूपजीमूतवाहनप्रभृतयः । कात्यायनः । 'अनु-मानाद्वरः साक्षी साक्षिभ्यो लिखितं गुरु । अनिरुद्धा त्रियरुषी भुक्तिस्तेभ्यो गरीयसी' । अनुमानं प्रत्यासङ्गलितं तदाह मनुः 'वाह्यैर्विभावयेल्लिङ्गैर्भावमन्तर्गतं नृणाम् । स्वर-वर्णङ्गिताकारैश्चक्षुषा चेष्टितेन च' । स्वरोगद्वटादिः वर्णो-ऽस्वाभाविकः । इङ्गितं स्वेदवेपथु रोमाञ्चादि आकारो विकृतः चक्षुषा कातरेण चेष्टितेन स्थानत्यागादिना । एषाञ्च अन्यथासिद्धेर्दुर्निरूप्यत्वादेभ्यः साक्षी बलवान् इत्यर्थः । मुख-निरूप्यत्वे तु याज्ञवल्करः । 'दिशाद्देशान्तरं याति सृक्कणी परिलेदि च । ललाटं स्विद्यते चास्य मुखं वैवर्ण्यमेति च । परिशुष्यत् ह्रस्वललाटो विरुद्धं बहुभाषते । वाक्चक्षुः पूजयति नो तथौष्ठौ निर्भजत्यपि । स्वभावाद्विकृतिं गच्छेन्ननो वाक्काय-कर्मभिः । अभियोगे च साक्षी च स दुष्टः परिकीर्तितः' ।

व्यवहारतत्त्वम् ।

२१६

न परोक्षं वाच्यं प्रतिवचनेन पूजयति तथोष्ठचक्षुश्च परकीय-
 वीक्षणं निर्भुजति कुटिलीकरोति यदा मनोवाक्काय-
 कर्मभिः स्वभावात् पूर्वोक्तां यथायोग्यां विवृतिं गच्छेत्तदा स
 दुष्ट इत्यर्थः । अतएव श्रीरामायणे । ‘आकाङ्क्षाद्यमानो-
 ऽपि न शक्योऽसौ निगूहितुम् । बलादि विवृणोत्येव भाव-
 मन्तर्गतं नृणाम्’ । आकारो देहधर्मः सुखाप्रसादवैवर्त्यरूपः ।
 नारदः । ‘सुदीर्घेणापि कालेन लिखितं सिद्धिमाप्नुयात् ।
 संजानन्नात्मनो लेख्यमजानंस्तत्तु लेखयेत्’ । सुदीर्घेणेति
 संस्कारोद्बोधकः लिखनसत्त्वादयं चिरेणापि साध्यं दातुं
 शक्नोतीत्यर्थः । लिपिञ्चं स्वहस्तेन लेखयेत् तदञ्चं परहस्ते-
 नेत्याह व्यासः । ‘अलिपिज्ञो ऋणी यः स्यात् लेखयेत्
 स्वमतन्तु सः । साक्षी वा साक्षिणान्येन सर्वसाक्षिसमीपगः’ ।
 बृहस्पतिः । ‘मुषितं घातितं यच्च सीमायाश्च समन्ततः ।
 अकृतोऽपि भवेत् साक्षी ग्रामस्तत्र न संशयः’ । अकृता अपि
 साक्षिणो भवन्तीत्याह तुर्मनुकात्यायनी । अन्ये पुनर-
 निर्दिष्टाः साक्षिणः समुदाहृताः । ग्रामश्च प्राङ्बिवाकश्च
 राजा च व्यवहारिणाम् । कार्येष्वभ्यन्तरो यः स्वादर्थिना
 प्रहितश्च यः । कुल्याकुलविवादेषु भवेद्युक्तेऽपि साक्षिणः ।
 स्मृतिः । ‘दत्तादत्तेऽथ भृत्यानां स्वामिनां निर्गमे सति ।
 विक्रयादानसम्बन्धे क्रीत्या धनमनिच्छति । द्यूते समाह्वये
 चैव विवादे समुपस्थिते । साक्षिणः साधनं प्रोक्तं न दिव्यं न
 च लेख्यकम् । प्रक्रान्ते सहसे वापि पारुष्ये दण्डवाचिके ।
 बलोद्भवेषु कार्येषु साक्षिणो दिव्यमेव च’ । बृहस्पतिः ।
 ‘लेख्यं वा साक्षिणो वापि विवादे यस्य दूषिताः । तस्य
 कार्यं न सिध्येत यावत्तत्र विशोधयेत्’ । तल्लेख्यसाक्षिरूप-
 प्रमाणम् । लेख्यशोधनमाह कात्यायनः । ‘स्वहस्तलेख्य-

२२०

व्यवहारतत्त्वम् ।

सन्देहे जीवतो वा मृतस्य च । तत्स्वहस्तकृतैरन्यैः पत्रै-
 स्तल्लेख्यनिर्णयः । तथा 'समवेतैश्च यदृष्टं वक्तव्यं तत्तथैव च ।
 विभिन्नेनैव कार्यं तु तद्वक्तव्यं पृथक् पृथक् । नापृष्टैरनियुक्तैर्वा
 समं सत्यं प्रयत्नतः । वक्तव्यं साक्षिभिः साक्ष्यं विवादस्थान-
 मागतैः । अनुद्दिग्नेन चित्तेन दुष्टं सम्यग्विदा तु यत् ।
 प्रत्यक्षं तत्स्मृतं कार्यं साक्ष्यं साक्षी तु तद्वदेत् । नारदः ।
 'यः परार्थेऽपहरति स्वां वाचं पुरुषाधमः । आत्मार्यं किं न
 कुर्यात् स पापी नरकनिर्भयः । अर्था वै वाचि नियता वाङ्-
 मूला वाग्विनिःसृताः । यस्तु तां स्तेनयेद्वाचं स सर्वस्तेय-
 कृन्नरः' बौधायनः । 'पञ्च पञ्चनृते हन्ति दश हन्ति गवा-
 नृते । शतमश्वानृते हन्ति सहस्रं पुरुषानृते । हन्ति जातान-
 जातांश्च हिरण्यार्थेऽनृतं वदन् । सर्वं भूम्यनृते हन्ति साक्ष्ये
 साक्षी मृषा वदन्' । बृहस्पतिः । 'यस्य शेषं प्रतिज्ञातं
 साक्षिभिः प्रतिपादितम् । स जयो स्यादन्यथा तु साध्याथं न
 समाप्नुयात्' । याज्ञवल्करः । 'उक्तेऽपि साक्षिभिः साक्ष्ये
 यद्यन्ये गुणवत्तराः । द्विगुणावान्यथा मूयः कूटाः स्युः पूर्व-
 साक्षिणः' । अन्यथा पूर्वविपरीतार्थप्रकारेण कूटा अनादेय-
 वचनाः । तथा । 'यः साक्ष्यं आवितोऽन्येभ्यो निङ्गते
 तमसावृतः । स दाप्योऽष्टगुणं दण्डं ब्राह्मणश्च विवासयेत्' ।
 त्वमन्येभ्यः साक्ष्यं आवयेति वादिना प्रयुक्तो यः आवितः
 कारितव्यात् पदसिद्धिः एवम्भूतोऽपि सभायां निगदकाले
 साक्ष्यं निङ्गते यस्तस्याष्टगुणो दण्डः ।

अथ लिखितम् । तत्र बृहस्पतिः । 'पाश्चात्तिकेऽपि समये
 भ्रान्तिः संजायते यतः । धात्राक्षराणि सृष्टानि पत्रारूढा-
 न्यतः पुरा' । नारदः । 'लेख्यं तु द्विविधं प्रोक्तं स्वहस्तान्य-
 क्तं तथा । असाक्षिकं साक्षिमञ्च सिद्धिर्देशस्थितेस्तयोः ।

व्यवहारतत्त्वम् ।

२२१

ऋतास्तु साक्षिणो यत्र धनिकर्णिकलेखकाः । तदप्यपार्श्व-
 करणमृतेत्वाधि स्थिराययात् । दर्शितं प्रतिकालञ्च पाठितं
 स्मारितञ्च यत् । लेख्यं सिध्यति सर्वत्र मृतेष्वपि च साक्षिषु ।
 लेख्ये देशान्तरस्थे च दग्धे दुर्लिखिते हते । सतस्तत्काल-
 हरणमसतो द्रष्टृदर्शनम् । किन्नभिन्नकृतोन्मृष्टनष्टदुर्लिखितेषु
 च । कर्त्तव्यमन्यलिखितं ह्येष लेख्यविधिः स्मृतः । लेख्यं
 यच्चान्यनामाङ्कं हेत्वन्तरकृतं भवेत् । विप्रतिपत्तौ परीक्ष्यं
 तत्सम्बन्धागमहेतुभिः । स्वलेख्यमसाक्षिकमपि प्रमाणम्
 अन्यद्वारा लेख्यं साक्षिमदिति यथासंख्येनान्वयः । देशस्थिते-
 र्यस्मिन् देशे यादृशलेख्यास्थितिः प्रवर्तते तत्र तादृश्याः तयोः
 सहस्तान्यहस्तकृतलेख्ययोः मृता इति साध्यादौ मृते
 पुत्रादिसंख्यं लेख्यपत्रं न सिध्यति । यद्याधिभोगोऽस्ति तदा
 तदपि प्रमाणमित्यर्थः । व्यक्तमाह कात्यायनः । ‘यत्र पञ्चत्व-
 मापन्नो लेखकः सह साक्षिभिः । ऋणिको धनिकश्चैव नैनं
 पत्रं प्रमापयेत्’ । दर्शितमिति तथाविधमपि पूर्वमृणिकादि-
 सन्निधौ स्वयमन्येन वा दर्शितं स्मारितं वा तदपि सिध्यती-
 त्यर्थः । सतो देशान्तरस्थपत्रस्य तत्कालहरणं पत्रानयनकाल-
 प्रतीक्षणम् असतो दग्धादेः तदवलोककोपन्यासः । लेख्यमिति
 यत् पत्रं केनापि हेतुना अन्यनामचिह्नितं तत्र विप्रतिपत्तौ
 यन्नाम्ना पत्रं तेन सहास्य विश्वासहेतुभूतसम्बन्धावगमरूप-
 कारणैर्निर्णेतव्यमिति । बृहस्पतिः ‘सुमृष्टशिशुभीतार्त्तैः
 स्त्रीमत्तव्यसनातुरैः । निशापत्सु बलात्कारैः कृतं लेख्यं न
 सिध्यति’ । व्यासः । ‘दासास्वतन्त्रबालैश्च स्वीकृतञ्चैव यद्वेत् ।
 प्रमाणं नैव तल्लेख्यमिति शास्त्रविदो विदुः’ । मिताक्षरायां
 स्मृतिः । ‘पूगश्रेणीगणादीनां या स्थितिः परिकीर्त्तिता ।
 तस्यास्तु साधनं लेख्यं न दिव्यं न च साक्षिणः’ । पूगस्तु

२२२

व्यवहारतत्त्वम् ।

‘समूहो वणिगादीनां पूगः स परिकीर्तितः’ इति कात्यायन-
वचनोक्तः आदिशब्दात् विजातीयलाभः तेन ग्रामनगरादि
श्रेणी तु सजातीयसमूहः ताम्बूलिककुविन्दकर्मकारकादिः
गण एकक्रियार्थोद्यतः लेख्यस्य च अप्रामाण्यशङ्कायां लेख्य-
ग्राहिणां प्रागुक्तशोधनप्रकारेण तन्निरसनीयं तत्पुत्रेण तु
लेख्याधीनो भोग एव उपन्यासो न तु लेख्यमुद्धरणीयम् ।
तदाह कात्यायनः । ‘आहर्त्ता भुक्तियुक्तोऽपि लेख्यदोषान्
विशोधयेत् । तत्सुतो भुक्तिदोषांस्तु लेख्यदोषांस्तु नाप्नुयात्’ ।
वृहस्पतिः । उद्धरेल्लेख्यमाहर्त्ता तत्सुतो भुक्तिमेव हि । अभि-
युक्तः प्रमीतश्चेत् तत्सुतोऽपि तदुद्धरेत्’ । अभियुक्त इति
लेख्यस्य साधुत्वज्ञापनार्थम् अभियुक्ते लेख्यप्रहृतारि तद-
विज्ञाप्यैव सृते तत् पुत्रेण साधुत्वं साध्यमित्यर्थः । तत् साध-
नञ्च स्वहस्तलिखनादिनेति प्रागुक्तम् ।

अथ भुक्तिः । तत्र याज्ञवल्करः । ‘पश्यतो ब्रूवतो हानि-
भूमेर्विंशतिवार्षिकी । परेण भुज्यमानाया धनस्य दश-
वार्षिकी’ । विवादमकुर्वतः समक्षं भूस्वामिनः परेणा-
सपिण्डादिना भुज्यमानाया भूमेर्विंशतिवर्षनिर्वृत्ता स्वत्व-
हानिः अत्र लोकव्यवहारकर्मत्वाद्वर्षगणना सावनेन । तथाच
विष्णुधर्मोत्तरम् । ‘सत्रान्युपास्यान्यथ सावनेन लौक्यञ्च यत्
स्यात् व्यवहारकर्म’ । तत्रैव । ‘सा वने च तथा मासि
त्रिंशत्सूर्योदयाः स्मृताः’ इति । विशेषयति व्यासः । ‘वर्षाणि
विंशतिर्यस्य भूर्भुक्ता तु परैरिह । सति राज्ञि समर्थस्य तस्य
सेह न सिध्यति’ । समर्थस्य बालत्वादिदोषरहितस्य । धनस्य
दशवर्षनिर्वृत्ता स्वत्वहानिः । तथाच मनुनारदौ । ‘यत्-
किञ्चिद्दशवर्षाणि सन्निधौ प्रेक्षते धनी । भुज्यमानं परैस्तूष्णीं
न स तल्लब्धुमर्हति’ । यत्किञ्चित् धनजातं समक्षमेव

व्यवहारतत्त्वम् ।

२२३

प्रीत्यादिव्यतिरेकेण परैर्दशवर्षाणि भुज्यमानं स्वामी तूष्णीं
 प्रेक्षते माभुज्यतामिति न प्रतिसिध्यति नासौ तल्लब्धः योम्यो
 भवति तत्र तस्य स्वाम्यं नश्यतीत्यर्थः । गोतमः । 'अजडा-
 पौगण्डधनं दशवर्षभुक्तं परैः सन्निधौ भोक्तुः' इति । जडो
 विकलेन्द्रियः पौगण्डः पूतोऽनुत्पन्नश्मश्रूगण्डः कपोलो यस्य
 सः । तदाह नारदः । 'बाल आषोडशाद्वर्षात् पौगण्डश्चापि
 शब्दयते' । अत्र पौगण्डः प्रकीर्तित इति कुल्लूकभट्टेन
 लिखितम् । तत्पाठेऽपि अपौगण्डस्तु पौगण्ड इति द्विरूप-
 कोषादविरुद्धः । तस्माद् याज्ञवल्क्यादिवचनादिंशतिवर्ष-
 दशवर्षादिकालैर्भोग एव स्वत्वं जनयति तथाकालप्राप्तिबलेन
 वीजमङ्कुरं जनयति तरवश्च कुसुममिति स्वामिना च अपरि-
 त्यक्तेऽपि शास्त्रोक्तकालीनभोगात् स्वाम्यमन्यस्य भवति ।
 यथा जयेन राज्ञः परराष्ट्रधने इति । एवमेव श्रीकरबाल-
 कजोग्लोकभवदेवभट्टशूलपाणिकुल्लूकभट्टचण्डेश्वरमन्त्रिनव्यवर्द्ध-
 मानोपाध्यायप्रभृतयः व्यवहारोऽपि तादृगेव एतद्विरुद्धवच-
 नान्यन्यथा व्याख्यानानि । तत्रोपेक्षया स्वत्वहानिं भुक्त्या च
 स्वत्वमाह नारदः । 'भुज्यमानान् परैरर्थान् यस्तान्मोहादुपे-
 क्षते । समक्षं तिष्ठतोऽप्यस्य तान् भुक्तिः कुरुते वशे' । व्यक्त-
 माह बृहस्पतिः । 'स्थावरं सिद्धिमाप्नोति भुक्त्या हानिमुपे-
 क्षया' । उपेक्षया क्षमया तत्करणञ्च स्वामिनः सुशीलत्व-
 महेच्छत्वदयालुत्वादि । एवञ्च विंशतिवर्षात् पूर्वं स्वकृति-
 साध्यकर्षणपालनाद्यैरुत्पन्नद्रव्य एव स्वत्वम् । एवं दशवर्षात्
 पूर्वं स्वकृतिसाध्यदोहनपालनाद्यैरुत्पन्नदुग्धादावेव स्वत्वं
 तत्तत्कालपरतस्तु भूमौ गवादिधनेऽपि स्वत्वमिति । पूर्वं
 तत्तन्नाशकभोगे तु चौर्यदोषो भवत्येवाभोगे तु स्वत्वहानिराध्या-
 दीनां व्यावर्त्तयति । पश्यतो ब्रूवत इत्यभिधाय याज्ञवल्क्यः ।

२२४

व्यवहारतत्त्वम् ।

‘आधिसीमोपनिक्षेपजडबालधनैर्विना । तथोपनिधिराजस्त्री-
 श्रोत्रियाणां धनैरिह’ । आधिर्बन्धकद्रव्यम् उपनिक्षेपस्तु
 वासनस्थमनाख्याय समुद्रं यद्विधीयते’ इति । नारदोक्तः ।
 ‘वासनं निक्षेपाधारभूतं सम्पुटादिकं समुद्रं ग्रन्थादियुतं
 जडोबुद्धिविकलः बालोऽप्राप्तषोडशवर्षः उपनिधिः प्रीत्या
 भोगार्थमर्पितः । ततश्च आध्यादिभिर्जडादिधनैश्च विनाऽन्यानि
 धनानि उक्तभोगकाले स्वामिनो नश्यन्ति एतानि तु स्वामि-
 नो न नश्यन्ति न वा भोक्तुर्भवन्ति’ । मिताक्षरायां स्मृतिः ।
 ‘द्वारमार्गक्रियाभोगजलवाहादिषु क्रिया । भुक्तिरेव तु गुर्वी
 स्यान्न दिव्यं न च साक्षिणः’ । यान्नवल्करः । ‘आगमो
 ह्यधिको भोगादिना पूर्वक्रमागतात् । नागमः कारणं तत्र
 भुक्तिः स्तोकापि यत्र न । आगमस्तु कृतो येन सोऽभियुक्त-
 स्तमुद्धरेत् । न तत्सुतस्तत्सुतो वा भुक्तिस्तत्र गरीयसी । योऽभि-
 युक्तः परेतः स्यात्तस्य रिक्थी तमुद्धरेत् । न तत्र कारणं भुक्ति-
 रागमेन विना कृता’ । भूम्यादावागमः पूर्वपुरुषक्रमाना-
 गतभोगाद् बलवान् अतः क्रमागतभोग आगमाद् बलवान् ।
 तथाच बृहस्पतिः । ‘अनुमानात् गुरुः साक्षी साक्षिभ्यो
 लिखितं गुरु । अव्याहता त्रिपुरुषी भुक्तिस्तेभ्यो गरीयसी’ ।
 त्रिपुरुषभोगमाह व्यासः । ‘प्रपितामहेन यद्भुक्तं तत्पुत्रेण
 विना च तम् । तौ विना यस्य पित्रा च तस्य भोगस्त्रिपुरुषः ।
 पिता पितामहो यस्य जीवेच्च प्रपितामहः । त्रयाणां जीवतां
 भोगो विज्ञेयस्त्वेकपुरुषः’ आगमोऽपि बलवान्न भवति यत्र
 स्तोकापि भुक्तिर्नास्ति । तथाच नारदः । ‘विद्यमानेऽपि
 लिखिते जीवत्स्वपि च साक्षिषु । विशेषतः स्यावराणां यत्र
 भुक्तं न तत् स्थिरम्’ इति दीपकलिका । यत्र वादिनौ
 स्वस्वागमबलप्रवृत्तौ अगमयोश्च पूर्वापरभावो नास्ति तत्र यस्य

व्यवहारतत्त्वम् ।

२२५

सागमो बलीयान् न तु अन्यस्येत्यर्थ इति मितान्तरा ।
 वर्षाद्यानागमपौर्वापर्यनिश्चयस्तत्र 'सर्वेष्वेव विवादेषु बल-
 वत्युत्तरा क्रिया । आधी प्रतिग्रहे क्रीते पूर्वा तु बलवत्तरा' ।
 इति याज्ञवल्क्यवचनान्निर्णयः । आगमस्त्विति आसम्यक्
 नम्यते प्राप्यते स्वीक्रियते येन स आगमः क्रयादिरिति व्यव-
 हारमाहका । आगमः साक्षिपत्वादिकमिति दीपकलिका ।
 आगमो धनोपार्जनोपायः क्रयादिरिति मेथिलाः । तत्रान्ये-
 नाभियुक्तस्तत्कूटतामुद्धरेत्तत्पुत्रपौत्रौ नागममुद्धरेतां किन्तु
 भुक्तिरेव । तत्र प्रमाणं विशेषयति बृहस्पतिः । 'आहर्त्ता
 शोधयेत् भुक्तिमागमञ्चापि संसदि । तत्सुतो भुक्तिमेवैकां
 पौत्रादिषु न किञ्चन' । इदं शूलपाणिधृतं तत् पुत्रादिर्न
 किञ्चनेति मेथिलधृतम् । आहर्त्ता अर्जनकर्त्ता अत्र पुत्रस्य
 भुक्तिशोधनमात्रम् । भुक्तिशोधनमाहतुर्व्यासकात्यायनौ ।
 सागमो दीर्घकालश्च निच्छिद्रोऽन्यरवोज्झितः । प्रत्यर्थिसन्नि-
 धानञ्च भोगः पञ्चाङ्ग इष्यते' । इष्यते प्रमाणत्वेन सागमः
 क्रयादियुक्तः । एष च भूमिविषयकविंशतिवर्षधनविषयक-
 दशवर्षान्यूनकालभोगपरः । योऽभियुक्त इत्यादि यो भोगे
 क्रियमाणे परेणाभियुक्तः सन् परतोऽमृतः स्यान्नागममुद्धृत-
 वान् तदा तत्पुत्रादिरागममुद्धरेत् । तथाच नारदः । 'अथा-
 रुढविवादस्य प्रेतस्याव्यवहारिणः । पुत्रेण सोऽर्थः संशोध्यो
 न तु भोगो निवर्त्तयेत्' विवादे सति शेषः । भोगः केवल-
 भोगः । तथाच स एव । 'आदौ तु कारणं दानमध्ये भुक्तिस्तु
 सागमा' इति एष स विवादभोगः षष्ठ्यब्देतरपरः । तथा-
 विधभोगस्यागमं विनापि प्रामाण्यात् । तथा व्यासः । 'वर्षाणि
 विंशतिं भुक्त्वा स्वामिना व्याहृता सती । भुक्तिः सा पौरुषी
 भूमेर्द्विगुणा तु द्विपौरुषी । त्रिपौरुषी तु त्रिगुणः न तत्रान्वेष्य

२२६

व्यवहारतत्त्वम् ।

आगमः' । एतद्वचनमसमञ्जसभोगविषयकमिति समञ्जविंशति-
वर्षाभोगविषयकवचनेनाविरोधः । एतादृक् स्मृत्युक्तकाल एव ।
कात्यायनः । 'स्मार्त्तकाले क्रिया भूमेः सागमा भुक्तिरिष्यते ।
अस्मार्त्तं त्वागमाभावात् क्रमाक्षिपुरुषागता' । षष्टिवर्षेक-
पुरुषभुक्तो विपुरुषभुक्तिव्यपदेशस्य फलमाह न तत्रेत्यादि ।
अतएव नारदः । 'अन्यायेन तु यदुभुक्तं पित्रा पूर्वतनेस्त्रिभिः ।
न तत् शक्यमपाकर्तुं क्रमाक्षिपुरुषागताम्' । अन्यायेनेत्यत्रा-
नागममिति शूलपाणिधृतपाठः । तुरप्यर्थः पित्रा सह पितर-
मादाय त्रिभिरित्यर्थः । यत् 'अनागमस्तु यो भुङ्क्ते बह्व-
न्यब्दशतानि च । चौरदण्डेन तं पापं दण्डयेत् पृथिवी-
पतिः' । इति तस्य वचनं दण्डविधायकं न तन्मन्त्रार्थपरं
धर्मशास्त्रविरोधात् तदाह स एव । 'यत्र विप्रतिपत्तिः स्यात्
धर्मशास्त्रार्थशास्त्रयोः । अर्थशास्त्रार्थमुत्सृज्य धर्मशास्त्रार्थ-
माचरेत्' । एवमेव शूलपाण्युपाध्यायाः । वस्तुतस्तु अना-
गममिति दण्डविधायकवचनं स्त्रीधननृपधनपरम् । 'स्त्रीधनञ्च
नृपेन्द्राणां न कदाचन जीर्यति । अनागमं भुज्यमानमपि
वर्षशतैरपि' इति स्वत्वनिषेधकवचनान्तरैकवाक्यत्वात् । यत्र
विप्रतिपत्तिः स्यादिति वचनस्याप्येतदुदाहरणम् । यत्रैकस्य
जयेऽवधार्यमाणे मित्रलब्धिरपरस्य जयेऽवधार्यमाणे धर्म-
लब्धिस्तत्र । 'हिरण्यभूमिलाभेभ्यो मित्रलब्धिर्वरायतः । अतो
यतेत तत्प्राप्ताविति वेदविदां मतम्' इति । याज्ञवल्क्योक्तार्थ-
शास्त्रार्थमुत्सृज्य क्रोधलोभविवर्जित इति । धर्मशास्त्रार्थ-
मवलम्ब्य व्यवहारं पश्येत् अतएव 'सभ्येनावश्यवक्तव्यं धर्मार्थ-
सहितं वचः' । इति कात्यायनोक्तं भवदेवभट्टास्तु व्यासवचनं
प्रतिवादिनोऽसन्निधाने पुरुषैकद्वयभोगाभिप्रायम् । त्रैपुरुष-
भोगस्य तत्रैव प्रमाणत्वादित्याहुः ।

व्यवहारतत्त्वम् ।

२२७

अथ भुक्तिस्त्वापवादः । बृहस्पतिः । 'भुक्तिस्त्वेपुरुषी सिद्धेदपरंषां न संशयः । अनिवृत्ते सपिण्डत्वे सकुल्यानां न सिद्धति । अस्वामिना च यङ्गकं गृहचेत्रापणादिकम् । सुहृदभ्युसकुल्यस्य न तद्भोगेन हीयते । विवाह्यश्रीत्रियैर्भुक्तं राज्ञामात्यैस्तथैव च । सुदीर्घेणापि कालेन तेषां तत्तु न सिद्धति' । आपणो विक्रयस्थानं विवाह्यो जामाता ।

अथ युक्तिः । नारदः । 'उल्काहस्तोऽग्निदो ज्ञेयः शस्त्र-पाणिश्च घातकः । केशाकेशि गृहीतश्च युगपत्पारदारिकः । कुटालपाणिर्विज्ञेयः सेतुमेत्ता समीपगः' । तथा । 'कुठारहस्तश्च वनच्छेत्ता प्रकीर्तितः । प्रत्यक्षचिह्नैर्विज्ञेयो दण्डपारुथ्य-कक्षरः । असाक्षिप्रत्यया ह्येते पारुथ्ये तु परीक्षणम्' । प्रत्य-क्षचिह्नैः रुधिराक्तखड्गादिभिः । पारुथ्ये वाक्पारुथ्ये । शङ्खः 'लोमहस्तश्च चौरः' इति नारदः । 'अभोक्षण' देश्यमानोऽपि प्रतिहन्यान्न तद्वचः । त्रिचतुःपञ्चकृत्वो वा परतोऽर्थं तमा-वहेत्' । यदा धनिकेनाधर्मार्णिकस्त्रिचतुःपञ्चकृत्वो वा त्वं मे ऋणं धारयसीति पुनः पुनर्देश्यमानोऽपि न तद्वाक्यं प्रति हन्ति तदोत्तरकालमनेनाभ्युपगतोऽयमर्थ इत्यवधार्य तमर्थ-मृणिकाय दापयेदित्यर्थः ।

अथ शपथः । नारदः । 'युक्तिष्वप्यवसन्नासु शपथै-रेनमर्दयेत् । अर्थकालबलापेक्षमग्न्यम्बुसुकृतादिभिः' । एनं विचार्यमाणमर्थम् अर्दयेत् पीडयेन्निर्णयेदित्यर्थः । अर्थस्य विवादास्पदस्य बलं बह्वल्पभावः कालस्य च बलं पुण्यापुण्यत्वं तदपेक्षं यथा स्यादित्यर्थः । दुर्वाकरत्वस्य पुक्षादिस्पर्शस्य चाग्ने दर्शनोयत्वात् । अत्र मयैतत् कृतं नवेति प्रतिज्ञामुच्चार्य अग्नौ जले वा हस्तं प्रक्षिपेत् । एतन्निष्ठात्वे मम सुकृतं नश्येदिति वा ब्रूयात् । नतु अग्निपरीक्षां जलपरीक्षां वा

२२८

व्यवहारतत्त्वम् ।

कुर्यात् इत्यभिप्रायवर्णनं युक्तं तस्यामहाभियोगविषयकत्वेन
 शपथसमभिव्याहारानर्हत्वात् । सुकृतादिभिरित्यादिना दुर्वा-
 सत्याभ्युपग्रहः । तथाच विष्णुः । 'सर्वेष्वेवार्थजातेषु मूल्यं
 कनकं प्रकल्पयेत् । तत्र कृष्णलोने शूद्रं दुर्वाकरं शापयेत् ।
 द्विकृष्णलोने तिलकरं त्रिकृष्णलोने जलकरं चतुःकृष्णलोने
 स्वर्णकरं पञ्चकृष्णलोने सीतोद्भूतमहीकरं सुवर्णाङ्गेनि कौशो-
 देयः शूद्रस्य यथासमये विहिता क्रिया तथा द्विगुणैर्धनैः राज-
 न्यस्य त्रिगुणैर्धनैः वैश्यस्य चतुर्गुणैर्धनैः ब्राह्मणस्येति' । कृष्णलः
 काञ्चनरत्तिका तन्मूल्यादूने कृष्णलोने एवमन्यत्र । मनुः ।
 'सत्येन शापयेद्विप्रं क्षत्रियं वाहनायुधैः । गोवीजकाञ्चनै-
 र्वैश्यं शूद्रं सर्वैस्तु पातकैः । पुत्तदारस्य वाप्येवं शिरांसि स्पर्शयेत्
 पृथक्' । ब्राह्मणेन मयेतत् कृतं न कृतं वेति प्रतिज्ञासुच्चार्य
 सत्यमिति वक्तव्यम् । तथैव क्षत्रियेण वाहनायुधं स्पर्शय्यं तथैव
 वैश्येन गोवीजकाञ्चनानामन्यतमं स्पर्शय्यं शूद्रेण तु पूर्वोक्तं सर्व-
 मेव स्पर्शय्यं तेषां वृथाकृतस्पर्शानां पातकहेतुत्वात् पातक-
 शब्देन निर्देशः । हलायुधोऽप्येवम् । दैवक्रियाविषयमाह
 नारदः । 'अरण्ये निर्जने रात्रावन्तर्वंशमनि साहमे । न्यासाप-
 हरणे चैव दिव्या सन्नयति क्रिया' । बृहस्पतिः । 'देवब्राह्मण-
 पादांश्च पुत्तदारशिरांसि च । एते तु शपथाः प्रोक्ता मनुना
 स्वल्पकारणे । साहमेत्यभिशापं च दिव्यानि तु विशोधनम्' ।
 अत्र शपथदिव्यश्रोः पृथक्त्वप्रतीतिः । शपथेन दिव्यधर्माः
 किन्तु वैधे कर्मणि तत्र शोचार्थं स्नानाचमनादिमात्रं
 कार्यम् । दिव्यानि तु दिव्यतत्त्वे कथितानि नात्र लिखि-
 तानि । अत्राभियुक्तेन शपथः कर्त्तव्य इत्युक्तम् । उभयेच्छ्र-
 याभियोक्तापीत्याह नारदः । 'अभियोक्ता शिरोवर्त्ती सर्वत्रैव
 प्रकीर्त्तितः । इच्छयान्यतरः कुर्यादितरो वक्तयेच्छ्रः' । इतरः

व्यवहारतत्त्वम् ।

२२८

शपथकर्तृभिन्नः । तथा कात्यायनः । ‘आचतुर्दशकादङ्गो यस्य नो राजदैविकम् । व्यसनं जायते घोरं स ज्ञेयः शपथे शुचिः’ । व्यसनमापत् घोरमतिपीडाकरं तथाच कोशाधिकारि यस्य पश्येदित्यनुवृत्तौ विष्णुः । ‘रोगोऽग्निर्ज्ञातिमरणं राजातङ्कमथापि वा । तमशुद्धं विजानीयात् तथाशुद्धं विपर्ययात्’ । कात्यायनः । ‘तस्यैकस्य न सर्वस्य जनस्य यदि सम्भवेत् । रोगोऽग्निर्ज्ञातिमरणमृणं दद्यात् दमश्च सः । ज्वरातिसारविस्फोटगूढास्थिपरिपीडनम् । नेत्ररुग्गल-रोगश्च तथोन्मादः प्रजायते । शिरोरुग्दमङ्गश्च दैविका व्याधयो नृणाम्’ । तस्यैकस्येति न तु देशव्यापकमरणादिः । मनुः । ‘न वृथा शपथं कुर्यात् स्वल्पेऽप्यर्थे नरो बुधः । वृथा हि शपथं कुर्वन् प्रेत्य चेह च नश्यति । कामिनीषु विवाहेषु गवां भक्ष्ये तथेत्सने । ब्राह्मणाभ्युपपत्तौ च शपथे नास्ति पातकम्’ । कामिनौष्विति रहसि कामिनौसन्तोषार्थं वृथा शपथ एवं विवाहसिद्धयर्थं गोप्राप्त्यर्थम् आवश्यकहोमेत्यनार्थं ब्राह्मणरक्षार्थमङ्गीकृतधनादौ । यमः । ‘वृथा तु शपथं कृत्वा कौटस्य बधसंयुतम् । अनृतेन च युज्येत बधेन च तथा नरः । तस्मान्न शपथं कुर्यान्नरो मिथ्यावधेष्मितम्’ । कौटस्येति प्राणिमात्रोपलक्षणं तद्वधपापेन वृथा शपथकर्त्ता युज्येत इत्यर्थः ।

अर्थनिर्णयः । तत्र नारदः । ‘यस्योक्तुः साक्षिणः सत्यां प्रतिज्ञां स जयौ भवेत् । अन्यथा वादिनो यस्य ध्रुवस्तस्य पराजयः । स्वयमभ्युपपन्नोऽपि स्वचर्यावसितोऽपि सन् । क्रियावसन्नोऽप्यर्हेत परं सभ्यावभारणम् । सभ्यैरवधृतः पश्चात् स शास्यः शास्त्रमार्गतः’ । यस्य वादिनः प्रतिवादिनो वा साक्षिण इत्युपलक्षणम् । साक्षिलिखितभुक्तिशपथानां मध्ये-

२३०

व्यवहारतत्त्वम् ।

ऽन्यतमप्रमाणं यस्य प्रतिज्ञायाः सत्यत्वप्रतिपादकं स एव जयी अन्यथा पराजित इति प्रत्येतव्यम् । स्वयमभ्युपपन्नः आत्मनैवाङ्गीकृतस्वपराजयः स्वचर्यावसितः कम्पस्वेदवैवर्ण्यादिना पराजितत्वेनावधृतः क्रियावसन्नः साध्यादिना प्राप्तपराजयः परमनन्तरं सभ्यावधारणमर्हेत सभासदां मिथिलानामयं पराजित इति । निर्णयमर्हेत आकाङ्क्षेत स शास्त्रविधिना शास्यः । निर्णयस्य फलमाह बृहस्पतिः । 'प्रतिज्ञाभावनाद्वादी प्राड्विवाकादिपूजनात् । जयपत्रस्य चादानात् जयी लोके निगद्यते' । जयपत्रस्य लिखनप्रकारमाह स एव । 'यद्बृहत्तं व्यवहारेषु पूर्वपक्षोत्तरादिकम् । क्रियावधारणोपेतं जयपत्रेऽखिलं लिखेत् । पूर्वोक्तक्रियायुक्तं निर्णयान्तं यदा नृपः । प्रदद्याज्जयिने पत्रं जयपत्रं तदुच्यते' । कात्यायनः । 'अर्थिप्रत्यर्थिवाक्यानि प्रतिमाक्षिवचस्तथा । निर्णयश्च तथा तस्य यथाचारधृतं स्वयम् । एतद् यथाक्षरं लेख्यं यथापूर्वं निवेशयेत् । सभासदश्च ये तत्र धर्मशास्त्रविदस्तथा' । ततश्च भाषोत्तरे क्रिया च यत्र साध्यादिकं निर्णयो जयपराजयावधारणं निर्णयकालावस्थितमध्यस्थाननिषेधार्थं सर्वं लेखनीयं निरूपणस्य सम्यक्त्वप्रदर्शनार्थं तथाहि भाषोत्तरलिखनं हेत्वन्तरेण पुनर्न्यायप्रत्यवस्थाननिषेधार्थं न हि न गृहीतमिति मिथ्योत्तरेण पराजितस्य पुनः परिशोधितं मयेति प्रत्यवस्थानं सम्भवति । प्रमाणलिखनन्तु पुनः प्रमाणान्तरेण न्यायनिषेधार्थम् । तदाह कात्यायनः । 'क्रियां बलवतीं त्यक्त्वा दुर्वलात् योऽवलम्बते । न जयेऽवधृते सभ्यैः पुनस्तां नाग्रयात् क्रियाम् । निर्णीति व्यवहारे तु प्रमाणमफलं भवेत् । लिखितं माक्षिणो वापि पूर्वमावेदितं न चेत् । यथा पक्षेषु धान्येषु निष्कलाः प्रावृषो गुणाः । निर्णीतव्यवहाराणां प्रमाणम-

व्यवहारतत्त्वम् ।

२३१

फलन्तथा' । निर्णयोत्तरकृत्यमाह मनुः । 'अथ उपव्ययमानन्तु
कारणेन विभावितम् । दापयेद्वनिकस्यार्थं दण्डलेशश्च
शक्तिः' । अपव्ययमानम् अपलपन्त कारणेन साध्यादि-
प्रमाणेन । याज्ञवल्क्यः । 'ज्ञात्वापराधं देशश्च कालं बलम-
थापि वा । वयः कर्म च वित्तञ्च दण्डं दण्डेषु दापयेत्'
मनुः । 'तौरितं चानुशिष्टञ्च यत्र कचन सम्भवेत् । कृतं
तद्धर्मतो विद्यात् न तत् भूयो निवर्त्तयेत्' । अनुशिष्टसाध्यादि-
निर्णीतम् अतएव तौरितं प्राड्विवाकादिभिः समापितम् ।
तद्विवादपदं पुनर्न निवर्त्तयेदित्यर्थः । यत्र तौरितानुशिष्टयो-
रप्यधर्मकृतत्वं मत्वा पराजयौ पुनर्द्विगुणं दण्डमङ्गीकृत्य
प्रत्यवतिष्ठते । तत्र पुनर्न्यायदर्शनमाह नारदः । 'तौरितं
चानुशिष्टञ्च यो मन्येत विधर्मतः । द्विगुणं दण्डमादाय तत्
कार्यं पुनरुद्धरेत्' । असहिचारे तु विचारान्तरमाह स एव ।
'असाक्षिकन्तु यद् दृष्टं विमार्गेण च तौरितम् । असम्मत
मतैर्दृष्टं पुनर्दर्शनमर्हति' । असाक्षिकमित्यप्रमाणकोपलक्ष-
णम् । याज्ञवल्क्यः 'दुर्दृष्टांस्तु पुनर्दृष्ट्वा व्यवहारान्नृपेण तु ।
सभ्याः स जयिनोदण्ड्याविवादाद्विगुणं दमम् । साक्षिसभ्याव-
सन्नानां दूषणे दर्शनं पुनः । सुचर्यावसितानान्तु नास्ति
पौनर्भवो विधिः' । साक्षिवचनेन सभ्यावधारणेन च प्राप्ताव-
सादानां पुनर्न्यायदर्शनं स्वव्यापारेण विरुद्धभाषादिना
प्राप्तावसादानान्तु नास्ति पुनर्न्यायः । बृहस्पतिरपि । 'पला-
यनानुत्तरत्वादप्यपचाश्रयेण च । हीनस्य गृह्यते वादो न
स्ववाक्यजितस्य च' । मनुः । 'बलादत्तं बलाद्भुक्तं बलाद्वा
लिखितञ्च यत् । सर्वान् बलकृतानर्थानकृतान् मनुरब्रवीत्' ।
याज्ञवल्क्यः । 'बलोपाधिविनिर्मुक्तान् व्यवहारान्निवर्त्तयेत् ।
स्त्रीनक्तमन्तरागारवद्विर्ग्रामकृतांस्तथा । स त्तोन्नतार्त्तव्यसनि

२३२

व्यवहारतत्त्वम् ।

बालभीतादियोजितः । असम्बन्धकृतश्चैव व्यवहारो न सिद्धति' ।
 उपाधिश्चलमिति शूलपाणिः । उपाधिर्भयादिरिति विज्ञाने-
 श्वरः । तन्मते भीतादियोजित इत्युक्तवचनेन पौनरुक्तम् ।
 वहिर्ग्रामः वहिर्देशः । मत्तो मद्यादिना उन्मत्तो वातादिना
 व्यसनी द्यूताद्यासक्तः । असम्बन्धो वादिनियुक्तव्यतिरिक्त
 उदासीनः । आदिपटादस्वतन्त्रदासपुत्रादेर्ग्रहणम् । तथाच
 नारदः । 'स्वतन्त्रोऽपि हि यत् कार्यं कुर्याच्चाप्रकृतिं गतः ।
 तदप्युक्तमेवाहुरस्वातन्त्रस्य हेतुतः । कामक्रोधाभिभूता वा
 भयव्यसनपौडिताः । रागद्वेषपरीताश्च ज्ञेयास्त्वप्रकृतिं गताः ।
 तथा दासकृतं कार्यमकृतं परिचक्षते । अन्यत्र स्वामिसन्दे-
 हान्न दासः प्रभुरात्मनः । पुत्रेण च कृतं कार्यं यत् स्याद-
 च्छन्दतः पितुः । तदप्युक्तमेवाहुर्दासपुत्रौ च तौ समौ' ।
 एतच्च कुटुम्बभरणातिरिक्तविषयं 'कुटुम्बार्थेऽभ्यधीनोऽपि
 व्यवहारं यमाचरेत् । स्वदेशे वा विदेशे वा तं ज्यायान्न
 विचालयेत्' इति मनुवचनात् कुटुम्बमवश्यभरणीयम् । अभ्य-
 धीनः परतन्त्रपुत्रदासादिः । व्यवहारमृणादिकं ज्यायान्
 स्वतन्त्रः न विचालयेत् अनुमन्येत । तथाच नारदः ।
 'स्वातन्त्र्यन्तु स्मृतं ज्यैष्ठे ज्यैष्ठं गुण वयः कृतम् । अस्वतन्त्राः
 प्रजाः सर्वाः स्वतन्त्रः पृथिवीपतिः । अस्वतन्त्रः स्मृतः शिष्य
 आचार्यस्य स्वतन्त्रता । अस्वतन्त्राः स्त्रियः सर्वाः पुत्रादासाः
 परिग्रहाः । स्वतन्त्रस्तत्र तु गृही यस्य तत् स्यात् क्रमा-
 गतम् । गर्भस्थैः सदृशो ज्ञेयः अष्टमादत्तरात् शिशुः ।
 बाल आषोडशाद्वर्षात् पौगण्ड्योऽपि निगद्यते । परतो व्य-
 हारश्च स्वतन्त्रः पितरावृते । जीवतोर्न स्वतन्त्रः स्याज्जरयापि
 समन्वितः । तयोरपि पिता श्रेयान् वीजप्राधान्यदर्शनात् ।
 अभावे वीजिनो माता तदभावे च पूर्वजः' । परिग्रहा अनु-

शुद्धितत्त्वम् ।

२३३

जीविप्रभृतयः । तथाच बृहस्पतिः । 'पितृव्यभ्रातृपुत्रस्त्री-
दासशिष्यानुजीविभिः । यद् गृहीतं कुटुम्बार्थं तद् गृही-
दातुमर्हति' कात्यायनः । कुटुम्बार्थमशक्तेन गृहीतं व्याधि-
तेन वा । उपप्लवनिमित्तञ्च विद्यादापत् कृतन्तु तत् ।
कन्यावैवाहिकञ्चैव प्रेतकार्यं च यत् कृतम् । एतत् सर्वं
प्रदातव्यं कुटुम्बेन कृतं प्रभोः' । प्रभोरिति कर्त्तरि षष्ठी तेन
प्रभुणा दातव्यमिति रत्नाकरः । बृहस्पतिः । 'यः स्वामिना
नियुक्तोऽपि धनायव्ययपालने । कुसौद कृषिवाणिज्ये निरुष्टा-
र्थस्तु स स्मृतः । प्रमाणं तत् कृतं सर्वं लाभालाभव्ययोदयम् ।
स्वदेशे वा विदेशे वा स्वामी तन्न विसंवदेत्' ।

इति श्रीरघुनन्दनभट्टाचार्यविरचितं स्मृतितत्त्वे

व्यवहारतत्त्वं समाप्तम् ।

शुद्धितत्त्वम् ।

प्रणम्य सच्चिदानन्दं जगतामौश्वरं हरिम् । शुद्धितत्त्वानि
तत्प्रीत्यै वक्ति श्रीरघुनन्दनः । सहानुगमनं नार्या योगसिद्धि-
नयस्तथा । नानाफलं तथैकस्माद्वाधादेकफलं क्वचित् ।
अशीचसङ्करो वृद्धिः स्वल्पस्य गुरुसङ्करात् । दिनद्वयत्रयाभ्याञ्च
पूर्वाशीचसमापनम् । अशीचान्तदिने कृत्यं जननेऽपि च
मुण्डनम् । अन्याशीचस्य मध्ये तु जातकर्मादिकाः क्रियाः ।
गर्भस्रावे तथा शीचं स्त्रियां बालेऽथ सदगुणे । कलौ तत्प्रति-
षेधश्च पक्षिणोलक्षणन्तथा । विदेशस्थस्य चाशीचं सपिण्डा-
देरशीचकम् । त्यागस्तत्र च सन्ध्यादेरशुचिग्राह्यनिर्णयः ।

२३४

शुद्धितत्त्वम् ।

अशीचं मृत्युभेदेन सद्यः शीचमनन्तरम् । शवानुगमनाशीच-
मङ्गासृश्यत्वनिर्णयः । द्रव्यशुद्धिविचारस्य सूतिकास्पर्शने पितुः ।
भर्तुः सपत्न्याश्चाशुद्धिरकाहमरणद्वये । सुमूर्षुमृतकृत्यादि
तथापर्णनरक्रिया । उदकादिक्रिया तत्र प्रेतस्नाने च
वाससः । एकत्वं द्वित्वमन्यत्रादेयः सम्बन्धवाचकः । प्रेतक्रियासु
सम्बुद्धिर्यजुषां तर्पणे सदा । गोत्रोक्तिर्न सगोत्रोक्तिः शोका-
पनोदनादिकम् । पिण्डोदकादिदानञ्च रात्रावपि च सा
क्रिया । अशीवान्तद्वितीयाहः कृत्यं दानं वृषत्यजिः । प्रेत-
क्रियासु संचेपादधिकारिविनिर्णयः । सपिण्डादिभिदाशीचं
संचेपोऽन्येष्टिपद्धतिः । निरूप्यन्तेऽत्र संचेपात् सतां सुद-
मभीष्टता ।

अथ सहानुगमनम् । अङ्गिराः । 'मृते भर्तारि या नारी
समारोहेद्भुताशनम् । सारुन्धती समाचारा स्वर्गलोके मञ्जी-
यते । तिस्रःकोट्योऽर्द्धकोटी च यानि लोमानि मानवे ।
तावन्यद्भानि सा स्वर्गे भर्तारं यानुगच्छति । व्यालग्राही
यथा व्यालं बलादुद्धरते विलात् । तद्वद्भर्तारमादाय तनैव
सह मोदते । मातृकं पैलकञ्चैव यत्र कन्या प्रदीयते ।
पुनाति त्रिकुलं नारी भर्तारं यानुगच्छति । तत्र सा भर्तृ-
परमा परा परमलालसा । क्रौडते पतिना सार्द्धं याव-
दिन्द्राश्चतुर्दश' । भर्तृपरमा भर्ता परमो यस्याः सा तथा
परा परमलालसेत्यत्र स्तूयमानाप्सरोगणैरिति व्यासेन पठि-
तम् । 'ब्रह्मघ्नो वा कृतघ्नो वा मित्तघ्नो वापि यो नरः । तं वै
पुनाति सा नारी इत्याङ्गिरसभाषितम् । साध्वीनामेव
नारीणामग्निप्रपतनादृतं । नान्योधर्मो हि विज्ञेयो मृते भर्तारि
कहिंचित्' । या नारीत्युपादानात् सहमरणाभावपक्षोऽपि
सूचितः नान्योधर्म इति तु सहमरणस्तुत्यर्थम् । तथाच

शुद्धितत्त्वम् ।

२२५

विष्णुः । 'मृते भर्त्तरि ब्रह्मचर्यं तदन्वारोहणं वा' इति ।
 ब्रह्मचर्यं मैथुनवर्जनं ताम्बूलादिवर्जनञ्च यथा प्रचेताः ।
 'ताम्बूलाभ्यञ्जनञ्चैव कांस्यपात्रे च भोजनम् । यतिश्च
 ब्रह्मचारौ च विधवा च विवर्जयेत्' । अभ्यञ्जनमायुर्वेदोक्त-
 पारिभाषिकम् । यथा 'मूर्द्ध्नि दत्तं यदा तैलं भवेत् सर्वाङ्ग-
 सङ्गतम् । स्रोतोभिस्तर्पयेद्वाह्यं अभ्यङ्गः स उदाहृतः । तैल-
 मल्पं यदङ्गेषु न च स्याद्वाहुतर्पणम् । सामार्ष्टिः पृथगभ्यङ्गो
 मस्तकादौ प्रकीर्तितः' । स्मृतिः । 'एकाहारः सदा कार्य्यो
 न द्वितीयः कदाचन । पर्यङ्कशायिनी नारी विधवा
 पातयेत् पतिम् । गन्धद्रव्यस्य सम्भागी नैव कार्य्यस्तथा पुनः ।
 तर्पणं प्रत्यहं कार्य्यं भर्त्तुस्तिलकुशोदकैः' । एतत्तु तर्पणं पुत्र-
 पौत्राद्यभावविषयमिति मदनपारिजातः । 'वैशाखे कार्तिके
 माघे विशेषनियमश्चरेत् । स्नानं दानं तीर्थयात्रां विष्णो-
 र्नामग्रहं मुहुः' । अत्र साध्वीमाह हारौतः । 'आर्त्तार्त्ति
 सुदिता हृष्टे प्रोषिते मलिना कृशा । मृते स्मियेत या पत्न्यौ
 साध्वी ज्ञेया पतिव्रता' । इति छन्दोगपरिशिष्टीयमिति कल्प-
 तः । साध्वीप्रसादेन लोकधारणमप्याह मत्स्यपुराणम् ।
 'तस्मात् साध्वीस्त्रियः पूज्याः सततं देववज्जनैः । तासां
 राज्ञा प्रसादेन धार्य्यते च जगत्त्रयम्' । महाभारते । 'अव-
 मत्य च याः पूर्वं पतिं दुष्टेन चेतसा । वर्त्तन्ते याश्च सततं
 भर्त्तृणां प्रतिकूलतः । भर्तनुमरणं काले याः कुर्वन्ति तथा-
 विधाः । कामात् क्रोधात् भयान्मोहात् सर्वाः पूता भवन्तु
 ताः' । अत्र च ऐहिकब्रह्मघ्नपतेर्दाहनिषेधात् जन्मान्तरीय-
 तत्पापवत एव सहमरणेनोद्धारः । ब्रह्मपुराणे । 'देशान्तर-
 मृते पत्न्यौ साध्वी तत्पादुकाद्वयम् । निधायोरसि संशुद्धा
 प्रविशेज्जातवेदसम् । ऋग्वेदवादात् साध्वी स्त्री न भवेदात्म-

२३६

शुद्धितत्त्वम् ।

घातिनी । ब्रह्माशौचे निवृत्ते तु आद्यं प्राप्नोति शास्त्रवत् । ऋग्वेदवादात् 'इमानावीरविधवा' इत्यादिमन्त्रात् । एवञ्च अङ्गिरो ब्रह्मपुराणवचनपर्यालोचनया । ब्राह्मण्यादिसकल-
भार्याणां स्वगतभर्तृगतफलविशेषार्थिनीनां गर्भवती बाला-
पत्यादिव्यतिरिक्तानां सहमरणानुमरणयोरधिकार इति ।
विवादकल्पात्तरत्नाकरौ । तत्र ब्राह्मण्याद्यनुमरणाधिकारो
ऽसङ्गतस्तस्यास्तन्निषेधात् । तथाच मिताचरायां देवबोध-
कतयाञ्चवल्काटीकायाञ्च गीतमः । 'पृथक्चितिं समारुह्य
न विप्रा गन्तुमर्हति' । तस्माद् ब्राह्मण्याः सहमरणमेव इतरा-
सान्भयमिति कल्पतरुत्नाकरशुद्धिचिन्तामणिषु पादुकाद्वय-
मिति दर्शनात् पादुकादिकमित्यपपाठः किन्तु पादुकाद्वय-
मित्यपलक्षणम् उशनसा विप्रेतरासां द्रव्यविशेषमनुपादाय
पृथक्चित्यारोहणमात्रोक्तेः । यथोशनाः 'पृथक्चितिं समा-
रुह्य न विप्रा गन्तुमर्हति । अन्यासामेव नारीणां स्त्रीधर्मोऽयं
परः स्मृतः' । मदनपारिजातोऽप्येवम् । शिष्टाचारोऽपि
तथा । कृत्यतत्त्वार्णवे बृहन्नारदीयम् । 'बालापत्याञ्च गर्भिण्यो
ह्यष्ट ऋतवस्तथा । रजस्वला राजसूते नारोहन्ति चितां
शुभे' । राजसूते इति सगरमातुः सम्बोधनम् । बृहस्पतिः ।
'बालसम्बर्द्धनं त्यक्त्वा बालापत्या न गच्छति । रजस्वला
सूतिका च रक्षेद्गर्भञ्च गर्भिणी' । एवमन्यतश्चेद् बालसम्बर्द्धनं
स्यात्तदा तस्या अप्यधिकारः । व्यासः । 'दिनैकगम्यदेशस्था
साध्वी चेत् कृतनिर्णया । न दहेत् स्वामिनं तस्या यावदा-
गमनं भवेत्' । भविष्यपुराणे । तृतीयेऽङ्गि उदक्याया मृते
भर्त्तरि वै द्विजाः । तस्यानुमरणार्थाय स्थापयेदेकरात्रकम् ।
तस्य भर्तुः तथा 'एकां चितां समासाद्य भर्त्तारं यानुगच्छति ।
तद्भर्तुर्यः क्रिया कर्त्ता स तस्याश्च क्रियाश्चरेत्' । एतच्च

शुद्धितत्त्वम् ।

२३७

पिण्डदानपर्यन्तम् । 'यस्याग्निदाता प्रेतस्य पिण्डान् दद्यात् स एव हि' इति वायुपुराणेकवाक्यत्वात् । ब्रह्मपुराणे 'आव-
येद् भर्तृजायान्तु स्वभर्तृकुलपामिमाम् । चितामारोपयन्
प्राज्ञः प्रसृते धर्ममुत्तमम् । इमाः पतिव्रताः पुण्याः स्त्रियो
यायाः सुशोभनाः । सह भर्तृशरीरेण संविशन्तु विभावसुम् ।
एवं श्रुत्वा ततो नारी श्रद्धाभक्तिसमन्विता । पितृमेधेन यज्ञेन
इष्ट्वा स्वर्गमवाप्नुयात्' प्रसृते भर्तृरि इति शेषः पितृमेधेन
यज्ञेन चितारोहणरूपेण । पादुकाद्वयग्रहणपूर्वकानुमरणे-
ऽपि सह भर्तृशरीरेणेत्यनूहः प्रयोज्यः । देशान्तरसृते पत्या-
वित्यादिना शरीरप्रतिनिधित्वेन तदीयद्रव्यविधानात् प्रति-
निधौ च यथाश्रुतमन्त्रपाठमाह कात्यायनः । 'शब्दे विप्रति-
पत्तिः' इत्येतद्विद्वत्मेकादशीतत्त्वे । न च 'अग्निजलप्रवि-
ष्टानां भृगुसंग्रामदेशान्तरमृतानां गर्भाणां जातदन्तानां मरणे
त्रिरात्रेण शुद्धिः' इति काश्यपवचनात् सह सृताया अप्यग्नि-
प्रवेशेन त्रिरात्राशीचं तत्रैव तस्याः पिण्डदानमिति वाच्यम् ।
प्रागुक्तब्रह्मपुराणे पृथक्चितिसमारोहणमात्रे चराशाचीच-
विधानात् अन्यत्र भर्तृतुल्याशीचप्रतीतेः सहमरणे काश्यपोक्त-
त्रिरात्राशीचाङ्गीकारेऽपि तस्याशीचस्य वृद्ध्या पत्युशीचकाला-
वधिस्थायित्वम् । 'अन्तर्दशाहे स्याताञ्चेत् पुनर्मरणजन्मनी ।
तावत् स्यादशुचिर्विप्रो यावत्तत् स्यादनिर्दशम्' इति मनूक्ता-
शीचसङ्करे पराशीचस्य पूर्वाशीचकालावधिस्थायित्वप्रतीतेः ।
ततश्च यथाशीचकालसङ्कोचे तन्मध्य एव सङ्कलय्य पिण्डदानं
तथाशीचकालवृद्धावपि यावदशीचं यथाक्रमं दश पिण्डा
देष्टा इति । अतएव जिकनीयान्येष्टिविध्यनुमरणविवेकयो-
र्व्यासः । 'संस्थितं पतिमालिङ्ग्य प्रविशेद् या हुताशनम् ।
तस्याः पिण्डादिकं देयं क्रमशः पतिपिण्डवत्' । विष्णुः ।

२३८

शुद्धितत्त्वम् ।

‘अन्विता पिण्डदानन्तु यथा भर्तुर्दिने दिने । तदन्वारोहिणीं यस्मात् तस्मात् सा नात्मघातिनी’ । अत्रानुः संहार्यः पति-
मालिङ्गेत्यनेनैकवाक्यत्वात् स्वाम्यशौचाभ्यन्तरे पृथक्चिता-
मृतायास्त्यङ्गेण पिण्डदानं स्वाम्यशौचापगमे तु आहम् ।
‘अन्वितायाः प्रदातव्या दश पिण्डास्त्यङ्गेण तु । स्वाम्यशौच-
व्यतीते तु तस्याः आहं विधीयते’ इति जिकनधृतपैठौनसि-
वचनात् । अग्निपूराणस्येदमिति शूलपाणिः । अत्रानुः
षष्ठादर्थः । अतीते तु भर्तृशौचे पादुकाद्वयमुपादाय ज्वल-
दग्निप्रवेशे चण्डाशौचव्यवस्थया पिण्डदानं चतुर्थदिने आहं
पूर्वोक्तब्रह्मपुराणवचनात् । यत्र तु भर्तुः संग्रामहतत्वादिना
सद्यः शौचं तत्र पृथक्चितामृताशौचस्य पूर्वोक्तब्रह्मपुराणवच-
नात् त्रिरात्रत्वेन बहुकालव्यापित्वेनाघहृदिमत्त्वात् तेनैव पूर्वा-
शौचस्य व्यपगमात् तत्र भर्तुरपि त्र्यङ्गेण पिण्डदानं तत्रापि
एकचितारोहणे भर्तृशौचव्यपगमात् शुद्धिः । संस्थितं पति-
मालिङ्गेति अन्विता पिण्डदानमिति पूर्वोक्तवचनाभ्याम् अग्नि-
प्रवेशे सुमन्तुना सद्यःशौचविधानाच्च । यथा ‘भृग्वग्निजल-
संग्रामदेशान्तरस्थसंन्यास्यनशनाशनिमहाध्वनिकानाम् उदक-
क्रिया कार्या सद्यःशौचं भवति’ इति । भृगुरुचदेशः महा-
ध्वनिकः पुण्यार्थं हिमालयावधिकमहापथगमनेन संपादित-
मरणः । न चैतत् सद्यः शौचं नित्यं वेदाध्यापकेरग्निहोत-
भिश्च एकाहाशौचिभिश्च कर्तव्यमिति हारलतादत्तविषयत्वेन
नैतद्विषयकमिति वाच्यं तन्मात्रविषयकत्वे प्रमाणाभावात्
सामान्यमुखप्रवृत्ततया वचनान्तरसंवादितया चैतद्विषयक-
मिति अन्यथा काश्यपोक्तत्रिरात्राशौचमपि अग्निजलसंग्राह-
प्रविष्टानां प्रमादादेव मरण इति हारलतादर्शनादनुमरण-
विषयकं न स्यात् तस्मात् काश्यपवचनं ब्रह्मपुराणसमान-

शुद्धितत्त्वम् ।

२३६

विषयकमिति सुमन्तुवचनञ्च संग्रामहतभर्त्तृसङ्गमनविषय-
 कमपीति । न च अत्र योगसिद्धाधिकरणविरोधान्न समुच्चित-
 फलसिद्धिरिति वाच्यम् । योगसिद्धाधिकरणे हि यः पुच्छकामो
 यः पशुकाम इत्यादिना यज्ञक्रतूनुपक्रम्य एकस्मै वा कामा-
 यान्ये यज्ञक्रतव आह्वयन्ते सर्वेभ्यो दर्शपौर्णमासावित्युक्तं
 तत्र तत्तद्विधिवान्वेषु निरपेक्षफलश्रुतेः कामनाभेदान्न कर्तृकं
 ततश्च सर्वशब्देन प्रकृतवाचिना निरपेक्षानामेव पुच्छादिफलानां
 दर्शपौर्णमाससम्बन्धेऽवगते प्रयोगभेदादेव भवतु तत्र तत्तत्-
 फलसिद्धिः तथाच तदधिकरणसिद्धान्तसूत्रं योगसिद्धिर्वा अर्थ-
 स्थोत्पत्त्ययोगित्वादिति । अस्थार्थः । वाशब्दः सिद्धान्तद्योत-
 नार्थः सर्वेभ्यो दर्शपौर्णमासावित्यत्रार्थस्य तत्तत्फलस्य योगेन
 प्रयोगभेदेन सिद्धिः उत्पत्त्ययोगित्वात् सर्वशब्दानुकर्षणीयानां
 यः पुच्छकामो यः पशुकाम इत्यादावुत्पत्तिवाक्ये फलानां युग-
 पदसम्बन्धात् । न चार्थस्य नानाविधस्य उत्पत्त्ययोगित्वात् महे-
 न्द्रादितत्तल्लोकवासादीनाम् एकदोत्पत्त्यसम्भवादिति व्याख्यानं
 युक्तमिति वाच्यं तडागोत्सर्गादौ एकस्मात् कर्मणः क्रमिक-
 नानाफलोक्तेः । तथाच मत्स्यपुराणम् । 'एतान्महाराज-
 विशेषधर्मान् करोति योर्व्यामतिशुद्धबुद्धिः । स याति रुद्रा-
 लयमाशु पूतः कल्याणनेकान् दिवि मोदते च । अनेकलो-
 कान् ममहस्तपादीन् भुक्त्वा परार्द्धद्वयमङ्गनाभिः । सहैव
 विष्णोः परमं पदं यत् प्राप्नोति तदयागबलेन भूयः' । तथे-
 हापि सर्वनाम पदाभावादार्थवादिकफलानि समुच्चितान्येव
 कामनाविषयो लाघवात् आर्थवादिकसमुच्चितनानाफलविषय-
 कविधिरप्येक एव कल्प्यते लाघवात् न हि निमित्तसाधारण्ये
 बाधकं विना नैमित्तिकानां पर्यायता सम्भवति वज्रिसामीप्ये
 द्वाहप्रकाशयोः पर्यायताया अदर्शनात् तस्मात् सकृदनुष्ठितेन

२४०

शुद्धितत्त्वम् ।

कर्मणा यथैकं फलं निष्पाद्यते तथा बाधकं विना फलान्तर-
मपि विनिगमकाभावात् । ज्योतिष्टोमादेस्तु यष्टिवर्षाव-
च्छिन्नफलश्रुतेः पृथगनुष्ठानादेव पृथक्फलसिद्धिः अन्यथा
षष्टिसंख्याद्यभिधानं व्यर्थं स्यात् । यत्र तु कर्मफले काल-
विशेषो नोक्तस्तत्रापि तत् कर्मसंपादकानुरूपेण कालविशेषो
बोध्यः फलस्य कर्मनिष्पत्तेश्चेष्टां लोकवत् परिमाणतः फल-
विशेषः स्यादिति न्यायात् । तेषां कर्मणां लोकवत् कृष्यादि-
कवत् । तथाच मत्स्यपुराणे । ‘पौरुषं देवसम्पत्त्या ; काले
फलति पार्थिव । त्रयमेतन्मनुष्याणां पिण्डितं स्यात् फला-
वहम् । कृषेर्हृष्टिसमायोगाद् दृश्यन्ते फलसिद्धयः । तास्तु
काले प्रदृश्यन्ते नैवाकाले कथञ्चन’ पौरुषं पुरुषसाध्य ऐहिक-
क्रियावृन्दं देवं सुखाद्युत्पादनोन्मुखीभूतादृष्टं पूर्वजन्मना
कृतं तथाच याज्ञवल्करः । ‘तत्र देवमभिव्यक्तं पौरुषं पूर्व-
दैहिकम्’ । अभिव्यक्तं फलोन्मुखीभूतं काले तत्तत् काले
तत्कार्यजननोन्मुखीभूते अतएव सर्वेनेबन्धुभिर्बाधकं विना
एकस्मात् प्रायश्चित्तात् नानापापध्वंस इत्युक्तम् । तथा वृषोत्-
सर्गजलाशयोत्सर्गदुर्गापूजा तन्माहात्म्यपाठनन्दागङ्गास्नाना-
दिषु एकशास्त्रोक्तमिलितफलवाचकपदयुक्तानि सङ्कल्पवाक्या-
न्युक्तानि तथाच भवदेवभट्टाः । ‘एकस्मिन् वा कामायान्ये
यन्नक्रतव आह्रियन्ते’ इति संकीर्त्य सर्वेभ्यो दर्शपौर्णमासा-
विति प्रयोगभेदविधानाद् भवतु तत्र पृथगनुष्ठानसाध्यत्वं
ब्रह्मबधप्रायश्चित्ते तथाभूतं पृथगनुष्ठानसाध्यत्वप्रतिपादक-
वचनाभावात् अनेकफलानाञ्च तन्त्रेण दशहरान्यायेन एक-
कामनाविषयत्वसम्भवात् तन्त्रत्वमित्याहुः हरिनाथोपाध्या-
यास्तु वृषोत्सर्गफलान्युद्दिश्य एतानि च अर्थवादिकफलानि
समुच्चितान्येव कामनाविषयः पुरुषविशेषणत्वस्य कल्पयत्वात्

शङ्कितस्वम् ।

२४१

तथाच मिलितानामेककामनाविषयत्वकल्पना अग्नौषोमयो-
 रिव देवतात्वे लाघवव्यायस्य विशिष्टत्वादित्याहुः । अथवा
 यत्र तारा चीरधीयीत तस्य पितरो घृतकुल्याः मधुकुल्याः वा
 चरन्ते इत्यत्रापि वैकल्पिकान्वयोपगमे जातेष्टिनयभङ्गप्रस-
 ज्जात् लाघवादिकल्पेऽष्टदोषाच्च एकस्य कार्यस्य नियोज्या-
 काङ्क्षायां सकलार्थवादोपस्थितफलकाम एक एव नियोज्यः
 स्वीकृतस्तथाचापीति । अथानुत्पन्नब्रह्महत्यादिपतिकाया-
 स्तत्पूतत्वरूपफलबाधात् तत्तत्कामनाविरहेण अनधिकारः
 स्यादिति चेत् उक्तयुक्त्या समुच्चितफलसिद्धेरनन्यथासिद्धार्थ-
 वादबलेन सन्दिग्धपापध्वंसकामनाया एवाधिकारो मङ्गल-
 वत् । सति जन्मान्तरीये तादृशपातके संसर्गादिकृते वा
 तद्धंसोऽपि जायते असति तु न तथाप्रतियोगिरूपसहकारि-
 विरहात् निर्विघ्नस्य कृतमङ्गलवत् । महादाननिर्णयोऽप्ये-
 वम् । एवं दशहरादावपि अतएव विश्वामित्रेण पापसन्दे-
 हेऽपि प्रायश्चित्तमुक्तं यथा 'कच्छ्रचान्द्रायणादीनि शुद्धाभ्युदय-
 कारणम् । प्रकाशे वा रहस्ये वा संशयेऽनुक्तकेऽस्फुटे' ।
 अनुक्तकेऽतिपातकाद्यष्टान्यतमत्वेन विशेषतोऽनुक्तके प्रकीर्णक-
 इति यावत् अस्फुटे अज्ञाते । वस्तुतस्तु मिलितफलदान-
 योग्यानामपि आद्यादिकर्मणां प्रत्येकफलसम्पादकत्वं तथाहि
 अथैतन्मनुः 'आद्यशब्दं कर्म प्रोवाच प्रजानिःश्रेयसार्थम्'
 इति आपस्तम्बोक्तादिविशिष्टफलार्थिनः केवलरागिणः केवल-
 मुमुक्षोरपि प्रत्येकफलसिद्धिः साङ्गाद्वि वैदिककर्मण इष्ट-
 सम्पादकत्वनियमात् । तथाच मार्कण्डेयपुराणं 'पितृन्मस्ये
 दिवि ये च भूतानि स्वधाभुजः काम्यफलाभिसन्धी । प्रदान-
 शक्ताः सकलेप्सितानां विमुक्तिदा येऽनभिसंहितेषु' । अनभि-
 संहितेषु काम्यफलेषु इति शेषः । अतएव ग्रहयज्ञे वृष्ट्यायुः-

२४२

शुद्धितत्त्वम् ।

पुष्टिकामो वेति समस्तपदोपात्तानामपि प्रत्येकफलकामना-
सम्बन्ध इति भूपालः । एवञ्च 'ऋग्भ्यां हाभ्यां तिलब्रीहि-
गोधूमयवकल्पितम् । हविः प्रजुहुयाल्लक्षं वासरष्वेकविंशतौ'
इति बौधायनवचने तिलादीनां सति सम्भवे समुच्चयः असति
विकल्प इति कर्मविपाके विश्वेश्वरभट्टाः । एवञ्च समाधिना
त्यक्तदेहस्य मुक्तस्य धृतराष्ट्रस्य पर्णोदजाग्निना देहदाहकाले
तत्पत्न्या गान्धार्या अग्निप्रवेशदर्शनादिदानीं काश्यादिमृतस्य
मुक्तस्यापि पत्युस्तत्पत्न्याः सहमरणं सङ्गच्छते । श्रीभागवते
तदुक्तम् । 'दक्षमानोऽग्निभिर्द्देहे पत्युः पत्नी सहोदजे ।
बहिःस्थिता पतिं साध्वी तमग्निमनुवेक्षति' । अनुवेक्षति
अग्निप्रवेशनं करिष्यतीति युधिष्ठिराय नारदस्य भविष्यत्
कथनम् । 'दयितं यान्यदेशस्थं मृतं श्रुत्वा पतिव्रता । समा-
रोहति शीघ्राग्नौ तस्याः सिद्धिं निबोधत' इति व्यासवचना-
दिना सहमरणानुमरणयोर्निरवकाशनैमित्तिककाम्यत्वेन मल-
मासादावपि कर्त्तव्यता 'नैमित्तिकानि काम्यानि निपतन्ति
यथायथा । तथातथैव कार्याणि न कालस्तु विधीयते' इति
दक्षवचनात् ।

तदयं प्रयोगः । पुत्रादिना स्वर्गल्लोकाविधिना अग्नौ
दत्ते ज्वलितायां भर्त्तृचितायां सहगन्त्री साध्वी स्नाता परि-
हितधीतवासोयुगा कुशहस्ता प्राङ्मुखी उदङ्मुखी वा
देवतौर्धेनाचान्ता तिलजलकुशत्रयमादाय ओम् तत्सदिति
ब्राह्मणैरुच्चारिते नारायणं संस्मृत्य नमोऽथ अमुके मासि
अमुके पक्षेऽमुकतिथौ अमुकगोत्रा श्रीमती अमुकौ देवी अरु-
न्धतीसमाचारत्वपूर्वकस्वर्गलोकमर्ह्यमानत्वमानवाधिकरणक-
लोमसमसंख्याद्वावच्छिन्नस्वर्गवासभर्तृसहितमोदमानत्वमाह-
प्रितृस्वशरकुलत्रयपूतत्वचतुर्दशेन्द्रावच्छिन्नकालाधिकरणकाश-

शुद्धितत्त्वम् ।

२४३

रीगणसूयमानत्वपतिसहितक्रीडमानत्व-ब्रह्मघ्न-कृतघ्न-मित्रघ्न-
पतिपूतत्वकामा भर्तृज्वलञ्चितारोहणमहं करिष्ये इति अनु-
मरणे तु भर्तृज्वलञ्चितारोहणमित्यत्र ज्वलञ्चिताप्रवेशेन
भर्तृनुमरणमिति सङ्कल्प्य अष्टौ लोकपाला आदित्यचन्द्रा-
निलाम्ब्याकाशभूमिजलहृदयावस्थितान्तर्यामि-पुरुषयमदिन-
रात्रिसन्ध्याधर्मा धूयं साक्षिणो भवत ज्वलञ्चितारोहणेन भर्तृ-
शरीरानुगमनमहं करोमीति अनुमरणे तु भर्तृशरीरानुगमन-
मित्यत्र भर्तृनुमरणमित्युच्चार्य ज्वलञ्चिताग्निं त्रिःप्रदक्षिणी-
कृत्य ओम् इमा नारो रविधवाः सपत्नीरञ्जनेन सर्पिषा
संविशन्तु अनस्वरोऽनमोरा सुरदा आरोहन्तु जलयोनिमन्त्रे
इति ऋग्वेदोक्तमन्त्रे 'ओम् इमाः पतिव्रताः पुण्याः स्त्रियो
यायाः सुशोभनाः । सह भर्तृशरीरेण संविशन्तु विभावसुम्'
इति पौराणिके मन्त्रे च ब्राह्मणेन पठिते नमो नम इत्युच्चार्य
ज्वलञ्चितां समारोहेत् । आपस्तम्बः । 'चितिभ्रष्टा तु या
नारो मोहाद्विचलिता भवेत् । प्राजापत्येन शुद्धेयं तस्मादि
पापकर्मणः' । पाश्चात्यनिर्णयामृते स्मृतिः । एकचित्यां
समारुद्धी दम्पती निधनङ्गती । पृथक् आहं तयोः कुर्या-
दोदनन्तु पृथक् पृथक् । विद्याकरधृता स्मृतिः । एकाङ्गेन
मृतानान्तु बहूनामथवा द्वयोः । तन्त्रेण अपणं कृत्वा पृथक्
आहं प्रवर्त्तयेत्' । यत्तु 'यदा नारो विशेदग्निं स्वेच्छया
पतिना सह । अशीचमुदकं तस्याः सह भर्त्रेति निश्चितम् ।
तिथ्यन्तरमृतायास्तु पृथक् आहं न विद्यते' । इति चतुर्भुज-
भट्टाचार्यधृतयमवचनाद्विचतिथिमृताया अपि पत्युर्मृततिथौ
आहमिति हरिदासतर्काचार्याः तन्न अस्य वचनस्थामूलत्वात्
समूलत्वेऽपि आहपदं पिण्डपरम् । एकोद्दिष्टं मृताहनीति
यमवचनविरोधात् ।

२४४

शुद्धितत्त्वम्।

अथाशौचसङ्करः। मनुः 'अन्तर्दशाहे स्याताञ्चेत् पुन-
 र्मरणजन्मनी। तावत् स्यादशुचिर्विप्रो यावत्तत् स्यादनिर्द-
 शम्' इत्यनेन परजातस्य पूर्वजाताशौचसमानकालीनाशौचस्य
 सङ्कोचं विना शुद्धेरजन्यत्वात् पूर्वाशौचकालेन पराशौच-
 कालस्य सङ्कोचोऽस्तु स्वल्पकालीनाशौचस्य तु वृद्धिं विनापि
 पूर्वाशौचस्थितेरशुद्धिर्भविष्यतीति तत्र कथं सहमरणे वृद्धि-
 रक्ता इति चेन्न शङ्केन तथोक्तत्वात् यथा 'समानाशौचं प्रथमे
 प्रथमेन समापयेत्। असमानं द्वितीयेन धर्मराजवचो यथा'।
 प्रथमार्द्धपतितं सजातीयाशौचं प्रथमेन समापयेत् अत्र प्रथ-
 मार्द्धपतितत्वेन विशेषोऽघवृद्धिमदाशौचविषयः। अघवृद्धिम-
 दाशौचमूर्ध्वञ्चेत्तेन शुद्ध्यति। अथ चेत् पञ्चमीं रात्रिमतीत्य
 परतो भवेत्। अघवृद्धिमदाशौचं तदा पूर्वेण शुद्ध्यति' इति
 कूर्मपुराणवचनात् एकस्मादशौचजन्मन ऊर्ध्वं परतः वृत्त-
 वच्छास्त्रे व्यवहार इति न्यायात् तेनाशौचकालमध्ये यद्यघ-
 वृद्धिमदाशौचं तदा तेनाघवृद्धिमता द्वितीयेन शुद्धिः। अस्याप-
 वादमाह। अथ चेदिति परतोऽशौचकालावधेः प्रातिलोभ्येन
 पञ्चमीं रात्रिमतिक्रम्य यदि भवति पूर्वाशौचप्रथमार्द्ध इति
 यावत्तदा प्रथमेन शुद्धिरिति शङ्कवचनैकवाक्यत्वात् अन्यथा
 क्रमिकपरत्वस्यातीत्येत्वेन लब्धत्वात् परत इत्यस्यानर्थक्या-
 पत्तेः अघवृद्धिमत्त्वन्तु सपिण्डजननाशौचापेक्षया स्वपुत्र-
 जननाशौचस्य सपिण्डमरणापेक्षया पितृमातृभर्तृमरणा-
 शौचस्य च यतः स्वपुत्रजनने स्नानात् पूर्वमङ्गासृश्यत्वमन्यत्र
 न तथा। मातृपितृभर्तृणां महागुरुत्वात्तेषां मरणे द्वादश-
 रात्रमक्षारलवणाक्षानं सपिण्डमरणे त्रिरात्रं यथा कूर्म-
 पुराणं 'सूतके तु सपिण्डानां संस्पर्शो नैव दुष्यति। सूतकं
 सूतिकाञ्चैव वर्जयित्वा नृणां पुनः'। सूतकं पितरं नृणां

शुद्धितत्त्वम् ।

२४५

संस्पर्शकर्तृणाम् । संवर्त्तः । 'जाते पुत्रे पितुः स्नानं सचे-
 लन्तु विधीयते । माता शुद्धेदशाहेन स्नानात्तु स्पर्शनं
 पितुः' । शुद्धेत् स्पर्शमात्रे उत्तरवाक्ये तथा दर्शनात् ।
 सपिण्डमरणं प्रकृत्याश्वलायनः । 'त्रिरात्रमचारलवणान्ना-
 शिनः स्युर्द्वादशरात्रं महागुरुष्विति' । महागुरुनाह विष्णुः ।
 'त्रयः पुरुषस्य महागुरवो भवन्ति पितामाताचार्यश्चेति'
 आचार्यश्च 'उपनीय ददद्देदमाचार्यः स उदाहृतः' इति
 यान्नवल्कलोक्तेः । तस्मरणे त्रिरात्राशौचित्वेन नैतादृङ्नियमः ।
 पत्युर्महागुरुत्वमाह रामायणे सीतां प्रति अनसूयावाक्यम् ।
 'नातो विशिष्टं पश्यामि बान्धवं वै कुलस्त्रियाः । पतिर्बन्धु-
 र्गतिर्भर्ता दैवतं गुरुरेव च' । शातातपः । 'गुरुरग्निर्हि-
 जातीनां वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः । पतिरेको गुरुःस्त्रीणां
 सर्वचाभ्यागतो गुरुः' इति अत्रैकपदेन दत्तस्त्रीणां पितृमातृ-
 व्यावृत्तिः । अत्राशौचस्याघवृद्धिमद्विशेषणेन तद्रहितेऽपि
 अशौचमात्रे पूर्वापरार्द्धपतितत्वेन व्यवस्था मैथिलोक्ता हेया ।
 अतएव नवमदिनाभ्यन्तरपातिनि तुल्याशौचे तु प्रथमेन समा-
 पनं बोधायनोक्तम् । यथा 'अथ चेदश रात्राः सन्निपतेयुराद्य'
 दशरात्रमानवमादिवसात्' । दशरात्रा इति 'शुद्धेद्विप्रो
 दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः । वैश्यः पञ्चादशाहेन शूद्रो-
 मासेन शुद्धयति' इति मनूक्तस्त्रस्त्रजात्युक्ताशौचपरम् । आन-
 वमादिति च तत्तदुपान्त्यदिनपरम् एवं पञ्चमीं रात्रिमित्यपि
 स्त्रस्त्रजात्युक्ताशौचार्द्धपरं 'समानाशौचं प्रथमे प्रथमेन समा-
 पयेत्' इत्येकवाक्यत्वात् । अत्राद्यं दशरात्रमित्याद्यपदमेक-
 परं तथाच पूर्णाशौचपूर्वार्द्धं समानाशौचगते पूर्वेषु उपान्त्य-
 दिनाभ्यन्तरे चेत् तदा परेण अन्त्यदिने महागुरुनिपातेऽपि
 दिनद्वयादिहृदिरिति मिश्राःतत्र आद्यपदस्यैकार्थत्वे लक्षणा-

२४६

शुद्धितत्त्वम् ।

पत्तेः 'अन्तर्दशाहे स्याताच्चेत् पुनर्मरणजन्मनौ' इति जनना-
 शौचमध्य इति 'अथ चेद्दशरात्राः सन्निपतेयुः' इति समानं
 लघुचाशौचमित्यादिमनुविष्णुबौधायनलघुहारीतवचनानामेक-
 वाक्यतया उपान्यदिनमध्ये अशौचान्तरपाते पूर्वणैव शुद्धिः ।
 अन्यथा अघर्षाद्विदशौचमित्यादिवचने अववृद्धिपदस्यानर्थ-
 क्याच्च । असमानमिति असमानं पूर्वजातं जननाशौचं
 द्वितीयेन मरणाशौचकालेन समापयेत् । 'सूतके मृतकं
 चेत् स्थान्मृतके सूतकं तथा । मृतेन सूतकं गच्छेत्तेतरत्
 सूतकेन तु' इति लघुहारीतवचनैकवाक्यत्वात् । एवञ्च यदि
 जननस्य परभाविनापि मरणेन समापनं तदा स्वल्पकालीन-
 स्यापि पूर्वभाविना दीर्घेण सुतरां समापनम् । शङ्खवचनस्य
 समानं लघुचाशौचमिति पारिजातपाठे सुतरां तथैवार्थः ।
 विष्णुः । 'जननाशौचमध्ये तु यद्यपरं जननं स्यात्तदा पूर्वा-
 शौचव्यपगमे शुद्धिः । रात्रिशेषे दिनद्वयेन प्रभाते दिनत्रयेण
 मरणाशौचमध्ये ज्ञातिमरणेऽप्येवमिति' । रात्रिशेष इति
 पुनर्पुंसकयोः शेष इत्यमरोक्तेः शेषशब्दस्यास्त्रीलिङ्गत्वात्
 स्त्रीलिङ्गविशेषणत्वेऽपि न स्त्रीलिङ्गत्वम् । तेन रात्रिःशेषो-
 ऽवशिष्टो यत्र तत्राशौचान्यदिने इत्यर्थः । अहःशेषे द्विरात्रक-
 मित्यनेनानवमाह्निसादित्यनेन चैकवाक्यत्वात् । प्रभाते
 तद्विषयौत्तरप्रभातेऽरुणोदयात्प्रभृति-सूर्योदय-प्राक्काले ।
 'प्रभातायाञ्च शर्वर्यां भास्करेऽनदिते तथा' इति विष्णुधर्मो-
 त्तवचनात् । उदयमाह गृह्यसंग्रहे । 'रेखाभात्रञ्च दृश्येत
 रश्मिभिश्च समन्वितम् । उदयं तं विजानीयाद्दोमं कुर्याद्विच-
 क्षणः' । अत्र सर्वैर्निवन्मृभिर्दशमदिनादधिकेन दिनद्वयेनेति
 व्याख्यानाद्दिनद्वयेन पूर्वाशौचस्यापि समापनम् । अन्यथा
 पश्चाशौचमात्रकालत्वे स्निग्धमिच्छावध्येव दिनद्वयं स्यात् च

शुद्धितत्त्वम् ।

२४७

विध्यनुवादवैषम्यभिया नान्यदिनपरिग्रह इति वाच्यं दिन-
 द्वयस्य पराशौचमात्रकालत्वेन प्रागप्राप्तत्वेन दशमदिनस्यानु-
 वादानुपपत्तेः । किन्तु पूर्वाशौचस्यान्यदिनमादाय दिनद्वया-
 शौचाभिधाने अन्यदिनस्य पूर्वाशौचकालत्वेन प्राप्तत्वात्
 तदंशेऽनुवादकत्वम् अपरदिनस्य च अप्राप्तत्वात्तदंशे विधित्व-
 मिति विध्यनुवादवैषम्यादधिकेन व्याख्यानं सङ्गच्छते । न च
 पूर्वाशौचव्यपगमे दिनद्वयेनेति व्याख्यानात् तथात्वमिति
 वाच्यं तथा मरणाशौचदशमदिने मृतस्य तद्दिने पिण्डोदक-
 दानं न स्यात्तस्य स्वाशौचविधानात् । विष्णुः 'यावदशौचं
 तावत् प्रेतोदकं पिण्डमेकञ्च दद्युः' इति पूर्वाशौचव्यपगमे
 इत्यस्यानुषङ्गकल्पने प्रमाणाभावाच्च । 'मरणादेव कर्त्तव्यं
 संयोगो यस्य नाग्निना । दाहादूर्ध्वमशौचं स्याद यस्य
 वैतानिको विधिः' । इति शङ्खोक्तस्य निमित्तीभूतमरणसत्त्वे
 मरणादिनिश्चयात् नैमित्तिकाशौचस्यावश्यं भावस्य बाधा-
 पत्तेश्च । वैतानिकः श्रौतोहोमः अग्निपदं तदग्निपरं तेन
 निरग्नेः स्मार्त्ताग्नेश्च मरणादेवाशौचम् । तस्माद्दशमदिन-
 जातं परनिमित्तं स्वावध्येवाशौचजनकं दिनद्वयेनेति पूर्वाशौचं
 वर्द्धयेत् पराशौचस्य क्लासकं वाच्यं 'अन्तर्दशाहे स्याताञ्चेत्
 पुनर्मरणजन्मनी । तावत् स्यादशुचिर्विप्रो यावत्तत्त्यादनिर्द-
 शम्' इति मनुना पराशौचस्य पूर्वाशौचकालावधिस्थायित्वेन
 नियमितत्वात् । रात्रिशेषे दिनद्वयेनेत्यनेन पूर्वाशौचस्या-
 धिकदिनद्वयावस्थानं वाच्यम् अन्यथा यावत्तत्त्यादनिर्दश-
 मित्यनेन विरोधः स्यात् । अथवा यावत्तत्त्यादनिर्दशमिति
 समानं लघुचाशौचं पूर्वेणैव विशुध्यति इति रात्रिशेषे दिन-
 द्वयेनेति वचनानामेकवाक्यतया पूर्वाशौचस्याधिकदिनद्वयाव-
 स्थानं वाच्यम् अन्यथा कल्पनागौरवं स्यात् प्रथमोत्पन्न-

२४८

शुद्धितत्त्वम् ।

निमित्तजनितपापाभिव्यासकालाभ्यन्तरे द्वितीयनिमित्तोत्पत्तौ प्रथमपापमेवाभिवर्द्धते आद्यपापद्वितीयपापनिमित्ताभ्यामघान्तरजननं वा उभयथापि द्वयोरधिकारिणोस्तदत्ययकाल एव अशौचान्तकाल इति मिश्राः । अतएव पूर्वाशौचान्तदिनकृत्यमपि द्वादशदिने क्रियते । तत्करणादेव च शुद्धिः तथाच आदिपुराणे 'यस्य यस्य तु वर्णस्य यदुयत् स्यात् पश्चिमं त्वहः । स तत्र वस्त्रशुद्धिञ्च गृहशुद्धिं करोत्यपि । समाप्य दशमं पिण्डं यथाशास्त्रमुदाहृतम् । ग्रामाद्वहिस्ततो गत्वा प्रेतसृष्टे च वाससी । अन्त्यानामाश्रितानाञ्च त्यक्त्वा स्नानं करोत्यपि । श्मश्रुलोमनखानाञ्च यत्त्याज्यं तज्जहात्यपि । गौरसर्षपकल्केन तिलतैलेन संयुतः । शिरःस्नानं ततः कृत्वा तोयेनाचम्य वाग्यतः । वासो युगं नवं शुभ्रमव्रणं शुद्धमेव च । गृहीत्वा गां सुवर्णञ्च मङ्गलानि शुभानि च । स्पृष्ट्वा संकीर्त्तयित्वा तु पश्चाच्छुद्धो भवेन्नरः' । पश्चिमं त्वहः अशौचान्तिमदिनं गृहशुद्धिं प्राक्तनपाकभाण्डत्याग उपलेपनादिना त्याज्यं त्यागाहं यत् सदा त्याज्यं तत् इत्यर्थः । यथा मिताक्षरायां 'मुण्डयेत् सर्वगात्राणि कक्षवक्षःशिखावहिः' । क्रममाह वराहपुराणम् । 'श्मश्रुकर्म कारयित्वा नखच्छेदमनन्तरम्' । गोभिलः 'केशश्मश्रुलोमनखानि वापयौत शिखावर्जम्' । अशौचाधिकारे आपस्तम्बः । 'अनुभाविनाञ्च परिवापनम्' इति अनुपश्चाद् भवन्तीति अनुभाविनः कनिष्ठास्तेषामेव पुरुषाणां वापनमिति रत्नाकरादयः । तन्न श्रौपतिरत्नमालायां जननाशौचे मुण्डनविधानात् । तथा 'आज्ञया नरपतेर्द्विजन्मनां दारकर्ममृतसूतकेषु च । बन्धमोक्षमखदौक्षणेष्वपि क्षौरमिष्टमखिलेषु चोडुषु' । तस्मादनुभाविनां स्वाशौचमनुभवतां 'कृतकेशनख-

शुद्धितत्त्वम् ।

२४६

अशुद्धान्तःशुक्लाखरः शुचिः' इति मनूक्तप्राप्तमुण्डनानां समा-
 वृत्तानामपि सर्वाशौचे मुण्डनम् । यत् पुनरापस्तम्बः । 'न
 समावृत्तावपेयुरन्यत्र वीहारादित्येके । अथापि ब्राह्मणम् एष
 रिक्तो वाऽनपिहितस्तस्यैव तदेव पिधानं यच्छिखेति' । केचि-
 दाचार्या मन्यन्ते वीहारात् दर्शपौर्णमासाङ्गयागविशिषाद-
 न्यत्र समावृत्ता गृहस्था न वपेयुः । अत्र प्रमाणं तथापीति
 ब्राह्मणं मन्त्रेतरवेदभाग इति भाषवाचार्याः एष गृहस्थः अन-
 पिहित आवरणशून्यः सन् रिक्तस्तुच्छो भवतीत्यर्थः यस्य
 यच्छिखा तदेव पिधानं तेन वीहारादिकं विना न गृहस्थः
 शिरो मुण्डयेदित्येकेषां मतमिति तत् काम्यपरम् । यथा
 दानधर्मे 'केशश्मशुधारयतामग्रा भवति सन्ततिः' । एवं
 केशश्मशुधारिणामशौचे पिष्टमाहमरण एव मुण्डनम् । तथा
 विष्णुः । 'प्रयागे तीर्थयात्रायां पिष्टमाहवियोगतः । कचानां
 वपनं कार्यं वृथा न विकचो भवेत्' इति । अतएव आदिपुराणे
 यत्थाज्यमुक्तम् । मङ्गलान्याददर्शष्टतप्रदीपप्रभृतौनि शुभानि
 दोषरहितानि । पिण्डदानमन्त्रजभ्यो वासो दानञ्चाद्य-
 क्रियाधिकारिणः । अन्यत् सर्वमशौचिमात्रस्य परदिनेऽपि
 स्नानादिगवादिस्पर्शब्राह्मणस्वस्तिवाचनैर्विनाप्यशौचस्थितिः ।
 तथाच देवलः । 'अघाहःसु निवृत्तेषु सुस्नाताः कृतमङ्गलाः ।
 आशुच्यादिप्रमुच्यन्ते ब्राह्मणान् स्वस्ति वाच्य च' । अस्य
 वक्ष्यमाणव्याख्यानात् सर्वं स्फुटीभवति । मङ्गलान्याह
 देवलः । 'लोकेऽस्मिन् मङ्गलान्यष्टौ ब्राह्मणो गौर्हुताशनः ।
 हिरण्यं सर्पिरादित्य आपो राजा तथाष्टमः । एतानि सततं
 पश्येन्नमस्येदर्चयेत्तु यः । प्रदक्षिणन्तु कुर्वीत तस्य चायुर्न
 हीयते' । अभिप्रेतार्थसिद्धिर्मङ्गलं तद्धेतुतया ब्राह्मणाद्यपि ।
 गोप्रणामे ब्रह्मपुराणम् । 'सदा गावः प्रणम्यास्तु मन्त्रेणानेन

२५०

शुद्धितत्त्वम् ।

पार्थिव । नमो गोभ्यः श्रीमतीभ्यः सौरभेयीभ्य एव च ।
 नमो ब्रह्मसुताभ्यश्च पवित्राभ्यो नमो नमः । मन्त्रस्य स्मरणा-
 देव गोदानफलमाप्नुयात् । भविष्ये । गामालभ्य नमस्कृत्य
 कृत्वा चैव प्रदक्षिणम् । प्रदक्षिणी कृता तेन सप्तद्वीपा वसु-
 न्धरा । गवामस्थि न लङ्घ्यते मृते गन्धं न वर्जयेत् । याव-
 दाघ्राति तद्वन्धं तावद्वन्धेन युज्यते । विष्णुः । 'गोमूत्रं
 गोमयं क्षीरं सर्पिर्दधि च रोचना । षडङ्गमेतन्माङ्गल्यं पवित्रं
 सर्वदा गवाम्' । षडङ्गं षट्प्रकारकम् । अत्र वैदिककर्मानर्ह-
 त्वप्रयोजकसंस्कारविशेषरूपमशीचं वैदिककर्मानर्हत्वप्रयोजक-
 संस्काररूपं शीचम् । न च अशीचाभाव एव शुद्धिर्न संस्कार-
 विशेष इति वाच्यम् अध्वानां योगपद्ये त्विति न वर्हेयेदघा-
 हानि इत्येताभ्यामशीचे पापपर्यायाघपदप्रदर्शनात् अशीच-
 पदस्य यथाभावरूपत्वं तथा । 'देवाश्च पितरश्चैव पुत्रे जाते
 द्विजन्मनाम् । आयायन्ति तस्मात्तदहः पुण्यं षष्ठञ्च सर्वदा' ।
 इत्यादित्यपुराणौयेन शीचे पुण्यपददर्शनात् शीचस्यापि
 भावरूपता प्रतीयते । तदहमित्यविच्छिन्ननाडीपर्यन्तपरम् ।
 तथाच दानदर्पणे वराहपुराणं 'यावत् कालं सुते जाते न
 नाडी क्षियते पुनः । चन्द्रसूर्योपरागेण तमाहुः समयं समम्' ।
 कृत्यचिन्तामणी देवलः 'जाते पुत्रे पिता श्रुत्वा सचेलं स्नान-
 माचरेत् । ब्राह्मणेभ्यो यथाशक्ति दत्त्वा बालं विलोकयेत्' ।
 एतेन 'सूतके तु मुखं दृष्ट्वा जातस्य जनकस्ततः । कृत्वा सचेलं
 स्नानन्तु शुद्धो भवति तत्क्षणात् । अन्याश्च मातरस्तद्वत्तद-
 गेहं न व्रजन्ति चेत्' । इति आदिपुराणवचने मुखं दृष्ट्वेति
 विशेषणात् पुत्रजन्मनि पितुर्यत् स्नानमुक्तं तन्मुखदर्शनानन्तर-
 मेवेति हारलतोक्तं हेयम् । एवं विदेशस्थस्य पितुः पुत्रजन्म-
 अवशे तन्मुखदर्शनावधि अङ्गासृष्ट्यत्वं स्यात् किन्तु आदि-

शुद्धितत्त्वम् ।

२५१

पुराणं सुखादर्शनानन्तरं पुनः स्नानार्थम् । अत्रान्याचेति चकारेण शुद्धा इति प्राप्तौ तद्वदिति पितृतुल्यतार्थं तेन यथा पितुः स्नानादङ्गासृश्यतानिष्ठतेः सूतिकास्वर्गं तत्समानकालासृश्यत्वञ्च । 'मातुरेव सुतकं तां सृशतः पितुर्नेतरेषाम्' इति सुमन्तुवचनादत्र सूतकमसृश्यत्वं तथा सूतिकासपत्नीनां ज्ञेयम् अतस्तदगृहगमनं तत् स्पर्शोपलक्षणम् । तासु मातृपदप्रयोगोऽप्येतदर्थक इति अत्र मातुरेवेत्येवकारेणान्येषां बालकादीनां सृश्यता सदा प्रतीयते । ततश्च अत ऊर्ध्वमसमालम्बनमादशरात्रादिति गोभिलसूत्रेण नाडीच्छेदात् परतो मातुरङ्गस्पर्शाभावो दशरात्रावधि प्रतीयत इति तेन 'माता शुद्धेद्दशाहेन स्नानात्तु स्पर्शनं पितुः' इत्यनेन प्राप्तस्य मातुरङ्गासृश्यत्वस्य नाडीच्छेदोत्तरत्वमप्राप्तं विधीयते लाघवादन्यथा अश्रुतकल्पनापत्तिः स्यादेवञ्च नाडीच्छेदात् प्राज्ञातुः स्पर्शो दोषाभावः । एवमेव भट्टनारायणचरणाः । गर्गः । 'श्रुत्वा पुत्रस्य वै जन्म कृत्वा वेदोदिताः क्रियाः । अच्छिन्ननालं पश्येत्तं दत्त्वा रुक्मं फलान्वितं रागप्राप्तदर्शनेऽपि 'पुत्रान्नो नरकाद् यस्मात् ब्रायते पितरं सुतः । सुखसन्दर्शनेनापि तदुत्पत्तौ यतेत सः' । इति बृहस्पत्युक्तनरकनिस्ताराय 'ऋणमस्मिन् समुत्तयति अमृतत्वञ्च विन्दति पिता पुत्रस्य जातस्य पश्येच्च जीवतो सुखम्' इति वशिष्ठोक्त ऋणापनयनाय च यत् पश्येदिति नियमविधानं तदकृतपुत्रकार्यपुत्रपरं सत्पुत्रस्तु सुखदर्शनं विनापि नरकनिस्तारकः । तथाच विष्णुपुराणम् । 'सत्पुत्रेण तु जातेन वेणोऽपि त्रिदिवं ययौ । पुत्रान्नो नरकात् त्रातः स तेन सुमहात्मना' । तेन सुपुत्रेण मृतवेणदक्षिणहस्तमन्यनजातेन पृथुना । ब्रह्मपुराणेऽपि 'समुत्पन्नेन भो विप्राः सत्पुत्रेण महात्मना । त्रातः स पुरुषधाम्नः पुत्रान्नो नरका-

२५२

शुद्धितत्त्वम् ।

तदा' । पिण्डदाहत्वमात्रेण पितुरानृत्यमाहुः शङ्खलिखित-
 पैठीनसयः । 'यत्र क्वचन जातेन पिता पुत्रेण नन्दति । तेन
 च अनृत्यतां याति पितृणां पिण्डदेन वै' । विष्णुधर्मोत्तरेऽपि
 'देवानाञ्च पितृणाञ्च ऋषीणाञ्च तथा नरः । ऋणवान्
 जायते यस्मात्तस्मात् मोक्षे यतेत् सदा । देवानामनृत्यो
 जन्तुर्यज्ञैर्भवति नारदः । अल्पवित्तश्च पूजाभिरुपवासव्रतै-
 स्तथा । आद्वेन प्रजया चैव पितृणामनृत्यो भवेत् । ऋषीणां
 ब्रह्मचर्येण श्रुतेन तपसा तथा' । पुत्रान्नो नरकाद् यस्मा-
 दित्यादिकन्तु पुत्रोत्पत्तिस्तावकम् । न च तद्रूपस्य पुत्रत्वा-
 भावपरम् । दशास्यां पुत्रानाधिहीति श्रुतौ बहवः सूर्यदा
 पुत्रा इत्यादि स्मृतौ च औरसमात्रे पुत्रपदप्रयोगविधानात् ।
 अन्यथा 'श्रुतिस्मृतिविरोधे तु श्रुतिरेव गरीयसी । अविरोधे
 सदा कार्यं स्मात्तं वैदिकवत् सदा' इति जावालोक्तं श्रुतेर्बल-
 वत्त्वं बाध्यत । क्षेत्रजातादौ तु पुत्रपदं गौणमेव । 'क्षेत्र-
 जादौन् सुतानेतानेकादश यथोद्भूतान् । पुत्रप्रतिनिधीनाहुः
 क्रियालोपान्मनीषिणः' इति मनूक्तेः कनकं बालकेनापि धार-
 णीयं सर्वरत्नपवित्रदेवात्मकत्वात्तथाच रामायणे महाभारते
 च परशुरामं प्रति वशिष्ठवाक्यं 'सर्वरत्नानि निर्मथ्य तेजोराशि-
 समुत्थितम् । सुवर्णमेभ्यो विप्रेन्द्र रत्नं परममुत्तमम् । एत-
 स्मात् कारणाद्देवगन्धर्वोरगराक्षसाः । मनुष्याश्च पिशाचाश्च
 प्रयता धारयन्ति तत्' । तथा 'तस्मात् सर्वपवित्रेभ्यः पवित्रं
 परमं स्मृतम्' । तथा 'अग्निर्वै सकला देवाः सुवर्णश्च तदा-
 त्मकम् । तस्मात् सुवर्णे ददता दत्ताः स्युः सर्वदेवताः' ।
 तस्मात्तत् पादादौ न धार्यं देवतात्मकत्वादिति प्रसङ्गादुक्तम् ।
 विष्णुधर्मोत्तरे । 'स्मृतिकावासनिलया जन्मदानाम देवताः ।
 तासां यागनिमित्तार्थं शुद्धिर्जन्मनि कीर्तिता । षष्ठेऽङ्गि

शुद्धितत्त्वम् ।

२५३

रात्रियागन्तु जन्मदानाञ्च कारयेत्' । अत्र यागनिमित्तार्थ-
मित्युपादानात् तत्कर्मण्येव शुद्धिर्नान्यस्मिन् । अत्र कारये-
दित्यन्यगोत्रजाभिप्रायेण तात्कालिक शुद्धौ पुत्रजन्मेति श्रुतेः ।
तथान्याशौचमध्येऽपि जातकर्मषष्ठीपूजे कर्त्तव्ये तथाच मिता-
क्षरायां परिशेषखण्डे प्रजापतिः । 'अशौचे तु समुत्पन्ने घृत्र-
जन्म यदा भवेत् । कर्त्तुं स्तात्कालिकी शुद्धिः पूर्वाशौचाद्वि-
शुद्ध्यति' । अत्र पुत्रजन्मेति श्रुतेः शूद्रस्याप्यधिकारः । एवं
षष्ठदिनकृत्येऽपि पुत्ररक्षायाः कर्त्तव्यत्वादतः प्रागुक्तादित्य-
पुराणे द्विजन्मनामित्युपलक्षणम् । ततश्च शुद्धशुद्धयोः संस्कार-
रूपत्वेनैकपुरुषस्यैकदोभयस्थितिर्घटते । अशुद्धेर्भावरूपत्वे
शुद्धेस्तदभावरूपत्वेनैवं विरोधात् । अतएव शुद्धः 'ततः
आह्वमशुद्धौ तु कुर्यादेकादशे तथा । कर्त्तुं स्तात्कालिकी
शुद्धिरशुद्धः पुनरेव सः' अशुद्धौ चतुर्थाह्वादी कथमशुद्धौ आह्वं
कालाशौचस्याधिकारिविशेषणत्वादत आह कर्त्तुं स्तात्कालि-
कीति आह्वविधानाच्चेपात्तन्मात्रनिष्ठा शुद्धिः कल्प्यते । स
पुनरशुद्ध एव कर्मान्तर इति आह्वविवेकः । एवं शुद्धेर्भाव-
रूपत्वे अशौचस्य तदभावरूपत्वेऽपि विरोधः । तथात्वे
अशौचसङ्करोऽपि न स्यात् एकस्मिन् शुद्धभावरूपे अशौचे
सति अपरस्य तद्रूपस्य तदानीं तत्पुरुषीयशुद्धिरूपप्रतियोग्यन्तरा-
भावादनुत्पत्तेः तस्मात् शुद्धशुद्धयोर्भावरूपत्वम् । यदा तु
सपिण्डमरणाशौचदशमदिने अपर सपिण्डमरणे पूर्वाशौचस्य
दिनद्वयहृदया एकादशद्वादशदिने वा पित्रादिमरणं तदा
पूर्वाशौचद्वादशाहेन बहुकालव्यापिना गुरुणा लघुकाल-
व्यापिनः परतराशौचस्य शुद्धिः । 'अघानां यौगपद्ये तु ज्ञेया
शुद्धिर्गरीयसा' इति देवलवचनादत्र च प्रथममृतपितृकेण
स्वावधेकादशाह एव कृत्यं द्वितीयमृतपितृकेण परार्द्धपतितः

२५४

शुद्धितत्त्वम् ।

स्त्वेन पितृमरणावध्येकादशाह एव कृत्यं वृद्धीभूतदिनइयाभ्य-
 न्तरे तृतीयमृतपितृकेण पूर्वमृतत्रयोदशाह एव कृत्यं सपिण्ड-
 मात्रेण तु पूर्वमृतत्रयोदशाह एव कृत्यं कर्त्तव्यमिति प्रथममृत-
 पितृकेण तु एकादशाहद्वादशाहान्यतरमृतस्य तदवधि दशा-
 हाशौचमेव कर्त्तव्यमिति । ततश्च अशौचत्रितयान्तर्द्वितीय-
 दिनकृत्यं शय्यादानादि अत्रापि संगच्छते । पूर्वाशौचपराई-
 पराशौचपूर्वाईमृतपितृकस्य तृतीयाशौचनिवृत्तिकाल एव
 शुद्धिः । पूर्वपराईमृतपितृकयोर्द्वितीयाशौचनिवृत्तिकाल एव
 शुद्धिः 'परतः परतः शुद्धिरघवृद्धौ विधीयते । स्याच्चेत्पञ्च-
 तमादङ्गः पूर्वेणाप्यनुश्लिष्यते' इत्यत्र परतः परतः इत्यव-
 धारणार्थत्वात् अन्यथा वैयर्थ्यत्वात् । एवं पूर्वाई निमित्ता-
 न्तरपाते पराई उभयोर्ज्ञाने गुरुणः परनिमित्तस्यापि पूर्व-
 निमित्ताशौचकालेनैव शुद्धिः विगतन्तु विदेशस्थमिति वक्ष्य-
 माणवचनात् । अथ सर्वस्मृतिप्रबलमनुस्मृती अन्तर्दशाह
 इति श्रवणाद् यदि निमित्तस्य मरणादेः कालमध्ये निमित्ता-
 न्तरमुत्पद्यते तदा पूर्वनिमित्तकालमात्रमशौचम् । ततश्च
 कालद्वारा निमित्तयोगपद्यमेव शुद्धिप्रयोजकं न तु नैमित्तका-
 शौचद्वारा योगपद्यमपि इति । इत्यञ्च पूर्वनिमित्ते ज्ञाते-
 ऽज्ञाते वा परनिमित्तं पूर्वनिमित्तकालादुपरि स्वावधिदशाहा-
 भ्यन्तरे श्रुतमपि न अशौचं जनयति तस्य तत्कालीनाशौचं
 प्रति अनिमित्तत्वात् इत्यञ्चाश्रुतपूर्वनिमित्तस्य तत्कालमध्यपाति-
 द्वितीयनिमित्तश्रवणे यत्तदवध्यशौचाचरणं तद् भ्रान्त्यैवेत्याहुः
 तच्चिन्त्यम् । मरणादिसम्बन्धित्वेन सर्ववर्णसाधारणकालस्य
 बोधकाभावादशौचान्तर्भावेनैव तद्बोधनम् । अतएव मनुनैव
 'न वर्द्धयेदघाहानि' इत्युक्तं ततश्च मरणादिसम्बन्धि स्वस्वा-
 शौचाह परं दशाहपदमवश्यं वाच्यं ततश्च लाघवात्

शुद्धितत्त्वम् ।

२५५

स्वस्थापारत्वाच्चाशौचहारैव निमित्तानां साङ्ख्यं फलोपधायकं वाच्यम् अशौचरूपस्यापारानुबन्धेन प्रथमस्य मरणादेस्तदासत्त्वात् । तथाच शङ्कः । ‘समानाशौचं प्रथमे प्रथमेन समापयेत्’ । एतच्च अशौचसाङ्ख्यं वक्ष्यमाणोशनोवचने स्फुटीभविष्यति । अतएव सर्वैर्निबन्धुभिरथाशौचसङ्कर इति प्रतिज्ञया निर्दिश्यत इति अन्तर्दशाह इति कालोपादानन्तु तत्कालाभ्यन्तर एव अशौचसाङ्ख्यार्थं न तु तदनन्तरं स्नानादेः प्रागपि अशौचसाङ्ख्यमिति प्रतिपादनार्थम् एतदपि पश्चात् स्फुटीभविष्यति । यत्र तु पूर्वजातं निमित्तं पश्चाज्ज्ञातं पश्चाज्जातञ्च पूर्वं ज्ञातं तत्र निमित्तज्ञानजन्याशौचपौर्वापर्यमगणयित्वैवाशौचस्वरूपयोग्यनिमित्तकालपौर्वापर्यादेवाशौचव्यवहारार्थञ्चेति । ततश्च जननं मरणञ्च दशाहाद्यशौचं प्रति स्वरूपसन्निमित्तं फलोपधायकञ्च तदवधारणे अपि दाहग्रहीचोश्च सूतके सति चान्तरा ‘अविज्ञाते न दोषः स्याच्छ्राद्धादिषु कथञ्चन । विज्ञाते भोक्तुरेव स्यात् प्रायश्चित्तादिकं क्रमात्’ इति ब्रह्मपुराणात् यदा तु स्वीयमशौचं दाता न जानाति भोक्ता च जानाति तदा लोभात् भुञ्जानस्य भोक्तुः प्रायश्चित्तम् अशौचन्तु दाहतुल्यं तच्च क्रमादशौचोत्तरकालं कर्तव्यमित्यर्थः । एवञ्च ‘श्रुत्वा देशान्तरस्थे जननमरणे अशौचशेषेण शुद्धात्’ इति विष्णुवचने अशौचशेषेण इत्यस्याशौचयोग्याहः शेषेणेत्यर्थाद्देशस्याशौचस्य जातनिमित्तत्वात् स्वरूपयोग्यत्वम् अन्यथाशौचशेषेणेत्युपपन्नं स्यात् श्रुतेत्युपादानेन च तत्कालमध्ये श्रवणात् फलोपधानं ततश्च पूर्वनिमित्तकाले निमित्तान्तरपाते स्वरूपसत्साङ्ख्यं वृत्तं पूर्वनिमित्तकालाभ्यन्तरे उभयश्रवणे साङ्ख्यस्य कार्यं न तु पूर्वनिमित्तकालोत्तरश्रवणेऽपि किन्तु अश्रुतपूर्वनिमित्तकास्ते

२५६

शुद्धितत्त्वम् ।

समानं लघु वा निमित्तं जातं पूर्वनिमित्तकालादुपरि स्वकाले
 श्रुतमशौचं जनयत्येव अत एवभूतविषये यत्तदबध्यशौचा-
 चरणं तदभ्रान्त्येवेति यद्विमृष्टं तन्न शोभनं तथात्वे तु पूर्वा-
 शौचकालोत्तरं यत्तद्विन पिण्डदानवृषोत्सर्गादिकृतं परकाले
 पूर्वजातसङ्करज्ञानेन तस्य अयथाकालकृतत्वात् कस्यचित्
 पुनःकरणप्रसङ्गः । कस्यचिद्वैफल्यं तत्कालीनसन्ध्याद्यकरण-
 निमित्तप्रायश्चित्तप्रसङ्गश्च स्यात् । देशान्तरीयाशौचनिमि-
 त्तान्तरशङ्कया बहुवित्तव्ययायाससाध्यवृषोत्सर्गाद्यनुष्ठानञ्च
 न स्यात् तस्मादविज्ञाते न दोषः स्यादित्यविशेषात् सङ्करेऽपि
 प्रसज्यतीति । अतएव 'अश्वानां यौगपद्ये तु ज्ञेया शुद्धि-
 र्गरीयसा' इत्यत्र लक्षणां विनापि सङ्गतिरिति । एवं श्वानु-
 गमनप्रयुक्ताशौचयोः शूद्रदहनादिब्राह्मणपितृमरणयुक्ताशौच-
 योरशुच्यन्नभोजनजाशौचयोर्दशाहाद्युपरि संवत्सराभ्यन्तरे
 मरणश्रवणप्रयुक्ताशौचयोरपि साङ्कर्यं सङ्गच्छते । अन्यथा
 तत्रानध्यवसायः स्यात् अतएव वाचस्पतिमिश्रेण प्रथमजनिता-
 शसत्वे परं निमित्तं जातमपि येन तदा न ज्ञातं तस्य न
 सङ्करः द्वितीयस्य तं प्रति तदा पण्डत्वात् । तस्य क्रमिक-
 प्रकृतमशौचद्वयमित्युक्तम् । जननमरणनिमित्तावधारणन्तु
 भ्रमप्रमासाधारणं कृन्दोगपरिशिष्टे मृतभ्रान्त्या पर्णनरदाहे
 पश्चादागतस्य शान्त्यभिधानादयथा 'एवं कृते मृतभ्रान्त्या
 यद्यागच्छेत् पुमान् क्वचित् । कुर्यादायुष्यतीमिष्टिं पुन-
 राधाय पावकम्' । एतच्च साग्नेर्निर्गन्तेस्तु सामान्यस्वस्थयनं
 हरिपूजादिकम् । अतएव विष्णुपुराणोक्तस्य स्थमन्तकोपा-
 ख्याने गद्यम् । तस्य जीवतः कथमेतावन्ति दिनानि शत्रुक्षये
 व्याक्षेपो भवतीति कृताध्यवसाया द्वारकामागत्य हतः कृष्णः
 इति कथयामासुः तद्वान्धवाश्च तत्कालोचितमखिलमुपरतः

शुद्धितत्त्वम् ।

२५७

क्रियाकलापञ्चक्रः । तत्र च अस्य युध्यमानस्यातिशयद्वया दत्त-
विशिष्टपात्रीपयुक्तान्नादिना कृष्णस्य बलप्राणपुष्टिरभूदिति ।
एवं स्वरूपयोग्यतामादायैव अथ चेद्दशरात्राः सन्निपतेयुराद्यं
दशरात्रम् आनवमादिवसादिति बोधायनौयेऽपि दशरात्र-
सन्निपाताभिधानं सङ्गच्छते । अन्यथा प्रथमदिनातिरिक्ते
फलोपहितदशरात्रान्तरानुपपत्तेः । न च प्रथमदिन एव
तथेति वाच्यम् आनवमादित्यनुपपत्तेः आद्यं दशरात्रमित्यभि-
धानञ्च वैयर्थ्यं स्यादिति । एवं परजातस्य दशरात्रत्ववत्
पूर्वजातस्य तन्मध्ये मरणेऽपि तदशौचस्य फलानुपहितदश-
रात्रत्वेऽपि स्वरूपयोग्यतया दशरात्रत्वं तेन सहसङ्करे पर-
शौचस्य पूर्वाशौचकालावधिस्थायित्वाद् यथा तत्र पूर्णपूर्व-
शौचान्तदिने पूर्णाशौचनिमित्तान्तरपाते दिनद्वयादिरूप-
तद्वद्वा मध्यजाताशौचस्यापि स्थितिः तथा यत्र सपिण्डजन-
नाशौचकालमध्ये सपिण्डान्तरजननं भूतं तत्र पूर्वजातस्यान्त-
रामरणे पूर्वाशौचनिवृत्त्यापराशौचस्य निवृत्तिः न तु पर-
जातस्य तन्मध्ये मरणेऽपि पूर्वाशौचस्य निवृत्तिः तस्य स्वाधीन-
स्थायित्वात् एवमेव शुद्धितत्त्वाणैव । यत्र दशमदिने सपिण्ड-
जननान्तरं भूतं तत्र तद्दिने पूर्वजातमरणे सपिण्डानां सद्यः
शौचं 'बालस्त्वन्तर्दशाहे तु प्रेतत्वं यदि गच्छति । सद्य
एव विशुद्धिः स्यान्नाशौचं नैव सूतकम्' इति शङ्कोक्तेः पूर्व-
जातस्य मातापित्रोस्तु स्वजात्युक्तस्वपुत्रजननाशौचकालेन
शुद्धिः । जातमात्रस्य बालस्य यदि स्यान्मरणं पितुः । मातुश्च
सूतकं तत् स्यात् पितात्वस्यैव एव च' इति कूर्मपुराणात् ।
परजातस्य पितुःस्वपुत्रजननावधि पूर्णाशौचकालेन शुद्धिः
परार्द्धपातित्वात् परजातपुत्रकन्यामातुश्च विंशत्यहमामाभ्यां
शुद्धिः । सूतिकां पुत्रवतीं विंशतिरात्रेण स्नातां सर्वकर्माणि

२५८

शुद्धितत्त्वम् ।

कारयेत् मासेन स्त्रीजननीमिति पैठीनस्युक्त बहुकालीना-
 शौचत्वात् पूर्वजातकन्यामरणे तु मातृपितृसपिण्डानां सद्यः
 शौचम् । 'आजन्मनस्तु, चूडान्तं यत्र कन्या विपद्यते । सद्यः
 शौचं भवेत्तत्र सर्ववर्णेषु नित्यशः' इति ब्रह्मपुराणोक्तेः पर-
 जातकन्यामरणे तु पितृसपिण्डयोर्वर्द्धितदिनद्वयसहितपूर्वा-
 शौचान्तादेव शुद्धिः तन्मातुस्तु मासाशौचभागितया पूर्वाशौचा-
 वधिस्थायित्वाभावेन सपिण्डसाधारण्याभावात् सद्यः शौचम्
 आजन्मनस्तु, इति प्रागुक्तेः । एवञ्च असमानं द्वितीयेनेति
 प्रागुक्तशङ्खवचने यन्मरणस्य शुद्धिहेतुत्वमुक्तं तज्जननाशौच-
 कालापेक्षया समानदीर्घकालव्यापकाशौचजनकत्वेन बोध्यम् ।
 अन्यथा दीर्घकालीनाशौचस्य स्वकालशुद्धिं प्रति दीर्घकाली-
 नत्वरूपं गुरुत्वं बाधित्वा समानलघुकालीनाशौचयोस्तु,
 दीर्घकालीनत्वरूपगुरुत्वसम्भवेन तदबाधित्वा मरणमात्रस्य
 गुरुत्वे प्राप्ते बाधकापेक्षानपेक्षतया विधिवैरुप्यापत्तेर्वाक्यभेदः
 स्यात् । तथाच दीर्घकालाशौचकालाच्छुद्धिमाह मिताक्षरायाम्
 उशनाः । 'स्वत्याशौचस्य मध्ये तु दीर्घाशौचं भवेद् यदि ।
 न तु पूर्वेण शुद्धिः स्यात् स्वकालेनैव शुद्ध्यति' इति 'दशा-
 हाभ्यन्तरे बाले प्रमौते तस्य बान्धवैः । शावाशौचं न कर्त्तव्यं
 सूत्याशौचं विधौयते' इति मिताक्षराधृतवृहन्ननुवचनात्
 'मातुश्च सूतकं तत् स्यात् पिता त्वष्टृश्च एव च' इति कूर्म-
 पुराणवचनाच्च 'मरणोत्पत्तियोगे तु मरीच्यो मरणं भवेत्'
 इत्यस्य 'मृतेन सूतकं गच्छेन्नतरत् सूतकेन तु' इत्यस्य च
 सामान्यविषयत्वे व्यभिचारः । तथाच जननाशौचमध्ये मरणा-
 शौचपाते अधिककालव्यापकेन जननाशौचेन शुद्धिः । कुवेर-
 धृतवृहन्नमनुरपि 'शावस्योपरि शवि तु सूतकोपरि सूतके ।
 शेषाहोभिर्विशुद्धिः स्यात् उदक्यां सूतिकां विना' अत्र

शुद्धितत्त्वम् ।

२५६

शावमात्रसूतकमात्राभिधानात् त्रिरात्रादिसङ्करेऽपि पूर्वा-
 शौचशेषाहेण शुद्धिः । तथा एकदिनपातितुल्यमरणाशौच-
 इये यावदशौचं सर्वगोत्रासृश्यत्वं यथा 'सर्वं गोत्रमसंसृश्यं
 तत्र स्यात् सूतके सति । मध्येऽपि सूतके दद्यात्पिण्डान् प्रेतस्य
 तृप्तये । मरणं यदि तुल्यं स्यान्मरणेन कथञ्चन । असृश्यन्तु
 भवेद्गोत्रं सर्वमेव हि बान्धवम्' इत्यादिपुराणवचनात् । एवञ्च
 तदन्तिमदिने ज्ञात्यन्तरमरणे न दिनद्वयादिबुद्धिः किन्तु
 महागुरुनिपाते इति ध्येयम् अतएव 'समानं लघु चाशौचं
 पूर्वेणैव विशुद्ध्यति' इति हारलता । एतेन सजातीयत्रयाशौच-
 सङ्करमात्रे 'अघवृद्धावशौचन्तु पश्चिमेन समापयेत्' इति यम-
 वचनेनोत्तरव्यपगमात् शुद्धिरिति मिश्रोक्तं निरस्तम् अघवृद्धा-
 वित्यस्य प्रागुक्ताघवृद्धिमदाशौचविषयत्वात् स्नानमात्रापने-
 याङ्गासृश्यत्वयुक्तत्रिरात्रस्य एकरात्राङ्गासृश्यत्वयुक्तत्रिरात्रेण
 गुरुणैव शुद्धिः । 'अघानां योगपद्ये तु ज्ञेया शुद्धिर्गरीयसा'
 इति देवलवचनैकवाक्यत्वात् एवं जननमरणत्रिरात्रयोः
 साङ्कर्यं मरणत्रिरात्राच्छुद्धिः 'मरणोत्पत्तियोगे तु गरीयो
 मरणं भवेत्' इति देवलवचनान्तरात् । उदक्यां सूतिकां
 विनेत्यत्रेदं वीजम् । उदक्याशौचस्य मरणजननाशौचभिन्नत्वं
 सूतिकाशौचस्य बहुकालव्यापित्वम् अतएव कूर्मपुराणे तुल्य-
 कालाशौचमुपक्रम्य मरणाच्छुद्धिरुक्ता यथा । 'यदि स्यात्
 सूतके सूतिर्मृतके च मृतिर्भवेत् । शेषेणैव भवेच्छुद्धिरहःशेषे
 द्विरात्रकम् । मरणोत्पत्तियोगे तु मरणाच्छुद्धिरिष्यते' ।
 शेषेण पूर्वाशौचशेषाहेण अहःशेषे संपूर्णाशौचान्तदिने
 आनवमादिवसादित्येकवाक्यत्वात् । अत्र जननस्य तुल्य-
 कालौनमरणेन शुद्ध्यभिधानान्मनुवचनेन पुनर्मरणजन्मनीत्यत्र
 पुनः शब्दो मरणमात्रेणान्वितो न तु जन्मनाप्यव्यावर्तकत्वात् ।

२६०

शुद्धितत्त्वम् ।

जननाशौचतुल्यकालीनमरणाशौचस्य गुरुत्वाभिधानमङ्गा-
स्पृश्यत्वादिना नैयायिकं न तु वाचनिकं गौरवात् । एतेन
मरणसम्बन्धि सद्यः शौचादिना दशाहजननाशौचनिवृत्ति-
र्वाचनिकमिति मैथिलमतमपास्तम् एवमेव हारलतादयः ।
ततस्तु पुत्रवत्या विंशतिरात्राशौचान्तदिने पत्युर्मरणे बहु-
कालीनाशौचकालेन यथा शुद्धिस्तथा सपिण्डद्वयजननजात-
त्वादशाहान्तदिने पितुर्मातुर्भर्तुर्वा मरणे तेनैव शुद्धिः एव-
मन्यत्र एवं मृतजाते तु अजातदन्तत्वेन मरणस्य स्वल्प-
कालीनाशौचस्य निमित्तत्वात् जननाशौचमेव दशाहं तथा
मिताक्षरायां पारस्करः । 'गर्भे यदि विपत्तिः स्यादशाहं
सूतकं भवेत्' । दशाहमिति स्वस्वजात्युक्ताशौचपरम् एतच्च
नवमादिमासमृतजात विषयम् ।

अथ गर्भस्रावाशौचम् । तत्र कूर्मपुराणम् । 'अर्वाक्
षण्मासतः स्त्रीणां यदि स्यात् गर्भसंस्रवः । तदा माससमै-
स्तासां दिवसैः शुद्धिरिष्यते । अत ऊर्ध्वं पतने स्त्रीणां
स्यादशरात्रकम् । सद्यः शौचं सपिण्डानां गर्भस्रावाच्च वा
ततः । गर्भच्युतावहोरात्रं सपिण्डेऽत्यन्तनिर्गुणे । यथेष्टा-
चरणे ज्ञाते त्रिरात्रमिति निश्चयः' । दशरात्रकमिति स्वस्व-
जात्युक्ताशौचकालपरम् । तथा च आदित्यपुराणम् । 'षण्मा-
साभ्यन्तरं यावत् गर्भस्रावो भवेद् यदि । तदा माससमैस्तासां
दिवसैः शुद्धिरिष्यते । अत ऊर्ध्वं स्वजात्युक्तमशौचं तासु
विद्यते' । गर्भस्रावाच्च वा तत इति तच्छब्देन सन्निधानादत
ऊर्ध्वमित्युक्तषण्मासोत्तरकालः परामृश्यते । षण्मासोपरि
सगुणानां सद्यः निर्गुणानामेकाहः अत्यन्तनिर्गुण यथेष्टा-
चरणज्ञातीनां त्रिरात्रम् । एवञ्च 'जातमृते मृतजाते वा
सकुल्यस्य त्रिरात्रम्' इति हारीतवचनं यथेष्टाचरणविषयम् ।

शुद्धितत्त्वम् ।

२६१

जातमृत इति जातदिन एव मरणे त्रिरात्रम् । तथाहि
 'स्त्रीणान्तु पतितो गर्भः सद्योजातोमृतोऽथवा । अजातदन्तो
 मासैर्वा मृतः षड्भिर्गतैर्वह्निः । वस्त्राद्यैर्भूषितं कृत्वा निःक्षि-
 पेत्तन्तु काष्ठवत् । खनित्वा शनकैर्भूमौ सद्यः शौचं विधी-
 यते' इति ब्रह्मपुराणे जनद्विवर्षपर्यन्तमृतशरीरप्रतिपत्तौ
 विशेषाभावेऽपि यद्विशेषकालोपादानं तत्तत्कालेऽशौचविशेष-
 ज्ञापनाय । एवञ्च यथा 'अजातदन्तो मासैर्वा मृतः षड्भि-
 र्गतैर्वह्निः' इत्यन्तेन दन्तजन्मकालस्य षण्मासानन्तरत्वसूचना-
 दादन्तजननात् सद्य इति कूर्मपुराणेन षण्मासाभ्यन्तरे सद्यः
 शौचं षण्मासोत्तरन्तु अन्यदशौचं तथा सद्योजातोमृत इत्यत्र
 सद्य एव जातो जीवन्मुत्पन्नः सद्योमृतः जन्मसमानेऽहनि मृत
 इत्यर्थेन जातस्य सप्तमाष्टममासीयस्य जन्मदिनमरणादेव
 त्र्यह्नाशौचं तदुत्तरदिनादौ तु नवममासादिजातमृतवद्
 वेदितव्यम् । एतेन जन्मावधि त्रिरात्राभ्यन्तरमरण एव
 त्रिरात्रमिति निरस्तं प्रमाणभावात् । अत्र विशेषमाह
 मरीचिः । 'गर्भस्रुत्यां यथामासमचिरे तूत्तमे त्र्यहः । राजन्ये
 तु चतुरात्रं वैश्ये पञ्चाहमेव च । अष्टाहेन तु शूद्रस्य शुद्धिरेषा
 प्रकीर्त्तिता' । यथामासमिति माससमसंख्यदिवसानतिक्र-
 मेण यावन्मासीयो गर्भस्तावन्माससमसंख्यानि दिनानीत्यर्थः ।
 एष च प्रथममासादिषण्मासपर्यन्तं अचिरे द्वितीये मासि ।
 तथाच यमः 'गर्भमासा अहोरात्रं चार्हं वा गर्भसंज्ञे' इत्यत्र
 गर्भमासागर्भमाससमसंख्यदिवसा बहुवचननिर्देशात् तृतीय-
 मासात् प्रभृति षण्मासपर्यन्तम् अहोरात्रं प्रथममासीय-
 गर्भस्त्रावे त्र्यहं वेति परिशेषात् द्वितीयमासीयगर्भस्त्राव इति
 मासद्वये तु यद्वर्णस्य दिनद्वयाद् यावद्दिनमधिकं मरीच्युक्तं
 तद्वैवपित्रकर्मनधिकारार्थं तथाहि 'रात्रिभिर्मासतुल्याभि-

२६२

शुद्धितत्त्वम् ।

गर्भस्रावे विशुद्धयति । रजस्युपरते माध्वी स्नानेन स्त्री रज-
स्वला' इति मनुवचने गर्भस्रावाशौचमध्ये रजस्वलाशौचाभि-
धानं गर्भस्रावाशौचस्य रजस्वलाशौचतुल्यतार्थं समभिव्या-
हृतयो गर्भस्रावाशौचरजस्वलाशौचयोः रजस्वलायां तथा दर्श-
नात् । यथा शङ्खः 'शुद्धा भर्तुश्चतुर्थे ऽङ्गि अशुद्धा देवपैत्रयोः ।
देवे कर्मणि पैत्रे च पञ्चमेऽहनि शुद्धयति' । एवञ्च तृतीय-
चतुर्थपञ्चषष्ठमासेषु अपि 'ब्राह्मणो क्षत्रिया वैश्या शूद्राणाञ्च
यथाक्रमं' माससमसंख्यदिनातिरिक्तमेकरात्रं द्विरात्रं त्रिरात्रं
षड्रात्रञ्च देवपैत्रे कर्मणि अनधिकारो बोद्धव्यः । लौकिक-
कर्मणि तु माससमसंख्यदिनानन्तरमेव शुद्धिः । अन्यथा
द्वितीयमासमात्रपरत्वे तत्परे लग्नशौचेन वैषम्यं स्यात् हार-
लताप्येवं मिताक्षरायां गर्भधारणञ्च श्रमादिभिर्लिङ्गैरव-
गन्तव्यम् । तथाच श्रुतिः 'सद्योऽगृहीतगर्भायाः श्रमोग्लानिः
पिपासा अशक्त्या निषदनं शुक्रशोणितयोरनुबन्धः स्फुरणञ्च
योन्याः' इति ।

अथ स्त्र्यशौचम् । आदिपुराणं 'दत्ता नारी पितुर्गृहे
सूयते म्रियतेऽथवा । स्वमशौचं चरेत् सम्यक् पृथक् स्थान-
व्यवस्थिता । तद्वन्धुवर्गस्त्वेकेन शुद्धेऽत्तु जनकस्त्रिभिः । आज-
न्मनस्तु चूडान्तं यत्र कन्या विपद्यते । सद्यः शौचं भवेत्तत्र
सर्ववर्णेषु नित्यशः । ततो वाग्दानपर्यन्तं यावदेकाहमेव हि ।
अतः परं प्रवृद्धानां त्रिरात्रमिति निश्चयः । वाक्प्रदाने कृते
तत्र ज्ञेयञ्चोभयतस्त्राहम् । पितुर्वरस्य च ततो दत्तानां भर्तु-
रेव हि । स्वजात्युक्तमशौचं स्यात् सूतके मृतकेऽपि वा' ।
पितुर्गृहे वा सूयते म्रियते वा दत्ता नारी सा प्रसवे तदा
स्वमशौचं जननीप्रयुक्तमशौचं पैठीनस्युक्तं चरेत् व्यवहरेत् न
अपिण्डमात्रजननाशौचम् । यथा पैठीनसिः । 'सूतिकां

शुद्धितत्त्वम् ।

२६३

पुत्रवतीं विंशतिरात्रेण स्नातां सर्वकर्माणि कारयेत् मासेन स्त्रीजननीम्' इति अस्य स्वजात्युक्ताशीचकालाधिककालबोधकत्वात् शूद्रेतरपरत्वम् अत्र पुत्रवतीमिति मतुपनिर्देशो विद्यमानपुत्रार्थः स्त्रीजननीमित्यत्रापि साहचर्यात्तथा कल्पते । ततश्च जातानन्तरमृतयोरिव मृतजातयोरपि न विंशत्यहमासामशीचं विद्यमानत्वाभावहेतोरविशेषादिति । पृथक्स्थानव्यवस्थिता पृथक्स्थाने पित्रादिसंसर्गशून्ये पित्रगृहे स्थिता चेत्तदा तद्वन्धुवर्गो भ्रात्रादिरेकाहेन जनकस्त्रिहेण शुद्ध्यति शुक्रशोणितसम्बन्धरूपजननकर्तृत्वाविशेषाज्जनन्यपि अन्यथा तस्याः संसर्गो पित्रादेस्तत्तुल्याप्रायत्याप्रसङ्गः । यथाऽशीचधिकारे कूर्मपुराणम् । 'यस्तैः सहासनं कुर्याच्छयनादौनि चैव हि । बान्धवो वा परो वापि स दशाहेन शुद्ध्यति' । आदिशब्दादालिङ्गनाङ्गसंवाहनादिग्रहणम् । अत्रैव पूर्वाह्णे ब्रह्मस्यतिः । 'यस्तैः सहासपिण्डोऽपि प्रकुर्याच्छयनासने' । अत्र प्रशब्देन कामतोऽनुवृत्तञ्च द्योत्यते । पराशरः 'सम्पर्कान्दुष्यते विप्रो जनने मरणेऽपि वा । सम्पर्कं विनिवृत्तानां न प्रेतं नैव सूतकम्' । केचित्तु यदि पितुः प्रधानगृहे सूयते म्रियते वा तदा बन्धुवर्गो भ्रात्रादिरेकरात्रेण शुद्ध्यति जनकस्त्रिभिः शुद्ध्यति पृथक्स्थाने शयनभोजनदेवाचनगृहभिन्नगृहे सूयते म्रियते वा तदा नारीज्ञातिर्वर्द्ध्यमाणं स्वमशीचं चरेत् । न पित्रादिरिति परिसंख्याविधिः । तथाच कल्पतरुः । 'दत्ता नारी पितुर्मेहे प्रधाने सूयते यदा । म्रियते वा तदा तस्याः पिता शूद्रेक्षिभिर्दिनैः' । इत्येतदसत् न पित्रादिरिति प्रसक्त्यभावेन तन्निषेधानुपपत्तेः दत्तानां भर्तुरेव हि इत्यनेन पौनरुक्त्यापत्तेश्च । अपरे तु चरेदित्यस्य कर्त्ता तत् बन्धुवर्गः पिता च प्रधाने गृहे प्रसवे मरणे स्वस्वजात्युक्ताशीचं पृथग्गृहे

२६४

शुद्धितत्त्वम् ।

च एकाहाद्यशौचं यथायथं चरेदित्यर्थः । गेहे प्रधाने सूयत इत्यत्राप्रधान इत्याकारप्रश्लेष इत्याहुस्तच्चिन्त्यम् । संस्कारे भर्तुरेव ह्येत्युक्त्वा स्वजात्युक्ताशौचमिति वक्ष्यमाणैर्विरोधात् म्रियत इत्यनेन तु पितुर्गेहे मरणमात्रे मातापित्रोस्त्रिरात्रं भ्रातृदेरेकरात्रमिति । चूडान्तमिति चूडापदं 'व्रतचूड-
द्विजानान्तु प्रतीतिषु यथाक्रमम्' इति वक्ष्यमाणात् प्रतीतिपरं द्वितीयवर्षसमाप्तिपर्यन्तकालोपलक्षणञ्च । 'अहस्वदत्तकन्या-
नामशौचं मरणे स्मृतम् । जनद्विवर्षान्मरणे सद्यः शौच-
मुदाहृतम्' । इति कूर्मपुराणैकवाक्यत्वात् । अतःपरं प्रह-
जानाम् अकृतवाग्दानावस्थातः परं प्राप्ताधिकरूपाणाम् अधिकरूपं व्यनक्ति वाक्प्रदाने कृत इति उभयत इति व्याख्यां करोति पितुर्वरस्य चेति हारलताप्रभृतयः । केचित्तु अतःपर-
मित्यादिना वाग्दानोपलक्षित कालानन्तरं त्रिरात्रं विधीयते । तत्कालश्च कन्याविवाहकालः कन्याविवाहकालश्च उपनयन-
कालः पतिसेवा गुरौवास इति मनुवचनेन उपनयनतुल्यकाल-
त्वाभिधानात् । सोऽपि गर्भाष्टमाब्दे इत्याहुस्तच्चिन्त्यम् । न खलु शूद्राणामुपनयनमस्ति नवा सर्वेषां द्विजश्रमां गर्भाष्टम एव उपनयनकालः । न वा विवाहकालस्य वाग्दानकालत्वे प्रमाणमस्ति । न च अतःपरं प्रहजानामित्यस्य वैयर्थ्यमेव प्रमाणमिति चेदाचार्याणामियं शैलौ यत् सामान्येनाभिधाय तदेव विवृणोति यथा तत्रैव उभयत इत्युक्त्वा पितुर्वरस्य चेति न वैयर्थ्यं सामान्यविधिरस्यष्टं संस्क्रियेत विशेषत इति न्यायात् पितुर्वरस्य चेति उभयपक्षोपलक्षणं तथाच मनुः ।
'स्त्रीणामसंस्कृतानान्तु त्र्यहाच्छुद्ध्यन्ति बान्धवाः । यथोक्ते-
नैव कालेन शुद्ध्यन्ति हि सनाभयः' । असंस्कृतानामकृत-
पाणिग्रहणरूपसंस्काराणां बान्धवा भर्त्तृसापिण्डास्त्यहेण

शुद्धितत्त्वम् ।

२६५

शुद्ध्यन्ति एतच्च वाग्दानात् प्रभृति वाग्दानव्यतिरिक्तेन भर्तृपक्षे
 सम्बन्धाभावात् । सनाभयः पितृपक्षीयसपिण्डाः । पुरुष-
 त्रयपर्यन्ता इति यावत् । सापिण्ड्यमधिकृत्य अप्रत्तानां
 त्रिपौरुषमिति वशिष्ठवचनात् । न च 'अप्रत्तानां तथा स्त्रीणां
 सापिण्ड्य साप्तपौरुषम्' इति रत्नाकरधृतकूर्मपुराणवचनात्
 कन्यानां त्रिपौरुषसापिण्ड्यं प्रतिपादकवचनं वाग्दानोत्तर-
 विषयमिति रुद्रधरोक्तं युक्तं तस्य वचनस्योद्वाहपरत्वेनैवोप-
 पत्तेस्त्रिपौरुषवचनस्य वाग्दानोत्तरकल्पने प्रमाणाभावात्
 गौरवाच्च । यथोक्तेन पूर्वार्द्धोक्तेन त्रिरात्रेण शुद्ध्यति ।
 रत्नाकरादौ शङ्कः विष्णुधर्मोत्तरञ्च । 'पितृवेश्मनि या नारी
 रजः पश्यत्यसंस्कृता । तस्यां मृतायां नाशौचं कदाचिदपि
 भ्राम्यति' । पितुर्यावज्जीवमशौचमिति वाचस्पतिमिश्राः ।
 सोदरे विशेषयति कूर्मपुराणम् । 'आदन्तात् सोदरे सद्यः
 आचूडादेकरात्रकम् । आप्रदानात्त्रिरात्रं स्याद्दशरात्रमतः परं'
 इति । न चात्र सोदरपदं कैमुतिकन्यायात् पित्राद्युप-
 लक्षणमिति वाच्यम् । आदिपुराणे जनकस्त्रिभिरित्यभिधाया-
 जन्मनस्तु चूडान्तमित्यभिधानेन पितुरपि जन्मप्रभृतिचूडा-
 पर्यन्तं सद्यः शौचाभिधानाद्वाचनिकेऽर्थे न्यायानवताराच्च ।
 दशरात्रमिति भर्तादिसपिण्डपरं 'दत्तानां भर्तृरेव हि'
 इति स्मृतेः । केचित्तु विषमशिष्टभयात् समानमुदरं यस्मादिति
 बहुव्रीहिणा सोदरपदं पितृपरमित्याहुः तन्न पितुर्वरस्य चेत्य-
 नेन विरोधात् ।

अथ बालाद्यशौचम् । 'नवमे दशमे मासि प्रबलैः स्मृति-
 मारुतैः । निःसार्यते बाण इव जन्तुश्छिद्रेण सज्वरः' । इति
 याज्ञवल्क्योक्तप्रकृतप्रसवकालनवममासादिजातमृते कूर्मपुरा-
 णम् । 'जातमात्रस्य बालस्य यदि स्यान्नरणं पितुः । मातुश्च

२६६

शुद्धितत्त्वम् ।

सूतकं तत् स्यात् पिता त्वसृश्य एव च । सद्यः शौचं सपि-
 ण्डानां कर्त्तव्यं सोदरस्य च । ऊङ्घ्रिं दशाहादेकाहं सोदरो
 यदि निर्गुणः । सूतकं तत्स्यादित्यनेन पूर्वजातं जननाशौच-
 मेव पितुर्मातुश्चोच्यते न तु मरणाशौचं मातुरसृश्यत्वं पूर्वमेव
 सिद्धमिदानीं पितुरप्युक्तं बालस्त्वन्तर्दशाह इत्यादिवचनात्
 सद्यः पदं साक्षात् शुद्धिविधायकं न तु मरणेन स्नानापनेया-
 शौचम् उत्पाद्य जननाशौचनिवर्त्तकमित्यभिधायकं कल्पना-
 गौरवात् 'मरणोत्पत्तियोगे तु मरणात् शुद्धिरिष्यते' इत्यादि
 वचनाच्च । तथाच मिताक्षरायां बृहन्ननुः । 'दशाहाभ्य-
 न्तरे बाले प्रभूते तस्य बान्धवैः । शवाशौचं न कर्त्तव्यं
 सूत्याशौचं विधीयते' । बान्धवैः पितृमातृभिः वचनान्तरेक-
 वाक्यत्वात् बहुत्वन्तु व्यक्तिभेदात् दशाहपदं तत्तद्वर्णोक्ता-
 शौचाहपरं सामान्यतः कूर्मपुराणे तत्सूतकमित्युक्तत्वात्
 पारस्करेणान्तःसूतकमित्यभिधानाच्च । यथा अद्विवर्धे प्रेते
 मातापितरौ शौचमेकरात्रं त्रिरात्रं वेति शरीरमदग्ध्वा भूमौ
 निखनन्ति । अन्तःसूतके चेदोत्यानादाशौचं सूतकवदिति ।
 नवममासादिसृतजाते तु सपिण्डादीनां दशाहादिजनना-
 शौचं गर्भे यदि विपत्तिः स्यादिति मिताक्षरोक्तप्रागुक्तेः ।
 एकरात्रं त्रिरात्रं वेत्यजातदन्तजातदन्तसृतविषयं यथा कौर्मै ।
 'अजातदन्तमरणे पितरौकाहमिष्यते । दन्तजाते त्रिरात्रं
 स्वाह यदि स्याताह निर्गुणौ' । अजातदन्तमरणे यदेकाहमुक्तं
 तच्छूद्रेतरपरं तस्य त्रिरात्रविधानात् । यथा ब्रह्मच्छुद्धाती-
 त्वनुवृत्तौ शङ्कः । 'अनूढानान्तु कन्यानां तथा वै शूद्रजन्मनाम्'
 इति । न चैतत् सगुणशूद्रस्य जातदन्तविषयमिति रक्षा-
 कराद्युक्तं युक्तं शङ्कवचनस्य बालानामजातदन्तानां त्रिरात्रेषु
 शुद्धिरिति मिताक्षराधृतकाश्यापवचनेन बाले च अजातदन्ते

शुद्धितत्त्वम् ।

२६७

अत्र त्रिरात्रं शावाशौचमिति गोतमरत्वाकरधृतवैवस्वतवचनेन
 चेकमूलत्वात् । व्यक्तमाह मत्स्यसूक्तं 'त्रिरात्रन्तु भवेच्छूद्रे
 षण्मासोनशिशो मृते' । एवञ्च जातदन्तशूद्र एव परिशेषात्
 पञ्चाहमाहाङ्गिराः । 'शूद्रे त्रिवर्षाभ्यन्ते मृते शुद्धिस्तु पञ्चभिः ।
 अत ऊर्ध्वं मृते शूद्रे द्वादशाहो विधीयते । षड्वर्षान्तमतीतो
 यः शूद्रः संम्रियते यदि । मासिकन्तु भवेच्छौचमित्याङ्गि-
 रसभाषितम्' । त्रिवर्षादन्तमानतृतीयवर्षाभ्यन्ते असमाप्त-
 द्वितीयवर्षे इत्यर्थः । 'षण्मासाभ्यन्तरे शूद्रे मृते बाले त्रयहं
 विदुः । अनतीते द्विवर्षे वै मृते शुद्धेत्तु पञ्चभिः' इति यम-
 वचनैकवाक्यत्वात् । यत्तु 'अनूढभार्य्यः शूद्रस्तु षोडशाहत्-
 सरात्परम् । मृत्युं समधिगच्छेत्तु मासं तस्यापि बान्धवाः ।
 शुद्धिं समधिगच्छन्ति नात्र कार्या विचारणा' । इति शङ्ख-
 वचनम् । तदङ्गिरोवचनविरोधात् सगुणशूद्रविषयमिति
 गौडाः । मैथिलास्तु षड्वर्षोपर्य्यनूढभार्य्यत्वे मासः । अनूढ-
 भार्य्यत्वे द्वादशाहः । षोडशोपर्य्यनूढभार्य्यत्वेऽपि मास इत्याहु-
 स्तत्र षड्वर्षाभ्यन्तरे कृतविवाहस्य मरणे मासाशौचस्य
 वक्ष्यमाणत्वेन षड्वर्षोपर्य्यनूढभार्य्यत्वे मास इत्यत्र षड्वर्षो-
 परोत्यस्य वैयर्थ्यापत्तेः । एवञ्च षड्वर्षोपर्य्यनूढभार्य्यमरणे
 निर्गुणानां सम्पूर्णाशौचम् । षोडशोवर्षोपरि सगुणाना-
 मिति । शूद्रस्य प्रधानसंस्कारत्वेन देवात् षड्वर्षाभ्यन्तरेऽपि
 कृतोद्वाहे मासाशौचं व्यवह्रियते । अन्यथा द्विवर्षीयायाः
 शूद्रपत्न्या मरणे दशरात्रमतःपरमित्युक्तवचनात् मासाशौचम् ।
 तद्गौडः पञ्चवर्षीयस्य मरणे द्वादशाह इति महद्वैषम्यं स्यात् ।
 अतएव द्विवर्षोत्तरषोडशवर्षाभ्यन्तरमनूढभार्य्यं मृते द्वाद-
 शाहमेवाशौचम् एवं वदता वाचस्पतिमिश्रेणापि द्विवर्षोपरि
 कृतभार्य्यमरणे मासाशौचमङ्गीकृतम् । केचित्तु अनूढभार्य्य-

२६८

शुद्धितत्त्वम् ।

त्वोद्भार्यत्वस्वरूपयोग्यतारहितः शूद्रो नपुंसक इति यावत् पुंलिङ्गस्तु ह्यन्दस इति वदन्ति । न च षोडशाद्वर्षात् परमित्यत्रानूद्भार्यत्वविशेषणमपि व्यर्थमिति वाच्यं तद्विशेषणेन न्यायवर्तिनां शूद्राणां षोडशवर्षोपरि विवाहकालः कल्प्यते । तथाहि 'शूद्राणां मासिकं कार्यं वपनं न्यायवर्तिनाम् । वैश्यवच्छौचकल्पश्च द्विजोच्छिष्टश्च भोजनम्' इति मनुवचना-
 न्यायवर्तिशूद्राणां वैश्यवच्छौचकल्पश्चेत्यत्र चकाराद्वैश्यधर्माति-
 देशेनोपनयनप्रसक्तौ तत्स्थाने ब्रह्मपुराणेन विवाहो विधी-
 यते । यथा विवाहमात्रं संस्कारं शूद्रोऽपि लभते सदा' इति तत्रोपनयनकालश्च 'गर्भाष्टमेऽष्टमे वाब्दे ब्राह्मणस्योपनाय-
 नम् । राज्ञामेकादशे सैके विशामेके यथा कुलम्' इति याज्ञवल्क्योक्तेः । सैके एकादशाह इत्यनुषङ्गात् द्वादशवर्ष इत्यर्थः अत्र चोत्तरोत्तरकालदर्शनात् शूद्रस्याप्युपनयनस्थाना-
 भिषिक्तविवाहस्य तथैव युक्तत्वात् अतएव यथा कुल-
 मित्यतिदेशेन षोडशाद्वत्तरात् प्रागपि विवाहो दृश्यते स तु न प्रकृष्ट इति विशेषः । प्रतिलोमजातानान्तु 'शौचाशौचं प्रकु-
 र्वीरन् शूद्रवद्वर्णमङ्गराः' । इति आदिपुराणाद् व्यवस्था इदा-
 नोन्तन क्षत्रियाणामपि शूद्रत्वमाह मनुः । 'शनकैस्तु क्रिया-
 लोपादिमाः क्षत्रियजातयः । वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणा-
 दर्शनेन च' । अतएव विष्णुपुराणं 'महानन्दिसुतः शूद्रा गर्भि-
 ङ्गवोऽतिलुब्धो महापद्मो नन्दः । परशुराम इव अपरोऽखिल-
 क्षत्रियान्तकारी भविता ततः प्रभृति शूद्रा भूपाला भविष्यन्ति'
 इति तेन महानन्दिपर्यन्तं क्षत्रिय आसीत् । एवञ्च क्रिया-
 लोपाद्वैश्यानामपि तथा । एवमंस्वष्टादौनामपि जातिप्रसङ्गा-
 दुक्तम् । आउत्यानादिति उत्यानपर्यन्तम् । उत्यानञ्च स्वस्व-
 ज्ञात्युक्ताशौचान्तदिन एव 'दशम्यामुत्थाप्य ब्राह्मणान् भोज-

शुद्धितत्त्वम् ।

२३८

यित्वा पिता नाम करोति' इति पारस्करवचनात् । न च दशम्यामित्यस्योपलक्षणपरत्वे प्रमाणाभाव इति वाच्यं ब्राह्मणानित्यादिना तदुत्तरदिने वृद्धिश्चादिसम्बन्धिब्राह्मणभोजनपूर्वकनामकरणविधानात् । न च अशौचाभ्यन्तर एव नामकरणं 'नामधेयं दशम्यान्तु द्वादश्यां वाथ कारयेत्' इति मनुवचनात् हरिशर्माक्तं युक्तमिति वाच्यम् अशौचव्यपगमे नामधेयमिति विष्णुविरोधात् । अतएव दशम्यामिति निवृत्ताशौचपरमिति ब्रह्मचारिकाण्डम् । एतच्च सङ्करेणाशौचङ्गासे तदानीं नामकरणे बोध्यम् एतत् परमेव दिग्विशिवशताह इति दीपिकोक्तं सङ्गच्छते । अविर्द्वादशाहः अवयः शैलमेष्कार्का इत्यमरकोषात् पारस्करोदशम्यामित्यस्यानुपलक्षणत्वे सूतकं तत् स्यात् सूत्याशौचमित्येतयोः सङ्कोचापत्तेः यत्र ब्राह्मणस्य संपूर्णाशौचं तत्र क्षत्रियादीनामपि तथैव युक्तत्वाच्च । एतेन क्षत्रियादीनामपि दशम्याहमध्य एव बालकमरणे अङ्गास्पृश्यत्वयुक्तमशौचमुत्थानावधि तदूर्ध्वान्तु सद्यः शौचम् । 'बालस्त्वन्तर्दशाहे तु प्रेतत्वं यदि गच्छति । सद्य एव विशुद्धिः स्यान्नाशौचं नैव सूतकम्' । इति शङ्खोक्तनयेनोत्थानच्च दशमदिन इति निरस्तं तस्मादेतच्छङ्खवचनं मातापितृव्यतिरिक्तानां सपिण्डानां सद्यः शौचविधायकम् अन्तर्दशाहपदञ्च स्वस्वजात्युक्ताशौचाहपरम् । एवञ्च सूतकं तत्स्यादित्यभिधानात् तत्र बालस्य शृगालादिहतत्वेऽपि मरणनिमित्तको विशेषः । यच्चान्तःसूतक इत्युभयोरपि कन्यापुत्रयोः सूतकमध्ये मरणे मातापितृोर्दशाहपर्यन्तमेवाशौचमिति तच्चिन्त्यम् अद्विवर्षं प्रेते इत्यनेन पुंसः प्रकृतत्वात् । न च निमित्तविशेषणत्वात् पुंस्त्वमविवक्षितमिति वाच्यं तथात्वे अद्विवर्षीयकन्यामरणेऽप्येकरात्रं त्रिरात्रं वेति स्यात् । न च

२७०

शुद्धितत्त्वम् ।

शरीरमदग्ध्वा निखनन्तीति शरीरप्रतिपत्तेः स्त्रीपुंसाधारण-
 त्वेन स्त्रिया अपि प्रकृतत्वमस्तीति वाच्यं पारस्करेण पुरुषस्य
 शरीरप्रतिपत्त्यादिकमभिधाय स्त्रीणाञ्चेत्युक्तम् । तदनन्तर-
 मप्रत्तानामिति सूत्रान्तरेण कन्यानां यथायोग्यमतिदिश्यते
 अतः शरीरप्रतिपत्तिं पिण्डोदकादौनामनन्यप्रकारत्वात् पुं-
 देव अशौचस्य तु वचनान्तरेण कन्यानां पृथक्विधानात् न
 तथात्वमिति अतएव सर्वैर्निबन्धभिः प्रकरणभेदेन स्यशौच-
 मिति निर्दिश्यते अतएव आदिपुराणे । जनकस्त्रिभिरित्यन-
 न्तरमेव आजन्मनस्तु चूडान्तमित्यभिधानेन पितुरपि सद्यः
 शौचमुक्तं तद्धादन्तःसूतक इत्यादि पुंसावविषयकं न कन्या-
 विषयकम् । कूर्मपुराणम् 'आदन्तजननात् सद्यः आचूडा-
 देकरात्रकम् । त्रिरात्रञ्चोपनयनात् सपिण्डानामुदाहृतम्' ।
 सपिण्डानां निर्गुणानाम् । 'अथोङ्' दन्तजननात् सपिण्डा-
 नामशौचकम् । एकाहं निर्गुणानान्तु चौडादूङ्' त्रिरात्रकम्'
 इति तत्रैवोक्तेः । आदन्तजननादिति तु विप्रविषयं शूद्रस्य
 त्रिरात्रविधानात् । दन्तजननादिकञ्च दन्तजन्मचूडोपनयन-
 कालोपलक्षणम् । अन्यथा देवादजातदन्तस्य प्रथमेऽब्दे
 चूडाकरणमिति वचनात् कुलाचाराच्च नवमे मासि कृतचूडस्य
 मरणेऽनध्यवसायापत्तेः किमजातदन्तत्वेन सद्यः किंवा कृत-
 चूडत्वेन त्रिरात्रमिति अतएव ब्रह्मपुराणीयषड्भिर्मासैर्गतै-
 र्वहिरित्यत्र तथा व्याख्यातम् । गर्भोपनिषदि दन्तजन्मसप्तमे
 मासौत्पत्तं तेन षण्मासावधि सद्यः शौचं चूडायामपि 'विप्रे-
 त्यूने त्रिभिर्वर्षैर्मृते शुद्धिस्तु नैशिकी । निवृत्तचूडके विप्रे
 त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते' इत्यङ्गिरोवचनैकवाक्यत्वात् । त्रिभि-
 र्वर्षैरिति त्रिभिर्वर्षैरुपलक्षिताद्वर्त्तमानं तृतीयवर्षाश्रूने जन-
 द्विवापिक इत्यर्थः एवं शूद्रे त्रिवर्षाश्रूने इत्यपि बोध्यम् एक-

शुद्धितत्त्वम् ।

२७१

सुपनयनकालोऽपि गर्भाष्टमाब्द एव । आदिपुराणे अनुप-
नीतो विप्रस्त्वित्यभिधाय 'स्त्रियते यत्र तत्र स्यादशौचं त्रग्रह-
मेव हि । द्विजन्मनामयं कालस्त्रयाणान्तु षडाब्दिकम्' इत्युक्त-
त्वात् । षडब्दपदञ्च मासत्रयाधिकषडब्दपरं 'गर्भाष्टमेऽष्टमे
वाब्दे ब्राह्मणस्योपनायनम्' इति याज्ञवल्क्यादिति हारलता ।
यत्तु 'व्रतचूडद्विजानान्तु प्रतीतिषु यथाक्रमम् । दशाह त्रग्रह
एकाहैः शुद्धान्त्यपि हि निर्गुणाः' । इति जावालिवचनं
तत् प्रतीतिष्वित्यभिधानात् पञ्चमाब्दोपनीतस्य प्रथमाब्दकृत-
चूडस्य षण्मासाभ्यन्तरजातदन्तस्य मरणे दशाहादिभिः शुद्धि-
परम् एतत् ब्राह्मणविषयं क्षत्रियादीनामपि तथाशौचवृद्धिः
कल्प्यते । अन्यथा ब्राह्मणस्य दन्तादिप्रतीतावशौचाधिक्य-
मन्यस्य न तथेति वैषम्यं स्यात् तेन शूद्रस्य षण्मासाभ्यन्तरे
दन्तोत्पत्तौ मरणे पञ्चाहः द्विवर्षाभ्यन्तरे कृतचूडस्य द्वादशाहः
उपनयनवत् प्रधानसंस्कारत्वेन देवात् कृतोद्वाहेऽपि मासो
व्यवह्रियते । अन्यथा यत्र द्विवर्षीयायाः शूद्रपत्न्या मरणे
मासाशौचं तद्वोढुः पञ्चाब्दीयस्य मरणे द्वादशाहाशौचे
वैषम्यापत्तेः । अतएव द्विवर्षोत्तरं षोडशवर्षाभ्यन्तरेऽनूढभार्य्य-
शूद्रे मृते द्वादशाहमेवाशौचमिति वदता वाचस्पतिमिश्रे-
णापि द्विवर्षोपरि ऊढभार्य्यमरणे मासाशौचमङ्गौक्यमिति ।
एवञ्च प्रथमाब्दकृतचूडमरणविषये मनुः । 'ऊनद्विवार्षिकं
प्रेतं निदध्युर्बान्धवा वह्निः । अलंकृत्य शुची भूमावस्थिसञ्चय-
नादृते । नास्य कार्य्योऽग्निसंस्कारो नापि कार्य्योदकक्रिया ।
अरण्ये काष्ठवत् क्षिप्त्वा क्षिपेयुस्तहमेव हि' । अकृतचूडेऽपि
स एव 'नृणामकृतचूडानामशुद्धिर्नेशिकी स्मृता । निवृत्त-
चूडकानान्तु त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते' । एतत् परार्द्धेनोनद्विवा-
र्षिकमिति वचनस्य विषयो दर्शितः । यत्तु पैठीनसिवचन-

२७१

शुद्धितत्त्वम् ।

मक्ततचूडानां त्रिरात्रमिति तत्तद्विवर्षाद्युपस्थिततचूडानां
मन्तव्यं मिताक्षराध्येवम् । एतेन जनद्विवर्षिकस्यादाहेऽपि
त्रिरात्रविधानात् स्नेहादाहादाहकतत्रिरात्रैकरात्रस्य व्यवस्था
मैथिलोक्ता हेया । हारलताप्रभृतिभिस्तु निर्गुणात्वन्तनिर्गु-
णाभ्यां व्यवस्था कृतेति ।

अथ सगुणायशौचम् । ननु बालादीनां सद्यः प्रभृत्य-
शौचश्रवणात् । 'सद्यः शौच' तथैकाहश्चतुरहस्तथा । षड-
दशद्वादशाहश्च पक्षीमासस्तथैव च । मरणान्तं तथाचान्य-
दशपक्षास्तु सूतके' इति दत्तवचनमपि यथायोग्यं तत्परमस्तु
न तु अत्यन्तसगुणादिपरं चतुरहश्च चतुर्मासगर्भस्रावविषयः ।
षडहः द्विवर्षादुत्तरकालीनोपनयनप्राक्कालीनक्षत्रियबालक-
विषयः । 'यत्र त्रिरात्रं विप्राणामशौचं संप्रदृश्यते । तत्र
शूद्रे द्वादशाहः पश्यवत्तत्र वैश्ययोः' । इति हारलताधृत-
वचनादिति चेन्न 'उपन्यासक्रमेणैव वक्ष्याम्यहमशेषतः । ग्रन्था-
र्थतो विजानाति वेदमङ्गैः समन्वितम् । सकल्प' सरहस्यञ्च
क्रियावाञ्छेन सूतकम्' इत्यादिवचनेदर्शनेव सगुणनिर्गुणभेदेन
दत्तविषयत्वात् । अतएव वाचस्पतिमिश्रेण गुणहान्या षड-
हादिव्यवस्थोक्ता अन्यज्जननमरणाद्विभ्रं मरणान्तं दशममिति
रत्नाकरः । तथाच कूर्मपुराणम् । 'क्रियाहीनस्य मूर्खस्य
महारोगिण एव च । यद्येष्टाचरणस्याहुर्मरणान्तमशौचकम्' ।
मूर्खस्य गायत्रीरहितस्य सार्थगायत्रीरहितस्येति रुद्रधरः ।
मरणान्तं यावज्जीवम् । केचित्तु दत्तवचने सगुणानां दशा-
हादिसमभिव्याहारात् सद्यः प्रभृतिभिः सर्वाशौचनिवृत्तिः न
तु होमाध्यापनमात्रार्थत्वाद्बहुस्तच्चिन्त्यं जावालादिवचनविरो-
धात् । तथाच जावालः 'उभयत्र दशाहानि सपिण्डाना-
मशौचकम् । स्नानोपस्पर्शनाभ्यासादग्निहोत्रार्थमर्हति' । उभ-

शुद्धितत्त्वम् ।

२७३

यत्र मृत्युजन्मनोः अत्र साग्नीनामेव दशाहाशौचं प्रतीयते ।
 स्नानाचमनाभ्यासादेकाहाद्युत्तरमग्निहोत्रार्हता च । अन्यथा
 निरग्निसाग्नविषयत्वेन वाक्यभेदादौरवं स्यात् । सर्वर्तः
 'होमश्च तत्र कर्त्तव्यः शुष्कान्नेनैव वा फलेः । पञ्चयज्ञविधानञ्च
 न कुर्यान्मृत्युजन्मनोः । दशाहात् तु परं सम्यग्विप्रोऽधीयौत
 धर्मवित्' । अतएव येषामशौचाभ्यन्तरे होमस्तेषामेव दशा-
 होत्तरं पञ्चयज्ञादि प्रतीयते । गोतमः । 'श्रुत्वा चोद्धुं दशम्याः
 पक्षिणीम्' इति अस्य चतुरहपञ्चाहाशौचिसगुणविषयकतया
 तैरेव व्यवस्थापितत्वेन दशम्या ऊर्द्धुमित्यनुपपत्तेः । 'आशुच्यं
 दशरात्रन्तु सर्वत्राप्यपरे विदुः' इति देवलवचनेन सगुणविष-
 यकत्वान्न क्षत्रियादीनां सर्वाशौचनिवृत्तिः । 'चक्रे द्वादशिकं
 आहं त्रयोदशिकमेव च' । इति वक्ष्यमाणवचनेन रामादि-
 विवाहप्रस्तावे । त्रीनग्नींस्ते परिक्रम्य ता उदुहुर्बधूः पृथगि-
 त्यादिकाण्डोक्तसाग्नित्वेन सगुणस्य भरतस्य द्वादशाहिकादि
 आहकर्त्तृत्वप्रतीतिः । शूद्रस्यापि सेवकान्तराभावे ब्राह्मण-
 सेवार्थमेव दशाहोत्तरं शुद्धिः । 'मासेनैव तु शुद्धिः स्यात् सूतके
 मृतकेऽथवा' इत्यङ्गिरो वचने एवकारश्रुतेः सर्वाशौचनिवृत्तिस्तु
 मासेनैव तस्मात् सगुणानां तत्तत्कर्मण्येवाशौचसङ्कोचसर्वा-
 शौचनिवृत्तिस्तु दशाहाद्यूर्द्धुमिति हारलतामिताक्षरारत्नाकरा-
 द्युक्तं साधीयः । वस्तुतस्तु हेमाद्रिपराशरधृतादित्यपुराणेन
 वृत्तादिनिमित्तशौचसङ्कोचश्च कलौ निरस्तः । 'कन्यानाम-
 सवर्णानां विवाहश्च द्विजातिभिः' । तथा 'वृत्तस्त्राध्याय-
 सापेक्षमघसङ्कोचनं तथा । प्रायश्चित्तविधानञ्च विप्राणां
 मरणान्तिकम् । संसर्गदोषः पापे मधुपर्के पशोर्बन्धः । दत्तौ-
 रसेतरेषान्तु पुत्रत्वेन परिग्रहः । शूद्रेषु दासगोपालकुल-
 मिवाहसौरिणाम् । भोज्यान्नता गृहस्थस्य तीर्थसेवाति-

२७४

शुद्धितत्त्वम् ।

दूरतः' । तथा 'ब्राह्मणादिषु शुद्धस्य पक्वतादिक्रियापि च ।
 भृग्वग्निमरणश्चैव वृद्धादिमरणन्तथा' इत्यादीन्यभिधाय
 'एतानि लोकगुप्त्यर्थं कलैरादौ महात्मभिः । निवर्त्तितानि
 कर्माणि व्यवस्थापूर्वकं बुधैः' । एवञ्चात्र कलावचवर्णाविवाह-
 निषेधात् सर्ववर्णसन्निपाताशौचं नाभिहितम् । पक्षिणी
 तु अर्हद्वयसहिता रात्रिरेव । 'हावक्लावेकरात्रिश्च पक्षिणी-
 त्वभिधीयते' । इति भट्टनारायणधृतवचनात् । पक्षतुल्यी
 तु दिवसौ पार्श्वयोस्तु इति पक्षिणीरात्रिरिति सरलापि यत्र
 रात्रौ श्रुतं तत्र पूर्वदिनमादाय पक्षिणीव्यवहारः । 'रात्रावेव
 सप्तपदे नृते रजसि सूतके । पूर्वमेव दिनं ग्राह्यं यावन्नैवो-
 दितो रविः' इति वाचस्पतिमिश्रधृतपराशरवचनात् । एतेन
 दिनद्वयसहिता रात्रिः रात्रिद्वयसहितश्च दिनमविशेषात्
 पक्षिणीति निरस्तं दिनविशिष्टत्वे स्त्रीलिङ्गानुपपत्तिः स्यात् ।

अथ विदेशस्थाशौचम् । गोतमः । 'श्रुत्वा चोर्द्ध्वं दश-
 म्याश्च पक्षिणीम्' इति । 'अतिक्रान्ते दशाहे तु त्रिरात्र-
 मशुचिर्भवेत्' । इत्यादौ स्वस्वजात्युक्तपूर्णाशौचानन्तरमेवाति-
 क्रान्ताशौचं प्रतीयते न तु बालादिखण्डाशौचानन्तरं 'बाले
 देशान्तरस्थे तु पृथक्पिण्डे च संस्थिते । सवासा जलमाप्नुत्य
 सद्य एव विशुद्धयति' इति मनुवचनात् अतएव शङ्केन 'मरणा-
 देव कर्त्तव्यं संयोगो यस्य नाग्निना । दाहादूर्द्ध्वमशौचं स्याद्
 यस्य वैतानिको विधिः' इत्यतो विशेषवचनाभावे मरणकाला-
 वध्यशौचं सामान्यत उक्तम् अन्यथा पूर्णाशौचशेषदिने तन्म-
 रणश्रवणे ज्ञातीनामेकाहः दौहित्रादीनां त्र्यहादिरिति
 वैषम्यं स्यात् । तथाच मिताचरायां व्याघ्रपादः 'तुल्यं
 वयसि सर्वेषामतिक्रान्ते तथैव च । उपनीते तु विषमं तस्मि-
 न्नेवातिकालजम्' । वयसि उपनयनकालात् पूर्वस्मिन् काले

शुद्धितत्त्वम् ।

२७५

सर्वेषां वर्णानां त्रिरात्राशौचं तुल्यमिति दक्षिणात्यदेशव्यव-
स्थितम् । अन्यदेशे तु कूर्मपुराणादिना तत्तत्काले तत्तद्वर्णा-
नामशौचविशेष उक्तः । तथाच मरौचिः 'येषु स्थानेषु
यच्छौचं धर्माचारश्च यादृशः । तत्र तन्नावमन्येत धर्मस्तत्रैव
तादृशः' । विदेशगतानान्तु पित्राद्याचार एव 'येनास्य
पितरौ याता येन याता पितामहाः । तेन यायात् सतां
मार्गं तेन गच्छन्न दुष्यति' । इति मनुवचनात् । अतिक्रान्ते
यत् त्रिरात्रं तदपि तुल्यम् । तथाच शङ्खः । 'अतीते सूतके
स्वे स्वे त्रिरात्रं स्यादशौचकम् । संवत्सरव्यतीते तु सद्यः
शौचं विधीयते' । कौर्म 'तद्यैव मरणे स्नानमूर्द्ध्वं संवत्सराद्
यदि' । जननाशौचेऽपि देवलः । 'नाशौचं प्रसवस्यास्ति
व्यतीतेषु दिनेष्वपि' । पुत्रजन्मव्यतीताशौचकाले पितुः स्नान-
माह मनुः 'निर्देशं ज्ञातिमरणं श्रुत्वा पुत्रस्य जन्म च ।
सवासा जलमाप्नुत्य शुद्धो भवति मानवः' । मरणे स्नानादि-
नाङ्गस्य त्वनिवृत्तिरूपा शुद्धिः न तु सर्वाशौचनिवृत्तिः
त्रिरादेर्विधानात् पुत्रजनने तु सर्वाशौचनिवृत्तिः सङ्कोचा-
भावात् । उपनीते त्विति उपनयनकालानन्तरन्तु दशाह-
द्वादशाहादिरूपेण विषमं स्वस्वजात्युक्ताशौचमित्यर्थः । तस्मि-
न्नेवोपनीतोपरम एव अतिकालजमिति अतिक्रान्तकाला-
शौचं न तु दालाद्यशौचातिक्रमेऽपि । श्रुत्वा चोर्द्ध्वं दशम्याः
पक्षिणीमित्यत्र दशम्या ऊर्द्ध्वमिति श्रुतेः प्राचां मैथिलानां
चतुर्मासोपरि अर्वाचाश्च षण्मासोपरि यत् पक्षिण्यशौचाभि-
धानं तद्वेद्यम् । किन्तु हारलतोक्तं सगुणविषयमेवेति युक्तम् ।
अत्र विशारदचरणाः 'अतीताशौच एकाहं खण्डाशौचि सृते
श्रुतौ । संपूर्णाशौचि मरणे श्रुतौ ज्ञेयं त्रिरात्रकम्' इति
वायुपुराणवचनं यदि समूलं तदा खण्डाशौचि पितरि सृते

२७६

शुद्धितत्त्वम् ।

ज्ञेयमिति । यत्तु 'मासत्रये त्रिरात्रं स्यात् षण्मासे पक्षिणौ तथा । अहस्तु नवमादवागूह्यं स्नानेन शुद्ध्यति' इति मिताक्षरायां बृहन्मनुवशिष्टवचनाद्व्यवस्थितेति तद्वाचिणात्यानाम् । देवलः 'अशीचाहःष्वतीतेषु बभ्रुश्चेत् श्रूयते मृतः । तत्र त्रिरात्रमाशुच्यं भवेत् संवत्सरान्तरे । ऊर्ध्वं संवत्सरादाद्याबभ्रुश्चेत् श्रूयते मृतः । तावदेकाहमेवात्र तच्च सत्र्यासिनं न तु' । बभ्रुरत्र माता पिता भर्ता च । यत्तु मिताक्षरायां 'पितरौ चेन्मृती स्यातां दूरस्थोऽपि हि पुत्रकः । श्रुत्वा तद्दिनमारभ्य दशाहं सूतकी भवेत्' इति पैठीनस्युक्तं तत्कलिङ्गीट्टादिदेशव्यवस्थितम् । तेषां तथाचरणात् । तथाच वामनपुराणं 'देशानुशिष्टं कुलधर्ममग्रं स्वगोत्रधर्मं न हि संत्यजेच्च' । एवमन्यानि तद्वृतवचनानि देशविशेषविषयतया व्यवस्थेयानि ।

अथ सपिण्डाद्यशीचम् । बृहस्पतिः । 'दशाहेन सपिण्डास्तु शुद्ध्यन्ति प्रेतसूतके । त्रिरात्रेण सकुल्यास्तु स्नात्वा शुद्ध्यन्ति गोत्रजाः' । प्रेतसूतके सरणजननयोः सपिण्डाः सप्तमपुरुषावधयः कन्यायास्तु तृतीयपुरुषावधयः सकुल्या दशमपुरुषावधयः एष विशेषः सपिण्डादिविचारे स्फुटीभवित्यति । गोत्रजाः त्रिवृत्तसमानोदकभावाः दशाहेनेति विप्रपरं तथाच मनुः । 'शुद्धेऽपि दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः । वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्ध्यति' । अङ्गिराः 'दशमेऽहनि शूद्रस्य कार्यं संस्पर्शनं बुधैः । मासेनैव तु शुद्धिः स्यात् सूतके मृतकेऽपि वा' । अत्र वर्ज्यावर्ज्यं जावालिः । 'सन्ध्यां पञ्चमहायज्ञान् नैत्यिकं स्मृतिकर्म च । तन्मध्ये हापयेत्तेषां दशाहान्ते पुनः क्रिया' । तन्मध्ये अशीचमध्ये हापयेत् त्यजेत् । नैत्यिकं स्मृतिकर्मबैधस्नानादि । अत्र च सुहृत्त-

शुद्धितत्त्वम् ।

२७७

मध्यप्रयतो न स्यादिति आपस्तम्बवचनादसृश्यस्पर्शनादौ
 शौचस्य स्वकृतिसाध्यत्वात् तदर्थं नैमित्तिकं स्नानादिकर्त्तव्यं
 मूत्रपुरीषोत्सर्गादिनिमित्ताशौचे प्रक्षालनादिवत् एवं
 भोजनाश्रितत्वात् प्राणाहृत्यादि च । एवञ्च कर्माभ्यन्तरे
 चाप्रायत्ये शौचसम्पादकत्वेन स्नानादिकं नैमित्तिकाङ्गत्वान्न
 व्यवधायकम् अतएव पूर्वकृतानां न पुनः करणम् । अतएवा-
 चार रत्नाकरे जावालः । 'कर्ममध्ये तु यः कश्चिद्यदि स्यादशुचि-
 र्नरः । स्नात्वा कर्म पुनः कुर्यादन्यथा विफलं भवेत्' इति ।
 यज्ञपार्श्वेऽपि 'स्नार्त्तकर्मपरित्यागो राहोरन्यत्र सूतके' । शङ्खः
 दानं प्रतिग्रहो होमः स्वाध्यायः पितृकर्म च । प्रेतपिण्डक्रिया-
 वर्जं सूतके विनिवर्त्तते । नाशुचिर्देवपिण्ड ऋषिनामानि च न
 कौर्त्तयेत्' इति वचनं विष्णुनामातिरिक्तपरम् । 'न देश-
 नियमस्तत्र न कालनियमस्तथा । नोच्छिष्टादौ निषेधोऽस्ति
 विष्णोर्नामनि लुब्धक' इति वचनात् । अभिवादयेदित्यनु-
 वृत्तौ शङ्खलिखितौ । 'नाशुचिर्न जपन् देवपितृकार्यं
 कुर्वन्निति' आपस्तम्बः अप्रयतश्च न प्रत्यभिवादयेदिति ।
 नमस्कारमाह स्मृतिः 'सर्वे चापि नमस्कुर्युः सर्वावस्थाश्च
 सर्वदा' । इति राघवभट्टधृतनारदवचनम् । अथ सूतिकिनः
 पूजां वक्ष्याम्यागमचोदिताम् । स्नात्वा नित्यञ्च निर्वर्त्य
 मानस्याक्रियया तु वै । वाह्यपूजाक्रमेणैव ध्यानयोगेन पूज-
 येत् । यदा कामी न चेत् कामी नित्यं पूर्ववदाचरेत्' ।
 नित्यञ्चाशुचिकर्त्तव्यं प्रेततर्पणादि । मन्त्रमुक्तावल्यां 'जपो-
 देवार्चनविधिः कार्यो दौक्षान्वितैर्नरैः । नास्ति पापं यतस्तेषां
 सूतकं वा यतात्मनाम्' अतएव मन्त्रग्रहणदिने तथाविधा
 प्रतिज्ञा राघवभट्टेन लिखिता । यथा 'वरं प्राणपरित्याग-
 म्छेदनं शिरसोऽपि वा । न त्वनभ्यर्थं भुञ्जीत भगवन्तं

२७८

शुद्धितत्त्वम् ।

त्रिलोचनम्' इति 'अपूजिते शिवे भुक्त्वा प्रासादाष्टशतं जपेत्
 अज्ञानादीदृशं ज्ञानं ज्ञानात् विद्याच्चतुर्गुणम्' अन्यत्राधोक्षज-
 मित्याद्यूहेत । मत्स्ये भगवन्तमित्यत्र केशव कौशिकीमिति
 यत्तु नृसिंहकल्पे सदा मन्त्रं जपेदित्युक्त्वा 'यदि स्यादशुचिस्तत्र
 स्मरेन्मन्त्रं न तूच्चरेत् । मनो हि सर्वजन्तूनां सर्वदेव शुचि
 स्मृतम्' इति तन्मूत्रपुरीषोत्सर्गाद्यशौचपरं तत्र रामार्चन-
 चन्द्रिकाधृतमहार्णवतन्त्रान्तरेऽपि । 'अशुचिर्वा शुचिर्वापि
 गच्छंस्तिष्ठन् स्वपन्नपि । मन्त्रैकशरणोविद्वान् मनसैव सदा-
 भ्यसेत्' मरौचिः । 'लवणे मधुमांसे च पुष्पमूलफलेषु च ।
 शाककाष्ठटण्डुलेष्वप्युदधिसर्पिःपयःसु च । तैलौषध्यजिने चैव
 पक्वापक्वे स्वयं ग्रहे । पण्येषु चैव सर्वेषु नाशौचं मृतसूतके' ।
 पक्वं शुष्कान्नं शक्तुं लाजादि अपक्वं तण्डुलादि तत् स्वयं गृह्य-
 माणं न दोषाय । पण्येषु चेति पृथग्भिधानात्तेषु अशौचिना
 दत्तेष्वपि न दोषः । बौधायनः मानसमप्यशुचिरिति मान-
 सेऽपि जननमरणयोरनध्यायः । मिताक्षरायामङ्गिराः 'अति-
 क्रान्ते दशाहे तु पञ्चाज्जानाति चेद् गृह्ये' । त्रिरात्रं सूतकं
 तस्य न च द्रव्येषु कर्हिचित्' । कूर्मपुराणे 'मातामहानां
 मरणे त्रिरात्रं स्यादशौचकम् । एकोदकानां मरणे सूतकं
 चैतदेव हि । पक्षिणीयोनिस्त्वन्ये बान्धवेषु तथैव च ।
 एकरात्रं ससुहिष्टं गुरौ सव्रह्मचारिणि । प्रेते राजनि स
 ज्योतिर्यस्य स्याद्विषये स्थितिः' । तथा 'परपूर्वासु भार्यासु
 पुत्रेषु कृतकेषु च । त्रिरात्रं स्यात्तथाचार्यं स्वभार्या-
 स्वव्यगासु च । आचार्यपुत्रे पत्न्याश्च अहोरात्रमुदाहृतम् ।
 एकाहं स्यादुपाध्याये स्वग्रामे श्रोत्रियेषु च । त्रिरात्रमस-
 पिण्डेषु स्वगृहे संस्थितेषु च । एकाहश्चाप्यशुद्धं स्यादेकरात्रञ्च
 शिष्यके' एकाहश्चैकरात्रञ्चेत्त्रहोरात्रमित्यर्थः । 'त्रिरात्रं श्वश्रू-

श्रुतितत्त्वम् ।

२७६

मरणे श्वशुरे चैतदेव हि । सद्यः शौचं समुद्दिष्टं सगोत्रे
 संस्थिते सति । एकोदकानां समानोदकानां योनिसम्बन्धे
 मातृस्वस्रीयभागिनेयेषु बान्धवेषु पितृबान्धवेषु तथैव चेति
 प्रागुक्तपक्षिणीत्यर्थः अन्यथा तदुपादानं व्यर्थं स्यात् अतएव
 'दन्तजातेऽनुजाते च कृतचूडे च संस्थिते । अशुद्धा बान्धवाः
 सर्वे सूतकेषु तथोच्यते' इति मनुवचने बान्धवाः सर्वे इत्यत्र
 सर्वशब्दान्न सपिण्डानामेवाशौचं किन्तु समानोदकसगोत्र-
 मातृबन्धुपितृबन्धुप्रभृतीनां ग्रहणमिति हारलताव्याख्यानेऽपि
 पितृबन्धूनामप्यशौचमुक्तम् । सम्बन्धविवेके पितृबन्धूनामप्य-
 शौचमुक्तञ्च सङ्गच्छते । पितृबान्धवाः पितुः पितुः स्वसुः पुत्राः
 पितुर्मातुः स्वसुः सुताः पितुर्मातुलपुत्राश्च विज्ञेयाः पितृ-
 बान्धवाः । अनुजात इति दन्तजातस्य प्राङ्निर्देशादृक्ष-
 वच्छास्त्रव्यवहार इति न्यायेन जातदन्तादनु पश्चाज्जातो जात-
 दन्त इत्यर्थः । कृतचूडेति चकारात् कृतोपनयने चेति संस्थिते
 मृते । अत्र सूतस्य तत्तत् कर्मभेदोपादानमशौचभेदाय स च
 प्रागेव विवृतः । मातृबान्धवेषु तु एकरात्रं तथाच जावालिः
 समानोदकानां त्र्यहं गोत्रजानामहः स्मृतम् । मातृबन्धौ गुरौ
 मित्रे मण्डलाधिपतौ तथा । मातृबान्धवाश्च 'मातुर्मातुः
 स्वसुः पुत्रा मातुः पितुः स्वसुः सुताः । मातुर्मातुलपुत्राश्च
 विज्ञेया मातृबान्धवाः' गोत्रजा एकग्रामवासित्वेन विशेष-
 णीयाः तत्परिणयेऽत्यन्तनिर्गुणानामेकाहः अन्येषान्तु सद्यः
 प्रागुक्तकूर्मपुराणात् । मण्डलाधिपतिश्च यस्य मण्डले निवास-
 रूपेण स्थितिः क्रियते । कृतकेषु च इति चकारात् क्षेत्र-
 जादिषु तथाच त्रिरात्रानुवृत्तौ विष्णुः । अनौरसेसु पुत्रेषु
 जातेषु च मृतेषु च । परपूर्वासु भार्यासु प्रसूतासु सृतासु च
 इति । पितृमरणेऽपि तेषां त्रिरात्रमाह ब्रह्मपुराणं दत्तकाश्च

२८०

शुद्धितत्त्वम् ।

स्वयं दत्तः कृत्रिमः क्रीत एव च । अपविद्वाश्च ये पुत्रा भर-
णीयाः सदैव ते । भिन्नगोत्राः पृथग्पिण्डाः पृथग्वंशकराः
स्मृताः । सूतके स्मृतके चैव त्र्यहाशौचस्य भागिनः । एतच्च
कलौ दत्तकमात्रविषयम् अन्येषां प्रागुक्तादित्यपुराणेन करण-
निषेधात् । स्वभार्यास्वन्यगासु च सजातीयोत्कृष्टजातीय-
पुरुषान्तरसंगृहीतासु । अपकृष्टजातिगमने पतितत्वेनाशौचा-
भावात् । असपिण्डेषु भिन्नकुलजेषु श्रोत्रियरूपेषु मातृ-
स्वस्रादिषु च स्वगृहस्मृतेषु त्रिरात्रम् । तथाच प्रचेताः 'मातृ-
स्वसृमातुलयोः श्वश्रूश्चशुरयोर्गुरौ । ऋत्विजि चोपरते च
त्रिरात्रमिति शिष्यके । एकाहश्च एकरात्रञ्चेति अहोरात्र-
मित्यर्थः । श्वश्रूश्चशुरयोस्तु स्वगृहभिन्नेऽपि सन्निधिमरणमात्रेण
त्रिरात्रं । 'श्रोत्रियेतूपसम्पन्ने त्रिरात्रमशुचिर्भवेत्' इति मनु-
वचने उपसम्पन्न इत्यत्र सन्निहितत्वेनाशौचविशेषदर्शनाद-
त्रापि तथा कल्प्यते अन्यथा स्वगृहमात्रपरत्वे त्रिरात्रमसपि-
ण्डेषु स्वगृहे संस्थितेषु चेत्यनेन सम्बन्धिमात्रपरत्वेन कूर्मपुरा-
णीयेन त्रिरात्रं श्वश्रूमरणे श्वशुरे चैतदेवहीत्यस्य पुनरुक्तत्वा-
पत्तेः । श्रोत्रियमाह देवलः । 'एकां शाखां सकल्पां वा षड्भि-
रङ्गैरधीत्य वा । षट्कर्मनिरतो विप्रः श्रोत्रियो नामधर्मवित् ।
यत्तु यम वचनं 'श्वशुरयोर्भगिन्याञ्च मातुलान्याञ्च मातुले ।
पित्रोः स्वसरि तद्वच्च पक्षिणीं क्षपयेन्निशाम्' इति मिताक्षरारत्ना-
करयोर्वहन्मनुवचनञ्च । 'मातुले श्वशुरे मित्रे गुरौ गुर्वङ्गनासु
च । अशौचं पक्षिणीं रात्रिं स्मृता मातामही यदि' इति श्वश्रु-
श्वशुरयोरेकग्रामस्थितयोरसन्निधिमरणे पक्षिणीविधायकम् ।
स्वग्रामे श्रोत्रियेषु च इत्यत्र स्वग्रामत्वेनापि विशेषदर्शनाद-
त्रापि वचनानां विरोधे 'बहुनामेकधर्माणामेकस्यापि यदुच्यते ।
सर्वेषामेव तत् कुर्यादेकरूपा हि ते स्मृता' । इति बौधायन-

शुद्धितत्त्वम् ।

२८१

वचनस्वरसात्तथा कल्पयते । एवञ्च श्वश्रूश्चशुरयोर्विष्णुक्तमेक-
 रात्रं भिन्नग्राममरणविषयकम् । यथा आचार्यपत्नीपुत्तोपा-
 ध्यायमातुलश्वशुरश्वश्रूयसहाध्यायिशिष्येषु एकरात्रेणेति
 आचार्यपत्नीपुत्रयोर्मातुः सापन्नभ्रातर्यहोरात्रं सोदरे तु भिन्न-
 स्थानमृतेऽपि पक्षिणी एवं हारलताप्रभृतयः । 'श्वश्रूयं श्यालके
 सहाध्यायिनि सतीर्थं शिष्ये वेदैकदेशवेदाङ्गाध्याये' । मनुः
 'मातुले पक्षिणीं रात्रिं शिष्यत्विग्वान्धवेषु च' । अत्र पक्षिणी-
 विधानाद्धान्ववपदं स्वबान्धवपरम् । स्वबान्धवाश्च मिता-
 चरायाम् 'आत्ममातुः स्वसुः पुत्रा आत्ममातुः स्वसुः सुताः ।
 आत्ममातुलपुत्राश्च विज्ञेया आत्मबान्धवाः' । मातृबन्धौ
 जावाल्लिनाहर्विधानादात्मबान्धवे तदधिकं युक्तं रायमुकुट-
 प्रभृतयोऽप्येवम् । एकरात्रमित्यनुवृत्तौ विष्णुः । 'असपिण्डे
 स्ववेश्मनि मृते' इति असपिण्डे अश्रोत्रियरूपे 'अश्रोत्रिये
 त्वहः कृत्स्नम्' इति मनुवचनैकवाक्यत्वात् ब्रह्मपुराणम्
 'आढावेकस्य दत्तायां कुत्रचित् पुत्रयोर्द्वयोः । पितुर्यत्र
 त्रिरात्रं स्यादेकं तत्र सपिण्डिनाम् । एका माता द्वयोर्यत्र
 पितरौ द्वौ च कुत्रचित् । तयोः स्यात् सूतकादैक्यं मृतकाच्च
 परस्परम्' । प्रथममन्येनोढा तेनैव जनितपुत्रापुत्रसहितै-
 वान्यमिश्रिता पश्चात्तेनापि जनितपुत्रा तयोः पुत्रयोर्यथा-
 सन्भवं प्रसवमरणयोर्द्वितीयपुत्रपितुस्त्रिरात्रम् । एवंविधे च
 विषये यत्र परस्त्री पुत्रजनकस्य त्रिरात्रं तत्र तत्सपिण्डाना-
 मेकरात्रम् । तथाविधपुत्रयोः परस्परं प्रसवमरणयोर्मातृ-
 जात्युक्ताशौचम् । अत्र विशेषयति नारदः । 'जाता ये
 त्वनिधुक्तायामेकेन बहुभिस्तथा । अरिक्थभाजास्ते सर्वे
 वीजिनामेव ते सुताः । दद्युस्ते वीजिने पिण्डं माता चेत्
 शुल्कतो ह्येता । अशुल्कोपहृतायान्तु पिण्डदा वोढुरेव ते' ।

२८२

शुद्धितत्त्वम् ।

अरिक्थभाजः क्षेत्रिणामित्यर्थः एवकारेण द्विपिटकत्वं निरस्तम् । तदेतच्छुल्कतः स्त्रीसंग्रहे बोद्धव्यं शुल्काभावे क्षेत्रिण एव पिण्डदा इति आहविवेकः । वस्तुतस्तु प्रागुक्तादित्यपुराणवचनात् कलौ क्षेत्रजपुत्रकरणनिषेधात् स च पुत्रो वीजिनामेव इदानीं व्यवहारोऽपि तथा । 'जातापि दास्यां शूद्रेण कामतोऽंशहरो भवेत् । मृते पितरि कुर्युस्तं भ्रातरस्त्वर्द्धभागिनम्' । इति याज्ञवल्करदर्शनाच्छूद्राणामेव तथाविधाचारो नान्येषां वर्णानामिति अतएव प्रागुक्तब्रह्मपुराणवचनमप्येतत्परम् । यत्तु 'अन्यपूर्वा गृहे यस्य भार्या स्यात्तस्य नित्यशः । अशौचं सर्वकार्येषु देहे भवति सर्वदा । दानं प्रतिग्रहं स्नानं सर्वं तस्य वृथा भवेत्' इति ब्रह्मपुराणवचनानन्तरं तद्गृह इत्युपादानात् समस्तगृहकार्यकारिणी यस्येत्यर्थः । इति हारलतादत्तविषयम् । अत्र प्रतिग्रहश्रवणाद्ब्राह्मणमात्रपरं यस्येति विप्रविशेषणत्वेऽप्युपपद्यते । तथाच शङ्खः 'हीनवर्णा तु या नारी प्रमादात् प्रसवं व्रजेत् । प्रसवे मरणे तज्जमशौचं नोषशाम्यति' । हीनवर्णात् शूद्रा प्रमादात् परिणयं विना कृतसंग्रहात् । तेन यद्यपरिणीता शूद्रोत्तमवर्णादपत्यमुत्पादयति तदा तस्याः प्रसवमरणजमशौचं तद्गर्भजनकस्य यावज्जीवं भवतीत्यर्थः इति शुद्धिचिन्तामणिः । यत्तु शङ्खलिखितौ 'अन्यपूर्वासु भार्यासु कृतकेषु मृतेषु च । नानध्यायो भवेत्तत्र नाशौचं नोदकक्रिया' इति तदपक्षप्रजातिविषयम् । मिताक्षरायां वृद्धयाज्ञवल्करः । संस्थिते पक्षिणीं रात्रिं दीहित्वे भगिनीसुते । संस्कृते तु त्रिरात्रं स्यादिति धर्मो व्यवस्थितः । पित्रोरुपरमे स्त्रीणामूढानान्तु कथं भवेत् । त्रिरात्रेणैव शुद्धिः स्यादित्याह भगवान्मनुः । संस्कृते स्वयं दाहादिना संस्कृते । तथाच पैठीनसिः असु-

शुद्धितत्त्वम् ।

२८३

स्वन्धिनो द्विजान् दहित्वा वहित्वा सद्यः शौचं सम्बन्धे तु
 त्रिरात्रमिति ऊढकन्यानान्तु दाहादिकं विनापि अन्यथा
 तद्दोदुरशौचं न तस्या इति महद्वैषम्यं स्यात् । तत्रायं
 'विशेषः दानध्यायने वर्जयेरन् दशाहं सपिण्डेषु गुरौ वा
 सपिण्डे त्रिरात्रमितराचार्येषु' इति आश्वलायनवचने दशाहा-
 शौचमुपक्रम्य त्रिरात्रविधानाद् यादृग्वयसि यादृक्परणे
 सपिण्डानां दशाहं तादृग्वयसि तादृक्परणे आचार्यादीनां
 त्रिरात्रादि अन्यथा मातुले पक्षिणीं रात्रिमिति मनुवचने
 नाजातदन्तमातुलमरणेऽपि भागिनेयस्य पक्षिणी स्यात्
 तत्सपिण्डानां सद्यःशौचमादन्तजननात् सद्य इत्यादि नेति
 महद्वैषम्यं स्यात् अत्रानूढकन्यायाः पित्रादिमरणे संपूर्णशौचं
 कार्यमिति रायमुकुटप्रभृतयः तत्र 'अपुत्रस्य च या पुत्री
 सैव पिण्डप्रदा भवेत् । तस्य पिण्डान् दशैतान् वै एकाहेनैव
 निर्वपेत् । इति वचनेन यावदशौचं पिण्डान् दद्यादिति
 वचनयोरैकवाक्यतया एकाहो युक्तं एकाहे दशपिण्डदान-
 विचारेण एकाहाशौचाभ्युपगमात् । ब्रह्मशातातपः । 'यदा
 भोजनकाले तु अशुचिर्भवति द्विजः । भूमौ निःक्षिप्य तं ग्रासं
 स्नात्वा विप्रो विशुद्धयति । भक्षयित्वा तु तं ग्रासं अहो-
 रात्रेण शुद्धयति । अशित्वा सर्वमेवान्नं त्रिरात्रेण विशुद्धयति' ।
 अत्र भोजनगततारतम्येन स्नानादिप्रायश्चित्तभेदान्नात्राशुचि-
 पदं स्नानार्हाशौचमात्रपरम् अन्यथा स्नानविधानं व्यर्थं स्यात्
 मरणपुत्रजन्मज्ञानादेव तत्प्राप्तेः किन्तु सपिण्डसमानोदक-
 जननाचार्यादिमरणाशौचिपरमप्यविशेषात् अतएव अशुचिः
 सूतकादिनेत्यर्थः इति प्रायश्चित्तविवेकः । अहोरात्रेणोपोषि-
 तेन एवं त्रिरात्रेण प्रायश्चित्तप्रकरणात् ।

अथ मृत्युविशेषाशौचम् । कूर्मपुराणे 'व्याघ्रादयेदथा-

२८४

युद्धितत्त्वम् ।

त्मानं स्वयं योऽग्न्युदकादिभिः । विहितं तस्य नाशौचं
 नाग्निर्नाप्युदकादिकम् । अथ कश्चित् प्रमादेन म्रियते-
 ऽग्निविषादिभिः । तस्याशौचं विधातव्यं कार्यश्चाप्युदका-
 दिकम् । आत्मानं स्वदेहं स्वयमित्युपादानात् एवञ्चावैध-
 बुद्धिपूर्वकात्मघातिनोऽशौचे पर्युदस्ते तदितरस्याशौचप्राप्ते
 यत् पुनरभिहितमथ कश्चित् प्रमादेनेत्यादिना तदग्न्यादिभिः
 प्रमादमरणे सत्यशौचविशेषज्ञापनार्थं तच्च काश्यपोक्तं त्रिरा-
 त्रम् । अग्निविषादिभिरित्यादिपदं रोगव्यतिरिक्तहेतुपरम् ।
 काश्यपः ‘अनशनमृतानामग्निहतानामग्निजलप्रविष्टानां
 भृगुसंग्रामदेशान्तरमृतानां जातदन्तानां गर्भाणां त्रिरात्र-
 मिति’ । अनशनमृतानां शास्त्रानुमत्यापि तत्र फल्या-
 न्याह दानरत्नाकरे नरसिंहपुराणम् । ‘जलप्रवेशो धानन्दं
 प्रमोदं वज्रसाहसौ । भृगुप्रपाती सौख्यन्तु रणे चैवाति-
 निर्मलम् । अनशनमृतो यः स्यात् स गच्छेत्तु त्रिपिष्टपम्’ ।
 आनन्दादयस्तु स्वर्गविशेषाः । ‘एकविंशत्यभी स्वर्गानिर्मिता-
 मेरुमूर्ध्वनि’ इत्युपक्रम्याभिधानात् तीर्थकाण्डकल्पतरौ आदि-
 त्यपुराणञ्च ‘कीदृशैस्तु तपो दानैः पुरीं पश्यन्ति मानवाः’ ।
 भानुरूवाच । ‘राज्यार्थं निहता ये च राजानो धर्मतत्पराः ।
 अग्निविद्युद्धता ये च सिंहव्याघ्रहताश्च ये । प्राप्नुवन्ति च ते सर्वे
 पुरीमैरावतीं शुभाम् । साक्षाद्भि भगवानग्निर्नागस्य वसते
 मुखे । सिंहव्याघ्रगजेन्द्राणां विष्णुरेव व्यवस्थितः । विद्यु-
 दग्निहता ये च सिंहव्याघ्रहताश्च ये । नागैश्चैव हता ये
 च ते नराः पुण्यकर्मिणः’ । एतच्च प्रमादवैधान्यतरक्त-
 मरणविषयम् । कीर्मे ‘यः सर्वपापयुक्तोऽपि पुण्यतीर्थेषु
 मानवः । नियमेन त्यजेत् प्राणान् मुच्यते सर्वपातकैः’ ।
 नियमेन तत्तत्कल्पपूर्वकजलप्रवेशादिना जलप्रवेशादिकन्तु

शुद्धितत्त्वम् ।

२८५

कलौ शूद्रस्येव । ब्राह्मणादीनान्तु आदित्यपुराणेन सगुणा-
 द्यशौचप्रकरणोक्तेन निषेधात् । अशनिमृतानां प्रमादात्
 भृगुवृक्षप्रदेशः । ब्रह्मपुराणं 'प्रमादादपि निःशङ्कस्त्वकस्मा-
 द्विधिचोदितः । शृङ्गिदंष्ट्रिनखिव्यालविषविद्युज्जलादिभिः ।
 चाण्डालैरथवा चौरैर्निहतो वापि कुत्रचित् । तस्य दाहा-
 दिकं कार्यं यस्मान्न पतितस्तु सः । शृङ्गिदंष्ट्रिनखिव्याल-
 विषवह्निस्त्रियाजलैः । आदरात् परिहर्त्तव्यः कुर्वन् क्रोडां
 मृतस्तु यः । नागानां विप्रियं कुर्वन् दग्धश्चाप्यथ विद्युता ।
 निगृहीतः स्वयं राज्ञा चौर्यदोषेण कुत्रचित् । परदारान्
 रमन्तश्च द्वेषात्तत्पतिभिर्हताः । असमानैश्च संकीर्णैश्चाण्डाला-
 द्यैश्च विग्रहम् । कृत्वा तेर्निहतास्तांस्तु चाण्डालादीन् समा-
 श्रिताः । गवाग्निविषदाश्वेव पाषण्डाः क्रूरवृद्धयः । क्रोधात्
 प्रायं विषं 'वह्निं' शस्त्रमुद्धन्यनं जलम् । गिरिवृक्षप्रपातश्च ये
 कुर्वन्ति नराधमाः । कुशिल्यजीविनश्चैव सूनालङ्कारकारिणः ।
 मुखे भगाश्च ये केचित् क्लौवप्राया नपुंसकाः । ब्रह्मदण्ड-
 हता ये च ये च वै ब्राह्मणैर्हताः । महापातकिनो ये च
 पतितास्ते प्रकीर्तिताः । पतितानां न दाहः स्यान्नान्ये-
 ष्टिर्नास्थिसञ्चयः । न चाशुपातः पिण्डो वा कार्यं श्राद्धादिकं
 क्वचित् । एतानि पतितानाञ्च यः करोति विमोहितः ।
 तप्तकच्छत्वयेनैव तस्य शुद्धिर्नचान्यथा' । प्रमादादनवधानात् ।
 निःशङ्कः दंष्ट्रिशृङ्गिनख्यादिहिंस्रजन्तुसन्निधिशङ्कारहितः
 पुरुषो विधिचोदितो मरणकर्मप्रेरितः सन् यदा पलायना-
 समर्थः अकस्माज्जटिति शृङ्गादिभिर्निहतो भवति तदा सर्वमेव
 दाहादिकं कर्त्तव्यम् । संकीर्णैः प्रतिलोमसङ्गरजातैः । अस-
 मानैरित्यनेन ब्राह्मणादीनामेव न तु चाण्डालादीनामन्यो-
 न्यकलहेन । गव्यं व्याधिजनकमौषधं कृत्रिमविषमिति

२८६

शुद्धितत्त्वम् ।

कश्चित् । पाषण्डा इति वेदवाङ्मरुतपटमौण्डादिव्रतचम्या
 पाषण्डं तदेव तेषामस्तीत्यर्थः । अर्श आदित्वादजितिपाणि-
 नीयाः अदिति कालापाः । अतएव 'पाषण्डमाश्रितास्तेनाः'
 इति याज्ञकल्काः । क्रूरबुद्धयः नित्यं परोपकार एव बुद्धि-
 र्येषां तन्निन्दायां मत्स्यपुराणम् । 'विषाग्निसर्पशस्त्रेभ्यो न
 तथा जायते भयम् । अकारणजगद्दैरिखलेभ्यो जायते तथा' ।
 कुशिल्यजीविनः सज्जातीया एव चर्यास्थादिपात्रनिर्मातारः ।
 सूनालङ्कारकारिणः मनुष्यबधस्थानाधिकारिणः । मुखे भगाः
 कण्ठदेशोत्पन्नभगाः उत्कलदेशे ताटशरीरगुक्तत्वेन प्रसिद्धाः
 क्लीवप्राया नपुंसका इति चतुर्दशप्रकाराः नपुंसका नारदोक्ताः
 अत्र केचित् पुरुषकर्मकरणसमर्थास्तु क्लीवप्रायाः । ब्रह्मादण्ड-
 हताः ब्राह्मणविषयापराधकरणान्निःसृता इत्यनिरुद्धभट्टाः ।
 ये च वै ब्राह्मणैर्हताः तन्मन्युत्पादनादभिचारणे शापेन वा
 शस्त्रादिना वा इति प्रायश्चित्तविवेकोक्तम् । अत्र विप्रतिर-
 स्कारादिफलपरिपाककालमाह पराशरः । 'कृते तत्कालिकं
 पापं त्रेतायां दशभिर्दिनैः । हापरे चैकमासेन कलौ संवत्स-
 रेण तु' । तदितर एव मरौचिः 'विषशस्त्रश्चापदाहि तिर्यग्-
 ब्राह्मणघातिनाम् । चतुर्दश्यां क्रिया कार्या अन्येषान्तु विग-
 र्हिता' । संग्रामे विशेषमाह अग्निपुराणं 'दंष्ट्रिभिः शृङ्गिभि-
 र्वापि हता स्ते च्छेद्य तस्करैः । ये स्वाम्यर्थे हता यान्ति राजन्
 स्वर्गं न संशयः' । तथा 'सर्वेषामेव वर्णानां क्षत्रियस्य विशे-
 षतः' । विष्णुधर्मोत्तरश्च 'स्वम्यर्थे ब्राह्मणार्थे वा मित्रकार्ये
 च ये हताः । गोयहे निहता ये च ते नराः स्वर्गगामिनः' ।
 तस्माच्चाण्डालाद्यैश्च विग्रहमिति यदुक्तं तत् क्रीडापरं भविष्य-
 पुराणोयमध्यतन्त्रषष्ठाध्याये । 'शृणु कुष्ठगणं विप्र उत्तरो-
 त्तरतो गुरुम् । बिचर्चिका तु दुश्चर्माचर्चरौयसस्तृतीयकः ।

शुद्धितत्त्वम् ।

२८७

विकर्चुर्गणताम्रौ च कृष्णश्चेते तथाष्टकम् । एषां मध्ये तु यः
 कुष्ठौ गर्हितः सर्वकर्मसु । व्रणवत् सर्वगात्रेषु गण्डे भाले
 तथानसि । तथा 'मृते च प्रोथयेत्तोर्ये' अथवा तरुमूलके ।
 न पिण्डं मोदकं कुर्यान्न च दाहक्रियाच्चरेत् । षण्मासीय-
 स्त्रौमासीयो मृतः कुष्ठौ कदाचन । यदि स्नेहाच्चरेद्दाहं यति-
 चान्द्रायणं चरेत् । यतिचान्द्रायणाशक्तौ पादोनधेनुचतुष्टयं
 देयम् । अतिपातकशेषफलत्वादप्येवं युक्तं यथा विष्णुः ।
 'अथ नरकानुभूतदुःखानां तिर्य्यक्त्वमुत्तीर्णानां मानुष्ये
 लक्षणानि भवन्ति कुष्ठप्रतिपातकी ब्रह्महा यक्ष्मी सुरापः
 श्यावदन्तकः । सुवर्णहारो कुनखी गुरुतल्पगो दुश्चर्मा इत्यादि
 श्यावदन्तकः स्वभावकृष्णदन्तकः प्रधानदन्तद्वयमध्यवर्त्ति
 ह्रस्वदन्तः । प्रधानदन्तोपरि दन्तान्तरमिति केचित् । कुनखी
 मङ्गुचितनखः दुश्चर्मा स्वभावतः अनावृतमेद्रः । अतएव महा-
 रोगिणो यावज्जीवमशीचमाह कूर्मपुराणम् । 'क्रियाहीनस्य
 मूर्खस्य महारोगिण एव च । यथेष्टाचरणस्याहुर्मरणान्त-
 मशीचकम्' क्रियाहीनस्य नित्यनैमित्तिकक्रियाननुष्ठायिनः ।
 मूर्खस्य गायत्रीरहितस्य सार्थगायत्रीरहितस्येति रुद्रधरः ।
 महारोगिणः पापरोगाष्टकान्यतमरोगवतः । ते च उच्चाद-
 स्त्वग्दोषो राजयक्ष्माश्वासो मधुमेहो भगन्दरः । उदरोऽश्मरी
 इत्यष्टौ पापरोगा नारदोक्ताः यथेष्टाचरणस्य द्यूतवेश्याद्यास-
 त्तस्य । एवञ्च भविष्यपुराणोक्तं यतिचान्द्रायणप्रायश्चित्तम्
 अकृतप्रायश्चित्तानां कुष्ठप्रादीनां दाहे बोद्धव्यम् अन्यथेषां
 प्रायश्चित्तोपदेशो विफलः स्याद् यथा विष्णुः 'कुनखी श्याव-
 दन्तश्च द्वादशरात्रं कृच्छ्रं चरित्वोद्धरेयाताम् तद्दन्तनखौ' इति
 अत्र द्वादशरात्रं पराकरूपं तत्र पञ्चधेनवः न तु प्राजापत्यं
 तद्दाहकर्तुर्यतिचान्द्रायणेन विषमशिष्टत्वात् तत्र बह्वनामेक-

२८८

शुद्धितत्त्वम् ।

धर्माणामिति वचनादाकाङ्क्षितत्वात् कुष्ठरादीनामपि प्राय-
श्चित्तम् अतएव प्रायश्चित्तविवेके प्युक्तमेवं दुश्चर्मादिषु अपि
ऊह्यमिति महापातकादतिपातकस्य गुरुत्वात् तच्छेषेऽपि
प्रायश्चित्तं द्विगुणम् । कर्मविपाके शातातपः । 'महापातकजं
चिह्नं सप्तजन्मसु जायते । बाधते व्याधिरूपेण तस्य कच्छा-
दिभिः शमः । कुष्ठञ्च राजयक्ष्मा च प्रमेहो ग्रहणी तथा' ।
अत्र कुष्ठपदमल्पकुष्ठपरमिति पूर्वेण अविरोधः । एवञ्च 'ऊने-
कादशवर्षस्य पञ्चवर्षाधिकस्य च । चरेद् गुरुः सुहृदापि प्राय-
श्चित्तं विशुद्धये' । इत्यङ्गिरोवचने 'रोगी वृद्धस्तु पोगण्डः
कुर्वन्त्यन्येव्रतं सदा' इति ब्रह्मपुराणे च अन्यपापक्षयार्थमन्य-
कर्त्तृकप्रायश्चित्तदर्शनादत्रापि तुल्यन्यायतया स्वयमकृतप्राय-
श्चित्तस्य मृतस्य पुत्रादिना प्रायश्चित्तं कृत्वा दाहादिकं
कार्यम् । मनुः । 'शस्त्रेणाभिमुखो यस्तु बध्यते क्षत्रधर्मणा ।
यज्ञः संतिष्ठते तस्य सद्यः शौचं विधीयते' । क्षत्रधर्मेण
अकातरत्वादिना यज्ञः पिण्डदानादिरूपः संतिष्ठते
समाप्तिमेतीति रत्नाकरः । यज्ञो ज्योतिष्टोमादिस्तस्य भव-
तीति प्रसङ्गादुक्तमिति प्रकाशकारः । पराशरः । 'ब्राह्मणार्थं
विपन्नानां दण्डिनां गोग्रहे तथा । आहवेषु विपन्नानामेक-
रात्रमशौचकम्' । गवार्थं ब्राह्मणार्थं वा संश्रामे दण्डेन
सम्बन्ध्यमानानां मरणे एकाहोरात्रमशौचकम् । बृहस्पतिः ।
'डिम्बाहवे विद्युता च राज्ञा गोविप्रपालने । सद्यः शौचं
मृतस्याहुस्त्यहृद्यान्ते महर्षयः' । डिम्बाहवे नृपतिरहित-
युद्धे शस्त्रैरभिमुखहतस्य सद्यः शौचं लगुडादिहतस्य पराङ्-
मुखहतस्य च त्रिरात्रं वज्राभिघातेन मरणं भवतु इत्यभि-
सन्धाय स्थितस्य मरणे सद्यः शौचं प्रमादात्त्रिरात्रम् । राज्ञा
बधार्हा पराधहतस्य सद्यः शौचं तदन्यस्य त्रिरात्रम् । गोविप्र-

शुद्धितत्त्वम् ।

२८८

पालनेऽभिमुखत्वपराङ्मुखत्वाभ्यां सद्यस्त्रिरात्रे व्याघ्रः 'क्षतेन म्रियते यस्तु तस्याशौचं भवेद्विधा । आसप्ताहचक्षिरात्रं स्याद्दशरात्रमतःपरम् । शस्त्रघाते त्र्यह्नादूर्ध्वं यदि कश्चित् प्रसीयते । अशौचं प्राकृतं तत्र सर्ववर्णेषु नित्यशः' । विद्याच्छङ्कस्य वचनं यथेति कश्चित् पाठः । अत्र शस्त्रघातपदं क्षतेतरशस्त्रघातपरं पारिभाषिकशस्त्रघातपरमपि । यथा देवीपुराणे । 'पक्षिमत्स्यमृगैर्ये तु दंष्ट्रिमृङ्गिनस्त्रैर्हताः । पतनानशनप्रायैर्ध्वज्जान्निविप्रबन्धनैः । मृता जलप्रवेशेन ते वै शस्त्रहताः स्मृताः' । अन्यथा क्षतं विना पतनादिभिर्विलम्बमृतानां दिनग्रहणेऽनध्यवसायः स्यात् । न च शास्त्रीयव्यवहारेऽन्तरङ्गत्वेन पारिभाषिकग्रहणस्यैव युक्तत्वमिति वाच्यम् । शब्दे पारिभाषिकापारिभाषिकशस्त्रघातग्रहणवदत्रापि तथा युक्तत्वात् पारिभाषिकत्वादेव न प्रकरणनियमः ।

अथ सदाः शौचम् । तत्र विष्णुः । 'नाशौचं' राज्ञां राजकर्मणि न व्रतिनां व्रते न सत्रिणां सत्रे न कारुणां स्वकर्मणि न राजाज्ञाकारिणां तदिच्छया न देवप्रतिष्ठाविवाहयोः पूर्वसंहृतयोः' इति । सत्रिणां नित्यप्रवृत्तान्नदानानां सत्रेऽन्नदाने । कारवः सूपकाराद्याः । आदिपुराणे 'सूपकारेण यत् कर्मकरणीयं नरेष्विह । तदन्यो नैव शक्नोति तस्माच्छुद्धिः संपूयकत्' । कूर्मपुराणे 'कारवः शिल्पिनो वैद्या दासा दास्यस्तथैव च । दातारो नियमा चैव ब्रह्मविद्ब्रह्मचारिणौ । सत्रिणो व्रतिनस्तावत् सद्यः शौचा उदाहृताः' । आदिपुराणे 'शिल्पिनाश्चक्राराद्याः कर्म यत् साधयन्त्युत । तत् कर्म नान्यो जानाति तस्मात् शुद्धः स्वकर्मणि । दासा दास्यश्च यत् कर्म कुर्वन्त्यपि च लीलया ।

२५—क

२६०

शुद्धितत्त्वम् ।

तदन्यो न क्षमः कर्तुं तेन ते शुचयः स्मृताः । चित्रकाराण्य-
 रूपाः शिल्पिनः आद्यशब्दाच्चेलनिर्णेजकाद्याः । शातातपः ।
 'मूल्यकर्मकराः शूद्रा दासादास्यस्तथैव च । स्नाने शरीर-
 संस्कारे गृहकर्मण्यदूषिताः' स्मृतिः । 'सद्यः स्पृश्यो गर्भ-
 दासो भक्तदासस्त्यहाच्छुचिः' । वेद्या अपि चिकित्सायामेव
 तथाच स्मृतिः । 'चिकित्सको यत् कुरुते तदन्येन न शक्यते ।
 तस्मात् चिकित्सकः स्पर्शं शुद्धो भवति नित्यशः' । दातार
 आवश्यकप्रत्यहं गोभूमिहिरण्यादिदाने प्रवृत्ताः । तेषां
 तद्दान एव प्रत्यहं दानञ्च दातव्यं प्रत्यहं पात्र इति
 याज्ञवल्क्यात् । कदाचित्कदानकारिणान्तु दाने प्रक्रान्ते
 अशीचं नास्ति तावत् यावत्तत् कर्म कुर्वन्ति । इति हार-
 लताम्पेवम् । पूर्वसङ्कल्पितद्रव्यदानेऽपि न अशीचं तथाच
 मिताक्षरायाम् । क्रतोः 'पूर्वसङ्कल्पितं द्रव्यं दीयमानं न
 दुष्यति' । इति आदित्यपुराणे 'निवृत्ते कृच्छ्रहोमादौ ब्राह्म-
 णादिषु भोजने । गृहीतनियमस्यापि न स्यादन्यस्य कस्य-
 चित् । निमन्त्रितेषु विप्रेषु प्रारब्धे आइकर्मणि । निम-
 न्त्रणादि विप्रस्य स्वाध्यायाहिरतस्य च । देहे पितृषु तिष्ठन्तु
 नाशीचं विद्यते क्वचित्' । प्राजापत्यादिकृच्छ्रे समाप्ते
 होमयागजपेषु समाप्तेषु सम्पूर्णार्थमवश्यं मया ब्राह्मणभोज-
 यितव्या इति गृहीतनियमो यस्तस्याशीचेऽन्यकुलजाताना-
 मपि भुञ्जानानां दोषाभावः । कस्यचिद्दातृभोक्तोरित्यर्थः ।
 एवं प्रारब्धस्याहोऽपि क्वचिदित्यनेन दातृभोक्तोरशीचाभावः ।
 तथाच विष्णुः । 'व्रतयज्ञविवाहेषु आह्वे होमेऽर्चने जपे ।
 आरब्धे सूतकं न स्यादनारब्धे तु सूतकम्' इति पराशरः
 'दौक्षितेष्पभिषिक्तेषु व्रततीर्थपरेषु च । तपोदानप्रसक्तेषु
 नाशीचं मृतसूतके' । यजमानानां सोमयागाद्दौक्षणी-

शुद्धितत्त्वम् ।

२८१

यैष्टी कृतायां दीक्षितत्वं भवति तेन दीक्षणीयेष्वुत्तरकालं
यजमानस्य यत् कर्म तत्राशौचं नास्ति । अभिषिक्तेषु क्षत्रिय-
नृपतिषु तीर्थं गङ्गादिगुरुरिति कश्चित् । कालमाधवीय-
कूर्मपुराणे 'काम्योपवासे प्रक्रान्ते अन्तरा मृतसूतके । तत्र
काश्यव्रतं कुर्याद्दानार्चनविवर्जितम्' । तत्र दानार्चनं स्वयं
वर्जयेत् अन्यद्वारा तु कारयेत् । तथाच मत्स्यपुराणम् ।
'गर्भिणी सूतिकानक्तं कुमारौ च रजस्वला । यदा शुद्धा
तदान्येन कारयेत् क्रियते सदा' । उपवासाचरणे गर्भादि-
पीडासम्भावनायां नक्तं भोजनं कुर्यात् । 'उपवासेष्वशक्तस्त्व
तदेव फलमिच्छतः । अनभ्यासेन रोगाणां किमिष्टं व्रत-
मुच्यताम्' । इति नारदप्रश्नान्तरम् । 'उपवासेष्वशक्तानां
नक्तं भोजनमिष्यते' इति मत्स्यपुराण एवेश्वरप्रतिवचनात् ।
स्वयमशुद्धा शुद्धद्वारा पूजादिकं कारयेत् कायिकमुपवासादि
सदा शुद्धशुद्धिकाले स्वयं क्रियते स्मृतिपरिभाषायामप्येवं
विष्णुः । 'बहुकालिकसंकल्पो गृहीतश्च पुरा यदि । सूतके
मृतके चैव व्रतं तन्नैव दुष्यति' । एतत् काम्यव्रतपरं नित्या-
नाम्नारव्यानामविशेषेण कर्तव्यता न अशौचमित्यनुवृत्तौ
ब्रह्मपुराणे 'नैष्ठिकस्याथ वान्यस्य भिक्षार्थं प्रस्थितस्य च' ।
नैष्ठिकस्य ब्रह्मचारिविशेषस्य अन्यस्य चतुर्थाश्रमिणः अशौचि-
भिक्षाग्रहणे दोषाभाव इति हारलताप्रभृतयः । कौर्म 'सद्यः
शौचं समाख्यातं दुर्भिक्षे चाप्युपप्लवे । डिम्बाहवहतानाञ्च
विद्यता पार्थिवैर्हिजेः । सद्यः शौचं समाख्यातं शापादि-
मरणे तथा' । उपप्लवे राजविप्लवे औपसर्गिकात्यन्तमरक-
पीडने च सद्यः शौचमुक्तं तथाच पराशरः । 'उपसर्गं मृते
चैव सद्यः शौचं विधीयते' । अतएव 'आपद्यपि च कष्टायां
सद्यः शौचं विधीयते' । इति याज्ञवल्क्यवचनेऽनिरुद्धभट्ट-

२८२

शुद्धितत्त्वम् ।

शूलपाणिप्रभृतिभिरोपसर्गिकात्यन्तमरकजोडायां सद्यः शौचं विधीयते इत्युक्तम् उपसर्गश्च त्रिविधोत्पातः तथाच गर्ग-संहितावार्हस्पत्ययोः । ‘अतिलोभादसत्याहा नास्तिक्या-द्वाप्यधर्मतः । नरापचारान्नियतमुपसर्गः प्रवर्त्तते । अतोप-चारान्नियतमपवर्जन्ति देवताः । ताः सृजन्यङ्गतांस्ताव-द्विध्यनाभसभूमिजान् । त एव त्रिविधा लोके उत्पाता-देव निर्मिताः । विचरन्ति विनाशाय रूपैः सम्भावयन्ति च’ । यद्यप्युपसर्गः स्मृतौ रोगभेदोपप्लवयोरपीति विश्व-कोषादुपसर्गस्थोभयवाचकत्वं तथापि अत्र मुनिप्रयुक्तत्वे-नान्तरङ्गत्वात् त्रिविधोत्पातात्मकोपसर्गो गृह्यते न तु रोगविशेषात्मक इति एतेनोपसृजन्तीति व्युत्पत्त्या देहा-भ्यन्तर एव यावद्वर्त्तते तावत् कालमरण एव सद्यः शौचं वह्निर्भावे ब्रह्मणपरम्परया मरणे सति स्वजात्युक्ताशौचमेवेति त्रहमिति दर्शनस्मृतिसारप्रदीपा इति वाचस्पतिमिश्रोक्तं हेयम् । द्विजैर्ब्राह्मणैः शापादीत्यादिशब्देनाभिचारमृतस्य ग्रहणं ब्रह्मकूर्मपुराणाभ्यां यद्ब्राह्मणहतस्याशौचाभाव उक्तः स बुद्धिपूर्वकहनने बोद्धव्यः । प्रमादहते तु अशौचाद्यस्यैव अन्यथा मरीचिवचनं निर्विषयं स्यात् । यथा ‘विषशस्त्रज्ञाप-दाहितिर्द्युग्ब्राह्मणघातिनाम् । चतुर्दश्यां क्रिया कार्या अन्ये-षान्तु विगर्हिता’ । विषादिसाहचर्याद् ब्राह्मणकृतघातोऽस्या-स्तीति प्रतीयते । यच्चात्र ये च ब्राह्मणैर्हता इति ब्रह्मपुराणीयं साधकत्वेनोपन्यस्तं आहविवेके तच्चिन्त्यम् । ‘महापातकिनो ये च पतितास्ते उदाहृताः’ । इत्युत्तरार्द्धेन पातित्यमभि-धाय तेषां आहनिषेधात् । जावालः ‘दुर्भिन्ने राष्ट्रसम्पाते शस्त्रगोब्रह्मघातिते । पतितेऽनशनप्रेते विदेशस्थे शिशौ न च’ । न अशौचमित्यर्थः ।

शुद्धितत्त्वम् ।

२८३

अथ शवानुगमनागमनव्यशौचम् । कूर्मपुराणं 'प्रेती-
भूतं द्विजं विप्रो योऽनुगच्छति कामतः । स्नात्वा सचेतं
सृष्ट्वाग्निं घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति । एकाहात् क्षत्रिये शुद्धिर्वैश्ये
च स्याद्दशहेन तु । शूद्रे दिनद्वयं प्रोक्तं प्राणायामशतं पुनः' ।
एतच्च घृतप्राशनं शुद्धिहेतुत्वान्नियमपरं न तु प्रायश्चित्त-
वह्नोजनाभावपरं तत्र तपस्वात्तथा । अनुः सहार्थः यत्तु याज्ञ-
वल्क्यावचनम् 'ब्राह्मणेनानुमन्तव्ये न तु शूद्रः कथञ्चन । अनु-
गम्याभ्यसि स्नात्वा सृष्ट्वाग्निं घृतभुक् शुचिः' । तत्प्रमा-
दादनुममने कथञ्चनेत्यभिधानात् अभ्यसि न तु उद्धृतोदके ।
मनुः 'नावं सृष्ट्वास्थि सस्नेहं स्नात्वा विप्रो विशुद्ध्यति । आच-
र्यैव तु निःस्नेहं मामालभ्यार्कमीक्ष्य वा' । आलभ्य सृष्ट्वा
ददमन्नमतः । ज्ञानतोऽत्यन्ताभ्यासे तु वशिष्ठः । 'मानुषास्थि
स्निग्धं सृष्ट्वा त्रिरात्रमशौचम् अस्निग्धे त्वहोरात्रम्' इति प्राय-
श्चित्तविवेकः । मिताक्षरायान्तु मनुवचनं द्विजात्यस्थिपरम्
अन्यत्र तु वशिष्ठोक्तमित्युक्तम् । पैठीनसिः 'असम्बन्धिनो
द्विजात् बह्वित्वा दहित्वा सद्यः शौचं सम्बन्धे त्रिरात्रम्' इति
सम्बन्धे तदयुक्ते मातुलादी । कूर्मपुराणे 'अनाथश्चैव निर्हृत्य
ब्राह्मणं धनवर्जितम् । स्नात्वा संप्राश्य तु घृतं शुद्ध्यन्ति
ब्राह्मणादयः' । तथा 'यदि निर्दहति प्रेतं प्रलोभाक्रान्त-
मनसः । दशाहेन द्विजः शुद्धेत् द्वादशाहेन भूमिपः ।
अर्धमासेन वैश्यस्तु शूद्रो मासेन शुद्ध्यति' । तथा 'अवरश्चेद्वरं
वर्णमवरं वा वरो यदि । अशौचे संसृष्टेत् स्नेहात्तदाशुचेन
शुद्ध्यति' । तदाशुचेन तदीयाशौचेन तथा आदिपुराणे 'योऽन्य-
वर्णान्तु मूर्ख्येव नीत्वा चैव दहेत्तरः । अशौचन्तु भवेत्तस्य
प्रेतबन्धुसमं तदा' मनुः । 'असपिण्डं द्विजं प्रेतं विप्रो निर्हृत्य
बन्धुवत् । विशुद्ध्यति त्रिरात्रेण मातुराप्तांश्च बान्धवान् ।

२६४

शुद्धितत्त्वम् ।

यद्यन्नमन्ति तेषान्तु दशाहेनैव शुद्ध्यति । अनदन्नन्नमन्त्रैव
 न चेत्तस्मिन् गृहे वसेत् । बन्धुवत् स्नेहाद्यनुबन्धादशुचि-
 गृहवासे तदन्नभक्षणरहितानां त्रिरात्रं यद्गृहवासतदन्न-
 भोजनरहितानां स्नेहादसम्बन्धिनो निर्हरणेऽहोरात्रम् । बान्ध-
 वेषु अष्टष्टबुद्ध्या तद्गृहवासाद्यभावेऽपि निर्हरणे त्रिरात्रम् ।
 विष्णुः । ‘चिताधूमसेवने सर्वे वर्णाः स्नानमाचरेयुः’ । पार-
 स्करः ‘अस्थिसञ्चयनादर्वाग् यदि विप्रोऽशु पातयेत् । मृते
 शूद्रे गृहं गत्वा त्रिरात्रेण विशुद्ध्यति । अस्थिसञ्चयनादूर्ध्वं
 यावन्मासं द्विजातयः । दिवसेनैव शुद्ध्यन्ति वाससां क्षालनेन
 च । स्वजातेर्दिवसेनैव द्वाहात् क्षत्रियवैश्ययोः । स्यर्शं विनानु-
 गमने शूद्रो नक्तो न शुद्ध्यति । मृतस्य बान्धवैः साहं कृत्वा तु
 परिवेदनम् । वर्जयेत्तदहोरात्रं दानं स्वाध्याय कर्म च’ ।
 गृहगमन एव त्रिरात्रं स्थानान्तरमेलने एकरात्रं मृतस्य
 शूद्रस्य परिवेदनं रोदनरहितविलापमात्रम् । अस्थिसञ्चय-
 नाङ्गस्यर्शयोः कालमाह संवर्त्तः । ‘चतुर्थेऽहनि कर्त्तव्य-
 मस्थिसञ्चयनं द्विजैः । ततः सञ्चयनादूर्ध्वं मङ्गस्यर्शो विधीयते ।
 चतुर्थेऽहनि विप्रस्य षष्ठे, वै क्षत्रियस्य च । अष्टमे दशमे चैव
 स्यर्शः स्याद्वैश्यशूद्रयोः’ । एतत् सम्पूर्णाशीचे । खण्डाशीचे
 तु देवलः । ‘अशीचकालाद्विज्ञेयं स्यर्शनन्तु त्रिभागतः’ ।
 अतिक्रान्ताशीचे तु सचेलस्नानादङ्गासृश्यत्वनिवृत्तिः पूर्वोक्त-
 निर्देशमिति अनुवचनात् । जनने तु कूर्मपुराणम् । ‘सूतके
 तु सपिण्डानां संस्यर्शो नैव दृश्यति’ । मातृणान्तु आदिपुराणे ।
 ‘ब्राह्मण्यौ क्षत्रिया वैश्या प्रसूता दशभिर्दिनैः । गतैः शूद्रा तु
 संसृष्ट्या त्रयोदशभिरेव च’ । पुत्रजनने पितुर्विमातृणाञ्च
 स्नानात् सृश्यत्वं सूतिकास्यर्शने तत्समकालासृश्यत्वञ्च वक्ष्यते ।
 अत्रैव वृद्धशातातपः । ‘उदक्या सूतिका वापि अन्यजं संसृ-

शुद्धितत्त्वम् ।

२८५

शेद यदि । त्रिरात्रेणैव शुद्धेत इति शातातपोऽब्रवीत् । उदक्या रजस्वला तत्साहचर्यात् सूतिकाप्यसृष्ट्या बोध्या त्रिरात्रेण त्रिरात्रोपवासेन प्रायश्चित्तप्रकरणात् बच्च अशुद्धानन्तरं कर्त्तव्यमिति प्रायश्चित्तविवेकः । यमः । 'अजागावो महिषश्च ब्राह्मणौ च प्रसूतिका । दशरात्रेण शुद्ध्यन्ति भूमिष्ठश्च नवोदकम्' । ब्रह्मपुराणे 'नवस्वातजलं गावो महिषश्चागयो-
नयः । शुद्ध्यन्ति दिवसैरेव दशभिर्नात्र संशयः' । मिता-
क्षरायां स्मृतिः । 'काले नवोदकं शुद्धं न पातव्यन्तु तत्तदहम् ।
अकाले तु दशाहं स्यात् पीत्वा नाद्यादहर्निशम्' । काले
वर्षाकाले । शङ्खः । स्नानमाचमनं दानं देवता पिष्टतर्पणम् ।
शूद्रोदकैर्न कुर्वीत तथा मेघादिनिःसृतैः' । पानादौतरत्र
स्पर्शादौ तु हरिवंशः । 'अभीममम्भो विसृजन्ति मेघाः पूतं
पवित्रं पवनैः सुगन्धि' ।

अथ द्रव्यशुद्धिः । ब्राह्मे 'सुवर्णरूप्यशङ्काश्मशक्तिरत्नमयानि
च । कांस्यायस्ताम्बरेत्यानि त्रपुसीसमयानि च । निर्ले-
पानि विशुद्ध्यन्ति केवलेन जलेन तु । शूद्रोच्छिष्टानि शुद्ध्यन्ति
त्रिधा क्षाराम्बवारिभिः । सूतिकाशवविण्मूत्ररजस्वलाहतानि
च । प्रक्षेप्तव्यानि तान्यग्नौ यच्च यावत् सहेदपि' । रैत्यं
पित्तलम् । त्रपुरङ्गं यत् पात्रं यावत् कालमग्निं सहेत तत्
पात्रं क्षालनानन्तरं तावत्तापनीयमित्यर्थः । बृहस्पतिः ।
'अश्वसा हेमरूप्यायः कांस्यं शुद्ध्यति भस्मना । अस्त्रैस्ताम्रञ्च
रैत्यञ्च पुनः पाकेन मृत्समम्' । राजधर्मे 'पञ्जलोच्छिष्ट-
कांस्यं यद्वा घ्रातमथापि वा । गण्डूषोच्छिष्टमपि च
विशुद्ध्यद्दशभिस्तु तत्' । दशभिर्दिनैरिति शेषः । तथाच
'न कांस्ये धावयेत् पादौ यच्च स्यादपि भोजनम्' इति । यत्र
पात्रान्तरे भोजनं तत्र श्रुतस्यैव तस्य साहचर्यात् कांस्य-

२८६

शुद्धितत्त्वम् ।

वच्छुद्धिः । बौधायनः । 'भिन्नकांस्थे तु योऽग्नौयान्नद्यां
 स्नात्वा जपेद्विजः । गायत्र्यष्टसहस्रन्तु एकभक्तः सदा शुचिः' ।
 अष्टसहस्रम् अष्टोत्तरसहस्रम् अन्यथा बहुवचनापत्तेः । देवलः ।
 'ताम्ररजतसुवर्णाश्मस्फटिकानां भिन्नमभिन्नम् इति' भिन्न-
 त्वेऽपि न दोष इत्यर्थः । विष्णुः । 'शारीरैर्मलैः सुराभि-
 र्मद्यैर्वा यदुपहतं तदत्यन्तोपहतं सर्वं लौहभाण्डमग्नौ प्रतप्तं
 शुद्धेयं मणिमयमश्ममयमजमयश्च सप्तरात्रं महीखनेन शृङ्ग-
 दन्तास्थिमयश्च तक्षणेन दारुमयं मृण्मयं जह्यादिति' लौह-
 पदं सुवर्णाद्यष्टकपरम् । सर्वञ्च तेजसं लौहमित्यमरकोषात् ।
 मनुः । 'त्रीणि देवाः पवित्राणि ब्राह्मणानामकल्पयन् ।
 अदृष्टमद्भिर्निर्णिक्तं यच्च वाचां प्रशस्यते' । अदृष्टमुपघात-
 शङ्कादिभिरज्ञातम् । अज्ञातञ्च सदाशुचीति याज्ञवल्क्यैक-
 वाक्यत्वात् । वाचेति उपघातशङ्कायां पवित्रं भवत्विति
 ब्राह्मणैर्यद्वाचा प्रशस्यते इति शूलपाणिमहामहोपाध्याय-
 कुल्लूकभट्टौ । यातातपः । 'गोकुले कन्दुशालायां तैल-
 यन्त्रेक्षुयन्त्रयोः । अमौमांस्यानि शौचानि स्त्रीषु बालातुरेषु
 च' । अमौमांस्यानि शौचाशौचभागितया न विचारणी-
 यानि । मनुः । 'मल्लिकाविप्रुषम्हायागौरश्वसूर्यरश्मयः ।
 रजो भूर्वायुरग्निश्च स्यर्शं मेध्यानि निर्दिशेत्' । बौधायनः ।
 'अदृष्टाः सन्तताधारा वातोद्धूताश्च रेणवः । आकराः शुचयः
 सर्वे वर्जयित्वा सुराकरम्' । शङ्खलिखितौ । आकरद्रव्याणि
 प्रोक्षितानि शुचीनि' । यमः 'ग्राममांसं घृतं क्षौद्रं स्नेहाश्च
 फलसम्भवाः । स्नेच्छभाण्डस्थिता दुष्टा निष्क्रान्ताः शुचयः
 स्मृताः' । विष्णुधर्मोत्तरे । 'मुखवर्जश्च गौः शुद्धा मार्जार-
 शंक्रमे शुचिः' । पुष्पाणाञ्च फलानाञ्च प्रोक्षणात् शुद्धि-
 रिष्यते' । अत्रिः । 'मल्लिका सन्तताधारा भूमिस्तोयं हुता-

शुद्धितत्त्वम् ।

२६७

शनः । मार्जारश्चापि दर्वी च मारुतश्च सदा शुचिः ।
 बीधायनः । 'अनेकोद्वाह्ये दारुशिले भूमिसमे दृष्टकाश्च
 सङ्कीर्णीभूता' इति सङ्कीर्णीभूताः परस्परसम्बन्धाः विष्णुः ।
 'प्रोक्षणेन पुस्तकम्' इति । शातातपः । 'तापनं घृत-
 तैलानां प्लावनं गोरसस्य च । तन्मात्रमुद्धृतं शुद्धेयत् कठि-
 नन्तु पयो दधि । अविलीनं तथा सर्पिर्विलीनं अपणेन
 तु' । अविलीनं कठिनम् । मनुः । द्रव्याणाञ्चैव सर्वेषां
 शुद्धिरुत्प्लवनं स्मृतम् । प्रोक्षणं संहतानाञ्च दारवाणाञ्च तत्त-
 लम्' । इदन्तु उच्छिष्टाद्यल्पदोषे । उत्प्लवनं वस्त्रान्तरनिर्वाप-
 णेन कीटाद्यपनयनम् । शातातपः । 'क्षीवाभिग्रसपतितैः
 सूतिकोदक्यनास्तिकैः । दृष्टं वा स्याद् यदन्नन्तु तस्य
 निष्कतिरुच्यते । अभ्युच्य किञ्चिदुद्धृत्य भुञ्जीताप्यविशुद्धितः' ।
 देवलः । 'चाण्डालेन शुना वापि दृष्टं हविरयज्ञिकम् ।
 विडालादिभिरुच्छिष्टं दुष्टमन्नं विवर्जयेत्' । अन्यत्र हिरण्यो-
 दकस्पर्शादिति । मनुः । 'अङ्गिस्तु प्रोक्षणं शौचं बहूनां
 धान्यवाससाम् । प्रक्षालनेन त्वल्पानामङ्गिः शौचं विधीयते' ।
 शुद्धिरित्यनुवृत्तौ विष्णुः । 'गुडानामिच्छुविकाराणां प्रभूतानां
 वायुग्निदानेन सर्वलवणानाञ्चेति' । सूतिकां, स्पृशतः पितु-
 रपि तादृशमस्पृश्यत्वमाह सुमन्तुः । 'मातुरेव सूतकं तां
 स्पृशतश्च पितुर्नेतरेषाम्' इति इतरेषां सपत्नीमातृव्यति-
 रिक्तानां तासान्तु सूतिकास्यर्शं पितुर्यथा तत्समकालमङ्गा-
 स्पृश्यत्वं तथा तासामपि । तथाच आदिपुराणम् । 'सूतके
 तु सुखं दृष्ट्वा जातस्य जनकस्ततः । कृत्वा सचेलं स्नानन्तु
 शुद्धो भवति तत्क्षणात् । अन्याश्च मातरस्तद्वत्तदमेहं न
 व्रजन्ति चेत् । सपिण्डाश्चैव संस्पृश्याः सन्ति सर्वे विनिश्चयः' ।
 तद्वत् पितृवत् स्नात्वा शुद्धाः । गृहगमनन्तु सूतिकास्यर्शोप-

२६८

शुद्धितत्त्वम् ।

लक्षणम् । अन्यथा पिष्टतोऽधिकदोषापत्तेः । एवञ्च तद्व-
 गृह्यगमनेऽपि स्पर्शाभावेनास्पृश्यत्वम् । पुत्रजन्मनि स्नानात्
 पूर्वमङ्गास्पृश्यत्वमाह संवर्तः 'जाते पुत्रे पितुः स्नानं सचेलन्तु
 विधीयते । माता शुद्धेद्दशाहेन स्नानात्तु स्पर्शनं पितुः' ।
 एकदिनपातितुल्यमरणाशौचद्वये यावदशौचं सर्वगोत्रास्पृश्य-
 त्वमाह आदिपुराणम् । 'सर्वगोत्रमसंसृश्यं तत्र स्यात् सूतके
 सति । मध्येऽपि सूतके दद्यात् पिण्डान् प्रेतस्य तृप्तये' ।
 तत्राद्यदिने भिन्नदिने तु मनुना प्रथमेन आनवस्यीयस्य द्विती-
 यस्य शुद्ध्यभिधानान्न तथा अत्र प्रथमसूतकपदं मरणाशौच-
 मात्रपरं द्वितीयसूतकं च अस्पृश्यत्वपरं पिण्डदानश्रुतेः ।
 तथाच याज्ञवल्क्यः । 'त्रिरात्रं दशरात्रं वा शावमाशौच-
 मिष्यते । जनद्विवर्षमुभयोः सूतकं मातुरेव हि' । शाव-
 माशौचमस्पृश्यत्वलक्षणम् । त्रिरात्रं दशरात्राशौचिनामेक-
 स्मिन् सूतके द्वितीयसूतके समानदिनपतिते दशरात्राशौच-
 मस्पृश्यत्वम् जनद्विवर्षमरणलक्षणमस्पृश्यत्वं मातापितृरिव
 तदन्येषां स्पृश्यत्वम् एवमेव मिताक्षरादीपकलिके । न च
 शावाशौचपदम् अशौचपदम् अशौचमात्रपरमिति मिता-
 क्षरोक्तं युक्तमिति वाच्यम् 'आदन्तजननात् सद्य आचूडादेक-
 रात्रकम् । त्रिरात्रमात्रतादिशाद्दशरात्रमतःपरम्' इति याज्ञ-
 वल्कीयेन पौनरुक्त्यापत्तेः । व्यक्तमाह अङ्गिराः । 'मरणं यदि
 तुल्यं स्यान्मरणेन कथञ्चन । अस्पृश्यन्तु भवेद् गोत्रं सर्वमेव
 सबान्धवम्' । तुल्यमभिन्नदिनजाततया दशरात्रादिव्यापि-
 तया व्याख्येयानि तद्विरुद्धानि तु यथायथं वेदान्त्यादिसगुण-
 सर्वाशित्वसर्वविक्रयित्वाद्यत्यन्तनिर्गुणदेशभेदादिना च व्यव-
 ख्येयानि ।

अथ सुसूक्ष्मसूतकृत्यानि । हारीतः । 'शूद्राग्नेन तु भुक्तेन

शुद्धितत्त्वम् ।

२८६

उदरस्थेन योमृतः । स वै खरत्वमुद्धृतं शूद्रत्वञ्चाधि-
 गच्छति । शूद्रान्नं शूद्रस्वामिकान्नम् । तद्वत्तमपि भोजन-
 काले तद्गृहावस्थितं यत्तदपि शूद्रान्नं तदाह अङ्गिराः ।
 'शूद्रवेश्मनि विप्रेण क्षीरं वा यदि वा दधि । निवृत्तेन न
 भोक्तव्यं शूद्रान्नं तदपि स्मृतम्' । अपिशब्दात् साक्षात्तद्वत्त-
 दृत्ततण्डुलादि न तु तद्वत्तकपर्दकादिना क्रीतमपि । स्वगृहा-
 गते पुनरङ्गिराः । यथायतस्ततो ह्यापः शुद्धिं यान्ति नदीं
 गताः । शूद्रादिप्रगृहेष्वन्नं प्रविष्टन्तु सदा शुचि' । प्रविष्टं
 स्वत्वापादकप्रतिग्रहादिनेति शेषः । अतएव पराशरः ।
 'ताडयति शूद्रान्नं यावन्न स्पृशति द्विजः । द्विजातिकर-
 संस्पृष्टं सर्वं तद्विवर्च्यते' । स्पृशति प्रतिगृह्णातीति कल्प-
 तरुः । तच्च संप्रोक्षग्राह्यमाह विष्णुपुराणं संप्रोक्षयित्वा
 गृह्णीयाच्छूद्रान्नं गृह्यमागतम्' । तच्च पात्रान्तरे ग्राह्यमाह
 अङ्गिराः । 'स्वपात्रे यत्तु विन्यस्तं शूद्रो यच्छति नित्यशः ।
 पात्रान्तरगतं ग्राह्यं दुग्धं स्वगृहमागतम्' । एतेन स्वगृह-
 मागतस्यैव शुद्धत्वं तद्गृहगतस्य शूद्रान्नदोषभागित्वं प्रतीयते ।
 ततश्चैतादृगपि सुमूर्षणा सर्वथा शूद्रान्नं न भोक्तव्यम् । पूजा-
 रत्नाकरे । 'शालग्रामशिला यत्र तत्र सन्निहितो हरिः ।
 तत्सन्निधीत्यजेत् प्राणान् याति विष्णोः परं पदम्' । लिङ्ग-
 पुराणे । 'शालग्रामसमौपे तु क्रोशमात्रं समन्ततः । कीकटे-
 ऽपि मृतो याति वैकुण्ठभवनं नरः' । कीकटो मगधः ।
 वैष्णवामृते व्यासः । 'तुलसीकानने जन्तोर्यदि मृत्युर्भवेत्
 क्वचित् । स निर्भक्ष्य यमं पापी लीलयैव हरिं विशेत् ।
 प्रयाणकाले यस्यास्य दीयते तुलसीदलम् । निर्वाणं याति
 पचीन्द्र ! पापकोटियुतोऽपि सः' । कूर्मपुराणम् । 'गङ्गा-
 याश्च जले मोक्षो वाराणस्यां जले स्थले । जले स्थले चान्त-

३००

शुद्धितत्त्वम् ।

रीचे गङ्गासागरसङ्गमे' । स्नान्दे 'गङ्गायां त्यजतः प्राणान्
 कथयामि वरानने ।। कर्णे' तत् परमं ब्रह्म ददामि मामकं
 पदम्' । तथा 'तीराद् गव्यूतिमावन्तु परितः क्षेत्रमुच्यते ।
 अत्र दानं जपो होमो गङ्गायां नात्र संशयः । अत्रस्थास्त्रिदिवं
 यान्ति ये सृता न पुनर्भवाः' । गव्यूतिः क्रोशयुगम् । तीर्थ-
 चिन्तामणौ ब्रह्मपुराणम् 'अत्र दूरे समीपे च सदृशं योजन-
 द्वयम् । गङ्गायां मरणेनेह नात्र कार्या विचारणा' । एवं
 गङ्गादिमरणेन प्राप्तब्रह्मलोकस्याप्योर्द्ध्वदेहिकी क्रिया तदधि-
 कारिणा कर्त्तव्या नित्यत्वात् । तथाच श्रीभागवते 'क्षण एव
 भगवति ! मनोवाग्दृष्टिदृष्टिभिः । आत्मन्यात्मानमावेश्य
 सोऽन्तःश्वासमुपारमत् । सम्पद्यमानमाज्ञाय भोष' ब्रह्मणि
 निष्कले । सर्वे बभूवुस्ते तूष्णीं वयांसीव दिनात्यये । तस्य
 निर्हरणादीनि सम्परेतस्य भागव !। युधिष्ठिरः कारयित्वा
 मुहूर्त्तं दुःखितोऽभवत्' । क्षणे आत्मनि परमात्मनि आत्मानं
 स्वीयात्मानं निवेश्य एकीकृत्य समीप उपारमत् मुक्तिं गत-
 वान् निष्कले निरुपाधौ ब्रह्मणि संपद्यमानं मिलितम् आज्ञाय
 आलक्ष्य तस्य भोषस्य निर्हरणादीनि संस्कारादीनि संपरेतस्य
 सम्यक् परेतस्य मुक्तस्यापि भार्गवेति शौनकसम्बोधनम् ।
 एवञ्चैतेषामपि तत्तत्कर्मणि तत्तद्वचनोपात्त प्रेतपदस्य पितृ-
 पदस्य च मन्त्रादिषु यथायथं वाचनिकत्वात् प्रयोगः सङ्ग-
 ष्यते । आसन्नमृत्युना देया गौः सवक्षा च पूर्ववत् । तद-
 भावे च गौरेका नरकोदारणाय वै । तदा यदि न शक्नोति
 दातुं वैतरणीञ्च गाम् । शक्नोऽन्योरुक् तदा दत्त्वा श्रेयो
 दद्यान्मृतस्य च । पूर्ववद्वेसशृङ्गादिना । अत्र सृतस्य चेति
 श्रवणादेकादशाहेऽपि वैतरणीदानाचारः । वनपर्वणि 'सार्थः
 प्रवसतो मित्रं भार्यामित्रं गृहे सतः । आतुरस्य भिषज्जितं

शुद्धितत्त्वम् ।

३०१

दानं मित्रं मरिष्यतः' । वराहपुराणे । 'व्यतीपातोऽथ संक्रान्तिस्तथैव ग्रहणं रवेः । पुण्यकालास्तदा सर्वे यदा मृत्युरूपस्थितः । गोभूतिलहिरण्यादिदत्तमक्षयतामियात्' । निरवकाशत्वादत्र मलमासादिदोषो नास्ति सूतकमपि न । तथाच शुद्धिरक्षाकरे दक्षः । 'सुखकाले त्विदं सर्वं सूतकं परिकीर्तितम् । आपन्नतस्य सर्वस्य सूतकेऽपि न सूतकम्' । त्रिपुष्करशान्तिरपि कार्या स च योगः शीपतिरत्नमालायाम् । विषमचरणं धिष्यं भद्रातिथिर्यदि जायते । दिनकरशनिष्मापुत्राणां कथञ्चन वासरेषु । मुनिभिरुदितः सोऽयं योगस्त्रिपुष्करसंज्ञितः । त्रिगुणफलदो वृद्धो नष्टे हृते च मृते विषमाचरणं धिष्यम् एकत्रिपादरूपेण उभयराशिप्रविष्टं नक्षत्रं कृत्तिकापुनर्वसुप्रभृति मरणे वाप्यादौ नान्तर्जलाचारः । तथा सति मृतशरीरयोगेन तस्य दुष्टता स्यात् । यथा ब्रह्मपुराणम् । 'येषामभक्ष्यं मांसञ्च तच्छरीरैर्युतञ्च यत् । वापीकूपतडागेषु जलं सर्वञ्च दुष्यति' । तच्छरीरैर्मृतशरीरैः । उत्तरवचने कुणपग्रहणात् यथा । 'सकुणपं सकर्दमं तेभ्यस्तोयमपास्य तत् । प्रक्षिपेत् पञ्चगव्यञ्च समन्तं सर्वशुद्धिनात् । अपास्य कुणपं तेभ्यो बहुतोयेभ्य एव वा । शतं षष्ठ्यथवा त्रिंशत् तोयकुम्भान् समुद्धरेत् । पञ्चगव्यं ततस्तेषु प्रक्षिपेन्मन्त्रपूर्वकम्' । वापी ससोपाना निःसोपानः कूपः तडागः पद्माकरः । शतादिजलात्पत्वाद्यपेक्षया अत्यल्पस्य सर्वोद्धारणाभिधानात् । एवं मरणसमये गृहान्निःसार्यतेऽन्यथा गृहस्य दुष्टता स्यात् । यथा बृहन्मनुः । 'श्वशूद्रपतिताशान्त्या मृताश्चेत् द्विजमन्दिरे । शौचं तत्र प्रवक्ष्यामि मनुना भाषितं यथा । दशरात्राच्छुनि प्रेते मासात् शूद्रे भवेच्छुचिः । द्वाभ्यान्तु पतिते गेहे अन्ये मासचतुष्टयात् ।

३०२

शुद्धितत्त्वम् ।

अत्यन्ते वर्जयेद् गेहमित्येवं मनुरब्रवीत् । द्वाभ्यां मासाभ्यां
 माससंदंशपाठात् अन्यो ज्ञेच्छः अत्यन्तः श्वपाकः इति वाच-
 स्पतिमिश्राः । यमः । 'द्विजस्य मरणे वैश्व विशुद्धयति
 दिनत्रयात् । दिनैकेन वह्निभूमिरग्निप्रेक्षणलेपनैः' । यथोक्त-
 कालानन्तरकर्तव्यमाह संवर्त्तः । 'गृहशुद्धिं प्रवक्ष्यामि
 अन्तस्थशवदूषिते । प्रोत्सृत्य मृगमयं पात्रं सिद्धमन्नं तथैव च ।
 गृहादपास्य तत् सर्वं गोमयेनोपलेपयेत् । गोमयेनोलि-
 प्याथ क्वागेनाप्रापयेद् बुधः । ब्राह्मणैर्मन्त्रपूतैश्च हिरण्यकुश-
 वारिभिः । सर्वमभ्युक्षयेद्देशम् ततः शुद्धयत्यसंशयः' । अत्र
 मन्त्रानादेशे गायत्री देवलः । 'पञ्चधा वा चतुर्धा वा भूर-
 मेध्या विशुद्धयति । दुष्टा द्विधा त्रिधा वापि शुद्धयते मलि-
 नैकधा । दहनं खननं भूमेरुपलेपनवापने । पर्जन्यवर्षणश्चापि
 शौचं पञ्चविधं स्मृतम् । प्रसूते गर्भिणी यत्र स्त्रियन्ते यत्र
 मानुषः । चण्डालैरुषितं यत्र यत्र विन्यस्यते शवः । विषमू-
 त्रोपहतं यच्च कुणपो यत्र दृश्यते । एवं कश्मलभूयिष्ठा
 भूरमेध्येति कथ्यते । कृमिकीटपदक्षेपैर्दूषिता यत्र मेदिनी ।
 तप्तया कर्षणैः क्षिप्ता वान्तैर्वा दुष्टतां व्रजेत् । नखदन्ततनूज-
 त्वक्तुपपांशुरजो मलैः । भस्मपङ्कटणैर्वापि प्रच्छन्ना मलिना
 भवेत् । वापनं मृदन्तरेण पूरणम् उषितं वासः तप्ता घनी-
 भूतश्लेष्मादि चतुर्धादौ पञ्चानां मध्ये यथासम्भवं ग्रहणम् ।
 अङ्गिराः । 'शौचं सहस्ररोमाणां वायुग्न्यर्केन्दुरग्निभिः ।
 रेतःसृष्टं शवस्सृष्टमाविकं नैव दुष्यति' । सहस्ररोमाणां
 कम्बलानाम् । विष्णुः । 'नाभेरधस्तात् प्रवाहुषु च कायिकै-
 र्मलैः । सुराभिर्मध्येर्वापहतो मृत्तोयैस्तदङ्गं प्रक्षाल्य अतन्द्रितः
 शुद्धेयदन्यत्रोपहतो मृत्तोयैस्तदङ्गं प्रक्षाल्य स्नानेन चक्षुष्युपहत
 हृषीष्य स्नात्वा पञ्चगव्येन दशनच्छदोपहतश्चेति' । प्रवाहुः

शुद्धितत्त्वम् ।

३०३

कफीणैरधी भागः । पञ्चगव्येन प्राशितेन शुद्धेयदिति शेषः ।
 मलान्याह मनुः 'वसाशुक्रमसृक्मज्जामूत्रविट्कर्णविस्त्राः ।
 शेषाशुद्रूपिकास्वेदो द्वादशैते नृणां मलाः' । बौधायनः ।
 'आददीत मृदोऽपच षट्षु पूर्वेषु शुद्धये । उत्तरेषु च षट्षु
 स्वप्नः केवलाभिर्विशुध्यति' विशेषयति मनुः । 'देहाच्चैव च्युता-
 मलाः' । देवलः । 'मानुषास्त्रिवसां विष्ठामार्त्तवं मूत्रैरतसी ।
 मज्जनं शोणितं वापि परस्य यदि संस्पृशेत् । स्नात्वाप-
 नृज्य लेपादीनाचम्य स शुचिर्भवेत् । तान्येव स्नानि संस्पृश्य
 पूतः स्यात् परिमार्जनात् । अत्र स्पर्शनं विनोपमार्जना-
 सभवात्तदनन्तरमेव स्नानाचमने कर्त्तव्ये पाठक्रमादर्थक्रमस्य
 बलवत्त्वात् । ततश्च परमलविशेषस्पर्शं प्रचालनस्नानाचमनम्
 आत्ममलस्पर्शं प्रचालनाचमनमात्रम् । विष्णुः । 'सृतं द्विजं
 न शूद्रेण निर्हारयेन्न शूद्रं द्विजेन' । यमः । 'यस्यानयति
 शूद्रोऽग्निं दृणकाष्ठहवींषि च । मन्यते ह्येष धर्मोऽस्ति स
 चाधर्मेण लिप्यते' । अशक्तावपि चितायां ब्राह्मणैरेव दृणादिकं
 देयम् । श्रीभागवतीयदृतीयस्कन्धकापिलीये । 'तथा घापी-
 यसा नीतस्तरसा यमसादनम् । योजनां सहस्राणि नवतिं
 नव चाध्वनः । त्रिभिर्मुहूर्तैर्द्वाभ्यां वा नीतः प्राप्नोति यातनाः' ।
 द्वाभ्यामतिपापस्य तेन गमनागमनानुरोधात् द्वादशदण्डा-
 द्द्विर्द्वाहः । मरणानन्तरकर्मणि प्राचीनावीतित्वादिकमाह
 मनुः 'प्राचीनावीतिना सम्यगपसव्यमतन्द्रिणा । पितृयमा-
 निधनात् कार्यं विधिवद्भर्माणिना' इति याज्ञवल्करः । 'ऊन-
 द्विर्घं निखवेन कुर्यादुदकं ततः' । छन्दोगपरिशिष्टम् । 'दुर्बलं
 स्नापयित्वा तं शुद्धचेलाभिसंवृतम् । दक्षिणाशिरसं भूमौ
 वह्निष्पत्नां निवेशयेत् । घृतेनाभ्यक्तमाप्लाव्यं सुवस्त्रमुपवी-
 तिनम् । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं सुमनोभिर्विभूषयेत् । हिरण्य-

३०४

शुद्धितत्त्वम् ।

शकलान्यस्य क्षिप्त्वा क्षिद्रेषु सप्तसु । मुख्येष्वथ पिधायैर्न
निर्हरैर्युः सुतादयः । आमपात्रेऽन्नमादाय प्रेतमग्निपुरः-
सरम् । एकोऽनुगच्छेत्तस्यार्द्धमर्द्धं पथ्युत्सृजेद्भुवि । अर्द्धमाद-
हनं प्राप्त आसीनो दक्षिणामुखः । सव्यं जान्वाञ्च शनकैः
सतिलं पिण्डदानवत् । अथ पुत्तादिराप्नुत्य कुर्याद्धारुचयं
महत् । भूपदेशे शुची देशे पश्चाच्चित्वादिलक्षणम् । तत्रो-
त्तानं निपात्यैनं दक्षिणाशिरसं मुखे । आज्यपूर्णां सुचं
दद्याद्दक्षिणाग्रं नसि सुवम् । घृताक्तस्याप्लावने विशेषमाह
वराहपुराणम् । 'दक्षिणाशिरसं कृत्वा सचेलन्तु शवं तथा ।
तीर्थस्थावाहनं कृत्वा स्नपनं तत्र कारयेत् । गयादीनि च
तीर्थानि ये च पुण्याः शिलोच्चयाः । कुरुक्षेत्रञ्च गङ्गाञ्च
यमुनाञ्च सरिद्धराम् । कौशिकीं चन्द्रभागाञ्च सर्वपापप्रणा-
शिनीम् । भद्रावकाशं शरयूं गण्डकीं पनसां तथा । वैष्ण-
वञ्च वराहञ्च तीर्थं पिण्डारकं तथा । पृथिव्यां यानि तीर्थानि
सरितः सागरांस्तथा । ध्यात्वा तु मनसा सर्वं स्मृतस्नानं
गतायुषम् । देवाश्चाग्निमुखाः सर्वं गृहीत्वा तु हुताशनम् ।
गृहीत्वा पाणिना चैव मन्त्रमेतमुदीरयेत् । ओं 'कृत्वा तु
दुष्कृतं कर्म जानता वाप्यजानता । मृत्युकालवशं प्राप्य नरं
पञ्चत्वमागतम् । धर्माधर्मसमायुक्तं लोभमोहसमावृतम् ।
दहेयं सर्वगात्राणि दिव्यान् लोकान् स गच्छतु । एवमुक्त्वा
ततः शीघ्रं कृत्वा चैव प्रदक्षिणम् । ज्वलमानं तथा वङ्गिं
शिरःस्थाने प्रदापयेत् । चातुर्वर्णेषु संस्थानमेवं भवति
पुच्छिके' । दुर्बलं गतप्राणम् । स्नापयित्वा शुद्धेन वाससा
सर्वं शरीरमाच्छाद्यास्तीर्णकुशायां भूमौ दक्षिणाशिरसं
स्थापयेत् । ततो घृतेनाभ्यज्य गयादीनीत्यादि सागरांस्तथेत्य-
न्तान् सर्वांश्चिन्तयित्वा पुनः स्नापयेत् । अत्र सुपांसुवित्थनेन

शुद्धितत्त्वम् ।

३०५

सर्वं इति द्वितीयार्थं प्रथमा । वस्त्रान्तरं परिधाप्य उपवीत-
मुत्तरीयञ्च दत्त्वा चन्दनादिनोपलिप्य मुखेषु मुखसम्बन्धिषु
कर्णनासिकानेत्रद्वयमुखात्मकेषु सप्तछिद्रेषु सप्तसुवर्णखण्डिकाः
प्रक्षिपेत्तदभावे कांस्यादिखण्डिका मुखे निधाय कांस्यसुवर्ण-
मणिविद्रुममित्यादि पुराणात् । वस्त्रान्तरेणाच्छाद्य निर्ह-
रेशुः । अग्निपुरःसरमिति साग्निपरम् । तस्यान्नस्यार्द्धमर्द्ध-
पथे त्यजेत् । आदह्यतेऽस्मिन्निति आदहनं श्मशानं तप्याप्तः
पुत्रादिरग्निदाता आप्लावनं कृत्वा वामं जान्वाच्य भूमिं
नीत्वा दक्षिणामुख उपविशति तिलसहित अपरमन्त्रार्द्धं
पिण्डदानेति कर्त्तव्यतयोत्सृजेदित्यनुषङ्गः । पिण्डदानेति-
कर्त्तव्यता च प्राचीनावीतित्वम् उपवीतवदुत्तरीयधारणञ्च ।
तथाच विद्याकरधृतं 'यथा यज्ञोपवीतञ्च धार्यते च द्विजो-
त्तमैः । तथा सन्धार्यते यन्नादुत्तराच्छादनं शुभम्' । अत्र
यथा द्विजोत्तमैः सव्यापसव्यत्वादिना उपवीतं धार्यते तथो-
त्तराच्छादनमपि । अत्र यथा यज्ञोपवीतधारणे उत्तमत्वम-
विवक्षितं क्षत्रियविशोस्तत्सम्भवात्तथोत्तरीयधारणे द्विजोत्तम-
त्वमप्यविवक्षितं स्त्रीशूद्रयोरपि द्विजोपवीतधारणवत् उत्त-
रीयधारणाचारात् 'विकच्छः कच्छशेषश्च मुक्तकच्छस्तथैव च ।
एकवासा अवासाश्च नग्नः पञ्चविधः स्मृतः' इति हरिशर्म-
धृतगोभिलादेकवस्त्रस्य सामान्यतो नग्नत्वाभिधानात्तत्परि-
हाराय द्विवस्त्रोपयोगित्वाच्च स्त्रियास्तु अथ पद्मराचारम् अनु-
क्रमिष्याम इत्युपक्रमे स्नात्वा वाससी परिधायेति हारीतेनोप-
देशाच्च । अतएव विवाहप्रकरणीयगोभिलसूत्रस्यप्रावृतां यज्ञो-
पवीतिनीमित्यत्र स्त्रिया उपवीता भावे यज्ञोपवीतधारणवत्
कृतोत्तरीयामिति भट्टभाष्यव्याख्यानादत्राप्यपसव्यताया युक्त-
त्वाच्च । 'अपसव्य' ततः कृत्वा वस्त्रयज्ञोपवीतके' इति ब्रह्म-

३०६

शुद्धितत्त्वम् ।

पुराणेऽपि वस्त्रस्याप्यपसव्यत्वदर्शनाच्च । एतेन स्त्रियास्तु
द्विवस्त्रत्वमात्रं न तु अपसव्यकरणमपि तथैव कृन्दोगाचारकृत्ये
प्रतिहस्तकलिखनादिति आहचिन्तामण्युक्तं निरस्तम् । मत्स्य-
पुराणं 'धारयेदथ रक्तानि नारी चेत् पतिसंयुता । विधवा
तु न रक्तानि कुमारौ शुक्लवाससी' । परिधानप्रकारमाह तुः
शङ्खलिखितौ । 'न नाभिं दर्शयेत् कुलवधूरागुल्फाभ्यां वासः
परिदध्यात् न स्तनौ विवृतौ कुर्यादिति' वासोविन्यासविशे-
षस्तु देशाचारादेवावगन्तव्यः । रत्नाकरोऽपि एवम् । शिरो-
ऽवगुण्ठनमाह ऋष्यशृङ्गः । 'गृहमेध्या भवेन्नित्यं भूषणानि
च पूजयेत् । नित्यस्नानकृतां वेणीमर्चयेत् पुष्पवाससा' ।
गृहमेध्या गृहकृत्यपरा पूजयेन्मार्जनादिभिः संस्कुर्व्यादित्यर्थः ।
नित्यस्नानानन्तरकृतामिति रत्नाकरः । ततः पुक्षादिः स्नानं
कृत्वा दास्यं कुर्यात् शुचिभूषणप्रदेशे चितायोग्यलक्षणं पञ्चधा
भूसंस्काररूपं कुर्यात् । तत्र प्रथममाकरशोधनं ततो गोम-
येनोपलेपनं ततः खगृह्योक्तरेखाकरणं रेखामार्जनं रेखाभ्यु-
क्षणञ्च एतच्च निरग्नेरपि । 'यद्युपेतो भूमिजोषणादि समान-
मिति' पारस्करसूत्रात् । उपेत उपनीतः जोषणं जुषीप्रीति-
सेवनयोरिति धात्वनुसारात् सेवनं तेन भूमिजोषणं भूसंस्कार
इति हारलता । तेनोपनीतमात्रस्य दाहे भूसंस्कार इति ।
चितायां दक्षिणाशिरसं कुणपमधोमुखं सामगं पुमांसं न्यसेत्
कृन्दोगपरिशिष्टेन दक्षिणाशिरस्वाभिधानात् । ननु कृन्दोग-
परिशिष्टोक्तत्वात् यदि सामगानां दक्षिणाशिरस्त्वं तर्हि
उत्तानदेहत्वं कथं नाद्रियते । उच्यते । उत्तानदेहत्वस्य
सुवादिपात्रन्यासानुरोधित्वेन तन्निवृत्तिर्युक्ता दक्षिणाशिर-
स्त्वस्य वाचनिकत्वान्निरग्निविषयत्वमपि । नार्थ्यास्तु उत्तान-
देहत्वं यथादिपुराणं 'सगोत्रजैर्गृहीत्वा तु चितामारो-

शुद्धितत्त्वम् ।

३०७

चितामारोप्यते शवः । अधोमुखो दक्षिणादिचरणस्तु पुमानिति । उत्तानदेहा नारी तु सपिण्डैरपि बन्धुभिः । दक्षिणादिचरण इत्यनेनोत्तरशिरस्त्वं यत् तत् सामगेतरपरम् । हारलतापि एवम् । ततो देवाश्चाग्निमुखाः सर्वे हुताशनं गृहीत्वा एनं दहन्त्विति मनसा धात्वा 'चाण्डालाग्नेरमेध्याग्नेः स्रूतिकाग्नेश्च कर्हिचित् । पबिताग्नेश्चिताग्नेश्च न शिष्टैर्ग्रहणं स्मृतम्' इति देवलपर्युदस्तेतरमग्निं गृहीत्वा कृत्वा तु दुष्करमिति मन्त्रो पठित्वा प्रदक्षिणं कृत्वा दक्षिणामुखः शिरस्थाने दद्यात् । स्त्रीदाहेऽपि नरमित्येव पाठः इत्युक्तमेकादशीतत्त्वे । विष्णुपुराणे । 'न ह्य' कुर्याच्छवश्चैव शवगन्धो हि सोमजः । आदिपुराणे 'निःशेषस्तु न दग्धव्यः शेषं किञ्चित्थजेत्ततः । गच्छेत् प्रदक्षिणाः सप्त समिद्धिः सप्तभिः सह । देयाः प्रहाराः सप्तैव कुठारेणोल्मुकोपरि । क्रव्यादाय नमस्तुभ्यमिति जप्यं समाहितैः । नावेक्षितव्यः क्रव्यादो गन्तव्या च ततो नदी' । प्रदक्षिणा गतिरिति शेषः । समिधां प्रक्षेपमाह प्रचेताः । 'दग्ध्वा शवं ततस्त्वेवं प्रादेशाः काष्ठिकास्तथा । सप्त प्रदक्षिणीकृत्य चैकैकान्तु विनिक्षिपेत्' । तेन प्रादेशप्रमाणाः सप्तकाष्ठिका गृहीत्वा चिताग्निं सप्तवारान् प्रदक्षिणीकृत्य सप्तकाष्ठिका एकैकक्रमेण चिताग्नौ प्रक्षिपेत् । ततः कुठारेण क्रव्यादाय नमस्तुभ्यमिति मन्त्रजपं कुर्वद्भिश्चितास्थज्वलहारूपरि सप्तप्रहारा देयाः मन्त्रपाठस्तु सकृदेव । एकद्रव्ये कर्मावृत्तौ सकृदेव मन्त्र वचनं कृत्वेति भट्टभाष्यधृतवचनात् । दर्भजूटिकाहोमे तु अतएव वर्हिषः कुशमुष्टिमादायाज्ये हविषि वा त्रिरवदध्यात् अग्राणि मध्यानि मूलानि इति च त्यक्तं रिहाना व्यन्तुवय इति गोभिलेन स्थानभेदकथनादेकद्रव्येऽपि कर्मावृत्तौ मन्त्रावृत्तिरिति भट्टभाष्यम् ।

३०८

शुद्धितत्त्वम् ।

ततः 'कोष्ठे तु जठराग्निस्तु क्रव्यादोऽमृतभक्षणे' इति गोभिल-
 लीयपरिभाषितं क्रव्यादमग्निं पश्यद्विर्वक्ष्यमाणाश्वलायनवच-
 नात् वामावर्त्तेन स्नातुं नदीं गन्तव्या । प्रचेताः । 'नग्नदेहं
 दहेन्नेव किञ्चिद्देयं परित्यजेत्' । देयं शवसम्बन्धिवस्त्रादिकं
 श्मशानवासिचाण्डालादिभ्यो दद्यात् । मिताक्षरायां 'सूति-
 कायां मृतायान्तु कथं कुर्वन्ति याज्ञिकाः । कुम्भे सतिल-
 मादाय पञ्चगव्यं तथैव च । पुण्यगर्भिरभिमन्त्रापो वाचा
 शुद्धिं लभेत्ततः । तेनैव स्नापयित्वा तु दाहं कुर्याद् यथा-
 विधि । पञ्चभिः स्नापयित्वा तु गव्यैः प्रेतां रजस्वलाम् ।
 वस्त्रान्तराहतां कृत्वा दाहयेद्विधिपूर्वकम्' । पुण्यगर्भिरापो-
 हिष्ठौयवामदेव्यादिभिरिति स्मृत्यर्थानुसारः । एवं गर्भवत्यां
 मृतायाम् उदरभेदेन गर्भं निःसार्य स्थानान्तरे क्षिपेत् ।
 स्त्रीणान्तु पतितो गर्भ इत्यादि ब्रह्मपुराणे सामान्यतो गर्भ-
 प्रतिपत्तिविधानात् । स्मृतिः । 'नागदष्टो नरो राजन्
 प्राप्य मृत्युं व्रजत्यधः । अधोगत्वा भवेत् सर्पो निर्विषो नात्र
 संशयः । एतन्मोक्षाय तद्वन्धुः पुत्रादिर्मांसि भाद्रके । नक्तं
 कुर्वीत सप्तम्यां शुक्लपक्षे प्रयत्नतः' । यमः 'दशाहाभ्यन्तरे
 यस्य गङ्गातोयेऽस्थिमज्जति । गङ्गायां मरणे यादृक् तादृक्
 फलमवाप्नुयात्' । स्मृतिः । 'आत्मनस्त्यागिनां नास्ति पति-
 तानां तथा क्रिया । तेषामपि तथा गङ्गातोये संस्थापनं
 हितम्' । कोमे 'यावन्त्यस्थीनि गङ्गायां तिष्ठन्ति पुरुषस्य
 च । तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते' । आदिपुराणं
 'मातुःकुलं पित्रकुलं वर्जयित्वा नराधमः । अस्थीन्यन्यकुलो-
 त्यस्य नीत्वा चान्द्रायणाच्छुचिः' । एतत्तु धनग्रहणादिना ।
 'अस्थीनि मातापित्रपूर्वजानां नयन्ति गङ्गामपि ये कदा-
 चित् । सङ्गावकस्यापि दशाभिभूतास्तेषान्बु तैर्धानि फल-

शुद्धितत्त्वम् ।

३०८

प्रदानि' । अत्र सद्भावकस्य शुद्धभावस्यान्यकुलजस्यापि कृपातिशयाद्धर्मबुद्ध्या अस्थिप्रक्षेपे पुण्याभिधानात् । अत्रैव विधिमाह । 'भागौरथी यत्र यत्रास्ति तीर्थे' कुलद्वये चापि यदा विपन्नः । तदा तदा तत्र च तस्य भक्त्या भावेन चास्थौनि विनिक्षिपेच्च । स्नात्वा ततः पञ्चगव्येन सिक्त्वा हिरण्यमध्वाज्य तिलैश्च योज्य । ततश्च मृत्पिण्डपुटे निधाय पश्यन् दिशं प्रेतगणोपगूढाम् । नमोऽस्तु धर्माय वदन् प्रविश्य जलं स मे प्रीत इति क्षिपेच्च । उत्थाय भास्वन्तमवेक्ष्य सूर्यं सदक्षिणां विप्रमुखाय दद्यात्' । उत्तरार्द्धेऽस्थित्यागानन्तरं स्नानविधाय-कमैथिलपाठो युक्तः । स यथा 'स्नात्वा तथोत्तीर्थं च भास्करश्च दृष्ट्वा प्रदद्यादथ दक्षिणाञ्च । एवं कृते प्रेतपुरस्थितस्य स्वर्गे स्थितिः स्याच्च महेन्द्रतुल्या' । प्रेतगणोपगूढां दक्षिणां दिशम् । ओम् नमोऽस्तु धर्मायेति गङ्गाजलप्रवेशमन्त्रः । स मे प्रीतो भवतु इत्यस्थिप्रक्षेपमन्त्रः इत्यनिरुद्धमहः ।

अथास्थ्यलाभे पर्यनरदाहः । आश्वलायनगृह्यपरिशिष्टम् । 'अस्थिनाशे पलाशवृन्तानां त्रीणि षष्टिशतानि च । पुरुष-प्रतिकृतिं कृत्वाऽशीत्यर्हन्तु शिरसि ग्रीवायां दश योजयेत् । उरसि त्रिंशतं दद्याद्विंशतिं जठरे तथा । बाहुभ्याश्च शतं दद्यात् दद्यादङ्गुलिभिर्दश । हादशार्धं वृषणयोरष्टार्धं शिश्न एव च । ऊरुभ्याश्च शतं दद्यात्त्रिंशतं जानुजङ्घयोः । पादाङ्गुलीषु च दश एतत् प्रेतस्य लक्षणम् । ऊर्णासूत्रेण संवेष्ट्य यव-पिष्टेन लेपयेत्' । आदिपुराणं 'तदलाभे पलाशोत्थैः पत्रैः कार्यः पुमानपि । शतैस्त्रिभिस्तथाषष्ठ्या शरपत्रैर्विधानतः' । तदलाभेऽस्थ्यलाभे । अत्र पलाशपत्रशरपत्रयोस्तुल्यत्वेनोपादानात् आश्व-लायनसूत्रेऽपि प्रतिकृतौ शरपत्रस्य लाभः । अत्राचाराद् योग्य-त्वाच्च शरपत्रैः पुत्तलकं कृत्वा शिरःप्रभृतिषु पलाशपत्राणि

३१०

शुद्धितत्त्वम् ।

देयानि ततो वेष्टनमूर्णासूत्रेण लेपनं यवपिष्टेनेति । अत्रा-
 शौचाभ्यन्तरे दाहे शेषाहंन शुद्धिः तदुत्तरपर्णनरदाहे तु
 चिरात्रम् । 'एवं पर्णनरं दग्ध्वा चिरात्रमशुचिर्भवेत्' इत्यादि-
 पुराणात् । यज्ञपार्श्वः 'पुत्राश्चेदुपलभ्येरन् तदस्थौनि कदा-
 चन । तदलाभे पलाशस्य सम्भवे हि पुनः क्रिया' । हि
 यस्मात्तदलाभेऽस्यसंप्राप्तौ पलाशस्य तत्कृतपुत्तलकस्य दाह-
 क्रिया पुनरपि सम्भवे लाभेऽस्थिदाहक्रिया विहिता तस्माद्
 यदि पुनरस्थौनि प्राप्यन्ते तदा पुनर्दाहविराचाशौचे कर्त्तव्ये
 न पुनः पिण्डादिदानं वक्ष्यमाणयुक्तेः । 'अशौचानन्तरं चेत्
 स्याद्दाहः पर्णनरस्य च । त्र्यहाच्छुद्धान्ति च तथा सन्निकृष्टाः
 सगोत्रजाः' । दर्शं दहेत् । 'पर्णनरं दहेन्नैव विना दर्शं
 कथञ्चन । अस्यलाभे तु दर्शेऽपि ततः पर्णनरं दहेत्' इति
 दीपकलिकायां सुमन्तुवचनात् । दर्शं इत्यत्र अष्टम्यामिति
 क्वचित् पाठः । अष्टमी कृष्णा सन्देहे पितृकर्मणि कृष्णपक्ष-
 प्राधान्येनोक्तेः । 'नरं पर्णं दहेन्नैव प्राक् त्रिपक्षात् कथञ्चन ।
 त्रिपक्षे तु गते दद्यात् दर्शं प्राप्ते ह्यनग्निकः' । इत्यशौचव्यप-
 गमे बोध्यम् । यथा शुद्धिरत्नाकरे यमः । 'अशौचमध्ये तु
 यत्नेन दाहयेदुक्तयावता । कृष्णपक्ष इत्यत्राशौचव्यपगमे
 बोध्यः । कृष्णपक्षे पञ्चदश्यामष्टम्यां वा समाहितः । एका-
 दश्यां विशेषेण ततः प्रभृति सूतकम् । त्रिरात्रं सर्ववर्णाना-
 मेषधर्मी व्यवस्थितः' इति वायुपुराणे 'पर्णनरं दहेन्नैव प्राक्
 त्रिपक्षात् कथञ्चन । पितृहा मातृहाष्टम्यान्नैव दर्शं दहेत्
 यदि' । विष्णुः । 'त्रिपक्षे तु गते पर्णनरं दद्यादनग्निकः
 त्रिपक्षाभ्यान्तरे राजन् ! नैव पर्णनरं दहेत् । तदूर्ध्वमष्टमीं
 प्राप्य दर्शं वापि विचक्षणः' । दहेदिति शेषः । अशौचा-
 भ्यान्तरे यदि दाहं न कुर्यात् तदा मरणदिनावधि त्रिपक्षा-

शुद्धितत्त्वम् ।

३११

नन्तरं दाहः कार्य इत्यर्थः । इति हरिदासतर्काचार्याः ।
 ‘पर्णं नरं दहेन्नैव विना दर्शं कदाचन । अस्थामलामे दर्शं
 तु ततः पर्णनरं दहेत्’ । इति दीपकलिकायां सुमन्तुवचना-
 इर्घं दाहः । इत्यत्राष्टमीति क्वचित् पाठः । यमः त्रिपक्षा-
 भ्यन्तरे राजन् ! नैव पर्णनरं दहेत् । तदूर्ध्वमष्टमीं प्राप्य दर्शं
 वापि विचक्षणः । अष्टमीत्यत्र कृष्टाष्टमीत्यर्थः । पितृकर्मणि
 कृष्णपक्षप्राधान्येनोक्तेः इति हरिदासतर्काचार्यलिखनात् ।
 एतच्चाशीचव्यतिरिक्तविषयम् ।

अथोदकादिदानम् । पारस्करः ‘संप्रयुक्तं मैथुनञ्च याचे-
 रन्नुदकं करिष्याम’ इति कुरुध्वं माचैवं पुनरित्यशतवर्षे
 प्रेते कुरुध्वमेवेतरस्मिन्निति प्रार्थिते सर्वे ज्ञातयो भावयन्ति
 आसप्तमात् पुरुषात् दशपुरुषाद्वा समानग्रामवासे यावत्
 सम्बन्धमनुस्मरेयुरेकवस्त्राः प्राचीनावीतिनः सव्यस्थानामिकया
 अप आलोड्य । ‘ओम् अपनः शोशुचदधमिति दक्षिणाभि-
 सुखा निमज्जन्ति प्रेतायोदकं सकृत् प्रसिञ्चन्त्यञ्जलिना असा-
 वेतत्त इति’ संप्रयुक्तं सम्यक्प्रयोगकुशलम् उत्तरदानाभिज्ञ-
 मिति यावत् मिथुनं स्त्रीपुंसौ तत्सन्धिमेथुनं श्यालकादिकम् ।
 उदकं करिष्याम इति याचेरन् प्रत्युत्तरमाह कुरुध्वं मा चैवं
 पुनरित्यशतवर्षे प्रेते कुरुध्वमेवेतरस्मिन्निति । ततः सर्वे
 स्नानादिक्रियां भावयन्ति यावत् सम्बन्धमनुस्मरेयुः एककुल-
 जाता वयमिति यावत् स्मरणं भवतीति तावदपीयं स्नानादि-
 क्रिया यथा स्नानादि कर्तव्यं तदाह एकवस्त्र इत्यादिना अत्रै-
 कवस्त्रत्वविधानादन्यत्र स्नाने द्विवस्त्रत्वं प्रतीयते । तथाच
 समुद्रकरष्टतगोभिलीयसन्ध्यास्नानादिसूत्रभाष्ये गोतमः । ‘एक-
 वस्त्रेण यत् स्नानं शूच्या विद्धेन चैव हि । स्नानन्तु न भवेच्छुद्धं
 सि ग्रा च परिह्रियते’ । कात्यायनीयस्नानसूत्रविवरणेऽपि

३१२

शुद्धितत्त्वम् ।

नैकवस्त्रं स्नायादितिवचनम् । बृहन्नारदीये 'देवार्चा चमन-
 स्नानव्रतश्राद्धक्रियादिषु । न भवेन्मुक्तकेशश्च नैकवस्त्रधरस्तथा' ।
 विद्याकरवाजपेयिनापि यज्ञोपवीतस्यैव वस्त्रकारित्वेऽपि अव-
 स्त्रत्वात् स्नानकाले स्थिते तस्मिन् वस्त्रेऽपि गृहीते न
 वासोभिः सहाजस्रमिति निषेधानवकाशः । 'नग्नः कौपीन-
 वासाश्च त्रिवासाः स्नाति यो नरः । वृथा स्नानं भवेत्तस्य
 निराशाः पिबदेवताः' । इति याज्ञवल्करवाक्यञ्च दृश्यत इत्यु-
 क्तम् अतएव सांख्यायनगृह्यं 'सवस्त्रोऽहरहराग्नृत्यानुदको-
 ऽन्यद्वस्त्रमाच्छादयेत्' इति । सवस्त्र इति द्वितीयवस्त्र-
 प्रात्यर्थम् एकवस्त्रस्य नग्नत्वप्रतिषेधेन प्राप्तत्वादिति ब्रह्मदत्त-
 भाष्यमिति कल्पतरुः । अत्रानुदकश्रुत्या 'स्नातः शिरोनाव-
 धुनुयान्नाङ्गेभ्यस्तोयमुद्धरेत्' इति विष्णुक्तं स्नानशाटीपाणिभ्याः
 मिति विशेषणीयम् । 'स्नातो नाङ्गानि मार्जयेत् स्नानशाठ्या
 न पाणिना' इति विष्णुपुराणीयैकवाक्यत्वात् । प्रेतस्नाने
 प्रथमं परिहितवस्त्रं प्रक्षाल्य तदेव परिधाय स्नातव्यम् ।
 यथादिपुराणम् 'आदौ वस्त्रञ्च प्रक्षाल्य तेनैवाच्छादितैस्ततः ।
 कर्त्तव्यं तैः सचेलन्तु स्नानं सर्वमलापहम्' । ततः प्राचीना-
 वीतिनो दक्षिणामुखाः । ओम् अपनः शोशुचदधमित्यनेन
 मन्त्रेण वामहस्तानामिकया अप आलोच्य स्नातव्यमिति
 हारलता याज्ञवल्करदीपकलिकाहरिशर्मसुगतिसोपानप्रभृ-
 तयः असावेतत्ते इति असाविति सम्बोधनान्तनामोपलक्षणम्
 असाविति नाम गृहीयादिति कात्यायनदर्शनात् । अत्रा-
 सावित्युपादानाददःपदप्रयोग एव नामोहो नतु विरूपाक्षजपा-
 दाविदं कर्म करिष्यामि इत्यादौ अतएव भवदेवभट्टादिभि-
 रसावित्यत्रोह उक्तो नेदमित्यादौ । तेनामुकगोत्र प्रेतामुक-
 देवशर्मन्नेतत्ते तिलोदकं द्रव्यस्वेति यजुर्वेदिनां प्रयोगः ।

सुद्धितत्त्वम् ।

११३

यद्यपि दृष्यस्वेति न वाचनिकं तथापि 'अमुकामुकगोत्रस्तु
 प्रेतस्तृप्यत्वित्दं पठन्' इति ब्रह्मपुराणे गोत्रनामानुवादादि
 तर्पयामीति चोत्तरमिति छन्दोगपरिशिष्टे च दृप्तिपदप्रयोगात्
 सम्बोधनानुबन्धयोग्यत्वाच्च अत्रापि तथा कल्प्यते । यद्यप्य-
 सावित्यसंबुद्धिप्रथमान्तोऽपि सम्भवति तथा पितेति युष्मत्पद-
 प्रयोगात् संबुद्धान्तता प्रतीयते तस्य संबुद्धमानार्थवाचित्वात्
 अन्यथा अनन्वयापत्तेः । छन्दोगपरिशिष्टम् । 'अथानवेक्ष्य-
 मेत्यापः सर्व एव शवसृशः । स्नात्वा सचेलमाचम्य दद्युरस्यो-
 दकं जले । गोत्रनामानुवादादि तर्पयामीति चोत्तरम् ।
 दक्षिणाग्रान् कुशान् दत्त्वा सतिलांस्तु पृथक् पृथक् । अनवेक्ष्यं
 चितान्प्रवेक्षणं यथा न स्यात्तथा अप आगत्य पारस्करोक्त-
 विधिना स्नात्वा तर्पयेयुः । विशेषमाह गोत्रेति अनुवादपदेन
 मरणादनुपश्चाद्वादो वदनं यस्य तत्तथेत्यन्वयात् प्रेतान्तनाम-
 गोत्राभ्यामिति शातातपीयदर्शनाच्च प्रेतपदमभिधीयते तेन
 गोत्रादि पूर्वं प्रतीकं तर्पयामीति परम् एतेन सम्बन्धार्पकपद-
 निवृत्तिरवसीयते प्रेतत्वेन देवतात्वात् । पितृपदस्थाने प्रेत-
 पदम् । प्रेतशब्देऽपि सम्बन्धवाचकपित्रादिपदमनभिधाय
 विष्णुना 'प्रेतान्तनामगोत्राभ्यां दत्ताचर्योदकेष्विति' । आश्व-
 लायनगृह्यपरिशिष्टेनापि 'पितृशब्दं न युञ्जीत पितृहा
 चोपजायते' इत्युक्तम् एतत् प्रेतशब्दमिति गोभिलवचनात् प्रेत-
 पदत्वेन देवतात्वात् पितृपदस्थाने प्रेतपदविधानादुत्सर्गवाक्ये
 मन्त्रे च पितृपदनिवृत्तिरवसीयते इति न्यायमूलकवचनमिदम्
 अतो न सांवत्सरिके तत्पदनिवृत्तिप्रसङ्गः । अतएव प्रेतपिण्डो-
 ऽप्यस्य विषय इति आहविवेकः । गोत्रनामानुवादादौत्वत्र
 पाठक्रमान्नाहः परं न प्रेतपदं किन्तु नागृहीतविशेषणा-
 बुद्धिर्विशिष्य उपजायत इति न्यायान्नाहः पूर्वं तत्रायस्य कथं

३१४

शुद्धितत्त्वम् ।

बलवत्त्वमिति चेत् श्रुत्यर्थपठनस्थानमुख्यप्रावृत्तिकाः क्रमा इति जैमिनिसूत्रे पाठक्रमादर्थक्रमस्य बलवत्त्वात् । सम्बन्ध-
वाचकपदस्थलाभिषिक्तत्वाच्च इति । तथाचोक्तं मिश्राचार्य-
मृथिवीधरधृतविष्णुसूत्रम् 'अपः सर्वे शवस्पर्शिनो गत्वा पिण्ड-
पदस्थाने प्रेतपदोद्देन द्वितीयान्तं तर्पयेयुः । पिण्डशब्दोच्चा-
रणेन पिण्डहा भवति' इति शातातपः 'प्रेतान्तनामगोत्राभ्या-
मुत्सृजेदुपतिष्ठताम्' इति प्रेतान्तेति तत्पुरुषः न बहुब्रीहिः
सर्वजघन्यत्वात् तेन प्रेतान्तनामगोत्रश्चेति समासः एतद्वचना-
च्चितापिण्डदाने उपतिष्ठतामिति पिण्डदयितायामप्युक्तम् ।
एतेन प्रेतकार्यं सम्बन्धार्पकपदप्रयोगो मैथिलोक्तो हेयः एतेन
अमुकगोत्रं प्रेतममुकदेवशर्माणं तर्पयामीति सामगानां
प्रयोगः । अत्र प्रेततर्पणे सतिलांस्त्विति विशेषोपादानात्
सूर्यादिवारेऽपि तिलैरेव तर्पणं प्रतीयते । व्यक्तमाह मदन-
पारिजातधृता स्मृतिः । 'अयने विषुवे चैव संक्रान्त्यां ग्रह-
णेषु च । उपाकर्मणि चोत्सर्गे युगादौ नृतवासरे । सूर्य-
शुक्रादिवारे च न दोषस्तिलतर्पणे' । तथा 'तीर्थे' तिथि-
विशेषे च कार्यं प्रेते च सर्वदा' । तिथिविशेषे अमावास्या-
दशहरादौ । अत्र दक्षिणाङ्गुष्ठसहितमध्यमादिना वामहस्ते
तिलदानं 'वामहस्ते तिलान् दत्त्वा जलमध्ये तु तर्पयेत् ।
मुक्तहस्तन्तु कर्त्तव्यं न मुद्रां तत्र दर्शयेत्' इति विद्याकरधृत-
वामहस्त इति सप्तम्यन्तश्रवणात् 'तिलान् संमिश्रयेज्जले' इति
तिलाधिकरणमुपक्रम्याभिधानाच्च । सव्येन तिलाग्राह्या इत्य-
त्रापि वामहस्ते स्थाप्या इत्यर्थः । सव्येनेति स्थाप्या पच-
तीति वदधिकरणे तृतीया विवक्षातो हि कारकाणि भवन्ती-
त्युक्तेः । मुद्रा अङ्गुष्ठतर्जन्यात्मकयोगरूपा तिलग्रहणायैति
शेषः । ननु यथा छन्दोगानां द्वितीयान्तवाक्यं प्रेततर्पणप्रकाः

शुद्धितत्त्वम् ।

३१५

रणात् प्रेततर्पणपरं तथा यजुर्वेदिनां सम्बोधनान्तवाक्यमपि तत्परमस्तु मैवं छन्दोगानां गोभिलेन शर्मा तर्पणकर्मणीति सामान्यतोऽभिधानात्तथास्तु यजुर्वेदिनान्तु स्वशाखायां प्रात्यहिकतर्पणे प्रकृतावनुक्तमपि सम्बोधनान्तवाक्यं तद्विकृतीभूत-
 प्रेततर्पणीयेनासावेतत्त इत्यनेन निर्णीयते । तथा ज्योति-
 ष्टोमे द्वादशशतगोदक्षिणाविभागोऽनुक्तो विकृतीभूत सत्रे शते-
 नार्द्धिनो दीक्षयन्तोत्यादिना निर्णीयते इति तद्विभागं मनु-
 रप्याह 'सर्वेषामर्द्धिनो मुख्यास्तदर्द्धेनार्द्धिनोऽपरे । तृतीयिन-
 स्तृतीयांशाश्चतुर्थांश्चैकपादिनः' । श्रौतकात्यायनोऽपि 'अथ
 द्वादशद्वादशाद्येभ्यः षट्षट् द्वितीयेभ्यश्चतस्रश्चतस्रस्तृतीयेभ्य-
 स्तिस्रस्तिस्र इतरेभ्यः' इति षोडशानाम् ऋत्विजां चतुरश्रतुरः
 कृत्वा चत्वारो वर्गा इति अतो न गोभिलोक्ताश्रयणम् । किन्तु
 स्वशाखाश्रयणम् । तदाश्रयणे 'स्वशाखाश्रयमुत्सृज्य पर-
 शाखाश्रयन्तु यः । कर्तुमिच्छति दुर्मेधा मोघं तस्य तु यत्-
 कृतम्' इति कात्यायनेन दोषाभिधानात् । व्यक्तमाह ब्राह्मण-
 सर्वस्वे जातूकर्णः । 'प्रमीतपितृकस्तु उशन्तस्वेत्यावाह्य
 नामगोत्रे समुच्चार्य यावतां पितृकार्यमसावेतत्त उदकमिति
 पितृन् पितामहान् प्रपितामहान् एकैकं त्रीं स्त्रीन् जलाञ्ज-
 लीन् दद्यादिति' ततश्च प्रात्यहिकतर्पणे अमुकगोत्र पितर-
 मुकदेवशर्मस्तु प्यस्वैतत्ते तिलोदकं स्वधेति यजुर्विदां प्रयोगः ।
 अञ्जलित्रयदाने त्वनुद्धृतस्थीपादानिकस्त्वत्वाभावेन त्यागायो-
 गादेतत्ते तिलोदकमिति निर्देशासम्भवादेकमन्त्रकानेकहोमे
 मन्त्रावृत्तिवत् करणत्वात् प्रत्यञ्जल्येव वाक्यं न तु वाचस्पति-
 मिश्रोक्तं सकृद्वाक्यं कचिदगत्यैव स्त्वसम्भावनया भावि-
 द्रव्यत्यागो न तु गतिसम्भवेऽपि । अथात्र देवपदप्रयोगे किं
 मानम् उच्यते । 'ततश्च नाम कुर्वीत पितैव दशमेऽहनि ।

३१६

शुद्धितत्त्वम् ।

देवपूर्वं नराख्यं हि शर्मवर्मादिसंयुतम्' इति विष्णुपुराणा-
 वृत्तमेऽहनीति सङ्करेणाशीचङ्गासे तदानीं नामकरणे बोध्य-
 मिति प्रागुक्तं नरमाचष्टे इति नराख्यं नरनामस्याख्यमिति-
 वत् विभुजादित्वात् कप्रत्ययेन सिद्धं देवपूर्वं देवात् पूर्वं तच्च
 विशिष्टं शर्मयुतम् । तच्चान्ते 'शर्मन्नर्घ्यादिके कार्यं शर्मा
 तर्पणकर्मणि । शर्मणोऽक्षय्यकाले तु पितृणां दत्तमक्षयम्'
 इति गोभिलदर्शनात् । 'शर्मान्तं ब्राह्मणस्य स्यादशर्मान्तं'
 क्षत्रियस्य तु । धनान्तञ्चैव वैश्यस्य दासान्तञ्चान्यजम्भनः'
 इति शातातपीयाञ्च । शृणाति हिनस्त्यशुभमिति मन्प्रत्ययात्
 शर्मेति सिद्धं देवपदं विप्राणां नाममात्रसम्बन्धम् । 'शर्मा
 देवश्च विप्रस्य वर्मन्नाता च भूभुजः । भूतिर्दत्तश्च वैश्यस्य दासः
 शूद्रस्य कारयेत्' इति कल्पतरुकुल्लूकभट्टवृत्तयमवचनात्
 अत्रापि चकारात् समुच्चयः । यत्तु 'शर्मेति ब्राह्मणस्योक्तं
 वर्मेति क्षत्रियस्य च । गुप्तदासात्मकं नाम प्रकुर्यात् वैश्य-
 शूद्रयोः' इत्यत्रेति पदस्वरसेन यद्यपि शर्मपदात्मकमेव नामाव-
 गम्यते इति द्वैतनिर्णये पूर्वपक्षवर्णनं तद्विष्णुपुराणीयैतद्व-
 चनप्रागवस्थितस्य । ततश्च नाम कुर्वीत इत्याद्युक्तवचनस्थान-
 भिन्नानात् । किन्तु शर्मेति वचनं शर्मवर्मादिसंयुतमित्यस्य
 विशेषकमिति । एतेनामुकदेवशर्मा प्रेत इत्यादि मैथिलानां
 वाक्यरचना हेया नागृहीतेत्यादि न्यायविरोधात् । यम-
 विष्णुपुराणोक्तदेवपदादिरहितत्वाद्गोभिलोक्तशर्मन्नित्यादिनिर्दे-
 शरहितत्वाच्च । गोत्रनामानुवादीत्याद्यनेकवचने गोत्रशब्द-
 दर्शनात् गोत्रपदमेवोच्चार्यं न तु पितृदयिताकल्पतरुआङ्ग-
 विवेकोक्तं गोत्रपर्यायकमपि सगोत्रपदम् एवं आद्येऽपि तथाच
 गोभिलः । 'गोत्रं स्वरान्तं सर्वत्र गोत्रस्याक्षय्य कर्मणि ।
 गोत्रस्तु तर्पणे प्रोक्तः कर्त्ता एवं न मुच्यति' इति । एवमेव

शुद्धितत्त्वम् ।

३१७

श्रीदत्तादयः । आश्वलायनः । 'सव्यावृतो ब्रजन्त्यनवेक्ष्यमाणा यत्रोदकमवहं भवति तत् प्राप्य सकृदुन्मज्जैकं जलाञ्जलि-
 मुत्सृज्य तस्य नामगोत्रे गृहीत्वा उत्तीर्थान्यानि वासांसि
 परिधाय सकृदेवानापीड्य उदग्दशानि विमृज्यासते' इति ।
 सव्यमावर्त्तन्त इति सव्यावृतः अग्निमिति शेषः । अवहमिति
 यत्र देशे नद्याः स्रोतो नास्ति तत्र स्नातव्यमिति हारलता-
 प्रभृतयः । तेनाशौचिनोऽपि नद्यारजोयोगेऽपि नदीमज्जनं
 न निषिद्धम् । सकृदुन्मज्जनसामर्थ्यात् सकृदुन्मज्जनमायाति
 अनापीड्य आसम्यक्प्रकारेण पीडनमकृत्वा ईषत्पीडित्यत्वे-
 त्यर्थः उदग्दशानि तथा त्यज्यानि वस्त्राणि यद्योदीच्यां दशाः
 पतन्ति । शङ्खलिखितौ । 'प्रेतस्य बान्धवा यथा हृदपुरः-
 सरमुदकमवतीर्थ्य नोद्वर्षेयेरन्नपः प्रसिञ्चेरन्' इति । जले
 हृदपुरःसरमवतरणं जलादुत्थानञ्च बालपुरःसरम् । बौधा-
 यनेन तथोक्तत्वात् । नोद्वर्षेयेरन् तस्मिन् स्नाने मलापकर्षणं
 न कुर्युरित्यर्थः । एवञ्च मरणे । 'यथा बालं पुरस्कृत्य यज्ञोपवी-
 तान्यपसलानि कृत्वा तीर्थमवतीर्थ्य सकृन्निमज्ज्य प्रेतार्थमुदक-
 मुत्सृज्य तत एवोत्तीर्थ्याचामन्ति' इति बौधायनवचने । यथा
 बालं पुरस्कृत्येत्यस्योत्तीर्थ्येत्यनेन सम्बन्धः न तु अवतीर्थ्ये-
 त्यनेन तत्र हृदपुरःसरोक्तत्वात् । ततश्च जलादुत्थानं बाल-
 पुरःसरमेवेति हारलता । अपसलानि अपसव्यानीत्यर्थः ।
 अतएव अस्नादेवोदकात् । आतुरे विशेषयति यमः । 'आतुरे
 स्नानमापन्ने दशकृत्वस्वनातुरः । स्नात्वा स्नात्वा सृष्टेः शतं ततः
 शृङ्गेत् स आतुरः' । पैठीनसिः 'मृतं मनसा ध्यायन् दक्षिणा-
 सुखस्त्रीनञ्जलीन् दद्यात् शावप्रभृत्येकादशाहे- विरमेदिति' ।
 त्रीनिति' । प्रेतोपकारार्थम् । एकादश इत्यशौचापगमपरम् ।
 एतद्विरमणं पुत्रातिरिक्तपरम् । 'स्नानञ्चैव महादानं स्वाध्याय-

३१८

शुद्धितत्त्वम् ।

ज्ञान्यतर्पणम् । प्रथमाब्दे न कुर्वीत महागुरुनिपातने' । इति स्कन्दपुराणौयनिषेधेऽन्येति विशेषणात् । पितृतर्पणमिति पाठे पितृपदं प्राप्तपितृलोकपरं तेन च तथैवार्थः । 'पितृयज्ञन्तु निर्वर्त्य मासिके आह एव च । आहं प्रतिरुची चैव माता-पित्रोर्मृतेऽहनि । असपिण्डीकृतं प्रेतमेकोद्दिष्टेन तर्पयेत्' इति जाबालोक्तावपि पितृयज्ञं पितृतर्पणं निर्वर्त्याहरहः क्रियमाणेऽम्बुघटआह इति आहविवेककृतादिभिर्व्याख्यातत्वाच्च ।

अथ शोकापनोदनादि । याज्ञवल्करः । 'कृतोदकान् समुत्तीर्णान् गृह्णादलसंस्थितान् । स्नातानपनुदेयुस्तानिति-हासैः पुरातनैः । मानुष्ये कदलीस्तम्भे निःसारे सारमार्ग-णम् । यः करोति स सम्भूतो जलबुद्बुदसन्निभे । पञ्चधा सम्भृतः कायो यदि पञ्चत्वमागतः । कर्मभिः स्वशरीरोत्प्रे-क्ष्य का परिवेदना । गन्तवी वसुमती नाशमुदधेर्देवतानि च । फेनप्रस्थः कथं नाशं मर्त्यलोको न यास्यति । श्लेष्माशु-दाम्भवैर्मुक्तं प्रेतो भुङ्क्ते यतोऽवशः । अतो न रोदितव्यञ्च क्रिया कार्या विधानतः । इति सञ्चिन्त्य गच्छेयुर्गृहं बाल-पुरःसराः । विदश्य निम्बप्रवाणि नियता द्वारि वेस्मनः । आचम्याथाग्निमुदकं गोमयं गौरसर्षपान् । प्रविशेयुः समा-लभ्य कृत्वाश्मनि पदं शनैः । प्रवेशनादिकं कर्म प्रेतसंस्पर्शना-सपि । इच्छतां तत्क्षणाच्छुद्धिं परेषां स्नानसंयमात्' इति स्नातानिति तर्पणानन्तरं पुनः स्नानविधानार्थम् । तथाच ह्यन्धोगपरिशिष्टम् । 'एवं कृतोदकान् सम्यङ्गृह्णादल-संस्थितान् । आप्नुत्य पुनराचान्तान् वदेयुस्तेऽनुयायिनः' । तर्पणानन्तरं प्रेचेताः । 'ततः स्नानं पुनः कार्यं गृहशीचञ्च कारयेत्' । पञ्चधा सम्भृतः पृथिव्यादिपञ्चभूतात्मकतया निर्मितः पञ्चत्वमागतः पुनः पृथिव्यादिरूपतां प्राप्तिः । विदश्य

शुद्धितत्त्वम् ।

३१६

दन्तैः खण्डयित्वा अग्निस्यर्शो वक्ष्यमाणमन्त्रेण कार्यः ।
 शिलायां पादन्यासोऽपि वक्ष्यमाणमन्त्रेण कार्यः । उक्त-
 प्रवेशनादिकं यत् कर्म तत् प्रेतसंस्पर्शनामपि कार्यं परेषा-
 मसपिण्डानान्तत्क्षणाच्छुद्धिमिच्छतान्तत् स्नानसंयमात्
 स्नानात् प्राणायामात् इति दीपकलिका । शङ्खलिखितौ ।
 'उत्तीर्थ्य प्रेतसृष्टान्युत्सृज्य वासांसि परिधाय इतराणि गृह-
 हारे तस्मै प्रेताय पिण्डं दत्त्वा पश्चाद्दूर्वाप्रवालगोमयमज-
 मग्निं वृषञ्चालभ्य प्रविशन्तो घृतगौरसर्षपैर्मूर्ध्वानमङ्गानि
 चालभेरन् । शस्त्रपाणयो भवेयुर्यथोक्तकालनियमाः' । इति
 आलभ्य स्पृष्ट्वा वैजवापः । 'शमीमालभन्ते शमी पापं शमय-
 त्विति अश्मानमालभन्ते अश्मेव स्थिरो भूयासमिति अग्नि-
 मग्निर्नः शर्म यच्छत्विति ह्योगित्यन्तरा गामजमुपस्पृशन्तः
 क्रीत्वा लब्ध्वा वा प्राप्य गृहमेकान्नमलवणमेकरात्रं दिवा
 भोक्तव्यं त्रिरात्रं कर्मोपरमणमिति' । वृषच्छागयोर्मध्ये स्थित्वा
 ह्योगिति मन्त्रेण द्वावपि स्पृष्टव्यौ गृहं प्राप्य उपवासात्यन्ता-
 शक्तेन क्रीत्वा लब्ध्वा वा एकान्नमलवणं लवणरहितमेक-
 रात्रम् एकाहोरात्रं तत्रापि दिवा भोक्तव्यम् । कर्मोप-
 रमणमङ्गसंवाहनतैलाभ्यङ्गमार्जनादित्यागः । कन्दोगपरि-
 शिष्टम् । 'एवमुक्त्वा व्रजियुस्ते गृहं बालपुरःसराः । स्नाना-
 ग्निस्यर्शनाभ्यासैः शुद्धयुरितरे कृतैः' । एवं शोकापनोदनान्ते
 सपिण्डसगोत्राभ्यां इतरे सर्वे सम्बन्धरहितास्त्रिर्निमज्ज्य वार-
 त्रयमग्निं स्पृष्ट्वा शुद्धा भवन्ति । हारीतः । 'न प्रेतस्पर्शिनो
 ग्रामं प्रविशेयुरानक्षत्रदर्शनाद्रात्री चेदादित्यस्य ब्राह्मणानु-
 मत्या वेति अशक्नौ ब्राह्मणानुमतिं गृहीत्वा प्रविशेयुः' ।
 आश्वलायनः । 'नैतस्यां रात्रावन्नं पचेयुस्त्रिरात्रमक्षारक्षव-
 णान्नाग्निनः स्युर्द्वादशरात्रं महागुरुष्विति' । नान्नं पचेयुरित्यने-

३२०

शुद्धितत्त्वम् ।

नोपवासः सूचितः । 'अघसस्तरे ब्रह्ममनश्नन्तः' इति वक्ष्य-
माणवशिष्टवचनात् त्रिरात्रमिति सपिण्डपरम् । अक्षार-
लवणं क्षारमृत्तिकादिक्कतलवणभिन्नम् । तत्तु सैन्धवं सामुद्रं
च । यथा ब्रह्मपुराणे । 'सैन्धवं लवणञ्चैव यच्च सामुद्रकं
भवेत् । पवित्रे परमे ह्येते प्रत्यक्षेऽपि च नित्यशः' । पृथक्-
तयोपलभ्यमानं लवणं प्रत्यक्षलवणं न तु व्यञ्जनादिसंस्कार-
कम् । संस्कारप्रत्यक्षयोर्भेददर्शनात् । तथा कालिकापुरा-
णम् । 'मरौचं पिप्पलं कोषं जीरकन्तन्तुभं तथा । संस्कारे
च समक्षे च महादेव्यै निवेदयेत्' । तन्तुभः सर्षपः । 'वन-
सुदमे सर्षपे च द्वौ तन्तुभकदम्बकौ' इति अमरकोषात् ।
तन्तुना भातीति तन्तुभ इति टीकापि । महागुरुषु माता-
पितृपतिषु कर्मोपदेशिन्यां देवलः । 'अन्यश्चाङ्गं परान्नञ्च गन्धं
माल्यञ्च मैथुनम् । वर्जयेत् गुरुपाते तु यावत् पूर्णं न
वत्सरः' । पारस्करभाष्ये बृहस्पतिः । 'पितुर्युपरते पुत्रो
मातुःश्चाहान्निवर्त्तते । मातर्यपि च वृत्तायां पितुःश्चाहान्निवर्त्तते
समाम्' । ऋत इति मातुःश्चाहान्निवर्त्तते । अन्यथा
पूर्वाह्नेवैयर्थ्यापत्तेः । समां संवत्सरं यावत् निवर्त्तते अन्य-
श्चाहान्निवर्त्तते शेषः । अन्यश्चाहमपि प्राप्तपितृलोकश्चाहपरम् ।
'प्रमीती पितरौ यस्य देहस्तस्याशुचिर्भवेत् । नापि देवं न
वा पैत्रं यावत् पूर्णं न वत्सरः' । इति देवीपुराणात् । तेन
प्रेतश्चाहान्न निवर्त्तते । तथाच कालिकापुराणम् । 'महा-
गुरुनिपाते तु काम्यं किञ्चिन्न चाचरेत् । आर्त्विज्यं ब्रह्म-
चर्यञ्च आहं देवयुतञ्च यत्' । एतच्च देवपक्षयुतश्चाहवर्जनम्
अमावास्यादिमृताहक्रियमाणसदैवश्चाहैतरपरं सर्वसामञ्ज-
स्यात् । देवक्रियां तथेति देवलीये पाठः । शक्तविषये वशिष्ठः ।
'अघसस्तरे ब्रह्ममनश्नन्त आसीरन्' इति अघसस्तरे उपवेश-

शुद्धितत्त्वम् ।

३२१

नादौ पौठादिनिषेधात् । अघनिमित्तेन कटादिविधानादघ-
सस्तरः कटादिरिति । अशक्तविषये रत्नाकरे विशेषमाहाप-
स्तम्बः । 'भार्याः परमगुरुसंस्थायां चाकालमभोजनं कुर्वी-
रन्निति' । संस्था मरणम् आकालं यत्र काले मरणं भूतं पर-
दिने तत्कालपर्यन्तम् । आदिपुराणे । 'अशौचमध्ये यत्नेन
भोजयेत्तु सगोत्रजान्' । विष्णुपुराणम् । 'शय्यासनोपभोगश्च
सपिण्डानामपीष्यते । अस्थिसञ्चयनादूर्ध्वं संयोगो न तु योषि-
ताम्' । तथा 'दातव्योऽनुदिनं पिण्डः प्रेताय भुवि पार्थिव ।
दिवा च भक्तं भोक्तव्यममांसं मनुजर्षभ' । अत्र सपिण्डानां
पिण्डदानार्हदिवसपर्यन्तममांसभक्षणश्रुतेः । मत्स्यमांसानि न
भक्षयेयुराप्रदानादिति गोतमसूत्रेऽपि आप्रदानादिति पदम्
एकादश्यामयुग्मान् भोजयेन् मांसवदिति कात्यायनसूत्रोक्ता-
द्यश्राद्धीयमांसदानार्हदिनोपलक्षणम् ।

अथ पिण्डोदकादिदानम् । पारस्करः । 'प्रेताय पिण्डं
दत्त्वावनेजनदानं प्रत्यवनेजनेषु नामग्रहणं सृण्वये तां
रात्रिं विहायसि क्षीरोदके निदध्युः । प्रेतात्र स्नाहि पिब
चेदं क्षीरमिति उच्चार्येति' । अत्र दानशब्देन पिण्ड-
दानमुक्तं बहुवचनात् । तेनावनेजनपिण्डदानप्रत्यवनेजनेषु
नामग्रहणं नाम गृहीत्वा प्रेतपिण्डानुष्ठानं समाप्य
विहायसि रात्रौ क्षीरोदके । प्रेतात्र स्नाहि पिब चेदं
क्षीरमित्युच्चार्य निदध्युः । आदिपुराणे । प्रथमेऽहनि यो
दद्यात् प्रेतायान्नं समाहितः । यन्नान्नवसु चान्येषु स
एव प्रददात्यपि । सृण्वयं भाण्डमादाय नवं स्नातः सुसं-
यतः । लगुडं सर्वदोषघ्नं गृहीत्वा तीयमानयेत् । ततश्चोत्त-
रपूर्वस्यामग्निं प्रज्वालयेद्दिशि । तण्डुलप्रसृतीं तत्र प्रक्षाल्य
द्विःपचेत् स्वयम् । सपवित्रैस्त्रिलैर्मिश्रां केशकीटविवर्जिताम् ।

३२२

शुद्धितत्त्वम्।

हारोपान्ते ततः क्षिप्वा शुद्धां वा गौरमृत्तिकां तत्पृष्ठे प्रस्तरे
 दर्भान् यास्याग्रान् देशसम्भवान् । ततोऽवनेजनं दद्यात्
 संस्मरन् गोवनामनी । तिलसर्पिर्मधुक्षीरेः सञ्चितं तप्तमेव
 हि । दद्यात् प्रेताय पिण्डन्तु दक्षिणाभिमुखस्थितः । फल-
 मूलगुडक्षीरतिलमिश्रन्तु कुत्रचित् । अर्घ्यैः पुष्पैस्तथा धूपै-
 र्दीपैस्तोयैः सुशीतलैः । ऊर्णातन्तुमयैः शुद्धैर्वासोभिः पिण्ड-
 मर्चयेत् । प्रयाति यावदाकाशं पिण्डाद्वाष्पमयी शिखा ।
 तावत्तत्सम्पुष्टस्तिष्ठेत् सर्वं तोये ततः क्षिपेत् । दिवसे दिवसे
 देयः पिण्ड एव क्रमेण तु । सद्यःशीचेऽपि दातव्याः सर्वेऽपि
 युगपत्तथा । ब्राह्मणशीचे प्रदातव्याः प्रथमे त्वेक एव हि ।
 द्वितीयेऽहनि चत्वारस्तृतीये पञ्च चैव हि । एकस्तोयाञ्जलि-
 स्त्वेवं पात्रमेकञ्च दीयते । द्वितीये द्वौ तृतीये त्रौन् चतुर्थे
 चतुरस्तथा । पञ्चमे पञ्च षष्ठे षट् सप्तमे सप्त एव हि ।
 अष्टमेऽष्टौ च नवमे नव वै दशमे दश । येन स्युः पञ्चपञ्चा-
 शत्तृतीयस्याञ्जलयः क्रमात् । तोयपात्राणि तावन्ति संयुक्तानि
 तिलादिभिः । अत्राहः पदमहोरात्रपरम् । 'राहुदर्शनसंक्रान्ति-
 विवाहात्ययवृद्धिषु । स्नानदानादिकं कुर्युर्निशिकाम्यव्रतेशु
 च' । इति देवलवचनेऽत्ययै मरणे रात्रावपि स्नानदाना-
 दिविधानात् एवमेव आहविवेकः । अतएव प्रागुक्तविष्णुपुराण-
 वचनेऽनुदिनमिति दिवा चेति पृथगुक्तं पिण्डदानेऽनुदिन-
 मित्यत्र दिनपदश्रवणात् दिनपदमहोरात्रपरम् । भोजने
 दिवा चेति दिवापदं सूर्यावच्छिन्नकालपरम् । अन्यथा पूर्व-
 त्वापि तथात्वे दिवाचेति पौनरुक्त्यापत्तेः । एतेन दिवसपद-
 श्रवणाद्वात्रौ पिण्डो न देय इति मैथिलमतमपास्तम् । अत्र
 दशमदिनपर्यन्तं प्रतिदिनं पिण्डदानाभिधानात् । 'पिण्ड-
 यज्ञाहता देयं प्रेतायान्नं दिनत्रयम्' इति याज्ञवल्क्यीयदिन-

शुद्धितत्त्वम् ।

३२३

त्रयपिण्डदानावश्यकार्थमङ्गास्तृश्रत्वेऽपि तद्दानार्थञ्चेति हार-
लतादयः । स एवेत्येवकारात् प्रथमपिण्डदातैव दशपिण्ड-
दानेऽधिकारीति दर्शयति । तेन पुत्रादेरसन्निधाने यद्यन्येन
प्रथमपिण्डो दत्तस्तदा दशाहमध्ये पुत्रादेरागमनेऽपि दाशा-
हिकपिण्डदानं पुत्रादिना न कर्त्तव्यम् । पुत्रादिस्तु दाशा-
हिकपिण्डदानातिरिक्तं सर्वं कुर्यादिति हारलता । आश्व-
लायनगृह्यपरिशिष्टम् । ‘असगोत्रः सगोत्रो वा यदि स्त्री
यदि वा पुमान् । प्रथमेऽहनि यो दद्यात् स दशाहं समाप-
येत्’ । न च भरतदत्तपिण्डानन्तरम् । ‘ऐङ्गदं वदरोन्मिश्रं
पिण्याकं दर्भसम्भवे । न्युप्य पिण्डांस्ततो राम इदं वचनम-
ब्रवीत् । इदं भुङ्क्ते महाराज प्रीतो यदशना वयम् । यदन्नः
पुरुषो राजंस्तदन्नाः पितृदेवताः’ इति अयोध्याकाण्डे राम-
पिण्डदानश्रवणात् प्रधानाधिकारिणापि दशपिण्डा देया इति
वाच्यम् । तत्र भरतश्चेत् प्रतीतः स्याद्राज्यं प्राप्येदमुत्तमम् ।
‘प्रेतार्थं यत् स मे दद्यात् मा मां तत् ससुपागमत्’ इति अयो-
ध्याकाण्डे दशरथशापात् तत्कृतमकृतमिति पुनस्तत्करणम् ।
न च प्रतीत्यभावात् कथं तस्य दानमिति वाच्यं ‘कुरु प्रसादं
धर्मज्ञ केकया भरतस्य च । सपुत्रां त्वां त्यजामीह यदुक्ता
केकयी त्वया’ । इति सीतापरीक्षानन्तरं रघुनाथप्रार्थनानु-
पपत्तेः अन्यत्र तु स एवेत्येवकारेणान्याधिकारिनिवृत्तेः । प्रद-
दात्यपीत्यत्रापिरवधारणे अव्ययानामनेकार्थत्वात् । अतएवा-
पिशब्दो बहुतरेषु एव आदिपुराणवचनेषु निश्चयार्थ इति
हारलता तेन स एव दद्यादित्येवार्थः । पुत्राद्यसन्निधाने
येन सगोत्रादिना दाहसंस्कारः कृतस्तेनैव दाशाहादिकं
प्रेतकर्म कर्त्तव्यम् । प्रागुक्तासगोत्रः सगोत्रो वेति वचना-
दिति प्रथमाध्याये सिताक्षरा अतएव कर्मोपदेशिन्यां वायु-

३२४

शुद्धितत्त्वम् ।

पुराणम् । असगोत्रः सगोत्रो वा यदि स्त्री यदि वा पुमान् ।
यश्चाग्निदाता प्रेतस्य पिण्डं दद्यात् स एव हि' । अत्रेदं
बीजम् आरब्धपूर्वक्रियस्य तत्समापनस्यावश्यकत्वमिति वक्ष्य-
माणाधिकारिप्रकरणस्थविष्णुपुराणवचनात् । एवञ्च हार-
लतायां येन प्रथमः पिण्डोदत्त इति तत्प्रतिपादकवचनञ्च
पूर्वक्रियारम्भप्रदर्शनपरम् । किञ्च 'सपिण्डीकरणान्तानि
यानि आद्यानि षोडश । पृथक्नैव सुताः कुर्युः पृथगद्रव्या
अपि क्वचित्' । इति लघुहारीतेन मध्यक्रियायाः पृथङ्नि-
षेधात् सुतरां पूर्वक्रियासु तथैव युक्तत्वाच्च अन्यथा सर्वपुत्राणा-
मपि प्रत्येकं पिण्डदानापत्तेः अत्रेदं बीजं पूर्वक्रियाया आति-
वाहिकदेहत्यागोत्तरदेहान्तरजननं मध्यक्रियाया अपि प्रेतत्व-
परिहारोत्तरदेहान्तरजननं ततश्चैकदैव तस्मिन्ही पुनस्तत्करणं
वचनाभावेऽनर्थकम् । तथाच विष्णुधर्मोत्तरम् । 'तत्क्षणा-
देव गृह्णाति शरीरमातिवाहिकम् । ऊर्ध्वं व्रजन्ति भूतानि
त्रौण्यस्मात्तस्य विग्रहात्' । त्रौणि भूतानि तेजो वायुकाशानि
पृथिवी जले तु अधोगच्छतः । तत्क्षणात् मृत्युक्षणात् ।
तथा 'आतिवाहिकसंज्ञोऽसौ देहो भवति भार्गव । केवलं
तन्मनुष्याणां नान्येषां प्राणिनां क्वचित्' । तथा 'प्रेतपिण्डे-
स्तथा दत्तैर्देहमाप्नोति भार्गव । भोगदेहमिति प्रोक्तं क्रमा-
देव न संशयः । प्रेतपिण्डा न दीयन्ते यस्य तस्य विमो-
क्षणम् । श्लाशानिकेभ्यो देवेभ्य आकल्पं नैव विद्यते । तत्रास्य
यातना घोरा शीतवातातपोद्भवाः । ततः सपिण्डीकरणे
बान्धवैः स कृते नरः । पूर्णं संवत्सरे देहमतोऽन्यं प्रतिपद्यते ।
ततः स नरके याति स्वर्गं वा स्वेन कर्मणा' । तथाच वायु-
पुराणं पूरकेण तु पिण्डेन देहो निष्पाद्यते यतः । 'कृतस्य
करणायोगात् पुनर्नावर्त्तयेत् क्रियाम्' । अतएवातिवाहिक-

गुह्यतत्त्वम् ।

३२५

देहपरित्यागाय तत्कालीनकर्मासमर्थपुत्रसत्त्वेऽपि अन्येन दाहादि क्रियते । ‘पितृमातृसपिण्डेस्तु समानसलिलैर्नृप । संघातान्तर्गतैर्वापि राज्ञा वा धनहारिणा । पूर्वाः क्रियास्तु कर्त्तव्याः पुत्राद्यैरेव चोत्तराः’ । इति विष्णुपुराणवचनेन ‘मित्रबन्धुसपिण्डेभ्यः स्त्रीकुमारौभ्य एव च । दद्याद्दे मासिकं श्राद्धं संवत्सरमतोऽन्यथा’ । इत्यापस्तम्बवचनेन च सामान्यबोऽधिकारप्रतिपादनात् । अतएव पित्रादेरौर्द्धुदेहिकस्य कर्मणोऽसंस्कृतपुत्रस्य करणे प्राशस्त्यमाहापस्तम्बः । ‘असंस्कृतः सुतः श्रेष्ठो नापरो वेदपारगः’ इति । अतएव बृहस्पतिः । ‘सवर्णाजोऽप्यगुणवान्नाहं स्यात् पैतृकधने । तत्पिण्डदाः श्रोत्रिया ये तेषान्तदभिधीयते’ । अगुणवान् गुणविरोधि-दोषवान् । ‘तस्मादृश्यमभावश्च तदन्यत्वं तदव्ययता । अप्राशस्त्यं विरोधश्च नजर्थाः षट् प्रकीर्त्तिताः’ । शङ्खापस्तम्बी । ‘अपपात्रितस्य रिक्तपिण्डोदकानि निवर्त्तन्ते’ इति । अपपात्रितः अस्तुत्कटदोषेण ज्ञातिभिर्भिन्नोदकीकृतः पितृधनान्यनधिकारीत्यर्थः । एवञ्च ‘पृच्छेपु विद्यमानेषु नान्यत् वै कारयेत् स्वधाम्’ । इति ऋष्यशृङ्गवचनं समर्थपुत्रपरं विदेशस्थादिना वर्षाभ्यन्तरकर्मासमर्थज्येष्ठपुत्रसत्त्वेऽपि प्रेतत्वपरिहाराय कनिष्ठपुत्रेण षोडशश्राद्धं कर्त्तुमुचितम् । ‘मृते पितरि पुत्रेण क्रिया कार्या विधानतः । वहवः सूर्यदा पुत्राः पितुरेकत्र वासिनः । सर्वेष्वन्तु मतं कृत्वा ज्येष्ठेनैव तु यत् कृतम् । द्रव्येण चाभिभक्तेन सर्वैरेव कृतं भवेत्’ । इति मत्स्यैचिवचनमपि समर्थज्येष्ठपरम् । अन्यथा तत्प्रेतत्वप्रतिवध्यकालान्तरासहिष्णुवृद्धिकर्म न स्यात् । ज्येष्ठश्चात्र ‘ज्येष्ठेन जातमात्रेण पुत्री भवति मानवः । पितृणामनृणश्चैव स तस्मान्नव्यमर्हति’ इति मनूक्तेः सर्वाद्योत्पन्नत्वमात्रं न ग्राह्यम् । तस्य विभाग-

३२६

शुद्धितत्त्वम् ।

प्रकरणीयत्वात् । किन्तु आपेक्षिकज्येष्ठपरम् । ‘यमयोश्चैकग-
 र्भेषु जन्मतो ज्येष्ठता स्मृता’ इति मनुवचनानन्तरात् । ‘ज्येष्ठ’
 गुणवयः कृतम् । इति मिताक्षराधृतदक्षवचनाच्च । अतएव
 ‘नवश्राद्धं सपिण्डत्वं श्राद्धान्यपि च षोडश । एकेनैव तु
 कार्याणि संविभक्तधनेष्वपि’ इति मिताक्षराधृत दक्षवचने-
 ऽविशेषादेकेनैवेत्युक्तं पिण्डमिश्रणमिति अतः षोडशान्तर्गत-
 सपिण्डीकरणश्राद्धेन न पौनरुक्तमिति । एतेन ‘श्राद्धानि
 षोडशापाद्य विदधीत सपिण्डताम्’ इत्यपि व्याख्यातम् अत-
 एव श्रीरामाप्रसिद्धया भरतेनाद्यादिश्राद्धं कृतम् । तथाच
 अयोध्याकाण्डे ‘समतीते दशाहे तु कृतशौचो विधानतः ।
 चक्रे द्वादशिकं श्राद्धं त्रयोदशिकमेव च । ददौ चोद्दिश्य
 पितरं ब्राह्मणेभ्यो धनन्तथा । महार्हाणि च रत्नानि गाञ्च
 वाहनमेव च । यानानि दासीर्दासांश्च वैश्यानि सुमहान्ति
 च । भूषणानि च मुख्यानि राज्ञस्तस्यैर्द्विदेहिके । चयो-
 दशाहेऽतीते तु कृते चानन्तरे विधौ । समेता मन्त्रिणः सर्वे
 भरतं वाक्यमब्रुवन् । गतः स नृपतिः स्वर्गं भर्तासीद् यो
 गुरुश्च नः । प्रत्राज्य दयितं पुत्रं रामं लक्ष्मणमेव च । त्वमद्य
 भव नो राजा धर्मतो नृवरात्मजः’ । दशाहपदमशौचकालोप-
 लक्षणम् । द्वादशिकं द्वादशाहेन वृत्तं त्रयोदशाहविधेय-
 मित्यर्थः । एवं त्रयोदशिकं चतुर्दशाहविधेयमित्यर्थः । इति
 श्राद्धविवेकः । न च यत्र देशान्तरादावनुमिति द्रव्यसंश्लेष-
 योरभावस्तत्र पृथगेव श्राद्धम् अन्यथा प्रत्यवायपरिहारो न
 स्यादिति श्राद्धविवेकोक्तं युक्तमिति वाच्यम् । ‘पृथङ् नैव
 स्मृताः कुर्युः पृथग्द्रव्या अपि क्वचित्’ । इत्युपदेशात् पृथक्-
 करणनिषेधात् सर्वेष्वन्तु मतं कृत्वेति द्रव्येण चाविभक्तेन
 इति विशेषणद्वयश्रवणात् पृथक्करणविध्यन्तरकल्पनापत्तेः ।

शुद्धितत्त्वम् ।

३२७

शुद्धिप्रकाशे । 'निवर्त्तयति यो मोहात् क्रियामन्यनिवर्त्तिताम् । विधिघ्नस्तेन भवति पितृहा चोपजायते । तस्मात् प्रेतक्रिया येन केनापि च कृता यदि । न तां निवर्त्तयेत् प्राज्ञः सतां धर्ममनुस्मरन्' इति वायुपुराणाच्च । सर्वेषान्तु मतं कृत्वेति द्रव्येण च अविभक्तेन इत्यनेन तेषामेतदेव कर्त्तव्यमिति प्रतिपादितं न तु तदभावे पृथक्करणविधायकं विध्यन्तरकल्पनापत्तेः । अतएव संवत्सरप्रदीपे हलायुधेनोक्तम् । यदि वैमात्रेयकनिष्ठोऽग्निमान् ज्येष्ठो निरग्निस्तदा कनिष्ठेन दर्शदवाक् सपिण्डने कृते सपिण्डनं ज्येष्ठेन पुनर्नावर्त्तनीयं पृथक्करणनिषेधात् । एवं कनिष्ठस्य वृद्धिनिपातेऽपि बोध्यम् इति आहचिन्तामणौ एतच्च विदेशस्थज्येष्ठे तु बोध्यं स्वदेशस्थे तु ज्येष्ठे तद्वारेवापकृष्य कनिष्ठेन कर्म कर्त्तव्यमिति । शुद्धिचिन्तामणौ तु यद्यपि 'अकृत्वा प्रेतकार्याणि प्रेतस्य धनहारकः । वर्णानां यद् बधे प्रोक्तस्तद् व्रतं नियतञ्चरेत्' इति शङ्खवचनेन सर्वेषामेव पुत्राणां प्रेतश्राद्धकर्त्तृत्वमायाति । तथापि स्त्रीयस्त्रीयधनदानद्वारा तत्कारयितव्यम् । सर्वेषान्तु मतं कृत्वेति लघुहारीतमरौचिवचनादित्युक्तम् । प्रत्यब्दिक एव पृथक्करणमाह लघुहारीतः । 'प्रत्यब्दमितरे कुर्युरेकोदिष्टं पृथक्सुताः । यावन्त एव पुत्राः स्युः पिण्डास्तावन्त एव हि' । इतरे प्रेतकार्यधिकार्यन्ये । 'कन्या वैवाहिकश्चैव प्रेतकार्यञ्च यत् कृतम् । तत् सर्वं हि प्रदातव्यं कुटुम्बेन कृतं प्रभोः' इति कात्यायनवचने प्रभोरिति कर्त्तरि षष्ठी । तेन प्रभुणा दातव्यमित्यर्थः । इति रत्नाकरव्याख्यानात्तद्व्ययितव्यद्रव्यदानादपि प्रत्यवायानुदयः । किञ्च पृथङ् नैव सुताः कुर्युरिति श्रवणात् सर्वेषान्तु मतं कृत्वेत्यत्र सर्वेषां पुत्राणां फलायेदं श्राद्धं भवत्विति मतं ज्ञानं कृत्वेति व्याख्या-

३२८

शुद्धितत्त्वम् ।

नाच्च । येन च षोडशश्राद्धं क्रियते तेन सर्वसुतार्थाभिसम्भ-
 नेन तत् क्रियते इति प्रतिनिधिनापि तत्करणं सिद्धम् । न च
 यस्य प्रतिनिधिस्तेन तदकरणे कथं प्रतिनिधित्वमिति वाच्यम् ।
 'ऋत्विक् च त्रिविधो दृष्टः पूर्वैर्जुष्टः स्वयं कृतः । यदृच्छया च
 यः कुर्यादात्विज्यं प्रीतिपूर्वकम्' इति विवादरत्नाकरकल्प-
 तरत्नाकरविवादचिन्तामणिशान्तिदीपिकाधृत-नारदयज्ञपा-
 र्श्ववचने यजमानेन प्रतिनिधित्वाकरणेऽपि तृतीया ऋत्विजः
 स्वेच्छया तद्दर्शनात् । पूर्वेः पूर्वपुरुषैः । तद्देदप्रयोजनन्तु
 तत्रैव । 'ऋत्विक्याज्यमदृष्टं यत्त्यजेदनपकारिणम् । अदृष्टम्
 ऋत्विजं याज्यो विनेयौ तावुभावपि । क्रमागतेष्वेष धर्मो
 हतेष्वृत्विक्षु च स्वयम् । यादृच्छिके तु संयोज्ये तत्त्यागे
 नास्ति किल्बिषम्' । विनेयौ दण्डनीयौ संयोज्ये प्रेषणाहे
 ऋत्विजि । 'परिसमूहोपलिप्योल्लिख्योद्धृत्याभुक्ष्याग्निमुप-
 समाधाय दक्षिणतो ब्रह्मासनमास्तौर्य्यं प्रणोय परिस्तौर्य्यार्थ-
 वदासाय पवित्रे कृत्वा प्रोक्षणीञ्च संस्तृत्यार्थवत् प्रोक्ष्य निरु-
 प्याज्यमधित्रित्य पर्य्यग्निं कुर्यात् । सुवं प्रतप्य दर्भेञ्च
 संसृज्याभुक्ष्य पुनः प्रतप्य निदध्यादाज्यमुदास्योत्थाप्य उत्-
 पूयावेक्ष्य प्रोक्षणीः पूर्ववदुपयमन् कुशानादाय समिधोऽप्या-
 ध्याय पर्य्युक्ष्य जुहुयात्' इति कात्यायनेन परिसमूहोपक्रम-
 पूर्णहोमपर्यन्तव्यापारकलापस्यैककर्तृत्वप्राप्तावपि आरब्धक-
 र्मर्त्विजि विनष्टे ऋत्विगन्तरेण तत् कर्मसमापनोक्तेः । तथाच
 याज्ञवल्क्यः । 'जिभं त्यजेयुर्निर्लाभमशक्तोऽन्येन कारयेत् ।
 अनेन विधिराख्यात ऋत्विक्कर्षककर्मिणाम्' । जिभं कुटि-
 लम् । व्यक्तमाहतुः शङ्खलिखितौ । तत्र चेदनुप्राप्ते सबने
 ऋत्विङ् म्रियते तत्र किं कार्यमिति जिज्ञासायां तस्य
 सगोत्रः शिष्यो वा तत्कार्यमनुपूरयेत् तथा चेदबान्यवस्ततो-

शुद्धितत्त्वम् ।

३२९

ऽन्यमृत्विजं वृणुयादिति । अनुप्राप्ते प्रारब्धे सवने यज्ञे एवं प्रेतकार्यं प्रथमाधिकारिणाशेऽन्येनापि शेषः समाप्यते । तदाह बृहस्पतिः । ‘एवं क्रियाप्रवृत्तानां यदि कश्चिद्विपद्यते । तद्वन्धुना क्रिया कार्या सर्वैर्वा सहकारिभिः’ । न च सत्रे यथैकापचारे कर्ममध्ये एव सर्वेषां समुत्थानं कर्मसमापनमुक्तं तद्वदवापीति वाच्यम् । तत्र फलस्य स्वर्गतत्वेन तथा सिद्धान्तितम् । अत्र परगतत्वेऽन्येनापि तस्य समापनमिति । अथ द्वितीयाधिकारिणापि प्रेतत्वपरिहाराय कर्मादिकालविहितसङ्कल्पं विना कथं क्रियत इति चेन्न षोडशश्रद्धानां नित्यत्वात् प्रथमाधिकारिणापि तत्सङ्कल्पो न क्रियते । तन्नित्यत्वमाह छन्दोगपरिशिष्टं ‘ध्रुवाणि तु प्रकुर्वीत प्रमीताहनि सर्वदा । द्वादशप्रतिमास्यानि आद्यं पाण्मासिके तथा । सपिण्डीकरणञ्चैव इत्येतत् आह षोडशम्’ । ध्रुवाणि आवश्यकानि । अतोऽशौचादिशङ्कया भविष्यद्दुर्गोत्सवादी यद्वरणादिकं करोति तत् कर्मकाले स्वयं प्रवर्त्तनवत् प्रवर्त्तनाय न तु तत एव तदानीं प्रतिनिधिर्भवति किन्तु कर्मकाले स्वयमेव तदर्थं कर्म क्रियते । अन्यथा शुचि तत्कालजीवित्वेनाधिकारात् तदानीमधिकाराभावात् कथं प्रतिनिधिविधानमिति । अतएव शङ्कलिखितौ । ‘रात्रां पुरोहितोऽमात्यः शुद्धिस्तस्य तदाश्रया’ । नृपतीनामात्मप्रतिनिधीभूतपुरोहितस्तेन नृपतेरशौचे पुरोहितस्याशौचाभावात् नृपतेः शान्तिकपौष्टिकं पुरोहितेन स्वीयशुद्ध्या कर्त्तव्यमिति हारलताप्रभृतयः । एवञ्चेदशौचिद्रव्येण कथं क्रियत इति चेत् शुद्धिकाले तदर्थोपकल्पितत्वात् । तथाच यमः । ‘देवे भये समुत्पन्ने प्रधानाङ्गे विनाशिते । पूर्वसङ्कल्पिते चैव तस्मिन्नाशौचमिष्यते’ । सप्ताङ्गराज्यस्य प्रधानाङ्गे राजनि । किञ्चि-

३३०

शुद्धितत्त्वम् ।

हर्मकार्यं पुष्करिण्यादिकर्तुं पूर्वाशीचकाले धने सङ्कल्पिते
 पृथक्कृते तस्मिन् कार्ये अशीचं नास्तीति हारलताकृत्य-
 चिन्तामणी । 'विवाहोत्सवयज्ञेषु अन्तरासृतसूतके । पूर्व-
 सङ्कल्पितं द्रव्यं दीयमानं न दुष्यति' इति । प्रथमपिण्ड-
 कर्तृत्वनियमवत् प्रथमपिण्डद्रव्यनियममप्याह शुनःपुच्छः ।
 'प्रथमेऽहनि यद्रव्यं तदेव स्यात् दशाहिकम्' । विष्णुः । 'याव-
 दशीचं तावत् प्रेतस्योदकं पिण्डमेकञ्च दद्युः' इति यावत्ताव-
 दित्यभिधानादशीचाभ्यन्तर एव पिण्डदानं मुख्यम् । दैवा-
 त्तदकरणे मध्यमक्रिया पूर्वकाले कर्तव्यम् । 'यद्वागामि-
 क्रियामुख्यकालस्याप्यन्तरालवत् । गौणकालत्वमिच्छन्ति
 केचित् प्राक्तनकर्मणि' इति वचनेन प्राप्तपूर्वक्रियस्यैव मध्यम-
 क्रियाभागित्वावगमात् अन्तरालवत् मध्यकालस्यैव । तत्रा-
 गामिक्रियामुख्यकालस्य गौणकालत्वमिति यद्वेति पक्षा-
 न्तरम् । जलसमीपे पिण्डदानमुक्तं स्वल्पमत्यपराणे । 'प्रेती-
 भूतस्य सततं भुवि पिण्डं जलन्तथा । सतिलं सकुशं दद्यात्
 वहिर्जलसमीपतः' । ऋष्यशृङ्गः । 'न स्वधाञ्च प्रयुञ्जीत प्रेत-
 पिण्डे दशाहिके । भाषेतैतच्च वै पिण्डं यज्ञदत्तस्य पूर-
 कम् । यस्य न ज्ञायते गोत्रं पिण्डं नाम्ना तु निर्वपेत्' ।
 दाशाहिकग्रहणादेकादशाहिकश्चाह स्वधाप्रयोगोऽस्तीति
 हारलता । न च स्वधापितृहविर्दानमन्त्र इति प्रेतस्य पितृ-
 त्वाभावात् कथं तत् प्रयोग इति वाच्यम् । पित्रे तु द्विगुणा
 दर्भा इतिवत् पितृपदस्य प्रमीतवचनत्वात् । 'दानं प्रति-
 ग्रहो होमः स्वाधायः पितृकर्म च । प्रेतपिण्डक्रियावर्जं
 सूतके विनिवर्त्तते' इति शङ्खवचनेनापि पितृपदस्य सृतमात्र-
 परत्वेन प्रेतपिण्डस्यापि पितृकर्मकत्वात्तद्वर्जनमुपपद्यते ।
 अन्यथा प्रसक्त्यभावात् प्रतिप्रसववैफल्यपत्तेः । 'पितृयज्ञन्तु

शुद्धितत्त्वम् ।

३३१

निर्वृत्य मासिके आह एव च' । इति पूर्वोक्तप्रेततर्पणेऽपि
 पितृयज्ञपदप्रयोगाच्च । एवञ्च प्रेतश्चाहोऽपि भूस्वामिपितृभ्यो-
 ऽग्रदानं सङ्गच्छते । अत्र भाषणविधावेतत् पिण्डं यज्ञदत्तस्य
 पूरकमित्येतावन्मात्रश्रुतेः । शिरःपूरकमित्यादिविशेषोल्लेखे
 प्रमाणं नास्ति । न च 'शिरस्त्वाद्येन पिण्डेन प्रेतस्य
 क्रियते सदा । द्वितीयेन तु कर्णाक्षिनासिकान्तु समासतः ।
 गलांसभुजवचांसि तृतीयेन यथा क्रमात् । चतुर्थेन तु
 पिण्डेन नाभिलिङ्गगुदानि च । जानुजङ्घे तथा पादौ
 पञ्चमेन तु सर्वदा । सर्वमर्माणि षष्ठेन सप्तमेन तु नाड्यः ।
 दन्तलोमाद्यष्टमेन वीर्यञ्च नवमेन तु । दशमेन च पूर्णत्वं
 तप्तताक्षुद्विपर्ययः' । इति ब्रह्मकूर्मपुराणीयं वाक्यं प्रमाण-
 मिति वाच्यम् । तद्वाक्येन तत्तत्पिण्डदानात्तत्तदङ्गकरणं
 विधीयते । भाषतेतिवदुल्लेखानभिधानात् पूर्णत्वं तप्तताक्षु-
 द्विपर्ययः इत्यत्र पूर्णत्वपूरणानुपत्तेः । पूर्णत्वपूरणयोरकार्य-
 त्वात् । 'प्रेतपिण्डेस्तदा दत्तैर्देहमाप्नोति भार्गव' । इति
 विष्णुधर्मोत्तरे देहश्रुतेर्देहपूरकमिति प्रयोगापत्तेश्च । तस्मात्
 अनिरुद्धभट्टाद्युक्तः केवलपूरकप्रयोगो युक्त इति । तोयैः सुशी-
 तक्षैरित्युक्तस्य विधानमाह 'एकस्तोयाञ्जलिस्त्वेवं पात्रमेकञ्च
 दीयते' । इत्यादिना लाघवान्नष्टग्रदानं तत्र तोयाञ्जलेरुप-
 स्थितत्वात् लाघवात् पात्रमपि तदाधाररूपं न तु भिन्नम् ।
 अतएव तोयपात्राणि तावन्तीत्युपसंहृतम् । तदप्याममृत्स-
 यम् 'अशुच्यशुचिना दत्तमाममृच्छकलादिना' इति वक्ष्य-
 माणात् । आममृच्छकलादिना अशुचिद्रव्यमित्यर्थः तद्दानञ्च
 तूष्णीमाह शनःपुच्छः । 'फलमूलैश्च पयसा शाकैश्च न च गुडै-
 न च । तिलमिश्रन्तु दर्भेषु पिण्डं दक्षिणतो हरेत् । द्वार-
 देशे प्रदातव्यं देवतायतनेषु वा । तूष्णीं प्रसेकं पुष्पञ्च धूप-

३३२

शुद्धितत्त्वम् ।

दौपौ तथैव च' । तूष्णीं प्रसेकमिति सृग्मयामपात्रस्थजला-
 ज्जलिमिति । हारलता । तेन प्रसेकपदं कर्मणि व्युत्पन्नम् ।
 अतोऽत्र मैथिलानां वाक्यरचना हेयैव । यदप्युक्तम् इदञ्च
 पात्राज्जल्योर्दानम् । पिण्डोपरि एव द्वितीये द्वावित्यादिना
 तत्पिण्डस्यैवाधारत्वकथनात् । न च द्वितीयदिनादिकं तदर्थः
 सद्यःशौचादौ बाधापत्तेः सद्यस्त्यहाशौचे पिण्डदानस्याप्युप-
 क्रमादिति वाचस्पतिमिश्रेण तदयुक्तं द्वितीय इत्यादावपि
 द्वितीयेऽहनि चत्वार इति पूर्ववचनेऽहश्च्युतेः तत्रापि विशेष-
 त्वेन तदेवान्वेति न तु पिण्डे इति । अतएव मिताचरायां
 प्रचेताः । 'दिने दिनेऽञ्जलीन् पूर्णान् प्रदद्यात् प्रेतकार-
 णात् । तावद्बृद्धिश्च कर्त्तव्या यावत् पिण्डः समाप्यते' ।
 प्रतिदिनमञ्जलीनाञ्च वृद्धिः कार्य्या यावद्दशमः पिण्डः समाप्यते
 इति अतएव भुवि पिण्डं जलन्तथा इति मात्स्यं प्रागुक्तमपि ।
 तथाच प्रचेताः । 'गृहद्वारे तस्मै प्रेताय पिण्डं निर्वपेयुः
 भूमौ मात्स्यं पानीयं दौपञ्चोपलिप्तायामिति' सद्यस्त्यहा-
 शौचयोस्त्वगत्या पिण्डदानसङ्कलनवन्नृग्मयपात्रदानसङ्कलन-
 मिति यदप्युक्तं पुष्पादिदानसाहचर्यादूर्णाकृतवस्त्रदानं तूष्णी-
 मिति । तत्र 'पिण्डयज्ञावृतादेयं प्रेतायान्नं दिनत्रयम्' ।
 इति याज्ञवल्क्येन पिण्डपितृयज्ञेति कर्त्तव्यतातिदेशात् पिण्ड-
 पितृयज्ञे च गोभिलेन 'सद्येनैव पाणिना सूत्रतन्तुं गृहीत्वा
 अपसलविपूर्वस्यां कर्ष्वां पिण्डे निदध्यात् पितुर्नाम गृहीत्वा
 असावेतत्ते वासो ये चात्र त्वामनुयांश्च त्वमनु तस्मै ते स्वधा'
 इति सूत्रन्तन्तुषु वासः प्रयोगात् वाक्यरचनाविधानाच्च नववस्त्र-
 दानं नवा तूष्णीमिति । अपसलवि पितृतीर्थेन । तथाच
 भट्टभाष्ये गृह्यान्तरम् । 'तर्जन्यङ्गुष्ठयोरन्तरा अपसलवि
 अपसव्यं वा तेन पितृभ्यो निदधातीति' । अतएव मनुना पितृ-

शुद्धितत्त्वम् ।

३३३

नीये' अपसव्यपदमुक्तम् । यथा 'प्राचीनावीतिना सम्यगप-
 सव्यमतन्द्रिणा' इति मरीचिः । 'प्रेतपिण्ड' वह्निर्दद्यात्
 मन्त्रदर्भविवर्जितम् । प्रागुदीच्यां चरुं कृत्वा सुस्नातः सुस-
 माहितः । अत्र दर्भमन्त्रवर्जनं चूडाकरणकालेऽप्युक्तचूडा-
 नाम् उपनयनकालेऽप्युक्तोपनयनानां कन्यानामनूढानाञ्च ।
 अन्यथा हारीतवचने तत्तद्भेदोपादानं व्यर्थं स्यात् । असं-
 स्कारा इत्यनेनैव सर्वेषां प्राप्तत्वात् । यथा हारीतः । 'अकृत-
 चूड ये बाला ये च गर्भादिनिःसृताः । सृता ये चाप्यसं-
 स्कारास्तेषां भूमौ प्रदीयते' । ये च गर्भादिनिःसृता इति
 स्नेहाहाहपक्षे । यमः 'अनूढा या सृता कन्या तस्या भूमौ
 प्रदीयते' पिण्ड इति शेषः । अन्येष्वन्तु आदिपुराणादर्भेषु
 एव । अत्रापि वेदीकरणमाह ब्रह्मपुराणम् । 'ततो दक्षिण-
 पूर्वस्यां कार्या वेदी तथा दिशि । हस्तमात्रा तथा भूमेश्च-
 तुरङ्गुलमुच्छ्रिताः । पिण्डनिर्वपणार्थाय रमणीया विशेषतः' ।
 प्रागुदीच्यामैशान्याचरुं कृत्वा इत्यनेन कृन्दोगपरिशिष्टोक्त-
 चरुपाकविधिर्लभ्यते । यथा 'स्वशाखोक्तसरुः खिन्नोद्वेग-
 ऽकठिनः शुभः । न चातिशियिलः पाच्यो न च वीतरसो
 भवेत्' । वीतरसोऽगालितमण्डः । इति नारायणोपाध्यायाः ।
 स्वशाखोक्तसरुः खिन्न इति पाठान्तरम् । सुस्नातः सशिर-
 स्कस्नातः । ब्रह्मपिण्डदाने आदिपुराणोक्तत्वात् पश्चान्तर-
 माह पारस्करः । 'प्रथमे दिवसे देयास्तयः पिण्डाः समा-
 हितैः । द्वितीये चतुरो दद्यादस्थिसञ्चयनन्तथा । त्रींस्तु
 दद्यात् तृतीयेऽङ्गि वस्त्रादि चालयेत्तथा' वस्त्रादिचालयेदिति
 प्रागुक्तचौरादिसमस्ताशौचान्तकृत्यपरम् । ब्रह्मपिण्डदाने
 सामगादिभिः स्वशाखिककर्मविशेषाभावे पौराणिकवत् पार-
 शाखिकमपि गृह्यते । 'यन्मानातं स्वशाखायां परोक्तमवि-

३३४

शुद्धितत्त्वम् ।

रोधि च । विहङ्गिस्तदनुष्ठेयमग्निहोत्रादि कर्मवत्' इति
 कृन्दोगपरिशिष्टोक्तेः । ऋग्वेदिनान्तु 'अनुदकमधूपञ्च गन्ध-
 माल्यविवर्जितम् । निनयेदश्मनि पूर्वं ततः आङ्गं प्रकल्पयेत्' ।
 इत्याश्वलायनगृह्यपरिशिष्टवचनान्मृगमयपात्रस्थ उदकाञ्जलिग-
 न्धादिरहितं प्रस्तरोपरि पिण्डदानमिति विशेषः । मत्स्य-
 पुराणम् । 'तस्मान्निधेयमाकाशे दशरात्रं पयस्तथा । सर्व-
 पापोपशान्त्यर्थमध्वश्रमविनाशनम्' । पयःशब्दात् जलं
 दुग्धञ्च प्रतीयते । पारस्करीये तथा दर्शनात् पारस्करीये तां
 रात्रिमित्यभिधानादेकरात्रमावश्यकं दशरात्रन्तु जलदुग्धदानं
 फलातिशयार्थम् । अशौचे दिवाभोजननियमात् । तदन्तर-
 मध्येतद्रात्रौ दीयते सद्यः शौचे तु द्वे सम्ये सद्य इत्याहु-
 रित्युक्तकाले युगपद्दशपिण्डा देयाः । स्वाशौचकाले पिण्ड-
 दानानुरोधात् । अतएव 'पिण्डः शूद्राय दातव्यो दिनान्यष्टौ
 नवाथवा । सम्पूर्णे तु ततो मासे पिण्डशेषं समापयेत्'
 इति प्रचेतो वचने सम्पूर्ण मास इति पदं लक्षण्या मासा-
 न्तिमदिनपरमिति सर्वैर्निबन्धुभिर्व्याख्यातम् । कालादर्श-
 कर्मोपदेशिनीप्रभृति ग्रन्थेषु शातातपः । 'भर्तुः पिण्डप्रदाने
 तु साध्वी स्त्री चेद्रजस्वला । वस्त्रं त्यक्त्वा पुनः स्नात्वा सैव
 दद्यात्तु पूरकम्' । भवेन्नारी रजस्वलेतिपाठो व्यासवचने
 आङ्ग एव पञ्चाहो गोतमेनोक्तः । यथा 'अपुत्रा तु यदा
 भार्या संप्राप्ते भर्तुराङ्गिके । रजस्वला भवेत् सा तु कुर्या-
 त्तत् पञ्चमेऽहनि' अतएव कृन्दोगपरिशिष्टे 'अशुच्यशुचिना
 दत्तमामृच्छकलादिना । अनिर्गतदशाहास्तु प्रेतारक्षांसि
 भुञ्जते' इति सामान्यतोऽशुचिना दत्तमित्यभिहितम् । अशु-
 चिनदीरजस्वलात्वेन दुष्टमपि जलम् । तथाच । 'उपाकर्मणि
 चोत्सर्गे प्रेतस्नाने तथैव च । चन्द्रसूर्यग्रहे चैव रजो दोषो

शुद्धित त्वम् ।

३३५

न विद्यते' । अतएव रजस्वलाशुद्ध्युत्तराशीचाहासत्त्व एवा-
 शीचकालानुरोधात् । तन्मध्येऽपि तथा पिण्डदानव्यवहार
 इति । एवमवाग्दत्तायाः कन्याया एकाहेन दशपिण्डदानानु-
 रोधात् । एकाहाशीचं निबन्धुभिः कल्प्यते तथाच ऋष्यशृङ्गः ।
 'अपुत्रस्य च या पुत्री सापि पिण्डप्रदा भवेत् । तस्य पिण्डान्
 दशैतान् वा एकाहेनैव निर्वपेत्' । दशैतान् वेति वाकारो
 'दत्तानाञ्चाप्यदत्तानां कन्यानां कुरुते पिता । चतुर्थेऽहनि
 तास्तेषां कुर्वीरन् सुसमाहिताः' । इत्यादिपुराणोक्तचिरात्वा-
 पेक्षया व्यवस्थितविकल्पार्थः । अत्रादत्तानामित्यत्र 'तत्सादृश्य-
 मभावश्च तदन्यत्वं तदल्पता । अप्राशस्त्यं विरोधश्च नजर्थाः
 षट् प्रकीर्त्तिताः' । इत्यनुसारेण ईषदर्थे नज् ऋष्यशृङ्गवच-
 नानुरोधात् । तेन वाग्दत्तेति गम्यते । अतएव कृतचूडकन्या
 वाग्दानपर्यन्तमेकाहेन दश पिण्डान् दद्यात् वाग्दानोत्तर-
 काले तु त्रिरात्रेण इति हारलताप्रभृतयः । तद्व्यवस्थायां
 वासना चेयम् । पूर्वोक्तादिपुराणवचनात् कन्याया मरणे
 पितुर्वाग्दानपूर्वापरयोरेकाहत्रयविधानात्तस्या अपि पितृ-
 मरणे तथैवेति । एवञ्च यन्मरणे यदशीचं तन्मरणे तदशीचं
 बाधकाभावात् कल्प्यते । तथाच आदिपुराणे । 'मातामहानां
 दौहित्राः कुर्वन्त्यहनि चापरे । तेऽपि तेषां प्रकुर्वन्ति द्वितीये-
 ऽहनि सर्वदा । जामातुः श्वशुराश्चक्रुस्तेषान्तेऽपि च संयताः ।
 मित्राणां तदपत्यानां ओद्वियाणां गुरोस्तथा । भागिनेय-
 सुतानाञ्च सर्वेषान्वपरेऽहनि । आह्वकार्यञ्च प्रथमं स्नात्वा
 कृत्वा जलक्रियाम्' । अपरेऽहन्यशीचकालादिति शेषः ।
 एवं द्वितीयेऽहनीति देवलः । 'भर्तृगुर्वीरशीचं स्थान्मृत्युप्रसव-
 कारणम् । कारणाद्गच्छति प्रैथं तदाशुच्यं न तान् व्रजेत्' ।
 भर्तृसम्बन्ध्यशीचं प्रैष्याणाम् । गुरुसम्बन्ध्यशीचं शिष्याणां

३३६

शुद्धितत्त्वम् ।

योग्यत्वात् । भर्तृसम्बन्ध्याशीचे विशेषमाह कारणादिति कारणादेकत्र वासात् । बृहस्पतिः 'दासास्तेवासिभृतकाः शिष्याश्चैकत्रवासिनः । स्वामितुल्येन शीचेन शुद्धयन्ति मृत-सूतकै' । अन्तेवासिनमाह नारदः । 'संश्लिष्यमिच्छन्नाहर्तुं बान्धवानामनुज्ञया । आचार्यस्य वसेदन्ते कालं कृत्वा सुनि-श्चितम्' । विप्रस्य दासत्वं निषेधयति कात्यायनः । 'त्रिषु वर्णेषु विज्ञेयं दास्यं विप्रस्य न क्वचित् । समवर्णे तु विप्रस्य दासत्वं नैव कारयेत्' । तदाशुच्यं प्रैष्यसम्बन्ध्याशीचं भर्तृगामि न भवतीति अनेनापि तथा कल्प्यते । अन्यथा तन्निषेधो न स्यात् प्रसक्ताभावादिति रत्नमाला भट्टाचार्यचरणाः । न च प्रेते राजनि स ज्योतिरिति राजमरणे प्रजानां सज्योति-र्विधानात् प्रजामरणेऽपि राज्ञस्तथाशीचापत्तिरिति वाच्यं राज्ञान्तु सूतकं नास्तीति पराशरेण निषिद्धत्वात् । न चैतद्व्यव-हारप्रदर्शनमात्रपरं तन्मात्रपरत्वे प्रमाणाभावात् । किन्तु राजत्वेनैव यदशीचं प्रेते राजनि स ज्योतिरित्यादिना प्रजानां विहितं तत् प्रजामरणेऽपि तेषां तस्याप्ती राजत्वेनैव राज्ञान्तु सूतकं नास्तीति विहितं 'कारणाद्भ्रष्टति प्रैष्यं तदाशुच्यं न ताम् व्रजेत्' इति वत् । 'निवासे राजनि प्रेते तदहः शुद्धि-कारणम् । महीपतीनां नाशीचं हतानां विद्युता तथा' इति याज्ञवल्करवचने पूर्वार्द्धेन राजमरणे प्रजानामशीच-विधानात् प्रागुक्तत्वेऽपि तेषां प्रकुर्वन्तीतिवत्तन्मरणे राज्ञा-मशीचप्राप्ती महीपतीनामित्यनेन तन्निषिध्यते । एवञ्च राज्ञः चतुर्विधत्वादिना यदशीचं तस्य नेदं सामान्यतो बाधकम् । किन्तु तत्रापि राजत्वनिमित्तकव्यवहारादिदर्शनेऽशीचाभाव-परमपि 'नाशीचं राज्ञां राजकर्मणि' इति विष्णुसूत्रानु-शीधात् । यत्तु दत्तानां भर्तृगृहावस्थानेऽप्येकाहं दशपिच्छ-

शुद्धितत्त्वम् ।

३३७

दानमुक्तं हारलताकुड्मिस्तत्र प्रमाणं न विद्मः किन्तु दत्तानामित्यत्र ता इत्यनेन सम्प्रदत्तानामावाणां वाग्दत्तानाञ्च चरहाशौचं प्रतीयते त्रहेणैव पिण्डदानमुक्तम् । ‘पित्रोरुपरमे स्त्रीणामूढानान्तु कथं भवेत् । त्रिरात्रेणैव शुद्धिः स्यादित्याह भगवान्मनुः’ इत्युक्तेर्दत्तानामित्यनेन पितुर्यत्त्रिरात्रं विहितं तत् पिण्डदातृत्वेनैव अन्यथा दत्तानां भर्तुरेवहीत्यनेन विशेषवचनाभावे पितृपक्षेऽशौचनिवृत्त्यनुपपत्तेः अशौचान्तादिनकृत्यमशौचसङ्करे प्रसङ्गादुक्तमिति नेह वितन्यते ।

अथाशौचान्तान्ताद्वितीयदिनकृत्यम् । देवलः । ‘अघाहःसु निवृत्तेषु सुस्नाताः कृतमङ्गलाः । आशुच्याद्विप्रमुच्यन्ते ब्राह्मणान् स्वस्तिवाच्य च’ । मङ्गलं स्वशाखोक्तशान्यदकगोहिरण्यादिस्पर्शमाह मनुः । ‘विप्रः शुद्धप्रत्यपः सृष्ट्वा क्षत्रियो वाहनायुधम् । वैश्यःप्रतोदं रश्मीन् वा यष्टिं शूद्रः कृतक्रियः’ । कृतक्रियोऽशौचकालोत्तरं कृतस्नान इति मिताक्षरा । समाप्तदशाहकृत्यमिति हारलता । अघाहःस्वित्यनेन एकादशाहादेरशौचान्ताद्वितीयाहत्वं सूचितम् एवम् एकादशाहादौ स्नानादेः पूर्वमशौचान्तरपार्ते न साङ्कर्यार्थञ्च । अतएव तत्रान्तदशाह इत्युक्तं सुस्नाता इत्यादिना विप्रः शुद्धप्रत्यपः सृष्ट्वेत्यादिना यथाशक्ति समुच्चयविकल्पाभ्यां तत्तत्करणेन वैदिककर्माहंतेति । ततश्च सशिरस्कमज्जनमात्रं कृत्वाचम्य मङ्गलं कृत्वा वर्णक्रमेण जलादिकं सृष्ट्वा वैधस्नानादि कुर्यात् । ‘अशौचे तु व्यतिक्रान्ते स्नातः प्रयतमानसः । उदन्मुखान् भोजयेच्च आसीनान् सुसमाहितान् । मन्त्रोहसात्र कर्त्तव्यस्तथैकवचनेन च’ इति विष्णुधर्मोत्तरात् । यत्तु संवर्त्तवचनं ‘दशाहात्तु परं सम्यक् विप्रोऽधीयीत धर्मवित् । दानञ्च विधिवद्देयमशुभात्तारकं हि तत्’ इत्यत्राशुभं नाशौचं तस्य कालादिना निवृत्तत्वात् ।

२८—क

३३८

शुद्धितत्त्वम् ।

किन्तु अशौचकालोत्पन्नपञ्चशूनाजन्यपापपरं पञ्चशूना च
 'पञ्चशूना गृहस्थस्य चूलीपेषण्युपस्करः । कण्ठनी चोदकुम्भश्च
 बध्यते याश्च वाहयन्' इत्यनेनोक्ता । मत्स्यपुराणे । 'अशौ-
 चान्तद्वितीयेऽङ्गि शय्यां दद्यात् विलक्षणां । काञ्चनं पुरुषं
 तद्वत् फलवस्त्रसमन्वितम् । संपूज्य द्विजदाम्पत्यं नानाभरण-
 भूषणैः । वृषोत्सर्गश्च कर्त्तव्यो देया च कपिला शुभा' । अशौ-
 चान्तादित्यत्राविशेषाद्वाहमरणतच्छ्रवणजन्याशौचानां ग्रहणं
 नानाभरणभूषणैरित्यत्र भूषणपदं क्रियापरम् । अतो न पौन-
 रुक्त्यम् । द्विजदम्पती पूजयित्वा काञ्चनं प्रेतप्रतिकृतिरूपं
 पुरुषं कृत्वा फलवस्त्रयुतं शय्यायामारोप्य भूषितद्विजदम्प-
 तीभ्यां शय्यां दद्यादिति हारलताक्ततः । तेषामयमाश्रयः ।
 सम्भवत्येकवाक्यत्वे वाक्यभेदो हि नेष्यते इत्युपस्थितं द्विजं
 विहाय पात्रान्तरकल्पने गौरवात् । न च तद्वदित्यनेन काञ्चन-
 पुरुषदानस्यापि स्वतन्त्रकर्मत्वं स्यादिति वाच्यम् । तस्य
 प्रेतवदित्यर्थात् । न च तस्यानुपस्थितिरिति वाच्यं प्राकर-
 णिकत्वेन शौघोपस्थितेः । अशौचान्तादित्यत्रापि तथा ।
 अन्यथा अन्त्याशौचान्ते अन्यस्यापि कर्म स्यात् । अतएवोक्तं
 प्रेतप्रतिकृतिरूपमिति । तेनैतद्विशिष्टमेकं कर्म । अथ व्युत्-
 क्रमयोजनेति चेत् 'श्वः कर्त्तास्मीति निश्चित्य दाता विप्रास्त्रि-
 मन्त्रयेत् । निरामिषं सकृद्भुक्त्वा सर्वसुप्तजने गृहे' इतिवद्भवतु ।
 स्यष्टमाह पञ्चपुराणम् । 'संपूज्य द्विजदाम्पत्यं नानाभरण-
 भूषणैः' इत्यन्तं मत्स्यपुराणेन तुल्यमभिधाय 'उपवेश्य च
 शय्यायां मधुपर्कं ततो ददेत्' इति भविष्योत्तरेऽपि । 'कार्यस्तु
 पुरुषो हैमस्तस्यां संस्थापयेच्च तम् । पूजयित्वा प्रदातव्या
 नृतशय्या यथोदिता' । अतएव कर्मत्वयभेदाय चकारद्वय-
 सुत्तरार्द्धेऽभिहितम् । ततः शय्यादानकाञ्चनपुरुषदानद्विजः

शुद्धितत्त्वम् ।

३३८

दम्पती-पूजा-वृषोत्सर्ग-कपिलागवी-दानरूप-कर्मपञ्चकाभिधानं
 मैथिलानां हेयम् । एवञ्च दम्पतीपूजनं विनापि अशीचान्ते
 वृषोत्सर्गाचरणं शिष्टानां सङ्गच्छते । तथाच 'अहन्येकादशे
 प्राप्ते यस्य चोत्सृज्यते वृषः । प्रेतलोकादिमुक्तश्च स्वर्गलोकं
 समश्नुते' । इति मैथिलधृतवचने केवलं वृषोत्सर्गः श्रूयते ।
 कालविवेकेऽग्निपुराणम् । 'एकादशाहे प्रेतस्य यस्य चोत्-
 सृज्यते वृषः । प्रेतलोकं परित्यज्य स्वर्गलोकं स गच्छति ।
 आद्यश्राद्धे त्रिपक्षे वा षष्ठे मासि च वत्सरे । वृषोत्सर्गश्च
 कर्त्तव्यो यावन्न स्यात् सपिण्डता । सपिण्डीकरणादूर्ध्वं
 कालोऽन्यः शास्त्रचोदितः' । त्रिपक्षश्चाह्न्याह्ने तथा दर्श-
 नात् । तथा श्राद्धप्रदीपे जातूकर्णः । ऊर्ध्वं त्रिपक्षाद् यत्
 श्राद्धं मृताहन्येव तद्भवेत्' । इत्यत्र पूर्वमृततिथिमादाय त्रिप-
 क्षगणना इति निर्णयामृतेऽपि मासिकानां मृततिथौ विधा-
 नात् त्रिपक्षश्राद्धमपि मृताहे कार्यम् । अत्र वत्सर इत्युपा-
 दानात् विष्णुधर्मोत्तरीयमृताह इति पदं पूर्णसंवत्सरमृत-
 तिथिपरम् । तद् यथा वृषोत्सर्गमधिकृत्य विष्णुः 'विषुवदितये
 चैव मृताहे बान्धवस्य च । मृताहो यस्य यस्मिन् वा तस्मि-
 न्नहनि कारयेत्' । यस्य बान्धवस्य पित्रादेर्यस्मिन्नहनि मृताहे
 तत्तिथौ कर्त्तव्यमित्यर्थः । अतएव कुन्दोगपरिशिष्टमपि । अथ
 वृषोत्सर्गविधिं व्याख्यास्यामः । 'कार्त्तिक्यां पौर्णमास्यां
 रेवत्याश्वयुज्यां दशाहे गते संवत्सरेऽतीते वेति' अत्र मृत-
 तिथिमादाय संवत्सरगणना दशाहवदित्यविरोधः । शय्यादानं
 वृषोत्सर्गश्च शक्तेनाशीचान्ते मलमासेऽपि अवश्यं कर्त्तव्यम् ।
 मत्स्यपुराणे । एकादशाहश्राद्धतुल्याभिधानादित्यपि हार-
 लता । परिशेषखण्डे हेमाद्रिरपि वृषोत्सर्गस्यैकादशा-
 ह्निकस्य मलमासे न निषेधः । षोडशश्राद्धवत्तस्यापि

३४०

शुद्धितत्त्वम् ।

प्रेतोपकारकत्वादित्याह । एतद्व्यक्तं भविष्ये 'नैऋतानां
 हितार्थाय जगत्कर्त्ता नृणां प्रभुः । निर्ममे मलिनं मांसं
 प्रेतानाञ्च हिताय च । अतः प्रेतक्रियाः सर्वाः कार्य्या मलि-
 न्मुचेऽपि च' । समयप्रकाशे ज्योतिषम् । 'वत्सरान्तर्गतः
 पापो यज्ञानां फलनाशकः । नैऋतैर्यातुधानाद्यैः समा-
 क्रान्तोऽधिमासकः' । मलमासे वृषोत्सर्गनिषेधस्तु काम्य एव
 च न तु एकादशाहे क्रियमाणे इति पाश्चात्यनिर्णयामृतेऽपि ।
 अत्र केचित् काम्यत्वात् मलमासे न कर्त्तव्यमेव शय्या-
 दानादि । न च अशौचान्तद्वितीयदिनस्यान्यत्राप्राप्तेरिदमपि
 निरवकाशमिति वाच्यम् । क्षतादिना अनधिकार इवा-
 करणे वस्तुक्षतेरभावात् । 'देवव्रतवृषोत्सर्गचूडाकरणमेखलाः ।
 माङ्गल्यमभिषेकश्च मलमासे विवर्जयेत्' इत्यनेन ऋष्यशृङ्ग-
 ग्राहिकतया वृषोत्सर्गस्य निषेधाच्चेत्याहुः । तच्चिन्त्यम् । क्षता-
 दिना अनधिकारे प्रतिप्रसवाभावान्मा भवतु वृषोत्सर्गादि अत्र
 तु 'अधिमासके विवाहं यात्रां चूडां तथोपनयनादिकम् ।
 कुर्यान्नसावकाशमङ्गल्यं न तु विशेषेज्याम्' इति भीमपरा-
 क्रमवचनेऽपि सावकाशस्य निषेधात् पर्युदासाद्वा निरव-
 काशस्य कर्त्तव्यत्वमायाति । अत्राशौचान्तद्वितीयदिनस्या-
 न्यत्रानुपलभ्यमानत्वेन निरवकाशत्वमिति । सद्यः शौचेऽपि
 तद्दिने शय्यादानादिकमिति भ्रमो दूरीकार्य्यः । अशौचान्त-
 द्वितीयदिनत्वेनैवास्य विधानात् । वस्तुतो विष्णूक्तयावदशौच-
 पिण्डदानानुरोधेन 'अर्थात् प्रकरणास्त्रिङ्गादौचित्याद्देश-
 कालतः । शब्दार्थास्तु विभिद्यन्ते न रूपादेव केवलात्' इति-
 न्यायात् । अत्र सद्यःपदमहोराचार्यपरम् । 'सद्यःपरुत्-
 परारि' इत्यादिसूत्रे समानेऽहनि सद्यः इति व्युत्पत्तेः । 'हे
 सस्ये सद्यः इत्याहुस्त्रिसस्यैकाहिकः स्मृतः । द्वावह्नावेक-

शुद्धितत्त्वम् ।

३४१

रात्रिश्च पक्षिणीत्यभिधीयते' । इति भट्टनारायणवचनात् ।
 'हे सम्ये सद्य इत्याहुस्त्रिसम्यैकाह उच्यते । दिनद्वयैक-
 रात्रिस्तु पक्षिणीत्यभिधीयते' इति नव्यवर्द्धमानधृतवचनाच्च
 सद्य एकाहेनाशौचमिति पारिजाते सद्य एकाहेनेति स्मृति-
 सारे । एकमहःसद्य इति शुद्धिपञ्चगां दर्शनाच्चेति तच्चाहं-
 दिनमात्रं रात्रिमात्रञ्च एतदेव क्वचित् स ज्योतिःपदेन व्यपदि-
 श्यते । यथा राजनि प्रेते सज्योतिरित्यादौ ज्योतिषा सह
 वर्त्तते यदशौचं तत्तथा ज्योतिरपि सौरनक्षत्रमेदात् द्विविधम् ।
 तेन यावदेकतरस्य तेजसो निवृत्तिस्तावत् कालव्यापकमिति ।
 अतएव दिवाभूते दिनमात्रं रात्रिभूते रात्रिमात्रमिति हार-
 लतारत्नाकरादयः । एवञ्च 'यस्य यस्य तु वर्णस्य यद् यत्
 स्यात् पश्चिमन्वहः । स तत्र वस्त्रशुद्धिञ्च गृहशुद्धिं करोत्यपि'
 इत्यादि प्रागुक्तादिपुराणीयाशौचान्तदिनकाल्यं शुद्धिहेतुकं
 सद्यःशौचे हि तद्दिनस्य तथात्वविवक्षया क्रियते । तथा-
 ऽशौचाहःस्रतोतेष्वित्यशौचान्तद्वितीयेऽङ्गीति शोभूते एको-
 द्विष्टमित्यादि च सङ्गच्छते । अन्यथा तत्र तत्तत्कर्म न स्यात् ।
 एवञ्चाद्यश्राद्धविधायक विष्णूक्ताशौचव्यपगमे इति सूत्रं
 ध्वंसानन्तत्वेऽपि अशौचान्तद्वितीयदिनमात्रपरम् । तेन सद्यः-
 शौचं तथैकाह इति दक्षवचने पौनरुक्त्यभिया सद्यःशौचं
 स्नानापनेयाशौचमात्रपरमिति व्याख्यानं हेयम् । एकाहपद-
 स्याहोरात्रपरत्वेन द्विसम्यावच्छिन्नकालवाचिसद्यःपदादपि
 भिन्नार्थत्वात् । यत्र तु पिण्डादिकं नास्ति तत्र सद्यःपदं
 क्षणमात्रवाचि । सद्यः सपदि तत्क्षणे इत्यमरकोषात् ।
 यथा 'बालस्त्वन्तर्दशाहे तु प्रेतत्वं यदि गच्छति । सद्य एव
 विशुद्धिः स्यान्नाशौचं नैव सूतकम्' इति । तस्माद् यत्र रात्रौ
 दिवा सद्यःशौचमुत्पन्नं तत्रापि परदिने वृषोत्सर्गादिकम-

४४२

शुद्धितत्त्वम् ।

विरुद्धम् । यद्यपि अभिहितं विहितशुद्धिप्रथमदिनं शय्यादानादौ निमित्तं तदपि प्रमाणशून्यम् । दिवापि यत्र पिण्डदानादिना मध्याह्नोऽतिक्रान्तस्तत्र शय्यादानाद्येकोद्दिष्टान्तानां सर्वेषां करणासामर्थ्यं कानिचित् पूर्वदिने कानिचित् परदिने सर्वाणि वा परदिने कार्याणीत्यत्रोक्तं विवक्षयापि न गतिः । अतएवाशौचान्तात् द्वितीयेऽङ्गीति सर्वैरेव प्रमाणिकैः पद्धति-
 कृद्भिर्निमित्तत्वेनाभिलापलिखितमिति । तथाशौचान्तात् द्वितीयेऽङ्गीत्यस्य निमित्तत्वे किं मानमिति चेत् । तस्य काल-
 त्वेन निमित्तत्वं 'निमित्तं कालमादाय वृत्तिर्विधिनिषेधयोः' इति कालमाधवीयधृतवृद्धगार्ग्यवचनम् । आदायेत्यत्राश्रित्येति कल्पतरुतिथिविवेकयोः पाठः । अनेन वचनेन कालो निमित्त-
 मित्युक्तम् । अशौचान्तद्वितीयदिनस्यापि कालत्वेनेति सुतरां निमित्ततेति अतएवावश्यकत्वेन कालस्य निमित्तत्वेन पर्वादि-
 क्रियमाणस्य नित्यनैमित्तिकत्वमाह मार्कण्डेयपुराणम् । 'नित्यनैमित्तिकं ज्ञेयं पर्वणाद्यादिपण्डितैः' । एवञ्च वैदिक-
 क्रियानिमित्तस्य कालविशेषस्य तत्कालजीवित्वेनाधिकारि-
 विशेषणीभूतस्य परतो या सप्तमी सा नाधिकरणे यो जटाभिः समुद्धृते इतिवत् कालस्य विशेषत्वेन तद्वाधकत्वतयाप्राप्तेः किन्तु कालभावयोः सप्तमीत्यनेन तद्वाधिका पुनः सप्तमी विधी-
 यते । शरदि पुष्पगन्ति सप्तच्छदा इति वत् अतःकर्तृविशेषणी-
 भूतस्यापि कालस्य वैदिकक्रियानिमित्ततया निमित्तानाञ्च सर्वञ्च इत्यनेनोल्लेख इति । पूर्वाह्णादेस्तु गुणफलत्वेनानियत-
 निमित्ततया नोल्लेखः क्रियैवकाल इति मते सुतरां नाधिकर-
 णतः सूर्यादिक्रियायाः कर्तव्यस्य कर्मणो अधिकरणतानुपपत्तेः ।
 'देवव्रतवृषोत्सर्गचूडाकरणमेखलाः । मङ्गल्यमभिषेकश्च मल-
 मासे विवर्जयेत् । कले वा यदि वा वृद्धे शुक्ले चास्त्रमुपागते ।

शुद्धितत्त्वम् ।

३४३

मलमास इवैतानि वर्जयेद्देवदर्शनम्' इति ज्योतिःपराशरी-
 येन निषेधः सावकाशवृषोत्सर्गविषयः । अतएव बालादि-
 शुक्लेऽपि मलमास इवैतानि वर्जयेदित्यनेन सावकाशवृषोत्सर्ग-
 निषिद्धो न निरवकाशः । तस्यापि तत्र निषेधे सकलशिष्टा-
 चाराविक्रमेण सामान्यनिषेधेऽपि मलमासातिदेशो व्यर्थः
 स्यादिति । स च सावकाशवृषोत्सर्गः पित्रादिगतफलोद्देशेन
 'कार्तिक्यामयने चैव फाल्गुन्यामष्टकासु च' । इत्यादिना
 विहितः । देवतोद्देशेनापि 'कार्तिक्यान्तु वृषोत्सर्गं कृत्वा
 नक्तं समाचरेत् । शैवं पदमवाप्नोति शिवव्रतमिदं स्मृतम्'
 इति समयप्रकाशदृतमत्स्यपुराणवचनात् । 'देवव्रतवृषोत्सर्ग-
 चूडाकरणमेखलाः । मङ्गल्यमभिषेकश्च मलमासे विवर्जयेत्'
 इति व्यासवचनाच्च । देवमुद्दिश्य व्रतरूपवृषोत्सर्गो देवव्रत-
 वृषोत्सर्गः । यथा देवीपुराणे । देव्याः क्रमपूजायां 'गवोत्-
 सर्गश्च कर्त्तव्यो नीलं वा वृषमुत्सृजेत्' इति नव्यवर्द्ध-
 मानप्रभृतयः । एवञ्च विशेषनिषेधेन शेषाभ्यनुज्ञानादपि
 प्रेतवृषोत्सर्गोऽस्तीति प्रतीयते । अनुरपि विशेषोऽध्यव-
 सायकर इति न्यायात् । न च सूतकान्तद्वितीयदिने-
 ऽपि शय्यादानादीनां मलमासे काम्यत्वान्न निषेध इति
 वाच्यम् । 'नैमित्तिकानि काम्यानि निपतन्ति यथा
 तथा । यथा तथैव कार्याणि न कालस्तु विधीयन्ते' ।
 इति दक्षवचनेन । 'रोगे चालभ्ययोगे च सीमन्ते पुंसवेऽपि
 च । यद्ददाति समुद्दिष्टं पूर्वत्रापि न दुष्यति' इति काल-
 माधवीये मरीचिना प्रतिप्रसवात् अलभ्ययोगे पुनरप्राप्य-
 सम्बन्धनिमित्ते अशौचान्तद्वितीयदिवसादौ पूर्वत्र मलमासे ।
 तथाच विशारदप्रभृतिभिः पठन्तीति कृत्वा लिखितम् ।
 अशौचान्तेऽपि कर्त्तव्यं वृषोत्सर्गादिकं सुतैः । मलिन्नुचादि

१४४

शुद्धितत्त्वम् ।

दोषस्तु न ग्राह्यस्तत्र कश्चन' । कालमाधवीयधृतकालादर्श-
 वाक्ष्यं मलमासे कर्त्तव्यतानिषिधमुपक्रम्य 'आश्रमस्वीकृतिः
 काम्यवृषोत्सर्गश्च निष्क्रमः' इत्यत्र काम्यविशेषणमिति
 अशौचान्तद्वितीयदिनमुपक्रम्य रामायणे । 'ततश्चोद्दिश्य पितरं
 ब्राह्मणेभ्यो धनं ददौ । महार्हाणि च रत्नानि गाश्च वाहन-
 मेव च । यानानि दासीर्दासांश्च वेश्मानि सुमहान्ति च' ।
 विष्णुपुराणे सामान्यतः पितृगाथा च 'वस्त्ररत्नमहोयान सर्व-
 भोगादिकं वसु । विभवे सति विप्रेभ्यो योऽस्मान्नुद्दिश्य
 दास्यति' । आद्यश्राद्धेति कर्त्तव्यतायां वराहपुराणम् । आस-
 नञ्चोपकल्पेत मन्त्रेण विधिपूर्वकम्' । मन्त्रश्च 'अत्रासने देव-
 राजाभ्यनुज्ञातो विश्राम्यतां द्विजवर्ज्यानुग्रहाय प्रसादये
 त्वासनं गृह्य पूतं ज्ञानाग्नि पूतेन करेण विप्रः' इति । तथाच
 'आवरणार्थं तच्छत्रं ब्राह्मणाय प्रदीयते । पश्चादुपानहौ
 दद्यात् पादस्पर्शकरे शुभे । संतप्तवालुकां भूमिं मसिकण्ट-
 कितान्तथा । सन्तारयति दुर्गाणि प्रेतं दददुपानहौ । तिलोप-
 चारं कृत्वा तु विप्रस्य नियतात्मनः । नामगोत्रमुदाहृत्य
 प्रेताय तदनन्तरम् । शौघमावाहयेद्भूमिं दर्भहस्तोऽथ
 भूतले' । तच्छत्रं प्रेताय दत्तं कृत्वा प्रदीयते उत्तरप्रतिपत्तिः
 क्रियते । प्रेतमित्यस्य दददित्यभिसम्बन्धात् सति प्रदानत्वेऽपि
 सम्भावयतौत्यभिसम्बन्धानात् कर्मतैव । 'अपादानं सम्प्रदानं
 तथाधिकरणं पुनः । करणं कर्मकर्त्ता च द्वयोर्मध्ये परं
 भवेत्' इत्युक्तेः । भूमि इति पृथिव्याः सम्बोधनम् । अत्र
 श्राद्धप्रयोगमध्येऽपि वचनात् दानादिक्रिया । तथाच नैक-
 स्मिन् कर्मणि तते कर्मान्यत् श्रूयते यतः । इत्यनेन न विरोध
 इति तिलोपचारमित्यनेनार्घ्यदानमुक्तम् । मन्त्रस्तु इहलोकं
 परित्यज्य गतोऽसि परमां गतिम् । अयञ्च स्त्रीश्राद्धेऽप्यविकृत

शुद्धितत्त्वम् ।

३४५

एव पठनीयः । 'एवमाग्राणि ते गन्धपुष्पादीनि समर्पयेत्' । गन्धमन्त्रस्तु सर्वः सुगन्धः इति पुष्पमन्त्रस्तु श्रिया देव्या इति धूपमन्त्रस्तु वनस्पतिरस इत्यादि इदञ्च गन्धादिसमर्पणम् । प्रेताय गन्धादिदानानन्तरं ब्राह्मणे कार्यं लघुहारीतः । 'सपिण्डीकरणं यावत् प्रेतश्राद्धानि षोडश । पक्वान्नेनैव कार्य्याणि सामिषेण द्विजातिभिः' । बृहस्पतिः 'वस्त्रालङ्कार-शय्याढ्यं पितुर्यहाहनायुधम् । गन्धपुष्पैः समभर्च्य श्राद्ध-भोक्ते निवेदयेत् । भोजनञ्चानेकविधं कारयेदञ्जनादिभिः' ।

अथ दानम् । देवलः 'अर्थानामुदिते पात्रे अद्भया प्रति-पादनम् । दानमित्यभिनिर्दिष्टं व्याख्यानन्तस्य वक्ष्यते' अर्थो द्रव्यम् । उदिते शास्त्रकथिते अद्वा देवलोक्ता । 'यथा सत्कृतिश्चानसूया च सदा अद्भेति कौर्त्तिता' । अतएव भगवद्गीतासु । 'अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतन्तु यत् । असदित्युच्यते पार्थ न च तत् प्रेत्य नेह च' । हरिवंशे वलिं प्रति भगवद्वाक्यम् । 'अश्रोत्रियं श्राद्धमधीतमव्रतं त्वदक्षिणं यज्ञमनृत्विजाहुतम् । अश्रद्धया दत्तमसंस्कृतं हविर्भागाः षडेते तव दैत्यपुङ्गव' । प्रतिपादनं स्वीकरणं पात्रायत्तौकरणमिति यावत् । तेन शास्त्रोक्तसम्यदानस्वत्वावच्छिन्नद्रव्यत्यागो दानम् । ततश्च उद्देश्य पात्रविशेषो यदि न स्वीकरोति तदा सोपाधित्यागविशेषस्यानिर्वाहान्न दातुः स्वत्वं निवर्त्तते इति रत्नाकरप्रभृतयः । वस्तुतस्तु प्रदानं स्वाम्यकारणमिति मनूक्ते-र्दानमात्रात् सम्यदानस्य तद्विषयज्ञानाभावदशायामपि स्वत्व-मुत्पद्यते । पितुः स्वत्वोपरमात्तदने गर्भस्थस्येव । तेन शास्त्रोक्तसम्यदानस्वत्वापादकद्रव्यत्यागो दानम् । तथाच दत्तस्य प्रतिग्रहो न तु प्रतिग्रहघटितं दानमिति । व्यक्तमाह

३४६

शुद्धितत्त्वम् ।

कात्यायनः । 'पित्रा दत्तामादाय गृहीत्वा निष्क्रामयति'
 आदाय प्रतिगृह्य ततो हस्तं गृहीत्वा वक्ष्यमाणमन्त्रेण
 निष्क्रामयतीत्यर्थः । 'दत्त्वान्ते स्वस्तिवाचयेत्' इति वक्ष्य-
 माणवचनाच्चेति । अतएव मरीचिः । 'बहुगोषु यथानष्टां
 मातरं लभते सुतः । मनसा यस्य यद्वत्तं तद्वि तस्योपतिष्ठते' ।
 न चैतत्तर्पणमात्रपरं बहुगोषु इति दृष्टान्ताभिधानेन च यस्य
 यदिति सामान्याभिधानेन होलाधिकरणन्यायात् सामान्यपरं
 तेन आद्यादावपि तथा एकत्र निर्णीत इति न्यायाच्च । अत-
 एव दत्तस्योद्दिश्य पात्राभावेऽपि इतरधनवत्तद्धनस्वामिकुले
 प्रतिपत्तिमाह हेमाद्रिदृष्टधौम्यः । 'परोक्षे कल्पितं दानं
 पात्राभावे कथं भवेत् । गोत्रजेभ्यस्तथा दद्यात् तदभावेऽस्य
 बन्धुषु' । दानकल्पतरौ नारदः । 'ब्राह्मणस्य च यद्वत्तं
 सान्वयस्य न चास्ति सः । सकुल्ये तस्य निनयेत्तदभावेऽस्य
 बन्धुषु । यदा तु न सकुल्यः स्यान्न च सम्बन्धिबान्धवाः ।
 दद्यात् सजातिशिष्येभ्यस्तदभावेऽप्यु निक्षेपेत्' । अतएव
 आर्जुन्यान्नस्य पात्राभावे जले प्रक्षेपः । अतएव 'मनसा
 पात्रमुद्दिश्य भूमौ तोयं विनिक्षेपेत् । विद्यते सागरस्यान्तो
 दानस्यान्तो न विद्यते' । इति नारदीयोक्तदानानन्तरमेव
 स्त्रीकारात् पूर्वं दक्षिणा क्रियते । यत्र तु पात्रविशेषानु-
 द्दिश्यकदानं तत्र दातुः प्रतिपत्त्युपदेशात् तदधीनसम्प्रदान-
 विशेषनिरूपितस्वत्वं त्यागादेव जायते । तत्र प्रतिपादनमाह
 मत्स्यपुराणम् । 'न चिरं धारयेद्गृहं हेमसंप्रोक्षितं बुधः ।
 तिष्ठद्भयापहं यस्मात् शोकव्याधिकरं नृणाम् । शीघ्रं पर-
 स्त्रीकरणाच्छ्रेयः प्राप्नोति पुस्कलम्' । संप्रोक्षितं पात्र-
 मुद्दिश्य त्यक्तमिति हेमाद्रिः । अतएव विष्णुपुराणे । 'तस्मात्
 सर्वात्मना पात्रे दद्यात् कनकमुत्तमम् । अपात्रे पातयेद्दत्तं

शुद्धितत्त्वम् ।

३४७

सुवर्णं नरकार्णवे । प्रमादतस्तु तन्नष्टं तावन्मात्रं नियोजयेत् । अन्यथा स्तेययुक्तः स्याद्वेत्तादत्ते विनाशिनः । तद्धेम ब्राह्मणायात्सृष्टं ब्राह्मणसादकृतम् । यदि चौरादिनापञ्चियते तदा तावदेव पुनरुत्सृज्य देयमिति दानसागरः । 'द्रव्यमर्जयन् ब्राह्मणः प्रतिगृह्णीयात् याजयेदध्यापयेत्' इति श्रुतौ याजनाध्यापनसाहचर्यात् प्रतिग्रहस्य स्वत्वमजनयतोऽप्यर्जनरूपता न विरुद्धा याजनाध्यापनादौ दक्षिणादानादेव स्वत्वादिति दायभागः । न तु प्रतिग्रहात् स्वत्वं प्रागुक्तमनुधीम्यनारदीयवचनविरोधात् । सम्प्रदानस्वीकारात् पूर्वं त्यक्तद्रव्यस्यान्येन ग्रहणे ब्रह्मस्वानपहारापत्तेश्च इति । एवञ्च दाने सम्प्रदानस्य कारणतोद्देश्यत्वात् । न तु अनुमतिद्वारा मानाभावात् । मनसा पात्रमुद्दिश्येत्यत्र व्यभिचाराच्च । एवञ्च त्यागाच्चिह्नमपि दातुः स्वत्वं संप्रदानाग्रहणादसम्यक्त्वेन तस्यादानत्वश्रुतेर्दातुः पुनः स्वत्वमुत्पद्यते । तथाच नारदः । 'दत्त्वा दानमसम्यग् यः पुनरादातुमिच्छति । दत्त्वाप्रदानिकं नाम व्यवहारपदं हि तत् असम्यक्त्वञ्च दानस्यादेयद्रव्यदानाद्वा अथवादानाद्वा सम्प्रदानभ्रान्त्यादिना वा पित्राद्यसम्पत्त्यादिना वा दातुरेव शृङ्गाद्वारवस्थामेदाद्वा इति वाचस्पतिमिश्राः । तथाच देवलः । 'दाता प्रतिग्रहीता च शृङ्गादेयश्च धर्मयुक् । देशकालौ च दानानामङ्गान्येतानि प्रङ्गिदुः' । धर्मयुक् न्यायार्जितं द्रव्यं तथाच विष्णुधर्मोत्तरं 'देशकाले तथा पात्रे धनं न्यायागतं तथा । यद्वत् ब्राह्मणश्रेष्ठास्तदनन्तं प्रकीर्त्तितम्' । प्रतिग्रहाभावे प्रतिग्रहीतरूपाङ्गाभावादसम्यक्त्वम् । दत्तस्याप्रदानं पुनर्हरणं यस्मिन् व्यवहारपदे तत्तथेति विज्ञानेश्वरः । अतएव यज्ञाद्यर्थं ग्राहकाय धत्तं दत्तमपि तेन तदकरणे पुनस्तद् ग्रहणमाह

३४८

शुद्धितत्त्वम् ।

मनुः 'धर्मार्थं येन दत्तं स्यात् कस्मैचिद् याचते धनम् । पञ्चाक्ष
 च तथा यत् स्यान्न देयन्तस्य तद्भवेत्' । दत्तस्य गृहीतस्य
 भुक्तस्यापि पुनरादानश्रुतेः सुतरां पात्रस्योपेक्षायां तथेति ।
 उपेक्षया स्वत्वहानिमाह बृहस्पतिः । 'प्राप्तमात्रं येन भुक्तं
 स्वीकृत्यापरिपन्थिनम् । तस्य तत् सिद्धिमाप्नोति हानिश्चोपेक्षया
 तथा' । अतएव प्रतिग्रहीतुस्यागात् फलं वक्ष्यते । अन्यत्र
 हारीतः । 'प्रतिश्रुत्याप्रदानेन दत्तस्य छेदनेन च । विवि-
 धान् नरकान् याति तिर्यग्योनौ च जायते । वाचा यच्च
 प्रतिज्ञातं कर्मणा नोपपादितम् । तद्धनम् ऋणसंयुक्तम् इह
 लोके परत्र च' । दत्तस्योच्छेदनं स्वयं दत्तस्य द्रव्यस्य प्रति-
 ग्रहीतुर्दानविक्रयादिकं विनाच्छेदं बलात् स्वीकरणं न तु
 तद्विक्रीतादेर्ग्रहणम् । तथाच आश्वमेधिके पर्वणि युधिष्ठिरं प्रति
 व्यासवाक्यं 'दत्तैषा भवता मर्ह्यं ताञ्च भूमिं ददाम्यहम् ।
 अरण्यं दीयतां मेऽद्य आसीत् पूर्वन्तु ते यतः' इति कात्या-
 यनः 'स्वस्थेनार्त्तं न वा दत्तं आवितं धर्मकारणात् । अदत्त्वा
 तु मृते दाप्यस्तत् सुतो नात्र संशयः' । आर्त्तं न जन्मप्रभृति
 महारोगिव्यतिरिक्तरोगिणेत्यर्थः । महारोगिणां दाने 'तेषां
 मध्ये तु यः कुष्ठौ गर्हितः सर्वकर्मसु' । इति प्रागुक्तभविष्य-
 पुराणीयनिषेधात् । एवञ्च सुमूर्षुदत्तस्य यद्दानोपसर्गत्वा-
 भिधानं तद्धर्मार्थतरदानपरम् । स्मृतिः । 'स्नात्वा शुद्धे समे
 देशे गोमयेनोपलेपिते । वसित्वा वसनं शुद्धं दानं दद्यात्
 सदक्षिणम्' । अत्र आहवलेपितदेशाभिधानात् । 'यज्ञो
 दानं तपो जप्यं आहञ्च सुरपूजनम् । गङ्गायान्तु कृतं सर्वं
 कोटिकोटिगुणं भवेत्' इति स्कान्दे गङ्गायामिति गङ्गातीर-
 परमिति गङ्गावाक्यावली । पाद्मे 'शिवस्य विष्णोरग्नेश्च
 सन्निधौ दत्तमक्षयम्' । लिङ्गपुराणे । शालग्रामशिला यत्र

शुद्धितत्त्वम् ।

३४८

तत्तीर्थं योजनद्वयम् । तत्र दानञ्च होमश्च सर्वं कोटिगुणं भवेत् । यत्र भूर्लोकं भूर्लोकमाह विष्णुपुराणम् । 'पाद-
गम्यञ्च यत् किञ्चिद्वस्त्वस्ति पृथिवीमयम् । स भूर्लोकः समा-
ख्यातो विस्तारोऽस्य मयोदितः' पृथिवीमयं पार्थिवं ततश्च
शालग्रामस्य पात्राद्यवस्थानेऽपि तीर्थत्वमतएव केवलभूमौ
शालग्रामावस्थानं तीर्थाय मैथिलानां दुराचरणमेव । शङ्क-
लिखितौ 'आहारं मैथुनं निद्रां सन्ध्याकाले विवर्जयेत् । कर्म
चाध्ययनञ्चैव तथा दानप्रतिग्रही' । स्मृतिः 'गत्वा यद् दीयते
दानं तदनन्तफलं स्मृतम् । सहस्रगुणमाह्वयं याचिते तु
तदर्धकम्' । विष्णुधर्मोत्तरम् । 'सीदते द्विजमुख्याय योऽर्थिने
न प्रयच्छति । सामर्थ्ये सति दुर्बुद्धिर्नरकायोपपद्यते' । यमः
'आशां दत्त्वा ह्यदातारं दानकाले निषेधकम् । दत्त्वा सन्त-
प्यते यस्तु तमाहुर्ब्रह्मघातकम् । मात्स्ये 'अनित्यं जीवितं
यस्मात् वसुधातीव चञ्चलम् । केशेष्विव गृहीतस्तु मृत्युना
धर्ममाचरेत्' । भारते 'एकां गां दशगुर्दद्याद् दश दद्याच्च
गोशतौ । शतं सहस्रगुर्दद्यात् सहस्रं बहुगोधनः' । व्यासः
'ग्रामादर्धमपि ग्राममर्थिभ्यः किञ्च दीयते । इच्छानुरूपो
विभवः कदा कस्य भविष्यति' । तथा 'भुक्त्वा दानं न शस्यते' ।
अतएव अग्निपुराणम् । 'घासमुष्टिं परगवे साक्षं दद्यात्तु यः
सदा । अकृत्वा स्वयमाहारं स्वर्गलोकं स गच्छति' । देवलः ।
'अपापरोगी धर्मात्मा दित्सुरव्यसनः शुचिः । अनित्याजीव-
कर्मा च षड्भिर्दाता प्रशस्यते' अनित्याजीवकर्मा अगर्हित-
जीवमोपायः तथा 'अपरावाधमक्लेशं प्रयत्नेनार्जितं धनम् ।
अल्पं वा विपुलं वापि देयमित्यभिधीयते' । अपरावाधं
परपौडारहितम् अक्लेशं पात्रक्लेशजनकम् । तथा 'यत् यच्च
दुर्लभं द्रव्यं यस्मिन् कालेऽपि वा पुनः । दानार्हो देश कालौ

३५०

शुद्धितत्त्वम् ।

तौ स्यातां श्रेष्ठौ न चान्यथा । देवलः । 'इष्टं दत्तमधीत' वा विनश्यत्यनुकीर्त्तनात् । स्नाघानुशोचनाभ्याश्च भग्नतेजो विभिद्यते । तस्मादात्मकृतं पुण्यं वृथा न परिकीर्त्तयेत्' इष्टं यजनम् अनुकीर्त्तनं कथनं स्नाघा प्रशंसा अनुशोचनं धन-
व्ययेन पश्चात्तापः भग्नतेजः फलजननशक्तिहीनं वृथा रक्षादि-
प्रयोजनं विना । देवलः 'पात्रेभ्यो दीयते नित्यमनपेक्षप्रयो-
जनम् । केवलं धर्मबुद्ध्या यत् धर्मदानं प्रचक्ष्यते' । प्रयो-
जनमिह लौकिकमभिहितम् । याज्ञवल्क्यः 'न विद्यया केवलया तपसा वापि पाचता । यत्र वृत्तमिमे चोमे तद्धि पात्रं प्रचक्ष्यते' । वृत्तमाचारः विष्णुधर्मोत्तरे 'पतनात् त्रायते यस्मात् पात्रं तस्मात् प्रचक्ष्यते' । महाभारते । 'पात्रा-
णामपि तत् पात्रं शूद्रान्नं यस्य नोदरे' । अत्र साक्षाच्छूद्र-
दत्तघृततण्डुलाद्यनुपयोगौति दानसागरः । शूद्रस्त्वान्ययावा-
भोजीति रत्नाकरः । वस्तुतस्तु सुसूक्ष्मं प्रकरणाभिहितशूद्रान्न-
नुपयोगौत्यर्थः । याज्ञवल्क्यः । 'दातव्यं प्रत्यहं पात्रे निमि-
त्तेषु विशेषतः । निमित्तेषु गङ्गातीरादिसंक्रान्त्यादिषु ।
वृद्धमनुः । 'सहस्रगुणितं दानं भवेद् दत्तं युगादिषु ।
कर्मश्राद्धादिकञ्चैव तथा मन्त्रन्तरादिषु' । विवादचिन्तामणौ
वशिष्ठः । 'शुक्रशोणितसन्धवः पुत्रो मातापितृनिमित्तकः ।
तस्य प्रदानविक्रयपरित्यागे तु मातापितरौ प्रभवतः न तु
एकं पुत्रं दद्यात् प्रतिगृह्णीयात् वा स हि सन्तानाय पूर्वेषा-
मिति' । कात्यायनः । 'विक्रयञ्चैव दानञ्च न नेयाः स्युरनि-
च्छवः । दाराः पुत्राश्च सर्वस्वमात्मन्येव तु योजयेत् । आपत्
काले तु कर्त्तव्यं दानं विक्रय एव च । अन्यथा न प्रवर्त्तेत इति
शास्त्रार्थनिश्चयः' । एवं भरणसामर्थ्य एव परित्यागः । मनुः ।
'सप्त वित्तागमा धर्म्या दाया लाभः क्रयो जयः । प्रयोगः कर्म

शुद्धितत्त्वम् ।

३५१

योगश्च सत्प्रतिग्रह एव च । दायोऽन्वयागतः लाभो निध्यादेः
जयःसंग्रामप्रयोगः कुशीदं कर्मयोगः कृषिवाणिज्यपुत्रकन्यादि ।
वृहस्पतिः । 'कुटुम्बभक्तवसनाद् देयं यदतिरिच्यते । मध्वा-
स्वादो विषं पश्चाद्दातुर्धर्मोऽन्यथा भवेत्' । कीर्त्तिनरत्नाभ्या-
मित्यर्थः । अस्यापवादमाह स एव । कुटुम्बं पीडयित्वा तु
ब्राह्मणाय महात्मने । दातव्यं भिक्षवे चात्रमात्मनो भूति-
मिच्छता' । अतएव भविष्यपुराणे 'स्वल्पे महति वा तुल्यं
फलमाक्यदरिद्रयोः' । विष्णुधर्मोत्तरे । 'यस्योपयोगि यद्-
द्रव्यं देयं तस्मै च तद्भवेत्' । हारीतः 'तामसेन तु द्रव्येण
ऋत्विग्भिस्तामसैस्तथा । तामसं भावमाख्याय तामसो यज्ञ
उच्यते । तामसेन तु यज्ञेन दानेन तपसा तथा । निरये जन्म-
चेदाहुर्वृद्धिं विद्याच्च तामसौम्' । तामसौ वृद्धिः स्नेच्छाधि-
पत्यरूपा इति रत्नाकरः । 'राजसेन तु द्रव्येण ऋत्विग्भीराजसै-
स्तथा । राजसं भावमाख्याय राजसो यज्ञ उच्यते । राजसेन
तु यज्ञेन दानेन तपसा तथा । निरयस्वर्गयोर्जन्म क्रूरराज्यं
श्रिया युतम् । सात्त्विकेन तु द्रव्येण ऋत्विग्भिः सात्त्विकै-
स्तथा । सात्त्विकं भावमाख्याय सात्त्विको यज्ञ उच्यते ।
सात्त्विकेन तु यज्ञेन दानेन तपसा तथा । देवलोके ध्रुवं
वासो देवसायुज्यमेव च' । मत्स्यपुराणञ्च 'येषां पूर्वकृतं कर्म
सात्त्विकं मनुजोत्तम । पौरुषेण विना तेषां केषाञ्चिद् दृश्यते
फलम् । कर्मणा प्राप्यते लोके राजसस्य तथा फलम् । कृच्छ्रेण
कर्मणा विद्धि तामसस्य तथा फलम्' । द्रव्याणापि तत्तद्भेद-
माह नारदः । 'पार्श्विकद्यूतचौर्यार्त्तिप्रतिरूपकसाहसैः । व्याजे-
नोपार्जितं यदयत्तत्कृच्छ्रं समुदाहृतम्' । पार्श्विक पात्रतया
द्योजूयतीति प्रायश्चित्तविवेकः । आर्त्या परपीडया प्रतिरूप-
केण कृत्रिमरत्नादिना साहसेन समुद्रयानगिर्यारोहणादिना

३५२

शुद्धितत्त्वम् ।

व्याजेन ब्राह्मणवेशेन शूद्रादिना । कच्छं तामसं इति रत्ना-
 करः । 'कुशीदक्षषिवाणिज्यशल्कशालानुवृत्तिभिः । कृतोप-
 कारादाप्तञ्च राजसं समुदाहृतम्' अनुवृत्तिः सेवा । 'श्रुत-
 शीर्य्यतपःकन्याशिष्ययाज्यान्वयागतम् । धनं सप्तविधं शुद्धं
 मुनिभिः समुदाहृतम्' । श्रुतेनाध्ययनेन शीर्य्येण जयादिना
 तपसा जपहोमदेवार्चनादिना कन्यागतं कन्यया सहागतं
 श्वशुरादेर्लब्धं शिष्यागतं गुरुदक्षिणादिना याज्यागतम्
 आर्त्विज्यलब्धं अन्वयागतं दायादिभ्यो लब्धं शुद्धं सात्त्विकम् ।
 अत्र स्वत्वहेतुभूतव्यापाररूपार्जनगणे चौर्य्यस्यापि निर्देशात्
 चौर्य्योपात्तद्रव्येऽपि यथेष्टविनियोज्यत्वेन शास्त्रगम्यत्वरूप-
 स्वत्वमस्तीति प्रतीयते भवदेवभट्टसम्मतोऽयं पक्षः यत्तु 'द्रव्यम-
 स्वामिविक्रीतं पूर्वस्वामी समश्रुयात्' । इति याज्ञवल्क्येन
 चौर्य्यविक्रीतस्यास्वामिविक्रीतत्वमुक्तं तत्रास्वामिपदमप्रशस्त-
 स्वामिपरम् 'अप्राशस्त्यं विरोधश्च नजर्थाः षट् प्रकीर्त्तिताः'
 इति प्रागुक्तत्वान्न तु स्वामित्वाभावपरं प्रागुक्तनारदवचनविरो-
 धात् । 'ब्राह्मणस्त्वं न हर्त्तव्यं क्षत्रियेण कटाचन । दस्यु-
 निष्क्रययोस्तु स्वमजीवन् हर्त्तुमर्हति' इत्यनेन चौरस्वत्वाभि-
 धानाच्च अतएव याज्ञवल्क्यः । 'वुभुक्षितस्यहं स्थित्वा धान्यम-
 ब्राह्मणाद्धरेत्' । मनुरपि 'तथैव सप्तमे भक्ते भक्तानि षडन-
 श्रता । अश्वस्तनविधानेन हर्त्तव्यं हीनकर्मणा' इत्याभ्यां
 ब्राह्मणोपवासषडुपवासानन्तरं धान्यचौर्य्येण जीवनाभिधानात्त-
 दन्नस्य बलिवैश्वदेवार्हता प्रतीयत इति । व्यक्तं हरिवंशीय-
 सप्तव्याधोपाख्याने । 'ते नियोगादगुरोस्तस्य गां दोग्ध्रीं सम-
 पालयन् । क्रूरा बुद्धिः समभवत्तां गां वै हिंसितुं तदा ।
 पितृभ्यः कल्पयित्वैनानुपभुञ्जीत भारत । स्मृतिं प्रत्यवमर्षञ्च
 तेषां जात्यन्तरेऽभवत्' । अत्र गुरोर्गां हत्वा आद्येन चौराणां

शुद्धितत्त्वम् ।

३५३

मपि जातिस्मरत्वं दर्शनाच्चौर्ध्वेण स्वत्वं प्रतीयते । एतत्तु अत्यन्ता-
 शक्तानाम् । शक्तानां मत्स्यपुराणे 'गामग्नि' ब्राह्मणं शास्त्रं
 काञ्चनं सलिलं स्त्रियः । मातरं पितरञ्चैव ये निन्दन्ति नरा-
 धमाः । न तेषामूर्ध्वं गमनमेवमाह प्रजापतिः । परस्वं हरते यस्तु
 पश्चाद् दानं प्रयच्छति । न स गच्छति वै स्वर्गं दातारो यत्र
 भागिनः' । इति सात्त्विकराजसिकवत् फलाभावपरम् अन्यथा
 प्रागुक्तहारौतादिवचनाविरोधापत्तेः । शातातपपराशरौ ।
 'सन्निकृष्टमधीयानं ब्राह्मणं यो व्यतिक्रमेत् । भोजने चैव दाने
 च दहत्यासप्तमं कुलं' वशिष्ठव्यासपराशराः 'यस्य चैक गृहे
 मूर्खो दूरे चैव बहुश्रुतः । बहुश्रुताय दातव्यं नास्ति मूर्खं
 व्यतिक्रमः' । शातातपः 'मन्त्रपूर्वञ्च यद्ददानमपात्राय प्रदीयते ।
 दातुर्निष्क्रिय हस्तं तद्भोक्तुर्जिह्वां निकृन्तति । न ददस्वेति यो
 ब्रूयात् देवाग्नौ ब्राह्मणेषु च । तिर्यग्योनिशतं गत्वा चाण्डाले-
 ष्वभिजायते' । वशिष्ठः 'परिभुक्तमवज्ञातमपर्याप्तमसंस्कृतम् ।
 यः प्रयच्छति विप्रेभ्यस्तद्भक्ष्यवतिष्ठते' । अपर्याप्तं स्वकार्या-
 चमम् । यमः 'सुवर्णं रजतं ताम्रं यतिभ्यो न प्रयच्छति ।
 न स तत् फलमाप्नोति तत्रैव परिवर्तते' । अत्रैव दृष्टफल एवा-
 वतिष्ठते न स्वर्गादिफलमाप्नोतीत्यर्थः । महाभारते 'पङ्कज-
 वधिरा मूका व्याधिनोपहृताश्च ये । भर्तृव्यास्ते महाराज न
 तु देयः प्रतिग्रहः' । व्याधिना यत्स्मादिना । व्यासः । 'माता-
 पितृभ्यां यद्दत्तं यद् दत्तं भ्रातृबन्धुषु । आत्मजेषु च यद् दत्तं
 सोऽनन्तस्वर्गसंक्रमः । पितुः शतगुणं दानं सहस्रं मातुरेव
 च । अनन्तं दुहितुर्दानं सोऽर्घ्यं दत्तमक्षयम्' । विशेषयति
 नारदः 'सात्त्वित्वं प्रतिभाव्यञ्च दानं ग्रहणमेव च । विभक्ता
 भ्रातरः कुर्युर्नाविभक्ताः परस्परम् । योऽसद्भ्यः प्रतिगृह्यापि
 पुनः सद्भ्यः प्रयच्छति । आत्मानं संक्रमं कृत्वा परांस्तारयते

३५४

शुद्धितत्त्वम् ।

हि सः' धनस्वामिनमात्मानं सन्तारयति दुस्तरमिति शेषाद्धं
 स्कान्दे विशेषः । गोतमः 'अन्तर्जानुकरं कृत्वा सकुशन्तु
 तिलोदकम् । फलांशमभिसन्धाय प्रदद्याच्छुद्धयान्वितः' ।
 उदकस्तुतिमभिधायाह हारौतः 'तस्मादद्भिरवोच्येतद् दद्या-
 दालभ्य एव च' इति अवाच्य प्रोच्येति रत्नाकरः अत्र यद्यपि
 'उत्तानेन हस्तेन प्रोक्षणं समुदाहृतम् । न्युज्जताभ्युक्षणं प्रोक्तं
 तिरश्चावोक्षणं स्मृतम्' इति वर्द्धमानधृतेन विरुद्धम् । अतएव
 कुसुमाञ्जली प्रोक्षणाभ्युक्षणादिभिरिति भेदेनोक्तं तथापि
 'यस्य यद् दीयते वस्त्रमलङ्कारादिकाञ्चनम् । तेषां देवतमुच्चार्य
 कृत्वा प्रोक्षणपूजने । उत्सृज्य मूलमन्त्रेण प्रतिनाम्ना प्रतर्प-
 येत्' इति कालिकापुराणादशाख्यानेऽपि न शास्त्रविरोधः
 वस्तुतस्तु उभयदर्शनाद्वैकल्पिकम् आलभ्य पाणिना स्पृष्ट्वा ।
 आपस्तम्बः 'सर्वाण्युदकपूर्वाणि दानानि यथा श्रुतिव्रीहारे'
 इति अन्वाहार्यदानादौ यथा श्रुतिः यावदेव श्रूयते तावदेव
 कुर्यात् व्रीहारे यज्ञे । नोदकपूर्वतानियमः इति कल्पतरु-
 रत्नाकरौ अन्वाहार्यममावास्याश्राद्धम् एवञ्चापस्तम्बसूत्रैक-
 वाक्यत्वात् यथाश्रुतिव्रीहारः इति जैमिनिसूत्रेऽपि श्रुतिः
 शब्दौ व्युत्पत्तिः तेनोत्पत्तिवाक्ययोरर्थः श्रुतः स एव विनि-
 योगवाक्ये ग्राह्य इति सूत्रार्थः । न तु श्रुतेरेव शब्दैर्वाक्य-
 रचना कार्येत्यर्थः मूलभूतश्रुत्यन्तरकल्पनापत्तेरदृष्टार्थता-
 पत्तेश्च । ततश्च सङ्ख्यादिवाक्ये सङ्कल्पविषयीभूतस्यार्थ-
 स्याभिलष्यमानत्वादभिलापे तु तत् वाचकसर्वशब्दानां साम-
 र्थात् श्रुतशब्दस्य नियमो नास्ति अन्यथा विश्वजिता यज्ञेते-
 त्यादौ स्वर्गकाम इत्यभिलापो न स्यादश्रुतत्वात् तथा 'कपिला-
 कौटिदानान्तु' [गङ्गास्नानं विशिष्यते' इति ब्रह्माण्डपुराणात्
 कपिलाकौटिदानजन्यफलाधिकफलप्राप्तिकाम इति शिष्टानु-

शुद्धितत्त्वम् ।

३५५

भताभिलापो न स्यात् । अतएव ग्रहादीनां नानामुनिभि-
 र्नानानामान्युक्तानि तेषां यत्किञ्चिन्नामैवोक्तेखाय तथाच
 मत्स्यपुराणम् । ‘सूर्यः सोमस्तथा भीमो बुधजीवसितार्कजाः ।
 राहुः केतुरिति प्रोक्ता ग्रहालोकहितावहाः’ । याज्ञवल्क्यः ।
 ‘सूर्यः सोमो महौपुत्रो सोमपुत्रो बृहस्पतिः । शुक्रः शनैश्चरो-
 राहुः केतुश्चेति ग्रहाः स्मृताः’ । यत्र तु एकस्य देवस्य
 पूजादौ विशिष्य नानानामोपादानं तत्र तत एव तान्येवा-
 भिलाष्यानि न तु नामान्तराणि एवं यत्र बहुभिर्मुनिभिर्यन्त्रा-
 माभिधीयते तत्र तदेव वक्तव्यं तथाभिधानेन श्रुतिस्तत्रैव
 तात्पर्यं प्रतीयते । एवञ्च विधिशब्दस्य मन्त्रत्वे भावः स्यादिति
 न्यायेनापि विधिशब्दस्य विधिवाक्यस्य देवताप्रतिपादकमात्रस्य
 मन्त्रसम्पादकत्वं बोध्यं योगियाज्ञवल्केन । ‘मितो धाता-
 भगस्त्वष्टा पूषार्थ्यमांशुरेव च । पर्यायनामभिश्चैव एक एव
 निगद्यते’ तथा । ‘वाचकेऽपि च विज्ञाते वाच्य एव प्रसौ-
 दति’ । अतएव मनुः । ‘वाग्देवत्यैश्च चरुभिर्यजेरंस्ते
 सरस्वतीम् । अनृतस्यैनसस्तस्य कुर्वाणा निष्कृतिं पराम्’ ।
 अत्र वाग्देवता सरस्वतीति श्रुतेर्वाक् सरस्वत्योरेकार्यत्वात्
 वाग्देवत्यचरणा सरस्वतीयजनं सङ्गच्छते । अन्यथा नाम-
 भेदाद् देवताभेदे विरुद्धं स्यात् ते सत्यवचने सम्भाव्यमाने शूद्र-
 विट् क्षत्रियविप्रवधविषयानृतादिसाक्षिणः । स्मृतिः ‘नाम-
 गोत्रे समुच्चार्य प्राङ्मुखो देवकीर्तनात् । उदङ्मुखाय विप्राय
 दत्त्वान्ते स्विस्तिवाचयेत्’ । देवकीर्तनादिति ल्यप्बोपे पञ्चमी
 देवकीर्तनं कृत्वेत्यर्थः । ततश्च दात्रामुकदैवतं विष्णुदैवतं वा
 वक्तव्यमिति । विष्णुधर्माक्षरे ‘अभयं सर्वदैवत्यं भूमिर्वै
 विष्णुदैवता । कन्यादासस्तथा दासी प्राजापत्या प्रकीर्तिता
 प्राजापत्यो गजः प्रोक्तस्तुरगो यमदैवतः । तथाचैकशफं सर्वं

३५६

शुद्धितत्त्वम् ।

कथितं यमदैवतम् । महिषश्च तथा याम्य उष्ट्रो वै नैऋतो
 भवेत् । रौद्री धेनुर्विनिर्दिष्टा छाग आग्नेय उच्यते । मेघन्तु
 वारुणं विद्याहराहो वैष्णवः स्मृतः । आरण्याः पशवः सर्वे
 कथिता वायुदेवताः । जलाशयानि सर्वाणि वारिधानी
 कमण्डलुः । कुम्भश्च करकश्चैव वारुणानि विनिर्देशेत् । समुद्र-
 जानि रत्नानि सामुद्राणि तथैव च । आग्नेयं कनकं प्रोक्तं
 सर्वलोहानि वाप्यथ । प्राजापत्यानि शस्यानि पक्वान्मपि
 च द्विजाः । ज्ञेयानि सर्वगन्धानि गान्धर्वाणि विचक्षणैः ।
 वार्हस्पत्यं स्मृतं वासः सौम्यानि रजतानि च । पक्षिणश्च तथा
 सर्वे वायव्याः परिकीर्त्तिता । विद्या ब्राह्मी विनिर्दिष्टा विद्यो-
 पकरणानि च । सारस्वतानि ज्ञेयानि पुस्तकाद्यानि पण्डितैः ।
 सर्वेषां शिल्पभाण्डानां विश्वकर्मा तु दैवतम् । हुमाणामथ-
 पुष्पाणां शाकानां हरितैः सह । फलानामपि सर्वेषां तथा ज्ञेयो
 वनस्पतिः । मत्स्यमांसे विनिर्दिष्टे प्राजापत्ये तथैव च । कृत्वं
 कृष्णाजिनं शय्यां रथमासनमेव च । उपानहौ तथा यानं
 तथा यत् प्राणवर्जितम् । औत्तानाङ्गिरसं त्वेतत् प्रतिगृह्णीत
 मानवः । पर्यङ्क्याय तथोशीरं वर्मशस्त्रध्वजादिकम् । व्रतोप-
 करणं सर्वं कथितं सर्वदैवतम् । गृह्णन्तु सर्वदैवत्यं यदनुक्तं द्विजो-
 त्तमाः । तज्ज्ञेयं विष्णुदैवत्यं सर्वं वा विष्णुदैवतं देवकीर्त्तना-
 दित्यत्र देवकीर्त्तनात् षट्त्रिंशन्मते पाठः व्याख्यातश्च हेमा-
 द्रिणा । देवकीर्त्तनोत्तरकालं दत्वेत्यर्थः । विष्णुधर्मोत्तरेऽपि
 'द्रव्यस्य नाम गृह्णीयाद्दानीति ततो वदेत् । तोयं दद्यात्तथा
 दाता दाने विधिरयं स्मृतः' । व्यासः 'नामगोत्रे समुच्चार्य प्रद-
 द्यात् अङ्गयान्वितः । परितुष्टेन भावेन तुभ्यं संप्रददे इति' ।
 सम्प्रदानवाक्येऽहं प्रयोगमाह कात्यायनः । 'अहमस्मै ददा-
 नोति एवमाभाष्य दीयते' । एवञ्च सम्प्रददे ददानीत्येतयो-

शुद्धितत्त्वम् ।

३५७

बिकल्पः स च व्यवस्थितः आत्मगामिफले संप्रददे परगामिफले
 ददानीति उभयपदित्वात् दाधानोः फलवति कर्त्तर्यात्मने-
 पदं दृश्यते अफलवति कर्त्तरि परस्मैपदमिति पाणिनिसूत्रात् ।
 अतएवात्मनेपदपरस्मैपद इत्येतयोरात्मनेपरस्मै इत्याभ्यां
 समाख्या सङ्गच्छते । ददानीत्यस्य दद इतिवत् वर्त्तमानार्थ-
 तेति । अतएव सकृदाह ददानीति मननाप्यक्तं सङ्गच्छते
 अनुमत्यर्थे तु सकृत्वाभिधानमप्रयोजकमिति । आद्यादौ
 फलभागिनां गोवाद्यस्त्रेखदर्शनात् । तदितरत्रापि तथोक्ते-
 खाचारः । हारीतः । 'अथामद्व्यदानमस्वर्ग्यं यच्च दत्त्वा
 परितप्यते तर्ह्यदानमफलं यच्चोपकारिणे ददाति तन्मात्रं
 परिक्रिष्टं यच्च सोपधं ददाति अन्यत्रावितमल्पं यच्चापात्राय
 ददाति अनिष्टदानं स्रवति यच्चादत्त्वा प्रकीर्त्यते स्यदानं
 यच्चाश्रय्या ददाति क्रोधादात्तमं यच्चाक्रश्य ददाति दत्त्वा
 वा क्रोशति अमतकृतं पैशाचं यच्चावज्ञातं ददाति दत्त्वा
 वावजानीते ममूर्षो स्तामसं यच्चापकृतो ददाति' । एते दानो-
 पमर्गायैरुपसृष्टं दानमप्रमिद्धमस्वर्ग्यमयशस्यमध्रवफलं भव-
 त्यल्पफलं वेति । तर्हि व्यागानन्तरकाले हस्तार्पणमश्रवेऽपि
 अदानसमर्पणम उपकारिणे ध्यमनोपकारिणे तदितरोपकारिणे
 तु दत्तः 'मातापित्रोर्गुरौमित्रे विनीते चोपकारिणे दीनानाश्र-
 बिशिष्टेभ्यो दत्तन्तु सफलं भवेत्' । तन्मात्रं यथोक्तोपकरण-
 रहितम् । सोपधं सकृद्वा अन्यत्रावितं लोकसम्भावनार्थं प्रका-
 शितम् । अनिष्टदानं शत्रवे दानं स्यो मानभेदः अपकृतो-
 भयादिमान् । तथाच नारदः 'अदत्तन्तु भयक्रोधकामशोक-
 रुमन्वितैः । बालमूढास्वतन्त्रार्त्तमत्तोऽन्तापवर्जितैः कर्त्ता
 ममेदं कर्मेति प्रतिलाभेच्छया च यत्' । प्रतिलाभेच्छया
 सोपाधिदत्तमुपाध्यसिद्धाविति विवादचिन्तामणिः । एतत्

३५८

शुद्धितत्त्वम् ।

परमेव हारीतेन सोपधमित्युक्तम् । ब्रह्माण्डपुराणे । ‘शुचिः पवित्रपाणिष्व गृह्णीयादुत्तरामुखः । अभीष्टदेवतां ध्यायन् मनसा विजितेन्द्रियः । कृतोत्तरीयको नित्यमन्तर्जानुकरस्तथा । दातुरिष्टमभिधायन् प्रतिगृह्णादलोलुपः’ । पवित्रं व्याकरोति कात्यायनः । ‘अनन्तर्गर्भिणं साद्यं कौशं द्विदलमेव च । प्रादेशमात्रं विज्ञेयं पवित्रं यत्र कुत्रचित्’ । अनन्तर्गर्भिणम् अनन्तर्गर्भस्य भेदरूपाभावः अनन्तर्गर्भं तद् अस्यास्ति तत्तथेति अनन्तर्गर्भशून्यमित्यर्थः । तथाच शीनकः । ‘अनन्तस्तरुणो यौ तु कुशौ प्रादेशमस्मिन्तौ । अनखच्छेदिनौ साग्रीतौ पवित्राभिधायकौ’ । प्रचेताः । ‘दक्षिणहस्तमध्ये ब्राह्मणस्याग्नेयं तीर्थम् आग्नेयेन प्रतिगृह्णीयात्’ । आदित्यपुराणे । ‘ओङ्कारमुच्चरन् प्राज्ञो द्रविणं शक्तुमोदनम् । गृह्णीयाद् दक्षिणे हस्ते तदन्ते स्विस्ति कौर्त्तयेत्’ । ओङ्कारस्यात्र स्वीकारार्थत्वात् तेनैवात्र ग्रहणं युक्तम् । तथाचो मित्यभ्युपगम इति शाब्दिकाः । स्वस्तौति चेमार्थम् । तथाचामरः । ‘स्वस्वाशौः चेमपुष्पादौ’ इति । व्यासः । ‘दक्षिणाभिरुपेतं हि कर्म सिध्यति मानवे । सुवर्णमेव सर्वासु दक्षिणासु विधीयते’ । कर्मोपदेशिन्यां जैमिनिः । ‘सुवर्णे दौयमाने तु रजतं दक्षिणोच्यते’ । गृह्यपरिशिष्टे ‘अलाभे फलमूलानां भक्षणां दक्षिणां ददाति’ इति । अलाभे विहितदक्षिणा-लाभे । बृहस्पतिः ‘हतमश्रोत्रियं दानं हतो यज्ञस्त्वदक्षिणः । तस्मात् पणं काकिणीं वा फलपुष्पमथापि वा । प्रदद्याद् दक्षिणां यज्ञे तथा स सफलो भवेत्’ । नारदः ‘काकिणी च चतुर्भांशो मासकस्य पणस्य च’ । दक्षिणा तु सम्प्रदान-ब्राह्मणाय देयैव । एतेभ्योऽपि द्विजाग्रेभ्यो देयमन्नं सदक्षिणम्’ । इति मनुवचनात् । रोगे प्रतिमादाने व्यक्तमाह

शुद्धितत्त्वम् ।

५८

शातातपः 'पूर्वाभिमुखमाचार्यमभ्यर्च्य प्रतिमान्तु ताम् ।
 प्रदद्याद् दक्षिणां तस्मै मध्याह्ने समुपस्थिते' । प्रतिग्रहविधान-
 माह विष्णुधर्मोत्तरम् । 'भूमेः प्रतिग्रहं कुर्याद्भूमेः कृत्वा
 प्रदक्षिणम्' । प्रदक्षिणं न सर्वस्या भूमेः किन्तु तत्रस्थस्याः
 प्रदक्षिणावर्त्तमात्रं भूमेरसन्निधाने तासुद्दिश्य प्रदक्षिणम् ।
 'करे गृह्य तथा कन्यां दासदास्यौ द्विजोत्तमाः । करन्तु हृदि
 विन्यस्य धर्मो ज्ञेयः प्रतिग्रहः' । धर्मो धर्मविषयस्यायम् ।
 'आरुह्य च गजस्योक्तः कर्णे चाश्वस्य कीर्तितः । तथाचैक-
 शफनान्तु सर्वेषामविशेषतः । प्रतिगृह्णीत गां पुच्छे पुच्छे
 कृष्णाजिनं तथा । आरण्याः पशवश्चान्ये ग्राह्याः पुच्छे विच-
 क्षणैः । प्रतिग्रहमथोद्गस्य आरुह्य च तथाचरेत् । वीजानां
 मुष्टिमादाय रत्नान्यादाय सर्वतः । वस्त्रं दशान्तमादद्यात्
 परिधाय तथा पुनः । आरुह्योपानहौ यानमारुह्यैव च
 पादुके । ईशायान्तु रथं ग्राह्यं कृत्वा दण्डे च धारयेत् ।
 आयुधानि समादाय तथा भूष्यविभूषणम् । वर्मध्वजी तथा
 स्पृष्ट्वा प्रविश्य च तथा गृहम् । अवतीर्थ्य च सर्वाणि जल-
 स्थानानि वै द्विजाः । द्रव्याण्यन्यान्यथादाय स्पृष्ट्वा यो ब्राह्मणः
 पठेत् । प्रतिग्रह्येता सावित्रीं सर्वत्रैव प्रकीर्त्तयेत् । ततस्तु
 सार्धं द्रव्येण तस्य द्रव्यस्य दैवतम् । भूमिर्विष्णुदेवताकेत्यादि
 कौर्त्तयेदित्यर्थः । 'समापयेत्ततः पश्चात् कामस्तुत्या प्रति-
 ग्रहम् । विधिं धर्ममथो ज्ञात्वा यस्तु कुर्यात् प्रतिग्रहम् ।
 दात्रा सह तरत्येव नानादुर्गाण्यसौ द्विजः' । ब्रह्मपुराणे ।
 'ब्राह्मणः प्रतिगृह्णीयाद् हृत्त्यर्थं साधुतस्तथा । अव्यश्नमपि
 मातङ्गतिस्त्रिलौहाश्च वर्जयेत् । कृष्णाजिनहयग्राह्यौ न भूयः
 पुरुषो भवेत् । शय्यालङ्कारवस्त्रादि प्रतिगृह्य नृतस्य च ।
 जरकान्न निवर्त्तन्ते धेनुं तिलमयीं तथा' । तथा 'ब्रह्महत्या

१६०

शुद्धितत्त्वम् ।

सुरापानमपि स्त्रियं तरिष्यति । आतुराद् यद् गृहीतन्तु तत्
 कथं वै तरिष्यति । एतदादिद्रव्यदानं ग्रहीतुर्दोषजनकम् ।
 तदनिच्छवे विद्यारहितत्वेनासमर्थाय च दातुरपि दोष-
 जनकमाह दत्तः 'न केवलं हि तदयाति शेषमस्य च
 क्षयति' । तत् द्रव्यं शेषं द्रव्यस्य अतएव याज्ञवल्करः ।
 'विद्यातपोभ्यां हौनेन न तु ग्राह्यः प्रतिग्रहः । गृह्णन् प्रदा-
 तारमधो नयत्यात्मानमेव च' । अधो नरकम् । एतद्दान-
 प्रतिग्रहणोत्तरं तपो जपादिभिरात्मतारणक्षमाय स्वेच्छया
 प्रतिग्रहीत्रे दानं न दोषायेत्याह विष्णुः 'एतानि यदि
 गृह्णाति स्वेच्छयाभ्यर्थितो न तु । तस्मै दाने न दोषोऽस्ति
 यस्त्वात्मानन्तु तारयेत्' । तारणप्रकारमाह हारीतः । 'मणि-
 क्षासो गवादीनां प्रतिग्रहे सावित्र्यष्टसहस्रं जपेत् पञ्चमध्यमे
 दशोत्तमे द्वादशरात्रं पयो व्रतं शतसहस्रमसत्यतिग्रहेष्विति'
 अष्टसहस्रमष्टाधिकसहस्रम् असत्यतिग्रहेषु उभयतो मुख्यादि-
 प्रतिग्रहेषु तथाचादिपुराणे 'किंकरिष्यत्यसौ मूढो गृह्णात्यु-
 भयतो मुखौम् । सहस्रवारुणाः पाशाः खुरधाराऽग्नि सन्निभाः ।
 पूर्णे वर्षसहस्रे तु पाश एकः प्रमुच्यते' । अतएव देवलः ।
 'प्रतिग्रह समर्थो हि कृत्वा विप्रो यथाविधि । निस्तारयति
 दातारमात्मानञ्च स्वतेजसा' । स्कान्दे । 'वेदाङ्गपारगो विप्रो
 यदि कुर्यात् प्रतिग्रहम् । न स पापेन लिप्येत पद्मपत्र-
 मिवाभ्रसा' । एवं 'तीर्थे न प्रतिगृह्णीयात् पुण्येष्वायतनेषु
 च । निमित्तेषु च सर्वेषु न प्रमत्तो भवेन्नरः' । इति
 महाभारतवचनम् । प्रतिग्रहीतृदोषजनकगङ्गातीरादिदेश-
 ग्रहणादिकाले दानेऽपि बोध्यम् । किन्तु इदानीं तथाविध-
 पात्राभावात् । मनसा पात्रमुद्दिश्य इत्यादि प्रागुक्तवचनात्
 तत्तद्देशकालयोरुत्सृज्य देशान्तरे कालान्तरे च प्रतिपादना-

शुद्धितत्त्वम् ।

३६१

चारः सर्वथा समीचीनः । गङ्गावाक्यावत्पुष्पं यान्नवल्काः
 'प्रतिग्रहसमर्थो हि नादत्ते यः प्रतिग्रहम् । ये लोकादान-
 शीलानां स तानाप्नोति पुष्कलान्' । अपवादमाह स एव ।
 'कुशाः शाकं पयो मत्स्या गन्धाः पुष्पं दधि क्षितिः । 'मांस-
 शय्यासनं धानाः प्रत्याख्येयं न वारि च' । चकाराद् गृहादि
 'शय्यागृहान् कुशान् गन्धानपः पुष्पं मणीन् दधि । मत्स्यान्
 धानाः पयो मांसं शाकञ्चैव न निर्नुदेत्' इति वचनात् ।
 मणीन् विषादिनिवारकान् । तथा 'एधोदकं फलं मूलमन्न-
 मभ्युद्धृतं यत् । सर्वतः प्रतिगृह्णीयात् मध्वथाभयदक्षि-
 णाम्' । अभयदक्षिणाम् अभयदानम् अभयप्रद इति वक्ष्य-
 माणवचनात् । अभ्युद्धृतम् अभ्यर्थं दत्तं किमिति न प्रत्या-
 ख्येयम् इत्याह । तथाच मनुः 'अयाचितोदत्तं ग्राह्यमपि
 दुष्कृतकर्मणः । अन्यत्र कुलटाषण्डपतितेभ्यस्तथा द्विषः' ।
 एतद्वचनं यान्नवल्कास्येति मिताक्षराकुल्लूकभट्टमाधवाचार्याः ।
 मनोरिति शूलपाणिः । भरद्वाजः । 'अयाचितोपपन्ने तु
 नास्ति दोषः प्रतिग्रहे । अमृतं तद्विदुर्देवास्तस्मात्तं नैव
 निर्नुदेत्' । अपवादान्तरमाह स एव । 'देवातिथ्यर्चनकृते
 गुरुभृत्यार्थमेव च । सर्वतः प्रतिगृह्णीयादात्मवृत्त्यर्थमेव च' ।
 भृत्या भरणीयाः भार्यापुत्रादयः । तथा मनुः । 'वृद्धौ च
 मातापितरौ साध्वौ भार्या सुतः शिशुः । अप्यकार्यशतं
 कृत्वा भर्तृभ्या मनुरब्रवीत्' । आत्मवृत्त्यर्थं जीवनमात्रम् ।
 'न तु तृप्येत् स्वयं ततः' इति मनुस्मृतेः । प्रयोगसारे । 'प्रति-
 ग्रहं न गृह्णीयादात्मभोगोपलिप्तया । देवतातिथिपूजार्थं
 धनं यत्नादुपार्जयेत्' । अङ्गिराः 'कुटुम्बार्थं द्विजः शुद्रात् प्रति-
 गृह्णीत याचितम् । क्रत्वर्थमात्मने चैव न हि याचेत कर्हि-
 चित्' । अतएव यज्ञार्थं याचकत्वे निन्दामाह यान्नवल्काः ।

३१—क

३६२

शुद्धितत्त्वम् ।

‘चाण्डालो जायते यज्ञकरणाच्छूद्रभिक्त्वात्’ । शूद्रस्यापि अयाचितदातृत्वमाह नृसिंहपुराणम् । ‘अयाचितप्रदाता स्यात् कृषिं हृत्त्यर्थमाश्रयेत् । पुराणं शृणुयान्नित्यं नरसिंहस्य पूजनम्’ । मनुः । ‘वैश्यवृत्तिमनातिष्ठन् ब्राह्मणः स्वे पथि स्थितः । अवृत्तिकर्षितः सीदन्निमं धर्मं समाचरेत् । सर्वतः प्रतिगृह्णीयात् ब्राह्मणस्त्वनयं गतः । पवित्रं दुष्यते ह्येतद्धर्मतो नोपपद्यते । नाध्यापनाद् याजनाद्वा गर्हिताद्वा प्रतिग्रहात् । दोषो भवति विप्राणां ज्वलनाम्बुसमाहिते’ । ज्वलनाम्बुसमा अग्निजलसमा इति कुल्लूकभट्टः प्राचीन प्रायश्चित्तविवेके तथा पाठः । व्यासः । ‘अक्षत्रियाश्च राजानो विप्राः शूद्रोपजीविनः । शूद्राश्च ब्राह्मणाचाराभविष्यन्ति युगक्षये । याजयिष्यन्त्याज्यांश्च तथाभक्ष्यस्य भक्षिणः । ब्राह्मणाधनदणार्था युगान्ते समुपस्थिते’ । पाद्मे । ‘पराक्षं परवासञ्च नित्यधर्मरतस्यजेत् । सर्वतः प्रतिगृह्णीयात् भोजनं न समाचरेत्’ । स्कान्दे । ‘दुर्मित्रे दारुणे प्राप्ते कुटुम्बे सीदति क्षुधा । असतः प्रतिगृह्णीयात् प्रतिग्रहमतन्द्रितः’ । मनुः । ‘यद्यदिष्टतमं लोके यच्चापि दयितं गृहे । तत्तद् गुणवते देयं तदेवाक्षयमिष्यते’ । तेनेदं वाक्यम् अक्षयधान्यप्राप्तिकामो ब्राह्मणाय धान्यमहं सम्यददे । एवं सर्वत्र नन्दिपुराणे ‘आत्मविद्या च पौराणी धर्मशास्त्रात्मिका तथा । एता विद्यास्त्रयो मुख्याः सर्वदानक्रियाफलैः’ । आत्मविद्या उपनिषत् त्रयस्त्रिंशः । तथा ‘पुराणविद्यादातारस्त्वनन्तफलभागिनः’ । हरिवंशे । ‘शताश्वमेधस्य यदत्र पुण्यं चतुःसहस्रस्य शतक्रतोश्च । भवेदनन्तं हरिवंशदानात् प्रकीर्तितं व्यासमहर्षिणा च । यद्वाजपेयेन च राजसूयाद् दृष्टं फलं हस्तिरथेन चान्यत् । तल्लभ्यते व्यासवचः प्रमाणं गीतञ्च

शुद्धितत्त्वम् ।

३६९

वाल्मीकिमहर्षिणा च' । तेन शताश्वमेधयज्ञचतुःसहस्रशत-
 क्रतुजन्यपुण्यसमानन्तपुण्यवाजपेयराजसूयहस्तिरथदानजन्य-
 फलगमफलप्राप्तिः फलम् । मत्स्यपुराणम् । 'यत्राधिकृत्य
 गायत्रीं वर्ण्यते धर्मविस्तरः । वृत्रासुरबधोपेतं तद्भाग-
 वतमुच्यते । लिखित्वा तच्च यो दद्याद्धेमशृङ्गसमन्वितम् ।
 प्रौष्ठपद्यां पौर्णमास्यां स याति परमां गतिम् । अष्टादश-
 सहस्राणि पुराणं तत् प्रकीर्तितम्' । लिखित्वा लेखयित्वेति
 दानसागरः । पद्मपुराणम् । 'शालग्रामशिलाचक्रं यो दद्याद्
 दानमुत्तमम् । भूचक्रं तेन दत्तं स्यात् स शैलवनकाननं
 सर्वदानं विष्णुप्रीत्यर्थम् आह विष्णुपुराणम् । 'देयानि
 विप्रमुख्येभ्यो मधुसूदनतुष्टये' । इत्युपक्रम्य 'यद्यदिष्टतमं
 लोके यच्चाप्यस्ति गृहे शुचि । तत्तद्वि देयं प्रीत्यर्थं देवदेवस्य
 चक्रिणः' । देवसम्प्रदानकदानमाह विष्णुपुराणम् । 'पात्रा-
 ण्याध्यात्मिका मुख्या विशुद्धाश्चाग्निहोत्रिणः । देवताश्च तथा
 मुख्या गोदानं ह्येतदुत्तमम् । यश्चोभयमुखीं दद्याद्द्वानां विप्रे
 वेदपारगे । देवाय वाप्यभीष्टाय सकुल्यान्येकविंशतिम् ।
 समुद्रस्य नरस्तिष्ठेन्नरकाद् ब्रह्मणोऽन्तिके । युगानि रोम-
 तुल्यानि यदि श्रद्धापरो नरः' । तत् प्रतिपत्तिमाह दानसागरे
 स्कन्दपुराणम् । यत्किञ्चिद्देयनीशानमुद्दिश्य ब्राह्मणे शुचौ ।
 दौयते विष्णवे चाथ तदनन्तफलं स्मृतम्' । यत्किञ्चिद्देयं
 दानार्हं वस्तु ईशानमुद्दिश्य त्यक्तम् । विष्णवे वा दत्तं
 पश्चाद्वा ब्राह्मणाय प्रदौयते प्रतिपाद्यते । तत्सर्वमनन्तफलम् ।
 तथाच मत्स्यसूक्तम् । 'देवे दत्त्वा तु दानानि देवे दद्याच्च
 दक्षिणाम् । तत् सर्वं ब्राह्मणे दद्यादन्यथा निष्फलं भवेत्' ।
 इति दत्तेत्यत्र देयानीति वाराहीतन्त्रे पाठः । बृहस्पतिः ।
 'षष्टिवर्षसहस्राणि स्वर्गं वसति भूमिदः । उच्छेत्ता चानुमन्ता

३६४

शुद्धितत्त्वम् ।

च तावन्ति नरके वसेत्' । तथा 'भूमिं दत्त्वा तु यः
 पत्रं कुर्याच्चन्द्रार्ककालिकम् । अनाच्छेद्यमनाहार्यं दान-
 लेख्यन्तु तद्विदुः' । महाभारते । 'अपि पापकृतो राज्ञः
 प्रतिगृह्णन्ति साधवः । पृथिवीं नान्यदिच्छन्ति पावनीं जननीं
 यतः । नामास्याः प्रियदत्तेति गुह्यं' देव्याः सनातनम् ।
 दानं वाप्यथ वा दानं नामास्याः परमं प्रियम्' । दानादान-
 काले यत् प्रियदत्तानामास्याः परमं प्रियमित्युक्तम् । तेन
 प्रियदत्तामुच्चार्य दातव्या गृहीतव्या च विष्णुः । 'तैजसानां
 हि पात्राणां प्रदानेन पात्री भवति कामानामिति' । मनुः ।
 'वारिदस्तृप्तिमाप्नोति सुखमक्षय्यमन्नदः । तिलप्रदः प्रजा-
 मिष्टां दीपदश्चक्षुरुत्तमम् । भूमिदः सर्वमाप्नोति दीर्घमायु-
 र्हरिश्चदः । गृहदोऽप्याणि वेश्मानि रूप्यदो रूपमुत्तमम् ।
 वासोदश्चन्द्रसालोक्यमश्विसालोक्यमश्वदः । अनङ्गदः श्रियं
 पुष्टां गोदो ब्रध्नस्य पिष्टपम् । यानशय्याप्रदो भार्यामैश्वर्यम-
 भयप्रदः । धान्यदः सर्वसौख्यन्तु ब्रह्मदो ब्रह्मसार्ष्टिताम्' ।
 सर्वमिति यस्य यदपेक्षितम् । ब्रध्नस्य पिष्टपं सूर्यलोकम् ।
 अभयप्रदः शरणागतरक्षकः । तथाच रामायणम् । 'पर्याप्त-
 दक्षिणस्यापि नाश्वमेधस्य तत् फलम् । यत् फलं याति
 संवासे रक्षिते शरणागते' । अकरणे निन्दामाह महा-
 भारते । 'प्राणिनं बध्यमानं हि यः शक्तः समुपेक्षते । स याति
 नरकं घोरमेवमाहुर्मनीषिणः' । ब्रह्मदो वेदाध्यापयिता ।
 ब्रह्मसार्ष्टितां ब्रह्मसमानगतिताम् । अत्र जलादिमात्रदाने
 तु तत्तत्फलं तैजसपात्रदाने तु बहुकामपात्री भवनं फलम् ।
 न तु जलादियुक्ततैजसपात्रदाने विशेषफलमूक्तं ततश्च 'नाना-
 विधानि द्रव्याणि धनानि विविधानि च । आयुष्कामेण
 देयानि स्वर्गमक्षयमिच्छता' । इति यमदेवलवचनात् ।

शुद्धितत्त्वम् ।

३६५

स्वर्गकामनयैव तैजसपात्रयुक्तद्रव्यदानं तथैवंभूतदाने विष्णु-
 दैवतं वक्तुं युक्तम् । स्कान्दे । 'आसनं यः प्रयच्छेत्तु संवीतं
 ब्राह्मणाय वै । राज्यस्थानमवाप्नोति स्वर्गं प्राप्नोत्यनुत्तमम्' ।
 संवीतं वस्त्राच्छादितम् । अत्रासनकन्यागोदानेषु सवस्त्रत्व-
 श्रुतेरन्यत्रापि तथा व्यवहरन्ति । संवर्तः । 'ताम्बूलञ्चैव यो
 दद्यात् ब्राह्मणाय विचक्षणः । मेधावी सुभगः प्राज्ञो दर्श-
 नीयश्च जायते' । वशिष्ठः । 'सुपूगञ्च सुपर्णञ्च सूचूर्णेन
 समन्वितम् । अदत्त्वा द्विजदेविभ्यस्ताम्बूलं वर्जयेद्बुधः' ।
 आग्नेये । 'घर्मवातातपमहं कृत्वं दद्यात् द्विजातये । सर्व-
 व्याधिविनिर्मुक्तः श्रियं पुत्रांश्च विन्दति' । विष्णुधर्मोत्तरे ।
 'कृत्रोपानहदातारस्त्री नराः स्वर्गगामिनः' । नारदीये ।
 'गन्धदः पुण्यफलदः प्रयाति ब्रह्मणः पदम्' । याज्ञवल्करः ।
 'गृहधान्याभयोपानच्छत्रमाख्यानुलेपनम् । यानं वृत्तं प्रियं
 शय्यां दत्त्वात्यन्तं सुखी भवेत्' । प्रियं यद् यस्य हर्ष्यादि ।
 संवर्तः । 'फलमूलानि यानानि शाकानि विविधानि च ।
 दानानि दत्त्वा विप्रेभ्यो मुदायुक्तः सदा भवेत्' । ब्रह्मपुराणम् ।
 'काष्ठस्य पादुकादीनि पीठकाद्यासनानि च । यैर्दत्तानि
 द्विजातिभ्यः स्वर्गं यान्ति यथासुखम्' । याज्ञवल्करः । 'हेम-
 शृङ्गीशफैरूप्यैः सुशीला वस्त्रशोभिता । सकांस्यपात्रा
 दातव्या चीरिणी गौः सदक्षिणा । दातास्याः स्वर्गमाप्नोति
 वत्सरास्त्रोममस्मितान् । कपिला चेतारयति भूयश्चासप्तमं
 कुलम् । सवत्सा लोमतुल्यानि युगान्भुजयतोमुखी । दातास्याः
 स्वर्गमाप्नोति पूर्वेण विधिना ददत्' । उभयतो मुखीमाह
 याज्ञवल्करः । 'यावद्वत्सस्य पादौ द्वौ मुखं योनौ प्रदृश्यते ।
 तावद्द्वौ पृथिवी ज्ञेया यावद्द्वौ न मुञ्चति । यथाकथञ्चित्
 दत्त्वा गां धेनून् वा धेनुमेव वा । अरोगामपरिक्लिष्टां दत्त्वा

३६६

शुद्धितत्त्वम् ।

स्वर्गं महीयते' । अङ्गिराः 'बहुभ्यो न प्रदेयानि गौर्गृहं
 शयनं स्त्रियः । विभक्तदक्षिणा एता दातारं तारयन्ति हि ।
 एकाह्येकस्य दातव्या न बहुभ्यः कथञ्चन । सा तु विक्रय-
 मापन्ना दहत्यासप्तमं कुलम्' । अन्यदेकमपि बहुभ्यो
 दातव्यम् । तथाच स्कन्दपुराणं 'राजतं यः प्रयच्छेत्तु द्विजेभ्यो
 भाजनं शुभम् । स गन्धर्वपदं प्राप्य उर्वश्या सहस्रोदते' ।
 विष्णुधर्मोत्तरे । 'तथौषधप्रदानेन विरोगस्त्वभिजायते' ।
 नन्दिपुराणम् । 'यश्च वेश्म शुभं दद्यात् सर्वोपकरणान्वितम् ।
 विप्राय नियमस्थाय स पूतः सर्वपातकात्' । उपकरणं
 धान्यादि नियमस्थाय उपवासादिब्रतशीलाय इति दानसा-
 गरः । नन्दिपुराणं 'योऽश्वं रथं गजं वापि ब्राह्मणे प्रति-
 पादयेत् । स शक्रस्य वसेल्लोके शक्रतुल्यो युगान् दश ।
 प्राप्यन्ते चैव मानुष्यं राजा भवति बुद्धिमान् । उपानही च
 यो दद्यात् ब्राह्मणाय प्रवासिने । स गजैस्तुरगैर्याति याने
 पथि यथासुखम्' । याज्ञवल्क्यः 'भूदीपाश्वान्रवस्त्राभस्तिल-
 सर्पिः प्रतिश्रयान् । नैवेशिकं स्वर्णधुर्य्यं दत्त्वा स्वर्गं मही-
 यते' । प्रतिश्रयो गृहाद्याश्रयः । नैवेशिकं विवाहोचित-
 द्रव्यम् । धूर्याः वल्लोवर्हादयः । महाभारते । 'अग्निर्वै
 सकलादेवाः सुवर्णञ्च तदात्मकम् । तस्मात् सुवर्णं ददता
 दत्ताः स्युः सर्वदेवताः' । यमः । 'इन्धनानां प्रदानेन दीप्ता-
 ग्निर्जायते भुवि' । तथा 'गन्धौषधमथाभ्यङ्गमाक्षिकं लवणं
 तथा । यः प्रयच्छति विप्राय सौभाग्यं स तु विन्दति' ।
 मत्स्यपुराणम् । 'पायसं मधुसंयुक्तं भक्ष्याणि विविधानि च ।
 यथाशक्त्या तु राजेन्द्र भोजयेच्च सदक्षिणम् । ततश्चोद्दिश्य
 पितरम्' इति रामायणवचनात् । अशीचान्तद्वितीयदिनेऽपि
 दानानि कार्याणि । तत्र स्मृतिः । प्रेतमुद्दिश्य यो दद्यात्

शुद्धितत्त्वम् ।

३६७

हेमगर्भांस्तिलान्नप । यावन्तस्ते तिलाः स्वर्गे तावत् कालं
 स मोदते । महाभारते 'कल्यमुत्थाय यो विप्रः स्नातः शुक्लेन
 वाससा । तिलपात्रं प्रयच्छन् वै सर्वपापैः प्रमुच्यते' । एताभ्यां
 वचनाभ्यां मिलितदानं प्रत्येकवचनोक्तदानं वा प्रतीयते यदि
 मरणात् प्राक् वैतरणी न दत्ता तदेदानीं दातव्या । 'कृष्णां
 वैतरणीं धेनुं यः प्रयच्छेत् द्विजातये । सर्वपापविनिर्मुक्तो
 वैतरणीं तरते सुखम्' इति स्मृतेः वैदिककर्ममात्रे तु ओम्
 तत्सदित्युच्चार्य दद्यादित्याह । भगवन्गीता । 'ओम् तत्-
 सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः । ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च
 यज्ञाश्च विहिताः पुराः । तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदान-
 तपःक्रिया । प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम् ।
 तदिति अभिसन्धाय यज्ञदानतपःक्रिया । दानक्रियाश्च विविधा
 क्रियन्ते मोक्षकाङ्क्षिभिः । सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्
 प्रयुज्यते । प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते' ।
 ओम् तत्सदिति त्रिप्रकारो ब्रह्मणो जगदीश्वरस्याभिधानं
 सुनिभिश्चिन्तितम् । यस्यायं त्रिविधो निर्देशः तेन परमा-
 त्मना ब्राह्मणादयो निर्मिताः । यस्मादेवं ब्रह्मणो निर्देश-
 स्तस्मादोमित्युदाहृत्य उच्चार्य कृता यज्ञाद्याः सततम् अङ्ग-
 वैकल्येऽपि प्रकर्षेण प्रवर्तन्ते साङ्गा भवन्ति । व्यक्तं योगि-
 याज्ञवल्करः । 'वाच्यः स ईश्वरः प्रीतो वाचकः प्रणवः स्मृतः ।
 वाचकेऽपि च विज्ञाते वाच्य एव प्रसीदति' । तथा 'यत्नून-
 चातिरिक्तञ्च यच्छ्रद्धं यदयन्नियम् । यदमेध्यमशुद्धञ्च यातया-
 मञ्च यद्भवेत् । तदोङ्कारप्रयुक्तेन सर्वञ्चाविकलं भवेत्' ।
 तदित्युदाहृत्य इत्यनुषङ्गः । अनभिसन्धाय यज्ञादिकर्मणः
 फलमिति शेषः । फलाभिसन्धानं विना मुमुक्षुणा कर्म
 कर्तव्यमित्यर्थः । यतः सतो विद्यमानस्य भावे जन्मानि साधु-

३६८

शुद्धितत्त्वम् ।

भावे उत्कृष्टचरिते च सदिति प्रयुज्यते । अतो यज्ञादौ कर्मणि प्रथमतः सच्छब्दः प्रयुज्यत इति षोडशदानक्रममाहुः साम्प्रदायिकाः । 'भूम्यासनं जलं वस्त्रं प्रदीपोऽन्नं ततः परम् । ताम्बूलच्छत्रगन्धाश्च माल्यं फलमतः परम् । शय्या च पादुका गावः काञ्चनं रजतं तथा । दानमेतत् षोडशकं प्रेतमुद्दिश्य दीयते' । अत्र प्रयोगः । अशौचान्ताद्वितीयदिने सूर्योदयानन्तरं स शिरस्कमात्रं स्नात्वा माङ्गल्यं घृतादि स्पृष्ट्वा स्वशाखोक्तशान्तिं कृत्वा ब्राह्मणान् स्वस्ति वाच्य विप्रो जलं क्षत्रियो वाहनं वैश्यो प्रतोदं शूद्रो यष्टिं स्पृष्ट्वा शुद्धः सन् वैधस्नानादिनित्यक्रियां कुर्यात् । ततो हेमगर्भतिलदानं तत्र क्रमः । प्राङ्मुख उदङ्मुखं ब्राह्मणं गन्धपुष्पाभ्यां संपूज्य । ओम् सवस्त्रतैजसाधारहेमगर्भतिलेभ्यो नमः । इति गन्धपुष्पाभ्यां तान् पूजयित्वा एतदधिपतये विष्णवे नम इति संपूज्य ब्राह्मणहस्ते जलं दत्त्वा सवस्त्रतैजसाधारहेमगर्भतिलांश्च संप्रोक्ष्य वामहस्तेन धृत्वा तिलकुशजलान्यादाय । ओम् तत्सदित्युच्चार्य अमुके मासि अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकगोत्रस्य प्रेतस्य अमुकदेवशर्मणोऽशौचान्ताद्वितीयेऽङ्गि अमुकगोत्रस्य प्रेतस्य अमुकदेवशर्मणः स्वर्गकाम एतान् सवस्त्रतैजसाधारहेमगर्भतिलान् विष्णुदेवतान् अमुकगोत्राय अमुकदेवशर्मणे ब्राह्मणाय तुभ्यमहं सम्प्रददानि इति सम्प्रदानब्राह्मणहस्ते जलं दद्यात् । एवमेव पितृदयितादानसागरयोः । स्वगामिफले तु सम्प्रददे इति । तिलानां मुष्टिमादाय हेमतैजसपात्रयोः करमध्यात्मकाम्नेय तीर्थेन वस्त्रस्य दशान्तग्रहणपरिधानाभ्यां ओमित्युक्त्वा प्रतिगृह्य स्वस्ति इत्युक्त्वासावित्रीं पठित्वा एते सवस्त्रतैजसाधारहेमगर्भतिलाविष्णुदेवताका इति वदेत् । ततो यथाशाखं कामस्तुतिं पठेत् ।

शुद्धितत्त्वम् ।

३६८

यथा ऋग्वेदी 'ओम् क इदं कस्मा अदात् कामः कामाया-
 दात् कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता कामः समुद्रमाविशत् ।
 कामेन त्वा प्रतिगृह्णामि कामैतत्ते द्युष्टिरसि द्यौस्त्वादधातु
 पृथिवीत्वा प्रतिगृह्णातु' । १ । यजुर्वेदे तु । ओम् द्यौस्त्वा
 परिदधातु पृथिवी त्वा प्रतिगृह्णातु कोऽदात् कस्मा अदात्
 कामः कामायादात् कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता कामै-
 तत्ते तव कामसता भुञ्जामहे' । २ । सामवेदे तु 'ओम् क इदं
 कस्मा अदात्' कामः कामायादात् कामो दाता कामः प्रति-
 ग्रहीता कामः समुद्रमाविशत् कामेन त्वा प्रतिगृह्णाति
 कामैतत्ते' । ३ । अथर्ववेदे तु । 'क इदं कस्मा अदात् कामः
 कामादायात् कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता कामः समुद्र-
 माविशत् कामेन त्वा प्रतिगृह्णात्वन्तरीक्षमिदं महोत्साहं
 प्राणेनेति' । ततो दाता ओम् अद्येत्यादि कृतैतत् अमुक-
 दानप्रतिष्ठार्थं दक्षिणामिदं काञ्चनम् अग्निदेवतं तन्मूल्यं
 वा विष्णुदेवतं तुभ्यमहं सम्प्रददानि इति ब्राह्मणाय दद्यात् ।
 ब्राह्मणासन्निधाने यथासम्भवगोत्रनाम्ने ब्राह्मणायेति विशेषः ।
 तुभ्यमिति न देयं भूमौ त्यागजलप्रक्षेपः । एवमन्यत्रापि
 यथायोग्यमूहनीयम् । 'सुवर्णं परमं दानं सुवर्णं दक्षिणा
 परा । सर्वेषामेव दानानां सुवर्णं दक्षिणेत्यते' इति वचनात्
 काञ्चनं दक्षिणा देया । तत्तत् फलकामनायान्तु हेमगर्भ-
 तिलानां तत्तत्तिलसमसंख्यवर्षावच्छिन्नस्वर्गलोकमोदनं फलम् ।
 वैतरण्या रुद्रो देवता सर्वपापविनिर्मुक्तिपूर्वकवैतरणीमुख-
 सन्तरणं फलम् । अन्यत्र ओम् 'यमहारे महाघोरे तप्ता
 वैतरणी नदी । तान्तु तर्तुं ददाम्येनां कृष्णां वैतरणीञ्च
 गाम्' । इत्युच्चार्य उत्सृजेत् । प्रतिग्रहे पुच्छधारणं भूमेः
 पूजायां दानवाक्ये च प्रियदत्तेति विशेषणम् । भूमेर्देवता-

३७०

शुद्धितत्त्वम् ।

विष्णुः । षष्टिवर्षसहस्रावच्छिन्नस्वर्गवासफलम् । प्रतिग्रहे तदभूमेः प्रदक्षिणीकरणं भूमेरसन्निधाने तामुद्दिश्य प्रदक्षिणम् । १ । आसनस्य उत्तानाङ्गिरसो देवता राज्यस्थानानुत्तमस्वर्गप्राप्तिः फलम् । तत्र विशेषानुपदेशात् करमध्यात्मकाग्नेयेन तीर्थेन प्रतिग्रह एवमन्यत्रापि आग्नेयं करतलम् । २ । जलस्य वरुणो देवता दक्षिणप्राप्तिः फलम् । ३ । वस्त्रस्य बृहस्पतिदेवता चन्द्रमालोक्यप्राप्तिः फलं प्रतिग्रहे दशान्तग्रहणपरिधाने । ४ । दीपस्याग्निदेवता उत्तमचक्षुःप्राप्तिं फलम् । ५ । अन्नस्य प्रजापतिदेवता अक्षयसुखप्राप्तिः फलं प्रतिग्रहे मुष्टिग्रहणम् । ६ । ताम्बूलस्य वनस्पतिदेवता मेधावित्सुभगत्वप्राप्त्यदर्शनीयत्वप्राप्तिः फलम् । ७ । कुत्रस्य उत्तानाङ्गिरो देवता सर्वव्याधिविनिर्मुक्तत्वश्रीमत्त्वबहुपुत्रत्वप्राप्तिः फलम् । प्रतिग्रहे दण्डधारणम् । ८ । गन्धस्य गन्धर्वो देवता ब्रह्मपदप्रयाणं फलम् । ९ । माल्यस्य वनस्पतिदेवता अत्यन्तसुखित्वभवनं फलम् । १० । फलस्य वनस्पतिदेवतासुदायुक्तत्वं फलम् । ११ । शय्याया उत्तानाङ्गिरो देवता अत्यन्तसुखित्वभवनं फलं प्रतिग्रहे आरोहणम् । १२ । पादुकायुगलस्य उत्तानाङ्गिरो देवता स्वर्गलोकसुखगमनं फलं प्रतिग्रहे आरोहणम् । १३ । धेनो रुद्रदेवता सूर्यलोकप्राप्तिः फलम् । तत्र धेनुं प्राङ्मुखीमात्मसमीपमाननीय । ओम् 'या लक्ष्मीः सर्वभूतानां या च देवेष्ववस्थिता । धेनुरूपेण सा देवी मम शान्तिं प्रयच्छतु' । ओम् 'देवस्था या च रुद्राणी शङ्करस्य च या प्रिया । धेनुरूपेण सा देवी मम शान्तिं प्रयच्छतु' । ओम् 'विष्णोर्वक्षसि या लक्ष्मीर्या लक्ष्मीर्धनदस्य च । या लक्ष्मीः सर्वभूतानां सा धेनुर्वरदास्तु मे' । ओम् 'चतुर्मुखस्य या लक्ष्मीः स्वाहा चैव विभावसोः । चन्द्रार्क-

शुद्धितत्त्वम् ।

३७१

शक्रशक्तिर्या धेनुरूपास्तु सा त्रिये' । ओम् 'स्वधात्वं पितृ-
सङ्गानां स्वाहा यज्ञभुजां यतः । सर्वपापहरा धेनुस्तस्मा-
च्छान्ति' प्रयच्छ मे' । ओम् 'सर्वदेवमयीं देवीं सर्ववेदमयीं
तथा । सर्वलोकनिमित्ताय सर्वलोकमपि स्थिरम् । प्रय-
च्छामि महाभागमक्षयाय सुखाय च' । इत्युच्चार्य उत्-
सृजेत् प्रतिग्रहे पुच्छधारणम् । १४ । हिरण्यस्याग्निर्देवता
दौर्घायुःप्राप्तिः फलम् । १५ । रजतस्य चन्द्रमा देवता उत्तम-
रूपप्राप्तिःफलम् । १६ । एवमन्यानि तत्तत्कामनया देयानि ।
वस्तुतोऽत्र जलादिमात्रदाने तत्तत्फलं तैजसपात्रदाने बहु-
कामपात्रो भवनं फलम् । न तु जलादियुक्तं तैजसपात्रदाने
विशेष्यफलमुक्तम् । ततश्च 'नानाविधानि द्रव्याणि धनानि
विविधानि च । आयुष्कामेन देयानि स्वर्गमक्षयमिच्छता' ।
इति यमदेवलवचनात् । स्वर्गकामनयैव पात्रयुक्ततथाविध-
द्रव्यदानं युक्तम् । तथैवभूतदाने विष्णुदेवतमिति वक्तु-
मुचितम् । 'तज्ज्ञेयं विष्णुदेवत्यं सर्वं वा विष्णुदेवतम्' ।
इति विष्णुधर्मोत्तरवचनात् । ततो विलक्षणां शय्यां दद्यात् ।
तत्र स्वर्गफलं नानाभरणैर्द्विजदम्पती भूषयित्वा फलवस्त्र-
समन्वितं प्रेतप्रतिकृतिरूपं काञ्चनपुरुषं शय्यायामारोप्य तां
गन्धपुष्पाभ्यां संपूज्य ताभ्यां द्विजदम्पतीभ्यां दद्यात् । ततश्च
तस्यां तावुपवेशयेत् । ततो दक्षिणां दद्यात् । एवं
संक्रान्त्यादौ स्वगामिफले तु ददानौत्यत्र संप्रददे इत्यभि-
लापे विशेषः । एवञ्चैकशो मिलितं वानादिद्रव्यं काञ्च-
नादिधनं वा आयुष्कामेण स्वर्गकामेन वा एकैकशो द्रव्यं
तत्तत्फलकामेन वा देयमिति । ततो वृषोत्सर्गः । स्वर्गलोक्त-
विधिना कार्यः तत्र प्रेतलोकपरित्यागपूर्वकस्वर्गलोकगमनं
फलम् । ततश्च पूर्वोक्तविधिना कपिलां दद्यात् । तत्र

३७२

शुद्धितत्त्वम् ।

रुद्रदेवता स्वर्गः फलम् । ततश्च स्वगृह्योक्तविधिना एकोद्दिष्टं कुर्यात् ।

अथ वृषोत्सर्गविचारः । तत्रौपादानिकस्रत्त्वनिरासाय कामधेनुकल्पतरुधृतब्रह्मपुराणम् । ‘अथ वृत्ते वृषोत्सर्गे दाता वक्रोक्तिभिः पदैः । ब्राह्मणानाह यत्किञ्चिन्मयोत्सृष्टन्तु निर्जने । तत्कश्चिदन्यो न नयेत् न विभाज्यं यथाक्रमम् । न बाह्यं न च तत् क्षीरं पातव्यं केनचित् क्वचित्’ इति । कृत्यप्रदीपेऽप्येवं वक्रोक्तिभिः काकूक्तिभिः । स्वामित्वाजनकहोमाङ्गकवेदमेयत्यागरूपत्वादस्य यज्ञरूपत्वं युक्तं तत्तु भाक्तं देवतोद्देश्यकत्वाभावात् । तथाच यज्ञं व्याख्यास्यामो द्रव्यदेवता त्यागस्तदङ्गमितरदिति स्मृतेः । देवतोद्देशेन द्रव्यत्यागो यज्ञपदार्थः सर्वमन्यत्तदङ्गमिति हरिशर्मव्याख्यातं तथाच हारीतः । ‘मन्त्रद्रव्याग्निसंयोगं यज्ञमाहुर्मनीषिणः’ । मन्त्रस्यापि देवताविग्रहरूपत्वात् । पूर्ववचनेनास्य विरोधः । तथाच देवीपुराणीयवास्तुयागे प्राजेशं मन्त्रविग्रहमित्युक्तम् । अतएव मिताक्षरायां विवाहोत्सवयज्ञेषु इत्यत्र यज्ञे वृषोत्सर्गावित्युक्तम् । द्वैतनिर्णयेऽपि । आभ्युदयिकञ्च वृषोत्सर्गे इष्टित्वेनावश्यकम् । एकादशाहे तु तद्विधेर्निर्वकाशतयाऽगत्यैवाभ्युदयिकाभावेऽपि वृषोत्सर्गसिद्धिरित्युक्तम् । उशनसापि ‘नार्वाक् संवत्सराहर्द्धिवृषोत्सर्गे’ विधीयते । सपिण्डीकरणादूर्ध्वं वृद्धिश्राद्धं विधीयते’ इत्युक्तं पारस्करेण शूलगवमभिधाय एतेनैव गोयज्ञो व्याख्यात इत्यादिना गोयज्ञमभिधायन्ते तस्य तुल्यवया गोर्दक्षिणा इत्युक्ताथ वृषोत्सर्गो गोयज्ञेन व्याख्यात इत्युक्तम् । तेन वृषोत्सर्गस्य शूलगवतुल्यगोयज्ञातिदेशात् यागत्वमिति । यद्यपि गोयज्ञे उपदिष्टपायसेन शूलगवातिदिष्टपशुनिवृत्तौ

शुद्धितत्त्वम् ।

३७३

तस्य तुल्यवया गौरित्यनुपपन्नं तथापि अत्र तच्छब्देन प्रक्रान्तशूलगवप्रक्रम्यमाणवृषोत्सर्गे पशुः परामृश्यते । अतस्तयोर्दक्षिणेयं गोयज्ञप्रकरणपाठात् तत्रापि यथासम्भववयस्का गौर्दक्षिणेति हरिशर्माऽपि एवम् । एवञ्च वृषोत्सर्गेऽपि वृषतुल्या गौर्दक्षिणा । कुन्दोगपरिशिष्टेऽपि 'अथ वृषवत्सतरीणामलङ्कारं वाससी च अचार्याय प्रयच्छेत् गाञ्चेति' । अत्र वृषवत्सतरीयलङ्कारवस्त्रयुग्मस्य परिधाप्याहते शुक्ले वाससी हेमपट्टकमिति कुन्दोगपरिशिष्टवचनान्तरोक्तान्तर्भूतोपयोग्यस्य प्रतिपत्तिमाचार्याय पूर्वमभिधाय गाञ्चेति पृथगुपादानं तस्मै दक्षिणार्थमिति व्यक्तमाह भविष्ये । 'वृषतुल्यवयो वर्णी वृषः स्यादक्षिणादिजाः । वृषोत्सर्गे तु पुंसां वै स्त्रीणां स्त्री गौर्विशिष्यते' । एतेन दक्षिणाशून्यमिदमिति ब्रह्मपुराणेऽपि । स्वधापिटभ्य इत्याद्यभिधाय 'दद्यादनेन मन्त्रेण तिलाक्षतयुतं जलम् । पिटभ्यश्च समासेन ब्राह्मणेभ्यश्च दक्षिणाम्' इति अत्र ब्राह्मणेभ्यो ब्राह्महोत्राचार्येभ्य इति प्रतीयते । अत्र वृषोत्सर्गमात्रे तन्मन्त्रकरणकतिलयवयुक्तजलदानश्रुतेः । प्रेतवृषोत्सर्गेऽपि तत्करणं तदङ्गत्वात् । न च शूलगवातिदिष्टगोयज्ञातिदेशात् वृषोत्सर्गेऽपि आवसथ्याग्निमात्रलाभाद्विरग्नेर्नाधिकार इति वाच्यम् । मध्ये गवां सुसमिद्धमग्निं कृत्वाज्यं संस्कृत्य इह रतिरिति षडाज्याहुतीर्जुहोति । इति पारस्करीयसूत्रेऽग्निं कृत्वेत्यनेन लौकिकाम्नेर्लाभात् अन्यथा तदभिधानं व्यर्थं स्यात् अतएव कृष्णेनाप्यन्यजन्नानाम् इति सङ्गच्छते । वाचस्पतिमिश्रास्तु आज्यं संस्कृत्य इह रतिरित्यानन्तर्याभिधानादाज्यसंस्कारानुपदमेव गव इत्यादिषडाहुतयः । तत आधाराज्यभागौ ततश्च पायसाहुतयो नव ततः पूषा गा इति मन्त्रेण पौष्णहीम इत्याहुः । तन्न गोयज्ञाति-

३७४

शुद्धितत्त्वम् ।

देशेन पायसद्रव्यप्राप्तौ तदपोह्याज्यप्राप्तये 'आज्यं' संस्कृत्य इह
 रतिरित्यभिधानस्य फलवत्त्वात् । आधाराज्यभागानन्तरं
 प्रकृतहोमस्य उत्तरमाग्नेयं दक्षिणे सौम्यं मध्येऽन्याहुतय इति
 सांख्यायनोक्ताज्यभागहोमदेशान्तरात्तद्विशेषाज्यस्य होमस्य च
 बाधापत्तेः । आज्यसंस्कारानन्तरप्राप्तोपयमनकुशान् समि-
 दाधानग्निपर्युक्षणानां षडाहुतेः पूर्वं बाधापत्तेश्च । तानि च
 तेनापि पूर्वमुक्तानि । यत्तु पौष्णस्य अपणानुपदेशात् । अन्यत्र
 सिद्धस्यैवासादनमित्याहुस्तदपि न युक्तं पौष्णस्य जुहोतीति
 पृथगुपादानस्य पिष्टचर्वयत्वाच्च । अन्यथा छन्दोगानामिव ।
 तण्डुलचरुः स्यात् । यथा 'यद्यप्यदन्तकः पूषा पैष्टमत्ति
 सदा चरुम् । अग्नीन्द्रेश्वरसामान्यात्तण्डुलोऽत्र विधीयते' ।
 इति छन्दोगपरिशिष्टात् । पैष्टचरुमित्यत्र चरुशब्दस्य संस्का-
 रविशेषसंस्कृतान्नवाचित्वेन चरुपरिभाषाप्राप्ते बाधस्यायुक्त-
 त्वाच्च । अतएव अपणमाह विश्वः 'अग्निं परिस्तीर्य पौष्णं
 अपयित्वा पूषा गा इति' न चैतत् कठशाखिमात्रपरम् ।
 अन्योक्तस्यापि । आकाङ्क्षितत्वेनान्वयात् । तथाच छन्दोग-
 परिशिष्टम् । 'यन्नास्नातं स्वशाखायां परोक्तमविरोधि च ।
 विद्वद्भिस्तदनुष्ठेयमग्निहोत्रादिकर्मवत्' । एवमेव चरिशर्म-
 प्रभृतयः । चरुविधौ विद्याकरवाजपेयीशास्त्रावधारणवेलायां
 हि यत्र प्रयोजनाभावादिनिश्चयस्तत्रैव तदुपादानादि-
 लोपः शास्त्रार्यः । यथाकृष्णलेऽवघातादिलोपः । यत्र तद-
 तुष्टानवेलायामेव पुरुषदोषेण प्रयोजनाभावो जायते तदा
 प्राक् तन्निश्चयाच्छास्त्रप्रापितः पदार्थो नियमा पूर्वमात्रार्थमनु-
 स्तेयमेव । अतएव प्रकृतावपि आलस्यादिना ब्रौह्मादिस्थाने
 तण्डुलादिषु गृहीतेषु आघातादि समाचरन्ति याज्ञिकाः ।
 ध्वाते न्यूनं तथा किन्ने सान्नाय्यं मान्त्रिके तथा । यज्ञे मत्स्याः

शुद्धितत्त्वम् ।

३७५

प्रयोक्तव्या मन्त्रा यज्ञार्थसाधकाः' । सान्नाय्ये हविषि मान्त्रिके
 मन्त्रसार्धं अवघातादौ तत्काले मन्त्रपाठाभावेऽपि मन्त्राः
 प्रयोक्तव्याः । अस्मिन्सु कल्पे मन्त्रार्थज्ञानस्य नास्त्युपयोगः ।
 इत्यमेवेदानीं प्रयोगानुष्ठानमिच्छाह । यत्त्वेपरं अग्नेः प्राग-
 धेर्दमैरौशानात् सीम्यान्तम् । यजुर्वेदिकपरिस्तरणमाह तदपि
 न युक्तं सर्वासाहृतो दक्षिणतः प्रवृत्तय उदकसंस्था भवन्ति
 इति सांख्यायनविरोधात् । ततश्चाग्नेयादीशानान्तं ब्रह्मणे-
 ऽग्निपर्यन्तं नैऋताहायथ्यन्तम् अग्नेः प्रणीतापर्यन्तं परि-
 स्तरणं रामदत्ताद्युक्तम् । आचार्यलक्षणञ्च छन्दोगपरिशिष्टे
 'उदाहरति घेदार्थान् यज्ञविद्याः स्मृतोरपि । श्रुतिस्मृति-
 समापन्नम् आचार्यं तं विदुर्बुधाः' । श्रुतिस्मृत्युक्तं कर्मयुक्तम् ।
 आहतवस्त्रमाह वशिष्ठः । 'ईषद्भौतं नवं शुक्तं सदृशं यज्ञ
 धारितम् । आहतं तद्विजानीयात् सर्वकर्मषु पावनम्' ।
 ईषत् सूक्ष्मतन्तुकम् । न च ब्रह्मैव ऋत्विक् पाकयज्ञे स्वयं
 होतेति गोभिलसूत्रात् । 'ब्राह्मणे दक्षिणा देया यत्र या
 परिकीर्तिता । कर्मान्तेऽनुच्यमानायां पूर्णपात्रादिका भवेत्' ।
 इति छन्दोगपरिशिष्टात् । ब्रह्मणे ह्योक्तमर्गदक्षिणा देया
 इति षाण्णं होमदक्षिणामात्रब्रह्मसंप्रदानकत्वात् । अतएव
 दद्यादियगमात्रमभिधाय गोभिलेनापि पूर्णपात्रो दक्षिणा
 सत् ब्रह्मणे दद्यात् इत्युक्तम् । पात्र इति त्रान्तेऽपि पुख्यं
 छान्दसम् एतदनुसारात् कर्मान्त इति ब्रह्मसाध्यहोमान्त-
 परम् । न तु परिशिष्टप्रकाशोक्तनामकरणादिप्रधानकर्मान्त-
 परम् । अतएव तद्दक्षिणापात्रान्तरेऽपि देया । न च पाक-
 यज्ञे स्वयं होतेति श्रवणात् । ह्योक्तमर्गे नान्यो होतेति वाच्यम् ।
 'निःक्षिप्याग्निं स्वदारेषु परिकल्पयत्विजं तथा । प्रवसेत्
 कार्यवान् किञ्चिदथैव न चिरं क्वचित्' । इति छन्दोगपरि-

३७६

शुद्धितत्त्वम् ।

शिशेन गोभिलेन च जुहुयाद्वावयेद्वापि इत्यनेनारभ्य तस्य विधानेनान्यकर्तृत्वलाभात् । किन्तु 'स्वयं होमे फलं यत्तु तदन्येन न जायते' इति दक्षोक्तफलातिशयार्थं होतृत्वाचरणमिति न स्वयं नियमार्थमिति । अन्यथा कृष्णेनाप्यन्यजन्मन इति मत्स्यपुराणीयेन प्रतिपन्नशूद्रकर्तृकवृषोत्सर्गो न स्यात् एवञ्च शूद्रकर्तृकवृषोत्सर्गोऽपि मन्त्रपाठवत् होतृनिष्पाद्यत्वाच्चरूपपद्यते । यत्तु विष्णुपुराणे 'दानञ्च दद्याच्छूद्रोऽपि पाकयज्ञैर्यजेत च । पित्राष्टिकञ्च वै सर्वं शूद्रः कुर्वीत तेन वै' । अत्र तेनेत्यनेन शूद्रकर्तृकपाकाभिधानं तत् कलौतरपरम् । 'ब्राह्मणादिषु शूद्रस्य पक्वतादिक्रियापि च' इति प्रागुक्तादिपुराणे निषेधात् । अतएव 'आमं शूद्रस्य पक्वानं पक्वमुच्छिष्टमुच्यते' । इति स्वयं करण एव वैश्वदेवहोमादौ बोध्यं यत्तु 'त्रिषु वर्णेषु कर्तव्यं पक्वभोजनमेव च । शूद्राणामभिपन्नानां शूद्राणाञ्च वरानने' इति गङ्गावाक्यावल्याम् । देवनैवेद्याय यद्वराहपुराणं तत् शूद्रपाकविधायकं तदपि कलौतरपरम् । 'शूद्रेषु दासगोपालकुलमित्रार्हिसीरिणाम् । भोज्यान्नता गृहस्थस्य तीर्थसेवातिदूरतः' । इति प्रागुक्तादित्यपुराणे । 'शूद्रपक्वत्वेन प्रतिप्रसूतस्य गोपालादेः कलौ निषेधात् । यत्तु भविष्यपुराणे । उपक्षेपणधर्मेण शूद्रान्नं यः पचेद्भिजः । अभोज्यं तद्भवेदन्नं स विप्रो यात्यधोगतिम्' । उपक्षेपणधर्मः शूद्रस्वामिकाञ्च पाकार्थं ब्राह्मणगृहे समर्पणमिति कल्पतरुव्याख्यानम् । तत् द्विजशूद्रपक्वैतरशूद्रान्नपरम् । तदितरपाके तु 'कन्दुपक्वानि तैलेन पायसं दधिशक्तवः । द्विजैरेतानि भोज्यानि शूद्रगेहकृतान्यपि' इति कूर्मपुराणवचनेन प्रतिप्रसवात् । एवं 'वृषं वक्त्रतरीयुक्तमैशान्यां चालयेद्दिशि । होतुर्वस्त्रयुगं दद्यात् सुवर्णं कांस्यमेव च । अयस्काराय दातव्यं वेतनं मनसेषितम्' ।

शुद्धितत्त्वम् ।

३७७

इति विष्णुवचनादपि होत्रन्तरप्रतीतेः । एतन्न हृषोत्सर्गे
विष्णुक्तदक्षिणा स्वयं कर्तृकहोमपक्षे ब्रह्मणे देया अन्यकर्तृक-
होमपक्षे तु 'विदध्याद्द्वौत्रमन्यश्चेत् दक्षिणाईहरो भवेत् ।
स्वयश्चेदुभयं कुर्यादन्यस्यै प्रतिपादयेत्' । इति कन्दोगपरि-
शिष्टादर्द्धं ब्रह्मणेऽर्द्धं होत्रे देयमिति परिशिष्टप्रकाशोक्तं
निरस्तम् । हृषोत्सर्गदक्षिणाचार्याय देयेति प्राक्प्रतिपादि-
तम् । विष्णुक्त होत्रदक्षिणा या सा कथं ब्रह्मणे देयेति ।
तस्मात् ब्रह्मदक्षिणा पूर्णपात्रादिका होत्रदक्षिणा विष्णुक्ता ।
हृषोत्सर्गदक्षिणा च गोरूपैवेति सिद्धम् । स्वयं कर्तृकहोमे तु
वस्त्रयुग्मादिका होमदक्षिणा ब्रह्मणे देया । 'ब्रह्मणे दक्षिणा
देया यत्र या परिकीर्त्तिता' इति प्रागुक्तात् यत्तु होत्रदक्षिणा
वस्त्रयुगसुवर्णकांस्यरूपा होत्रे देया । होतुर्वस्त्रयुगम् इति
विष्णुक्तेः । सा च कातीयकल्पेऽप्यन्वेति सर्वशाखाप्रत्ययमेकं
कर्म इति न्यायात् । एवं यजमान एव होत्रेति पाश्चात्यमत-
मपास्तम् । सत्रवद्दक्षिणाबाधापक्षेतिरिति पितृभक्तितरङ्गिण्यामुक्तं
तच्चिन्त्यम् । सत्रे य एव यजमानास्त एव ऋत्विज इति श्रुतेः ।
ऋत्विक्कार्यं यजमानवाधावानतिलक्षणस्य दृष्टस्याभावा-
दतिदेशागतदृष्टार्थदक्षिणायाः सत्रे बाधो नादृष्टार्थाया बाधः ।
'इतमग्नौचियं आहं हतो यज्ञस्त्वदक्षिणः । तस्मात् पशं
काकिणीं वा फलपुष्पमथापि वा । प्रदद्याद्दक्षिणां यज्ञे तया
स सफलो भवेत्' । इति बृहस्पतिनावश्यकत्वेन फलपुष्पा-
देरप्युक्तेः । स्वयं होत्रदक्षिणाऽपि विदध्यादित्यादिना दक्षि-
णाया उक्तत्वाच्च । आहविवेकोऽप्येवं न तु हृषोत्सर्गीयहोमे
होत्रे दक्षिणोपदेशात् न स्वयं होत्रेति वाच्यम् । तद्वचनस्या-
प्यशक्तविषयत्वात् । अन्यथा 'अग्नैः शतक्रताद्दोमादेकः पुत्र-
कृत्वो वरः । पुत्रैश्शतक्रताद्दोमादेको ज्ञातृकृत्वो वरः । इति

३७८

शुद्धितत्त्वम् ।

श्रुतेः स्वयं होम इति प्रागुक्तश्रुतेश्च निवीजसङ्कोचापत्तेः ।
यद्यपि तत्तत्शास्त्रोक्तावगतो दक्षिणाभेदस्तथापि आकाङ्क्षित-
त्वात् सर्वशास्त्राप्रत्ययमेकं कर्म इति न्यायात् सर्वत्राप्यन्वेति ।
तर्हि विदध्याङ्गोत्रमन्यश्चेदित्यस्य का गतिरिति चेत् । यत्र
होमे विशिष्य नाभिहिता तत्र ब्रह्महोदभ्यां होमदक्षिणा
विभाज्य ग्राह्या अयस्काराय इति त्रिशूलचक्रस्पष्टीकर्त्रे
गोपालाय । तथा कन्दोगपरिशिष्टम् । 'ततोऽरुणेन गन्धेन
मानस्तोक इतोरयन् । वृषस्य दक्षिणे पार्श्वे त्रिशूलाङ्गं
समुल्लिखेत् । वृषोऽह्यसौति सव्येऽस्य चक्राङ्गमपि दर्शयेत् ।
तप्तेन पश्चादयसा स्पष्टौ तावेव कारयेत् । अङ्गनन्तु स्फिग्-
हये । स्फिचोरङ्गनमिति वद्धुं च पद्धतौ लिखनात् । यत्तु
वाचस्पतिमिश्रेण वृषभोऽयं हरिहरसूर्तिश्चक्रत्रिशूलधारि-
त्वात् । तत्रापि दक्षिणभागो हररुत्तरभागो हरस्येति युक्तेः
तथाच दक्षिणहस्ते चक्रं वामहस्ते त्रिशूलम् इति सिद्धयति
न हि पादेनास्त्रधारणं युज्यत इत्युक्तम् । तन्न वाचनिकेऽर्थे
युक्तेरनवकाशात् । अत्र 'गोयज्ञे सूर्य्यनामेति विवाहे योजकः
स्मृतः' इति कपिलेन गोयज्ञेऽग्नेः सूर्य्यनामाभिधानात्तद्धर्म-
ग्राहित्वात् वृषोऽह्यर्गहोमेऽपि तथा इति केचित् । तन्न उप-
देशेनातिदेशस्य बाधात् । वृषोऽह्यर्गहोमस्य पाकसाध्यत्वात्
तत्राग्नेः साहसनामत्वं 'प्रायश्चित्ते विधुश्चैव पाकयज्ञे तु
साहसः' । इति गोभिलपुत्रकृतगृह्यसंग्रहवचनात् । प्राय-
श्चित्ते प्रायश्चित्तात्मकहोमे विधुनामाग्निः । ततश्च प्रकृत-
होमानन्तरं तद्गैगुण्यजन्यपापक्षयकामस्तत्तद्देदोक्तप्रायश्चित्तं
सङ्कल्पयेत् । तथाचाह तुः शङ्कलिखितौ । 'प्रत्येकं नियतं
कालमात्मनो व्रतमादिशेत् । प्रायश्चित्तमुपासीनो वाग्यत-
स्त्रिसवनं सृशेद्' इति । प्रत्येकं नियतं कालमिति तत्तद्-

शुद्धितत्त्वम् ।

१७६

व्रतकालसंख्याम् आत्मनो व्रतम् आत्मसम्बन्धित्वेन आत्म-
कर्त्तृकत्वेनेति यावत् आदिशेत् उल्लेखं कुर्यात् । भवदेव-
भट्टेनापि तथा लिखितं यदप्युक्तम् । अद्येत्याद्यमुक्तकामो
रुद्रदेवतं हृषमेनं युवानमित्यादि लौकिकपदमन्त्राभ्यां हृषोत्-
सर्गवाक्यमिति तन्न वचनं विना परस्परान्नयबोधाय लौकिक-
पदविशिष्टमन्त्रोल्लेखे मानाभावात् । तथाचानुषङ्गाधिकरणे
पार्थसारथिमिश्राः । ‘वेदेन लौकिकः शेषो न सृग्यो निष्प्र-
माणकः’ । माधवाचार्यः । ‘वेदाकाङ्क्षा पूरणीया वेदेनेत्यनु-
षञ्जनम् । अन्यशेषोऽपि बुद्धिस्थो लौकिकस्तु न तादृशः’ ।
तस्मादाकाङ्क्षितत्वेनापि वैदिकमेवानुषज्यते । न तु लौकिक-
मध्याह्नियते इति वदत्रापि वैदिकमन्त्रस्य वचनाभावे
लौकिकवाक्येनान्वयः । अन्यथा भूःस्वाहेत्यादौ तथात्वापत्तेः ।
‘अष्टाभिधेनुभिर्युक्तश्चतसृभिरनुक्रमात् । त्रिहायणीभिर्धन्याभिः
सुरूपाभिः सुशोभितः । सर्वोपकरणोपेतः सर्वशस्यचरो महान् ।
उत्सृष्ट्यो विधानेन श्रुतिस्मृति निदर्शनात्’ । इति ब्रह्मपुरा-
णोक्तधेनुयुक्तत्वसर्वोपकरणोपेतत्वादुल्लेखापत्तेः । अत्र धेनु-
पदं वक्ष्यमाणगुर्विण्य इति विशेषणञ्च शास्त्रान्तरीयं कात्या-
यनसूत्रे वक्षतरीश्रुतेः । यथा पयस्विन्याः पुत्रो यथे च रूप-
वान् स्मात् । तमलङ्कृत्य यूथमुख्याश्चतस्रोवत्सतर्क्यस्ताश्च-
लङ्कृत्य एनं युवानं पतिं वो ददानि तेन क्रीडन्तीश्चरथ प्रियेण
मानः साप्तजनुषासुभगारायष्पोषेण समिषा मदेम
इत्येतयैव ऋचोत्सृजेरन्निति । न चैतदनुसारेण वक्षतरी-
चतुष्टययुक्तमिति हृषविशेषणं वाच्यम् । तथात्वे तादृशं
हृषमिति विशिष्टे वो युष्माकं वक्षतरीणां पतिमित्यने-
नान्वयापत्तेः । प्रागुक्तदोषाच्च । न च कात्यायनी य एक-
कारश्रुतेः केवलमन्त्रेणोत्सर्गः न तु वाक्येन इति वाच्यम् ।

३८०

शुद्धितत्त्वम् ।

एतयेवेत्युक्तेवकारिण सजातीयत्वेन सर्वशास्त्राप्रत्ययमेकं कम
इति न्यायप्राप्तस्य कामधेनुनैयतकालिककल्पतरुष्टतविष्णुक्तस्य
चदमन्तरस्य निवृत्तिः । न वाक्यस्य अतएव पितृदयितापरि-
शिष्टप्रकाशशूजपाण्डितपरिशिष्टदीपकलिकाप्रभृतिषु मन्त्रा-
भिधानपूर्वकवाक्येन वृषोत्सर्ग इत्युक्तम् । एवञ्चेन्नन्त्रस्य करणत्व-
मुपपन्नम् । अन्यथा ददानीत्यनेन मन्त्रान्तरेणोत्सर्गात् तथा-
त्वम् । मन्त्रान्ते कर्मसन्निपात इति न्यायस्याप्यबाधः । यन्त्रान्ते
सम्प्रदानमिति सरलाष्टतकाठकश्रुतेरप्यबाधः । व्यक्तमाहाप-
स्तम्बः । 'मन्त्रान्ते कर्मादीनि सन्निपातयेदिति' । समग्रं मन्त्रं
पठित्वा कर्म कारयेदित्यर्थः । इति कर्मविपाकः । एवञ्चा-
मुकाकम इति । सोपकारखवत्सतरीचतुष्टययुक्तं वृषमिति
चाभिलष्य उत्सर्गः सङ्गच्छते । ततश्च ब्राह्मणेन पठिते मन्त्रे
शूद्रस्यापि वाक्येनोत्सर्ग इति । एवं प्रधाने स्वामिफलयोगाद्
गुणे प्रतिनिधिः परार्थत्वादिति परिभाषापि सङ्गच्छते । एवं
वर्षासु रथकारा आदधीत इति प्रत्यक्षश्रुत्या रथकारस्य मन्त्र-
पाठपूर्वकाग्निस्थापनरूपाधाने बोधिते तत्र विद्याप्रयुक्तिरस्तु
इह तु स्मार्त्ते कर्मणि प्रत्यक्षश्रुत्यभावात् । न तथा किन्तु
क्षणोनाप्यन्यजन्मन इति स्मृत्या शूद्रस्य प्रधाने वृषत्यागेऽधि-
काराय श्रुतिरबाधितविषयैकैव कल्पयते न तु मन्त्रपाठायपि
कल्पयते । यथा पितृभ्यो दद्यादित्यत्र बहुवचनेन साहित्य-
प्रतीतावपि न चतुर्थ्या सहितानां देवतात्वं कल्पयते । किन्तु
अत्र पितरो देवता इत्यापस्तम्बवचने देवता इति बहुत्वस्य
पृथङ्निवेशितत्वेन प्रत्येकदेवतात्वस्य प्रतीतस्य अत्राधेन पितॄणां
प्रत्येकं देवतात्वं कल्पयते । पितृभ्य इति साहित्यन्वभिधान-
क्रियापेक्षयित्युक्तम् । तद्वदत्रापि । 'मन्त्रस्य तु शूद्रस्य
विप्रो मन्त्रेण गृह्यते' । इत्याख्यानाधीनैव प्रधानाधिकारमात्रं

शुद्धितत्त्वम् ।

३८१

कल्पयते । मनुरपि शूद्रस्य मन्त्रवर्जनकर्मानुष्ठानमाह । 'धर्म-
 खरन्ति धर्मज्ञाः सतां वृत्तिमनुष्ठिताः । मन्त्रवर्जं न दुष्यन्ति
 प्रशंसां प्राप्नुवन्ति च । ये पुनः शूद्राः स्वधर्मं वेदिनो धर्म-
 प्राप्तिकामास्त्रैवर्णिकाचारमनिषिद्धमाश्रितास्ते नमस्कारेण
 मन्त्रेण पञ्चयज्ञान्नहापयेत्' इति याज्ञवल्क्यवचनात् । नम-
 स्कारमात्रेण मन्त्रेण मन्त्रान्तररहितेन पञ्चयज्ञादिकुर्वाणान्
 प्रत्यवायमाप्नुवन्ति ख्यातिश्च लोके प्राप्नुवन्ति इति कुल्लूकभट्टः ।
 वसन्तरीयुक्तहृषोत्सर्गस्य प्रधानत्वादादित्यपुराणेऽपि मन्त्रं
 विना तावन्मात्रमुक्तम् । यथा 'सुञ्चन्ति हृषभं ये च नौल-
 क्षैव सुशोभनम् । लाङ्गूलाकर्षसर्वाङ्गं शृङ्गयुक्तं सुशोभनम् ।
 कार्त्तिक्यां सुञ्चते यस्तु दत्त्वा पापान्नसंशयः । त्रिवर्षास्त्वथ
 गुर्विण्यो दद्याद्वावो हृषस्य च' । एवञ्च ब्राह्मणद्वारा मन्त्र-
 पाठोपपत्तेः । 'न स्त्रीणामधिकारोऽस्ति आह्वेषु पार्वणादिषु ।
 कन्यादाने हृषोत्सर्गं ह्यधिकारो भवेदधुबम्' । इति वचनात्
 ब्राह्मणादि स्त्रीणामप्यधिकारः । शिवपुराणे 'स्त्रियः शूद्राश्च
 स्तेच्छाश्च ये चान्ये पापयोनयः । नमस्कारेण मन्त्रेण तदेव
 फलमाप्नुयुः' इत्यादि कन्दोगपरिशिष्टादौ कर्तृविशेषानभि-
 धानेन सर्वाधिकारित्वप्रतीतिः । एवमेव सुमतिसोपानप्रभृ-
 तयः । कृष्णेनाप्यन्यजन्मन इति वर्णप्रशंसामात्रपरम् ।
 हृषोत्सर्गोऽनुपनीतस्याप्यधिकारः । 'न ह्यस्य विद्यते कर्म
 किञ्चिदामौञ्जिवन्धनात् । अन्यत्रोदककर्मस्वधापितृसंयुक्तेभ्यः'
 इति कल्पतरुधृतवाशिष्ठवचनेन प्रतिप्रसवात् ऋगर्थस्तु हे वत्-
 सतर्थो वो युष्माकम् एनं युवानं पतिं स्वामिनं ददानौत्युक्तं
 प्रार्थयामि तेन हृषेण सह क्रीडन्तौः खेलयन्त्यश्चरथ भ्रमथ
 हे वत्सतर्थो यूयमपि मानः नास्मत् स्वत्वविषया करिष्यथ
 किन्तु मया त्यक्तव्याः । वयं हृषस्य वत्सतरीणाञ्च त्वाग्निन

३८२

शुद्धितत्त्वम् ।

रायण्योषेण धनसमृद्ध्या साप्तजनुषा सप्तजन्मव्यापकेन ईषा
 अन्नेन च सम्मदेन हृष्टा भवाम सुभगा लोकस्य प्रिया इति
 सम्मदेम इति भविष्यत् सामीप्ये वर्त्तमान इति पाणिनिस्वर-
 साङ्गविष्यदर्थे वर्त्तमानः । नीलहृषलक्षणमाह शङ्खः । 'लोहितो
 यस्तु वर्णेन मूले पुच्छे च पाण्डुरः । श्वेतः खुरविषाद्याभ्यां
 स नीलो हृष उच्यते' । वत्सतरोर्विशेषयति स्मृतिः । 'अन्नतो
 लोहिता पक्षी पार्श्वभ्यां नीलपाण्डुरे । पृष्ठतस्तु भवेत्
 कृष्णा हृषभस्य तु मोक्षणे' । यूपमाह स एव । 'चतुर्हस्तो
 भवेद् यूपो यज्ञहृत्समुद्भवः । वर्तुलः शोभनः स्मूलः कर्त्तव्यो
 हृषमौलिकः' । भविष्ये । 'वित्पस्य वकुलस्यैव कलौ यूपः
 प्रशस्यते । शुक्लवासाः शुचिर्भूत्वा ब्राह्मणान् स्वस्तिवाच्य
 च । कौर्त्तयेद्भारतश्चैव तथा स्यादक्षयं हविः' इति दानधर्म-
 स्त्रुतवृषोत्सर्गप्रकरणीयवचनात् । अक्षयहविष्कामेन स्वस्ति-
 वाचनानन्तरं भारतनामोच्चार्यम् । 'यद्रात्रौ कुरुते पापं
 ब्राह्मणस्त्विन्द्रियैश्चरन् । महाभारतमाख्याय पूर्वां सन्ध्यां
 विमुञ्चति' इति आदित्यपुराणोक्तप्रातर्महाभारतोच्चारणवत् ।
 राट्देशीयप्रभृतयस्तु विराट्पर्वान् पाठयन्ति । अत्र ब्रह्मा-
 दिवरणोऽसुककर्मकर्त्तुं त्वामहं वृणे इति न युक्तम् । एक-
 कर्त्तृक एव तुमो विधानात् । एवं कृताकृतावेक्षणं ब्रह्मकर्म
 कर्त्तुं ब्रह्मत्वेन इति मैथिलानां वाक्यरचना सर्वथा दुष्टा ।
 उपवेशन विशेषस्य ब्रह्मकर्मणोऽनुक्तत्वात् ब्रह्मत्वेनैव
 वेद्यर्थात् । भिन्नकर्त्तृकत्वेन तुमोऽसम्भवाच्च । तस्मात् ब्रह्म-
 कर्मकरणाय इत्येव वरणे निर्देशम् । अत्र सर्वशाखाधिकार-
 न्यायेन गुणोपसंहारन्यायेन च अविरोधसकलाङ्गीपसंहारः
 कर्त्तव्य इति ।

अथ प्रेतक्रियाधिकारिणः । धर्मप्रदीपसंवत्सरप्रदीपयोः

शुद्धितत्त्वम् ।

३८३

‘व्याघ्रः कतचूडस्तु कुर्वीत उदकं पिण्डमेव च’ । एतच्च पुत्रे-
 तरपरम् । ‘असंस्कृतः सुतः श्रेष्ठो नापरो वेदपारगः’ । इति
 दायभागधृतात् । अन्यथा सुतत्वेन विशेषोपादानं व्यर्थं
 स्यात् । आद्येऽनुपनीतस्य मन्त्रपाठाधिकारमाह मनुः ।
 ‘नाभिव्याहारयेद् ब्रह्म स्वधानिनयनादृते । शूद्रेण हि सम-
 स्तावद् यावद्देदे न जायते’ । अभिव्याहारयेत् बदेदिति यावत् ।
 स्नाने णिच् अत्र प्रथमतो ज्येष्ठपुत्रः । यथा मरीचिः । ‘मृते
 पितरि पुत्रेण क्रिया कार्या विधानतः । बहवः स्युर्यदा पुत्राः
 पितुरेकत्र वासिनः । सर्वेषान्तु मतं कृत्वा ज्येष्ठेनैव तु यत्
 कृतम् । द्रव्येण चाविभक्तेन सर्वैरेव कृतं भवेत्’ । तदभावे
 यथाक्रमं कनिष्ठपुत्रपौत्रप्रपौत्राः । तथाच विष्णुपुराणम् ।
 ‘पुत्रः पौत्रः प्रपौत्रो वा तद्वदा भ्रातृसन्ततिः । सपिण्डीसन्तति-
 र्वापि क्रियार्हा नृप जायते’ । एतच्च षोडशश्राद्धपर्यन्तम् ।
 तथाच छन्दोगपरिशिष्टम् । ‘पितामहः पितुः पश्चात् प्रेतत्वं
 यदि गच्छति । पौत्रेणैकादशाहादि कर्त्तव्यं श्राद्धषोडशम् ।
 तैत्तत् पौत्रेण कर्त्तव्यं पुत्रवाञ्छेत् पितामहः’ । सपिण्डीकरण-
 पर्यन्तमप्यथक्कर्त्तव्यमाह लघुहारीतः ‘सपिण्डीकरणान्तानि
 ग्रानि श्राद्धानि षोडश । पृथक् नैव सुताः कुर्युः पृथक्द्रव्या
 अपि क्वचित्’ । एषामभावे पत्नी तथाच शङ्खः । ‘पितुः
 पुत्रेण कर्त्तव्या पिण्डदानोदकक्रिया । तदभावे तु पत्नी
 त्याक्तदभावे सहोदरः । भार्यापिण्डं पतिर्द्रव्यात् भर्त्रे भार्या
 तथैव च’ । इति अपुत्रधनं पत्न्यभिगामि तदभावे दुहितृ-
 गामीत्यादिविष्णुादिवचनेन धनाधिकारश्रुतेः । तदभावे
 इति प्रपौत्रपर्यन्ताभावपरं पार्वणपिण्डदातृत्वेन धनाधिकारि-
 त्वेन च तेषां बलवत्त्वात् । ‘अपुत्रा स्त्री यथा पुत्रः पुत्रवत्यपि
 भर्त्तरि । पिण्डं दद्यात् जलञ्चैव जलमात्रस्तु पुत्रिणी

३८४

शुद्धितत्त्वम् ।

इति निर्मूलं समूलत्वेऽपि बालदेशान्तरितपुत्रसङ्गावविषय-
 मिति आहविवेकप्रभृतयः । पत्न्यभावे कन्या । ‘अपुत्रस्य
 तु या पुत्री सैव पिण्डप्रदा भवेत् । तस्य पिण्डान् दशैवेता-
 नेकाहेनैव निर्वपेत्’ इति ऋथ्यशृङ्गवचनात् ‘गोत्र ऋक्था-
 नुगः पिण्डः’ इति मनुवचनेन दत्ताद्यपेक्षया तस्यावल-
 वत्त्वात् । कन्याभावे यथाक्रमं वाग्दत्तादत्तादौहित्राः
 ‘दत्तानां चाप्यदत्तानां कन्यानां कुरुते पिता । चतुर्थेऽहनि
 तास्तेषां कुर्वीरन् सुसमाहिताः’ । इति ब्रह्मपुराणवचनात् ।
 ननु ‘दुहिता पुत्रवत् कुर्यान्मातापितरौ च संस्कृता । अशौच-
 मुदकं पिण्डमेकोद्दिष्टं सदा तयोः’ इति शृङ्गवचनात् ।
 पुत्रानन्तरमेव दुहित्वधिकारश्च्युतेः । इति चेन्न पत्न्याः प्रथमं
 धनाधिकारश्च्युतेः । यथा याज्ञवल्क्यः । ‘पत्नी दुहितरश्चैव
 पितरौ भ्रातरस्तथा । तत्सूतो गोत्रजो बन्धुः शिष्यः स-
 ब्रह्मचारिणः । एषामभावे पूर्वेषां धनभागुत्तरोत्तरः’ इति ।
 तथा ‘मातामहानां दौहित्राः कुर्वन्त्यहनि चापरं’ । इति
 ब्रह्मपुराणात् । ‘पौत्रदौहित्रयोर्लोके न विशेषोऽस्ति धर्मतः ।
 तयोर्हि मातापितरौ संभूतौ तस्य देहतः’ । इति मनुवचनेन
 ‘पौत्रदौहित्रसंयुक्ता ये तथा चिरजीविनः । प्रियङ्गराश्च
 बालानां ते नराः स्वर्गगामिनः’ । इति विष्णुधर्मोत्तरेण
 पौत्रतुल्यत्वाभिधानाच्च । तेन यथा पुत्राभावे पौत्रस्तथा-
 दुहित्वभावे दौहित्रः । न च दत्तकन्यादौहित्राभ्यां प्राक्-
 सगोत्रत्वात् सोदराधिकार इति वाच्यम् । गोत्रवलापेक्षया
 पिण्डदानादेर्धनसाध्यत्वात् ऋक्थग्राहिणो दुहितृदौहित्रयो-
 र्बलवत्त्वात् । अतएव दुहितृधनाधिकारे तद्वचनेन स्मृतोप-
 कारकरणं हेतुरित्याह्वापस्तम्बः । ‘अन्तेवास्यार्थांस्तदर्थेषु
 धर्मकृत्येषु प्रयोजयेत् दुहितावेति तदर्थेषु मासिकादिना

शुद्धितत्त्वम् ।

३८५

तद्भोगार्थं धर्मकृत्येषु अदृष्टार्थमिति' । गोत्र ऋक्थानुगः
 पिण्डः इति मनूक्तेः । 'अनंशो क्लीवपतितौ जात्यन्धबधिरौ
 तथा । उन्मत्तजडमूकाश्च ये च केचिन्निरिन्द्रियाः' । इति
 मनूक्तानां 'पितृद्विष्टपतितः षण्णो यस्य स्यादौपपातिकः ।
 औरसा अपि नैतेऽंशं लभेरन् चेतजाः कुतः' । इति
 नारदोक्तानाञ्च भागानधिकारिणां पिण्डदानानधिकारः ।
 जात्यन्धबधिरौ जन्मप्रभृति अन्धबधिरौ निरिन्द्रियाः पङ्गादयः ।
 शीतस्मार्त्तकर्मानधिकारिणो गृह्यन्ते इति रत्नाकरः । तथाच
 बृहद्वातातपः । 'चाण्डालं पतितं व्यङ्गमुन्मत्तं शवहारकम् ।
 सूतिकां सूयिकां नारीं रजसा च परिप्लुताम् । श्वकुक्कुट-
 वराहांश्च ग्राम्यान् संस्पृश्य मानवः । सचेलं सशिरः स्नात्वा
 तदानौमेव शुध्यति' । व्यङ्गः पाण्यादिविकलः । व्यङ्गोन्मत्तयोः
 सदाचारहीनत्वात् अस्पृश्यतेति प्रायश्चित्तविवेकः । शीतस्मार्त्त-
 क्रियानधिकारित्वं सदाचारहीनत्वञ्च भूतपुरीषाद्यशौचाप-
 नयनासमर्थत्वेनेति बोध्यम् । सूयिकां प्रसवकारयित्रीं पितृ-
 द्विष्टं पोषणौर्द्ध्वदेहिकविमुखः । औपपातिकः उपपातकैः
 संस्पृष्टः । उपपातकीति प्रकाशकारपाठेऽपि स एवार्थः ।
 अपपात्रित इति पाठे तु राजबधादिदेषेण बान्धवैर्यस्य घटाप-
 वर्जनं कृतमिति कल्पतरुः । व्यक्तं याज्ञवल्क्येन 'न ब्रह्म-
 चारिणः कुर्युरुदकं पतिता न च । पाषण्डमाश्रितास्तेनान
 ब्राह्म्या न विकर्मणः । गर्भभर्तृदुहस्यैव सुरापास्यैव योषितः' ।
 पाषण्डं त्रयीवाङ्मधर्मः । स्तेनाः सततं चौर्यवृत्तयः । ब्राह्म्याः-
 षोडशवर्षपर्यन्तमप्राप्तोपनयनाः । विकर्मणः आलस्येना-
 श्वेधानतया स्वधर्माननुष्ठायिनः । व्यङ्गत्वादिना स्वधर्मानु-
 ष्ठानासमर्थस्य बोध्या इति 'कश्चित् क्षिपति सत्पुत्रो दौहित्री
 वा सहोदरः । गृहीत्वास्थीनि तद्वस्त्रं नीत्वा तोये विनिः-

३८६

शुद्धितत्त्वम् ।

क्षिपेत्' । इत्यादिपुराणे क्रमदर्शनादत्रापि दीहिवाभावे सोदरः पूर्वाक्तशङ्खवचनेऽप्येवं क्रमो बोध्यः । अत्र ज्येष्ठः कनिष्ठश्चाविशेषात् नानुजस्य तथाग्रज इति कृन्दोगपरिशिष्टं कनिष्ठभ्रातृसङ्गावविषयं तयोरभावे तथाविधौ वैमात्रेयौ । 'भ्रातृभ्राता स्वयं चक्रे तद्भार्या चेन्न विद्यते । तस्य भ्रातृसुतश्चक्रे यस्य नास्ति सहोदरः' । इति ब्रह्मपुराणाद्वैमात्रेयस्यापि एकजातत्वेन भ्रातृत्वात् । देशान्तरस्थकौवैकवृषणानसहोदरानित्यादि कृन्दोगपरिशिष्टेन परिवेदने वैमात्रेयस्य भ्रातृत्वप्रसक्तावसहोदरानित्यनेन प्रतिप्रसवाच्च । पित्र्यपुत्रादौ भ्रातृपदप्रयोगो गौणः । गुणश्च वीजिपुरुषापेक्षया समानसंख्यजनकजन्यत्वमिति । धनिपुत्रादिपिण्डद्वयदातुः सोदरपुत्राद्वनिपित्रादिपिण्डत्रयदातृत्वाद्वैमात्रेयस्य धनाधिकारित्वेन बलवत्त्वाच्च । ततश्च सहोदर इति पूर्वाह्णानुरोधात् वैमात्रेयपरमपि अन्यथा सहोदराभावे वैमात्रेयसत्त्वे वैमात्रेयपुत्राधिकारापत्तेः । तेन वैमात्रेयाभावे सोदरवैमात्रेयभ्रातृक्रमवत् सोदरपुत्रस्तदभावे वैमात्रेयपुत्रः । तस्मादभोग्यपिण्डदातृतया धनाधिकारित्वेन बलवत्त्वात् तस्यातिदिष्टपुत्रत्वाच्च । तदभावे पिता । 'पुत्रो भ्राता पितावापि मातुलो गुरुरेव च । एते पिण्डप्रदा ज्ञेयाः भगोत्पास्येव बान्धवाः' इति प्रचेतो वचनात् । 'न पुत्रस्य पिता दद्यात्' इति कृन्दोगपरिशिष्टम् । भ्रातृपुत्रपर्यन्तसङ्गावविषयम् । तदभावे माता । 'पुत्रो भ्रातापिता वापि इत्यत्रापिशब्देन मातुः समुच्चयाद् । पितरौ भ्रातरस्तथेत्यादौ धनाधिकारे तथा दर्शनाच्च । अतएव आहविवेके पितुरभावे तुल्यन्यायतया मातापीत्युक्तमिति । तदभावे पुत्रबधूः । तथाच शङ्खः । भार्यापिण्डं पतिर्दद्यात् भर्तुं भार्या तथैव च । अत्रादेव सुषा चैव तदभावे द्विजो-

शुद्धितत्त्वम् ।

३८७

'तमः' । अत्रादिपदात् स्वशरादेरपि परिग्रहः । तत्र सुषात्वा-
 भावात् द्विजोत्तम इत्यत्र सपिण्डक इति मैथिलानां पाठः ।
 स्व स्वपदोपात्तसपिण्डविशेषाभावे 'अनन्तरः सपिण्डादयस्तस्य
 तस्य धनं भवेत्' इति धनाधिकारे तथा दर्शनादत्रापि सन्नि-
 धितारतस्येन मातृपुत्रवधूः पौत्रीपौत्रवधूः प्रपौत्रीप्रपौत्रवधूः
 पितामहः पितामहौ पित्र्यादयः सपिण्डाश्चाधिकारिणः ।
 पुत्राभावे सपिण्डा इति वक्ष्यमाणवचनात् । शङ्खवचनस्यमैथि-
 लपाठाच्च तदभावे समानोदकाः । सपिण्डसन्ततिरित्यपि इति
 वक्ष्यमाणात् । सपिण्डसन्ततिः समानोदका इत्यर्थः । तदभावे
 समोत्राः सगोत्राश्चैवेति गोत्र ऋक्थानुगः पिण्ड इत्युक्तत्वात् ।
 एषामभावे सर्वेषां समानोदकसन्ततिरिति वक्ष्यमाणाच्च ।
 तदभावे मातामहः । 'मातामहानां दौहित्राः कुर्वन्त्यहनि
 चापरे । तेऽपि तेषां प्रकुर्वन्ति द्वितीयेऽहनि सर्वदा' इति
 ब्रह्मपुराणात् । तदभावे मातुलः तदभावे भागिनेयः
 'मातुलो भागिनेयस्य स्वस्रीयो मासुलस्य च' इति अत्रातपीय-
 पाठक्रमात् तदभावे सन्निधिक्रमेण मातामहसपिण्डाः ।
 तदभावे मातामहसमानोदकाः । तथाच विष्णुपुराणम् ।
 'सपिण्डसन्ततिरित्यपि क्रियार्हा नृप जायते । एषामभावे सर्वेषां
 समानोदकसन्ततिः । मातृपक्षस्य पिण्डेन सम्बन्धा ये जलेन
 वा' इति वचनात् । तदभावे स्वशरः तदभावे जामाता
 'जामातुः स्वशराश्चकुस्तेषां तेऽपि च संयताः' इति ब्रह्म-
 पुराणपाठक्रमात् तदभावे पितामहौभ्राता । 'भागिनेय-
 सुतानाञ्च सर्वेषांस्वपरेऽहनि । आहं कार्यञ्च प्रथमे स्नात्वा
 कृत्वा बलक्रियाम्' इति ब्रह्मपुराणात् । अपरेऽहनि इत्यत्रा-
 शौचान्तदिनस्येति शेषः । तदभावे यथाक्रमं शिष्यार्त्विगा-
 चार्थाः । गोतमेन 'पुत्राभावे सपिण्डाश्च मातृसपिण्डा वा

३८८

शुद्धितत्त्वम् ।

शिश्या वा दद्युः तदभावे ऋत्विगाचार्यौ' इत्युक्तत्वात् । तदभावे सुहृत्पितृसुहृदौ मित्राणां तदपत्यानामिति ब्रह्म-पुराणपाठक्रमात् तदभावे एकग्रामवासी । 'संहतान्तर्गतै-र्वापि कार्या प्रेतस्य सत्क्रिया' इति विष्णुपुराणात् तदभावे तद्धनं गृहीत्वा यः कश्चित् सवर्णः । 'उच्छन्नवन्धु ऋक्थाद्वा कारयेदवनीपतिः' इति विष्णुपुराणात् । और्द्धदेहिक-मधिकृत्य विष्णुपुराणं 'ब्राह्मणस्त्वन्यवर्णानां न करोति कदा-चन । कामाक्षोभाद्भयान्मोहात् कृत्वा तज्जातितामियात्' । स्त्रियास्तु यथाक्रमं पुत्रपौत्रप्रपौत्राः विष्णुपुराणे पुत्रः पौत्रः प्रपौत्रो वेत्यविशेषश्रुतेः । तदभावे कन्या । अपुत्रस्य च या पुत्री तस्योद्देश्यगतलिङ्गाविवक्षया स्त्रीपुंसाधारणत्वात् धनाधिकारित्वाच्च तदभावे वाग्दत्ता दत्तानामपि अदत्ता-नामित्यत्रापि पितृपदस्य मातृपदोपलक्षणत्वात् । तदभावे दत्ता 'दुहिता पुत्रवत् कुर्यान्मातापित्रोश्च संस्तुता' इति मनुवचनात् । तदभावे दौहित्रः प्रागुक्तब्रह्मपुराणे तथा दर्शनात् । पौत्रदौहित्रयोर्लोके न विशेषोऽस्ति धर्मतः । तयोर्हि मातापितरौ सम्भूतौ तस्य देहतः' । इत्यनेन यथा पुत्राभावे पौत्रः तथा दुहित्राभावे दौहित्रः इति प्रागेव उक्तत्वात् । 'मातुलो भागिनेयस्य स्वसौयो मातुलस्य च । श्वशुरस्य गुरोश्चैव सख्युर्मातामहस्य च । एतेषां चैव भार्याभ्यः स्वसुर्मातुः पितुस्तथा । पिण्डदानन्तु कर्त्तव्यमिति वेदविदां स्थितिः' इति वृद्धशातातपवचनेन मातामह्याश्च साक्षात् दौहित्रेण पिण्डदानश्रुतेः धनाधिकारित्वाच्च । दौहित्राभावे सपत्नीपुत्रः । तस्य पुत्रत्वस्मरणात् । यथा मनुः । सर्वा-सामेकपत्नीनामेका चेत् पुत्त्रिणी भवेत् । सर्वास्तास्तेन पुत्रेण ग्राह्य पुत्रवतीर्मनुः' । एकपत्नीनामिति एकः पति-

शुद्धितत्त्वम् ।

३८६

र्यासामिति अत्र सपत्नीपुत्रस्य पुत्रत्वातिदेशात् तत्सत्त्वेऽपि स्त्रीणां सपिण्डनं मैथिलैरुक्तं तत्र 'पुत्रेणैव तु कर्तव्यं' सपिण्डीकरणं स्त्रियाः । पुरुषस्य पुनस्त्वन्ये भ्रातृपुत्रादयोऽपि ये । इति लघुहारीतवचने एवकारेणातिदिष्टपुत्रनिषेधात् । अतएवोत्तरार्द्धे भ्रातृपुत्रोपादानं सङ्गच्छते । अन्यथा पुंसां तत्र पुत्रत्वातिदेशात् पुत्रत्वेनैव प्राप्तेः भ्रातृपुत्रोपादानं व्यर्थं स्यात् । तमाह मनुः । 'भ्रातृणामेकजातनामेकश्चेत् पुत्रवान् भवेत् । सर्वे ते तेन पुत्रेण पुत्रिणो मनुरब्रवीत्' । एकजातानामेकपितृमातृजातानां तथाच बृहस्पतिः । 'यद्येकजाता बहवो भ्रातरः स्युः सहोदराः । एकस्यापि सुते जाते सर्वे ते पुत्रिणो मताः' । एतत्रायमूलं तदिति चेन्न आदिपदग्राह्येषु । 'भ्राता वा भ्रातृपुत्रो वा सपिण्डः शिष्य एव वा । सहपिण्डक्रियां कृत्वा कुर्यादभ्युदयं ततः' । इति लघुहारीतोक्तेषु न्यायानुपपत्तेः । भ्राता वेति वाग्व्यादात् तत् पूर्वेषां दौहित्रान्तानां तदपेक्षया प्रधानाधिकारिणां समुच्चयः । अतएव सपिण्डत्वेनैव भ्रातृवत् पुत्रयोरधिकारसिद्धौ पृथगुपादानं प्राधान्यज्ञापनार्थम् । पुत्रत्वातिदेशफलन्तु पुत्रामनरकनिस्तारः । अतस्तत्सत्त्वे क्षेत्रजायकरणञ्च । तथाहि 'पुत्राम्नो नरकाद् यस्मात्त्रायते पितरं सुतः । मुखसन्दर्शनेनापि तदुत्पत्तौ यतेत सः' । इति मनुवचने पुत्रामनरकत्राणाय पुत्रोत्पादनं विहितम् । तच्च फलं यद्यतिदिष्टपुत्राभ्यां भ्रातृसपत्नीजाभ्यां निष्पन्नं तदासिद्धे इच्छाविरहात् तदुपायान्तरपुत्रप्रतिनिधौभूतक्षेत्रजादेर्नीपादानम् । पुत्रोत्पादनन्तु तदापि कार्यं पुत्रसत्त्वेऽपि पुत्रान्तरेच्छाविधानेन तत्कर्तव्यताप्रतीतिः । यथा मत्स्यपुराणम् । 'एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्यप्येको गयां ब्रजेत् । यजेत वाश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत्' ।

३६०

शुद्धितत्त्वम् ।

एवमेव कल्पतरुपारिजातशूलपाणिमहामहोपाध्यायरत्नाकर-
 वाचस्पतिमिश्रादयः । स्त्रीणामपि पुत्रात् पुत्रामनरक-
 निस्तारणमाह तुः रत्नाकरे शङ्कलिखितौ । ‘आत्मा पुत्र इति
 प्रोक्तः पितुर्मातुरनुग्रहात् । पुत्रान्मस्त्रायते पुत्रस्तेनापि पुत्र-
 संज्ञितः’ । पूर्वोक्तलघुहारात्तवचने पुत्रेणेति तत्त्वत्वमात्र-
 विवक्षितम् । ‘सपिण्डीकरणन्तासां पुत्राभावे न विद्यते’ ।
 इति मार्कण्डेयपुराणैकवाक्यत्वात् । ‘यानि पञ्चदशाद्यानि
 अपुत्रस्येतराणि च । एकस्यैव तु दातव्यमपुत्रायाश्च योषितः’ ।
 इति छन्दोगपरिशिष्टेन अपुत्राया एवाप्यपञ्चदशश्राद्धैः प्रेतत्व-
 परिहारोक्तत्वाच्च एतत् पत्युरभावे द्रष्टव्यम् । ‘अपुत्रायां
 मृतायान्तु पतिः कुर्यात् सपिण्डनम् । श्वश्रादिभिः सहै-
 वास्याः सपिण्डीकरणं भवेत्’ इति पैठौनसिवचनात् । ततश्च
 शिशौ पुत्रेऽन्येनापि सपिण्ड्यते । एवं पतिसत्त्वेऽपि । अत-
 एव मैथिलैरवीवायाः सपिण्डनं नास्तौत्सुक्यम् । तदभावे पतिः
 ‘भार्या पिण्डं पतिर्दद्यात्’ इति शङ्कवचनात् । न जायायाः
 पतिः कुर्यादपुत्राया अपि क्वचित्’ इति छन्दोगपरिशिष्ट-
 वचनम् । सपत्नीपुत्रपर्यन्तसङ्गाद्विषयम् । पत्यभावे स्नुषा
 ‘श्वश्रादेश्च स्नुषा चैव’ इति यमवचनात् । सान्निध्यक्रमेण
 सपिण्डाः । शङ्कवचने । तदभावे सपिण्डक इति मैथिल-
 पाठात् । तदभावे सपिण्ड इति पूर्वोक्त गोतमवचने सामा-
 न्यतः श्रुतेः । तदभावे समानोदकाः । सपिण्डसन्तति-
 र्बैतलविशेषश्रुतेः । तदभावे सगोत्राः । समानोदकसन्तति-
 रिति वक्ष्यमाणात् । आहविवेकेऽप्येवम् । एषामभावे पिता ।
 ‘दत्तानाम्वाप्यदत्तानां कन्यानां कुरुते पिता’ । इत्युक्तत्वात् ।
 तदभावे भ्राता । ‘पुत्रो भ्राता पिता वापि’ । इत्यविशेष-
 श्रुतेः । तदभावे यथाक्रमम् । दायभागोक्तोपकारतारतम्येन ।

शुद्धितत्त्वम् ।

३८१

‘मातुलो भागिनेयस्य स्वस्रीयो मातुलस्य च । श्वशुरस्य
 गुरोश्चैव सख्युर्मातामहस्य च । एतेषाञ्चैव भार्याभ्यः स्वसुर्मातुः
 पितुस्तथा । पिण्डदानन्तु कर्त्तव्यमिति वेदविदां स्थितिः’
 इति शातातपवचनात् । भगिनीपुत्रभर्तृभागिनेयभ्रातृपुत्र-
 जामातृभर्तृमातुलभर्तृशिष्याः पत्यपेक्षया पौत्रादिवत् पिण्ड-
 दानतारतम्येन क्रमेणाधिकारिणः । तथाहि तत्पिण्डतत्पुत्र-
 देयतत्पित्रादिपिण्डत्रयदातृत्वात् भगिनीपुत्रः । तदभावे भर्तृ-
 भागिनेयः । पुत्राद्भर्तृदुर्बलत्वेन तत् स्थानपातिनोरपि बला-
 बलस्य न्याय्यत्वेन तद्भर्तृदेयपुरुषत्रयपिण्डतत्भर्तृपिण्ड-
 दत्वात् । तदभावे भ्रातृपुत्रः । तत्पिण्डतत्पुत्रदेयतत्-
 पित्रादिपिण्डद्वयदत्वात् । तदभावे जामाता । ‘मातृस्वसा
 मातुलानी पितृव्यस्त्री पितृस्वसा । श्वश्रूः पूर्वजपत्नी च
 मातृतुल्याः प्रकीर्त्तिताः’ । इति बृहस्पतिवचनेन मातृष्वसा-
 दीनां मातृतुल्यत्वाभिधानात् । स्वस्रीयोऽयैः सह जामातुः
 पुत्रतुल्यत्वप्रतीतिः । अतएव तेषां धनभागित्वमाह बृह-
 स्पतिः । ‘यदासामौरसो न स्यात् सुतो दौहित्र एव वा ।
 तत्सुतो वा धनं तासां स्वस्रीयोऽद्याः समाप्नुयुः’ । धन-
 ग्राहित्वेनापि पिण्डदातृत्वमाह मनुः । ‘गोत्र ऋक्थानुगः-
 पिण्डः’ इति । तदभावे भर्तृमातुलभर्तृशिष्याः क्रमेणाधि-
 कारिणः । शातातपौयपाठक्रमानुरोधात् । प्रातिस्निका-
 नामभावे पितृवंशमातृवंशी । ‘पितृमातृसपिण्डेषु समान-
 सलिलैर्नृप’ इति ब्रह्मपुराणेऽविशेषश्रुतेः । तयोरभावेऽसम्बन्धी
 द्विजोत्तमः । पूर्वोक्तशङ्कवचने द्विजोत्तम इति गौडीयपाठात् ।
 संघातान्तर्गतेर्वापीति अविशेषश्रुतेः । त्रिधाक्रियाकर्तृत्व-
 माह विष्णुपुराणम् । ‘पुत्रः पौत्रः प्रपौत्रो वा तद्वद्वा भ्रातृ-
 सन्ततिः । सपिण्डसन्ततिर्वापि क्रियाद्वा नृप जायते ।

३६२

शङ्कितत्वम् ।

एषामभावे सर्वेषां समानोदकसन्ततिः । मातृपक्षस्य पिण्डेन सम्बन्धा ये जलेन वा । कुलद्वयेऽपि चोत्सन्ने स्त्रीभिः कार्या क्रिया नृप । संघातान्तर्गतैर्वापि कार्या प्रेतस्य सत्क्रिया । उत्सन्नवन्तु ऋक्यादा कारयेदवनीपतिः । पूर्वाः क्रिया मध्यमाश्च तथा चैवोत्तराः क्रियाः । त्रिप्रकाराः क्रिया ह्येता- स्तासां भेदान् शृणुष्व मे । आदाहवार्थ्यायुधादिस्पर्शान्ताश्च याः क्रियाः । ताः पूर्वा मध्यमा मासिमास्येकोद्दिष्टसंज्ञिताः । प्रेते पितृत्वमापन्ने सपिण्डीकरणादनु । क्रियन्ते याः क्रिया पितृयाः प्रोच्यन्ते तानृपोत्तराः । पितृमातृसपिण्डेश्च समान- संलिलैर्नृप । संघातान्तर्गतैर्वापि राज्ञा वा धनहारिणा । पूर्वक्रियास्तु कर्त्तव्याः पुत्राद्यैरेव चोत्तराः । दौहित्रैर्वा नर- श्रेष्ठ कार्यास्तत्तनयेस्तथा । स्मृताहनि तु कर्त्तव्याः स्त्रीणा- मप्युत्तराः क्रियाः । प्रतिसंवत्सरं राजन् एकोद्दिष्टं विधा- विधानतः । आदाहेति दाहावधेरशीचान्तविहितवार्थ्यायु- धादिस्पर्शान्तास्ताः पूर्वा मासिमासीत्येकादशाहादि सपि- ण्डनान्तप्रेतक्रियोपलक्षणम् । सपिण्डनोत्तराः पार्वणादि- क्रिया उत्तराः । अत्र पुत्रादिसपिण्डादयः पूर्वाः क्रिया अवश्यं कुर्युः । मध्यमक्रियायामनियमः । उत्तरक्रियायां पुत्रादयो भ्रातृसन्ततिपर्यन्तानियताः । आहविवेकेऽप्येवम् । दौहित्रैर्वेति वाशब्दः समुच्चयार्थः तेन दौहित्रोऽप्युत्तरक्रियायां नियताधिकारौ । उत्तमेर्दौहित्रतनयैरिति पुत्रिकापुत्रविषय- मिति कल्पतरुः । कर्त्तृप्रकरणात् स्त्रीणामिति वा कर्त्तरि कृत्य इति कर्त्तरि षष्ठी । उत्तरक्रियायां प्रतिसंवत्सरमेको- द्दिष्टविधाननियमात् । न पार्वणवृद्धिआदादौ स्त्रीणामधि- कारः । मार्कण्डेयपुराणम् । 'सर्वाभावे स्त्रियः कुर्युः स्वभर्तृणाममन्यकम् । तदभावे च नृपतिः कारयेत् स्वकुटुः

शुद्धितत्त्वम् ।

३८३

स्ववत् । स्त्रीणामप्येवमेवैतदेकोद्दिष्टमुदाहृतम् । स्मृताहनि
 यथान्यायं नृणां यद्वदिहोदितम्' । स्त्रियोऽत्रासवर्णोदाऽप-
 रिणीता वेति आहविवेकः । सवर्णोदायाः पुत्रपौत्रपर्यन्ता-
 भाव एव विधानात् । स्त्रीणामिति तु संप्रदानपरम् । एव-
 मेवामन्त्रकमिति आहविवेकः । अत्र स्त्रिय इत्यस्यासवर्णो-
 दापरिणीतापरत्वव्याख्यानात् । स्त्रीणां मन्त्रनिषेधोऽपि
 तत् संप्रदानकस्याह एवावगम्यते । न तु स्त्रीमात्रसंप्रदानके ।
 एतच्च विप्रेतरपरं तस्य हीनवर्णस्याहनिषेधात् । कल्पतरौ
 तु स्त्रीणामपि एवमिति यादृशेन सम्बन्धेन पितृव्यत्वादिना
 पुरुषाणामेकादशाहादिआहं तादृशेनैव सम्बन्धेन स्त्रीणामेतत्
 कर्त्तव्यमिति । एतद्व्याख्याने स्त्रीसम्प्रदानकस्याहं सुतरां मन्त्राः
 पाठ्याः । याज्ञवल्क्येनापि समन्त्रकमेकोद्दिष्टं सपिण्डनञ्चोक्त्वा
 एतत् सपिण्डोत्तरणमेकोद्दिष्टं स्त्रिया अपि इत्यनेन स्त्रियो अपि
 तथैवेत्युक्तम् । 'मातुः सपिण्डोत्तरणं पितामह्या सहोदितम् ।
 यथोक्तेनैव कल्पेन पुत्रिकाया न चेत् सुतः' । इति छन्दोगपरिशि-
 ष्टेनापि यथोक्तेनैव कल्पेनेत्यनेन मन्त्रादिकमतिदिष्टम् । व्यव-
 हारोऽपि तथेति ।

तदयं संचेपः । ज्येष्ठपुत्रकनिष्ठपुत्रपौत्रप्रपौत्र अपुत्र-
 पत्नीकर्मासमर्थपुत्रयुक्तपत्नी-कन्या वाग्दत्तादत्त कन्यादौहित्र-
 कनिष्ठसहोदरज्येष्ठसहोदर-कनिष्ठवैमात्रेयज्येष्ठवैमात्रेयकनि-
 ष्ठसहोदरपुत्र ज्येष्ठसहोदरपुत्र कनिष्ठवैमात्रेयपुत्रज्येष्ठ-
 वैमात्रेय-पुत्रपितृमातृपुत्रवधूपौत्रीदत्तापौत्रीपौत्रवधूप्रपौत्री-द-
 त्ताप्रपौत्रीपितामह पितामही पितृव्यादिसपिण्डसमानो-
 दकसगोत्रमातामहमातुलभागिनेय मातृपक्षसपिण्डतत्समा-
 नोदक असवर्णाभार्या अपरिणीतास्त्रीश्वशुरजामातृपिता-
 महीमातृशिष्यत्विगाचार्यमित्रपितृमित्र एकग्रामवासीगृही-

३८४

शुद्धितत्त्वम् ।

तवेतनसजातीयाः अष्टचत्वारिंशत्प्रकाराः क्रमेणाधिकारिणः ।
 स्त्रियास्तु ज्येष्ठपुत्रकनिष्ठपुत्रपौत्रप्रपौत्रकन्यावाग्दत्तादत्ता-
 दोहितृसपत्नीपुत्रपतिस्त्रुषासपिण्डसमानोदकसगोत्र-पितृभ्रातृ-
 भगिनौपुत्रभर्तृभागिनेय भ्रातृपुत्रजामातृभर्तृमातुलभर्तृ-
 शिष्यपितृसमानोदकपितृवंश्याः मातृसमानोदकमातृवंश्या-
 द्विजोत्तमाश्चतुर्विंशतिप्रकाराण्यपि इति यत्र तु कतिचित्
 आह्वानि कृत्वा कश्चिन्मृतस्तदवशिष्टानि प्रेतआह्वानि तदन-
 न्तराधिकारिणा कार्य्याणि न तु सर्वाणि 'सपिण्डीकरणा-
 न्तानि यानि आह्वानि षोडश । पृथङ्नेव सुताः कुर्युः पृथग्-
 द्रव्या अपि क्वचित्' इत्युक्तत्वात् यत्तु आह्वचित्तामयी ।
 'एकोद्दिष्टन्तु कर्त्तव्यं पाकिनेव सदा स्त्रयम् । अभावे पाक-
 पात्राणां तदहः समुपोषणम्' इति लघुहारीतवचनात् । पाक-
 पात्राभावः पाकसामग्र्यभावोपलक्षकः । तदापि नामआहं
 किन्तुपोषणमेव आह्वस्थानीयमित्यर्थः । स्वयमित्यभिधानाद-
 पाटवादिनापि नान्यद्वारा कारयितव्यम् । अतएव उपवासेनेव
 आह्वस्थानीयम् तदकरणप्रायश्चित्तेनैव कृतकृत्यतया आह-
 विज्ञ इति वचनादपि नैकादश्यामनुष्ठानमिति तत्र षोडश-
 आह्वधिकारिणां कदाचित्तथात्वे । 'यस्येतानि न दीयन्ते
 प्रेतआह्वानि षोडश । पिशाचत्वं ध्रुवं तस्य दत्तेः आह्वयते-
 रपि' । इति वचनवचनेन षोडशआह्वभावे प्रेतत्वपरीहारो
 न स्यात् । तस्मादुपवासो न आहार्यः किन्तु तदानीन्तना-
 करणप्रायश्चित्तार्थः । यथा स्वकालाकृतसंस्कारे प्रायश्चित्तं
 कृत्वा कालान्तरे तत्करणम् । तथात्रापि तद्दिने उपवासं
 कृत्वा एकादश्यां आहं कर्त्तव्यमिति । एकोद्दिष्टं नान्यद्वारा
 कार्यमित्यत्रापि गोत्रजेतरत्वेनेति विशेषणीयम् । 'न कदा-
 चित् समोवाय आहं कार्यमगोत्रजैः' इति प्रेतआह्वे ब्रह्म-

शुद्धितत्त्वम् ।

३८५

पुराणात् । अत्र हि नागोत्रजस्य साक्षात् कर्तृत्व' निषि-
 द्यते । स्वगोत्रायेत्यत्र सम्बन्धापत्तेः । तस्मात् अगोत्रजैर्द्वार-
 भूतैः सगोत्राय आहं न कार्यमित्यस्यार्थः । तथाच पर्युदास-
 पक्षे सगोत्रजद्वारा कर्त्तव्यमिति सुव्यक्तमेव प्रसज्यपक्षे तु
 अगोत्रजविशेषणस्वरसात् सगोत्रजलाभः प्रेतआहधर्मग्राहि-
 त्वात् । सांवत्सरिकमपि तथेति आहविवेकः । कल्पतरुना-
 करयोस्तु सगोत्रायेति पठितम् । स्वम् आत्मीयं गोत्रं यस्य
 स स्वगोत्रः विद्यमानगोत्र इत्यर्थः । तस्मै आहं कर्त्तव्यं तस्य
 गोत्रे विद्यमाने अन्यगोत्रेण संघातान्तर्गतत्वेन राज्ञा वा आहं
 न कर्त्तव्यमिति व्याख्यातञ्च एतन्मतेऽप्युद्धृष्टादीनां
 असपिण्डत्वेऽपि न निषेधः । वस्तुतस्तु तत्पाठेऽपि कर्मधारया-
 पेक्षया बहुव्रीहेर्जघन्यत्वात् स्वम् आत्मीयञ्च तत् गोत्रञ्चेति
 तस्मै अन्य गोत्रद्वारा आहं न कार्यमित्यर्थः । अत्र गोत्रं कूलं
 'सन्ततिर्गोत्रजननकुलान्यभिजनान्वयी' इत्यमरकोषात् ततो
 लघुहारौतवचने स्वयं पदं स्वगोत्रपरम् । अन्यथा ब्रह्म-
 पुराणे अगोत्रजपदवैयर्थ्यापत्तेः । न च पाकस्याङ्गत्वेन प्रधान-
 तिधिकर्त्तव्यतानियम इति वाच्यम् । 'व्रतोपवासनियमे घटि-
 कैका यदा भवेत् । सा तिथिः सकला ज्ञेया पितृर्थे चाप-
 राह्णिकी' इति देवलवचनेन सुहृत्समात्रलाभेऽपि कर्त्तव्यतोप-
 देशात् तदानीं पाके तदसम्भवात् । एवं उदीच्याङ्गशेष-
 भोजनेऽपि न तद्वियम इति । पाके सपिण्डाधिकारमाह
 देवदः । 'तथैवामन्त्रितो दाता प्रातः स्नातः सहाम्बरः । आर-
 भेत नवैः पात्रैरन्वारभ्यं सवान्धवाः' ।

अथ सपिण्डादिविचारः । मत्स्यपुराणे । 'क्षेपभाजस्तु-
 र्बांशाः पित्राद्याः पिण्डभानिनः । पिण्डदः सप्तमस्तेषां
 सप्तपिण्ड' चाप्तपौरुषम्' । नन्वेवं भ्रात्रादिभिः सह पिण्ड-

३८६

शुद्धितत्त्वम् ।

तस्मैपभोक्तृत्वासम्भवात् कथं सपिण्डत्वमिति चेदुच्यते । तेषा-
मपि पिण्डलेपयोः सम्बन्धोऽस्ति तथाच बोधायनः । 'प्रपिता-
महः पितामहः पिता स्वयं सोदर्यभ्रातरः सवर्णायाः पुत्रः
पौत्रः प्रपौत्रो वा एतानविभक्तदायादान् सपिण्डानाचक्षते ।
विभक्तदायादान् सकुल्यानाचक्षते सत्स्वङ्गजेषु तन्नामी
ह्यर्थी भवति' इति अस्यार्थः पित्रादिपिण्डत्रयेषु सपिण्डनेन
भोक्तृत्वात् । पुत्रादिभिस्त्रिभिस्तत्पिण्डदानात् । यश्च जीवन्
यस्य पिण्डदाता स मृतः सन् सपिण्डनेन तत्पिण्डभोक्ता
एवं सति मध्यस्थितः पुरुषः पूर्वेषां जीवन् पिण्डदाता मृतः
सन् तत्पिण्डभोक्ताऽपरेषां जीवतां पिण्डसम्प्रदानभूत
आसीत् । मृतैश्च तैः सह दौहित्रादिदेयपिण्डभोक्ता अतो
येषामयं पिण्डदाता ये चास्य पिण्डभोक्तारस्तेऽविभक्तं पिण्ड-
रूपं दायमग्नन्तीति अविभक्तदायादाः सपिण्डा इति । इदञ्च
सपिण्डत्वं सकुल्यत्वञ्च दायग्रहणार्थम् अग्नौचाद्यर्थन्तु पिण्ड-
लेपभुजामपि 'लेपभाजश्चतुर्थाद्याः पित्राद्याः पिण्डभागिनः' ।
इति प्रागुक्तमव्ययपुराणात् । वक्ष्यमाणकूर्मपुराणशङ्कलिखित-
वचनाच्च । पिण्डे यथा परस्परं भोक्तृत्वं तथा लेपे तुल्य-
न्यायात् । हारलतायां कूर्मपुराणम् । 'सपिण्डता तु पुरुषे
सप्तमे विनिवर्तते । समानोदकभावस्तु जन्मनान्नोरवेदने ।
पिता पितामहश्चैव तथेव प्रपितामहः । लेपभाजश्चतुर्थाद्याः
सापिण्डाः साप्तपौरुषम्' । लेपभागिभ्यस्तद्वै यावज्जन्मनान्नो-
रवेदने यावदसुकनान्नोऽस्मात् पूर्वपुरुषादयं जात इति विशेषः
अयमस्मात् कुले जात इति सामान्यतो वा स्मर्यते तावत्समा-
नोदकत्वमिति हारलता । अत्र परवचनेनैव सापिण्डासिद्धौ
पूर्ववचनपूर्वाहं जीवत्पितृकत्वादिना अधिकपुरुषेषु पिण्ड-
लेपसम्बन्धेऽपि सपिण्डतानिर्वाहतिज्ञापनाय । सर्वदेशीया-

शुद्धितत्त्वम् ।

३८७

चारोऽपि तथा । यथा आहविवेकोऽपि पार्वणश्राद्धेनन्तरं
नित्यश्राद्धे विकल्प उक्तः । मार्कण्डेयपुराणम् । ‘नित्यक्रियां
पितृणान्तु केचिदिच्छन्ति सत्तमाः । न पितृणान्तथैवान्ये
शेषं पूर्ववदाचरेत्’ । अत्र पूर्वाह्नात् पितृणां प्राप्ती न पितृणा-
मित्यत्र पुनः पितृणां ग्रहणं सनकादीनामन्नोत्सर्गाभ्यनु-
ज्ञानार्थमिति फलान्तरमुक्तं हरिशर्मणापि अन्यार्थं पुनर्वचन-
मिति लिखितम् । अथ यः खलु पिण्डान् दत्त्वैव मृतः पर-
तश्चाप्राप्तपितृभावः स कथं सपिण्डः । एकपिण्डदाहत्व-
भोक्तृत्वलक्षणसम्बन्धाभावादिति चेत् तदयोग्यतयेति ब्रूमः ।
योग्यताप्रयोजकञ्च सामान्यशास्त्रविषयत्वम् । ततश्चात्यति-
वृद्धप्रपितामहावधिकाधस्तनानां षष्ठां पुंसां प्रत्येकापेक्षया
सप्तानामेकगोत्राणां स्वावधिपरतनानां सप्तानाञ्च सापिण्ड्यं
पिण्डलेपयोर्दाहत्वभोक्तृत्वसम्बन्धादिति स्त्रीणान्तु भर्तृसापि-
ण्ड्येन सापिण्ड्यम् । प्रत्तानां भर्तृसापिण्ड्यमिति वचनात् ।

नन्वेवं कन्यायाः कथं सपिण्ड्यतेति चेत् आदिपुराणवच-
नात् त्रैपुरुषं सापिण्ड्यम् । यथा ‘सपिण्डता तु कन्यानां
सवर्णानां त्रिपौरुषी’ । अत्र कन्यानामनूटानां अप्रत्तानां त्रि-
पौरुषमिति वशिष्ठवचनात् । तेन आत्मपञ्चमे वृद्धप्रपितामहे
सापिण्ड्यं निवर्तते इति प्रतिपादितम् । अतएव कन्यायाः
प्रपितामहभ्रात्रा तत् सन्ततिभिः सह सापिण्ड्यभावात्
कन्यामरणजननयोस्तृष्ठां सपिण्ड्याशौचं नास्ति किन्तु समानो-
दकनिमित्तमेवाशौचमिति एवं तेषामपि जननमरणयोः
कन्यानामिति शूलपाणिमहामहोपाध्यायाः । यत्तु कूर्म-
पुराणम् । ‘अप्रत्तानां तथा स्त्रीणां सापिण्ड्यं साप्तपौरुषम् ।
प्रत्तानां भर्तृसापिण्ड्यं प्राह देवः पितामहः’ । इति रत्नाकर-
धृतम् । तद्विवाहे पितृपक्षविषयम् । यथा विष्णुपुराणं

३८८

शुद्धितत्त्वम् ।

‘सप्तमीं पितृपक्षाच्च मातृपक्षाच्च पञ्चमीम् । उद्धहेत द्विजो भार्यां न्यायेन विधिना नृप’ । सप्तमीं पञ्चमीं हित्वेति शेषः । भर्तृसापिण्डमित्यत्र साप्तपौरुषमित्यनुषज्यते । तेन भर्तृ-समानसापिण्डमित्यर्थः । शृङ्खलिखितौ । ‘सपिण्डता तु सर्वेषां गोत्रतः साप्तपौरुषी । पिण्डश्चोदकदानञ्च शौचा-शौचं तदानुगम्’ । गोत्रतः गोत्रैक्ये तेन मातामहकुले कदाचित् षट्पुरुषपर्यन्तं पिण्डसम्बन्धेऽपि न सपिण्डता । तान् सप्तपुरुषान् आसमन्तात् कारेण पिण्डादिकमनुगच्छ-तीति तदानुगम् । एतेन सपिण्डता एकशरीरावयवान्वयेन भवति तथाहि पितुः शरीरावयवान्वयेन पित्रा सह एवं पितामहादिभिरपि पितृद्वारेण तच्छरीरावयवान्वयात् । एवं मातृशरीरावयवान्वयेन मात्रादिभिरिति । एवं पत्या सह पत्न्या एकशरीरारम्भकतया सापिण्डम् । तथाच गर्भोप-निषदि ‘एतत् षाट्कोषिकं शरीरं त्रीणि पितृतः त्रीणि मातृतः अस्थिस्रायुमज्जानः पितृतः त्वङ्मांसरूधिराणि मातृ-तश्चेति’ तत्र तत्रावयवान्वयप्रतिपादनात् निर्वाप्य पिण्डान्वये तु सापिण्डे भ्रातृपितृव्यादिसापिण्डं न स्यात् । अति-प्रसङ्गस्तु सप्तान्यतमत्वेन प्रयोगोपाधिना निरसनीयः । यद्येवं मातामहादीनामपि मरणे सपिण्डत्वेन दशाहशौचं प्राप्नोति स्यादेतत् यदि मातामहादीनां मरणे त्रिरात्रं स्यादशौचकम् इत्यादि विशेषवचनं न स्यात् । यत्र तु विशेषवचनं नास्ति तत्र दशाहमिति मिताक्षरारत्नाकरादिमतमपास्तं लेपभाज इत्यादि वाचनिकेऽर्थे सापिण्डे एकशरीरावयवान्वयरूपस्व-कपोलरचितार्थानवकाशात् निर्वाप्य पिण्डसम्बन्धेन भ्रात्रा-दीनां सापिण्डस्य मत्स्यपुराणबोधायनाभ्यां पूर्वमुक्तत्वात् कामधेनुहारलताकल्पतरुपारिजातकारादिभिस्तथैव व्याख्या-

शुद्धितत्त्वम् ।

३८६

तत्वाच्च । रेतःशोणितपेरिणामरूपत्वादपत्यशरीरस्य भवतु वा
 तथा पत्या सह पक्ष्मा एकशरीराभक्तया प्रत्यक्षबाधितत्वात्
 कथं सापिण्ड्यं मातामहादौर्ना विशेषवचनाभावात् सापिण्ड-
 त्वेन दशाह्वयशौचप्रसङ्गाच्च मातामहादौ सापिण्ड्यस्य
 लोकविरुद्धत्वाच्च भवतु वा तथा शरीरद्वारा सापिण्ड्यं
 तथापि वचनात् यथासमान्तर्गतत्वं तन्त्रं तथा गोचरः साप्त-
 पौरुषीति वचनात् गोत्रैकमपि प्रागुक्तवचनात् कन्याया-
 स्त्रिपौरुषम् ऊढायाश्च भर्तृसापिण्ड्येन सापिण्ड्यमिति चेत्
 तदेतन्मतेऽपि व्यवस्थायां न क्षतिरिति अतएव सुमन्तुवच-
 नाभिहितं यद्दशमपुरुषपर्यन्तमशौचं तत्सप्तमपुरुषाभ्यन्तरा-
 शौचाग्र्यं त्रिरात्रं यथा ब्राह्मणानामेकपिण्डस्वधानामादश-
 माद्वर्गविच्छित्तिर्भवति आसप्तमात् ऋक्थविच्छित्तिर्भवति
 आढतीयात् स्वधाविच्छित्तिर्भवति अन्यथा पिण्डाशौचक्रिया-
 द्युच्छेदात् ब्रह्महत्यातुल्यो भवतीत्यस्यार्थः । एकासमाना-
 पिण्डस्वधा येषां ते तथा यथैकोद्दिष्टस्य पिण्डे तु अनुशब्दो
 न युज्यते इत्यत्रानुशब्देनानुशब्दयुक्तमन्त्रो लक्ष्यते अनुयुक्त-
 मन्त्रस्तु ये चात्रत्वा मनुयांश्च त्वमनु तस्मै ते स्वधा इति तथा
 पिण्डस्वधाशब्देन पिण्डसम्बन्धिस्वधाशब्दयुक्तमन्त्रकरणकदेय-
 जलं लक्षितम् । तथाच ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयःकीलालं
 परिसृतं स्वधास्य तर्पयत मे पितॄन् इत्यनेन पिण्डान् सिञ्चे-
 दित्युक्तम् । ततश्च एकपिण्डस्वधानां समानोदकानामित्यर्थः ।
 अतएव मनुः । 'जन्मन्येकोदकानान्तु त्रिरात्रात् शुद्धिरिष्यते' ।
 विष्णुपुराणं 'मातृपक्षस्य पिण्डेन सम्बन्धा ये जलेन वा । मातृ-
 पक्षस्य मातामहपक्षस्य पिण्डेन सम्बन्धाः जलेन सम्बन्धाः
 समानोदका इति' आह्वयविवेकेऽपि व्याख्यातम् । 'असम्बन्धा
 भवेद् या तु पिण्डेनैवोदकेन वा' इति विवाहेऽप्युक्तम् अत्र

४००

शुद्धितत्त्वम् ।

पुत्रिकायाः पार्वणे पिण्डोदकयोः सम्बन्धात् कन्यामात्रेऽपि तदयोग्यतायाः सत्त्वात् । कन्यापिण्डोदकसम्बन्धोच्यते एतदनुसारादपि तस्याः सपिण्डता बोद्धव्या तस्मादेकपिण्डस्वधानामित्यनेन समानोदकभावः समाख्यातः न तु दशमपर्यन्तं पित्रादिजीवनादिना सापिण्ड्यसम्बन्धेऽपि सापिण्ड्यं विहितं प्रागुक्तयुक्तेः स्वधेत्यस्य तदनुपयुक्तत्वेन वैयर्थ्यापत्तेः । अपुत्रधनाधिकारस्तु सन्निहिततराभावे सप्तमपुरुषपर्यन्तं मृतपितृकस्य स्वधोपलक्षितश्चाद्धाधिकारः पुरुषत्रयपर्यन्तमिति अत्र स्वधाशब्दो मन्त्रपरः पितृपक्षपरोऽपि । तथाच गुणविष्णुवृता श्रुतिः 'स्वधा वै पितृणामन्नमिति' । दशमपुरुषपर्यन्तं समानोदकत्वेऽपि न त्रिरात्रं किन्तु पक्षिण्यादि तथाहि उदकक्रियामधिकृत्य पारस्करः । 'सर्वे ज्ञातयो भावयन्ति । आसप्तमाद्दशमाद्वा समानग्रामवासेन यावत् सम्बन्धमनुस्मरेयुर्वा' इति भावयन्ति निष्पादयन्ति अत्र यावत् सम्बन्धमनुस्मरेयुरेककुलजातावयमिति स्मरणं भवतीत्यनेनैव सर्वेषामुदकदाने ग्राप्ते यदा सप्तमाद्दशमादुक्तं तत्सन्निकर्षतारतम्येनाशौचभेदेऽप्युदककर्म समानार्थमिति । अशौचभेदस्तु सप्तमपुरुषपर्यन्तं सपिण्डत्वादृशाहः । ततश्च दशमपुरुषपर्यन्तं त्र्यहः । तथाच विष्णुवृहस्पती । 'दशाहेन सपिण्डास्तु शुध्यन्ति मृतसूतके । त्रिरात्रेण सकुल्यास्तु स्नात्वा शुध्यन्ति गोत्रजाः' । ततः चतुर्दशपुरुषपर्यन्तं पक्षिणी ततश्च जन्मनामस्मृतिपर्यन्तमेकाहः । तथाच मिताक्षराविवादचिन्तामण्योर्बृहन्ननुः । 'सपिण्डता तु पुरुषे सप्तमे विनिवर्तते । समानोदकभावस्तु निवर्तता चतुर्दशात् । जन्मनामस्मृतिरेके तत्परं गोत्रमुच्यते' । अत्र समानोदकत्वे द्विविधे पूर्वत्र गोत्रमः पक्षिणीमसपिण्डे परत्र हारीतः । 'मातामहे त्रिरात्रं स्यादेकाहस्त्वसपिण्डके'

शुद्धितत्त्वम् ।

४०१

इति । अत्रैव गोत्रजानामहःसृतमिति जावालवचनं ततः परं सर्वथा समानोदकतानिवृत्तेः । स्नानमात्रमिति स्नात्वा शुद्धान्ति गोत्रजा इति वृहस्पत्युक्तत्वादिति ।

अथ अशौचसंक्षेपः । जननाशौचमध्ये जननाशौचान्तरपाते पूर्वाशौचकालेन शुद्धिः । पूर्णाशौचान्तदिने पूर्णाशौचान्तरपाते अन्तिमदिनोत्तरदिनद्वयेन शुद्धिः । अन्तिमदिवसोत्तरप्रभाते सूर्योदयात् पूर्वं तत्पाते सूर्योदयावधि दिनत्रयेण शुद्धिः । एवं मरणाशौचेऽपि वर्द्धितदिनद्वयत्रयाभ्यन्तरे अशौचान्तरपाते पूर्वेणैव शुद्धिः । अशौचत्रितयान्तकृत्यमेकदैव । तत् द्वितीयदिनकृत्यं तत्परदिने अत्र दशमदिनतत्प्रभातयोः पितृमातृभर्तृमरणे तु न दिनद्वयत्रयाच्छुद्धिः किन्तु स्वावध्येव सम्पूर्णाशौचमिति ज्ञातिजननाशौचमध्ये स्वपुत्रजनने पूर्वाह्ने पूर्वेण परार्द्धे परेण शुद्धिः । एवं ज्ञातिमरणमध्ये पितृमातृभर्तृमरणे पूर्वाह्ने पूर्वाशौचकालेन परार्द्धे पराशौचकालेन शुद्धिः । स्वपुत्रजननाशौचान्तिमदिनतत्प्रभातयोर्ज्ञातिजनने पितृमातृभर्तृमरणाशौचान्तिमदिनतत्प्रभातयोर्ज्ञातिमरणेऽपि न दिनद्वयत्रयवृद्धिः । स्वपुत्रयोऽस्तु तथा जनने मातापित्रोस्तु परस्परं तथा मरणे च दिनद्वयत्रयवृद्धिः । जननाशौचयोस्तु सन्निपाते पूर्वजातो यदाशौचाभ्यन्तरे मृतस्तदा सपिण्डानां मद्यःशौचेन पूर्वाशौचस्य नाशः तन्नाशादेव परजातमातृपितृव्यतिरिक्तानां परजननाशौचस्य निवृत्तिः । परजातमरणे तु न तथा तस्य पूर्वजननावधिस्थायित्वादिति गुरुचरणाः । एवं द्वितीयजातपित्रोऽस्तु पूर्वाह्नेजातमरणे पूर्वाशौचकालावधि अङ्गासृश्यत्वयुक्तमशौचं परार्द्धजातमरणे तु स्वावधि जननाशौचमङ्गासृश्यत्वयुक्तमिति औत्सर्गिकसमसंख्यदिवसीय जननमरणाशौचयोः

४०२

शुद्धितत्त्वम् ।

सन्निपाते मरणाशौचकालेन शुद्धिः । तदन्यकालयोस्तु दीर्घकालाशौचकालेन शुद्धिः । ततश्च पुत्रवत्या विंशतिरात्रा-
शौचान्तदिने पत्युर्मरणे बहुकालौनाशौचकालेन शुद्धिः ।
तथा सति सपिण्डद्वयजननजातद्वादशाहान्तदिने पितृमातृ-
भर्तृमरणेऽपि बहुकालौनाशौचकालेन शुद्धिः । एकाहमरण-
द्वये यावदशौचं सर्वगोत्रासृश्यत्वम् एवं समानोदकमरणे-
ऽङ्गासृश्यत्वमेकरात्रं विद्युदादिमरणेऽपि तथा । तेनैतत्त्रिरात्रं
गुरु विदेशमरणे त्रिरात्रं लघु स्नानेनैवाङ्गासृश्यत्वनिवृत्तेः ।
ततश्चोभयोः सन्निपाते गुरुणैव शुद्धिः । एवं विदेशमृतज्ञाति-
त्रिरात्राद्विदेशमृतपितृमातृभर्तृत्रिरात्रं गुरु संपूर्णाशौचे तु
अशक्तानामपि यावदशौचम् अक्षारलवणाशित्वदर्शनात् ।
अत्रापि तावत् कालं तथासिद्धत्वात्तत्रापि गुरुणैव शुद्धिः
तुल्य त्रिरात्रयोस्तु सन्निपाते पूर्वणैव शुद्धिः । तथा कन्या-
पुत्रयमजोत्पत्तौ मातुर्मसिन शुद्धिः । तयोरशौचमध्ये मातुः
कन्यामरणे सद्यःशुद्धिर्न पुत्रमरणात् अन्येषान्तु प्रथम-
जातमरणात् शुद्धिः । न परजातमरणात् एवमन्यद्वाव्यं
सुधीभिरित्यशौचसङ्करः ।

अथ विदेशस्थाशौचम् । अशौचकालाभ्यन्तरे विदेशस्था-
शौचश्रवणे शेषाहैः शुद्धिः । अशौचकालोत्तरश्रवणे तु ज्ञाति-
जननाशौचं नास्तीति पुत्रजनने तु सचेल स्नानात् शुद्धिः ।
मरणाशौचे तु वर्षाभ्यन्तरश्रवणे चरहेण शुद्धिः । सचेल-
स्नानादङ्गासृश्यत्वनिवृत्तिः । वर्षातिरश्रवणे स्नानेन शुद्धिः ।
सपिण्डानां पुत्रादीनान्तु मातृपितृभर्तृमरणे तु वर्षातिरमेका-
हेन शुद्धिः द्वितीयवर्षे श्रवणे सद्यः संपूर्णाशौचातिक्रमे त्र्यहा-
शौचं न बालाद्यशौचातिक्रमे खण्डाशौचातिक्रमेऽपि । इति
विदेशस्थाशौचम् ।

शुद्धितत्त्वम् ।

४०३

अथ गर्भस्रावाशौचम् । गर्भस्रावे तु स्त्रीणामेव षण्मा-
षाभ्यन्तरेऽशौचं तच्च लौकिके कर्मणि माससमसंख्यदिन-
व्यापकं द्वितीयमासावधिमाससमसंख्यदिनाधिकैकदिनात् परं
ब्राह्मण्या वैदिककर्माधिकारः क्षत्रियाया दिनद्वयात् वैश्याया
दिनत्रयात् शूद्रायास्तु षष्ठदिनादिति हारलताप्रभृतयः ।
सप्तमाष्टममासीयगर्भपतने स्त्रीणां संपूर्णाशौचं निर्गुणसपिण्डा-
नामहोरात्रं यथेष्टाचरणसपिण्डानां त्रिरात्रं तत्र जातस्य
तद्दिन एव मरणे ज्ञेयं द्वितीयदिनादौ तु मरणे नवमादिमास-
जातबालकवत् । इति गर्भस्रावाशौचम् ।

अथ स्त्राशौचम् । कन्यायाः जन्मप्रभृतिद्विवर्षाभ्यन्तर-
मरणे सद्यःशौचं तदुपरि वाग्दानपर्यन्तमेकाहः । वाग्दानो-
त्तरविवाहपर्यन्तं भर्तृकुले पितृकुले च त्रिरात्रम् । विवाहो-
त्तरन्तु भर्तृकुल एव संपूर्णाशौचम् । सोदरभ्रातृस्तु कन्याया
आदन्तजन्ममरणे सद्यःशौचम् । आचूडादेकरात्रकम् आप्र-
दानाक्षिरात्रं स्यादिति विशेषः दत्तकन्यायाः पितृगृहे
प्रसवमरणयोः पित्रोः शयनादिसंसर्गशून्येऽपि त्रिरात्रं तथाविध-
बन्धुवर्गाणामेकरात्रम् ।

अथ बालाद्यशौचम् । नवमादिमासजातबालकस्याशौच-
कालाभ्यन्तरमरणे मातापितोरसृश्यत्वयुक्तं तदेव जनना-
शौचं ज्ञातीनान्वशौचं नास्ति नवमादिमासमृतजातयोस्तु
कन्यापुत्रयोः पित्रादिसपिण्डानां जननाशौचम् । तच्च ब्राह्म-
णानां दशाहं शूद्राणां मासम् । पुत्रजन्मनि मुखदर्शनात्
पूर्वं सचेलस्नानं कृत्वा पुत्रजन्ममुखदर्शननिमित्तवृद्धिश्चाहं
कृत्वा अशक्तौ तदकृत्वा ब्राह्मणेभ्यश्च यथाशक्ति दत्त्वा बालकाय
काञ्चनं दत्त्वा मुखं पश्येत् । ततः पुनः सचेलस्नानम् ।
अन्याशौचमध्येऽपि जातकर्मषष्ठीपूजे कर्तव्ये । पुत्रजन्म-

४०४

शुद्धितत्त्वम् ।

निमित्तकं वृद्धिश्चाद्यं नाङ्गीच्छेदात् पूर्वम् अशौचान्ते वा कर्त्तव्यं स्नानादिप्रमाणमशौचसङ्करे द्रष्टव्यम् । पुत्रकन्याजनने स्त्रीणां दशाहेन लौकिककर्माधिकारः । पुत्रजनने वैदिककर्माधिकारो विंशतिरात्रोत्तर स्नानात् । कन्याजनने तु मासोत्तरस्नानात् ब्राह्मण्याः शूद्रयास्तूभयत्रैव मासोत्तरस्नानात् शुद्धिः । एतत् सर्वं पुत्रकन्ययोर्विद्यमानत्वे बोध्यम् । जननाशौचकालोत्तरं षण्मासाभ्यन्तरमजातदन्तमरणे पित्रोरेकाहः । एवं निर्गुण सोदरस्य सपिण्डानान्तु सद्यः । षण्मासाभ्यन्तरेऽपि जातदन्तस्य मरणे पित्रोस्त्रग्रहः सपिण्डानामेकाहः षण्मासोपरि द्विवर्षपर्यन्तं पित्रोस्त्रग्रहः । सपिण्डानामकृतचूडे एकाहः कृतचूडे त्रग्रहः । द्विवर्षोपरि सर्वेषामनुपनीतस्य मरणे मासत्रयाधिकषड्वर्षं यावत् त्रग्रहः । पञ्चवर्षोपनीतस्य तदानीमपि दशाहः । मासत्रयाधिकषड्वर्षोपरि सर्वेषां दशाहः । शूद्रस्य षण्मासाभ्यन्तरेऽनुत्पन्नदन्तस्य त्रिरात्रम् उत्पन्नदन्तस्य पञ्चाहः । षण्मासोपरि द्विवर्षाभ्यन्तरे पञ्चाहः । अत्रापि कृतचूडस्य द्वादशाहः । द्विवर्षोपरि षड्वर्षाभ्यन्तरे द्वादशाहः । अत्रापि देवात् कृतोद्वाहेऽपि मासो व्यवह्रियते । षड्वर्षोपरि मासः । अत्र मासवर्षपरिगणना सावनेन । 'सूतकादिपरिच्छेदो दिनमासाब्दपास्तथा । मध्यमग्रहभुक्तिश्च सावनेन प्रकीर्तिता' इति सूर्यसिद्धान्तात् इति बालाद्यशौचम् ।

अथ सपिण्डाद्यशौचं जनने मरणे च सप्तमपुरुषपर्यन्तं विप्रस्य दशाहः शूद्रस्य मासः दशमपुरुषपर्यन्तं सर्वस्य त्रग्रहः । चतुर्दशपुरुषपर्यन्तं पक्षिणी जन्मनामस्मृतिपर्यन्तमेकाहः । अतः परं सगोत्रे स्नानमात्रम् अशौचं प्रति कन्यायास्त्रिपुरुषं सापिण्डम् ।

शुद्धितत्त्वम् ।

४०५

अथ असपिण्डाशीचं मातामहमरणे त्रिरात्रं भगिनी-
मातुलानी मातुलपितृस्वसृमातृस्वसृगुर्वङ्गनामातामहीमरणे
पक्षिणी । श्वश्रूश्वशुरयोर्भिन्नग्रामस्थयोर्मरणेऽहोरात्रम् ।
आचार्यपत्नीपुत्रयोरुपाध्यायस्य मातृवैमात्रेयस्य श्यालकस्य
सहाध्यायिनः शिष्यस्य च मरणेऽहोरात्रं मातृस्वस्रीयपितृ-
स्वस्रीयमातुलपुत्रभागिनेयमरणे पक्षिणी । पितामहभगिनीपु-
त्रपितामहीभ्रातृपुत्ररूपपितृबान्धवत्रयमरणे पक्षिणी । माता-
महीभगिनीपुत्रमातामहभगिनीपुत्र-मातामहीभ्रातृपुत्र-रूप-
मातृबान्धवमरणेऽहोरात्रम् । एकग्रामवासिगोत्रजमरणेऽहो-
रात्रम् श्रीरसव्यतिरिक्तपुत्रजननमरणयोः परपूर्वभार्याप्रसव-
मरणयोस्त्रिरात्रम् । स्वजातीयपुरुषान्तरसंगृहीतस्वभार्यामरणे
त्रिरात्रम् । मातृस्वसृपितृस्वसृमातुलभगिनीपुत्राणां गृहस्थि-
तानां मरणे त्रिरात्रम् । श्वश्रूश्वशुरयोः सन्निधिमरणे त्रिरात्रं
श्वश्रूश्वशुरयोरेकग्रामस्थितयोर्मरणे पक्षिणी । प्रथममन्येनोढा
तेनैव जनितपुत्रा पुत्रसहितैवान्यमाश्रिता पश्चात्तेनापि जनित-
पुत्रा तयोः पुत्रयोर्यथासम्भवं प्रसवमरणयोर्द्वितीयपुत्रपितु-
स्त्रिरात्रं तत् सपिण्डानामेकरात्रं तथाविधपुत्रयोः परस्पर-
प्रसवमरणयोर्मातृजात्युक्तमशीचम् । दौहित्रमरणे पक्षिणी
पितृमातृमरणे ऊढानां कन्यानां त्रिरात्रम् । यदि मातृ-
स्वसृप्रभृतीनां दहनवहने करोति तदा त्रिरात्रं मातामहा-
दीनां त्रिरात्राभ्यन्तरमरणश्रवणे तच्छेषेण शुद्धिः । तत्काली-
नश्रवणे तु नाशीचं किन्तु आचारात् स्नानम् । इति
सपिण्डाद्यशीचम् ।

अथ मृत्युविशेषाशीचम् । शास्त्रानुमतबुद्धिपूर्वकात्मघा-
तिनो नाशीचादि शास्त्रानुमत्याऽनशनादिभूतस्य प्रमादाद-
नशनाशनिवर्जजलोच्चदेश-प्रपतनसंग्राम-शृङ्खिदंष्ट्रिनिखिव्याल-

४०६

शुद्धितत्त्वम् ।

विषचाण्डालचौरहतस्य त्रिरात्रं शृङ्गारादिभिः स्त्रिया च क्रौडं कुर्वतः प्रमादमृतस्यापि नाशौचादि नागविप्रियकारित्वेन उद्धतस्य मरणोद्देशेन प्रवृत्त विद्युद्धतस्य च चौर्यादिदोषेण राज्ञा हतस्य च कलहं कृत्वा चाण्डालाद्यैरसमानैर्हतस्य च व्याधिजनकोषधस्य विषस्य वक्त्रेण दातुर्मरणे पाषण्डाश्रितस्य च नित्यं परापकारिणश्च क्रोधात् स्वयं प्रायो विषवाङ्मिश्रस्त्री-दम्बनजलगिरिवृक्षप्रपातैर्मृतस्य चर्मास्थ्यादिमयपात्रनिर्मातु-र्विप्रादेश्च मनुष्यवधस्थानाधिकारिणश्च कण्ठदेशोत्पन्नभग-रोगस्य पुंस्कर्माशक्तनपुंसकस्य च ब्राह्मणविषयापराधकर-णान्नहतस्य च बुद्धिपूर्वक ब्राह्मणहतस्य च महापातकिनश्च एवंविधपतितानां न दाहादिकं कार्यम् । तत्कृत्वा तप्त-कच्छद्वयं कुर्यात् । स्नेच्छतस्करादिभिर्युद्धे स्वाम्यर्थं हतस्य विप्रादेर्दाहादिकमस्यैव । अकृतप्रायश्चित्तस्य गलत्कुष्ठिनो न दाहादिकं कार्यं शस्त्रेणाभिमुखहतस्य सद्यःशौचं दाहादि च गवार्थे ब्राह्मणार्थे वा दण्डेन युद्धहतस्याहोरात्रमशौचम् । नृपतिरहितयुद्धे लगुडादिहतस्य पराङ्मुखहतस्य त्रिरात्रम् । गोविप्रपालनेऽभिमुखपराङ्मुखत्वाभ्यां हतस्य सद्यस्त्रिरात्रे । शस्त्रघातेतरक्षते सप्ताहादूर्ध्वं शस्त्रघाते सम्पूर्णं त्र्यह्नादूर्ध्वं मरणे च प्रकृताशौचम् ।

अथ शवानुगमनाशौचम् । ब्राह्मणशवस्यानुगमने ब्राह्म-णस्य सचेलस्नानाग्निस्पर्शघृतप्राशनैः शुद्धिः । क्षत्रियशवस्यै-काहेन वैश्यशवस्य द्व्यहेन शूद्रस्य प्राणायामशर्तैन दिनत्रयेण च शुद्धिः । प्रमादाच्छूद्रशवानुगमने जलावगाहाग्निस्पर्श-घृतप्राशनैः शुद्धिः । अनाथब्राह्मणस्य धर्मबुद्ध्या दहनवहनयोः स्नानघृतप्राशनाभ्यां सद्यःशौचं लोभेन सजातीयदाहे स्वजा-त्युक्ताशौचम् । असजातीयशवस्य दहनवहनस्पर्शः शवजा-

शुद्धितत्त्वम् ।

४०७

त्युक्ताशौचम् । स्निग्धादसम्बन्धिदाहकविप्रस्य तद्गृहवासे
 त्रिरात्रं तत् कुलान्नभोजने दशरात्रं तद्गृहवासे तदन्नाभोजने
 च अहोरात्रं विशेषवचनाभावे सम्बन्धिनो मातुलादेरस्नेहे-
 नापि अदाहे त्रिरात्रं चिताधूमसेवने सचेलस्नानं मृते शूद्रे-
 ऽस्थिसञ्चयनकालाभ्यन्तरे तद्गृहं गत्वाऽश्रुपातने विप्रस्य
 त्रिरात्रमशौचं स्थानान्तरे विशेषवचनाभावेऽहोरात्रं तद्गृहे
 तद्गृहे मासाभ्यन्तरेऽहोरात्रं सचेलस्नानञ्च । स्वजातेर्दिवसे-
 नैव क्षत्रियवैश्ययोर्द्व्यहोरात्रं ब्राह्मणः शुध्यति । शूद्रस्तु स्पर्शं
 विनानुगमने सर्वत्र नक्तनेन मृतस्य शूद्रस्य बान्धवैः सह रोदन-
 रहितविलापमात्रेऽहोरात्रम् । अस्थिसञ्चयनकालञ्च ब्राह्मणस्य
 चतुरहः शूद्रस्य दशाहः । त्र्यहोरात्रं द्वितीयाहः मरणाशौचे
 विप्रस्य चतुर्थाहेऽसृश्यतानिवृत्तिः । शूद्रस्य दशमदिने सर्वस्य
 खण्डाशौचकाले त्रिभागकालेन अतिक्रान्ताशौचे सचेल-
 स्नानेन जनने तु सपिण्डानां सृश्यतेव । पुत्रोत्पत्तौ स्नानात्
 पितुः सृश्यत्वम् एवं विमातृणामपि । एवं सूतिकास्यशौ-
 चपितुर्विमातृणाञ्च सूतिकातुल्यकालासृश्यत्वम् । अन्येषां
 स्नानमात्रं कन्या पुत्रजनने मातुर्दशरात्रमङ्गासृश्यत्वं शूद्रा-
 यास्तु त्रयोदशरात्रमसृश्यत्वम् । इति शवानुगमनाशौचम् ।

अथ अन्येष्टिपद्धतिः । गतप्राणं ज्ञात्वा पुत्रादिस्नात्वा-
 ऽलंक्रत्वा स्नापयेत् ततो गतप्राणं स्नापयित्वा वाससा सर्वशरी-
 रमाच्छाद्यास्तीर्णकुशायां भूमौ दक्षिणशिरसं स्थापयेत् ततो
 घृतेनाभ्यज्य । ओम् 'गयादीनि च तीर्थानि ये च पुण्याः
 शिलोच्चयाः । कुरुक्षेत्रञ्च गङ्गाञ्च यमुनाञ्च सरिद्धराम् । कौशिकीं
 चन्द्रभागाञ्च सर्वपापप्रणाशिणीम् । भद्रावकाशां गण्डकां
 सरयुं पनसान्तथा । वैनवञ्च वराहञ्च तीर्थपिण्डारकन्तथा ।
 पृथिव्यां यानि तीर्थानि सरितः सागरां स्तथा' इति चिन्तः

४०८

शुद्धितत्त्वम् ।

यित्वा पुनः स्नापयेत् । वस्त्रान्तरं परिधाप्य उत्तरीयमुप-
 वीतञ्च दत्त्वा चन्दनादिनोपलिप्य कर्णनासिकानेत्रद्वयमुखात्म-
 केषु सप्तछिद्रेषु सप्तस्वर्णखण्डिकाः प्रक्षिपेत् । तदभावे
 कांस्यादिखण्डिकाः ततो वस्त्रान्तरेणाच्छाद्य वह्नेयुर्वहनकाले
 आमपात्रस्थं तदन्नार्द्धं वर्त्मनि क्षिपेत् अर्द्धं पिण्डार्थमवशेष-
 येत् । ततोऽग्निदाता पुत्रादिस्थिताभूमौ गत्वा तदन्नार्द्धं
 सतिलं पिण्डदानेति कर्त्तव्यतयोत्सृजेत् । सा यथा गोमयेनो-
 पलिप्तायां भूमौ पातितवामजानुः । प्राचीनावीती कुशमूलेन
 ओम् अपहृता सुरा रक्षांसि वेदिसद इत्यनेन दक्षिणाग्ररेखां
 कुर्यात् । तदुपरि कुशानास्तीर्थ्य 'एहि प्रेत सौम्य गम्भीरेभिः
 पथिभिः पूर्व्विणेभिर्देह्यस्मभ्यं द्रविणेह भद्रं रयिञ्चनः सर्व्ववीरं
 नियच्छ' इत्यावाह्य सतिलजलपात्रं वामहस्तादक्षिणहस्तेन
 गृहीत्वा ओम् अमुकगोत्र प्रेतामुकदेवशर्मन्नेतत्तेऽन्नमुप-
 तिष्ठतामिति । वामहस्तगृहीतामपात्रादर्द्धान्नं सतिलं दक्षि-
 णहस्तेन गृहीत्वा कुशोपरि दद्यात् पिण्डप्रक्षालनजलेन
 तदुपरि पुनरवनेजनं तूष्णीं गन्धादिदानं सामगेतरेषान्तु
 नावाहनमिति विशेषः । ततः पुत्रादिः स्नानं कृत्वा चितां
 रचयित्वा तत्र दारुचयं कुर्यात् तदुपरि वस्त्रद्वयसहितं दक्षि-
 णाशिरसं सामगमधोमुखं पुमांसं न्यसेत् । नार्थास्तूतान-
 देहत्वम् । सामगेतरेषाम् उत्तरशिरस्त्वं ततो देवाश्चाग्नि-
 मुखाः सर्व्वे हुताशनं गृहीत्वा एनं दहन्तु पठित्वा । ओम्
 'कृत्वा तु दुष्करं कर्म जानता वाप्यजानता । मृत्युकालवशं
 प्राप्य नरं पञ्चत्वमागतम् । धर्माधर्मसमायुक्तं लोभमोह-
 समावृतं दहेयं सर्व्वगात्राणि दिव्यान् लोकान् स गच्छतु'
 इति पठित्वा प्रदक्षिणं कृत्वा दक्षिणामुखः शिरःस्थाने दद्यात् ।

शुद्धितत्त्वम् ।

४०८

स्त्रीदाहे नरमित्येव पाठः । न नारीमित्यूहः । ततो दाहे
 वृत्ते प्रादेशप्रमाणाः सप्त काष्ठिका गृहीत्वा चिताग्निं सप्त-
 वारान् प्रदक्षिणोक्तव्यं सप्त काष्ठिका एकैकक्रमेण चिताग्नीं
 प्रक्षिपेत् । ततः कुठारेण ओम् क्रव्यादाय नमस्तुभ्यमिति
 मन्त्रं सकृत् पठित्वा चितास्थज्वलहारूपरि सप्त प्रहारा देयाः ।
 तमग्निमपश्यद्भिर्वाभावत्तेन स्नातुं नदीं गन्तव्या नग्नं शवं
 न दहेत् । शवसम्बन्धिवस्त्रादिश्मशानवासिचाण्डालादिभ्यो
 दद्यात् सूतिकां रजस्वलाञ्च सतिलपञ्चगव्यजलपूर्णकुम्भमा-
 पोहिष्ठेति वामदेव्यादिभिरभिमन्त्र्य स्नापयित्वा दहेदिति
 शेषः । गर्भवत्यास्तु गर्भं निःसार्य तस्या दाहः कर्तव्यः जल-
 समीपं गत्वा पुत्रादयः प्रयोगदानाभिज्ञं श्यालकादिकं प्रार्थ-
 येयुः । उदकं करिष्यामः । तेन कुरुध्वं मा चैवं पुनरित्य-
 शते वर्षे प्रेते कुरुध्वमेवेतरस्मिन्नित्युत्तरे दत्ते वृद्धपुरःसरमव-
 तरणं जले ततः परिहितवस्त्रं प्रक्षाल्य तदेव परिधाय प्राची-
 नावीतिनो दक्षिणामुखा ओम् अपनः शोशुचदधम् इत्यनेन
 मन्त्रेण वामहस्तानामिकया अप आलोड्य एकवस्त्राः सकृ-
 क्षिप्य चाचम्य दक्षिणामुखास्तर्पयेयुः अमुकगोत्रं प्रेतममु-
 कदेवशर्माणं तर्पयामीति सामगानां प्रयोगः । यथुर्वेदि-
 नान्तु । ओम् अमुकगोत्र अमुकदेवशर्मन्नेतत्ते तिलोदकं तृप्य-
 स्वेति सामगेतरेषाम् एकाञ्जलिदानमावश्यकम् अञ्जलित्रय-
 दाने फलातिशयः ततः पुनः स्नात्वा जलादुत्थाय बालपुरःसरं
 कार्यं ततः शाङ्गले उपविश्य 'मानुष्ये कदलीस्तम्भे निःसारे
 सारमार्गणम् । यः करोति स संमूढो जलबुद्बुदसन्निभे ।
 पञ्चधा सन्भृतः कायो यदि पञ्चत्वमागतः । कर्मभिः स्वशरीरोत्थै-
 स्तत्र का परिवेदना । गन्तुं वसुमतीनाशमुदधिर्देवतानि च ।
 फेनप्रस्थः कथं नाशं मर्त्यलोको न यास्यति । श्लेषाशु बान्धवै-

४१०

शुद्धितत्त्वम् ।

मुक्तं प्रेतो भुङ्क्ते यतोऽवशः । अतो न रोदितव्यन्तु क्रिया
 कार्या विधानतः । इति चिन्तयित्वा गृहद्वारं समागत्य
 निम्बपत्राणि दन्तैः खण्डयित्वा ह्योगिति मन्त्रेण द्वारमपि
 स्पृष्ट्वा आचम्य पापं शमयत्विति शमीं स्पृष्ट्वाऽश्मेव स्थिरो भूया-
 समित्यश्मानं स्पृष्ट्वा अग्निर्नः शर्म यच्छत्वित्यग्निं वृषच्छाग-
 योर्मध्ये स्थित्वा ह्योगिति मन्त्रेण द्वावपि स्पृष्ट्वा उदकं गोमयं
 गौरसर्षपं स्पृष्ट्वा बालपुरःसरमेव गृहं प्रविशेषुर्दिवा चेद्वाह-
 स्तदा रात्रौ रात्रौ चेद्वाहस्तदा दिवसे ग्रामप्रवेशः । अशक्ती
 ब्राह्मणानुमतिं गृहीत्वा कालप्रतीक्षणं विना प्रविशेयुः । ततः
 पिण्डदानं तत्र क्रमः । तण्डुलप्रसृतिद्वयं द्विः प्रक्षाल्य ऐशान्यां
 दिशि सुस्त्रिंशं पचेत् ततः पवित्रपाणिः प्राचीनावीती पाति-
 तवामजानुर्दक्षिणामुखो हस्तप्रमाणं चतुरङ्गुलीच्छायं दक्षिण-
 भ्रुवां पिण्डिकां कृत्वा तदुपरि रेखां कृत्वा दर्भानास्तोर्थं
 तिलान् प्रक्षिप्य । ओम् अमुकगोत्र प्रेत अमुकदेवशर्मन्वने-
 निच्छ इत्यास्तोर्णकुशोपरि सतिलजलेनावनेजयेत् । तत-
 स्तिलमधुघृतादिमिश्रं तप्तपिण्डं गृहीत्वा अद्य अमुकगोत्रस्य
 प्रेतस्य अमुकदेवशर्मण एतत् प्रथमं पिण्डं पूरकम् इत्यवनेजन-
 स्थाने दद्यात् । ततः पिण्डपात्रक्षालनजलेन पुनरवनेजयेत् ।
 ओम् अमुकगोत्र प्रेत अमुकदेवशर्मन्नेतत्ते ऊर्णातन्तुमयं वासः ।
 तत आमन्त्रणमयपात्रे जलाञ्जलिं पिण्डसमीपे स्थापयेत् । गन्धं
 माल्यञ्च यथाशक्ति दद्यात् वास्यपथ्यन्तपिण्डं पश्यं स्तिष्ठेत्
 ततः पिण्डादिकं जले प्रक्षिपेत् । कालेऽप्यक्तचूडोपनयनानाम्
 अनूढकन्यानाञ्च कुशास्तरणं विनेति शेषः एवं कृतचूडाना-
 मुपनयनकालात् प्राक् दर्भोपरि पिण्डदानम् उपनयनकाले
 आगतेत्वक्तोपनयनानां दर्भोपरि पिण्डदानम् एवम् अष्टवर्ष-
 विवाहकाले आगते ऊढस्त्रीणां दर्भोपरि पिण्डदानं रात्रा-

शुद्धितत्त्वम् ।

४११

वाचस्य दक्षिणामुखः प्राचीनावीती पातितवामजानुः त्रिका-
 ठिकोपरि मृगमयपात्रे उदकं तथा पात्रान्तरे क्षीरं निधाय
 प्रेताञ्च स्नाहि पिव चेदं क्षीरमिति ब्रूयात् । तदेकरात्रमाव-
 श्यकं दशरात्रं फलभूयस्त्वार्थमिति द्वितीयपिण्डादिषु द्वितीयं
 पिण्डं पूरकमित्यादिविशेषः । द्वितीयपिण्डं मृगमयपात्रद्वये
 जलाञ्जलिद्वयं तृतीयादि पिण्डे पात्रादि वृद्धिः । येन पञ्च-
 पञ्चाशत् पात्राण्यञ्जलयश्च तावन्ति त्र्यहाशीचे प्रथमदिने
 पिण्डानां त्रयं द्वितीयदिने चतुष्टयं तृतीयदिने त्रयं प्रथममेकं
 द्वितीये चतुष्टयं तृतीये पञ्चमं वा कल्कः चतुरहाशीचे प्रथम-
 चतुर्थयोर्द्वौ द्वौ द्वितीयतृतीययोस्तयः । पञ्चाहाशीचे तु
 प्रथमपञ्चमदिनयोरैकैकशः पिण्डः द्वितीयचतुर्थयोः द्वौ द्वौ
 तृतीये चत्वारः । षडहाशीचे द्वितीयचतुर्थदिनयोस्तयः
 सप्ताहाशीचे तृतीयचतुर्थपञ्चमदिनेषु द्वौ द्वौ शेषेषु एकैकः ।
 अष्टाहाशीचे चतुर्थपञ्चमदिनयोर्द्वौ द्वौ शेषेषु एकैकः । नवा-
 हाशीचे तु पञ्चमदिने द्वौ शेषेषु एकैकः । पक्षिणीद्व्यहाशी-
 चयोस्तु । आद्य द्वितीयदिनयोः पञ्च पञ्च पिण्डाः । द्वाद-
 शाहाद्यशीचे नवदिनेषु नवपिण्डाः शेषदिने दशमः । सद्यः-
 शौचैकाहयोरेकाह एव दश पिण्डाः अशौचान्तमध्ये पिण्डो
 देयः रात्रावपि । गङ्गान्धस्यस्थिप्रक्षेपप्रयोगस्तु । ततः स्नात्वा-
 चस्य उदङ्मुखः कुशत्रयजलान्यादाय ओम् तत्सदित्युच्चार्य
 अद्य अमुकेत्यादि अमुकस्य एतदस्थिसमसंख्यकवर्षसहस्रावच्छि-
 न्नस्वर्गाधिकरणकमहीयमानत्वकामोऽमुकस्येतान्यस्थिखण्डानि
 गङ्गायां प्रक्षिपामीति सङ्कल्प्य अपसव्यं कृत्वा अस्थीनि पञ्च-
 गव्येन सिक्त्वा हिरण्यमध्वाज्यतिलैः संयोज्य मृत्तिकापुटे
 स्थापयित्वा दक्षिणहस्तेन तत्पुटकमादाय दक्षिणां दिशं
 पश्यन् ओम् नमोऽस्तु धर्मराजायेति वदन् जलं प्रविश्य स मे

४१२

वास्तुयागतत्त्वम् ।

प्रीतो भवत्वित्थुक्तास्थि प्रक्षिपेत् । ततो मज्जनं कृत्वोत्थाय
 सूर्यं दृष्ट्वा दक्षिणामुत्सृजेत् । पर्णनरदाहे तु शरपत्रैः पुत्त-
 लकं कृत्वा पलाशपत्राणि शिरसि चत्वारिंशत् ग्रीवायां दश
 वक्षसि त्रिंशत् उदरे विंशतिर्वाहोः पञ्चाशत् हस्तद्वयाङ्गुलीषु
 पञ्च पञ्च अण्डद्वये त्रीणि त्रीणि शिरो चत्वारि ऊरुद्वये
 पञ्चाशत् दक्षिणजानुजङ्घयोः पञ्चदश वामजानुजङ्घयोः पञ्च-
 दश पादाङ्गुलीषु पञ्च पञ्च देयानि । तं पुत्तलकं मेघलोम्बा
 संवेष्ट्य यवपिष्टेन संलिप्य पूर्ववद्देहेत् ।

इति महामहोपाध्याय हरिहरभट्टाचार्यात्मज

श्रीरघुनन्दनभट्टाचार्यविरचितं श्रुतितत्त्वं

समाप्तम् ।

वास्तुयागतत्त्वम् ॥

प्रणम्य कमलाकान्तं वागीशं जगतां प्रभुम् ।

वास्तुयागकृतेस्तत्त्वं वक्ति श्रीरघुनन्दनः ॥

तत्र वास्तुयागप्रमाणं लेङ्गे । ‘चतुःषष्टिपदं वास्तु सर्वदेव-
 गृहं प्रति । एकाशीतिपदं वास्तु मानुषं प्रति सिद्धिदम् ।
 अग्रतः शोधयेद्वास्तुभूमिं यस्य पुरोदिताम् । चतुर्हस्तं द्विहस्तं
 वा जलान्तं वापि शोध्य च । सुसमञ्च तदा कृत्वा सदाचरनं
 ततो भवेत्’ । पुरोदितां ब्राह्मणादिभेदेन प्रशस्तत्वेनोप-
 पादितां तथाच मत्स्यपुराणम् । ‘अरत्निमात्रे गर्ते वै अनुलिप्ते
 च सर्वशः । घृतमामशरावस्थं कृत्वा वर्त्तिचतुष्टयम् । ज्वाल-
 येत्तु परीक्षार्थं पूर्वं तत् सर्वदिङ्मुखम् । दीप्त्या पूर्वादि गृह्णी-

वास्तुयागतत्त्वम् ।

४१३

यात् वास्तूनामनुपूर्वशः । वास्तुः समृद्धिकी नाम दीप्यते सर्वतो हि यः । शुभदः सर्ववर्णानां प्रासादेषु गृहेषु च । वास्तुकर्तुररत्निमात्रे गते तत्रैव स्थापिते आमशरावे पूर्वादि-क्रमेण वर्त्तिचतुष्टयं कृत्वा गव्यघृतेनापूर्य वर्त्तिचतुष्टयं प्रज्वालयेत् । तत्र प्राच्यां दीपशिखाया उज्ज्वलत्वे तद्वास्तु ब्राह्मणस्य प्रशस्तं एवं दक्षिणादिदिशि । शिखायास्तथात्वे क्षत्रियादेः सर्वशिखासमत्वे सर्ववर्णानां स वास्तुदेशः प्रशस्तः । जलान्तमिति तु मत्स्यपुराणपरिभाषितं प्रासादपरम् । तथाच मात्स्ये 'पुरुषाधःस्थितं शल्यं न गृहे दोषदं भवेत् । प्रासादे दोषदं शल्यं भवेद् यावज्जलान्तिकम्' । मात्स्ये 'प्रासाद-भवनादीनां निवेशं विस्तरादद । कुर्यात् केन विधानेन कश्च वास्तुरुदाहृतः' इत्युपक्रम्य वाप्यादीनामभिधानादादि-पदात् कूपादयो गृह्यन्ते । 'प्रासादेऽप्येवमेव स्यात् कूपवापीषु चैव हि' इत्यभिधानाच्च कूपादावपि वास्तुपुरुषश्च 'कश्यपस्य गृहिणी तु सिंहिका राहुवास्तुतनयावजीजनत् । पूर्वजो हरिनिक्लृप्तकन्धरो देवतैरवरजो निपातितः' । तथा 'चैत्रे व्याधिमवाप्नोति यो गृहं कारयेन्नरः । वैशाखे धनरत्नानि ज्यैष्ठे सत्यमवाप्नुयात् । आषाढे भृत्यरत्नानि पशवर्जमवाप्नुयात् । आवणे मित्रलाभस्तु हानिर्भाद्रपदे तथा । आश्विने पत्नीनाशः स्यात् कार्तिके धनधान्यकम् । मार्गशीर्षे तथा भक्तं पौषे तस्करतो भयम् । माघे चाग्निभयं विद्यात् काञ्चनं फाल्गुने सुतान् । शुक्लपक्षे भवेत् सौख्यं कृष्णे तस्करतो भयम् । अश्विनी रोहिणी मूलमुत्तरात्रयमैन्दवम् । स्वातीहस्तानुराधा च गृहारम्भे प्रशस्यते । आदित्य-भौमवर्जन्तु सर्वे वाराः शुभावहाः । वज्रव्याघातशूले च व्यतीपातातिगण्डयोः । विस्कुम्भगण्डपरिघवर्जं सर्वयोगेषु

४१४

वास्तुयागतत्त्वम् ।

कारयेत् । श्वेतमैत्रेयगान्धर्वेष्वभिजिद्रौहिणेऽपि च । तथा विजयसावित्रे मुहूर्त्ते गृहमारभेत् । चन्द्रादित्यवलं लग्नं तथाशुभनिरीक्षितम् । प्रासादेऽप्येवमेव स्यात् कूपवापीषु चैव हि' ऐन्दवं नृगशिरः । मुहूर्त्ते संवर्त्तः 'रौद्रः श्वेतश्च मैत्रेयस्तथा शानकटः स्मृतः । सावित्रश्च जयन्तश्च गान्धर्वः कुतपस्तथा । रौहिणश्च विरिञ्चिश्च विजयो नैऋतस्तथा । माहेन्द्रो वरुणश्चैव वटः पञ्चदश स्मृताः' । तेन द्वितीयतृतीय-सप्तमाष्टमनवमेकादशपञ्चमान्यतममुहूर्त्ते श्वेतादौ वास्तुकर्म कुर्यात् चैत्रादिफलन्तु नरगृहे देवगृहे तु प्रतिष्ठाकालवशात् तत्कालपरिग्रहः तथाच कल्पतरौ देवीपुराणं 'यस्य देवस्य यः कालः प्रतिष्ठाध्वजरोपणे । गर्त्तापूरशिलान्यासे शुभदस्तस्य पूजितः' । यस्य देवस्य प्रतिष्ठाध्वजरोपणे यः कालः शुभदस्तस्य गर्त्तापूरशिलान्यासे गृह्णारभ्ये स कालः पूजित इति । प्रतिष्ठाकालश्च मत्स्यपुराणे 'चैत्रे वा फाल्गुने वापि ज्यैष्ठे वा माघवे तथा । माघे वा सर्वदेवानां प्रतिष्ठा शुभदा भवेत् । प्राप्य पक्षं शुभं शुक्लमतीते चोत्तरायणे । पञ्चमी च द्वितीया च तृतीया सप्तमी तथा । दशमी पौर्णमासी च तथा श्रेष्ठा त्रयोदशी । आसु प्रतिष्ठा विधिवत् कृता बहुफला भवेत्' । प्रतिष्ठासमुच्चये 'माघे वा फाल्गुने वापि चैत्रवैशाखयोरपि । ज्यैष्ठाषाढकयोर्वापि प्रतिष्ठा शुभदा भवेत्' । कल्पतरौ देवीपुराणम् । 'महिषासुरहन्त्राश्च प्रतिष्ठा दक्षिणायने' । ज्योतिषे 'गुरोर्भृगोरस्तवात्ये वार्द्धके सिंहगे गुरौ । गुर्वादित्ये दशाहे तु वक्रौ जीवाष्टविंशके । पूर्वराशावनायातातिचारि-गुरुवत्सरे । प्राग्राशिगन्तृजीवस्य चातिचारे त्रिपक्षके । कम्पाद्यद्भुतसप्ताहे नीचस्थेज्ये मलिन्मुचे । पौषादिक चतुर्मासे चरणाद्धितवर्षणे । एकेनाह्ना चैकदिने द्वितीयेन

वास्तुयागतत्त्वम् ।

४१५

दिनत्रये । तृतीयेन तु सप्ताहे माङ्गल्यानि विवर्जयेत् ।
 व्रतारम्भप्रतिष्ठे च गृह्यारम्भ प्रवेशने । प्रतिष्ठारम्भे देव-
 कृपादेः परिवर्जयेत् । स्मृतिसागरे 'उल्कापाते च भूकम्पे
 अकालवर्षगर्जिते । वज्रकेतूद्गमोत्पाते ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।
 प्रयाणन्तु त्यजेत् शूद्रः सप्तरात्रमतःपरम् । ब्राह्मणः क्षत्रियो
 वैश्यस्त्यजेत् कर्म त्रिरात्रकम् । शूद्रस्त्यक्त्वा चैकरात्रं ततः
 कर्म समाचरेत् । पराशरः 'प्रयाणे सप्तरात्रन्तु त्रिरात्रं
 व्रतबन्धने । एकरात्रं परित्यज्य कुर्यात् पाणिग्रहं ग्रहे'
 मत्स्यपुराणे । 'नवग्रहमुखं कृत्वा ततः कर्म समाचरेत् ।
 अन्यथा फलदं पुंसां न काम्यं जायते क्वचित्' । नव्यवर्द्धमान-
 वचनधृतवचनं 'पितृभ्यो हविष्ये हविष्याहं दत्त्वा सदक्षिणम् ।
 क्रूरभूतवलिञ्चैव संपूज्य वास्तुदेवताः' । एकदिने वास्तुयाग-
 गृहोत्सर्गयोः करणे सकृदेव हविष्याहं करणीयम् । 'गणशः
 क्रियमाणे तु मातृभ्यः पूजनं सकृत् । सकृदेव भवेच्छ्राद्धमादौ
 न पृथगादिषु' इति कुन्दोगपरिशिष्टात् । मातृस्य 'ऊहा-
 पोहार्यतत्त्वज्ञो वास्तुशास्त्रस्य पारगः । आचार्यश्च भवेन्नित्यं
 सर्वदा दोषवर्जितः' । देवीपुराणं 'प्रासादे चतुरःषष्टिरेका-
 शीतिपदं गृहे । 'चतुरस्रीकृते क्षेत्रे चाष्टधा नवधा कृते ।
 कोणे रेखान्ततो दत्त्वा नवभागान् प्रकल्पयेत् । ईशकोणा-
 र्द्धतो ज्ञेयः पर्जन्यपदसंस्थितः । द्विपदस्थो जयन्तश्च शक्रः
 स्यादेककोष्ठगः । भास्करश्च पदो ज्ञेयो द्विपदः सत्य उच्यते ।
 भृशः पदस्थो ज्ञातव्यो व्योम चैव पदार्द्धकम् । हुताशनः
 पदार्द्धे तु पूषा च पदसंस्थितः । वितथो द्विपदो ज्ञेयः
 पदैकस्थो गृहक्षतः । वैवस्वतः पदैकस्थो गन्धर्वो द्विपद-
 स्थितः । भृङ्गश्चैकपदो ज्ञेयो मृगश्चार्द्धपदस्थितः । पितरो-
 ऽर्द्धपदे ज्ञेयाः पदे दौवारिकस्तथा । सुग्रीवो हि पदे ज्ञेयः

४१६

वास्तुयागतत्त्वम् ।

पदस्थः पुष्पदन्तकः । पयसां पतिरेकस्थोऽसुरो द्विपदसं-
स्थितः । शेषश्चैकपदो ज्ञेयः पापोऽर्द्धपद उच्यते । रोगश्चार्द्ध-
पदो ज्ञेयो नागश्चापि पदे स्थितः । द्विपदे विश्वकर्मा तु
भल्लाटः पदसंस्थितः । यज्ञेश्वरः पदो ज्ञेयो नागराड्द्विपद-
स्थितः । पदस्था श्रीमहादेवी दितिश्चार्द्धपदस्थिता । आपान्तः
पादसंस्थः स्यादापवत्सः पदस्थितः । चतुष्पदस्थो विज्ञेय-
श्चार्थमा मध्यपूर्वगः । सावित्रस्तु पदो ज्ञेयः सावित्री पद-
संस्थिता । ततो विवस्वान् विज्ञेयश्चतुष्कैर्मध्यसंस्थितः । इन्द्र-
श्चेन्द्रात्मजश्चोभावेकैकपदसंस्थितो । मिश्रश्चतुष्पदश्चैव पश्चिमे
च व्यवस्थितः । रुद्रश्चैकपदो ज्ञेयो राजयक्ष्मा पदस्थितः ।
धराधरश्च विज्ञेय उत्तरे च चतुष्पदे । चतुष्पदश्चतुर्हस्तो मध्ये
ज्ञेयः प्रजापतिः । देवतानुचरा बाह्ये सर्वे चान्तस्तथासुराः ।
एवं प्रगृह्य कोष्ठानि रजसा पूर्यदेशिकः । एतेषामेव देवानां
बलिं दद्यात्तु कामिकम् । रजसेति पञ्चवर्णरजोभिः । तथाच
शारदायाम् 'उक्तानामपि देवानां पदान्यापूर्य पञ्चभिः ।
रजोभिस्तैर्यथोक्तेभ्यः पायसान्नैर्बलिं हरेत्' । तथा 'पीतं
हरिद्राचूर्णं स्यात् सितं तण्डुलसम्भवम् । कुसुमचूर्णमरुणं
कृष्णं दग्धपुलाकजम् । विल्वादिपत्रजं श्याममित्युक्तं वर्ण-
पञ्चकम्' । स्यात् पुलाकस्तुच्छधान्ये इत्यमरोक्तेः तुच्छम्
अपक्वम् । 'पूज्या मण्डलबाह्ये तु पूर्वान्नेत्यादिकक्रमात् ।
स्कन्दश्चैव विदारौ च अर्थ्यमा पूतना तथा । जम्बका पाप-
राक्षस्थौ पिलिपिञ्जश्वरक्यपि' । मण्डलकरणासामर्थ्यं शाल-
ग्रामसमीपे सर्वे पूज्याः 'शालग्रामशिलारूपी यत्र तिष्ठति
केशवः । तत्र देवासुराः यक्षा भुवनानि चतुर्दश' । इति
पद्मपुराणवचनात् । तत्रावाहनविसर्जने न स्तः । 'शालग्रामे
स्थावरे च नावाहनविसर्जने' इति वचनात् तदुसम्भवे घटादि-

वास्तुयागतत्त्वम् ।

४१७

जले 'प्रतिमास्थानेष्वपि आवाहनविसर्जनवर्जम्' इति बौधायनवचनात् । एषां विशेषबलिर्मत्स्यपुराणदेवीपुराणाभ्यामुक्तोऽपीदानीन्तनैर्न व्यवह्रियते इति न लिखितः किन्तु मत्स्यपुराणोक्त पायसवलिर्दीयते । तथाच 'पायसं वापि दातव्यं स्वनाम्ना सर्वतः क्रमात् । नमस्कारेण मन्त्रेण प्रणवाद्येन सर्वतः' । अतएव प्रागुक्तशारदावाक्ये पायसमात्रमुक्तं तेन एष पायसवलिः श्रोम ईशानाय नमः इत्यादिना प्रयोगः । न च वाचस्पतिमिश्रोक्त अमुकदेवतायै एष पायसवलिर्नम इत्यादि प्रणवादिनमस्कारान्तस्वनामरूपमन्त्रमध्ये देय प्रवेशस्यायुक्तत्वात् । तथाच ब्रह्मपुराणम् 'ओङ्कारादिसमायुक्तं नमस्कारान्तकीर्तितम् । स्वनामसर्वसत्तानां मन्त्र इत्यभिधीयते' । देवीपुराणम् 'एवम्भूतगणानान्तु बलिर्देयस्तु कामिकः । एतान् प्रपूजयेद्देवान् कुशपुष्पाक्षतैर्वधः । एवं प्रपूजिता देवाः शान्तिपुष्टिप्रदा नृणाम् । अपूजिता विनिघ्नन्ति कारकं स्थापकं तथा । एतान् प्रपूजयेद्देवान् कुशपुष्पाक्षतैस्तथा' । अत्र प्रपूजाया नित्यत्वाद्ब्रह्मपुराणवचने होमानन्तरं बलिदानाच्च बलेः काम्यत्वात् पूजाहोमानन्तरं बलिदानाचारः । तथाच 'ब्रह्मस्थाने तथा कुर्याद्वासुदेवस्य पूजनम् । श्रियाश्च पूजनं कुर्याद्वासुदेवगणस्य च । गन्धार्घ्यपुष्पनैवेद्यधूपान्यैः सुरसत्तम । ततः सम्पूजयेत्तस्मिन् सर्वलोकधरां महौम् । सुरूपां प्रमदारूपां दिव्याभरणभूषिताम् । ध्यात्वा तामर्चयेद्देवीं परितुष्टां स्मिताननाम् । ततः स्त्रनाममन्त्रेण सर्वदेवमयं हरिम् । ध्यात्वा समर्चयेत्तत्र यजेद्वास्तु नरं परम् । ब्रह्मस्थाने ततो विद्वान् कुर्यादाधारमक्षतैः । तस्मिन् संस्थापयेत् कुम्भं वर्द्धिन्या सह पूरितम् । हैमं वा राजतं पात्रं मृगमयं वा दृढं शुभम् । सर्वबीजोषधीयुक्तं

४१८

वास्तुयागतत्त्वम् ।

सुवर्णरजतान्वितम् । ब्रह्मस्थाने ततो मन्त्री कलसं स्थाप्य
 पूजयेत् । तस्मिंश्चतुर्मुखं देवं प्राजेशं मन्त्रविग्रहम् । गन्धैः
 पुष्पैश्च धूपैश्च नैवेद्यैः सुमनोहरैः । ततो मण्डलबाह्ये तु
 प्रतीच्यां प्राङ्मुखः स्थितः । आचार्यो गृह्यसम्भारं ब्रह्मादी-
 स्तर्पयेत् सुरान् । प्राजेशं तर्पयेद्विद्वान् आहुतीनां शतेन
 च । इतरान् दशभिर्देवानाहुतिभिः प्रतर्पयेत् । ततः प्रणम्य
 विज्ञाप्य कृत्वा वै स्वस्तिवाचनम् । प्रगृह्य कर्करीं सम्यङ्मण्ड-
 लान्तः प्रदक्षिणम् । सूत्रमार्गेण देवेन तोयाधारेण कारयेत् ।
 पूर्ववत् तेन मार्गेण सप्तवीजानि वापयेत् । आरभ्य तेन
 मार्गेण तस्य खातस्य कारयेत् । ततो गत्तं खनेन्मध्ये हस्त-
 मानप्रमाणतः । चतुरङ्गुलमात्रं तदधः खन्यात् सुसम्मितम् ।
 गोमयेन प्रलिप्याथ चन्दनेन विलेपितम् । मध्ये दत्त्वा तु
 पुष्पाणि शुक्लान्यक्षतमेव च । आचार्यः प्राङ्मुखो भूत्वा
 ध्यायेद्देवं चतुर्मुखम् । तूर्यमङ्गलघोषेण ब्रह्मघोषरवेण च ।
 अथ दद्यात् सुरश्रेष्ठ कुम्भतोयेन मन्त्रवित् । प्रगृह्य कर्करीं
 तान्तु तत् खातं पूरयेज्जलैः । सर्वरत्नसमायुक्तैर्विमलैश्च सुग-
 न्धिभिः । तस्मिन् पुष्पाणि शुक्लानि प्रक्षिपेदोमिति स्मरन् ।
 तदावर्त्तं परीक्षेत दधिभक्तान्वितं क्षिपेत् । शुभं स्यादक्षिणा-
 वर्त्तेऽशुभं वामे भवेत्ततः । वीजैः शालियवादीनां गत्तं
 तं पूरयेत्ततः । क्षेत्रजाभिः पवित्राभिर्द्विगत्तं प्रपूरयेत् ।
 एवं निष्पाद्य विधिना वास्तुयागं सरोत्तम । सुवर्णं गाञ्च
 वस्त्रञ्च आचार्याय निवेदयेत् । इतरानीशादीन् । होमस्तु
 प्रणवादि स्वाहान्ततत्तन्नामभिः । तथाच विष्णुधर्मोत्तरे
 'एकैकां देवतां राम समुद्दिश्य यथाविधि । चतुर्थ्यन्तेन
 धर्मज्ञो नाम्ना च प्रणवादिना । होमद्रव्यमथैकैकं शत-
 संख्यन्तु होमयेत्' । शतसंख्यमिति पूर्वोक्तवचनानुसारेण

वास्तुयागतत्त्वम् ।

४१९

वास्तुयागीतरपरं स्मृतिः 'स्वाहावसाने जुहुयात् ध्यायन् वै मन्त्रदेवताम्' । होमदक्षिणासम्प्रदानमाह कन्दोभपरिशिष्टं 'ब्राह्मणे दक्षिणा देया यत्र या परिकीर्त्तिता । कर्मान्तेऽनुच्यमानायां पूर्णपात्रादिका भवेत् । विदध्याञ्चैत्रमन्यश्चेद्दक्षिणाद्विहरो भवेत् । स्वयञ्चेदुभयं कुर्यादन्यस्मै प्रतिपादयेत्' । अन्यो यजमानभिन्नः । उभयं ब्रह्मकर्म होतृकर्म च । उपसंहारे वास्तुयागमिति श्रुतेः सङ्कल्पवाक्ये तेनैवोल्लेखमाचरन्ति । अत्र मिलितामिलितदक्षिणादानात् फलतारतम्यम् । मात्स्ये 'ततः सर्वौषधिक्षानं यजमानस्य कारयेत्' । देवीपुराणं 'कालज्ञस्थपती पूज्यौ वैष्णवान् शक्तितोऽर्चयेत् । ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु नृत्यगीतादि कारयेत् । प्रासादं कारयेद्विद्वान् गृहं वापि मनोहरम् । कार्यस्तु पञ्चभिर्वित्त्वैर्वित्त्ववीजैरथापि वा । होमान्ते भक्ष्यभोज्यैश्च वास्तुयागे बलिं हरेत्' इति मत्स्यपुराणे होमान्ते बलिविधानात् अत्रापि होमं कृत्वा वल्यादिप्रागुदितसर्वकर्मकरणाचारः । अत्र प्रजापतिनामाग्निः 'प्रतिष्ठायां लोहितश्च वास्तुयागे प्रजापतिः । जलाशयप्रतिष्ठायां वरुणः समुदाहृतः' । इति मत्स्यसूक्तवचनात् । एकाशीतिपदवास्तुयागे मत्स्यपुराणं भूम्यधिकारे 'पञ्चगव्यौषधिजलैः परीक्षित्वा तु सेचयेत् । एकाशीतिपदं कृत्वा रेखाभिः कनकेन तु । पञ्चाल्लेप्येन चालिष्य सूत्रेणालोक्ष्य सर्वतः । दश पूर्वायता रेखा दश चैवोत्तरायता । सर्ववास्तुविभागे तु विज्ञेया नवका नव' । पञ्चगव्यमन्त्रमाह शङ्खः 'गायत्रादाय गोमूत्रं गन्धहारेति गोमयम् । आप्यायस्वेति च क्षीरं दधिक्षावूति वै दधि । तेजोऽसीति घृतञ्चैव देवस्य त्वा कुशोदकम्' । ओषधीनाह कात्यायनः । 'ब्रीहयः शालयो मुद्गा गोधूमाः सर्षपास्तिलाः । यवाश्चौषधयः सप्त

४२०

वास्तुयागतत्त्वम् ।

विपदो घ्नन्ति धारिताः । ब्रौहिः श्रुत्यक्कधान्यं षष्टिकाख्यं
 शालयो हैमन्तिकाः दशेति वास्तुमण्डलवायव्ये उपविश्य
 पूर्वाभिमुखो गुरुः उत्तरस्यामारभ्य दश रेखाः प्राङ्मुखीर्यथा
 दक्षिणं कुर्यात् । एवं नैऋत्यामुपविश्य पश्चिमतः पूर्वापरगा
 दशोत्तरायता रेखाः कुर्यात् कनकशलाकादिना । रुद्रयामले
 तासां नामानि 'शान्ता यशोवती कान्ता विशाला प्राण-
 वाहिनी । शची सुमनसा नन्दा सुभद्रा सुरथा तथा' ।
 इत्याद्या दश रेखाः 'हिरण्या सुव्रता लक्ष्मीर्विभूतिर्विमला
 प्रिया । जया कला विशोका च इडा संज्ञा दशोत्तरा' इत्यन्त-
 दशरेखाः । 'एकाशीतिपदं कृत्वा वास्तु कृत् सर्ववास्तुषु । पद-
 स्थान् पूजयेद्देवान् त्रिंशत् पञ्चदशैव तु । द्वात्रिंशद्वास्तुतः
 पूज्याः पद्याश्चान्तस्त्रयोदश । नामतस्तानि वक्ष्यामि स्थानानि
 च निबोध मे । ईशानकोणादिषु तान् पूजयेच्च विधानतः ।
 शिखी चैवाथ पर्जन्यो जयन्तः कुलिशायुधः । सूर्यः सत्यो
 भृशश्चैव आकाशो वायुरेव च । पूषा च वितथश्चैव गृहक्षेत्र-
 यमाबुधौ । गन्धर्वो भृङ्गराजश्च मृगः पितृगणस्तथा ।
 दैवारिकोऽथ सुग्रीवः पुष्पदन्तो जलाधिपः । असुरः शोष-
 पापौ च रोगोऽतिमुख्य एव च । भल्लाटः सोमसर्पौ च
 अदितिश्च दितिस्तथा । वह्निर्द्वात्रिंशदेते च तदन्तश्चतुरः
 शृणु । ईशानादिचतुष्कोणसंस्थितान् पूजयेद् बुधः । आप-
 श्चैवाथ सावित्रो जयो रुद्रस्तथैव च । मध्ये नवपदे ब्रह्मा
 तस्याष्टौ च समीपगाः । सर्वानेकान्तरान् विद्यात् पूर्वा-
 द्यान्नामतः शृणु । अर्यमा सविता चैव विवस्तान् विबुधा-
 धिपः । मित्रोऽथ राजयक्ष्मा च तथा पृथ्वीधरः क्रमात् ।
 अष्टमश्चापवत्सश्च परितो ब्रह्मणः स्मृताः । आपश्चैवापवत्सश्च
 पर्जन्योऽग्निर्दितिस्तथा । पादिकानाञ्च वर्गोऽयमेवं कोणेश्व-

वास्तुयागतत्त्वम् ।

४२१

शेषतः । तन्मध्ये तु वह्निर्विंशाद्विपदास्ते तु सर्वतः । अर्थमा
 च विवस्वांश्च मित्रं पृथ्वीधरस्तथा । ब्रह्मणः परितो दिक्षु
 त्रिपदास्ते तु सर्वतः । एवमिति ईशानादिकोणे कोण-
 चतुष्टये अवस्थितैककोष्ठसहिते देवतापञ्चकमेवाग्नेयादिकोणेषु
 अपीत्यर्थः । दिक्षु पूर्वादिदिक्षु । 'विंशानिदानीं वक्ष्यामि
 बह्वनपि पृथक् पृथक् । वायुं यावत् यथा रोगात् पितृभ्यः
 शिखिनः पुनः । मुख्याद्भृशमथो शोषादितथं यावदेव तु ।
 सुग्रीवाददिति यावदभृङ्गाज्जयन्तमेव च । एते विंशाः समा-
 ख्याताः क्वचिज्जठर एव च । एतेषां चैव सम्पातः पदमध्ये
 समस्तथा । मर्म चैतत् समाख्यातं त्रिशूलि कोणगं चरेत् ।
 स्तम्भन्यासेषु वक्ष्यामि तुलाविधिषु सर्वदा । कीलोच्छिष्टोप-
 घातानि वर्जयेद् यत्नतो नरः । सर्वत्र वास्तुनिर्दिष्टं पितृ-
 वैश्वानरायतः । मूर्ध्न्यग्निः समाधिष्टो मुखे चापः समा-
 श्रितः । पृथ्वीधरोऽर्थमा चैव स्तनयोस्तावधिष्ठितौ । वक्ष-
 स्थले चापवत्सः पूजनीयस्तथा बुधैः । नेत्रयोर्दितिपर्जन्यौ
 श्रोत्रे दितिजयन्तकौ । सर्पेन्द्रावंशसंस्थौ च पूजनीयौ प्रय-
 त्ततः । सोमसूर्यादयस्तद्वद्वाह्नौः पञ्च च पञ्च च । रुद्रश्च
 राजयक्ष्मा च वामहस्तसमाश्रितौ । सावित्रः सविता तद्व-
 द्दस्तं दक्षिणमाश्रितौ । विवस्वानथ मित्रश्च जठरे संव्यव-
 स्थितौ । पूषा च पापयक्ष्मा च हस्तयोर्मणिवन्धके । तथैवा-
 सुरशेषौ च वामपार्श्वे समाश्रितौ । पार्श्वे तु दक्षिणे तद्व-
 द्दितथः स गृहक्षतः । ऊर्वोर्यमांस्त्रुपौ ज्येथौ जाम्बोर्गन्धर्व-
 पुष्यकौ । जङ्घयोर्भृङ्गसुग्रीवौ कव्यां दीवारिको मृगः । जयः
 शक्रस्तथा मेढ्रे पादयोः पितरस्तथा । मध्ये नवपदो ब्रह्मा
 हृदये स तु पूज्यते । चरकीञ्च विदारौञ्च पूतनां पापराच-
 सीम् । ईशाग्नेयादिकोणेषु मण्डलाद्वाह्यतो यजेत् । पितृभ्य

४२२

वास्तुयागतत्त्वम् ।

इति पितृगणादारभ्य वङ्गं यावत् वंशः प्रसारितस्तद्वदायतो वास्तुपुरुषः । अश्वुपो वरुणः पुष्पकः पुष्पदन्तः । तथा 'प्रदक्षिणन्तु कुर्वीत वास्तोः पदविलेखनम्' । कोष्ठानां लिखनं प्रदक्षिणं कार्यम् । तथा 'तर्जनी मध्यमा चैव तथा-ङ्गुष्ठश्च दक्षिणः । प्रवालरत्नकनकं फलपिष्टाक्षतोदकम् । सर्वञ्च वामभागेषु शस्तं पदविलेखनम्' । तथा 'वास्तो परीक्षिते सम्यग्वास्तुदेहे विचक्षणः । वास्तूपशमनं कुर्यात् समिद्धिर्वलिकर्मणा । जीर्णोद्वारे तथोद्याने तथा गृहनिवेशने । दाराभिदम्बने तद्वत् प्रासादेषु गृहेषु च । वास्तूपशमनं कुर्यात् पूर्वमेव विचक्षणः । एकाशीतिपदं लेख्यं लेखकैर्वास्तुपिष्टकैः । होमस्त्रिमेष्वले कार्यः कुण्डे हस्तप्रमाणके' । विश्वकर्मा 'खाताधिके भवेद्रोगी हीने धेनुधनक्षयः । वक्रकुण्डे तु सन्तापो मरणं छिन्नमेखले । मेखलारहिते शोको ह्यधिके वित्तसंचयः । भार्याविनाशनं कुण्डं प्रोक्तं योन्या विना कृतम् । अपत्यध्वंसनं प्रोक्तं कुण्डं यत् कण्ठवर्जितम्' । वशिष्ठसंहितायां 'तस्मात् सम्यक् परीक्ष्यैवं कर्तव्यं शुभवेदिकम्' । एवंविधकुण्डसम्भवे क्रियासारः । 'कुण्डमेवंविधं न स्यात् स्थण्डिलं वा समाश्रयेत्' । मत्स्यपुराणं 'यवैः कृष्णतिलैस्तद्वत् समिद्धिः क्षीरसम्भवैः । पलाशैः खादिरैरपामार्गोदुम्बरसम्भवैः । कुशदूर्वायवैर्वापि मधुसर्पिःसमन्वितैः । कार्यस्तु पञ्चभिर्विल्वैर्विल्ववीजैरथापि वा । होमान्ते भोक्ष्यभोज्यैश्च वास्तुदेशे वलिं हरेत्' । अत्र होमे मन्त्रानाह विष्णुधर्मोत्तरं 'वास्तोष्पतेन मन्त्रेण यजेच्च गृहदेवताम्' । वास्तोष्पतेन वास्तोष्पतिदैवतेन पञ्चमन्त्रेण । वलिद्रव्यञ्च पायसं प्रागेव लिखितम् । 'ब्रह्मस्थाने ततः कुर्याद्वासुदेवस्य पूजनम्' इत्यादि । सुवर्णे गां वस्त्रयुग्म-

कृत्यतत्त्वम् ।

४२३

भाचार्याय निवेदयेत् इत्यन्तमत्रापि बोध्यम् । कल्पतरौ मत्स्यपुराणं 'ततः सर्वौषधिघ्नानं यजमानस्य कारयेत् । द्विजांश्च पूजयेद्भक्त्या ये चान्ये गृहमागताः । एतद्वास्तूप-शमनं कृत्वा कर्म समाचरेत् । प्रासादभवनोद्यानप्रारम्भे परिवर्त्तने । पुरवेशप्रवेशेषु सर्वदोषापनुत्तये । इति वास्तूप-शमनं कृत्वा सूत्रेण वेष्टयेत्' । इति मत्स्यपुराणे उपक्रमोप-संहारयोर्वास्तूपशमनत्वेनाभिधानात् वास्तूपशमनं कर्मणो नामधेयम् इति तेनैव उल्लेखः सर्वदोषापनुत्तये इति श्रुतेश्च वास्तुसर्वदोषापनोदनं फलं सङ्कल्पे तु तदुल्लेखः कार्यः । एतत्तु प्रारम्भप्रवेशान्तरस्मिन्नवश्यं कर्त्तव्यम् आवश्यकत्वे प्रमाणं प्रागेवोक्तम् ।

इति श्रीरघुनन्दनभट्टाचार्यविरचितं वास्तुयाग-
प्रमाणतत्त्वं समाप्तम् ।

कृत्यतत्त्वम् ।

प्रणम्य कामदं रामं भक्तानुग्रहकारकम् । कृत्यतत्त्वानि तत्प्रीत्यै वक्ति श्रीरघुनन्दनः । तिथितत्त्वेऽनुसन्धेयं प्रमाण-श्चास्य कोविदैः । वैशाखादिक्रमेणैव प्रयोगोऽत्र विलिख्यते । तत्र वैशाखकृत्यम् । तत्र पद्मपुराणम् । 'तुलामकरमेषु प्रातःस्नानं विधीयते' । वैष्णवान्मृते 'गवामर्द्धप्रसूतानां लक्षं दत्त्वा तु यत् फलम् । तत् फलं लभते राजन् मेषे स्नात्वा तु जाङ्गवीम्' । पितामहः । 'कार्तिकस्य तु यत् स्नानं माघे मासि विशेषतः । कच्छादिनियमानाश्च चान्द्रमानप्रमाणतः' । आभ्यां कार्तिकादिस्नाने सौरचान्द्रयोर्विकल्पेनानुष्ठानम् ।

४२४

कृत्यतत्त्वम् ।

तत्र चान्द्रमपि द्विविधम् । तथाच विष्णुः । ‘दर्शं वा पौर्ण-
मासीं वा आरभ्य स्नानमाचरेत् । पुण्यान्यहानि त्रिंशत्तु
मकरस्थे दिवाकरे’ । दर्शान्तयागसम्बन्धिनीं प्रतिपदं पौर्ण-
मासीं तदिष्टिसम्बन्धिनीं प्रतिपदमारभ्य त्रिंशत्तिथिं नारा-
यणोपाध्यायस्तु दर्शपौर्णमासीति पूर्वदिनसङ्कल्पपरमिति तत्र
सौरकृत्ये राश्युल्लेखः कार्यः ‘संक्रान्तिविहिते कार्ये संक्रान्तिः
परिकीर्तिता । मासोल्लेखश्चेतरस्मिन् रविराशिस्थितिस्तथा’ ।
इति गारुडात् । ततश्चारुणोदयकाले मज्जनं कृत्वा आच-
म्योदङ्मुखः श्रीम् तत्सदित्युचार्य अथ वैशाखेमासि अमुकपक्षे
अमुकतिथौ आरभ्य मेषस्थरविं यावत् प्रत्यहममुकगोत्रः
श्रीअमुकदेवशर्मा विष्णुप्रौतिकामः प्रातःस्नानमहं करिष्ये
इति । गङ्गायान्तु अर्धप्रसूतगवौलक्षदानजन्यफलसमफल-
प्राप्तिकामो विष्णुप्रौतिकामो वा इति सङ्कल्प्य यथोक्तविधिना
स्नायात् । प्रतिदिनसङ्कल्पे तु आरभ्य मेषस्थरविं यावत्
प्रत्यहमिति न वक्तव्यं किन्तु मासीत्यनन्तरं मेषस्थरवावित्य-
धिकं वक्तव्यं चान्द्रे तु मासि अनन्तरं शुक्लपक्षे प्रतिपदि तिथौ
आरभ्य दर्शपर्यन्तमित्यूहनीयं प्रतिदिनसङ्कल्पे तु आरभ्य
प्रत्यहमित्यन्तं न वक्तव्यम् । एवं कृष्णप्रतिपदारभ्य ऊह-
नीयम् एवं मासान्तरे चोहनीयम् । सङ्कल्पाकरणे फलहानि-
माह भविष्यपुराणं ‘सङ्कल्पेन विना राजन् यत्किञ्चित् कुरुते
नरः । फलञ्चाल्पाल्पकं तस्य धर्मस्यार्द्धक्षयो भवेत्’ । महा-
र्णवे ‘यो ददाति हि मेषादौ शत्रून्खुषटान्वितान् । पितृनु-
द्दिश्य विप्रेभ्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते । विप्रेभ्यः पादुकां कृत्वा
पितृभ्यो विषुवे शुभम्’ । पितृभ्यः पितृनुद्दिश्य अत्र विष्णुरहस्यम्
‘अयने कोटिगुणितं लक्षं विष्णुपदीषु च । षडंशोतिसहस्रन्तु
षडंशोत्यामुदाहृतम् । शतमिन्दुक्षये पुण्यं सहस्रन्तु दिनक्षये ।

कृत्यतत्त्वम् ।

४२५

विषुवे शतसाहस्रमाकामावैष्वनन्तकम्' इति मत्स्यपुराणोक्त-
 शतसहस्रगुणिततत्कर्मफलजनकत्वेन विवक्षणीयत्वान्नेषादावि-
 त्यपि विषुवसंक्रान्तिपुण्यकालपरः अन्यथा कालद्वयकल्पनापत्तेः
 व्यवहारोऽपि तथा । संक्रमणपुण्यकालस्तु दिनसंक्रमणे कृत्स्नं
 दिनं षडशीतिमुखेऽतीते वृत्ते च विषुवद्वये । भविष्यत्ययने
 पुण्यमतीते चोत्तरायणे' इति तु पुण्यतरकालपरं दिनवृत्तोत्त-
 रायणादिविहितविंशतिदण्डादीनां रात्रिप्रविष्टभागस्यापि
 पुण्यत्वम् । रात्रिसंक्रमणे तु दण्डन्यूनप्रथमयामाभ्यन्तरे तद्विव-
 सीयशेषयामद्वयं पुण्यं दण्डद्वयात्मकमध्यरात्रे तद्विवसीय
 तिथेरभेदे तु तद्विवसीयशेषयामद्वयं पुण्यं भेदे तु तद्विवसीय-
 शेषयामद्वयं पुण्यं परदिवसीयाद्ययामद्वयञ्च तिथ्यभेदभेदयो-
 र्दक्षिणायने तद्विवसीयशेषयामद्वयम् उत्तरायणे परदिवसी-
 याद्ययामद्वयं दण्डाधिकशेषार्द्धरात्रिसंक्रमणे परदिनाद्ययाम-
 द्वयं सन्ध्यासंक्रमणे तु दिनदण्डे दिनस्य रात्रिदण्डे रात्रेर्यव-
 स्थेति संक्रान्त्यां स्नानमावश्यकम् अनिष्टसंक्रमणे तु तद्दोष-
 शान्त्यर्थं 'धुस्तूरवीजसलिलेन सर्वापधिजलेन च स्नानं
 विष्णुपूजनं तन्मन्त्रजपसंक्रान्तिपुण्यकाल एव स्त्रीतैलमांस-
 वर्जम् इन्दुक्षयेऽमावास्यायां दिनक्षये तिथिद्वये आकामावैषु
 आषाढकार्तिकवैशाखपौर्णमासीषु ततः कृतस्नानादि प्राङ्मुख
 उदङ्मुखं ब्राह्मणं गन्धपुष्पाभ्यां पूजयित्वा जलघटान्वित-
 शक्तूंश्च ओम् जलघटान्वितशक्तुभ्यो नमः इति पूजयित्वा
 ब्राह्मणहस्ते जलं दत्त्वा घटं संप्रोक्ष्य वामहस्ते स्पृष्ट्वा कुश-
 त्रयतिलजलान्यादाय ओम् तत्सदित्युचार्य्य ओम् अद्य अमुक-
 मासि अमुकपक्षेऽमुकतिथौ महाविषुवसंक्रान्त्याम् अमुकगोत्रस्य
 पितुः अमुकदेवशर्मणः सर्वपापविमुक्तिकामः एतान् जल-
 घटान्वितशक्तून् विष्णुदेवताकान् अमुकगोत्राय अमुकदेव-

४२६

कृत्यतत्त्वम् ।

शर्मणे ब्राह्मणाय तुभ्यमहं सम्प्रदानीति ब्राह्मणहस्ते जलं दद्यात् । ब्राह्मणस्तु दक्षिणहस्ततलमध्यभागान्नेयतीर्थेन ओम् इत्यनेन गृहीत्वा स्वस्तीत्युक्त्वा गायत्रीं कामस्तुतिञ्च पठेत् जलघटान्विताः शक्तवो विष्णुदेवताका इति वदेत् ततो दक्षिणां दद्यात् यथा ओम् अद्येत्यादि कृतैतज्जलघटान्वित-शक्तुदानकर्मणः प्रतिष्ठार्थं दक्षिणां किञ्चित् काञ्चनमूखं ब्राह्मणाय अहं ददानीति । ततोऽच्छिद्रावधारणं ब्राह्मण-विशेषानुपदेशे यथासम्भवगोत्रनाम्ने ब्राह्मणायेति विशेषः तत्र ब्राह्मणासन्निधाने तुभ्यमिति न देयं भूमौ त्यागजल-प्रक्षेपः एवमन्यत्रापि सम्प्रददे इति वाक्ये विशेषः सत्पात्राभावे तत्सत्त्वेऽपि तत्तत्कामो विष्णुप्रौतिकामो वा विष्णवे दत्त्वा ब्राह्मणाय पश्चात् प्रतिपादयेत् । 'देवे दत्त्वा तु दानानि देवे दत्त्वा तु दक्षिणाम् । तत् सर्वं ब्राह्मणे दद्यादन्यथा निष्फलं भवेत्' इति मत्स्यसूक्तात् । दत्त्वेत्यत्र देयानीति वाराहीतन्त्रे पाठः । वैशाखे यो घटं पूर्णं सभोज्यं वै द्विजन्मने । ददात्यभुक्त्वा राजेन्द्र स याति परमां गतिम् । अत्रापि यथायोग्यं संपूज्य पूर्ववद्वाक्येन मनोरथफलार्थिना सभोज्य घटो देयः । स्मृतिः 'मेषादौ शक्तवो देया वारिपूर्णा च गर्गरी' तत्रापि यथायोग्यं संपूज्य पूर्ववद्वाक्यं कृत्वा पठेत् । ओम् 'एष धर्मघटो दत्तः ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः । अस्य प्रदानात् सफला मम सन्तु मनोरथाः । इति मन्त्रलिङ्गाख्यनोरथफलत्वं ज्ञेयम् । कृत्यचिन्तामणौ 'मसूरं निम्बपत्राभ्यां योऽस्ति मेषगते रवौ । अपि रोषान्वितस्तस्य तत्तकः किं करिष्यति । उत्तरार्द्धे तु 'मेषस्थे च विधौ तत्र नास्त्यङ्गे विषजं भयम्' इति संवत्सरप्रदीपे पाठः । ततश्च मेषस्थरविस्थितिकाले मसूरं निम्बपत्रद्वयञ्च भक्षयेत् । भविष्ये 'या शक्ता नरशार्दूल

कृत्यतत्त्वम् ।

४२७

वैशाखेमासि वै तिथिः । तृतीया साक्षया ख्याता गीर्वाणै-
रपि वन्दिता । योऽस्यां ददाति करकान् वारिवाजसमन्वि-
तान् । स याति पुरुषो वीर लोकान् वै हेममालिनः ।
वाजमन्नम् । हेममालिनः सूर्यस्य । ततो जलमन्नसमन्वि-
तदाने सूर्यलोकगमनं फलं दानानुष्ठानं पूर्ववत् । ब्रह्मपुराणं
'वैशाखे शुक्लपक्षे च तृतीयायां कृतं युगम् । कार्तिके शुक्ल-
पक्षे च त्रेता च नवमेऽहनि । अथ भाद्रपदे मासि त्रयोदश्यान्तु
हापरम् । माघे तु पौर्णमास्यान्तु घोरं कलियुगं स्मृतम् ।
युगारम्भास्तु तिथयो युगाद्यास्तेन विश्रुताः । तत्र वैशा-
खादयः पौर्णमास्यन्ता एव तथैव तिथिकृत्याभिधानात् मुख्य-
वाचित्वे कार्तिकनवमेऽहनौति सिद्धौ शुक्लपक्ष इति व्यर्थं
स्यात् आसां प्रशंसामाह विष्णुपुराणं 'एता युगाद्याः कथिताः
पुराणैरनन्तपुण्यास्तिथयश्चतस्रः । उपप्लवे चन्द्रमसोरवे-
स्त्रिष्वप्यष्टकास्त्रययनद्वये च । पानीयमप्यत्र तिलैश्च मिश्रं
दद्यात् पितृभ्यः प्रणतो मनुष्यः । आहं कृतं तेन समाः सहस्रं
रहस्यमेतत् पितरो वदन्ति' । उपप्लवे ग्रहणे देवीपुराणं
'युगाद्या वर्षद्विष्व सप्तमी पार्वती प्रिया । रवेरुदयमीक्षन्ते
न तत्र तिथियुग्मता' । अक्षयतृतीयामधिकृत्य ब्रह्मपुराणम् ।
'तस्यां कार्यो यवैर्होमो यवैर्विष्णुं समर्चयेत् । यवान् दद्यात्
द्विजातिभ्यः प्रयतः प्राशयेद् यवान् । पूजयेच्छङ्करं गङ्गां
कैलासञ्च हिमालयम् । भगीरथञ्च नृपतिं सगराणां सुखा-
वहम्' । स्कान्दे 'वैशाखस्य सिते पक्षे तृतीयाक्षयसंज्ञिता ।
तत्र मां लेपयेद् गन्धैर्लेपनैरतिशोभनैः' । मां जगन्नाथम् ।
अन्यत्रापि तथाच गङ्गास्नानमधिकृत्य भविष्ये 'संवत्सरफलं
राजन् नवम्यां कार्तिके तथा । मन्वादी च युगादौ च मास-
त्रयफलं लभेत्' । मन्वादयस्तु भविष्यमात्स्ययोः । 'अश्वयुक्-

४२८

कृत्यतत्त्वम् ।

शुक्लनवमीद्वादशी कार्तिकी तथा । तृतीया चैत्रमासस्य
तथा भाद्रपदस्य च । फाल्गुनस्याप्यमावास्या पौषस्यैकादशी
तथा । आषाढस्यापि दशमी तथा माघस्य सप्तमी । आश्व-
यस्याष्टमी कृष्णा तथा आषाढस्य पूर्णिमा । कार्तिकी फाल्गुनी
चैत्री ज्यैष्ठी पञ्चदशी सिताः । मन्वन्तरादयस्त्विता दत्तस्या-
क्षयकारकाः । अमावास्याष्टमी व्यातिरिक्ताः शुक्लाः उपक्रमो-
पसंहारयोः शुक्लत्वकर्त्तृनात् नारदीये । 'वैशाखे शुक्लपक्षे तु
द्वादशी वैष्णवी तिथिः । तस्यां शीतलतोयेन स्नापयेत् केशवं
शुचिः' । इयं पिपीतकद्वादशी नात्र युग्मादरापेक्षा अत्र
विष्णुपूजने उपवासोत्तरविधानात् ।

अथ यवश्राद्धं तत्र वैशाखशुक्लक्षेत्रे कुजशनिशुक्रेतरवारे
नन्दारिक्तात्रयोदशीतरतिथौ जन्मचन्द्राष्टमचन्द्रजन्मतिथिज-
न्मनक्षत्रत्रयपञ्चमतारात्रयेतरेषु पूर्वफल्गुनी पूर्वभाद्रपदपूर्वा-
षाढा मघाभरण्यश्लेषार्द्रेतरनक्षत्रेषु यवश्राद्धं कर्त्तव्यम् । तच्छे-
षभोजनञ्च एतादृगनिषिद्धायां विषुवसंक्रान्तौ अक्षयतृतीया-
याञ्च विशेषतः कर्त्तव्यम् । वैशाखाकरणे ज्यैष्ठशुक्लपक्षे आषाढ-
शुक्लपक्षे च हरिशयनेतरत्र कर्त्तव्यम् ।

अथ एकादशीव्रतम् । गृहस्थादीनामुभयपक्षैकादश्यामुप-
वासाधिकारः । कृष्णैकादश्यां पुत्तवतो गृहस्थस्य नाधिकारः
हरिशयनाभ्यन्तरे तस्याप्यधिकारः । वैष्णवपुत्तवतो गृहस्थस्य
सर्वकृष्णायामधिकारः । शुक्रवारादावप्यैकादश्युपवासे फला-
धिक्यं विधवायास्तु, सर्वत्राधिकारः । अवाष्टाब्दादधिका-
पूर्णाशीतिवर्षमानवो नित्याधिकारी एकादशीव्रतं नित्यम् ।
पारणदिने द्वादशीलाभे सर्व एव पूर्णां त्यक्त्वा खण्डामुपवसेत्
तदलाभे गृही पूर्वां तदन्यः परां विधवापि यदा पूर्वदिने
दशम्या उत्तरदिने द्वादशीयुतैकादशी तदा उत्तरामुपोष

कृत्यतत्त्वम् ।

४२८

द्वादश्यां पारणं कुर्यात् । पारणदिने द्वादशनिर्गमे तु त्रयोदश्यामपि । यदा तु सूर्योदयानन्तरं दशमीयुतेकादशी अथ च परदिने न निःसरति तदा तां विहाय परदिने द्वादशीमुपवसेत् । यदा तु सूर्योदयकालीनदशमीविद्वैकादशी परदिने न निःसरति तदा तामुपवसेत् । यदा तु तथाविधा सती परदिनेऽपि निःसरति तत्परदिने च द्वादशी तदा तां विहाय खण्डामुपोष्य द्वादश्यां पारयेत् । यदा तु उभयदिने तद्विद्वैकादशी तदा षष्टिदण्डात्मिकाम् विद्वामुपोष्य परदिने द्वादश्याद्यपादमुत्तीर्य पारयेत् । वैष्णवस्तु तत्रापि शुक्लपक्षे परामुपोष्य त्रयोदश्याम् एकादश्यामुपवासः सूतकादावपि कार्यः ततः पूर्वदिने संयमं विधाय परदिने प्रातःकृतस्नानादिः ओम् सूर्यः सोम इति तद्विष्णोरिति च पठित्वा ओम् तत्सदित्युच्चार्य वारिपूर्णं ताम्रपात्रं गृहीत्वा उदङ्मुखः ओम् अद्य अमुके मासि अमुकपक्षे एकादश्यान्तिथौ अमुकगोत्रः श्री अमुकदेवशर्मा पुरुषार्थचतुष्टयप्राप्तिकाम एकादशीव्रतमहं करिष्ये इति सङ्कल्प्य 'एकादश्यां निराहारो भूत्वा चैव परेऽहनि । भोक्त्येऽहं पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाच्युत' इति पठेत् । 'उपवासे तु सङ्कल्प्य मन्त्रपूतं जलं पिबेत्' इति स्कन्दपुराणादष्टाचरेण मन्त्रेण त्रिजपेनाभिमन्त्रितम् । 'उपवासफलं प्रेषुः पिबेत् पात्रगतं जलम्' इति कात्यायनवचनाच्च । ओम् नमो नारायणायेति त्रिरभिमन्त्र्य किञ्चित् तोयं पिबेत् । आचमनजलपानवदत्रादूषणम् ओम् 'इदं व्रतं मया देव गृहीतं पुरतस्तव । निर्विघ्नां सिद्धिमाप्नोतु त्वत्प्रसादाज्जनार्दन' इति प्रार्थयेत् । ततो विष्णुं संपूज्य उपोष्य परदिनेऽपि प्रातर्विष्णुं संपूज्य 'अज्ञानतिमिरान्धस्य व्रतेनानेन केशव । प्रसीद सुमुखो नाथ ज्ञानदृष्टिप्रदो भव ।

४१०

कृत्यतत्त्वम् ।

कृष्ण कृष्ण कृपालुस्वमगतीनां गतिर्भव । संसारार्णव-
मग्नानां प्रसीद मधूसूदन' । इत्याभ्यां प्रार्थ्य द्वादशीप्रथम-
पादमुत्तीर्य पारणं कुर्यात् 'द्वादश्याः प्रथमः पादो हरिवासर-
संज्ञितः । तमतिक्रम्य कुर्वीत पारणं विष्णुतत्परः' इति
वचनात् उपवासासामर्थ्यं वायुपुराणम् । 'नक्तं हविष्यान्नम-
नोदनं वा फलं तिलाः क्षीरमथाम्बु चाज्यम् । यत् पञ्चगव्यं
यदिवाथ वायुः प्रशस्तमत्रोत्तरमुत्तरञ्च' । हविष्यान्नं कार्तिक-
कृत्ये वक्ष्यते ।

अथ ज्येष्ठकृत्यम् । तत्र वैशाख्याः पौर्णमास्या ऊर्द्ध्वं
कृष्णचतुर्दश्यां सावित्रीव्रतमवैधव्यकामा कुर्यात् । तत्र यद्दिने
मुहूर्त्ताधिकचतुर्दशीलाभः प्रदोषे तत्रैव व्रतम् । उभयदिने
तथाविधलाभे परदिने व्रतम् उभयदिने तथाविधालाभे पूर्व-
दिने प्रदोषेतरत्रापि व्रतं तद्दिने सत्यवन्तं सावित्रीञ्च
संपूज्योपोष्य कथां श्रुत्वा परदिने फलेन पारणं कुर्यात्
रजस्वलादेः कायिकमुपवासो दैहिकं स्वयं कुर्यात् पूजनमन्य-
द्वारा कारयितव्यं गर्भिणीत्वादिना तु उपवासासामर्थ्यं तु
स्वयं नक्तं भोजनं कार्यं सर्वदासामर्थ्यं पत्या पुत्रेण वा कारयि-
तव्यम् एवमन्यव्रतेषु अपि ।

अथारण्यषष्ठी । तत्र ज्येष्ठशुक्लषष्ठ्यां शुभसन्ततिकामो
बिम्बवासिनीस्कन्दषष्ठीपूजनमहं करिष्ये इति सङ्कल्पयेत् ।
राजमार्त्तण्डे 'ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे षष्ठी चारण्यसंज्ञिता ।
व्यजनैककरास्तस्यामटन्ति विपिने स्त्रियः । तां बिम्बवासिनीं
स्कन्दषष्ठीमाराधयन्ति च । कन्दमूलफलाहारा लभन्ते
सन्ततिं शुभाम्' । कन्दो मृणालादिरिति श्रीधरस्वामि-
व्याख्यानमत्र ग्राह्यम् । मूलादि परत्वे मूलेत्यनेनैव पौन-
रुक्त्यापत्तेः । तत्रोभयदिने पूर्वाह्णे षष्ठीलाभे परदिने व्रतं

कृत्यतत्त्वम् ।

४३१

पूजने तु । श्रीम् विम्ब्यवासिन्यै षष्ठैः नम इत्यादिना पूजयेत् । 'जय देवि जगन्मातर्जगदानन्दकारिणि । प्रसीद मम कल्याणि नमस्ते षष्ठि देवि ते' इत्यनेन नमस्कृत्य 'रूपं देहि यशो देहि भाग्यं भगवति देहि मे । पुत्रान् देहि धनं देहि सर्वान् कामांश्च देहि मे' । इत्यनेन प्रार्थयेत् । ततः फलाहारं कुर्यात् ।

अथ दशहरा । तत्र यस्यां कस्याञ्चिन्नद्यामुदयगामिन्यां ज्यैष्ठ्यशुक्लदशम्याम् श्रीम् अद्येत्यादि सुमहापातकोपपातकदशविधपापक्षयकामो दर्भकरणतिलतर्पणाङ्गकस्नानमहं करिष्ये एवं दानेऽपि गङ्गायान्तु अद्येत्यादि दशविधपापक्षयकामो गङ्गायां स्नानमित्यादि सङ्कल्प्य सामान्यस्नानमन्त्रान्ते मज्जनस्यादौ श्रीम् 'अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधानतः । परदारोपसेवा च कायिकं त्रिविधं स्मृतम् । पारुष्यमनृतञ्चैव पैशुन्यञ्चापि सर्वशः । असम्बद्धप्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम् । परद्रव्येष्वभिधानं मनसानिष्टचिन्तनम् । वितथाभिनिवेशश्च त्रिविधं कर्म मानसम् । एतानि दशपापानि प्रशमं यान्तु जाङ्गवि । स्नातस्य मम ते देवि जले विष्णुपदोद्भवे । विष्णुपादार्घ्यसम्भूते गङ्गे त्रिपथगामिनि । धर्मद्रव्येति विख्याते पापं मे हर जाङ्गवि । अद्यया भक्तिसम्पन्ने श्रीमातर्देवि जाङ्गवि । अमृतेनाम्बुना देवि भागौरथि पुनोहि माम्' इति पठित्वा स्नायात् । हस्तायोगे तु हस्तानक्षत्रयुक्तदशम्यां दशजन्मार्जितदशविधपापक्षयकाम इति वाक्ये विशेषः । मङ्गलवारयोगे तु मङ्गलवारयुक्तायां दशम्यां दशविधपापक्षयपूर्वकशतगुणवाजिमेधायुत यज्ञजन्यफलसमफलप्राप्तिकाम इत्यभिलाषे विशेषः ।

अथ महाज्यैष्ठी । सा ज्यैष्ठायां गुरुचन्द्रावस्थाने रोहिण्यां

४३२

कृत्यतत्त्वम् ।

सूर्यावस्थाने ज्यैष्ठ्ये पौर्णमासी चेत्तदा भवति गुरुवारयोगे त्वधिकज्येष्ठां विना अनुराधास्थ गुरावपि तथाविध पौर्णमासीत्यपरा अनुराधास्थ गुरुचन्द्रयोरपि ज्यैष्ठ्यपौर्णमासीत्यपरा-मूलस्थ गुरुसत्त्वेऽपि ज्येष्ठायुक्ता पौर्णमासीत्यपरा । एवं पञ्चविधा सा भवति तत्र जगन्नाथदर्शने विष्णुलोकगमनफलं गङ्गास्नाने मोक्षः तत्र पौर्णमास्यामित्यनन्तरं महाज्यैष्ठ्यामित्यभिलाषे विशेषः पक्षान्ते स्रोतो जलमात्रस्नाने यमपुर-गमनाभावः फलम् एवं माससंज्ञकविशाखादिनक्षत्रे गुरुचन्द्रयोर्महावस्थाने महावेशाख्यादि तस्यां स्नानोपवासयोरक्षय फलम् । एवं गुरुस्थितिं विना मासर्चयुक्तायां पौर्णमास्यां स्नानदानयोर्दशगुणं फलम् ।

अथ ग्रहणम् । राहुभोग्यनक्षत्रपादावधिकचतुष्पादाभ्यन्तरे चन्द्रस्थित्या रात्रौ पौर्णमास्यन्ते चन्द्रग्रहणसम्भावना एवं राहुभोग्यनक्षत्रपादावधिकपादत्रयाभ्यन्तरे सूर्यस्थित्वा दिवाऽमावास्यान्ते सूर्यग्रहणसम्भावना । तद्दर्शनञ्च जन्म-चतुःसप्ताष्टनवदशद्वादशेतरचन्द्रेषु जन्मसप्तमेतरनक्षत्रेषु ग्रहणं दृष्ट्वा राहुस्थितिकाले सामान्यजलेऽपि स्नानं कर्तव्यं प्रतिषिद्धकालीनदर्शने तु तद्दोषप्रशमनाय काञ्चनं दद्यात् । ओम् अद्य अमुके मासि अमुकपक्षेऽमुकतिथौ राहुग्रस्ते निशाकरे दिवाकरे वा अमुकगोत्रः श्री अमुकदेवशर्मा गङ्गास्नानजन्यफलसमफलप्राप्तिकामोऽस्मिन् जले स्नानमहं करिष्ये इति सङ्कल्प्य स्नायात् रात्रौ सन्ध्यावन्दनं विनापि स्नानोत्तरं तर्पणं कार्यम् । सोमवारे चन्द्रग्रहणे रविवारे सूर्यग्रहणे तु चूडामणियोगेऽनन्तगङ्गास्नानजन्यफलसमफल-प्राप्तिकाम इति वाक्ये विशेषः दानादावप्यनन्तत्वेन फल-सूहनौयं चूडामणियोगेतरत्र चन्द्रग्रहणेऽमुकद्रव्यदानजन्य-

कृत्यतत्त्वम् ।

४३३

फललक्षगुणफलप्राप्तिकाम इति रविग्रहणेऽमुकद्रव्यदशलक्ष-
दानजन्यफलसप्तफलप्राप्तिकाम इति विशेषः । एवं स्नानेऽपि
गङ्गायान्तु चन्द्रग्रहणे कोटिगुणगङ्गास्नानेति रविग्रहणे तु
दशकोटिगङ्गास्नानेति शेषः । गङ्गातीरचन्द्रग्रहणदाने लक्षेत्यत्र
कोटीति रविग्रहणदाने तु दशलक्षेत्यत्र दशकोटीति विशेषः ।
तत्र मृतपितृकेण सकृत्प्रक्षालितामानेन आङ्गं कर्त्तव्यम् ।
तत्र जननमरणाशौचिनापि स्नानं कर्त्तव्यम् । दानं आङ्गञ्च न
कर्त्तव्यम् । क्षताशौचवतापि सर्वं कर्त्तव्यम् । पुरश्चरणकारिणा
तु ग्रहणारम्भकाले तद्वद्वा मज्जनमात्रं कृत्वाचम्य तिलकुश-
जलान्यादाय ओम् तत्सदित्युच्चार्य्य अद्येत्यादि अमुकदेवताया
अमुकमन्त्रसिद्धिकामो ग्रासादिमुक्तिपर्यन्तम् अमुकदेव-
ताया अमुकमन्त्रजपमहं करिष्ये इति सङ्कल्प्य ऐशान्यां जलं
क्षिप्वा प्राणायामं कृत्वा तावत् कालं जपेत् । सूर्यग्रहणे तु
राक्षसीतरकाले तद्दिने अन्यथोभयग्रहण एव परादिने प्रातः
पूजयित्वा जपदशांशहोमं कुर्यात् तदभावे राहुग्रस्तनिशा-
करकालीनामुकमन्त्रजपदशांशहोमद्विगुणजपं वैष्णवस्तु चतु-
र्गुणजपमहं करिष्ये इति सङ्कल्प्य जपं कृत्वा समर्प्य राहु-
ग्रस्तनिशाकरकालीनामुकमन्त्रजपदशांश-होम-तद्दशांशतर्पण-
महङ्करिष्ये इति सङ्कल्प्य मन्त्रमुच्चार्यामुकदेवतां तर्पयामि
नम इति तर्पयेत् । ततश्च राहुग्रस्तनिशाकरकालीनामुक-
मन्त्रजपतद्दशांशहोमतद्दशांशतर्पणतद्दशांशाभिषेकमहं करिष्ये
इति सङ्कल्प्य आत्मानं देवतारूपं ध्यात्वा मूलमन्त्रं नमोऽन्त-
मुच्चार्यामुकदेवतामभिषिञ्चामि नम इत्यनेन मूर्द्ध्वाञ्जलिना-
भिषिञ्चेत् । गोपालमन्त्रे तु होमदशांशेत्यत्र होमसमसंख्येति
निर्देश्य ततो महतीं पूजां विधाय अभिषेकदशांशब्राह्मण-
कर्त्तृकभोजनमहं करिष्ये इति सङ्कल्प्य ब्राह्मणान् भोजयेत् ।

३७—क

४३४

कृत्यतत्त्वम् ।

ततो गुरुं संपूज्य दक्षिण्या तोषयेत् । राहुदर्शने स्नानमावश्यकम् । अदर्शनेऽपि मुक्तौ स्नानमावश्यकं तत आचम्य इमं मन्त्रं पठेत् । 'उत्तिष्ठ गम्यतां राहो त्यज्यतां चन्द्रसङ्गमः । कर्मचण्डालयोगोत्थं कुरु पापक्षयं मम' । राहुदर्शनानधिकारिणापि स्नानमावश्यकं कार्यं सूर्यग्रहणात् पूर्वं दिवा न भोक्तव्यं चन्द्रग्रहणात् पूर्वं प्रहरत्रयं न भोक्तव्यं ग्रस्तोदयचन्द्रे दिवैव न भोक्तव्यम् अत्यन्तासामर्थ्ये^१ तु ग्रहणात् पूर्वं सुहर्तत्रयं न भोक्तव्यं ग्रहणकाले तु सर्वथा न भोक्तव्यं ग्रहणानन्तरं पाकस्थालीं परित्यज्य पाकान्तरेण भोक्तव्यम् । तत्र ग्रस्तास्तसूर्ये परदिने सूर्यं दृष्ट्वा मेघमालादिदोषे तददृष्ट्वाऽपि स्नात्वा भोक्तव्यं ग्रस्तास्तचन्द्रेऽपि चन्द्रदर्शनानन्तरं स्नात्वा मेघमालादिदोषे तददर्शनेऽपि भोक्तव्यं ग्रस्तास्त एव त्राहमनध्यायः ।

अथ आषाढकृत्यम् । तत्र यद्वारे यत्काले मिथुनसंक्रमणं भूतं तद्वाराभ्यन्तरे तावत्कालावधिविंशत्यादि दण्डाधिकदिनत्रयसम्बुवाची तत्राध्ययनं वीजवपनं न कार्यं सर्पभयोपशमनाय दुग्धं पेयम् ।

अथ नवोदकश्राद्धम् । तत्रास्बुवाचीप्रभृत्यार्द्रास्थे रवौ त्रयोदशीजन्मतिथिनन्दा जन्माष्टमचन्द्रशुक्रवारैतरजन्मतारा-क्षत्तिकाश्लेषार्द्राज्येष्टामूलापञ्चमतारा पूर्वोत्तरयमघाभरणीतरनक्षत्रेषु नवोदकनिमित्तकपार्वणविधिना श्राद्धं कर्त्तव्यं तत्र कृष्णपक्षलाभे चान्द्रेणैव श्राद्धम् ।

अथ चातुर्मास्यव्रतम् । तत्र वराहपुराणम् । 'आषाढशुक्लद्वादश्यां पौर्णमास्यामथापि वा । चातुर्मास्यव्रतारम्भं कुर्यात् कर्कटसंक्रमे । अभावे तु तुलार्केऽपि मन्त्रेण नियमं ज्ञेयः । कार्तिके शुक्लद्वादश्यां विधिवत्तत्समापयेत्' । मात्स्ये ।

कृत्यतत्त्वम् ।

४२५

‘चतुरो वार्षिकान् मासान् देवस्थोत्थापनावधि । मधुसूरो भवेन्नित्यं नरो गुडविवर्जनात् । तैलस्य वर्जनादेव सुन्दराङ्गः प्रजायते । कटुतैलपरित्यागाच्छूनाशः प्रजायते । लभते सन्ततिं दीर्घां स्थालीपाकमभज्जनात् । सदा मुनिः सदा योगी मधुमांसस्य वर्जनात् । निर्व्याधिर्निरुगोजस्वी विष्णु-भक्तः प्रजायते । एकान्तरोपवासेन विष्णुलोकमवाप्नुयात् । धारणान्नखलोन्नाञ्च गङ्गास्नानं दिने दिने । नमो नाराय-णायेति जप्त्वाऽनशनजं फलम् । पादाभिवन्दनाद्विष्णोर्लभेद्भो-दानजं फलम्’ । महाभारते ‘चतुरो वार्षिकान् मासान् यो मांसं परिवर्जयेत् । चत्वारि भद्राण्याप्नोति कीर्त्तिमायु-र्यशो बलम्’ । ततः प्रातःकृतःस्नानादिरुदङ्ग, खः कुशफल-पुष्पतिलजलान्यादाय ओम् सूर्यः सोम इति पठित्वा ओम् तद्विष्णोरित्यादि च पठित्वा ओम् तत्सदित्युच्चार्य अद्याषाढे-मासि शुक्लपक्षे द्वादश्यां तिथौ अमुकगोत्रः श्री अमुकदेवशर्मा अद्यारभ्य कौर्त्यायुर्यशो बलावाप्तिकामो विष्णुप्रीतिकामो वा चतुर्मासं यावत् चातुर्मास्यव्रतमहं करिष्ये इति । तथा ‘आषा-ढादि चतुर्मासं प्रातःस्नायी भवेन्नरः । विप्रेभ्यो भोजनं दत्त्वा कार्त्तिक्यां गोप्रदो भवेत् । स च विष्णुपुरं याति विष्णुव्रत-मिदं स्मृतम् । एवमादिव्रतैः पार्थ तुष्टिमायाति केशवः’ । आरम्भे तु ‘इदं व्रतं मया देव गृहीतं पुरतस्तव । निर्विघ्नां सिद्धिमाप्नोतु प्रसादात्तव केशव । गृहीतेऽस्मिन् व्रते देव यद्यपूर्णे त्वहं म्रिये । तन्मे भवतु संपूर्णं त्वत्प्रसादाज्जनार्दन’ । इति सनत्कुमारोक्तं पठेत् । समाप्तौ तु उत्थान-द्वादश्याम् ‘इदं व्रतं मया देव तव प्रीत्यै कृतं विभो । न्यूनं सम्पूर्णतां यातु त्वत्प्रसादाज्जनार्दन’ इति पठेत् । ततो दक्षिणां दत्त्वा क्षिद्रमवधारयेत् । एवं व्रतान्तरेऽपि

४३६

कृत्यतत्त्वम् ।

ऊह्यम् एवमाषाढपौर्णमास्यां कर्कटसंक्रान्ती वा आरम्भे च बोध्यम् ।

अथ विष्णोः शयनम् । तत्र वामनपुराणम् । ‘एकादश्यां जगत्स्वामी शयनं परिकल्पयेत् । शेषाहिभोगपर्यङ्कं कृत्वा संपूज्य केशवम् । अनुज्ञां ब्राह्मणेभ्यश्च द्वादश्यां प्रयतः शुचिः । लब्ध्वा पीताम्बरधरं देवं निद्रां समापयेत्’ । अनुज्ञां लब्ध्वेत्यर्थः । एकादशीशयने दिवाशयनीयं परिकल्पनं रात्रौ द्वादशीक्षणे निद्रेति । मात्स्ये । ‘शेते विष्णुः सदाषाढे भाद्रे च परिवर्त्तयेत् । कार्तिके परिवुध्येत शुक्लपक्षे हरेर्दिने’ । भविष्यनारदीययोः ‘मैत्राक्षपादे स्वपितीह विष्णुर्वैष्णव्यमध्ये परिवर्त्तते च । पौष्णावसाने च सुरारिहन्ता प्रबुध्यते मासचतुष्टयेन । मैत्रमनुराधावैष्णवं श्रवणा पौष्णं रेवती । विष्णुधर्मोत्तरे ‘विष्णुर्दिवा न स्वपिति न च रात्रौ प्रबुध्यते । द्वादश्यामृक्षसंयोगे पादयोगो न कारणम् । अप्राप्ते द्वादशी-मृक्षे उत्थानशयने हरेः । पादयोगे न कर्त्तव्ये नाहोरात्रं विचिन्तयेत्’ भविष्ये ‘निशि स्वापो दिवोत्थानं सन्ध्यायां परिवर्त्तनम् । अन्यत्र पादयोगे तु द्वादश्यामेव कारयेत्’ । ततः कृताङ्गिकः आषाढे शुक्लद्वादश्यामनुराधायुक्तायां निशायां द्वादश्यामृक्षाभावे एकादश्यादि पौर्णमास्यन्ततिथिषु मैत्रपादयोगे तदभावे द्वादश्यां केवलायामपि सन्ध्याकाले वस्तादिना पुष्पेण वा शय्यां कृत्वा रात्रौ विष्णुं संपूज्य ओम् नमो नारायणायेत्युच्चार्य स्वापयेत् । ओम् ‘पश्यन्तु मेघानपि मेघश्याममुपागतं सिच्यमानां महीमिमाम् । निद्रां भगवान् गृह्णातु लोकनाथ वर्षास्त्रिमं पश्यतु मेघहृन्दम् । ज्ञात्वा च पश्यैव च देवनाथ मासाश्चत्वारो वैकुण्ठस्य तु देवनाथ’ । ततश्च ‘सुप्ते त्वयि जगन्नाथे जगत् सुप्तं भवेदिदम् । प्रबुद्धे त्वयि

कृत्यतत्त्वम् ।

४३७

बुध्येत जगत्सर्वं चराचरम्' इत्यनेन पूजयेत् 'उपवासेष्व किं तस्य यज्ञैरन्यैर्महात्मनः । प्रस्वापे च प्रबोधे च पूजितो येन केशवः' आषाढ्यां पौर्णमास्यां दानमावश्यकम् ।

अथ आवणकृत्यं तत्र देवीपुराणं 'सुप्ते जनार्दने कृष्णे पञ्चम्यां भवनाङ्गने । पूजयेन्मनसादेवीं सुह्रीविटपसंस्थिताम्' । सुह्रीं सिजुवृक्षः । 'देवीं संपूज्य नत्वा च न सर्पभयमाप्नुयात् । पञ्चम्यां पूजयेन्नागाननन्ताद्यान्महोरगान् । क्षीरं सर्पिष्व नैवेद्यं देयं सर्पविषापहम्' । गारुडे 'अनन्तं वासुकिं शङ्खं पद्मं कम्बलमेव च । तथा कर्कोटकं नागं धृतराष्ट्रञ्च शङ्खं कालीयं तक्षकञ्चापि । पिङ्गलं मणिभद्रकं यजेत्तानसितान्नागान् दष्टमुक्तो दिवं व्रजेत्' । पुराणान्तरेऽपि । 'अनन्तो वासुकिः पद्मो महापद्मोऽथ तक्षकः । कुलीरः कर्कटः शङ्खो ह्यष्टौ नागाः प्रकीर्तिताः । पाद्मे 'शेषः पद्मो महापद्मः कुलीरः शङ्खपालकः । वासुकिस्तक्षकश्चैव कालीयो मणिभद्रकः । ऐरावतो धृतराष्ट्रः कर्कोटकधनञ्जयो' । रत्नाकरे 'पिचुर्मदस्य पत्राणि स्थापयेत् भवनोदरे । स्वयञ्चापि तदश्रीयात् ब्राह्मणानपि भोजयेत्' पिचुर्मदस्य निम्बस्य । तत्र प्रयोगः हरिशयनानन्तरं गौणचान्द्रेण आवणकृष्णपञ्चम्यां कृतस्नानादिरुदङ्मुखः । अद्य आवणे मासि कृष्णे पक्षे पञ्चम्यान्तिथौ अमुकगोत्रः श्री अमुकदेवशर्मा सर्पभयाभावकामो मनसादेवीपूजामहं करिष्ये इति सङ्कल्प्य सुह्रीवृक्षे पूजयेत् । तदभावे घटे जले वा न्यासादिकं कृत्वा देवीमन्त्रेति ध्यात्वा मनसादेवि इहागच्छेत्यावाह्य एतत् पादम् ओम् मनसादेव्यै नम इत्यनेन यथाशक्ति गन्धपुष्पधूपदीपनैवेद्यानि दद्यात् । ततोऽनन्तादीन्नागान् पूजयेत् । तत्र

४३८

कृत्यतत्त्वम् ।

‘क्षीरसर्पिर्नैवेद्य’ प्रधानम् अनन्तादिकं पाद्यादिभिः संपूज्य
 ‘योऽसावनन्तरूपेण ब्रह्माण्डं सचराचरम् । पुष्पवद्धारयेन्मूर्द्धि
 तस्मै नित्यं नमो नमः’ इत्यनेन त्रिःपूजयेत् । एवं प्रणवादि-
 नमोऽन्तेन स्वस्वनाम्ना पूजयेत् । ओम् वासुकये नमः ओम्
 शङ्खाय नमः ओम् कम्बलाय नमः ओम् कर्कोटकाय नमः
 ओम् शङ्खकाय नमः ओम् कालीयाय नमः ओम् तक्षकाय
 नमः ओम् पिङ्गलाय नमः ओम् महापद्माय नमः ओम्
 कुलिकाय नमः ओम् मणिभद्राय नमः ओम् धनञ्जयाय
 नमः ओम् शेषाय नमः । ओम् ऐरावताय नमः अशक्ती
 गन्धपुष्पाभ्यां पूजयेत् । निम्बपत्राणि गृहे स्थापयेत् ।
 ब्राह्मणेभ्यो दद्यात् स्वयं भक्षयेच्च । उभयदिने पूर्वाह्णे मुह-
 र्त्तान्यूनपञ्चमीलाभे पूर्वदिने पूजा युग्मात् । आवण्यां पौर्ण-
 मास्यां आद्यमावश्यकम् ।

अथ भाद्रकृत्यम् । तत्र जन्माष्टमीव्रतं प्रमाणन्तु तिथि-
 तत्त्वेऽनुसन्धेयं आवण्यन्तरितभाद्रकृष्ठाष्टम्यां रात्रिमध्यमुह-
 र्त्ताष्टमीरोहिणीरूपजयन्तीलाभे तत्रैवोपवासः उभयदिने
 चेत्तदा परदिने जयन्त्यलाभे तु रोहिणीयुताष्टम्याम् उभयदिने
 रोहिण्यलाभे तु निशीथसम्बन्धिन्यष्टम्याम् उभयदिने निशीथ-
 सम्बन्धे तदसम्बन्धे वा परदिने इति । तत्र प्रयोगः । पूर्वदिने
 संयमं विधाय तद्दिने प्रातःकृतस्नानादिराचान्तः ओम् सूर्यः
 सोम इत्यादि ओम् तद्विष्णोरित्यादि च पठित्वा नारायणं
 संस्मृत्य ओम् तत्सदित्युचार्य उदङ्मुखस्त्रिलोकेशजलान्यादाय
 ओम् अथ भाद्रे मासि कृष्णे पक्षे अष्टम्यान्तिथौ अमुकगोत्रः
 श्री अमुकदेवशर्मा श्रीविष्णुलोकप्राप्तिकामः श्रीविष्णुप्रीति-
 कामो वा श्रीकृष्णजन्माष्टमीव्रतमहङ्करिष्ये । यदि उपवास-
 दिने प्रातःसप्तमी तदा सप्तम्यान्तिथौ आरभ्येति वक्तव्यम् ओम्

कृत्यतत्त्वम् ।

४३९

‘धर्माय धर्मेश्वराय धर्मपतये धर्मसम्भवाय गोविन्दाय नमो नमः’ इत्युच्चार्य ‘ओम् वासुदेवं समुद्दिश्य सर्वपापप्रशान्तये । उपवासं करिष्यामि कृष्णाष्टम्यां नभस्यहम् । अद्य कृष्णाष्टमीं देवीं नभश्चन्द्रसरोहिणीम् । अर्चयित्वोपवासेन भोक्त्येऽहमपरेऽहनि । एनसो मोक्षकामोऽस्मि यद्गोविन्दत्रियोनिजम् । तन्मे मुञ्चतु मां त्राहि पतितं शोकसागरे । आजन्ममरणं यावत् यन्मया दुष्कृतं कृतम् । तत्प्रणाशय गोविन्द प्रसीद पुरुषोत्तम’ इति पठेत् । तत आङ्गिकं निर्वृत्य अर्द्धरात्रे तत्प्रतिमासु आवाहनविसर्जनसहितं शालग्रामे घटादिस्थ जले वा आवाहनविसर्जनरहितं पूजयेत् । तत्र । माञ्चापि बालकं सुप्तं पथ्यङ्के स्नानपायिनं श्रीवत्सवक्षः पूर्णाङ्गं नीलोत्पलदलच्छविम्’ इति ध्यात्वा ओम् श्रीकृष्ण स्वागतमिति पृच्छेत् इदमासनं श्रीकृष्णाय नम इत्यासनं दत्वा एतत् पाद्यं श्रीकृष्णाय नम इति पाद्यं दत्त्वा ओम् ‘यज्ञाय यज्ञेश्वराय यज्ञपतये यज्ञसम्भवाय गोविन्दाय नमो नमः’ इदमर्घ्यं श्रीकृष्णाय नमः इति दद्यात् । इदमाचमनीयम् ओम् श्रीकृष्णाय नमः ततो दधिमधुघृतात्मकं मधुपर्कमानीय एष मधुपर्कः श्रीकृष्णाय नमः पुनराचमनीयम् ओम् श्रीकृष्णाय नमः लौकिकषष्ठ्यधिकशततोलकपरिमितान्नजलमानीय इदं स्नानीयं जलम् ओम् श्रीकृष्णाय नमः ओम् ‘योगाय योगेश्वराय योगपतये योगसम्भवाय गोविन्दाय नमो नमः’ इदं वस्त्रम् ओम् श्रीकृष्णाय नमः इदं रजताभरणम् एष गन्धः एतत् पुष्पम् एष धूप एष दीपः इदं नैवेद्यम् ओम् ‘विश्वाय विश्वेश्वराय विश्वपतये विश्वसम्भवाय गोविन्दाय नमो नमः’ पानार्थं जलम् इदमाचमनीयं पुनराचमनीयम् एतत्ताम्बूलम् । जपं कृत्वा समर्प्य स्तुत्वा प्रणमेत् ततः स्वगृह्योक्तविधिनाग्निं

४४०

कृत्यतत्त्वम् ।

संस्थाप्य घृततिलाभ्याम् ओम् 'धर्माय धर्मेश्वराय धर्मपतये
 धर्मसम्भवाय गोविन्दाय नमो नमः' स्वाहा इत्यनेनाष्टोत्तर-
 शतमष्टाविंशतिमष्टौ वा आहुतीर्जुहुयात् । ओम् 'विश्वाय
 विश्वेश्वराय विश्वपतये विश्वसम्भवाय गोविन्दाय नमो नमः' ।
 इत्यनेन स्वापयेत् । ततः 'पादावमुच्चयन्ती श्रीदेवक्याश्चर-
 णान्तिके । निषणा पङ्कजे पूज्या नमो देव्यै श्रियै' इत्यनेन
 श्रियं पूजयेत् । ततो गुडघृतेन वसोधारां दद्यात् । नाडी-
 च्छेदं भावयेत् । ओम् षष्ठ्यै नम इति षष्ठीं पूजयेत् । ततो
 भगवतः श्रीकृष्णस्य नामकरणान्नप्राशनचूडाकरणोपनयो-
 हाहान् भावयेत् ततश्च प्रणवादि नमोऽन्तेन तत्तन्नामभिः
 देवक्यै वसुदेवाय यशोदायै चण्डिकायै बलदेवाय यक्षाय
 गङ्गायै ओम् चतुर्मुखाय इत्येतान् यथाशक्त्युपचारैः पूजयेत् ।
 शङ्खे पुष्प दूर्वाकुशचन्दनान्यादाय भूमौ जानुनी पातयित्वा
 ओम् 'क्षीरोदारणवसन्भूत अत्रिनेत्रसमुद्भव । गृहाणार्घ्यं
 शशाङ्केदं रोहिण्या सहितो मम' । सोमाय सोमेश्वराय
 सोमपतये सोमसम्भवाय गोविन्दाय नमो नमः' । इत्यर्घ्यं
 दद्यात् । ततः प्रणाममन्त्रौ ओम् 'ज्योत्स्नायाः पतये तुभ्यं
 ज्योतिषां पतये नमः । नमस्ते रोहिणीकान्त सुधावास
 नमोऽस्तु ते । नभोमण्डलदीपाय शिरोरत्नाय धूर्जटेः । कला-
 भिर्वर्द्धमानाय नमश्चन्द्राय चारवे' । ततश्च 'अनघं वामनं
 शौरिं वैकुण्ठं पुरुषोत्तमम् । वासुदेवं हृषीकेशं माधवं मधु-
 सूदनम् । वराहं पुण्डरीकाक्षं नृसिंहं दैत्यसूदनम् । दामो-
 दरं पद्मलाभं केशवं गरुडध्वजम् । गोविन्दमच्युतं देवमनन्त-
 मपराजितम् । अधोक्षजं जगद्बीजं सर्गस्थित्यन्तकारिणम् ।
 अनादिनिधनं विष्णुं त्रिलोकेशं त्रिविक्रमम् । नारायणं
 चतुर्बाहुं शङ्खचक्रगदाधरम् । पीताम्बरधरं नित्यं वनमाला-

कृत्यतत्त्वम् ।

४४१

विभूषितम् । श्रीवत्साङ्गं जगत्सेतुं श्रीकृष्णं श्रीधरं हरिम् ।
 प्रपद्येऽहं सदादेवं सर्वकामप्रसिद्धये । इति स्तुत्वा प्रणमेत्
 'प्रणमामि सदादेवं वासुदेवं जगत्पतिम्' । ततः प्रार्थयेत् ।
 ओम् 'त्राहि मां सर्वलोकेश हरे संसारसागरात् । त्राहि
 मां सर्वपापघ्न दुःखशोकार्णवाद्धरे । सर्वलोकेश्वर त्राहि
 पतितं मां भवार्णवे । दैवकीनन्दन श्रीश हरे संसारसाग-
 रात् । दुर्गतां स्त्रायसे विष्णो ये स्मरन्ति सकृत् सकृत् ।
 सोऽहं देवातिदुर्ध्वस्तत्राहि मां शोकसागरात् । पुष्कराह निम-
 ग्नोऽहं मायाविज्ञानसागरे । त्राहि मां देव देवेश त्वत्तो
 नान्योऽस्ति रक्षिता' इति प्रार्थयेत् । 'यद् बाल्ये यच्च कौमारे
 बार्द्धक्ये यच्च यौवने । तत्पुण्यं वृद्धिमाप्नोतु पापं हर हलायुध'
 इति वदेत् । ततो नृत्यगौतवाद्यादिभिः शेषकालं नयेत् ।
 परदिने प्रातःस्नानादि कृत्वा श्रीकृष्णं यथाविधि
 संपूज्य दुर्गायाश्च महोत्सवं कुर्यात् । ब्राह्मणान् भोजयेत् ।
 दक्षिणां सुवर्णादि यत्किञ्चिदिष्टतमं श्रीकृष्णामे प्रीयता-
 मित्युक्त्वा तेभ्यो दद्यात् । ततश्च 'यं देवं देवकीदेवं वसुदेवा-
 दजीजनत् । भौमस्य ब्राह्मणो गुह्यं तस्मै ब्रह्मात्मने नमः ।
 सुब्रह्मवासुदेवाय गोब्राह्मणहिताय च । शान्तिरस्तु शिव-
 चास्तु इत्युक्त्वा तान् विसर्जयेत्' । इति वचनात् इत्युच्चार्य
 ब्राह्मणांश्च विसर्जयेत् ।

ततश्च उपवासपरदिने तिथिनक्षत्रयोरवसाने पारणं यदा
 तु महानिशायाः पूर्वमेकतरस्यावसानम् अन्यतरस्य महा-
 निशायां तदनन्तरं वा तदैकतरावसाने पारणम् । यदा
 महानिशायासुभयस्थितिस्तदोत्सवान्ते प्रातःपारणं कुर्यात् ।
 तत्र मन्त्रः । ओम् 'सर्वाय सर्वेश्वराय सर्वपतये सर्वसम्भवाय
 गोविन्दाय नमो नमः' । पारणानन्तरन्तु ओम् 'भूताय

४४२

कृत्यतत्त्वम् ।

भूतेश्वराय भूतपतये भूतसम्भवाय गोविन्दाय नमो नमः'
इत्यनेन व्रतं समापयेदिति ।

भाद्रशुक्लपञ्चमीमधिकृत्य भविष्योत्तरे 'तथा भाद्रपदे
मासि पञ्चम्यां श्रद्धयान्वितः । सर्पं लिख्य नरो भक्त्या कृष्ण-
वर्णादिवर्णकैः । पूजयेद्बन्धुमाल्यैश्च सर्पिर्गङ्गालुपायमैः । तस्य
तुष्टिं समायान्ति पन्नगास्तक्षकादयः । आसप्तमात् कुलात्तस्य
न भयं सर्पतो भवेत् । तस्मात् सर्वप्रयत्नेन नागान् संपूजये-
न्नरः' इयमेव नागपञ्चमीति वाचस्पतिमिश्राः । आलेख्या-
नागाः कर्कोटादयः पूर्वलिखिताः पूजा च श्रावणपञ्चमी-
विहितेति बोध्यम् ।

अथ हरः पार्श्वपरिवर्त्तनं तत्र भाद्रशुक्लद्वादश्यां श्रावण-
युक्तायां केवलायां वा कृताङ्गिकः सायं सन्ध्यायां देवं संपूज्य ।
ओम् 'वासुदेव जगन्नाथ प्राप्तेऽयं द्वादशी तव । पार्श्वेन
परिवर्त्तस्व सुखं स्वपिहि माधव' इति कृताञ्जलिः पठेत् ।
'त्वयि सुप्ते जगन्नाथ जगत्सुप्तं भवेदिदं प्रबुद्धे त्वयि बुध्येत
जगत् सर्वं चराचरम्' । इत्यनेन पूजयेत् ।

अथ सिंहार्के चतुर्थीचन्द्रदर्शनप्रायश्चित्तम् । 'पञ्चानन-
गते भानौ पक्षयोरुभयोरपि । चतुर्थ्यामुदितश्चन्द्रो नेक्षितव्यः
कदाचन' । सिंहार्कमधिकृत्य ब्रह्मपुराणम् । 'नारायणो-
ऽभिशप्तस्तु निशाकरमरौचिषु । स्थितश्चतुर्थ्यामद्यापि मनु-
ष्याय पतेच्च सः । ततश्चतुर्थ्यां चन्द्रन्तु प्रमादाद्दीक्ष्य मानवः ।
पठेद्वात्रेयिका वाक्यं प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः' । अभिशप्तो
मिथ्यापरिवादविषयीभूतः सोऽभिशापः ततश्च प्राङ्मुखः
उदङ्मुखो वा तिलकुशजलान्यादाय ओम् अद्येत्यादि
सिंहार्कचतुर्थीचन्द्रदर्शनजन्यपापक्षयकामो धात्रेयिकावाक्य-
महं पठिष्यामीति सङ्कल्प्य । 'सिंहः प्रसेनमवधौत् सिंहो

कृत्यतत्त्वम् ।

४४३

जाम्बवता हतः । सुकुमारक मा रोदीस्तव ह्येष स्यमन्तकः ।
 इति विष्णुपुराणोक्तं धात्रेयिकावाक्यं पठेत् । भविष्योत्तरे
 'भाद्रेमास्यसिते पक्षे अघोराख्या चतुर्दशी । तामुपोष्य नरो
 याति शिवलोकमयन्नतः' । त्रयोदश्यां दिवातन मुहूर्त्तलाभे
 तत्रैव तदलाभे पद्मपुराणम् 'एकादश्यष्टमी षष्ठी कृष्णपक्षे
 चतुर्दशी । अमावास्या तृतीया च उपोष्याः स्युः परान्विताः' ।
 एतद्विषय एव 'शिवा घोरा तथा प्रेता सावित्री च चतुर्दशी ।
 कुह्युक्तेव कर्त्तव्या कुह्यामिव हि पारणम्' इति पराशरवचनं
 त्रिसन्ध्याव्यापित्वेऽपि तत्रैव 'चतुर्दशी प्रकर्त्तव्या त्रयोदश्या-
 युता विभो । दर्शविद्धा न कर्त्तव्या राकाविद्धा तथा मुने'
 इति वचनात् 'त्रिसन्ध्याव्यापिनी या तु सैव पूज्या सदा
 तिथिः । न तत्र युग्मादरणमन्यत्र हरिवासरात्' इति
 वचनात् ।

अथ अनन्तव्रतम् । तत्र यदिने पूर्वाह्नकाले चतुर्दशी-
 लाभस्तद्दिने व्रतम् उभयदिने चेत् परदिने युग्मात् व्रतानु-
 ष्ठानविधिस्तत्तत्पद्धतौ ज्ञेयम् ।

अथ अगस्त्यार्घ्यदानम् । प्रमाणन्तु तिथितत्त्वेऽनुसन्धेयं
 सिंहस्थरविकर्त्तव्यत्वेन सौरमासादरः कन्यार्कसंक्रान्तिपूर्वदिन-
 त्रयान्यतमे कृताङ्गिकस्तिलकुशजलान्यादाय ओम् तत्सदित्यु-
 च्चार्य ओम् अद्येत्यादि सर्वाभिलषितसिद्धिकामोऽगस्त्यपूजन-
 महङ्गरिथे इति सङ्कल्प्य शालग्रामे जले वा दक्षिणामुख
 एतत् पाद्यम् ओम् अगस्त्याय नमः । सितपुष्पाक्षतजलं
 शङ्खेन गृहीत्वा इदमर्घ्यम् ओम् 'काशपुष्पप्रतीकाश अग्नि-
 मारुतसम्भव । मित्रावरुणयोः पुत्र कुम्भयोने नमोऽस्तु ते' ।
 ओम् अगस्त्याय नम एवमाचमनीयगन्धपुष्पधूपदीपनैवेद्यानि
 प्रत्येकं दद्यात् । 'वातापिर्भक्षितो येन आतापिश्च महामुरः ।

४४४

कृत्यतत्त्वम् ।

समुद्रः शोषितो येन स मेऽगस्त्यः प्रसीदतु' । इति प्रार्थयेत् ।

अथ आश्विनकृत्यम् । तत्र प्रौष्ठपद्यूहकृष्णपक्षे प्रतिपदादिपञ्चदशकषष्ठ्यादिदशक एकादश्यादिपञ्चकत्रयोदश्यादित्रिकतिथिरूपकल्पचतुष्टान्यतमेषु प्रतितिथिषु आङ्गं कर्त्तव्यम् एकैकस्यास्थित्येः पूर्वदिने पूर्वदिने आङ्गप्रशस्तकाललाभे आङ्गं कृत्वा परदिने आङ्गं न कार्यम् एवमेव दिने उभयतिथिलाभे आङ्गद्वयं कर्त्तव्यम् । तत्र केवलत्रयोदश्यां पूर्वदिने अपराह्णे आङ्गं कृत्वा परदिने मघायुक्तत्वेन तस्यां आङ्गं कर्त्तव्यम् । यदि तु एकस्मिन् दिने मघायुक्तत्रयोदशौलाभस्तदा तन्त्रेणैव मधुपायसयुक्तेन तदलाभे केवलान्नेनापि आङ्गं कर्त्तव्यम् । तत्र पुत्रवता पिण्डरहितमेव आङ्गं कर्त्तव्यं तेनैव आङ्गेन पक्षआङ्गसिद्धिः अविभक्तभ्रातृभिरपि मघा त्रयोदशौ आङ्गं पृथक् कर्त्तव्यम् । कन्यास्थकृष्णपक्षत्वेनापि सकृत् आङ्गं नित्यं तत्र पक्षआङ्गकरणे तन्त्रत्वादेव सिद्धिः । कन्यास्थे रवौ षोडशपिण्डदानम् अमावास्यायां कार्यम् ।

आश्विनकृत्ये दुर्गापूजा नित्या काम्या च ॥ अथ दुर्गेत्सवः ॥ तत्र बोधनं पौर्णमास्यन्ताश्विनकृष्णपक्षे आर्द्रानक्षत्रयुक्तायां केवलायां वा नवम्यां पूर्वाह्णे दिवामात्रे वा उभयदिने तथाविधलाभे पूर्वदिने युग्मात् । प्रतिपदादिकल्पे उभयदिने पूर्वाह्णे प्रतिपन्नाभाभे पूर्वदिने षष्ठ्यादिकल्पे तु प्रातःपूजनं षष्ठ्यामारभ्येत्युल्लेख्यम् । सप्तम्यादिकल्पेऽपि तथा । अष्टम्यां पूजाङ्गीपवासः पुत्रवता कार्यः किन्तु हविष्यान्नं भोक्तव्यम् । यदि प्रतिमासमष्टम्युपवासः क्रियते तदा पुत्रवता कार्यः तस्य धनार्थिना प्रतिमासकर्त्तव्यत्वेनारम्भोऽपि कर्त्तुं शक्यते पारणन्तु मत्स्यमांसनैवेद्यैर्दुर्गां संपूज्य मत्स्यादिना ।

कृत्यतत्त्वम् ।

४४५

कर्त्तव्यं यदि तद्दिने नियमान्नांसभोजनं निषिद्धं तदा मांसादिकं विनापि । सन्धिपूजायान्तु अष्टमीशेषदण्डनवमी-प्रथमदण्डात्मकः कालः तत्र महाष्टमीवत् पूजादि वलिदानं नवमीदण्डे न तु अष्टमीदण्डे तत्र यदि षष्टिदण्डात्मिकाष्टमी तदा तद्दिने अष्टमीपूजां विधाय तत्परदिने अष्टमीनवम्योः सन्धिपूजा । यदि तु परदिने मुहूर्त्तान्यूननवम्यलाभस्तदा महानवमीपूजापि तद्दिने तादृग्लाभे तु परदिने यदा महा-ष्टमीदिन एव तिथिचयः तदा तद्दिन एव महाष्टमीपूजा सन्धिपूजामहानवमीपूजा कार्या । अर्द्धरात्रपूजा तु यद्दिने अर्द्धरात्रे महाष्टमीलाभस्तद्दिने फलभूमाधिना पूर्ववत् कार्यं यदि उभयदिने तथाविधा तदा पूर्वदिन एव विसर्जनन्तु श्रवणयुक्तायामयुक्तायां वा उदयगामिन्यां मुहूर्त्तान्यूनानायां दशम्यां कुर्यात् । उभयदिने तस्मात् पूर्वदिने यदि षष्टिदण्डात्मिका नवमी तत्परदिने मुहूर्त्तान्यनापि श्रवण-युक्तदशमी तदा षष्टिदण्डात्मिकायां नवम्यां पूजां विधाय तत्परदिनेऽनुदयगामिन्यां श्रवणरहितायामपि विसर्जनमिति । आश्विने दुर्गापूजा नित्या काम्या च सा ग्रन्थगौरव-भिया न लिखिता ।

अथ कोजागरकृत्यम् । प्रमाणन्तु तिथितत्त्वेऽनुसर्ष्यम् । यद्दिने प्रदोषनिशीथोभयव्यापिनी पौर्णमासी तद्दिने कोजागरकृत्यम् । उभयव्याख्यानुरोधात् । यदा तु पूर्वदिने निशीथव्याप्तिः परदिने प्रदोषव्याप्तिस्तदा पूर्वद्युस्तत्कृत्यं प्रधानपूजाकालव्याख्यानुरोधात् यदा तु पूर्वद्युर्निशीथव्याप्तिः परद्युर्न प्रदोषव्याप्तिस्तदा सुतरां पूर्वद्युस्तत्कृत्यम् । तत आश्विनपौर्णमास्यां कृताङ्गिकः प्रदोषसमये कुशतिलजला-न्यादाय ओम् तत्सत् ओम् अद्येत्यादि द्वारोर्द्ध्वं भित्त्यादिदेवताः

४४६

कृत्यतत्त्वम् ।

प्रीतिकामो द्वारोर्द्ध्वभित्त्यादिदेवतापूजनमहं करिष्ये इति सङ्कल्प्य शालग्रामे घटादिस्थजले वा एतत् पाद्यं द्वारोर्द्ध्व-भित्तिदेवताभ्यो नमः एवम् अर्घ्याचमनीयगन्धपुष्पधूपदीप-नैवेद्यपुनराचमनीयानि दद्यात् । गन्धादीनि वा गन्धपुष्प-वा तत्र पूजने पत्रमपि नैवेद्ये फलमपीति विशेषः एवं प्रण-वादिनमोऽन्तैस्तत्तन्नामभिर्हव्यवाहनादिपूजनं यथा हव्य-वाहनाय नैवेद्ये तु यवाक्षततण्डुलचूर्णघृतशालितण्डुलाः पूर्ण-न्दवे नैवेद्ये तु दुग्धपायसौ सभार्यरुद्राय स्कन्दाय नन्दीश्वराय मुनये गोमान् पुरुषः सुरभये क्वागवान् हुताशनाय मेघवान् वरुणाय हस्तिमान् विनायकाय अश्ववान् रेवन्ताय सर्वैरेव बलिकुम्भाय ओम् तत्सत् ओम् चद्येत्यादि विभूतिकामो लक्ष्मीं पूजयिष्ये इति सङ्कल्प्य 'पाशाक्षमालिकाभोजसृणि-भिर्याम्यसौम्ययोः । पद्मासनस्थां ध्यायेच्च श्रियं त्रैलोक्य-मातरम् । गौरवर्णां सुरुपाञ्च सर्वालङ्कारभूषिताम् । रौक्म-पद्मव्यग्रकरां वरदां दक्षिणेन तु' । पाशेत्यादिदक्षिणे पाशा-क्षमालिकाभ्यां वामे पद्माङ्कुशाभ्यां भूषितां वामकरे हेमपद्मं दक्षिणकरे वरं दधतीत्यर्थः इति आदित्यपुराणीयं ध्यात्वा एतत् पाद्यम् ओम् लक्ष्म्यै नमः एवमर्घ्याचमनीयगन्धादि एते मनारिकेलपृथुकाः एतत् पुनराचमनीयं ताम्बूलं वस्त्रं पुन-राचमनीयञ्च प्रत्येकं दद्यात् । ओम् 'नमस्ते सर्वदेवानां वरदामि हरिप्रिये । या गतिस्त्वत्प्रपन्नानां सा मे भूयात् त्वदर्चनात्' । इति पुष्पाञ्जलित्रयं दत्त्वा प्रणमेत् ओम् 'विश्वरूपस्य भार्या त्वं' पद्मे पद्मालये शुभे । सर्वतः पाहि मां देवि ! महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते' । तुलसीभिण्डीकाञ्चन-पुष्पैर्न पूजयेत् । वाद्यान्तरासत्त्वे घण्टां न वादयेत् । ततः क्षतुर्दन्तगजारूढो वज्रपाणिः पुरन्दरः । शचीपतिश्च ध्यातव्यो

कृत्यतत्त्वम् ।

४४९

नानाभरणभूषितः' इति आदित्यपुराणीयं ध्यात्वा एतत् पाद्यम्
 ओम् इन्द्रस्तु महसा दीप्तः सर्वदेवाधिपो महान् । वज्रहस्तो
 महाबाहुस्तस्मै नित्यं नमो नमः' ओम् इन्द्राय नमः ओम्
 'शक्रः सुरपतिश्चैव वज्रहस्तो महाबलः । शतयज्ञाधिपो
 देवस्तुभ्यमिन्द्राय वै नमः' इत्यनेनार्घ्यं दद्यात् एवं पूर्ववदर्घ्या-
 दिना पूजयित्वा । ओम् 'विचित्रैरावतस्थाय भास्वत्कुलिश-
 पाणये । पौलोम्यालिङ्गिताङ्गाय सहस्राक्षाय ते नमः' इत्य-
 नेन पुष्पाञ्जलित्रयं दत्त्वा प्रणमेत् । ततः कुबेरमावाह्य एतत्
 पाद्यम् ओम् कुबेराय नमः । एवमर्घ्यादिभिः संपूज्य 'धन-
 दाय नमस्तुभ्यं निधिपद्माधिपाय च । भवन्तु त्वत्प्रसादान्मे
 धनधान्यादिसम्पदः' । इत्यनेन पुष्पाञ्जलिना त्रिःसंपूज्य
 प्रणमेत् । ततो दक्षिणां दद्यात् प्रणमेत् । तद्दिने बाल-
 वृद्धातुरैर्विना दिवा न भोक्तव्यम् आमिषं न भोक्तव्यं नारि-
 केलचिपिटकादिना ब्राह्मणान् बन्धून् परितोष्य स्वयञ्च तद-
 श्रीयत् । ततश्च गन्धपुष्पाद्यलङ्कृतोऽक्षैः क्रीडां कुर्वन् पश्यन्
 वा जागरणं कुर्यात् ।

अथ कार्तिककृत्यम् । पञ्चपुराणे 'तुलामकरमेषु प्रातः-
 स्नानं विधीयते' । तत्र सङ्कल्पः अरुणोदयकाले मज्जनं कृत्वा
 आचम्य ओम् तत्सदय कार्तिके मासि अमुकपक्षेऽमुकतिथौ
 आरभ्य तुलास्थरविं यावत् प्रत्यहममुकगोत्रः श्री अमुकदेव-
 शर्मा विष्णुप्रीतिकामः प्रातःस्नानमहं करिष्ये इति सङ्कल्प्य
 यथोक्तविधिना इतिकर्तव्यतां विधाय ओम् 'कार्तिकेऽहं
 करिष्यामि प्रातःस्नानं जनार्दन ! । प्रीत्यर्थं तव देवेश दामो-
 दर मया सह' इति स्नायात् । मया लक्ष्म्या प्रतिदिनसङ्कल्पे
 तु आरभ्य तुलास्थरविं यावत् प्रत्यहमिति न वक्तव्यम् । किन्तु
 मासौत्यनन्तरं तुलास्थरवावित्यधिकं वक्तव्यम् । चान्द्रस्नान-

४४८

कृत्यतत्त्वम् ।

वाक्यन्तु वैशाखकृत्येऽनुसन्धेयम् । तथा वायुपुराणे 'यदीच्छे-
 द्विपुलान् भोगान् चन्द्रसूर्यग्रहोपमान् । कार्तिकं सकलं
 व्याप्य प्रातःस्नायी भवेन्नरः' । गारुडे 'गवामयुतदानेन यत्
 फलं लभते खग । तुलसीपत्रकैकेन तत् फलं कार्तिके
 स्मृतम्' । ओम् अद्येत्यादि तुलसीपत्रकैकसमसंख्यायुतधेनु-
 दानजन्यफलसमफलप्राप्तिकामः एतानि तुलसीपत्राणि
 श्रीविष्णवेऽहं ददे इत्यभिलष्य एतानि तुलसीपत्राणि
 श्रीविष्णवे नमः इत्यनेन दद्यात् । ब्रह्माण्डे 'विष्णुवेश्मनि
 यो दद्यात् कार्तिके मासि दीपकम् । अग्निष्टोमसहस्रस्य
 फलमाप्नोति मानवः' । ओम् 'दामोदराय नमसि तुलायां
 लोलया सह । प्रदीपन्ते प्रयच्छामि नमोऽनन्ताय वेधसे' ।
 लोलया लक्ष्म्या 'इति मन्त्रेण यो दद्यात् प्रदीपं सर्पिरा-
 दिना । आकाशे मण्डपे वापि स चाक्षयफलं लभेत्' ।
 स्नानवत् ओम् अद्येत्यादि अमुकतिथौ आरभ्य तुलास्थरविं
 यावत् प्रत्यहम् अमुकगोत्रोऽमुकदेवशर्मा अक्षयदीपदान-
 फलप्राप्तिकामः श्रीविष्णुप्रीतिकामो वा आकाशे मण्डपे
 वापि श्रीविष्णवे दीपदानमहं करिष्ये इति सङ्कल्प्य दामो-
 दरायेत्यादिना दद्यात् द्वितीयादिदिने ओम् दामोदरायेत्यने-
 नेति विशेषः । विष्णुगृहे ओम् अद्येत्यादि अमुकतिथौ
 आरभ्य तुलास्थरविं यावत् प्रत्यहम् अमुकगोत्रोऽमुकदेवशर्मा
 अग्निष्टोमसहस्रजन्यफलसमफलप्राप्तिकामः श्रीविष्णुप्रीति-
 कामो वा श्रीविष्णुवेश्मनि श्रीविष्णवे दीपदानमहं करिष्ये
 इति सङ्कल्प्य ओम् दामोदरायेत्यादिना दद्यात् । द्विती-
 यादिदिने ओम् दामोदरायेत्यनेनेति विशेषः । हविष्यान्नादौ
 तु ब्रह्मपुराणे 'व्रतोपवासनियमैः कार्तिको यस्य गच्छति ।
 देवो वैमानिको भूत्वा स याति परमं पदम्' । तत्र अद्ये-

कृत्यतत्त्वम् ।

४४८

त्यादि अमुकतिथौ आरभ्य तुलास्वरविं यावत् प्रत्यहम् अमुकगोत्रोऽमुकदेवशर्मा वैमानिकदेवत्वभवनपूर्वकपरमपद-
 प्राप्तिकामः श्रीविष्णुप्रौतिकामो वा हविष्येतरभोजननिवृत्ति-
 महं करिष्ये इत्यादिवाक्ये विशेषः । एवं फलाहारादावपि
 हविष्यद्रव्याणि च 'हैमन्तिकं सितास्त्रि' धान्यमुद्गास्तिला-
 यवाः । कलायकङ्गुनीवारावास्तूकं हिलमोचिका । षष्टिका
 कालशाकञ्च मूलकं केसुकेतरत् । लवणे सैन्धवसामुद्रे गव्ये
 च दधिसर्पिषी । पयोऽनुदृतसारञ्च पनसाम्बहरीतकी ।
 तिलिङ्गीजौरकञ्चैव नागरङ्गञ्च पिप्पली । कदली लवली
 धात्री फलान्यगुडमैत्रवम् । अतैलस्नानं मुनयो हविष्यान्
 विदुर्बुधाः । हैमन्तिकमित्यभिधायागस्त्यसंहितायाम् । नारि-
 केलफलञ्चैव कदलीं लवलीन्तथा । आम्ब्रमामलकञ्चैव पन-
 सञ्च हरीतकीम् । व्रतान्तरप्रशस्तञ्च हविष्यं मन्वते बुधाः ।
 अत्र च आरभ्यव्रतोपवासादौ फलजलादिभक्षणमप्याहृतुः उद-
 योगपर्वशौधायनौ । अष्टैतान्यव्रतघ्नानि आपो मूलं फलं
 पयः । हविर्ब्राह्मणकाम्या च गुरोर्वचनमौषधम् । फला-
 हारादावपि तुलसीरहिते दोषमाह 'तुलसीं विना यत्
 क्रियते न पूजा स्नानं न तद् यत्तुलसीं विना कृतम् । भुक्तं न
 तद् यत्तुलसीविवर्जितं पीतं न तद् यत्तुलसीविवर्जितम् ।
 नारदीये 'न मत्स्यं भक्षयेन्मांसं न कौर्मं नान्यदेव हि ।
 चण्डालो जायते राजन् कार्तिके मांसभक्षणात्' । महा-
 भारते । 'कौमुदन्तु विशेषेण शुक्लपक्षे नराधिप ! । वर्जयेत्
 सर्वमांसानि धर्मो ह्यत्र विधीयते' । कौमुदं कार्तिकम् ।
 कार्तिकमधिकृत्य ब्रह्मपुराणम् । 'एकादश्यादिषु तथा तासु
 पञ्चसु रात्रिषु । दिने दिने च स्नातव्यं शीतलासु नदीसु
 च । वर्जितव्या तथा हिंसा मांसभोजनमेव च' । ततश्च

४५०

कृत्यतत्त्वम् ।

मांसभोजननिषेधे कार्तिकमासतच्छुक्लपक्षतदेकादश्यादिपञ्च-
दिनानि शक्ताशक्तभेदात् पापतारतम्यत्वात् निषिद्धानि
'कार्तिके शौकरं मांसं यस्तु भुञ्जीत दुर्मतिः । षष्टिवर्षसह-
स्राणि रौरवे परिपच्यते' । ओलपटोलकदम्बवृन्ताककांस्य-
सन्धिजानि वर्जयेत् । 'पटोलानि कदम्बानि वृन्ताकसहि-
तानि च । भुञ्जानः कार्तिके मासि यावदाहृतनारकौ' ।

अथ भूतचतुर्दशी । 'कार्तिके कृष्णपक्षस्य चतुर्दश्यां
दिनोदये । अवश्यमेव कर्त्तव्यं स्नानं नरकभौरुभिः । अपा-
मार्गस्य पत्राणि भ्रामयेच्छिरसोपरि । ततश्च तर्पणं कार्यं
धर्मराजस्य नामभिः । नरकाय प्रदातव्यो दीपः संपूज्य
देवताः' । नरकाय नरकनिवृत्तये । अपामार्गभ्रामणे मन्त्रः ।
ओम् 'शीतलोष्णसमायुक्त सकण्टकदलान्वित । हर पाप-
मपामार्गं भ्राम्यमाण पुनः पुनः । ततः प्रदोषसमये दीपान्
दद्यात् प्रयत्नतः । ब्रह्मविष्णुशिवादीनां भवनेषु मठेषु च ।
कूटागारेषु चैत्येषु गुहासु च नदीषु च' । दीपमन्त्रः । ओम्
'नमः पितृभ्यः प्रेतभ्यो नमो धर्माय विष्णवे । नमो धर्माय
रुद्राय कान्तारपतये नमः' इति । भविष्ये 'कार्तिके भौम-
वारे च चित्राकृष्णचतुर्दशी । तस्यामाराधितः स्थाणुर्नये-
च्छिवपुरं ध्रुवम् । यां काञ्चित् सरितं प्राप्य कृष्णपक्षे चतु-
र्दशीम् । यमुनायां विशेषेण नियतस्तर्पयेद् यमान्' । धर्म-
राजस्य नामानि भविष्ये यथा 'यमाय धर्मराजाय मृतवे
चान्तकाय च । वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च ।
श्रीडुम्बराय दध्नाय नीलाय परमेष्ठिने । वृकोदराय चित्राय
चित्रगुप्ताय वै नमः । एकैकस्य तिलैर्मिश्रां स्त्रीं स्त्रीं दद्यात्
जलाञ्जलीन् । संवत्सरकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति' ।
आचाराच्चतुर्दशशकभोजनं 'कर्त्तव्यं तत्र निर्णयामृतधृत-

कृत्यतत्त्वम् ।

४५१

वचनम् । 'शौलं केमुकवास्तूकं सर्षपं कालञ्च निम्बं जयां शालिञ्चिं हिलमोचिकाञ्च पटुकं शौल्फं गुडुचीं तथा भण्टाकीं सुनिषण्णकं शिवदिने खादन्ति ये मानवाः प्रेतत्वं न च यान्ति कार्तिकदिने कृष्णे च भूते तिथौ' । जयां जयन्तीं पटुकं पटोलम् ।

अथ दीपान्वितामावस्या । एतत् कृत्यप्रमाणं तिथितत्त्वेऽनुसन्धेयम् । तत्र बालातुरवृद्धव्यतिरेकेण दिवा न भोक्तव्यं तत्र पार्वणश्राद्धं कृत्वा प्रदोषे प्राचीनावीती दक्षिणामुखः ज्वलदुल्कां गृहीत्वा ओम् शस्त्राशस्त्रहतानाञ्च भूतानां भूतदर्शयोः । उज्ज्वलज्योतिषा देहं दहयं व्योमवह्निना' इत्यनेन गृह्णीयात् ओम् 'अग्निदग्धाश्च ये जीवा येऽप्यदग्धाः कुले मम । उज्ज्वलज्योतिषा दग्धास्ते यान्तु परमां गतिम्' । इत्यनेन भूमौ स्थापयेत् । ओम् 'यमलोकं परित्यज्य आगता ये महालये । उज्ज्वलज्योतिषा वत्सं प्रपश्यन्तो व्रजन्तु ते' इत्यनेन पितॄन् विसर्जयेत् । यद्येवं पूर्वदिन एव प्रदोषव्यापिनी अमावास्या तदा पूर्वदिन एव श्राद्धमकृत्वापि उल्कादानं कर्तव्यम् । आचारात् पञ्चभूतोपाख्यानञ्च श्रोतव्यम् । उभयतः प्रदोषव्याप्तौ परदिन एव युग्मात् । उभयतः प्रदोषाप्राप्तावपि उल्कादानं परदिने पार्वणानुरोधात् । अत्र वै पूर्वदिने लक्ष्मी रात्रौ पूज्या । 'अमावस्या यदा रात्रौ दिवाभागे चतुर्दशी । पूजनीया तदा लक्ष्मीर्विज्ञेया सुखरात्रिका' इति वचनात् । लक्ष्मौपूजाविषयेऽपि एवं व्यवस्था । ततो गृहमध्ये उत्तराभिमुखो लक्ष्मीं पूजयेत् । ततः स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ओम् सूर्यः सोम इति पठित्वा ओम् तद्विष्णोरिति च तिलपुष्पजलान्यादाय ओम् तत्सदित्युच्चार्य ओम् अद्येत्यादि अमुकगोत्रोऽमुकदेवशर्मा परमविभूतिलाभकामो लक्ष्मौपूजन-

४५२

कृत्यतत्त्वम् ।

महं करिष्ये इति सङ्कल्प्य शालग्रामे घटादिस्थजले वा भूतशुद्धादिकं कृत्वा लक्ष्मीं पूजयेत् । तद् यथा ओम् पाशाक्ष इत्यादिना ध्यात्वा ओम् भूर्भुवः स्वर्महालक्ष्मि इहागच्छेत्यावाह्य एतत् पाद्यं लक्ष्म्ये नमः एवमर्घ्याचमनीयगन्धपुष्पधूपदीपनैवेद्यपुनराचमनीयताम्बूलादि प्रत्येकं दद्यात् । ओम् 'नमस्ते सर्वदेवानां वरदासि हरिप्रिये । या गतिस्त्वत्प्रपन्नानां सा मे भूयात्त्वदर्चनात्' इत्यनेन पुष्पाञ्जलित्रयं दत्त्वा प्रणमेत् ओम् 'विश्वरूपस्य भार्यासि पद्मे पद्मालये शुभे । सर्वतः पाहि मां देवि ! महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते' । ततः सुखरात्र्याः प्रदोषे तु कुवेरं पूजयन्ति ये' इति रुद्रवचनात् । कुवेरमपि पाद्यादिभिः पूजयेत् । ओम् 'धनदाय नमस्तुभ्यं निधिपद्माधिपाय च । भवन्तु तत्प्रसादान्मे धनधान्यादि सम्पदः' इति पठित्वा ओम् कुवेराय नम इति त्रिःपूजयेत् । ततो गृहादिषु दीपं दद्यात् । तत्र मन्त्रः ओम् 'अग्निज्योतीरविज्योतिश्चन्द्रज्योतिस्तथैव च । उत्तमः सर्वज्योतीनां दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम्' । ततो ब्राह्मणान् बन्धून् च भोजयित्वा स्वयं भुञ्जीत तत्र प्रत्यूषे भविष्यात्कर्म कर्त्तव्यं गोरोचनातिलकधारणं प्रदीपवन्दनं कृत्वा लक्ष्मीं त्रिः पूजयेत् तत्र मन्त्रः ओम् 'विश्वरूपस्य भार्यासि पद्मे पद्मालये शुभे । महालक्ष्मि नमस्तुभ्यं सुखरात्रिं कुरुष्व मे । वर्षाकाले महाघोरे यन्मया दुष्कृतं कृतम् । सुखरात्रिप्रभातेऽद्य तन्मे लक्ष्म्योर्व्यपोहतु । या रात्रिः सर्वभूतानां या च देवेष्ववस्थिता । संवत्सरप्रिया या च सा ममास्तु सुमङ्गला । माता त्वं सर्वलोकानां देवानां सृष्टिसम्भवा । आख्याता भूतले देवि ! सुखरात्रि नमोस्तु ते' ओम् लक्ष्म्ये नमः इति त्रिः पूजयेत् ।

अथ द्यूतप्रतिपत् । तत्र प्रभातेऽक्षक्रीडादिकं कर्त्तव्यं

कृत्यतत्त्वम् ।

४५३

तत्र जये वर्षं शुभं पराजये वर्षम् अशुभम् । ततः सङ्कल्प्य शालग्रामे जले वा एतत् पाद्यं वलये नमः इत्यादि संपूज्य ओम् वलिराज नमस्तुभ्यं विरोचनसुत प्रभो । भविष्येन्द्रसुरारते पूज्यं प्रतिगृह्यताम् । अनेन पुष्पाञ्जलित्रयं दद्यात् । भविष्योत्तरे 'यो यो यादृशभावेन तिष्ठत्यस्यां युधिष्ठिर । हर्षदेन्यादिना तेन तस्य वर्षं प्रयाति हि' । तथा 'महापुण्या तिथिरियं वलिराज्यप्रवर्द्धिनी । स्नानं दानं शतगुणं कार्त्तिकेऽस्यां तिथौ भवेत्' ।

अथ भ्रातृद्वितीया । तत्राष्टधा विभक्तदिनपञ्चमयामार्द्ध-प्राप्तायां द्वितीयायाम् उभयदिने तथा चेत् परदिने कृत्यं युग्मात् । ततः ओम् तत्सदित्युच्चार्य ओम् अद्येत्यादि अमुक-गोत्रोऽमुकदेवशर्मा स्वरक्षणकामो यमादिपूजनमहं करिष्ये इति सङ्कल्प्य शालग्रामे घटादिस्थजले वा पूजयेत् । एतत् पाद्यं यमाय नमः । एवं क्रमेण संपूज्य 'एह्येहि मार्त्तण्डज पाशहस्त यमान्तकालोकधरामरेश । भ्रातृद्वितीया कृत-देवपूजां गृहाण चार्घ्यं भगवन्नमस्ते' इदमर्घ्यं यमाय नमः तत आचमनीयादिकं दत्त्वा प्रणमेत् । ओम् 'धर्मराज नमस्तुभ्य नमस्ते यमुनायज । पाहि मां किङ्करैः साहं सूर्य-पुत्र नमोस्तु ते' । ततश्चित्रगुप्ताय नम इत्यनेन पूजयेत् । तत ओम् यमदूतेभ्यो नमः इत्यनेन पाद्यादिभिः पूजयेत् यमुनाञ्च पाद्यादिभिः संपूज्य प्रणमेत् । ओम् 'यमस्वसर्नमस्तोऽस्तु यमुने लोकपूजिते । वरदा भव मे नित्यं सूर्यपुत्रि नमोऽस्तु ते' । ततो भ्रातृभोजनकालेऽन्नादिकं दत्त्वा 'भ्रातृस्तवानुजाताहं भुङ्क्ते भक्तमिदं शुभम् । प्रीतये यमराजस्य यमुनाया विशेषतः' । ज्येष्ठा चेत् तवाग्रजाताहमिति वदेत् ततः पुष्टिकामो भुञ्जीत 'यन्नात्तु भगिनीहस्तात् भोक्तव्यं पुष्टिवर्द्धनम् ।

४५४

कृत्यतत्त्वम् ।

अथ विष्णूत्थानम् । तत्र दिने रेवत्यन्तयुक्तायां द्वादश्यां रात्रौ रेवत्यन्तपादयोगे तु दिवा तृतीयभागे रेवत्यन्तयुक्तद्वादश्याम् उत्थानम् । विहित तत्तत्पादविशेषाभावे । नक्षत्रयोगान्निशादौ द्वादश्याम् । द्वादश्यामृक्षाभावे एकादशी प्रभृतिपौर्णमास्यन्तान्यतमतिथौ निशाद्यनादरेण पादविशेषयोगे । तदभावे केवलायां द्वादश्यां सन्ध्यायामेव शयनावर्तनादिकम् । ततो विष्णुं संपूज्य श्रोम् 'महेन्द्ररुद्रेरभिनूयमानो भवानृषिर्वन्दितवन्दनीयः । प्राप्ता तवेयं किल कौमुदाख्या जागृष्व जागृष्व च लोकनाथ । मेघा गता निर्मलपूर्णचन्द्रः शारद्यपुष्पाणि च लोकनाथ । अहं ददानौति च पुण्यहेतोर्जागृष्व जागृष्व च लोकनाथ' । ततश्च 'उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द त्यज निद्रां जगत्पते ! । त्वया चोत्थीयमानेन उत्थितं भुवनत्रयम्' इति पठेत् । तत्र एकादश्यादितिथिपञ्चके वक्रपञ्चकम् । 'वक्रोऽपि तत्र नाश्रीयान्नत्स्यञ्चैव कदाचन' इति वचनात् । कार्तिक्यां गोदानादौ फलाधिक्यं 'कार्तिक्यां गोप्रदो भवेत्' ।

अथ मार्गशीर्षकृत्यम् आश्विनशुक्लपक्षे नवान्नश्राद्धाकरणे विंशतिदण्डाधिकत्रयोविंशतिदिनाभ्यन्तरे शुक्लपक्षे तत् श्राद्धं कर्तव्यम् । तत्र मार्गशीर्षस्य विंशतिदण्डाधिकप्रथमदिने-तरेषु कुजशनिशुक्रवारितरेषु नन्दारिक्तात्रयोदशीतरतिथिषु जन्माष्टमचन्द्रजन्मतिथि-जन्मनक्षत्रत्रयपञ्चमतारासप्तमतारात्रयेतरेषु पूर्वात्रयमघाभरणी अश्लेषार्द्रितरेषु श्राद्धं तच्छेषभोजनञ्च कुर्यात् श्राद्धानधिकारिणा तु प्रागुक्तकाले देवादिभ्यो नवान्नं दत्त्वा भोक्तव्यं किन्तु अश्लेषाकृतिकाज्येष्ठामूलापूर्वभाद्रपदकेषु अपि नवान्नभोजनं न कर्तव्यम् । चन्द्रताराद्यशुद्धौ प्रतीकारमाह देवलः । 'कर्म कुर्यात् फलावाप्त्यै चन्द्रादिशो-

कृत्यतत्त्वम् ।

४५५

भने बुधः । सुखकाले त्विदं सर्वं नात्तः कालमपेक्षते । चन्द्रे च शङ्खं लवणञ्च तारे तिथावभद्रे सिततण्डुलांश्च । धान्यञ्च दद्यात् करणर्क्षवारे योगे तिलान् हेममणिञ्च लग्ने । राज-
मात्तण्डे । ताराभेदाक्षवणपरिमाणमाह 'एकत्रिपञ्च सप्त द्विजाय दद्यात् पलानि लवणस्य च क्रमशो जन्मनि विपदि प्रत्यरिमर-
णाख्यतारासु । पलन्तु लौकिकैर्मनैः साष्टरत्तिहिमाषकम् । तोलकत्रितयं ज्ञेयं ज्योतिर्ज्ञैः स्मृतिसम्मतम्' । ततो 'एवं दध्याज्यसंयुक्तं नवं विप्राभिमन्त्रितं मन्त्रानादेशे गायत्रीति गायत्र्यभिमन्त्रितं नवमन्त्रं ब्राह्मणानुज्ञां गृहीत्वा प्राश्नीयात् । नूतनधान्यासम्भवे पुरातनेनापि आङ्गं कर्त्तव्यम् । हस्त्रिके शुक्लपक्षे तदकरणे हरिशयनात् पूर्वं मीनधनुस्वरवीतरत्न माघादौ कर्त्तव्यम् । हस्त्रिकस्वरवी शुक्लचतुर्दश्यां सौभाग्य-
कामः पाषाणाकारपिष्टकैर्देवीं पूजयेत् तदपि भक्षयेन्नक्तम् । अग्रहायण्यां पौर्णमास्यां पार्वणविधिना आहुमावश्यकम् । भविष्यपुराणे 'रोहिणीप्रतिपद् युक्ता मार्गं मासि सितेतरा । गङ्गायां यदि लभ्येत सूर्यग्रहणतैः समा' ।

अथ पौषकृत्यम् । अग्रहायण्याः पौर्णमास्या ऊर्द्ध्वं कृष्णा-
ष्टम्यां पूषोपकरणेनान्वेन आङ्गं कर्त्तव्यं पार्वणविधिना ।

अथ माघकृत्यम् । पाद्मे 'स्वर्गलोके चिरं वासो येषां मनसि वर्त्तते । यत्र कापि जले तैस्तु स्नातव्यं मृगभास्करे' । मृगो मृगास्यत्वेन मकरः मकरस्थे भास्करे तत्र सङ्कल्पः । अरुणोदयकाले जले मज्जनं कृत्वा आचम्य उत्तराभिमुखः ओम् तत्सदित्युच्चार्य कुशकुसुमतिलजलान्यादाय ओमद्य माघे मासि अमुक पक्षे अमुकतिथावारभ्य मकरस्वरविं यावत् प्रत्यहम् अमुकगोत्रोऽमुकदेवशर्मा स्वर्गलोके चिरका-
लवासकामो विष्णुप्रीतिकामो वा प्रातःस्नानमङ्गं करिष्ये इति

४५६

कृत्यतत्त्वम् ।

सङ्कल्प्य गङ्गाव्यतिरिक्तजलमात्रेऽपि स्नानं कर्त्तव्यं प्रतिदिन-
 सङ्कल्पे तु आरभ्य मकरस्थे रविं यावत् प्रत्यहमिति न वक्तव्यं
 किन्तु मास्यनन्तरं मकरस्थे रवावित्यधिकं वक्तव्यम् । चान्द्र-
 स्नानवाक्यन्तु वैशाखकृत्येऽनुसन्धेयम् । तत्र सङ्कल्पं कृत्वा
 यथोक्तविधिना स्नानेतिकर्त्तव्यतां विधाय ओम् 'दुःखदारिद्र्य-
 नाशाय श्रीविष्णोस्तोषणाय च । प्रातःस्नानं करोम्यद्य माघे
 पापप्रणाशनम् । मकरस्थे रवी माघे गोविन्दायुतमाधव ।
 स्नानेनानेन मे देव यथोक्तफलदो भव' इत्युच्चार्य स्नायात् ।
 ततो 'वासुदेवं हरिं कृष्णं श्रीधरञ्च स्मरेत्ततः' । ओम् 'दिवा-
 कर जगन्नाथ प्रभाकर नमोऽस्तु ते । परिपूर्णं कुरुष्वेदं माघ-
 स्नानं महाव्रतम्' । चान्द्रस्नाने मकरार्कासृष्टिकाले मकरस्थे
 रवावित्यस्य न पाठः । असमवेतार्थत्वात् । तीर्थे तु 'माघ-
 मासमिमं पुण्यं स्नाम्यहं देव माधव । तीर्थस्यास्य जले नित्यं
 प्रसीद भगवान् हरे' । इति पठित्वा दुःखदारिद्र्यनाशये-
 त्यादिकं पठितव्यम् । गङ्गायान्तु पञ्चपुराणे 'दिने दिने
 सहस्रन्तु सुवर्णानां विशांपते । तेन दत्तं हि गङ्गायां यो
 माघे स्नाति माधव' । मानव इत्यपि क्वचित् पाठः । एकदा
 सङ्कल्पे तु प्रतिदिनसहस्रसुवर्णदानजन्यफलसमफलप्राप्तिकामः
 श्रीविष्णुप्रौतिकामो वा माघमासं यावत् प्रत्यहं गङ्गायां
 प्रातःस्नानमहं करिष्ये इति वाक्ये विशेषः प्रतिदिनसङ्कल्पे
 तु सहस्रसुवर्णदानजन्यफलसमफलप्राप्तिकामो विष्णुप्रौति-
 कामो वा गङ्गायां प्रातःस्नानमहं करिष्ये इति यथोक्तविधिना
 स्नानेतिकर्त्तव्यतां विधाय ओम् 'माघमासमिमं पुण्यं
 स्नाम्यहं देव माधव । तीर्थस्यास्य जले नित्यं प्रसीद भगवन्
 हरे । दुःखदारिद्र्यनाशाय श्रीविष्णोस्तोषणाय च । प्रातः-
 स्नानं करोम्यद्य माघे पापप्रणाशनम् । मकरस्थे रवी माघे

कृत्यतत्त्वम् ।

४५७

गोविन्दाद्युत माधव । स्नानेनानेन मे देव यथोक्तफलदो भव ।
 दिवाकर जगन्नाथ प्रभाकर नमोऽस्तु ते । परिपूर्णं कुरुष्वेदं
 माघस्नानं महाव्रतम् । स्कन्दपुराणम् । 'संप्राप्ते मकरा-
 दित्ये पुण्ये पुण्यप्रदे शुभे । कर्त्तव्यो नियमः कश्चित् व्रजरूपी
 नरोत्तमेः' । तत्तत् पुण्यकामः श्रीविष्णुप्रीतिकामो वा इति
 वाक्ये विशेषः । पौष्ठाः पौर्णमास्या ऊर्द्धं माघपौर्णमासी-
 पर्यन्तं मदिरातुल्यत्वान्मूलकभक्षणं न कर्त्तव्यम् । पौष्ठा ऊर्द्धं
 माघकृष्णाष्टम्यां क्लृप्तमासानेन आद्यं कर्त्तव्यं सांसाभावे पाय-
 सोपकरणेन तदभावे केवलास्त्रेण वा आद्यं कर्त्तव्यम् ।

अथ रटन्तीचतुर्दशी । 'माघे मास्यमिते पक्षे रटन्त्याख्या
 चतुर्दशी । तस्यामुदयवेलायां स्नाता नावेक्षते यमम्' । उदय-
 वेलायाम् अरुणोदयवेलायाम् 'अनर्काभ्युदिते काले माघे
 कृष्णचतुर्दशी । सतारथ्योमकाले तु तस्यां स्नानं महाफलम् ।
 स्नात्वा सन्तर्प्य तु यमान् सर्वपापैः प्रमुच्यते' । अत्र तिथि-
 कृत्यत्वाद्गौणचान्द्रादरः । तत्र उभयदिनेऽरुणोदयसतारकाले
 मुहूर्त्तान्यूनचतुर्दशीलाभे पूर्वदिने स्नानं यमतर्पणञ्च एकदिन-
 मात्रे तस्मात् तद्दिने । माघस्नानकालाभ्यन्तरे तादृशचतुर्दशी-
 लाभे माघप्रातःस्नायिना तन्त्रेण द्वयं कार्यम् । तत्र ओम्
 तत्सत् अथ माघे मासि कृष्णे पक्षे रटन्त्यां चतुर्दश्यां तिथौ
 अरुणोदयवेलायाम् अमुकगोत्रः श्री अमुकदेवशर्मा यमादर्श-
 नकामो गङ्गायां स्नानमहं करिष्ये इति सङ्कल्प्य यथाविधि
 स्नानं प्रागुक्तं चतुर्दशयमतर्पणञ्च कुर्यात् ।

अथ श्रीपञ्चमी । तत्र उभयदिने पूर्वाह्णे श्रीपञ्चमीलाभे
 पूर्वदिने लक्ष्मीसरस्वत्योः पूजनं युग्मात् एकदिनप्राप्ते तद्दिने
 एवं षड्वर्षं शुक्लपञ्चमीव्रतेऽपि ततश्च ओम् तत्सदित्युच्चार्य
 ओम् अद्येत्यादि लक्ष्मीप्रीतिकामो लक्ष्मीपूजनमहं करिष्ये

४५८

कृत्यतत्त्वम् ।

इति सङ्कल्प्य शालग्रामे जले वा पूजयेत् । ओम् 'पाशाक्ष-
मालिकान्भोजसृणिभिर्याम्यसौम्ययोः पद्मासनस्थां ध्यायेच्च
श्रियं त्रैलोक्यमातरम् । गौरवर्णां सुरुपाञ्च सर्वालङ्कार-
भूषिताम् । रौक्मपद्मव्यग्रकरां वरदां दक्षिणेन तु' । इत्यनेन
ध्यात्वा एतत् पाद्यम् ओम् लक्ष्म्यै नमः इत्यादिना नैवेद्या-
न्तेन पूजयेत् । ओम् 'नमस्ते सर्वदेवानां वरदासि हरि-
प्रिये । या गतिस्त्वत्प्रपन्नानां सा मे भूयात्त्वदर्चनात्' इत्य-
नेन पुष्पाञ्जलित्रयेण प्रणमेत् । ओम् तत्सदित्युच्चार्य ओम्
अद्येत्यादि सरस्वतीप्रीतिकामः सरस्वतीपूजनमहं करिष्ये ।
इति सङ्कल्प्य शालग्रामे घटादिस्थजले वा पूजयेत् ओम्
'तरुणशकलमिन्दोर्विभ्रती शुभ्रकान्तिः कुचभरनमिताङ्गी
सन्निप्रस्था सिताब्जे निजकरकमलोद्यत्तेखनीपुस्तक श्रीः सकल-
विभवसिद्धौ पातु वाग्देवता नः' । इति ध्यात्वावाह्य एतत्
पाद्यम् ओम् सरस्वत्यै नमः इत्यादिना नैवेद्यान्तेन पूजयेत् ।
ततः ओम् 'भद्रकाल्यै नमो नित्यं सरस्वत्यै नमो नमः । वेद-
वेदाङ्गवेदान्तविद्यास्थानेभ्य एव च स्वाहा' इति ब्रह्मपुराणीयेन
पुष्पाञ्जलिना त्रिः पूजयेत् । मत्स्यसूक्ते सरस्वतीं संपूज्य ओम्
'यथा न देवीं भगवान् ब्रह्मा लोकपितामहः । त्वां परित्यज्य
सन्तिष्ठेत्तथा भव वरप्रदा । वेदाः शास्त्राणि सर्वाणि नृत्य-
गीतादिकञ्च यत् । न विहीनं त्वया देवि ! तथा मे सन्तु
सिद्धयः । लक्ष्मीर्मेधाधरापुष्टिर्गौरी तुष्टिः प्रभा धृतिः ।
एताभिः पाद्भिः तनुभिरष्टाभिर्मां सरस्वति' इति मत्स्यपुरा-
णीयैः प्रार्थ्य प्रणमेत् । 'बन्धुजीवञ्च द्रोणञ्च सरस्वत्यै न
दापयेत्' । आचारात् पुस्तकञ्च पूजयेत् ओम् मस्याधाराय
नम इति मस्याधारं पूजयेत् । ओम् लेखन्यै नम इति
लेखनीं पूजयेत् ।

कृत्यतत्त्वम् ।

४५६

अथ माघसप्तमी । तत्र उभयदिने अरुणोदयकाले सप्तमी-
 लाभे पूर्वदिने एकदिने तस्मात् तद्दिने अरुणोदयकाले सामा-
 न्यजले ओम् अद्येत्यादि सूर्यग्रहणकालीन गङ्गास्नानजन्य-
 फलसमफलप्राप्तिकामो आयुरारोग्यसम्पत्कामो अरुणोदय-
 वेलायां स्नानमहं करिष्ये । इति सङ्कल्प्य यथाविधिस्नानेति-
 कर्त्तव्यतां विधाय सप्तवदरपत्राणि सप्तार्कपत्राणि च शिरसि
 निधाय ओम् 'यद् यज्जन्मकृतं पापं मया सप्तसु जन्मसु ।
 तन्मे रोगश्च शोकश्च माकरीं हन्तु सप्तमी' । इत्युच्चार्य
 स्नायात् ततो यथाकालं सप्तवदरीफलार्कपत्रशालितिलदूर्वा-
 क्षतचन्दनयुक्तजलमादाय ओम् अद्येत्यादि आयुरारोग्यसम्पत्-
 कामः श्रीसूर्यायार्घ्यमहं ददे इति सङ्कल्प्य ओम् 'नमो
 विवस्वते ब्रह्मन् भास्वते विष्णुतेजसे । जगत्सवित्रे शुचये
 सवित्रे कर्मदायिने' इति । अनन्तरम् ओम् 'जननी सर्व-
 भूतानां सप्तमी सप्तसप्तिके । सप्तव्याहृतिके देवि नमस्ते
 रविमण्डले' इति पठित्वा श्रीसूर्याय नमः इति पठित्वा अर्घ्यं
 दद्यात् । ओम् 'सप्तसप्तिवहप्रौत सप्तलोकप्रदीपन । सप्तम्यां
 हि नमस्तुभ्यं नमोऽनन्ताय वेधसे' । इत्यनेन प्रणमेत्
 शूद्रेणापि स्नाने तूष्णीं विधानात् स्नानमन्त्रं विना अर्घ्यप्रणाम-
 मन्त्राः पाद्याः पौराणिकत्वात् । गङ्गायान्तु बहुशतसूर्य-
 ग्रहणकालीनगङ्गास्नानजन्यफलसमफलप्राप्तिकामो गङ्गायां
 स्नानमहं करिष्ये इति वाक्ये विशेषः । अत्र अर्घ्यमङ्गम्
 एतत् स्नानादेव माघप्रातःस्नानं तन्त्रेणैव सिद्ध्यति ।

अथ विधानसप्तमीव्रतम् । प्रथमतो ब्राह्मणान् स्वस्ति-
 वाच्य ओम् सूर्यः सोम इत्यादि पठित्वा ताम्बादिपात्रे कुश-
 तिलजलान्यादाय ओम् तत्सदित्युच्चार्य ओम् अद्य माघे
 मासि शुक्ले पक्षे सप्तम्यान्तिथौ आरभ्य प्रतिमासीयशुक्ल-

४६०

कृत्यतत्त्वम् ।

सप्तम्यां पीषसप्तमीं यावत् आरोग्यसम्पत्कामोऽभीष्टतत्तत्फल-
कामो वा अर्काग्रादीतरभोजनविच्छित्तिविधानेन सप्तमीव्रत-
महं करिष्ये इति सङ्कल्प्य संयमपारणसहितं तत्तन्मासि तत्त-
न्नियमं कुर्यात् । तत्र माघे अर्काग्रमात्रं भुञ्जीत फाल्गुने अन्त-
रीक्षगृहीतं यवमात्रं प्रमाणं कपिलाविट् तदभावे अन्य-
गोमयमपीति । चैत्रे मरीचमेकम् । वेशाखे किञ्चिज्जलम् ।
ज्येष्ठेऽपक्वकदलीफलमध्यकणामात्रम् । आषाढे स्वच्छाय-
द्विगुणसमये यवप्रमाणं कुशमूलम् । श्रावणे नक्तं कालेऽल्पं
हविष्यौदनम् । भाद्रे शुद्धोपवासः । आश्विने पञ्चमार्द्वयामे
मयूराण्डप्रमाणं हविष्यान्नम् । कार्तिके अर्द्धप्रसृतिमात्रं
कपिलाक्षीरं तदभावे क्षीरान्तरम् । मार्गशीर्षे प्राङ्मुखो
वायुशनम् । पीषे स्वल्पं घृतं तदनन्तरञ्च 'ब्राह्मणान् भक्षयेत्
भक्त्या गुडक्षीरनिरामिषैः । विप्राय दक्षिणा देया विभवस्थानु-
रूपतः । अष्टम्यां पारणं कुर्यात् कटुस्तरहितेन च । सुह-
मासतिलादीनि घृतञ्चैव विवर्जयेत् । एकसिद्धं भक्ष्यमुक्त-
मर्कतन्वानुसारतः' । चान्द्रमासविशेषोल्लेखवत् अनन्तादि-
व्रतवत् मलमासेतरे तत्तु कर्तव्यम् ।

अथ आरोग्यसप्तमी । तत्र पूर्ववत् सप्तस्यान्तिथौ आरभ्य
ऐहिकारोग्यधनधान्यपारलौकिकशुभस्थानप्राप्तिकामः संवत्सरं
यावत् आरोग्यसप्तमीव्रतमहं करिष्ये इति सङ्कल्प्य प्रतिमास-
शुक्लसप्तम्यां शालग्रामे घटादिस्थजले वा पूजयेत् । रक्ता-
म्बुजामनमिति ध्यात्वा एतत् पाद्यम् ओम् सूर्याय नमः
इत्यादिभिः संपूज्य 'आदित्यभास्कररवे भानो सूर्य दिवाकर ।
प्रभाकर नमस्तेऽस्तु रोगादस्मान् प्रमोचय' इति त्रिःपूजयेत् ।
एवं संवत्सरे पूर्णे दक्षिणां दद्यात् । ब्राह्मणांश्च भोजयेत्
विशेषमासानुद्देशादमावास्याव्रतवत् मलमासेऽपि कर्तव्यम् ।

कृत्यतत्त्वम् ।

४६१

अथ भीष्माष्टमी । अष्टम्यां ब्राह्मणः पितृतर्पणं कृत्वा
 ओम् 'वैद्यान्नपद्यगोत्राय सांस्कृतिप्रवराय च । अपुत्राय ददा-
 म्येतत् सलिलं भीष्मवर्मणे' । इति पितृवत् भीष्मं तर्पयेत् ।
 ततः कृताञ्जलिः 'भीष्मः शान्तनवो वीरः सत्यवादी जितेन्द्रियः ।
 आभिरङ्गिरवाप्तोतु पुत्रपौत्रोचितां क्रियाम्' । इत्यनेन प्रार्थ-
 येत् । चक्षियादिना पितृतर्पणात् पूर्वम् एतत् कर्त्तव्यम् ।
 भीष्मामेकादश्यामुपोष्य द्वादश्यां तिलोद्वर्त्तनमावश्यकं कर्त्तव्यं
 स्नानतर्पणमहादानभोजनादि यथालाभं कुर्यात् । माघ-
 पौर्णमास्यां शुभाद्यात्वेन पार्वणविधिना श्राद्धं कर्त्तव्यम् अनन्त-
 फलकामनया स्नानदानञ्च कर्त्तव्यं तस्यां दानप्रमाणन्तु तिथि-
 तत्त्वेऽनुसन्धेयम् ।

अथ फाल्गुनकृत्यम् । तत्र माध्यनन्तरं फाल्गुनकृष्णा-
 ष्टम्यां शाकोपकरणान्नं केवलान्नेनापि पार्वणविधिना श्राद्धं
 कर्त्तव्यम् ।

अथ शिवरात्रिव्रतम् । यद्दिने प्रदोषनिशीथोभयव्यापिनौ
 चतुर्दशी तद्दिने व्रतम् । यदा तु पूर्वदिने निशीथव्यापिनौ
 तदा पूर्वद्युः । यदा तु न पूर्वद्युर्निशीथव्याप्तिः परदिने प्रदोष-
 व्यापिनौ तदा परदिने । पारणन्तु परदिने चतुर्दशीलाभे
 चतुर्दश्यां तदभावे अमावास्यायामपि । व्रतानुष्ठानविधि-
 स्तत्पद्मश्रुक्तो ज्ञेयः । 'शैवो वा वैष्णवो वापि यो वा स्यादन्य-
 पूजकः सर्वं पूजाफलं हन्ति शिवरात्रिविहिर्मुखः' । इति
 नृसिंहाचार्यधृतवचनेनास्य नित्यत्वम् ।

'फाल्गुने शुक्लपक्षे तु पुष्यक्षेत्रे द्वादशी यदि । गोविन्द-
 द्वादशीनाम महापातकनाशिनी' । तत्र गङ्गायां पद्मपुरा-
 णीयो मन्त्रः 'महापातकसंज्ञानि यानि पापानि सन्ति मे ।
 गोविन्दद्वादशीं प्राप्य तानि मे हर जाह्नवि' ।

४६२

कृत्यतत्त्वम् ।

अथ चैत्रकृत्यम् । तत्र संक्रान्त्यां विस्फोटकभयोपशमन-
 कामो घण्टाकर्णं स्मृतिवत् पूजयेत् । ओम् 'घण्टाकर्णं
 महावीर सर्वव्याधिविनाशन । विस्फोटकभये प्राप्ते रक्त
 रक्त महाबल' । इत्यनेन त्रिः पूजयेत् । एवं शीतलादेव्याः
 पूजादिकं यथाशक्ति विस्फोटकाद्युपशमनकामः । स्तवनमेव
 कर्त्तव्यं तत्र स्कन्दपुराणम् । 'नमामि शीतलां देवीं रासभस्यां
 दिगम्बरीम् । मार्जनीकलसोपेतां सूर्पालङ्घतमस्तकाम्' ।
 स्कन्द उवाच 'भगवन् देव देवेश शीतलायाः स्तवं शुभम् ।
 वक्तुमर्हस्यशेषेण विस्फोटकभयापहम्' । ईश्वर उवाच ।
 'वन्देऽहं शीतलां देवीं विस्फोटकभयापहाम् । या मासाद्य
 निवर्त्तत विस्फोटकभयं महत् । शीतले शीतले चेति यो
 ब्रूयाद्दाहपीडितः । विस्फोटकभवो दाहः क्षिप्रं तस्य विन-
 श्यति । शीतले ज्वरदग्धस्य पूतिगन्धगतस्य च । प्रनष्ट-
 चक्षुषः पुंसस्त्वामाहुर्जीवनौषधम् । शीतले तनुजान् रोगान्
 नृणां हरसि दुस्त्यजान् । विस्फोटकविशौर्णानां त्वमेका-
 मृतवर्षिणी । गलगण्डग्रहा रोगा ये चान्ये दारुणा नृणाम् ।
 त्वदनुध्यानमात्रेण शीतले यान्ति सन्तयम् । न मन्दो नौषधं
 किञ्चित् प्रापरोगस्य विद्यते । त्वमेका शीतले त्रात्री नान्यं
 पश्यामि देवताम् । मृणालतन्तुसदृशीं नाभिहृन्मध्यसंस्थि-
 ताम् । यस्त्वां सञ्चिन्तयेद्देवि भक्तिश्रद्धासमन्वितः । उप-
 सर्गविनाशाय परं स्वस्त्ययनं हि तत् । यस्त्वामुदकमध्ये तु
 ध्यात्वा संपूजयेन्नरः । विस्फोटकभयं घोरं गृहे तस्य न
 जायते । अष्टकं शीतलादेव्या न देयं यस्य कस्यचित् ।
 दातव्यं हि सदा तस्मै भक्तिश्रद्धान्वितो हि यः' इति श्रीस्कन्द-
 पुराणे शीतलास्तोत्रं समाप्तम् ।

अथ वारुण्यादि । स्कन्दपुराणे । 'वारुणेन समायुक्ता

कृत्यतत्त्वम् ।

४६३

मघौ कृष्णा त्रयोदशी । गङ्गायां यदि लभ्येत सूर्यग्रहशतैः
समा । शनिवारसमायुक्ता सा महावारुणी स्मृता । गङ्गायां
यदि लभ्येत कोटिसूर्यग्रहैः समा । शुभयोगसमायुक्ता शनी
शतभिषा यदि । महामहेतिविख्याता त्रिकोटिकुलमुद्धरेत् ।
संज्ञाविधेः सार्थकत्वाय निमित्तत्वेन मासपक्षतिथ्युल्लेखानन्तरं
महावारुणीमहामहावारुण्यौ उल्लेखनीये । ओम् तत्स-
दित्युच्चार्य ओम् अद्य चैत्रे मासि कृष्णे पक्षे वारुणनक्षत्रयुक्त-
त्रयोदश्यान्तिथौ अमुकगोत्रोऽमुकदेवशर्मा बहुशतसूर्यग्रहण-
कालीनगङ्गास्नानजन्यफलसमफलप्राप्तिकामो गङ्गायां स्नान-
महं करिष्ये । महावारुण्यान्तु ओम् अद्य चैत्रे मासि कृष्णे
पक्षे त्रयोदश्यान्तिथौ महावारुण्यां बहुकोटिसूर्यग्रहणकाली-
नगङ्गास्नानजन्यफलसमफलप्राप्तिकामो गङ्गायां स्नानमहं
करिष्ये । एवं महामहावारुण्याम् अमुकगोत्रोऽमुकदेवशर्मा
त्रिकोटिकुलोद्धरणकामो गङ्गायां स्नानमहं करिष्ये । इति
सङ्कल्प्य यथाविधि स्नायात् । कुलं पुरुषम् । अत्र सधवा-
स्त्यादौनां स्नानं रात्रावपि वारुण्यादिस्नानम् ।

अथ अशोकाष्टमौ । तत्र स्रोतो जले बुधवारे पुनर्वसु-
नक्षत्रयुक्तशुक्लाष्टम्यां वाजपेययज्ञजन्यफलसमफलप्राप्तिकामः
स्नायात् । ब्रह्मपुत्रे तु सर्वपापक्षयपूर्वकं सर्वतीर्थस्नानजन्य-
फलसमफलप्राप्तिकामः स्नायात् । स्नानेति कर्तव्यतां विधाय
ओम् 'ब्रह्मपुत्र महाभाग शान्तनोः कुलनन्दन । अमोघा-
गर्भसङ्गुत पापं लीहित्य मे हर' । इति पठित्वा स्नायात् ।
केवलशुक्लाष्टम्यां ब्रह्मपदगमनफलम् । पञ्चमार्द्धप्रहरव्यापिन्यां
पुनर्वसुयुक्तायां केवलायां वा उभयदिने शुक्लाष्टम्यां शोक-
रहितत्वकामः अष्टावशोककलिका अहं पिबे इति सङ्कल्प्य
'त्वामशोकहराभीष्टमधुमाससमुद्भव । पिबामि शोकसन्तप्तो

४६४

कृत्यतत्त्वम् ।

मामशोकं सदा कुरु' । इति पठित्वा प्राङ्मुखो विष्णुपदजल-
मिश्रिता अशोककलिका अष्टौ पिबेत् । स्त्रीशूद्रानुपनीतै-
रपि मन्त्रः पठनीयः पौराणिकत्वात् । स्त्रीपक्षे लिङ्गोहो नास्ति
प्रकृतेः समवेतार्थत्वात् ।

अथ श्रीरामनवमो । तत्र दशमीपारणसत्त्वे सर्वैरेवाष्टमी-
विज्ञा नोपोष्या तदसत्त्वे अष्टमीविज्ञाप्युपोष्या दशम्यां पारणानु-
रोधात् । ततश्चैतदशुक्लनवम्यां पुनर्वसुयुक्तायां केवलायां वा
प्रातःकृतस्नानादिः ओम् तत्सदित्युच्चार्य्य सूर्यः सोम इति
पाठित्वा ओम् अद्येत्यादि अमुकगोत्रोऽमुकदेवशर्मा ब्रह्मत्व-
प्राप्तिकामः श्रीरामनवमौव्रतमहं करिष्ये इति सङ्कल्प्य ओम्
'उपोष्य नवमीं त्वद्य यामेष्वष्टसु राघव । तेन प्रीतो भव त्वं
भो संसारात्ताहि मां हरे' । तत्र दशम्यां पारण करिष्या-
मीत्यध्याहारान्वयः । इति निवेदयेत् । ततः शालग्रामं जले
वा 'कोमलाङ्गं विशालाक्षमिन्द्रनीलसमप्रभम् । दक्षिणांशे
दशरथं पुक्षावेष्टनतत्परम् । पृष्ठतो लक्षणं देवं सच्छत्रं
कनकप्रभम् । पार्श्वे भरतशत्रुघ्नौ तालवृन्तकरावुभौ । अग्रे
व्यग्रं हनूमन्तं रामानुग्रहकाङ्क्षिणम्' । एवं ध्यात्वा एतत्
पाद्यम् ओम् श्रीरामाय नमः इत्यादिना पूजयेत् स्नाने तु
ओम् 'इन्द्रोऽग्निश्च यमश्चैव नैऋतो वरुणोऽनिलः । कुबेर
ईशो ब्रह्माहिर्दिक्पालाः स्नापयन्तु ते' । तत ओम् कौश-
ल्यायै नम इत्यनेन पूजयेत् । ओम् 'रामस्य जननी चासि
राममयमिदं जगत् । अतस्त्वां पूजयिष्यामि लोकमातर्नमोऽस्तु
ते' इत्यनेन त्रिःपूजयेत् । ओम् दशरथाय नम इत्यनेन
पूजयेत् । तत ओम् रां हृदयाय नमः रीं शिरसे स्वाहा रूं
शिखायै वषट् रैं कवचाय हुं रौं नेत्राभ्यां वीषट् रः अस्त्राय
फट् इत्यङ्गानि पूजयेत् । ओम् हनूमते नमः ओम् सुग्रीवाय

कृत्यतत्त्वम् ।

४६५

भरताय विभीषणाय लक्ष्मणाय अङ्गदाय शत्रुघ्नाय जाम्बवते
 धूम्राय जयन्ताय विजयाय सुराष्ट्राय राष्ट्रवर्द्धनाय अकोपाय
 धर्मपालाय सुमन्त्राय इन्द्राय अग्नये यमाय नैऋताय वरु-
 णाय वायवे कुवेराय ईशानाय ब्रह्मणे अनन्ताय खड्गाय
 पाशाय अङ्गुशाय गदायै शूलाय चक्राय पद्माय इति अस्त्राणि
 पूजयेत् । अत्र अभिजित्पूजामुख्यकालः । 'उच्चस्थे ग्रह-
 पञ्चके सुरगुरौ सेन्दौ नवम्यान्तिथौ लग्ने कर्कटके पुनर्वसुदिने
 मेषं गते पूषणि । निर्दग्धुं निखिलाः पलाशसमिधो मध्या-
 दयोध्यारणेरार्वभूतमभूदपूर्वविभवं यत्किञ्चिदेकं महः' ।
 इत्यनेन तज्जन्म भावयेत् । पलाशा रालसाः ततो वाद्यादौनि
 वादयेत् । 'फलपुष्पास्त्रसंपूर्णं गृहीत्वा शङ्खमुत्तमम् । अशोक-
 रत्नकुसुमैर्युक्तञ्च तुलसीदलैः' । एवम्भूतमर्घ्यं गृहीत्वा ओम्
 'दशाननवधार्थाय धर्मसंस्थापनाय च । दानवानां विना-
 शाय दैत्यानां निधनाय च । परित्राणाय साधूनां रामो
 जातः स्वयं हरिः । गृहाणाघ्यं मया दत्तं भ्रातृभिः सहितो
 मम' । इत्यनेन अर्घ्यं दद्यात् । ओम् श्रीरामचन्द्राय नमः
 इत्यनेन पुष्पाञ्जलित्रयं दद्यात् । एवमष्टप्रहरेषु यथाशक्ति
 पूजयेत् । ततः परदिने प्रातःसंपूज्य दशम्यां पारणं कुर्यात् ।

अथ मदनत्रयोदशी । चैत्रशुक्लत्रयोदश्यां दमनकवृत्ते
 शालग्रामे जले वा कामदेवं पूजयेत् ओम् अयेत्यादि अमुक-
 गोत्रोऽमुकदेवशर्मा पुत्रपौत्रविवर्द्धनसर्वापदविमुक्तिकामः
 कामदेवपूजनमहं करिष्ये इति सङ्कल्प्य 'चापिषुष्टककामदेवो
 रूपवान् विश्वमोहनः' । इति ध्यात्वा एतत् पाद्यम् ओम्
 कामदेवाय नम इत्यादिना पाद्यादिभिः संपूज्य 'ओम् पुष्प-
 धन्वन् नमस्तेऽस्तु नमस्ते मौनकेतन । मुनीनां लोक-
 पालानां धैर्यच्युतिहते नमः । साधवात्मज कन्दर्प संवरारे

४६६

स्तव्यतत्त्वम् ।

रतिप्रिय । नमस्तुभ्यं जिताशेषभुवनाय मनोभुवे । आधयो
मम नश्यन्तु व्याधयश्च शरीरजाः । सम्पाद्यतामभौष्टं मे
सम्पदः सन्तु मे स्थिराः । नमो माराय कामाय देवदेवस्य
मूर्त्तये । ब्रह्मविष्णुशिवेन्द्राणां मनःक्षोभकराय च' इत्यनेन
प्रार्थयेत् ।

अथ मदनचतुर्दशी । चैत्रशुक्लचतुर्दश्यां पुत्रपौत्रसमृद्धि-
परमपदप्राप्तिकामः पूर्ववत् गीतवाद्याभिः पूजयेत् ।
तत्प्रीतये जुगुप्सितञ्च ब्रूयात् । एतदकरणे चैत्रमासीयपुण्य-
फलं कामः प्राप्नोति ।

अथ मङ्गलचण्डिकापूजा । तत्र कालिकापुराणम् । येषा
ललितकान्ताख्या देवी मङ्गलचण्डिका । वरदाभयहस्ता च
द्विभुजा गौरदेहिका । रक्तपद्मासनस्था च मुकुटकुण्डल-
मण्डिता । रक्तकौषेयवस्त्रा च स्मितवक्त्रा शुभानना । नव-
यौवनसम्पन्ना चार्वङ्गी ललितप्रभा' । इति ध्यात्वा एतत्
पाद्यम् ओम् ह्रीं मङ्गलचण्डिकायै नमः इत्यनेन पाद्यादिभिः
पूजयेत् । ओम् ललितचण्डिकायै नमः इति त्रिःपूजयेत् ।
ततो यथाशक्ति वीजं जप्त्वा ओम् गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं इत्या-
दिना जपं समर्पयेत् । एवं रोगादिशान्त्यर्थं मङ्गलवार-
मारभ्य मङ्गलवारपर्यन्तं गीतादिभिः परिपूजयेत् । ततो
वलिदानम् । यथा स्वयं उत्तराभिमुखः वलिः पूर्वमुखः
ओम् अस्त्राय फडित्यवलोक्य 'ओम् अग्निः पशुरासीत्तेना-
जयन्तस एतल्लोकमजयद् यस्मिन्नग्निः स ते लोको भविष्यति
तं जेष्यसि पिबेता अपः । ओम् वायुः पशुरासीत्तेनाजयन्तस
एतल्लोकमजयद् यस्मिन् वायुः । स ते लोको भविष्यति तं
जेष्यसि पिबेता अपः । ओम् सूर्यः पशुरासीत्तेनाजयन्तस
एतल्लोकमजयद् यस्मिन् सूर्यः स ते लोको भविष्यति तं

कृत्यतत्त्वम् ।

४६७

जेष्थसि पिबेता अपः । ओम् वाचन्ते शुभ्यामि ओम् प्राणन्ते
 शुभ्यामि ओम् ओत्रन्ते शुभ्यामि ओम् नाभिन्ते शुभ्यामि ओम्
 वायुन्ते शुभ्यामि ओम् चरित्रन्ते शुभ्यामि ओम् मेढ्रन्ते शुभ्यामि
 ओम् पादन्ते शुभ्यामि ओम् यत्ते क्रूरं तत्ते शुभ्यामि नमस्तु
 आप्यायतां प्राणन्ते आप्यायतां ओत्रन्ते आप्यायताम् ओम्
 यत्ते क्रूरं यदधःस्थितं तत्त आप्यायतां तत्ते तिष्ठतु समूहेभ्यः
 स्वाहा । ततः पशोः कर्णे 'हिलि हिलि किलि किलि
 बहुरूपधरायै हुँ हुँ स्फेँ स्फेँ इमं पशुं प्रदर्शय स्वर्गं नियो-
 जय मुक्तिं कुरु कुरु स्वाहा' एभिर्मन्त्रैः कुशोदकैः संप्रोक्ष्य
 ओम् छागपशवे नम इति गन्धादिभिरभ्यर्च्य 'छाग त्वं वलि-
 रूपेण मम भाग्यादुपस्थितः । प्रणमामि ततः सर्वरूपिणं
 वलिरूपिणम् । चण्डिकाप्रीतिदानेन दातुरापहिनाशन ।
 चामुण्डावलिरूपाय वले तुभ्यं नमो नमः । यच्चायै पशवः
 सृष्टाः स्वयमेव स्वयम्भुवा । अतस्त्वां घातयिष्यामि तस्माद्
 यज्ञे बधोऽबधः' । इत्युच्चार्य ऐं ह्रीं श्रीं इति मन्त्रेण वलिं
 शिवरूपिणं विचिन्त्य तस्य मूर्द्ध्नि पुष्पं न्यसेत् । तत ओम्
 तत्सदद्येत्यादि अमुकगोत्रोऽमुकदेवशर्मा अभौष्टफलकामो
 ह्रीं चण्डिकायै इमं छागपशुं घातयिष्ये इत्यनेन जलं
 दद्यात् । ततः 'कृष्णं पिनाकपाणिञ्च कालरात्रिस्वरूपि-
 णम् । उग्रं रक्तास्यनयनं रक्तमाख्यानुलेपनम् । रक्ताम्बर-
 धरश्चैव पाशहस्तं कुटुम्बिनम् । पिबमानश्च रुधिरं भुञ्जानं
 क्रव्यसंहतिम्' । एवं खड्गं ध्यात्वा 'रसना त्वं चण्डिकायाः
 सुरलोकप्रसाधकः' । इत्यभिमन्त्र्य आं ह्रीं खड्गाय नम
 इत्यनेन पाद्यादिभिः संपूज्य । ओम् 'असिर्विशसनः खड्ग-
 स्तीक्ष्णधारो दुरासदः श्रीगर्भो विजयश्चैव धर्मपाल नमोऽस्तु
 ते । इत्यष्टौ तव नामानि स्वयमुक्तानि वेधसा । नक्षत्रं

४६८

कृत्यतत्त्वम् ।

कृत्तिका तुभ्यं गुरुर्देवो महेश्वरः । हिरण्यञ्च शरीरन्ते
 धाता देवो जनार्दनः । पिता पितामहो देवस्त्वं मां पालय
 सर्वदा । नीलजीमूतसङ्काशस्तीक्ष्णदंष्ट्रः कशोदरः । भाव-
 शुद्धो मर्षणश्च अतितेजास्तथैव च । इयं येन धृता क्षीणी
 हतश्च महिषासुरः । तीक्ष्णधाराय शुद्धाय तस्मै खड्गाय
 ते नमः । इत्यनेन पुष्पं दद्यात् । तत आं ह्रीं फडिति
 खड्गम् आदाय ओम् 'कालि कालि वज्रेश्वरि लौहदण्डाय
 नम इति पठित्वा बलिं पूर्वाभिमुखं स्वयमुत्तराभिमुखः
 उत्तराभिमुखं बलिं स्वयं पूर्वाभिमुखो वा क्हेदयेत् ।
 ततो मृगमयादिपात्रेण रुधिरमादाय देव्याः पुरतः स्थापयित्वा
 अभौष्टकामो रुधिरं मांसञ्च दद्यात् । तत ऐं ह्रीं श्रीं
 कौशिकिरुधिरेण आप्यायतामिति वदेत् । ततः स्थागशिरसि
 ज्वलद्दृशां दत्त्वा एष क्वागशौर्षवलिः ओम् मङ्गलचण्डिकायै
 नमः इत्युत्सृजेत् । ओम् 'जय त्वं सर्वभूतेशे सर्वभूतसमा-
 ह्वते । रक्ष मां सर्वभूतेभ्यो बलिं भुङ्क्ष्व नमोऽस्तु ते' । ततः
 खड्गस्थरुधिरमादाय ओम् 'यं यं सृशामि पादेन यं यं
 पश्यामि चक्षुषा । स स मे वश्यतां यातु यदि शक्रसमो
 भवेत्' । ओम् ऐं ह्रीं श्रीं क्लिन्ने मदद्रवे स्वाहा इति सर्व-
 वश्यमन्त्रेण स्त्रीयललाटे तिलकं कुर्यात् । ततस्तुत्वा
 प्रणम्य कर्मकारयित्रे दक्षिणां दद्यात् ।

अथ रोगशान्तिः । 'दानैर्दयादिभिरपि द्विजदेवतागो-
 गुर्वर्चनाप्रणतिभिश्च जपैस्तपोभिः । एभिश्च पुण्यनिचयैरुप-
 चीयमानाः प्राक् पापजा यदि रुजः प्रशमं प्रयान्ति । सुवर्ण-
 दानं सर्वेषां रोगाणां नाशकारणम् । तस्मात् सर्वप्रयत्नेन
 कर्तव्यं कमलोद्भव' ।

अथ जन्मतिथिकृत्यम् । 'खण्डनं नखकेशानां मैथुना-

कृत्यतत्त्वम् ।

४६८

ध्यानमेव च । आमिषं कलहं हिंसनं वर्षद्वहो विवर्जयेत् ।
 मृते जन्मनि संक्रान्ती आहो जन्मदिने तथा । असृग्स्वप्नार्थने
 चैव न स्नायादुष्णवारिणा । विष्णुपुराणं गगंश्च । 'सर्वेषु
 जन्मदिवसे स्नातैर्मङ्गलपाणिभिः । गुरुदेवाग्निविप्राश्च पूज-
 नीयाः प्रयत्नतः । स्वनक्षत्रश्च पितरौ तथा देवप्रजापतिः ।
 प्रतिसंवत्सरश्चैव कर्त्तव्यश्च महोत्सवः' । स्नातैस्तिलस्नातैस्तथा
 च तत्तिथिमधिकृत्य 'तिलोदत्तीं तिलस्नायौ तिलहोमी तिल-
 प्रदः । तिलभुक् तिलवापी च षट् तिलौ नावसीदति' ।
 तिलोदत्तनं तिलयुक्तजलैः स्नानम् ओम् तद्विष्णोरिति मन्त्रेण
 ततो नववस्त्रपरौधानं कृत्वा कृतनित्यक्रियो दक्षिणपाणी
 गुग्गुलुखेतसर्षपनिम्बदूर्वागोरोचनात्मकजन्मग्रन्थिवन्धनं कृत्वा
 स्वस्तिवाचनम् ओम् तद्विष्णारिति पठित्वा ओम् तत्सदित्यु-
 च्चार्य ओम् अद्येत्यादि अमुकगोत्रोऽमुकदेवशर्मा जन्मदिवस-
 निमित्तकगुर्वादिपूजनमहं करिष्ये इति सङ्कल्प्य तज्जलम्
 ऐशान्यां क्षिपेत् । शालग्रामे तदभावे जले वा एतत् पादम्
 ओम् गुरुभ्यो नमः एवमर्घ्यादिना पूजयेत् । ओम् देवेभ्यः
 ओम् अग्निभ्यः ओम् विप्रेभ्यः ओम् स्वनक्षत्रनाम्ने ओम्
 अश्विनीभ्याम् एवं भरणीभ्यां कृत्तिकाभ्यः रोहिणीभ्यः मृग-
 शिरसे आर्द्रायै पुनर्वसवे पुष्याय अश्लेषाभ्यः मघाभ्यः पूर्व-
 फल्गुनीभ्याम् उत्तरफल्गुनीभ्यां हस्तायै चित्रायै स्वात्यै
 विशाखाभ्यः अनुराधाभ्यः ज्येष्ठायै मूलाय पूर्वाषाढाभ्यः
 श्रवणाय धनिष्ठाभ्यः शतभिषाभ्यः पूर्वभाद्रपदः उत्तरभाद्र-
 पदः रेवत्यै एतान् प्रणवादिनमोऽन्तेन पूजयेत् । विशेष-
 नामाङ्गानि स्वनक्षत्राय नमः ओम् पितृभ्यां नमः ओम् प्रजा-
 पतये नमः ओम् सूर्याय नमः ओम् गणेशाय नमः ओम्
 मार्कण्डेयाय नमः । ध्यानं यथा 'दिभुजं जटिलं सौम्यं सुहृदं

४७०

कृत्यतत्त्वम् ।

चिरजीविनम् । मार्कण्डेयं नरो भक्त्या ध्यायेत् प्रयतमानसः ।
 प्रार्थनन्तु 'चिरजीवी यथा त्वं भो भविष्यामि तथा मुने । ।
 रूपवान् वित्तवांश्चैव श्रिया युक्तश्च सर्वदा । मार्कण्डेय महा-
 भाग ! सप्तकल्पान्तजीवन । आयुरिष्टार्थसिद्धार्थमस्माकं
 वरदो भव' । ओम् व्यासाय नमः ओम् परशुरामाय नमः
 ओम् अश्वत्थाम्ने नमः ओम् कृपाय नमः ओम् वलये नमः
 ओम् प्रह्लादाय नमः ओम् हनूमते नमः ओम् विभीषणाय
 नमः ओम् जन्मतिथये नमः । द्विभुजां हेमगौराङ्गीं रत्ना-
 लङ्कारभूषिताम् । वरदाभयहस्ताञ्च शरच्चन्द्रनिभाननाम् ।
 पीतवस्त्रपरीधानां धीनोद्धतपयोधराम् । अङ्गार्पितसुतां षष्ठी-
 मम्बुजस्थां विचिन्तयेत् । इति ध्यात्वा ओम् षष्ठ्यै नमः
 अस्या नैवेद्यं दधिभक्तमपि दद्यात् । ओम् 'जय देवि जग-
 न्मातर्जगदानन्दकारिणि । प्रसीद मम कल्याणि नमस्ते षष्ठि
 देवि ते' इत्यनेन नमस्कुर्यात् । ओम् 'आयुर्देहि जयं देहि
 भाग्यं भगवति देहि मे । पुत्रान् देहि धनं देहि सर्वान्
 कामांश्च देहि मे' । इत्यनेन प्रार्थयेत् । 'तैलोक्ये यानि
 भूतानि स्थावराणि चराणि च । ब्रह्मविष्णुशिवैः सार्द्धं' रक्षां
 कुर्वन्तु तानि मे' । इति मत्स्यपुराणौयेन रक्षां पठेत् ततः
 सूक्तेन स्वर्गद्योक्तविधिना अग्निं संस्थाप्य तिलैर्होमं कुर्यात्
 पूजितदेवनामभिः । प्रणवादिचतुर्थ्यन्तेन नाम्ना स्वाहावसाने
 जुहुयात् । अष्टोत्तरशतम् अष्टाविंशतिरष्टौ वा । दक्षिणां
 तिलांश्च दद्यात् ब्राह्मणाय । जन्मतिथौ यदि शनिमङ्गल-
 वारयोगस्तदा तद्योगसूचितदोषोपशमनाय मुक्तां दद्यात् ।
 अत्र नक्षत्रायामे काञ्चनं दद्यात् । कनिष्ठाङ्गुलिमूलात्मक-
 प्राजापत्यतीर्थेन तिलान् वपेत् ततो भोजनकाले गुडदुग्ध-
 मिश्रितान् तिलान् अञ्जल्यर्द्धमितान् पिबेत् । अत्र मन्त्रः

कृत्यतत्त्वम् ।

४७१

‘सतिलं गुडसंमिश्रमक्षत्यर्द्धमितं पयः । मार्कण्डेय वरं लब्ध्वा
पिबाम्यायुष्यहेतवे’ ।

अथ सूतिकाषष्ठीपूजा । विष्णुधर्मात्तरे ‘सूतिकावास-
निलया जन्मदा नाम देवताः । तासां यागनिमित्तन्तु शुद्धि-
जन्मनि कीर्तिता । षष्ठेऽङ्गि रात्रौ यागन्तु जन्मदानान्तु कार-
येत् । रक्षणीया तथा षष्ठी निशां तत्र विशेषतः । राम-
जागरणं कार्यं जन्मदानां तथा बलिः’ । रामेति सम्बोधनम् ।
अत्राशौचमध्ये दोषाभावः । ‘अशौचे तु समुत्पन्ने पुत्रजन्म
यदा भवेत् । कर्तुंस्तात्काली शुद्धिः पूर्वाशौचाद्विशुध्यति’ ।
इति प्रजापतिवचनात् । अत्र पुत्रजन्मेति अवणात् पितु-
रेवाशौचाभावः । कर्तुरिति पुंस्त्वनिर्देशाच्च कारयेदिति
अन्यगोत्राभिप्रायेण तत्रादौ विनायकसहितगौर्यादिषोडश-
मातृकापूजा कार्या । तत्र कृत्यचिन्तामणौ व्यासः । ‘निशि
जागरणं कार्यं खड्गो धार्यः समीपतः । आवाह्य पूजयेद्देवीं
गणेशं मातरं गिरिम्’ । देवीं षष्ठीं गिरिं मन्यानमन्दरं
कृत्यचिन्तामणिधृतमन्यानमन्दारोऽसीति मन्त्रलिङ्गात् । मातृ-
नामान्याह गृह्यपरिशिष्टम् । ‘गौरी पद्मा शची मेधा
सावित्री विजया जया । देवसेना स्वधा स्वाहा मातरो
लोकमातरः । शान्तिः पुष्टिर्धृतिस्तुष्टिरात्मदेवतया सह ।
आदौ विनायकः पूज्यो अन्ते च कुलदेवता’ । भविष्यपुराणे
‘पूज्याश्चित्रे तथा कार्या वरदाभयपाणयः’ । तत्र मातर
इति सर्वासां विशेषणम् । अतएव एतत् पाद्यम् ओम् गौर्यै
मात्रे नम इत्यादिप्रयोगः एता लोकमातरो ज्ञेयाः । अवएव
तयोर्बहुत्वनिर्देशः । षट्कृतिकापूजा रुद्रधरधृताः । ‘शिवा
संभूतिनामा च कीर्तिः सन्नतिरेव च । अनसूया क्षमा चैव
शङ्केता कृतिका मताः’ । एतासां पूजनं घटे जले वा आवा-

४७२

कृत्यतत्त्वम् ।

हननविसर्जने विनैव कार्यं बोधायनः 'प्रतिमास्थानेष्वस्त्वन्मौ नावाहनविसर्जने' । सूतिकागृहस्थापनीय द्रव्याण्याह मार्कण्डेयपुराणम् 'अग्न्यम्बुपशुशून्ये च निर्यूपे सूतिकागृहे । प्रदोषपशुस्रमुषलभूतिसर्षपवर्जिते । अनु प्रविश्य जातन्तु अपहृत्यात्मसम्भवम् । क्षणप्रसविनी बालं तत्रैवोत्सृजति द्विज । सा जातहारिणी नाम सुघोरा पिशिताशना । तस्मात् संरक्षणं कार्यं यत्नतः सूतिकागृहे' । पशुश्लाघः यूपोऽपि अस्यैवोपस्थितत्वात् । पाशे पायसं सर्पिषा मिश्रं द्विजेभ्यो यः प्रयच्छति । गृहं तस्य न रक्षांसि धर्षयन्ति कदाचन' ।

अथ प्रयोगः । पुत्रे जाते षष्ठदिवसीयरात्रौ कृतस्नानः प्रदोषसमये सूतिकागृहे उपविश्य प्राङ्मुखः स्वस्तिवाचनं कृत्वा ओम् तत्सदित्युच्चार्य ओम् अद्येत्यादि अमुकगोत्रस्य मम अभिनवजातकुमारस्य संरक्षणकामः सूतिकागारदेवता-पूजनमहं करिष्ये इति सङ्कल्पं कृत्वा सूतिकागृहद्वारे तत्र क्षेत्रपालमावाह्य पूजयेत् ततो वटपत्रेषु माषभक्तवलिं दद्यात् । एष माषभक्तवलिः ओम् क्षेत्रपालाय नमः इति दत्त्वा ओम् 'क्षेत्रपाल नमस्तुभ्यं सर्वशान्तिफलप्रद । बालस्य विघ्ननाशाय मम गृह्णन्त्विमं वलिम्' । एष माषभक्तवलिः ओम् भूतदैत्यपिशाचादिगन्धर्वयक्षराक्षसेभ्यो नमः । ओम् 'भूतदैत्यपिशाचाद्या गन्धर्वा यक्षराक्षसाः । शुभं कुर्वन्तु ते सर्वे मम गृह्णन्त्विमं वलिम्' । एष माषभक्तवलिः ओम् पूर्वादिस्वस्थानवासिभ्यो नमः ओम् पूर्वादिदिग्भागेषु स्वस्थानप्रतिवासिनः । 'शान्तिं कुर्वन्तु ते सर्वे मम गृह्णन्त्विमं वलिम्' । एष माषभक्तवलिः ओम् योगिनी डाकिनीभ्यो नमः । ओम् 'नानारूपधराः सर्वा मातरो देवयोनयः । बालस्य विघ्ननाशाय मम गृह्णन्त्विमं वलिम्' । एष माषभक्तवलिः ओम् आदित्यादि

कृत्यतत्त्वम् ।

४७३

ग्रहेभ्यो नमः ओम् 'आदित्यादिग्रहा ये च नित्यं स्वस्थान-
वासिनः । शान्तिं कुर्वन्तु ते सर्वे' मम गृहहन्त्रिमं बलिम् ।
एवम् इन्द्रादिलोकपालेभ्यो दद्यात् । ततो द्वारपालेभ्यो नमः
इति पाद्यादिभिः संपूज्य प्रणमेत् । ओम् 'द्वारपाल नमस्तुभ्यं
सर्वोपद्रवनाशन । बालविघ्नविनाशाय पूजां गृहह सुरोत्तम' ।
तत ओम् जम्भाय नम इति संपूज्य प्रणमेत् ओम् 'जम्भासुर
महावीर सर्वशान्तिफलप्रद । रक्षस्व मम बलं त्वं पूजां
गृहह यथा सुखम्' । ततो गृहं प्रविश्य भूतशुद्ध्यादिप्राणायामा-
माङ्गन्यासाध्यपात्रादिकं कृत्वा घटं संस्थाप्य तत्र गणपतिं
ध्यात्वा संपूज्य प्रणमेत् । ओम् 'सर्वविघ्नहरः श्रीमान् एक
दन्तो गजाननः । षष्ठी गृहेऽर्चितः प्रीत्या शिशुं दीर्घायुषं
कुरु' । एवं सूर्यादीन् संपूज्य षष्ठीं ध्यायेत् । 'अभयवरद-
हस्तां कृष्णमार्जारसंस्था कनकरुचिरगात्रां सर्वपुत्रैकधात्रीं
सुरमुनिगणवन्द्यां दिव्यमाल्याम्बराढ्यां वटविटपिविलासां
सौमिनि षष्ठीं सहासाम्' । अथवा 'द्विभुजां हेमगौराङ्गीं रत्ना-
लङ्कारभूषिताम् । वरदाभयहस्ताञ्च शरच्चन्द्रनिभाननाम् ।
पौतवस्त्रपरीधानां पीनोन्नतपयोधराम् । अङ्गार्पितसुतां षष्ठी-
मम्बुजस्थां विचिन्तयेत्' । इति ध्यात्वा स्वशिरसि पुष्पं
दत्त्वा मानसोपचारैः संपूज्य पुनर्ध्यात्वा घटस्थे जले एतत्
प्राद्यम् ओम् षष्ठ्यै नम एवं गन्धपुष्पधूपदीपनैवेद्यवस्त्रादिभिः
षष्ठीं संपूज्य आम् 'गौर्याः पुत्रा यथा स्कन्दः शिशुः संरक्षित-
स्त्वया । तथा ममाप्ययं बालो रक्ष्यतां षष्ठिके नमः' ।
इत्युच्चार्य ओम् षष्ठ्यै नम इति त्रिःपूजयेत् इति भोजराजः ।
तत्र कृत्यचिन्तामणौ स्मृतिः । 'जय देवि जगन्मातर्जगदा-
नन्दकारिणि । प्रसौद मम कल्याणि नमस्ते षष्ठि देवि ते' ।
ओम् 'धात्री त्वं कार्तिकेयस्य षष्ठिषष्ठीति विश्रुता । दीर्घायु-

४७४

कृत्यतत्त्वम् ।

इच्च नैरुज्यं कुरुष्व मम बालके । जननी सर्वभूतानां सर्व-
विघ्नक्षयंकरी । नारायणस्वरूपेण मत्पुत्रं रक्ष सर्वतः ।
भूतदैत्यपिशाचेभ्यो डाकिनौभ्योऽपि सङ्गटात् । सुतं मेऽद्य
शुभं दत्त्वा रक्ष देवि नमोऽस्तु ते' । इति प्रणमेत् । ततो
वरं प्रार्थयेत् । 'रूपं देहि यशो देहि भाग्यं भगवति देहि
मे । पुत्रान् देहि धनं देहि सर्वान् कामांश्च देहि मे' । इति
रुद्रधरः । मन्यानमन्दरपूजनानन्तरम् । कार्तिकेयं संपूज्य
प्रणमेत् । 'कार्तिकेय महाभाग गौरीहृदयनन्दन ! । कुमार
रक्ष मे पुत्रं गङ्गहस्त नमोऽस्तु ते' । ततो जन्मदां पाद्यादिभिः
संपूज्य प्रणमेत् । ओम् 'या जन्मदेतिविख्याता शुभदा भुवि
पूजिता । करोतु सर्वदा रक्षां बालस्य सूतिकागृहे' । ततो
योगिनीडाकिनौराक्षसौजातहारिणीबालघातिनीघोरापिशि-
ताशनावसुदेवदेवकौयशोदानन्दान् संपूज्य व्यजने वस्त्रोपरि
बालकं कृत्वा षष्ठ्याः पादे समर्पयेत् । 'जननी सर्वभूतानां
लोकानां हितकारिणी । व्यजनस्थं रक्ष पुत्रं तव पादे सम-
र्पितम्' । तत एभिर्मन्त्रैर्बालस्य सर्वाङ्गं हस्तेन स्पृशेत् ।
'माथुरं मङ्गलं यच्च विष्णोरतुलतेजसः । हरस्य मङ्गलं यच्च
सर्वं भवतु मे सुते । रक्षां करोतु भगवान् बहुरूपी जना-
र्दनः । वराहरूपधृग्देवः शिशुं रक्षतु केशवः । नखाग्रैर्यो
विदारितवैरिवक्षःस्थलो हरिः । नृसिंहरूपी सर्वत्र स त्वं
रक्षतु केशवः । शिरस्ते पातु गोविन्दः गण्डं रक्षतु केशवः ।
गुदं सजठरं पातु जङ्घाञ्चैव जनार्दनः । स्कन्धं बाहुं प्रवाहुञ्च
मनः सर्वेन्द्रियाणि च' । ततो हरेर्द्वादशनामानि वस्त्रे
लिखित्वा शिशोः शिरसि दद्यात् । तद् यथा केशव अच्युत
पद्मनाभ गोविन्द त्रिविक्रम हृशीकेश पुण्डरीकाक्ष वासुदेव
नारायण नरसिंह हयग्रीव वामन । १२ । ततः त्रिलोचनां

कृत्यतत्त्वम् ।

४७५

संपूज्य प्रणमेत् । ततोऽश्वत्थामादिसप्तचिरजीविनः संपूज्य प्रणमेत् । 'अश्वत्थामा बलिव्यासो हनूमांस्य विभीषणः । कपः परशुरामश्च सप्तेते पान्तु मे सुतम्' । ततो गन्धपुष्पाभ्यां ब्राह्मणान् संपूज्य दक्षिणां दद्यात् ।

अथ विद्यारम्भः । प्रमाणं ज्योतिस्तत्त्वेऽनुसन्धेयम् । सौर- वर्षदिनेषु पञ्चदशदण्डाधिकपञ्चदिनज्ञासे सावनवर्षो भवति एतत् पञ्चवर्षाभ्यन्तरे हरिशयनानध्यायदिनषष्ठीरिक्ताशनि- भीमदिनकालाशुद्धीतरत्र शुक्लपक्षे पुष्याश्विनी हस्तास्वाती- पुनर्वसुश्रवणाधनिष्ठाशतभिषा आर्द्रा मूला अश्लेषाकृत्तिका- भरणीमघाविशाखापूर्वात्रयचित्रारवतीमृगशिरा नक्षत्रेषु रविबुधगुरुशुक्रवारिषु वृषसिंहतुलाधनुर्मीनलग्नेषु तथाविध- लग्नाच्चतुर्थपञ्चमसप्तमदशमस्थशुभग्रहेषु लग्नस्थरवावपि इन्द्रर्कगुरुतारकशुद्धौ विद्यारम्भं कुर्यात् । तत्र प्रयोगः कृतनित्यकृत्यो गुरुशुची देशे आचान्तः प्राङ्मुखः ओम् तत्सदित्युच्चार्य्य अद्येत्यादि अमुकगोत्रस्य श्रीअमुकदेवशर्मणो विद्यालाभकामो विष्णुादिपूजनमहं करिष्यामि इति सङ्कल्प्य शालग्रामे जले वा विष्णुं ध्यात्वा एतत् पाद्यम् ओम् श्रीविष्णवे नमः इत्यादिभिः पूजयेत् तत्र पूजामन्त्रः ओम् 'नमस्ते बहुरूपाय विष्णवे परमात्मने स्वाहा' इत्यनेन त्रिःपूजयेत् । प्रणमेच्च एवं लक्ष्मीं नमस्ते सर्वदेवानां वरदासीत्यादिना स्तुत्वा सरस्वतीं ध्यायेत् तद् यथा । ओम् तरुणशकलमिन्दोर्विभ्रती शुभ्रकान्तिः' इत्यादिना ध्यात्वा एतत् पाद्यम् ओम् सरस्वत्यै नमः एवं पाद्यादिभिः पूजयित्वा ओम् भद्रकाल्यै नमो नित्यं सरस्वत्यै नमो नमः । वेदवेदान्त- वेदाङ्गविद्यास्थानेभ्य एव च' स्वाहेति ब्रह्मपुराणीयेन त्रिःपूज- येत् एवं रुद्राय नमः ओम् ब्रह्मणे नमः ओम् सूत्रकारेभ्यो

४७६

कृत्यतत्त्वम् ।

नमः ओम् स्रविद्यायै नमः नवग्रहान् पूजयेत् । ततो बाल-
कोऽपि एतान् पुष्पाञ्जलिभिः पूजयेत् । ततस्तु गुरुं प्रणमेत् ।
ततः प्राङ्मुखो गुरुः पश्चिमाभिसुखं शिशुम् ओम् तत्सदित्यु-
च्चार्य अकारादिक्षकारान्तान् वर्णान् कठिनीं गृहीत्वा तद्व-
स्त्रेन लेखयेत् एवं वारत्रयं पाठयेत् लेखयेच्च । ततो गुरुं
नत्वा दक्षिणां दद्यात् तद्दिने निरामिषं भुञ्जीत बालकः ।

अथ गृहारम्भः । कृत्तिकादिसप्तकान्यतमनक्षत्रस्य पुरु-
षस्य पूर्वस्यां मघादिसप्तकान्यतमनक्षत्रस्य दक्षिणस्याम् अनु-
राधादिसप्तकान्यतमनक्षत्रस्य पश्चिमस्यां धनिष्ठादिसप्तकान्य-
तमनक्षत्रस्य पुरुषस्य उत्तरस्यां दिशि गृहं शोभनम् अस-
म्भवे पूर्वोत्तरयोर्दक्षिणपश्चिमयोरैक्यं भाद्रादिमासत्रये पूर्वस्यां
मार्गशीर्षादित्रये दक्षिणस्यां फाल्गुनादित्रये पश्चिमस्यां
ज्येष्ठादित्रये उत्तरस्यां वामपार्श्वशयनेन नागस्य शिरो ज्ञात्वा
एकगृहकरणे तत् क्रोडे गृहं कार्यं हे चेद्दक्षिणपश्चिमयोः
एवं चेत् पूर्वहीनम् उत्तरहीनं वा कार्यं मेषवृषमिथुनतुला-
कर्कटसिंहमकरस्यरवौ पूर्वपश्चिमद्वारम् । तुलामेषवृषिकरवौ
दक्षिणोत्तरद्वारं गृहं शुक्लपक्षे रविशनिमङ्गलवारैतरवारै रित्ते-
तरतिथौ अश्विनीरोहिणीमृगशिरः पुष्योत्तरात्रयहस्ताचित्रा-
स्वात्यनुराधामूलाश्रवणाधनिष्ठाशतभिषारिवतौषु प्रशस्तासु
आर्द्रायां मध्यमायां वज्रव्याघातशूलव्यतीपातादिगण्डविष्कु-
म्भपरिवेतरत्र चन्द्रतारादित्येषु शुभेषु वृषमिथुनसिंहकन्या-
तुलवृषिकधनुः कुम्भलग्नेषु गृहारम्भः कर्तव्यः श्रवणादिषट्के
आरम्भानन्तरमेव बन्धनादिकं निषिद्धम् । 'नाहरेत्तृणकाष्ठादि-
न कुर्व्याद्दृढबन्धनम्' इति निषेधात् कृते तु आग्निचौरसर्पादि-
भयं भवेदिति । तत्र प्रयोगः यजमानः कृतस्नानादिकृत्यः
ओम् तत्सदित्युच्चार्य ओम् अद्य अमुके मासि अमुके पक्षे

कृत्यतत्त्वम् ।

४७७

अमुकतिथौ अमुकगोत्रोऽमुकदेवशर्मा एतद्वास्तु सर्वदोषोपश-
मनकामो वास्तुपूजनमहं करिष्ये इति सङ्कल्प्य वास्तुदक्षिण-
भागे चतुरङ्गुलखातहस्तमात्रे गत्तं बहुतरत्नगौमयोपलिप्ते
जलपूरिते । शालग्रामे जले वा नवग्रहान् गणेशादीन् ग्रन्-
वादिनमोऽन्तेन स्वस्वनान्ना पूजयेत् । ओम् गणेशाय नमः
इत्यादि इन्द्राय सूर्याय सोमाय मङ्गलाय बुधाय बृहस्पतये
शुक्राय शनैश्चराय राहवे केतवे इन्द्रादिदशदिक्पालेभ्यः
स्वस्वनान्ना चैत्रपालेभ्यः भूतक्रूरग्रहेभ्यः क्रूरभूतेभ्यः ब्रह्मणे
वास्तुपुरुषाय शिखिने ईशाय पर्यन्थाय जयन्ताय सूर्याय
सत्याय भृशाय आकाशाय अग्नये पूष्णे वितथाय ग्रहनक्षत्राय
यमाय गन्धर्वाय ऋगाय पित्रेभ्यः दैवारिकाय सुग्रीवाय
पुष्पदन्ताय वरुणाय शेषाय पापाय रोगाय अहये मुख्याय
विश्वकर्मणे भस्माटाय श्रिये दित्यै पापाय सावित्राय सवित्रे
विवस्वते इन्द्रात्मजाय मित्राय रुद्राय राजयक्षणे पृथ्वीधराय
ब्रह्मणे चरक्यै विदार्यै पूतनायै पापराक्षस्यै स्कन्दाय अर्थ्यन्त्रे
जम्भकाय पिलिपिञ्जाय ओम् 'नमस्ते बहुरूपाय विष्णवे
परमात्मने स्वाहा' इत्यनेन पूजयेत् । श्रियै वासुदेवाय पृथिव्यै
पृथिव्यर्घ्यं मन्त्रः ओम् 'हिरण्यगर्भे वसुधे शेषस्योपरिशायिनि ।
वसाम्यहं तव पृष्ठे गृहाणाघ्यं धरित्रि मे' । ततो नत्वा
प्रार्थयेत् । 'शुभे च शोभने देवि चतुरस्रे महीतले । सुभगे
पुत्रदे देवि ! गृहे काश्यपि रम्यताम् । अव्यङ्गे चाक्षते पूर्णे
मुनेष्वादिरसः सुते । तुभ्यं कृते मया पूजा समृद्धिं गृहिणः
कुरु । वसुधरे वरारोहे स्थानं मे दीयतां शुभे । त्वत्प्रसा-
दान्महादेवि कार्यं मे सिद्धतां द्रुतम्' । ओम् 'अग्निभ्यो-
ऽप्यथ सर्पेभ्यो ये चान्ये तत्समाश्रिताः । तेभ्यो बलिं प्रयच्छामि
पुण्यमोदनमुत्तमम् । भूतानि राक्षसा वापि येऽत्र तिष्ठन्ति

४७८

कृत्यतत्त्वम् ।

केच न । ते गृह्णन्तु बलिं सर्वे वास्तुगृह्णाम्यहं पुनः' । इति मन्त्राभ्यां माषभक्तबलिं दद्यात् । ततः 'प्रणमेद्दण्डवद्भूमौ मन्त्रेणानेन भक्तितः । भूतानि यानीह वसन्ति तानि बलिं गृहीत्वा विधिनोपपादितम् । अन्यत्र वासं परिकल्पयन्तु क्षमन्तु तानीह नमोऽस्तु तेभ्यः' । ततस्त्वस्मिन् गते दधि-दूर्वाक्षतपुष्पफलास्त्रपल्लवमुखेनाम्बुपूर्णं न घटेन एषोऽर्घ्यं ओम् वास्तोष्पतये नमः इत्यर्घ्यं जानुभ्यां धरणीं गत्वा दद्यात् । ओम् 'शिल्पाचार्याय देवाय नमस्ते विश्वकर्मणे' स्वाहा इत्यर्घ्यं ओम् विश्वकर्मणे नम इति पूजयेत् । ततः कर्मकारयितृब्राह्मणाय दक्षिणां दद्यात् । तत ओम् 'यान्तु देवगणाः सर्वे पूजामादाय यात्रिकाः । इष्टकामप्रसिद्धार्थं पुनरागमनाय च' ततः क्षमध्वमिति विसर्जयेत् ततस्तदर्घ्यं-जलेन पूरितगते प्रणवेन पुष्पं चिह्ना शुभाशुभं पश्येत् तत्र दक्षिणावर्त्ते शुभं वामावर्त्तेऽशुभम् । ततस्तत्र दधिदूर्वादिकं दत्त्वा सृत्तिकया गतं पूरयेत् । ततः सूत्रपाताय ईशानादि कोणचतुष्टयेषु प्रादक्षिण्यश्चतुरःकौलकान् आरोपयेत् ओम् 'विशन्तु ते तले नागाः लोकपालाश्च कामगाः । गृहे तस्मिंश्च तिष्ठन्तु आयुर्बलकराः सदा' । इति मन्त्रेण चतुष्कोणेषु दृढं रोपयेत् । तत ईशानादिक्रमेण सूत्रेण त्रिवेष्टयेत् । तत आग्नेय्यां गते गन्धपुष्पाद्यलङ्कृतं स्तम्भं रोपयेत् तत्र मन्त्रः 'यथाचलो गिरिमूर्ध्निमवांश्च यथाचल शुभारम्भो गृहस्तम्भ-स्तथात्वमचलो भव' ततो बहुतर सृङ्गिगृहं कारयेत् धनुः-शराभ्यां काकादि वारयेत् ।

तत्र प्रवेशविधिः । गृहस्यारम्भवत् प्रवेशेऽपि ज्येष्ठापुन-र्वसुयुक्तः स एव कालः तद्दिने प्रातःकृतस्नानादिकृत्यः शुचि-राचान्तो ब्राह्मणेभ्यः काञ्चनादिकं दत्त्वा ब्राह्मणान् दध्यव-

कृत्यतत्त्वम् ।

४७८

ताम्रदलपुष्पफलोपेतं जलकुम्भश्चाग्रतः कृत्वा गोपुच्छं स्पृष्ट्वा चन्दनाद्यनुलिप्तः शिरसि मालां बध्वा यथाविधि वामपार्श्वे स्थितकुम्भाम् आचाराद्यान्यपूर्णसूर्पमस्तकां पत्नीं वामतः कृत्वा तथा सह गृहं प्रविशेत् ततः स्वयमाचम्य शालग्रामे जले वा ओम् अद्येत्यादि नवग्रहप्रवेशनिमित्तकवास्तुदोषोपशमन-कामो वास्तुपूजनमहं करिष्ये इति सङ्कल्प्य गृहधारभोदित-देवताः पूर्ववत् प्रणामपर्यन्तं पूजयित्वा कर्मकारयितृब्राह्म-णाय दक्षिणां दद्यात् । ततोऽद्येत्यादिनवग्रहप्रवेशनिमित्तक-सगणाधिपगौर्यादिषोडशमातृकापूजावसोर्धारासम्पातनायुष्य-सूक्तजपाभ्युदयिकश्राद्धकर्माण्यहं करिष्यामीति सङ्कल्प्य यव-पुञ्जेषु मातृकापूजादिद्विद्विषाद्वान्तं कर्म कुर्यात् एतानि प्रवेशात् पूर्वमपि स्थानान्तरे कर्त्तव्यानि परे वा । ततः स्वगृ-होक्तविधिना शालाहोमः कार्यः ।

अथ कृषिकर्म । तत्र हलप्रवाहविधिः । अश्विनी-रोहिणीमृगशिरः पूनर्वसुपुष्यामघोत्तरत्रयहस्तास्वातीमूलश्रव-णारवतीनक्षत्राणि प्रशस्तानि विशाखानुराधाज्येष्ठाधनिष्ठा-शतभिषानक्षत्राणि मध्यमानि भरणीकृत्तिकार्द्राश्लेषापूर्वात्रय-चित्तानक्षत्राणि निषिद्धानि । रिक्ताषष्ठ्यष्टमीद्वादशीदशमी-तरतिथयः प्रशस्ताः । भङ्गलशनिवारौ निषिद्धौ । शोभन-चन्द्रताराकरणेषु वृषमिथुनकन्यामीनलग्नेषु तत्र तद्दिने कृतस्नानादिनित्यक्रियः आचान्त ओम् तत्सदित्युच्चार्य अमुकगोत्रोऽमुकदेवशर्मा यस्यसम्पत्तिकामः पञ्चरेखात्मकहल-प्रवाहनमहं करिष्ये इति सङ्कल्प्य क्षेत्रे ऐशान्यां हस्तप्रमाण-गत्तं कृत्वा जलेनापूर्य्य तत्र प्रजापतिं सूर्यादिनवग्रहान् पृथिवीञ्च पूजयेत् 'ओम् हिरण्यगर्भे' वसुधे शेषस्योपरिशा-यिनि । वसाम्यहं तव पृष्ठे गृहाणार्घ्यं धरित्रि मे' इति

४८०

कृत्यतत्त्वम् ।

मन्त्रेण श्रीरेणार्घ्यं दत्त्वा ओम् कारादिनमोऽन्तेन ब्रह्मणि विष्णवे । तत्र ओम् 'नमस्ते बहुरूपाय विष्णवे परमात्मने स्वाहा' । इत्यनेन त्रिःपूजयेत् रुद्राय काश्यपाय वसुभ्य इन्द्राय तदर्थ्यमस्तु 'शक्रः सुरपतिः श्रेष्ठो वज्रहस्तो महाबलः । शतयज्ञाधिपो देवस्तुभ्यमिन्द्राय वै नमः' । इति नैवेद्यान्तं दत्त्वा ओम् 'विचित्रैरावतस्थाय भास्वत्कुलिशपाणये । पौलो-
म्यालिङ्गिताङ्गाय सहस्राक्षाय ते नमः' । इति त्रिःपूजयेत् । प्रचेतसे पर्याण्याय शेषाय चन्द्राय अर्काय वज्रये बलदेवाय हलाय भूमये वृषाय वायवे रामाय लक्ष्मणाय सीतायैः स्वर्गाय गगनाय इति द्वाविंशतिदेवताः पूजयेत् । क्षेत्रपालम् अग्निं प्रदक्षिणीकृत्य ब्राह्मणाय दक्षिणां दद्यात् । आम्नपक्षवीदन-
पायसदधीनि गर्त्ते निक्षिप्य मृत्तिकाभिः पूरयेत् ततो हृष्टौ वृषौ नवनीतैर्घृतैर्वा । मुखपार्श्वन्तयोर्लिप्यात् हलवाह-
कान् गन्धादिना पूजयित्वा हलं मालाभिः पूजयित्वा दधि-
घृतमधुभिः फालं प्रलिप्य हेम्ना फालाग्रं घर्षयेत् बलीन्द्रपृथु-
रामेन्दुपराशरवलभद्रान् स्मरेत् । एका तिस्रः पञ्चरेखा वा हलेन कार्या अभ्यङ्गशुद्धखुरलाङ्गूलाः कपिलाश्च वृषाश्च योज्याः । हलप्रवाहकाः प्रणताः कर्त्तव्याः हलानि दृढानि कर्त्तव्यानि वृषयुद्धादिकं न शुभदम् । वृषाणां नर्दने चतु-
र्गुणं शस्यं मूत्रपुरीषोत्सर्गे च तथा । उभयत्रैव प्राङ्मुखो जलपूर्णकलसं गृहीत्वा 'ओम् त्वं वै वसुन्धरे सीते बहुपुष्प-
फलप्रदे । नमस्ते मे शुभं नित्यं कृषिमेधां शुभे कुरु । रोहन्तु सर्वशस्यानि काले देवः प्रवर्षतु । कर्षकास्तु भवन्त्वग्रा-
धान्येन च धनेन च' । स्वाहेति प्रार्थयेत् ।

अथ बीजवपनम् । हलप्रवाहवद्बीजवपनस्यापि कालः । तत्र चित्रापि शुभदा रोपणे तु रोहिण्युत्तरफलगुनी विशाखा

कृत्यतत्त्वम् ।

४८१

मूला पूर्वभाद्रपदनक्षत्राणि प्रशस्तानि वृषहृषिकसिंहकुम्भ-
 स्वजन्मलग्नमिथुनकन्यातुलाधनुः पूर्वाष्विन्मनानि प्रशस्तानि ।
 तत्र तद्दिने कृतस्नानादिः ओम् अद्येत्यादि अमुकगोत्रः श्री
 अमुकदेवशर्मा शस्यसम्पत्तिकामो मुष्टित्वयं वीजघपनमहं
 करिष्ये इति सङ्कल्प्य हलप्रवाहोक्तगर्तपूरणान्तं देवपूजा-
 दिकं विधाय प्राङ्मुखः सुवर्णजलसंयुक्तं वीजमुष्टित्वयं शक्रं
 ध्यायन् स्वयं प्राजापत्यतीर्थेन वपेत् ततो जलपूर्णकलसं
 गृहीत्वा त्वं वै वसुन्धरे सीते बहुपुष्पफलप्रदे । नमस्ते मे
 शुभं नित्यं कृषिमेधां शुभे कुरु । रोहन्तु सर्वशस्यानि काले
 देवः प्रवर्षतु । कर्षकाश्च भवन्त्वग्रा धान्येन च धनेन च ।
 स्वाहेति प्रार्थयेत् ।

अथ धान्यच्छेदनम् । कार्तिकपौषेतरमाषेषु पौषेऽपि
 शुभवारे पुष्यनक्षत्रे मङ्गलवारेतरेषु रिक्तेतरतिथिषु भरणी-
 कृत्तिकासृगशिरोऽश्लेषामघोत्तरात्रयहस्ताचित्राज्येष्ठामूलापू-
 र्वाषाढाश्रवणाधनिष्ठापूर्वभाद्रपदरेवतीषु नक्षत्रेषु प्रशस्ततार-
 योगकरणेषु वृषमिथुनसिंहकन्यातुलावृषिकधनुःपूर्वाष्विन्मकर-
 कुम्भस्वजन्मलग्नेषु धान्यच्छेदनम् । तत्र तद्दिनसे कृतस्नानादिः
 ओम् अद्येत्यादि अमुकगोत्रः श्री अमुकदेवशर्मा शस्य-
 सम्पत्तिकामः सार्धमुष्टिद्वयधान्यच्छेदनमहं करिष्ये इति
 सङ्कल्प्य हलप्रवाहोक्तदेवतापूजनं विधाय ईशानकोणस्थ-
 धान्यानां सार्धमुष्टिद्वयं छेदयेत् । शस्यवृद्धयर्थं क्षेत्रे वाहकान्
 भोजयेत् ।

अथ धान्यस्थापनम् । भरणीकृत्तिकार्द्रामघाद्यपूर्वात्रये-
 तरनक्षत्रेषु सृगशिरःपुनर्वसुमघोत्तरात्रयेषु सोमबुधगुरुशुक्र-
 वारेषु कुम्भमिथुनसिंहकन्यावृषिकधनुर्मकरमीनलग्नेषु प्रशस्त-
 योगताराचन्द्रकरणेषु धान्यस्थापनं तत्र धान्यगृहे 'ओम् धन-

४८२

स्तुत्यतत्त्वम् ।

दाय सर्वलोकहिताय च । देहि मे धान्यं स्वाहा' ओम्
ईहायै नमः 'ईहादेवि लोकविवर्द्धिनी कामरूपिणि देहि मे
धान्यम्' इति लेखयित्वा स्थापयेत् । धान्यगृहाद् बुधवारे
धान्यव्ययो न कर्तव्यः । आचारात् सोमवारेऽपि ।

अथ अद्भुतशान्तिः । आद्यवर्णाद्भुतवचनं प्रकृतिविरुद्ध-
मद्भुतमापदः । प्राक् प्रबोधाय देवाः सृजन्ति' इति तेना-
पज्ज्ञानाय पूर्वं भूम्यादीनां स्वभावप्रच्यवो देवकर्तृकोऽद्भुत
इति रजस्वलाभिगमने गोऽश्वभार्याभ्यो यमजे जाते विजा-
तीयप्रसवे काककङ्कगृध्रश्चैनवनकुक्कुटरक्तपादवनकपोतानां
गृहप्रवेशमनुष्योपरिपतने वा अन्येषु अद्भुतेषु वा श्वेतेन्द्रायुध-
रात्रीन्द्रायुध उल्कापातदिग्दाह सूर्योपमण्डलचन्द्रोपमण्डल-
गन्धर्व-नगर-दर्शन-कृत्तिकाचित्रास्थ वक्रोभूतमङ्गलापूर्वपराग-
भूकम्पधूमकेतु-रक्तशस्त्रमासास्थिवसादिनखधान्य-हिरण्य-त्वक्-
फलपुष्पाङ्गारपांशुरवनप्रदोषे पेचकवानरगृहपतने अकाल-
फलपुष्पोद्गमादिषु सप्ताहाभ्यन्तरावृष्टिषु कन्दोगपरिशिष्टौघ-
शान्तिं कुर्यात् । तत्र कृतदेवार्चनान्तस्तुत्यः ओम् तत्सदित्यु-
च्चार्य ओम् अद्येत्यादि अमुकाद्भुतसूचितदोषोपशमनकामः
कात्यायनोक्तशान्तिमहं करिष्ये इति मङ्गल्यं स्वयं ब्राह्मण-
द्वारा वा खगृह्योक्तविधिना वरदनामानमग्निं संस्थाप्य
घृतेनाद्भुताग्नये स्वाहा ओम् सोमाय स्वाहा ओम् विष्णवे
स्वाहा ओम् वायवे स्वाहा ओम् रुद्राय स्वाहा ओम्
वसवे स्वाहा ओम् अमृत्यवे स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा
पुनरपि पूर्ववत् घृतचरुभ्यां एताभ्यो जुहुयात् । ततो होम-
शेषं समाप्य घृतपायसेन ब्राह्मणान् भोजयित्वा ब्राह्मणाय
गां दक्षिणां दद्यात् । एतत् प्रायश्चित्ताकरणे गृहपति-
सरणं सर्वस्वनाशो भवति योगियाज्ञवल्क्योक्तसप्रणवगायत्रा

यजुर्वेदिश्राद्धतत्त्वम् ।

४८३

अथ विष्णुसूक्तेन वा अष्टोत्तरशतहोमान् नवग्रहानपि पूजयेत्
ब्राह्मणाय काञ्चनं दद्यात् । एवं दुःखप्रायनिष्टदर्शनेषु
ब्राह्मणाय घृतं काञ्चनञ्च दद्यात् ततो ब्राह्मणान् ज्ञातींश्च
भोजयेदिति ।

इति श्रीवन्द्यवटीय श्रीहरिहरभट्टाचार्यात्मज
श्रीरघुनन्दनभट्टाचार्यविरचितं कृत्यतत्त्वं
समाप्तम् ।

यजुर्वेदिश्राद्धतत्त्वम् ।

प्रणम्य मच्चिदानन्दं कामदं नन्दनन्दनम् ।

यजुर्विदां श्राद्धतत्त्वं वक्ति श्रीरघुनन्दनः ॥

एकटाकाङ्क्षितं यद् यच्छन्दोगश्राद्धतत्त्वतः ।

तज्ज्ञातव्यं यजुर्विद्विस्तवानुक्तमिहोच्यते ॥

अथ पार्वणश्राद्धप्रमाणम् । तत्र कात्यायनगृह्यम् 'अथा-
परपक्षे श्राद्धं कुर्वीतोद्ध' वा चतुर्थ्या यदहः सम्पद्यते तदह-
र्ब्राह्मणामन्त्रं पूर्वद्युर्वा स्नातकान् यतीन् गृहस्थान् साधून्
श्रोत्रियान् वृद्धान् अनवद्यान् स्वकर्मस्थान् तदभावेऽपि शिष्यान्
सहचरान् हिलग्न्शुक्लविकृन्त्रश्यावदन्तविद्वज्जननव्याधिताधि-
काङ्क्षित्विकुष्ठिकुन्त्रस्त्रिवर्जम् । अनिन्द्येनोपामन्वितो नाति-
क्रामेत् । आमन्वितो वा नान्यदन्नं प्रतिगृह्णीयात् । स्नातान्
शुचीनाचान्तान् प्राङ्मुखानुपवेश्य युग्मान् पित्रे यथाशक्ति
एकैकस्योदङ्मुखान् द्वौ दैवे त्रीणि पित्रे एकैकमुभयत्र वा
स्नातामहानामप्येवं तन्त्रं वा वैश्वदैविकम् । अङ्गान्वितः श्राद्धं

४८४

यजुर्वेदिश्राद्धतत्त्वम् ।

कुर्यात् शाकेनापि अपरपक्षं न अतिक्रमेत् । मासि मासि
 वोऽशनम्' इति श्रुतेः । 'तदहः शुचिरक्रोधनोऽल्बरोऽप्रमत्तः
 सत्यवादी स्यादध्वमैथुन एव स्वाध्यायान् वर्जयेत् । आवाह-
 नादिवाग्यत आ-उपस्यर्शादामन्विताश्चैवमिति' । अपरपक्षे
 कृष्णपक्षे शुक्लप्रतिपदादिदर्शान्तमामस्य पक्षद्वयघटितस्य अपर-
 पक्षत्वेन कृष्णपक्षस्यैव अपरपक्षत्वात् तथाच श्रुतिः 'पूर्वः पक्षो
 देवानामपरः पक्षः पितॄणाम्' इति । ऊर्द्ध्वं वा चतुर्थ्याः पञ्च-
 म्यादिषु यदहः सम्पद्यते तदहरिति कालकर्म । यस्मिन्नहनि
 सम्पद्यते द्रव्यादिकमिति शेषः । तदहस्तस्मिन्नहनि ब्राह्मणा-
 नामन्त्र्य निमन्त्र्य पूर्वद्युर्वी श्राद्धपूर्वदिने वा । स्नातकान्
 कृतसमावर्त्तनस्नातान् यतीन् चतुर्थाश्रमिणः साधून् नित्य-
 नैमित्तिकाश्रमधर्मयुक्तान् श्रोत्रियान् श्रुताध्ययनसम्पन्नान्
 वृद्धान् वयोऽतिरिक्तान् अनवद्यान् उत्तमान् स्वकर्मस्थान् स्वाश्र-
 मकर्मस्थान् निन्द्यानाह हिलग्नेत्यादि हिलग्नो दुश्चर्मा अप्रा-
 वृतमेद्रः गुरुतल्पगमनपापशेषचिह्नयोगित्वादर्थ्यः शुक्लोऽति-
 गौरः विलिङ्गो नाभेरधो विचर्चिकादियुक्तः सखिस्त्रीगमन-
 पापशेषयोगित्वादर्थ्यः । श्यावदन्तकः स्वभावतः कृष्णदन्तः
 प्रधानदन्तद्वयमध्यगतक्षुद्रदन्त इति केचित् सुरापानजन्य-
 पापशेषचिह्नयोगित्वादर्थ्यः विद्वप्रजननः कर्त्तितशिश्रुः । व्यङ्गो
 विकलेन्द्रियः कुनखौ संकुचितनखः सुवर्णस्तेयपापचिह्न-
 योगित्वादर्थ्यः । आमन्वितो निमन्वितः । नातिक्रामेत् न
 निमन्त्रणं परित्यजेत् अन्यदन्नम् अन्यश्राद्धीयमामान्नमपि न
 गृह्णीयात् । शुचीन् सूतकाशौचरहितान् वैश्वदेविकं विश्व-
 देवब्राह्मणोपवेशनादिकं कर्म तन्त्रं पितृपक्ष मातामहपक्ष-
 मुद्दिश्य सकृदा कर्त्तव्यं वो युष्माकं पितॄणामिति यावत् ।
 अत्र 'पित्रे रात्र्यहनी मासः प्रतिभागस्तयोः पुनः । कर्म-

यजुर्वेदियाहृतत्वम् ।

४८५

चैष्टास्वहःकृष्णः शुक्लः स्वप्नाय शर्वरी' इति विष्णुपुराणेन
 मनुष्यमासस्य पितृणामहोरात्रत्वाभिधानात् । तत्रापि
 कृष्णपक्षस्य दिनत्वाभिधानात् आहवर्तुसम्बन्धिना प्रतिमा-
 सीय कृष्णपक्षस्याहीयेन पितृणामशनं विधातुमुचितमिति
 वीजं तदहरिति आहवासरे यजमानः शुचिः कृतस्नानाचमना-
 दिकृत्यः क्रोधविधीनः त्वरारहितः शान्तः साधुचरितः सत्य-
 वचनशीलश्च भवेत् । आवाहनादिति आवाहनप्रभृतियाह-
 भोक्तृब्राह्मणाचमनपर्यन्तं वाग्यतो भवेत् आमन्त्रिता इति
 निमन्त्रिताः ब्राह्मणाश्च एवमेव नियमानुष्ठानं कुर्युः । कात्या-
 यनगृह्यं 'देवपूर्वकं आहं कुर्वीत पिण्डपितृयज्ञवदुपचारः
 पित्रेऽदिगुणांश्च दर्भान् पवित्रपाणिर्दद्यादासीनः प्रश्नेषु पङ्क्ति-
 मूर्धन्यं पृच्छति सर्वान् वा आसनेषु दर्भानास्तीर्थं विश्वान्
 देवानावाहयिष्ये' इति पृच्छति आवाहयेत्यनुज्ञातः । विश्वे-
 देवा स आगत इत्यनया ऋचा आवाह्य अवकीर्त्य विश्वेदेवाः
 शृणुतेमं हवम् इति जपित्वा पितृनावाहयिष्ये इति पृच्छति
 आवाहयेत्यनुज्ञातः उशन्तस्त्वेत्यनयावाह्यावकीर्त्य आयान्तु न
 इति जपित्वा यज्ञीयवृक्षचमसेषु पवित्रान्तर्हितेषु एकैकस्मिन्नप
 आसिञ्चति शन्नोदेवीति एकैकस्मिन्नेव तिलानावपति ।
 'तिलोऽसि सोमदैवत्यो गोसवो देवनिर्मितः । प्रयत्नमद्भिः पृक्तः
 स्वधया पितृन् लोकान् प्रीणाहि नः स्वाहा' इति सौवर्ण-
 राजतौडुम्बरखड्गमणिमयपात्राणामन्यतमेषु यानि वा विद्यन्ते
 पत्रपुटेषु वा एकैकस्य एकैकेन ददाति । स पवित्रेषु हस्तेषु
 'था दिव्या आपः पयसा सम्बभूवुर्या अन्तरोक्षा उत पार्थ-
 वीर्या हिरण्यवर्णा यज्ञियास्तान आपः शिवाः संश्लोनाः
 सुहवा भवन्तु' इत्यसावेष तेऽर्घ्यं इति प्रथमे पात्रे संस्त्वान्
 समवनौय पितृभ्यः स्थानमसीति न्यूजं पात्रं करोति अत्र

४८६

यजुर्वेदिआहुतत्वम् ।

गन्धपुष्पधूपदीपच्छादनानां सम्प्रदानमिति । एषामर्थः दैव-
 पूर्वं यथा स्यात्तथा सर्वं कर्तव्यं पिण्डपितृयज्ञवदुपदेशेन पितॄन्
 कर्मणि अपराह्णकालप्राचीनावीतित्वदक्षिणामुखत्वा प्रादक्षि-
 ण्यलाभः । द्विगुणा एव दर्भाः प्रकृतत्वात् पितॄन् एव दैव
 पिच्छोर्यद्दीयते तत् पवित्रपाणिरुपविष्ट एव दद्यात् दर्भाः
 पवित्रमित्युक्तमिति छन्दोगपरिशिष्टात् । प्रश्ने प्राप्ते पंक्ति-
 श्रेष्ठं पृच्छेत् आसनेषु कुशानास्तीर्थेषु कुशब्राह्मणानुपके-
 शयेदिति शेषः । यवान् गृहीत्वा ओम् विश्वान् देवानावाह-
 यिष्ये इति देवब्राह्मणं पृच्छति ब्राह्मणेनैवाहयेत्यनुज्ञातः सन्
 यजमानः विश्वेदेवा स आगत इत्यादिनिषीदतेत्यन्तेनावाह्य
 आवाहनेत्यनुज्ञातो विश्वेदेवास इत्यृचा । यवैरन्ववकीर्याथ-
 भाजने सपवित्रके इति याज्ञवल्क्यवचनात् यवान् विकीर्य
 विश्वेदेवाः शृणुत इत्यादिमादयध्वमित्यन्तं जपेत् । ततः
 पितृनावाहयिष्ये इति पृच्छेत् आवाहयेत्यनुज्ञात उशन्तस्त्रे-
 त्यादि अत्तवे इत्यन्तेनावाह्य उशन्तस्त्रेत्यादि जपन् पितृ-
 नावाहयेत्ततः 'ततस्तिलान् गृहीत्वास्मिन् विकिरिद-
 प्रदक्षिणम् । अद्वया परया युक्तो जपन्नपहतेति च' इति
 ब्रह्मपुराणात् अपहतेत्यादि वेदिषद इत्यन्तेन तिलान्
 विकीर्य आयान्तु न इत्यादि अवन्त्वस्मानित्यन्तं जपेत् ।
 एकैकस्मिन्निति वचनात् शन्नो देवोरित्यस्य तिलोऽसीत्यस्य
 च प्रेतार्घ्यपात्रेषु आहुतिः मन्त्रप्रकाशजलादेः प्रत्येकं
 प्रक्षेपश्च । ननु एकैकस्मिन्नित्यनुवर्तते तत् कथं पुनरेकैक-
 स्मिन्नेवेत्यनेन सत्यं पितृनिति बहुवचनात् अनावृत्तेनैव मन्त्रेण
 सर्वपात्रेषु तिलप्रक्षेपः स्यादिति पुनरुच्यते अतएव अत्र एव-
 कारः एकैकेनैवेति मन्त्रलिङ्गात् न तन्त्रेण एवञ्च एकैकस्मि-
 न्नैव बहुवचनमदृष्टार्थम् । अत्र देवपक्षे यवोऽसीति यव-

यजुर्वेदिश्राद्धतत्त्वम् ।

४८७

विकरणम् 'आवाहयेदनुज्ञातो विश्वे देवा स इत्युवा । यवै-
रन्ववकौर्याथ भाजने सपवितके । शन्नो देव्या पयः क्षिप्त्वा
यवोऽसीति यवांस्तथा' । इति याज्ञवल्क्येनावाहनेऽर्घ्यपात्रे
च यवानां विहितत्वात् अत्र च यवयारातीरित्यन्तमन्त्रमात्रं
यजुर्वेदिनां सामगानान्तु यवोऽसीति दिवित्वाऽन्तरौचायत्वा
इति मन्त्राभ्यां यवप्रक्षेप इति रायमुकुटप्रभृतयः । उडुम्बरं
ताम्रपात्रं खड्गो गण्डकस्तत्शृङ्गमयं पात्रं यानि वा कदली-
त्वगादीनि । अत्र चक्रघटितपात्रस्य निषेधमाह कन्दोग-
परिशिष्टम् 'आसुरेण तु पात्रेण यत्र दद्यात्तिलोदकम् । पितर-
स्तत्र नाश्रन्ति दशवर्षाणि पञ्च च । कुलालचक्रघटितमसुरं
मृगमयं स्मृतम् । तदेव हस्तघटितं स्यात्त्यादि दैविकं भवेत्' ।
एकैकस्य देवस्य प्रत्येकं पित्रादेश्च एकैकब्राह्मणहस्तेन पवित्रे
एकैकेन पात्रेण । असावित्यनेन सम्बोधनान्तनामोच्चारणं
विधीयते । असाविति नाम गृह्णीयादिति कात्यायनसूत्रान्त-
रात् । प्रथमे पात्रे पितृपात्रे संस्त्रवान् अर्घ्यपात्रावशिष्टजल-
विन्दून् पितामहादिपञ्चपात्रस्थान् समवनीय पशुप्रोक्षणवत्
क्रमेणानीय प्रपितामहपात्रेण पिधाय पितृभ्यः स्थानमसीति
मन्त्रेण न्युजमधोमुखं कुर्यात् गन्धादीनां इन्द्रनिर्देशान्मिलि-
तानामेव तन्त्रेण पित्रादिकमुद्दिश्य उत्सर्गः । कात्यायनगृह्यम्
'उद्धृत्य घृताक्तमन्नं पृच्छति अग्नौ कारिष्ये इति कुरुष्वेत्यनु-
ज्ञातः पिण्डपितृयज्ञवद्धृत्वा हुतावशिष्टं दत्त्वा पात्रमालभ्य
जपति पृथिवी ते पात्रं द्यौः पिधानं ब्राह्मणस्य मुखे अमृते
अमृतं जुहोमि स्वाहा इति वैष्णव्यर्चा यशुषा वा अङ्गुष्ठमन्त्रे-
ऽवगाह्य अपहृतेति तिलान् विकीर्य उत्थामन्नं दद्यात् शक्त्या
वाश्रत्सु जपेत् व्याहृतिपूर्विकां गायत्रीं सप्रणवां सकृत् त्रिं
रक्षोघ्नौः पितॄमन्त्रान् पुरुषसूक्तम् अन्यानि च पवित्राणि

४८८

यजुर्वेदिश्राद्धतत्त्वम् ।

दक्षिं ज्ञात्वा अन्नं प्रकीर्य सकृत् सकृदपो दत्त्वा पूर्ववद्वायवीं
जपित्वा मधुमतौर्मधुमधुमध्विति च दत्त्वाः स्येति पृच्छति शेष-
मन्नमनुज्ञाप्येति । अस्यार्थः आङ्गीयान्नात् पात्रान्तरे अन्न-
मुद्धृत्य घृतेनाभ्यज्य अग्नौ करिष्ये इति मन्त्रेण पृच्छतीति कर्कः
अतएव पितृदयिताकृत्यप्रदीपस्मृतिरन्नाकरश्राद्धदीपिकादिषु
प्रणवादिमन्त्रेणोक्तेषुः एवञ्च अस्य मन्त्रत्वेन शूद्रेणोक्तेषु न
कर्त्तव्य इति प्रतीयते । ब्राह्मणैरेवोच्चरिते ओम् कर्त्तव्येत्यनु-
ज्ञातः पिण्डपितृयज्ञवदित्यनेन प्राचीनावीतित्वं दक्षिणा-
सुखत्वम् । ओम् अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा ओम् सोमाय
पितृमते स्वाहा इति मन्त्राभ्यां हवनञ्च प्रतीयते तथा पिण्ड-
पितृयज्ञे शतपथश्रुतिः पतितवामजानुना सजघनेन गार्ह-
पत्यं प्राचीनावीती भूत्वा दक्षिणामुख आसीन इत्युपक्रम्य
हे आहुतो जुहोति ओम् अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा ओम्
सोमाय पितृमते स्वाहा इति एवमेव हरिहरहलायुधकर्क-
वासुदेव-हरिशर्म-शूलपाणि-रायमुकुटाचार्य-चूडामण्णादयः ।
एवञ्च पितृभक्तौ सव्येनेति लिखनं प्रमाणशून्यं मेक्षणाभावे
हस्तेन होमोऽतिदिश्यते । हुतशेषं दत्त्वा इति विशेषानव-
गमात् देवादिक्रमेण सर्वपात्रेषु दत्त्वा शेषं पिण्डार्थं स्थाप-
यित्वा देवादिक्रमेणानुत्तानोत्तानहस्ताभ्यां प्रत्येकं पात्रं धृत्वा
पृथिवी ते पात्रमिति जपेत् अन्नादिकं परिवेश्य वैष्णव्या
ऋचा इदं विष्णोरित्यादिना यजुषा विष्णो कव्यमिदं रक्षस्व
इत्यनेन वाऽङ्गुष्ठं निवेशयेत् । तूष्णीं देवे यवान् अपहृतेति
पितृपक्षे तिलान् विकिरेत् । शक्त्या वेति अन्नाद्यभावेऽप्रति-
षिद्धं शाकादिकमपि । अतएव शाकेनापि अपरपक्षं नाति-
क्रामेदित्युक्तम् । अश्वत्सु मुञ्जानेषु रक्षोघ्नीऋचः यज्ञेश्वर
इत्यादि पितृमन्त्रान् पितृप्रकाशकान् । पुरुषसूक्तं सहस्र-

यजुर्वेदियाहृतत्वम् ।

४८६

शीर्षेत्यादि प्रसिद्धम् । पवित्राणि याज्ञवल्क्यश्लोकत्रयाणि ।
 तृप्तिं ब्राह्मणानाम् अन्नं प्रकीर्त्य अग्निदग्धेत्यादि तद्वदित्य-
 न्ताभ्यां मत्स्यपुराणोक्ताभ्यां मन्त्राभ्यामिति शेषः सकृत् सकृ-
 दपोदत्त्वेति प्रत्यापोशानजलदानम् । अतएव पुरस्तादापो-
 शानार्थं जलदानं विशिष्य नोक्तं पुरस्तात् पुरत इति त्रिः
 सकृद्वा मधुमतीर्मधुवातेति तृचं मधुमधुमध्विति च जपेत्
 मध्वित्येतत्त्रिकं जपेदित्यन्यत्र दर्शनात् । प्रत्युत्तराभावाद्ब्र-
 ब्राह्मणपक्षे तृप्तिप्रश्नप्रत्युत्तरयोर्बाधः । शेषमन्नं क्व देयमित्यनु-
 ज्ञाप्य इष्टेभ्यो दीयतामिति प्रतिवचनं गृह्णीयात् तथाच
 पद्मपुराणं 'स तानाह पुनः शेषं क्व देयञ्चान्नमित्यपि । इष्टेभ्यो
 दीयतामेतदिति संप्रवदन्ति ते' । कात्यायनगृह्यं 'सकल-
 मन्नमेकचोदृत्य उच्छिष्टसन्निधौ दर्भेषु त्रीं स्त्रीन् पिण्डान्
 दद्यादवने निज्येति । आचान्तेषु इत्येके । आचान्तेषु उदकं
 पुष्पाणि च अक्षतानक्षत्योदकञ्च दद्यात् अघोराः पितरः सन्तु
 सन्वित्युक्ते गोत्रं नो वर्द्धन्तां वर्द्धतामित्युक्ते दातारो नोऽभि-
 वर्द्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव च । अद्वा च नो माव्यगमत्
 बहुदेयञ्च नोऽस्त्विति इत्याशिषः प्रतिगृह्य स्वधावाचनीयान्
 सपवित्रान् दर्भानास्तीर्य स्वधां वाचयिष्ये इति पृच्छति
 वाच्यतामित्यनुज्ञातः पितृभ्यः पितामहेभ्यः प्रपितामहेभ्यः
 मातामहेभ्यः प्रमातामहेभ्यः वृद्धप्रमातामहेभ्यश्च स्वधोच्यता-
 मिति । अस्तु स्वधेति उच्यमाने स्वधावाचनीयेषु अपो
 निषिञ्चति उत्तानं पात्रं कृत्वा यथाशक्ति दक्षिणां दद्यात्
 विश्वे देवाः प्रीयन्तामिति देवे वाचयित्वा वाजे वाज इत्य-
 नया विसृज्य आमावाजस्येत्यनुव्रज्य प्रदक्षिणीकृत्य प्रविशे-
 दिति' । अस्यार्थः सर्वं हुतशेषं आह्वीयान्नव्यञ्जनादिकं
 एकस्मिन् पात्रे उद्धृत्य पिण्डपितृयज्ञवदुपचार इति प्रागुक्तेन

४६०

यजुर्वेदिश्राद्धतत्त्वम् ।

उच्छिष्टमन्त्रिधौ पिण्डान् दद्यात् पिण्डपितृयज्ञवदिति याज्ञ-
 बल्कीयेन च तत्रोक्तापहृतेत्यादिना रेखादिकं कुर्यात् तथाच
 पिण्डपितृयज्ञाधिकारे कात्यायनगृह्यं 'दक्षिणेनोल्लिखति अप-
 हृतेति अपरेणोल्मकं पुरस्तात् करोति ये रूपाणीत्युदकपात्रे-
 णावनेजयेदसावेतत्त इति अपमव्यं सव्ये नवोदरणसामर्थ्या-
 दसाववनेनिच्छेति यजमानस्य पितृप्रभृतीनुपमूलं सकृदा-
 च्छिन्नं रेखायां यथाऽवनिक्तं पिण्डान् दद्यात् असावेतत्त इति ।
 अत्र पितर इत्युक्तोदङ्मुख आगमनादावृत्य असोमदन्त इति
 जपति अवनेनिज्य पूर्ववत् नौवीं विस्रंस्य नमोव इत्यञ्जलिं
 करोति एतद् इत्युपास्यति सूत्राणि प्रतिपिण्डमूर्णामप्यस्य
 उत्तरे वयसि यजमान रोमाणि ऊर्जमित्यपो निपिञ्चति । अव-
 धाय जिघ्रति यजमानः उल्मकं सकृदाच्छिन्नान्यग्नाविति ।
 अस्यार्थः । दक्षिणहस्तेन उल्लिखति कुशेनेति शेषः तश्चाच
 देवलः 'मण्डलं चतुरस्रञ्च दक्षिणाप्लवनं हरेत् । एकदर्भेण
 तन्मध्ये उल्लिख्याभ्युच्य तं त्यजेत्' । उल्मकस्तप्ताङ्गारः स च
 दक्षिणाग्नेरेव प्रकृतत्वात् । निरग्नेस्तदमम्भवात् अननुष्ठान-
 मिति पशुपतिः । न च तत्प्रतिनिधिलौकिकाऽग्निरस्तु इति
 वाच्यं न पितृयज्ञीयो होमो लौकिकाग्नी विधीयते । न देव-
 ताग्निशब्दक्रियाणां परार्थत्वात् । इति कात्यायनवचनात् अग्नेः
 प्रतिनिधिनिषेधात् अग्नौकरणे तु । 'अग्न्यभावे तु विप्रस्य
 पाणावथ जलेऽपि वा' । इति विशेषवचनादेव प्रतिनिधि-
 लाभः । अत्र दर्भेषु अवनेजनदानविधानान्नात्र पिण्डपितृ-
 यज्ञवद्रेखायामवनेजनदानम् । अत्र पिण्डानिति पुंलिङ्ग-
 निर्देशेऽपि पिण्डपितृयज्ञीयपिण्डदानाभिलापे पिण्डविशेषणे
 एतदिति नपुंसकनिर्देशात् । यजुर्वेदीयाभिलापे पिण्ड-
 शब्दस्य नपुंसकेन निर्देशोऽपि प्रतीयते पिण्डशब्दस्यापि

यजुर्वेदिश्राद्धतत्त्वम् ।

४८१

नपुंसकत्वमन्यत्र दृष्टम् । 'यथाभाषेतैतच्च वै पिण्डं यज्ञ-
 दत्तस्य पूरकम्' इति । तथाच षष्ठीशेष इति पाणिनिसूत्रे
 जयादित्यहसौ कुक्षस्य पिण्डं पततीति लिखितं पिण्डदाना-
 नन्तरं वायुपुराणम् । 'ततो दर्भेषु विधिवत् संमार्ज्यं च
 करं ततः । प्रक्षाल्य च जलेनाथ त्रिराचम्य हरिं स्मरेत् । तेभ्यः
 संस्रवपात्रेभ्यो जलेनैवावनेजनम् । दत्त्वाच पितरश्चेति पठे-
 च्छोदश्च, खस्थितः । चिन्तयंश्च पितृस्तृष्टान् सर्वान् भास्वरमूर्ति-
 कान् । अमौमदन्त पितरस्त्विति पश्यन् धिया पठेत् । नौवीं
 विस्रंस्य च जपेत् नमो वः पितरस्त्विति' । इदञ्च करप्रोञ्चनं
 लेपभुजः प्रपितामहपितृनुदिश्य इत्याह मनुः । 'नुप्यपिण्डां-
 स्ततस्तांस्तु प्रयतो विधिपूर्वकम् । तेषु दर्भेषु तं हस्तं निर्मृज्या-
 ह्नेपभागिनाम् । तेभ्यः पूर्वदत्तावनेजनदानावशिष्टजलयुक्त-
 पात्रेभ्यः अत्रावनेजनदानानन्तरमेवामौमदन्त इति पाठः
 शाख्यन्तरीयः यजुर्वेदी तु अत्र पितर इति पठित्वा वामा-
 वर्त्तेनोदश्च, खौभूयागमनात् ग्लानिपर्यन्तं श्वासं विधृत्य तेनैव
 पथा प्रत्यावृत्यामौमदन्त इति जपित्वा पूर्वावनेजनदानावशिष्ट-
 जलेन पिण्डोपरि नामग्रहणपूर्वकं प्रत्यवनेनिच्छस्वधेति
 प्रत्यवनेजनं दद्यात् । तथाच पारस्कारः प्रेताय पिण्डं दत्त्वा
 अवनेजनदानप्रत्यवनेजनदानेषु नाम ग्राहमिति । अत्र
 प्रत्यवनेजनेति श्रुतेः व्यक्तमाह मत्स्यपुराणं 'तेषु दर्भेषु तं हस्तं
 निर्मृज्याह्नेपभागिनाम् । तथैव च बुधः कुर्यात् पुनः प्रत्य-
 वनेजनम् । सामगस्तु द्वितीयेऽपि अवनेनिच्छेति ब्रूयात् ।
 तत्पात्रक्षालनेनाथ पुनरप्यवनेजयेत्' इति छन्दोगपरिशिष्टात् ।
 नौवीं विस्रंस्य परिहितवस्त्रस्य वामाङ्गग्रन्थिं मोचयित्वा
 आचमनमाह बौधायनः नौवीं विस्रंस्य परिधाय उपसृशेत्
 इति परिधाय परिधानवस्त्रग्रन्थिमोचनपूर्वकं पुनः परिधाय

४८२

यजुर्वेदिश्राद्धतत्त्वम् ।

आचामेदित्यर्थः । ततो नमो व इति षडङ्गलिकरणम् ओम् नमो वः पितरः शुषाय ओम् नमो वः पितरस्तपसे । ओम् नमो वः पितरो यज्जीवं स्तुतौ ओम् नमो वः पितरो रसाय ओम् नमो वः पितरो घोराय मन्यवे ओम् स्वधायै वः पितरो नमो व इति काण्डशाखिनां पाठः । अस्यार्थः हे पितरो वो युष्मभ्यं नमः शुषाय शोषकारिणे श्रीषायेत्यर्थः हे पितरो वो युष्मभ्यं नमः तपसे तप इति माघमासस्य नाम तेन माघ-फाल्गुनात्मकशिशिर ऋतोरैकदेशोद्भावनेन तस्यैव नमस्कारः कृतः हे पितरो यज्जीवं जलं युष्मभ्यं तस्मै वर्षा ऋतवे नमः हे पितरो युष्मभ्यं नमः रसाय पुष्परसाय अनेन वसन्तस्य नमस्कारः कृतः हे पितरो युष्मभ्यं नमः घोराय मन्यवे शीत-त्वात् हेमन्ताय प्राणिनां भयहेतुत्वेन घोराय मन्यवे क्रूडाय यथा क्रूरः कश्चित् दुःखं जनयति तथायमपि शीतो दुःखं जनयतीत्यर्थः । हे पितरो युष्मभ्यं नमः स्वधायै शरदे । यथा श्रुतिः स्वधाशरत्स्वधायै पितृणामन्नमिति ब्राह्मणसर्वस्वे हलायुधः । एवञ्च शुषायेत्यादिना ऋतुनमस्कारे सिद्धे यजु-र्वेदिना न वसन्तायेति पाठः प्रतीयते एककार्यकारित्वात् अतएव मैथिलपद्धतिरपि तथैव एवं श्रीशिशिरवर्षावसन्त-हेमन्तशरद्रूपतया पितृन्ममस्तुत्य एतद्दः पितरो वास इत्यनेन शुक्लवस्त्रदशाभवं सूत्रं दद्यात् । माध्यन्दिनशाखिनान्तु ओम् नमो वः पितरो रसाय ओम् नमो वः पितरः शोषाय ओम् नमो वः पितरो जीवाय ओम् नमो वः पितरः स्वधायै ओम् नमो वः पितरो घोराय ओम् नमो वः पितरो मन्यवे इति वसन्ताय षड्रुपतया पितृन्ममस्तुत्य ओम् नमो वः पितर इति कव्यवाहनादिरुपतया पितृन्ममस्तुत्य ओम् नमो वो गृहान्नः पितरो दत्त इति पितृन् वरं प्रार्थयेत् ओम्

यजुर्वेदिश्राद्धतत्त्वम् ।

४६३

सदी वः पितरो देव इति कृताञ्जलिः पठेत् ओम् एतद्वाः
 पितरो वास इति पठित्वा वासःसूत्रं दद्यात् तत्र पिण्डपितृ-
 यज्ञे वासो दानानन्तरं यदूर्जं वहन्तीरित्यनेन सेचनमुक्तं तत्
 पिण्डपितृयज्ञ एव श्राद्धपिण्डे तु स्वधावाचनीयेषु अपो
 निषिञ्चतीति श्राद्धसूत्रेऽभिधानात् स्वधावाचनानन्तरमेव
 ऊर्जं वहन्तीरित्यनेन सेकः अतएव 'अथातो गोभिलोक्ताना-
 मन्धेप्राञ्चेव कर्मणान् । अस्यष्टानां विधिं सम्यग् दर्शयिष्ये
 प्रदीपवत्' इत्यनेन प्रतिज्ञाय 'प्रार्थनासु प्रतिप्रोक्ते सर्वास्वेव
 द्विजोत्तमैः । पवित्रान्तर्हितान् पिण्डान् सिञ्चेदुत्तानपात्र-
 क्षत्' इत्यनेन एतदपि छन्दोगपरिशिष्टेन व्यक्तीकृतम् एवं
 श्राद्धचन्द्रिकायां सुस्पष्टरथाः । अवधाय नस्त्रीभूय जिघ्रति
 पिण्डानिति शेषः पिण्डपितृयज्ञोक्तोत्प्लवकनिक्षेपः साम्नि-
 कर्त्तव्य एव आहिताग्नी निक्षिप्यत्वात् आचान्तेषु इत्येक
 इति एके अन्ये नन्यस्य इति शेषः आचान्तेषु इति । आचान्तेषु
 ब्राह्मणेषु देवे यज्ञादाचमनं विश्वे देवोपविष्टानां चरमं हस्त-
 धावनं विसर्जनम्तु निर्दिष्टं तेषु रक्षा यतः स्मृताः' इति वच-
 नात् पितृब्राह्मणादिदेवब्राह्मणान्यं कारयेत् । तच्च पितृ-
 पूजानन्तरं 'गन्धादीक्षिपेत्तूष्णीं तत आचमयेद्विजान्' इति
 छन्दोगपरिशिष्टात् । उदकं शिवा आपः सन्वित्यनेन
 पुष्पाणि सीमनस्यमस्त्वित्यनेन अक्षतान् अक्षतञ्चारिष्टञ्चास्वि-
 त्यनेन ब्राह्मणेष्वो दद्यात् तद्वत्तं छन्दोगपरिशिष्टे 'शिवा
 आपः सन्विति च पुष्मानेवोदकेन तु सीमनस्यमस्त्विति च
 पुष्पदानमनन्तरम् । अक्षतञ्चारिष्टञ्चास्वित्यक्षतान् प्रतिपाद-
 येत् । अक्षथ्योदकदानञ्च अर्घ्यदानवदिष्यते । षष्ठैव नित्यं तत्
 कुर्यात् न चतुर्थ्या कदाचन' इति एतज्जलादिदानं देवे प्राक्
 कर्त्तव्यम् । 'यत्र यत् क्रियते कर्म पैटके ब्राह्मणान् प्रति ।

४८४

यजुर्वेदिश्राद्धतत्त्वम् ।

तत् सर्वं तच्च कर्त्तव्यं वैश्वदैवत्यपूर्वकम् इति देवलवचने ब्राह्मण-
सम्बन्धिप्राप्तकर्मणां देवपूर्वकत्वाभिधानात् अतएव सेतिकर्त्त-
व्यताकपिण्डदानं देवे निवर्त्तते । अक्षय्योदकदानन्तु पितॄन्
एव अक्षय्योदकं दद्यात् पितृकब्राह्मणेभ्य इति संवत्सरप्रदोष-
धृतविष्णुसूत्रात् । 'अक्षय्यं वाचयेत् पितॄन् चरमं सतिलोद-
कम् । इति पशुपतिधृतदेवलवचनात् । अघोरा इत्यादिना
आशीः प्रार्थनन्तु दक्षिणामुखकर्त्तव्यत्वात् पितृतः प्रार्थनीय-
त्वाच्च न देवे । तदुक्तं मनुना 'दक्षिणान्दिशमाकाङ्क्षन् याचेते-
मान् वरान् पितॄन्' इति । आकाङ्क्षन् पश्यन्निति तट्टीकाकृतः ।
प्राङ्मुखेन वरप्रार्थनन्तु शाख्यन्तरीयं गृह्ये दातार इत्येक एव
मन्त्रः कर्कहरिसम्मतः अपिपालेनापि तथा प्रयोगो लिखितः
श्रीदत्तादिभिस्तु मत्स्यपुराणदर्शनात् दातार इत्यादिमात्र
याचिष कञ्चन इत्यन्तमन्त्रद्वयम् । एताः सत्याशिषः सन्त्विति
च लिखितम् । तथाच मत्स्यपुराणम् 'अघोराः पितरः सन्तु
सन्त्वित्युक्तः स तैः पुनः । गोत्रं तथा वर्जितां नस्तथेत्युक्तः स तैः
पुनः । दातारो नोऽभिवर्द्धन्तामन्नञ्चैवेत्यदौरयेत् । एताः सत्या
आशिषः सन्तु सन्त्वित्युक्ते च तैर्द्विजेः' । इति गृह्योक्तमन्त्राधिकं
लिखितम् इति फलार्थितया तथैव व्यवह्रियते स्वधावाचनी-
यान् स्वधावाचनीयार्थमास्तरणीयान् वृद्धप्रमातामहेभ्यश्चेति
चकारः प्रत्येकार्थः । तेन पितृभ्यः स्वधोच्यतामित्यादि । तथाच
कुन्दोगपरिशिष्टम् 'अघेऽक्षय्योदके चैव पिण्डदानावनेजने ।
तन्त्रस्य विनिवृत्तिः स्यात् स्वधावाचन एव च' इति अस्तु
स्वधेति सकृदेव प्रतिवचनं स्वधावाचनीयेषु पिण्डोपरि
आस्तृतदर्भेषु अपो निषिञ्चति वासो दानानन्तरं पिण्डपितृ-
वच्चे यज्जलसेचनमुक्तं तदेव आह्वे स्वधावाचनानन्तरं विद-
धाति लाघवात् उत्तानमिति न्युज्जीकृतमध्यपात्रमुत्तानं कृत्वा

यजुर्वेदित्राहतस्वम् ।

४८५

ब्राह्मणाय दक्षिणां दद्यात् । विश्वे देवाः प्रीयन्तामिति दैवे
ब्राह्मणान् पृच्छेत् ते च प्रीयन्तामिति ब्रूयुः । विसृज्य आदौ
धितृन् पश्चाद्देवानिति शेषः अनुव्रज्य ब्राह्मणानिति शेषः ।
प्रविशेद् गृहमिति शेषः ।

अथ एकोद्दिष्टम् । तत्र कात्यायनगृह्यम् । 'अथ एको-
द्दिष्टम् एकोऽर्घ्यः एकं पवित्रम् एकः पिण्डो नावाहनं नाम्नी
करणं नात्र विश्वे देवाः स्वदितमिति दक्षिप्रश्ने सुखदितमिति
अनुज्ञानम् उपतिष्ठतामिति अक्षय्यस्थाने अभिरम्यतामिति
विसर्गः अभिरताः स्म इत्यपरे इति' । अस्यार्थः अथेति
आनन्तर्यवचनं विशेषेतरत्र पार्वणविधेरनुकर्षणार्थम् एको-
द्दिष्टमिति वक्ष्यमाणेति कर्त्तव्यताकमेकं प्रेतमुद्दिश्य यत् क्रियते
आहुं तदेकोद्दिष्टम् एकम् एकदलरूपं पवित्रम् अतएव सायना-
चार्येण पवित्रासि वैष्णवीति विहृत्य छेदनमन्त्रो लिखितः ।
नावाहनमिति अत्र कात्यायनेन आवाहने तिलविकरणानन्तरं
जप्यत्वेनाभिधानात् आयान्तु नः इत्यस्य एकोद्दिष्टे वाजसने-
यिनां निवृत्तिर्नास्ति गोभिलेन आवाहने एवायं मन्त्रः कथित
इति छन्दोगानामेकोद्दिष्टे निवर्त्तते इति श्रीदत्तः । तत्र
गोभिलेन तादृशपाठादर्शनात् किन्तु आवाह्य आयान्तु न
इति कात्यायनेन तुल्य एव गोभिलेऽपि सर्वत्र पाठो दृश्यते ।
ततश्च छन्दोगानामिव आवाहननिषेधे जप्यस्यायान्तु इत्य-
स्यावाहनप्रकाशकस्यापि वाजसनेयिनां बाधः । दत्ताः स्य इत्यत्र
स्वदितमिति दक्षिप्रश्नः अनुज्ञानं प्रत्युत्तरम् । अक्षय्यमस्वि-
त्वत्र उपतिष्ठतामिति वदेत् वाजे वाजे इति मन्त्रस्थाने अभि-
रम्यतामिति विसर्जनम् आश्वलायनगृह्यपरिशिष्टं प्रेतश्राद्धेषु
सर्वेषु न स्वधा नाभिरम्यताम् । स्वस्त्यस्तु विसृजेदेवं सकृत्
ग्रणववर्जितमिति । एकोद्दिष्टे ग्रणववर्जितं स्वस्तीत्यनेन

४८६

यजुर्वेदिश्राद्धतत्त्वम् ।

यद्विसर्जनमुक्तं तत् प्रेतश्राद्धविषयकमिति श्रौततत्वाचस्यति-
मिश्रप्रभृतयः । तन्न वङ्गचानामेव पार्वणे अभिरम्यतामिति
विसर्जनस्य प्राप्तत्वात् सर्वशाखिनिषेधानुपपत्तेः अभिरम्यता-
मिति विसर्जनमभिधाय एतत् प्रेतश्राद्धमिति गोभिलेनाभि-
धानाच्च अपरे ब्राह्मणा अभिरताः स्म इति प्रत्युत्तरं ब्रूयुः ।

अथ सपिण्डीकरणम् । तत्र कात्यायनगृह्यं 'ततः संवत्-
सरे पूर्णे चत्वारि पात्राणि सतिलगन्धोदकानि त्रीणि पितृ-
णामेकं प्रेतस्य प्रेतपात्रं पितृपात्रेषु आसिञ्चति' । ये समाना
इति द्वाभ्याम् एतेनैव पिण्डो व्याख्यातः । ततो द्वादशमासिकै-
कोद्दिष्टानन्तरं पूर्णे संवत्सरे प्रथमसंवत्सरान्तमृततिथौ चत्वारि
इति मातामहपक्षव्युदासार्थं प्रेतपात्रं प्रेतपात्रस्थजलं पितृ-
पात्रेषु पितृपात्रस्थजलेषु । द्वाभ्यां मन्वाभ्याम् एतेनार्घ्यजल-
समन्वयप्रकारेण पिण्डः पिण्डसमन्वयो व्याख्यातः कथितः
कात्यायनभाष्यकृत्नीलाखरधृता काठकीयश्रुतिः । 'दत्त्वा
पिण्डान् पितृभ्यः पश्चात् प्रेतस्य पार्श्वतः । तच्च पिण्डं विधा-
कृत्वा आनुपूर्व्या च सन्ततम् । विदध्याक्षिषु पिण्डेषु एवं
संसर्जने विधिः' संसर्जने मिश्रणे अत्र त्रीणि पितृणामेकं प्रेतस्य
इति कात्यायनगृह्ये पाठक्रमात् । 'श्राद्धयमुपक्रम्य विदधौत
सपिण्डताम् । तयोः पार्वणवत् पूर्वमेकोद्दिष्टमथापरम्' इति
परिशिष्टप्रकाशधृतवचने पार्वणैकोद्दिष्टयोः पौर्वापर्यस्य शाब्द-
क्रमाच्च देवपक्षकृत्यं ततः पितृपक्षकृत्यं ततः प्रेतपक्षकृत्यमिति
'प्रेतविप्रस्य हस्ते तु चतुर्भागं जलं क्षिपेत् । ततः पितामहा-
दिभ्यस्तन्मन्त्रैश्च पृथक् पृथक्' इति ब्रह्मपुराणे उत्सृष्टार्घ्य-
जलसमन्वये शाब्दक्रमानुरोधेन प्रेतादित्वस्य च विशेषतो
विधानात् सामगवाजसनेयिनोरपि अर्घ्यजलोत्सर्ग एव प्रेता-
दित्वम् । यत्तु असपिण्डीकरणं संवत्सरम् एकं पिण्डमनुद्दिश्य

यजुर्वेदिश्राद्धतत्त्वम् ।

४८७

संवत्सरान्ते चत्वार्युदकपात्राणि प्रयुनक्ति तत्रैकं प्रेतस्य त्रीणी-
सरेभ्य इत्याश्वलायनगृह्ये सपिण्डने प्रेतादित्वं तद्वहृचमात्र-
परम् । एवमन्यानि वचनानि यथायोग्यं व्याख्येयानि एतेन
आश्वलायनगृह्यदर्शनाच्छन्दोगयजुर्वेदिनोरपि सपिण्डने आदौ
देवकृत्यं ततः प्रेतकृत्यं ततः पितृकृत्यमिति मैथिलोक्तं हेयं
देवकृत्यपितृकृत्ययोर्मध्ये प्रेतकृत्येन व्यवधानस्यायुक्तत्वात् ।
यच्चात्र न देवं योजयेत् । प्रागेव देवे अर्घ्यं गन्धादिकञ्च दत्त्वा
गन्धमाल्यैः पात्रमर्चयित्वा हुतशेषं पितृभ्यः पात्रेषु दद्यात्
इति पितृपदार्थे देवं न मिश्रयेदिति कल्पतरुव्याख्याने मैथि-
लानां तथाचरणं सर्वशास्त्रिनामुक्तं तदपि न युक्तम् आश्वलाय-
नेन काण्डानुश्रयस्योक्तत्वात् वहृचानामेव तथायुक्तत्वात् सामग-
यजुर्वेदिनोस्तु विशेषाभिधानात् सर्वत्रैव पार्वणवदेव पदार्था-
नुश्रयः । अत्र सामगयजुर्वेदिनोः श्राद्धसूत्रे समन्वयमात्रे
मन्त्रदर्शनात् तत्रैव मन्त्रान्वयः पितृदयितादावुक्तः । किन्तु
सूत्रानुक्तोऽपि देवताभ्य इति पाठवद्विभागेऽपि मन्त्रान्वयो
युक्तः पौराणिकत्वात् अतएव मैथिलैरपि तथा लिखितम् ।

अथ सांवत्सरिकश्राद्धम् । तत्र कात्यायनगृह्यम् । ‘अत
ऊर्द्धं संवत्सरे संवत्सरे प्रेतायान्नं दद्याद् यस्मिन्नहनि प्रेतः
स्वादिति’ । अत ऊर्द्धं पूर्णसंवत्सरादुपरि संवत्सरे संवत्सरे
द्वितीयवत्सरादौ प्रतिसंवत्सरमन्नं दद्यात् श्राद्धं कुर्यात् । कुत्रे-
त्यपेक्षायामाह यस्मिन्निति यन्मासीय यत्पक्षीयतिथौ मृतः
स्यात् । उत्तरवाक्यस्य यच्छब्दात्तच्छब्दानपेक्षेति न्याया-
त्तस्मिन्निति नोक्तम् । तेन मृततिथिसजातीयतिथौ प्रतिसंव-
त्सरं कुर्यादित्यर्थः ।

अथाभ्युदयिकश्राद्धम् । तत्र कात्यायनगृह्यम् ‘आभ्युदयि-
कश्राद्धे प्रदक्षिणमुपचारः पित्र्यमन्त्रवर्जं जपः ऋजं वो दर्भाः

४६८

यजुर्वेदिश्राद्धतत्त्वम् ।

यवेस्त्रिलार्थः सम्पन्नमिति त्वमि प्रश्नः सुसम्पन्नमित्यनुज्ञानं
 दधिवदराक्षतमिश्राः पिण्डाः नान्दौमुखान् पितॄन् आवाह-
 यिष्ये इति पृच्छति नान्दौमुखाः पितरः प्रीयन्तामिति अक्ष-
 यस्थाने नान्दौमुखान् पितॄन् वाचयिष्ये इति पृच्छति ।
 नान्दौमुखाः पितरः पितामहाः प्रपितामहाः मातामहाः
 प्रमातामहाः वृद्धप्रमातामहाः प्रीयन्तां न स्वधाञ्च प्रयुञ्जी-
 तेति' । अस्मार्थः । पुत्रजन्मादावभ्युदये यत् श्राद्धं तदा-
 भ्युदयिकमुच्यते प्रदक्षिणं देवपितृकर्मकरणाय दक्षिणावर्त्तेन
 गन्तव्यं न वामावर्त्तेन एतेन दक्षिणत आरभ्य आसनादि-
 सम्प्रदानं मैथिलापिपालरायमुकुटाद्युक्तं युक्तम् । अत्राभ्यु-
 दयिकी युग्माः ब्राह्मणाः सन्मूला दर्भाः प्राङ्मुखेभ्य उदङ्मुखो
 दद्यात् इति आश्वलायनवचनात्मात्रादि ब्राह्मणानां प्राङ्मुख-
 त्वमिति पार्वणादिशब्दः ततश्च पश्चिमदिशि नैऋतकोणे
 देवानां तदुत्तरे मातॄणां तदुत्तरे पितॄणां तदुत्तरे मातामहा-
 नान् आसनानि प्राग्वशर्षभययुक्तानि परिकल्प्य दक्षिणाव-
 र्त्तेन कर्म कुर्यात् एवमेवापिपालमैथिलरायमुकुटप्रभृति-
 पद्धतिषु न च अक्षयपर्वतं देवब्राह्मण दक्षिणतो मात्रादि
 ब्राह्मणानामुपवेशनस्य दृष्टत्वात् अत्रापि तदनुसारेण वायु-
 कोणे देवब्राह्मणानुपवेशनं प्रादक्षिण्येन गत्वा निऋतिकोणा-
 दारभ्य मात्रादिब्राह्मणोपवेशनं युक्तमिति वाच्यम् अन्यष्टकायां
 वामाचारानुरोधी न देवब्राह्मण दक्षिणपार्श्वे मात्रादि-
 ब्राह्मणोपवेशनम् अत्र च दक्षिणोपचारेण तदितरकल्पनस्या-
 दोषात् अन्यष्टकायां देवब्राह्मणसन्निधानक्रमेण मातृपितृमा-
 तामहब्राह्मणानामुपवेशनस्य दृष्टत्वादत्रापि तथैव युक्तत्वाच्च
 अत्र आवाहनप्रश्नादौ पितृपदस्य प्राप्तपितृलोकोपाधिपरत्वात्
 मातामहपदवत्प्राप्तपदेऽपि न पृथगाचरणं किन्तु सक्तदेवा-

यजुर्वेदिश्राद्धतत्त्वम् ।

४६८

चरणम् एवञ्च 'दध्यक्षतैः सवदरैः प्राङ्मुखोदङ्मुखोऽपि वा ।
 दैवतीर्थेन वै पिण्डं दद्यात् कायेन वा नृप' इति । विष्णु-
 पुराणीयेन पिण्डदाने उदङ्मुखत्वाभिधानमपि यजुर्वेदि
 परम् आसनादिदाने उदङ्मुखत्वस्य प्राप्तत्वात् पिण्डदानेऽपि
 तथैव युक्तत्वात् । प्राङ्मुखपिण्डदाने आवाहितपितृणां
 पृष्ठस्थतापत्तेः । पितृग्रमन्त्रवर्जं जप इति पितृग्रमन्त्रवर्जं
 यथा स्यात्तथा भोजनकाले जपः 'न चाश्रत्सु जपेदत्र
 कदाचित् पितृसंहिताम् । अन्य एव जपः कार्यः सोम-
 सामादिकः शुभः' इति छन्दोगपरिशिष्टैकवाक्यत्वात् ।
 पार्वणे द्विगुणा अत्र ऋजवो ज्ञेयाः । यावानर्थस्तिलैः
 कार्यस्तावानर्थो यवैः कार्यः अत्र च द्रव्याभिधायकत्वा-
 न्मन्त्रेऽपि यवोऽसीत्यूहनीयः तृप्ताः स्यः इत्यस्य प्रश्नस्य स्थाने
 सम्पन्नमिति प्रश्नः अनुज्ञानं प्रत्युत्तरम् । अक्षता यवाः ।
 नान्दीमुखान् पितृनित्यनेन मन्त्रेऽभिलापे च नान्दीमुख-
 विशेषणवस्त्वन्तीक्ष्णः पित्रादीनाम् एतच्च पार्वणोक्तस्थाने
 कार्यम् अक्षय्यस्थाने इत्यनेन यजुर्विदामक्षय्यमस्त्वित्यन्त-
 वाक्यमनुक्ता प्राप्तपितृलोकोपाधित्वेन सर्वानुद्दिश्य नान्दी-
 मुखाः पितरः प्रीयन्तामित्यनेन सक्तदेव जलं दातव्यम् आवा-
 हनवत् अत्र कस्यित् प्रकृति पार्वणे पितुरक्षय्यकाल इति वच-
 नात् तथा 'अक्षयोदकदानन्तु अर्घ्यदानवदिष्यते' । तथा
 'अर्घ्येऽक्षयोदके चैव पिण्डदानेऽवनेजने' इति वचनाच्च
 अमुकगोत्रस्य नान्दीमुखस्य पितुरमुकदेवशर्मणोदत्तेनानेना-
 न्नपानादिना नान्दीमुखाः पितरः प्रीयन्ताम् एवं पितामहा-
 दीनामपि प्रीयन्तामिति क्रियानुरोधेन दत्तमित्यादेर्दत्तेने-
 त्यादिना विभक्तिविपरिणाम इति । तत्र अक्षय्यं वाचयेत्
 पित्रे चरमं सतिलोदकमिति देवलवचनात् पार्वणेऽक्षय्य-

५००

यजुर्वेदिश्राद्धतत्त्वम् ।

मिति विशेषणपदविधेर्विशेष्याकाङ्क्षायाम् प्रकृतत्वात् आद्धे दत्तस्यैवान्वयात् । अत्र चतुर्थी सम्बुद्धान्तपदप्राप्तौ षष्ठ्यन्ताभिधानं वाचनिकम् । नान्दीमुखाः पितरः प्रीयन्तामित्यक्षय्यस्थाने इति वृद्धिश्राद्धेऽक्षय्यवाचनस्थाने नान्दीमुखा इत्यादिविधेरक्षय्यनिवृत्तौ विशेष्याकाङ्क्षाविरहात् दत्तमिदमित्यादेराकाङ्क्षितस्यान्वये मानाभावात् तदन्वयिषष्ठ्यन्तसम्बुद्धादिपदानामपि निवृत्तिः अतएव नान्दीमुखाः पितरः प्रीयन्तामिति वाचयेदिति ब्रह्मपुराणवचनेनापि अक्षय्यस्थाने नान्दीमुखा इत्यादिवचनं विशेषाभिधानेन पदाहवनीयन्यायेन सामान्याक्षय्यवाक्यवाधकमिति वाच्यम् । न चैवमेकोद्दिष्टेऽपि उपतिष्ठतामित्यक्षय्यस्थाने इति पारस्करदर्शनात् । अत्रापि षष्ठ्यन्तप्रयोगो मास्त्विति वाच्यं तत्र उपतिष्ठतामित्युक्तेः किमित्याकाङ्क्षायामक्षय्यवदुपस्थितस्य दत्तमिदमित्यादेरन्वये सम्बन्धितया षष्ठ्यन्तस्यापि आकाङ्क्षितत्वात् न च प्राकृतेऽपि तथा विश्वे देवाः प्रीयन्तां नान्दीमुखाः पितरः प्रीयन्तामित्यादि स्वधावाचनस्थानीयवत्तन्मात्रेणैवाभिधानपर्यवसानात् षष्ठ्यैव नित्यमित्यत्र नित्यपदञ्च नान्दीमुखप्रकरणपठितत्वेन न तु तन्मात्रपरं किन्तु पार्वणादिपरम् । एतत् परमुत्तराङ्गं पार्वणेऽपीति निबन्धारः । न च अर्घ्येऽक्षय्योदके चैवेत्यादिवचनविषयत्वेन कुतस्तन्त्रता इति वाच्यं लाभवस्यैव बाधासङ्कतस्य तन्त्रतासाधकत्वात् एतेनाक्षय्योदकं दत्त्वा नान्दीमुखाः पितरः प्रीयन्तामिति । पितृब्राह्मणकरे जलं दद्यादिति श्रीदत्तादिलिखितं चिन्त्यमिति आङ्गचन्द्रिकायां गुरुचरणाः । नान्दीमुखानिति स्वधां वाचयिष्ये इत्यस्य स्थाने नान्दीमुखान् पितृन् वाचयिष्ये इति पितृभ्यः स्वधोच्यतामित्यादिस्थाने नान्दीमुखाः पितर इत्यादि ।

यजुर्वेदिश्राद्धतत्त्वम् ।

५०१

यद्यपि पारस्करेण पित्रादीनामेवोपादानं कृतं न मातादीनां
 तथापि पार्वणे शुद्धन्तां पितर इत्यादिमन्त्राणां मातामहा-
 दाविवोहेन नान्दौमुख्यो मातरः प्रीयन्तामित्यूहेन मन्त्रादिषु
 विनियोगः न च मातामहानामपि एवमित्यादिवचनादस्तु
 तत्र प्रकृतावूहो यावद्वचनन्तु वाचनिकमिति न्यायात् प्रकृते
 तु वचनाभावान्न प्रकृतावूहोऽपूर्वत्वादित्यादिकात्यायनवचनात्
 कथमूह इति वाच्यम् । अत्र जीवति पित्रादौ उक्तक्रमातिदे-
 शस्य यावत् पार्वणोद्देश्य एवाकाङ्क्षितत्वेन मातामहानामिति
 बहुवचनेन तेषामेवोपादानान्मातादीनामपि पार्वणोद्देश्यत्वा-
 विशेषात् तत्रोहविधेर्वाचनिकत्वात् । अन्यथा मातादिजीवने
 वृद्धान्वष्टकादौ अनिर्णयापत्तेः जीवति पितरि वृद्धप्रपितामहे
 आङ्गे शुद्धन्तामिति बहुवचनस्यानूहापाताच्च । न च पार्वणीय-
 त्वेन वृद्धादावूहविधायकमिति वाच्यं तस्य सकलश्राद्धप्रकृति-
 त्वेन विकृतावपि तथात्वलाभात् । प्रीयन्तामित्यस्य सर्वत्रानु-
 षङ्गः स्वधावाचने तन्वतानिषेधादिति प्राञ्चः अनुषङ्ग एव सूत्र-
 स्वरस इति पाश्चात्याः न स्वधाञ्च प्रयुञ्जीतेति पारस्करसूत्रेण
 स्वधावाचननिषेधात् अर्घ्येऽन्नयोदके इत्यस्याविषयत्वे लाघ-
 वात् सक्तदेव नान्दौमुखाः पितरः पितामहाः प्रपितामहाः
 प्रीयन्तामित्यादि वाच्यम् । नानुषङ्गो गौरवात् बाधकं विना
 सूत्रस्वरसहानेरनौचित्यात् अतएव पारस्करेण विवाहप्रकरणे
 जायाहोमे सर्वत्रानुषजतीत्युक्तम् । न स्वधेति अत्र सामा-
 न्यतो निर्देशात् वाक्ये मन्त्रे स्वधावाचने च स्वधानिषेधः
 अतएव बहुवचकारिका प्रदर्शनार्था । 'स्वधयेति पदस्थाने
 पुष्ट्याशब्द' वदेदिह । पितृनिति पदात् पूर्वं वदेन्नान्दौमुखा-
 निति । अत्र ब्रह्मपुराणे । 'दद्यान्नान्दौमुखेभ्यश्च पितृभ्यो
 विधिपूर्वकम्' इत्युपक्रम्य द्राक्षामलमूलानि यवांश्चाथ निवे-

५०२

देवप्रतिष्ठातत्त्वम् ।

दयेत् । तान्येव दक्षिणार्थन्तु दद्याद्विप्रेषु सर्वदा' इति वचनात् पितृपक्ष एव द्राक्षाभिलक्षणादिना दक्षिणाभिधीयते । देवपक्षे तु पार्वणप्राप्तकाञ्चनमेव दक्षिणा । 'हिरण्यं विश्वे-
देवेभ्यो रजतं पितृभ्योऽन्यच्च गोक्षणाजिनादिकं यावच्च शक्नुयात्' इति नव्यवर्द्धमानधृतपारस्करवचनात् । ततश्च देवपक्षेऽपि द्राक्षादिदक्षिणादानं वाचस्पतिमिश्रोक्तं हेयम् । पितृपक्षे रजतस्यामाङ्गलिकत्वात्तत्त्यागात् द्राक्षादिविधानम् । युक्तमिति ।

इति श्रीरघुनन्दनभट्टाचार्यविरचितं यजुर्वेदि-

आहुतत्वं समाप्तम् ।

देवप्रतिष्ठातत्त्वम् ।

प्रणम्य कमलाकान्तं नारायणमनाहतम् ।

प्रतिष्ठां देवतानाञ्च वक्ति श्रीरघुनन्दनः ॥

मत्स्यपुराणम् । 'सौवर्णीं राजतीं वापि ताम्नीं रत्नमयीं तथा । शैलदारुमयीं वापि लौहशङ्खमयीं तथा । रौतिका धातुयुक्ता च ताम्रकांस्यमयी तथा । शुभदारुमयीं वापि देवतार्चां प्रशस्यते । अङ्गुष्ठपर्वं चारभ्य वितस्ति' यावदेव तु । गृहेषु प्रतिमा कार्या नाधिका शस्यते बुधैः । रौतिका पित्तलं शुभदारुमयी यज्ञीयकाष्ठसम्भवा । अर्चा प्रतिमा-
गृहेषु स्वगृहेषु । प्रासादेषु अधिका शुभेतिवचनात् तत्रा-
धिकापि शैलजा गृहे शुभदा तन्त्रान्तरेऽप्युक्ता । 'चिन्मय-
स्त्राद्वितीयस्य निष्फलस्याशरीरिणः । उपासकानां कार्यार्थं

देवप्रतिष्ठातत्त्वम् ।

५०३

ब्रह्मणो रूपकल्पना' । रूपकल्पना रूपस्थानां देवतानां पुंस्त्व्यंशादिकल्पना । गौतमीयतन्त्रे । 'काश्मरी ज्ञानदा प्रोक्ता स्वर्णजापि विमुक्तिदा । तेजोदा दारुजा चैव रैत्तिकी शत्रुनाशिनी । ताम्ब्रीधर्मविवृद्धिञ्च करोति बहुसौख्यदा । ऋद्वैव ऋणमयी प्रोक्ता प्रतिमा शुभलक्षणा । भोगदा मोक्षदा सा तु प्रतिमा कथिता तव' । वराहपुराणे । 'कुड्ये लेख्ये च मे कश्चित् पटे कश्चिच्च मानवः । पूजयेद् यदि वा चक्रे मम तेजोऽशसम्भवे' । कुड्ये लेख्ये भित्तौ लिखिते तथा पटे च लिखिते चक्रे शालग्रामचक्रे । मत्स्यपुराणे लिङ्गमभिधाय 'एवं रत्नमयं कुर्यात् स्फाटिकं पार्थिवं तथा । शुभदारुमयी वापि यद्वा मनसि रोचते । चैत्रे वा फाल्गुने वापि ज्यैष्ठ्ये वा माघवे तथा । माघे वा सर्वदेवानां प्रतिष्ठा शुभदा भवेत् । प्राप्य पक्षं शुभं शुक्लमतीते चोत्तरायणे' । अतीते वृत्ते 'पञ्चमी च द्वितीया च तृतीया सप्तमी तथा । दशमी पीर्णमासी च तथा श्रेष्ठा त्रयोदशौ । तासु प्रतिष्ठा विधिवत् कृता बहु-फला भवेत्' । व्यवहारसमुच्चये । 'प्रतिष्ठा सर्वदेवानां केश-वस्य विशेषतः । उत्तरायणमापन्ने शुक्लपक्षे शुभे दिने । कृष्ण-पक्षे च पञ्चम्याम् अष्टम्याञ्चैव शस्यते' । भुजबलभीमे । 'युगादावयने पुण्ये कर्त्तव्या विषुवद्वये' । चन्द्रसूर्यग्रहे वापि दिने पुण्येऽथ पर्वसु । या तिथिर्यस्य देवस्य तस्यां वा तस्य कीर्त्तिता । गृह्यागमविशेषेण प्रतिष्ठा मुक्तिदायिनी' । पञ्च-पुराणे । 'प्रतिपद्नदस्योक्ता पवित्रारोहणे तिथिः । श्रियो देव्या द्वितीया च तिथीनामुत्तमा स्मृता । तृतीया तु भवा-न्याश्च चतुर्थी तत्सुतस्य च । पञ्चमी सोमराजस्य षष्ठी प्रोक्ता गुह्यस्य च । सप्तमी भास्करे प्रोक्ता दशमी वासुके-स्तथा । एकादशी ऋषीणाञ्च द्वादशी चक्रपाणिनः । त्रयो-

५०४

देवप्रतिष्ठातत्त्वम् ।

दशौ त्वनङ्गस्य शिवस्योक्ता चतुर्दशी । मम चैव मुनिश्रेष्ठ
 पौर्णमासी तिथिः स्मृता । चक्रपाणिन इति पणव्यवहार
 इत्यस्मास्मिन्प्रत्ययः 'महिषासुरहन्वराश्च प्रतिष्ठा दक्षिणा-
 यने' । कल्पतरौ देवीपुराणं 'यस्य देवस्य यः कालः
 प्रतिष्ठाध्वजरोपणे । गर्त्तापूरशिलान्यासे शुभदस्तस्य पूजिता' ।
 यस्य देवस्य प्रतिष्ठाध्वजरोपणे यः कालः शुभदस्तस्य
 गर्त्तापूरशिलान्यासे गृहारम्भे स काल पूजितः इत्यर्थः ।
 प्रतिष्ठासमुच्चये । 'माघेऽथ फाल्गुने वापि चैत्रवैशाखयो-
 रपि । ज्येष्ठाषाढकयोर्वापि प्रतिष्ठा शुभदा भवेत्' ।
 भविष्ये । 'सोमो बृहस्पतिश्चैव शुक्रश्चैवस्तथा बुधः । एते
 सौम्यग्रहाः प्रोक्ताः प्रतिष्ठा यज्ञकर्मणि' । एतद्वारेषु कर्त्तव्या
 इत्यर्थः । मत्स्यपुराणम् । 'आषाढे द्वे तथा मूलसुत्तरात्रय-
 मेव च । ज्येष्ठा श्रवणरोहिण्यः पूर्वभाद्रपदस्तथा । हस्ता-
 श्विनी रेवती च पुष्यो मृगशिरस्तथा । अनुराधा तथा स्वाती
 प्रतिष्ठादिषु शस्यते' । दौपिकायां 'प्राजेशवासवकरादिति
 भास्विनीषु पौष्णामरेज्यशशिभेषु तथोत्तरासु । कर्त्तुः शुभे
 शशिनि केन्द्रगते च जीवे कार्या हरेः शुभतिथौ विधिवत्
 प्रतिष्ठा' । देवीपुराणम् । 'यथा द्वादशमे जीवे अष्टमेवाथ
 भास्करे । प्रतिष्ठा कारिता विष्णोर्महाभयकरी मता' ।
 कल्पतरौ देवीपुराणम् । 'चतुर्वर्णैस्तथा विष्णुः प्रतिष्ठाप्यः
 सुखार्थिभिः' । कालिकापुराणम् । 'प्रतिमायाः कपालौ द्वौ
 सृष्ट्वा दक्षिणपाणिना । प्राणप्रतिष्ठां कुर्वीत तस्यादेवस्य वा
 हरेः । अकृतायां प्रतिष्ठायां प्राणानां प्रतिमासु च । यथा-
 पूर्वं तथाभावः स्वर्णादीनां न विष्णुता । अन्येषामपि देवानां
 प्रतिमासु च पार्थिव । प्राणप्रतिष्ठा कर्त्तव्या तस्यां देवत्व-
 सिद्ध्ये' । प्रतिष्ठा ब्राह्मणद्वारैव कर्त्तव्या । तथा हयशीर्ष-

देवप्रतिष्ठातत्त्वम् ।

५०५

पञ्चरात्रे भगवद्वाक्यं 'कर्त्तुमिच्छति यः पुण्यं मम मूर्त्ति-
प्रतिष्ठया । अन्वेषणीयस्त्वाचार्यस्तेन लक्षणसंयुतः । ब्राह्मणः
सर्ववर्णानां पञ्चरात्रविशारदः । ब्राह्मणानामभावे तु क्षत्रियो
वैश्यशूद्रयोः । क्षत्रियाणामभावे तु वैश्यः शूद्रस्य कल्पितः ।
कदाचिदपि शूद्रस्तु न चाचार्यत्वमर्हति' बृहन्नारदीये ।
'नमेद् यः शूद्रसंस्पृष्टं लिङ्गं वा हरिमेव वा । स सर्व-
यातनाभोगो यावदाहृतसंज्ञवम्' । आहृतसंज्ञवं प्रलयपर्य-
न्तम् । तथा 'स्त्रीणामनुपनीतानां शूद्राणाञ्च जनेश्वर ।
स्पर्शने नाधिकारोऽस्ति विष्णौ वा शङ्करेऽपि वा' । कर्मादौ
तु नवग्रहपूजामाह मत्स्यपुराणं 'नवग्रहमखं कृत्वा ततः कर्म
समारभेत् । अन्यथा फलदं पुंसां न काम्यं जायते क्वचित्' ।
प्रतिष्ठाप्रकारस्तु विस्तरेण मत्स्यपुराणादावुक्तः । तदसम्भवे
विद्याकरवाजपेयिसम्मतो भविष्यादावुक्तो ग्राह्यः । यथा
भविष्यपुराणं 'स्नापनादियथाशक्ति कृत्वा तन्मूलमन्त्रकम् ।
विन्यसेद्बृहद्याम्भोजे प्रतिष्ठा सुकृता भवेत्' । आदिपदात् पूजो-
क्तवहोमादि । महाकपिलपञ्चरात्रोक्तकर्म च कर्त्तव्यं तद्यथा
'सपुष्पं सकुशं पाणिं न्यसेद्देवस्य मस्तके । पञ्चवारं जपेन्मूल-
मष्टोत्तरशतोत्तरम् । ततो मूलेन मूर्द्धादिपीठान्तं संस्पृशे-
दिति । तत्त्वन्यासं लिपिन्यासं मन्त्रन्यासञ्च विन्यसेत् ।
पूजाञ्च महतीं कुर्यात् स्वतन्त्रोक्तां यथाविधि । प्राण-
प्रतिष्ठामन्त्रेण प्राणस्थापनमाचरेत्' । लिपिन्यासः मातृका-
न्यासः । उक्तञ्च 'जपादौ सर्वमन्त्राणां विन्यासेन लिपिं
विना । कृतं तन्निष्फलं विद्यात् तस्मात् पूर्वं लिपिं न्यसेत्' ।
कादिमतेऽपि 'मातृकायाः षडङ्गञ्च मातृकान्यासमेव च ।
सर्वासां प्रथमं कृत्वा पश्चात्तन्त्रोदितं न्यसेत्' । एतद्वचनाच्च
पूर्वं मातृकान्यासः पश्चात्तत्त्वन्यासः । क्रमद्वैपिकायामप्येवं

५०६

देवप्रतिष्ठातत्त्वम् ।

क्रमो मन्त्रन्यासश्च तत्तन्मन्त्रविशेषोक्तपदवर्णन्यासः । तदभावे
 शिरसि मूलमन्त्रेण तत्त्वन्यासः । तत्त्वन्यासस्तु विष्णुविषयक
 एव न्यासप्रमाणानि शारदाक्रमदीपिकोक्तस्यानुसन्धेयानि
 प्राणप्रतिष्ठामन्त्रस्तु शारदात्रयोविंशतिपटलोक्तः । यथा 'पाशा-
 ङ्कुशपुटाशक्तिर्वाणी विन्दुविभूषिता । याद्याः सप्तसकारान्ता
 व्योमसत्येन्दुसंयुता । तदन्ते हंसमन्त्रः स्यात्ततोऽमुष्य पदं
 वदेत् । प्राणा इति वदेत् पश्चादिह प्राणास्ततः परम् ।
 अमुष्य जीव इहस्थितस्ततोऽमुष्य पदं वदेत् । सर्वेन्द्रियाण्य-
 मुष्यान्ते वाङ्मनश्चक्षुरन्ततः । श्रोत्रघ्राणपदे प्राणा इहागल्य
 सुखं चिरम् । तिष्ठन्त्यग्निबधूरन्ते प्राणमन्त्रोऽयमीरितः ।
 प्रत्यमुष्यपदात् पूर्वं पाशाद्यानि नियोजयेत् । प्रयोगेषु समा-
 ख्यातः प्राणमन्त्रो मनौषिभिः' । पाशाङ्कुशपुटाशक्तिरित्यनेन
 प्रथमं पाशवीजम् आं ततः शक्तिवीजं क्लीं ततोऽङ्कुशवीजं क्रीं
 वाणीयकारः विन्दुविभूषितः । तेन यं याद्याः सप्तसकारान्ता
 उद्धृतयकारानुवादेन सप्त न तु तद्भिन्नं वीजं पूर्वं पृथगुच्चारस्तु
 वर्णसप्तानामपि सविन्दुताख्यापनाय अन्यत्राप्यङ्कुशवायुनला-
 वनौवहणवीजान्युक्तानि अत्र वायुवीजस्यैकत्वं वीजत्वेन
 सर्वेषां सविन्दुत्वं व्यक्तं राघवभट्टोऽप्येवम् अन्यस्तु वाणीविन्दु-
 विभूषिता । इत्युक्त्वा नादविन्दुभूषिता इति व्याख्याने याद्या
 इत्यस्य विशेषणं वदति व्योमहकारः सत्य ओकारः इन्दुर्विन्दुः
 तेन होम् अतएव पाशाङ्कुशान्तरितशक्तिमनोः पुरस्तादुच्चार्य्य
 यादिवसुवर्णगुणं सहस्रमिति । प्रपञ्चसारोऽप्याह । गुण-
 मित्यनेन होमिति पद्मपादाचार्य्यैर्व्याख्यातम् अग्निबधूः स्वाहा
 तेनायं मन्त्रः आं क्लीं क्रीं यं रं लं वं शं षं सं ह्रीं हं सः अमुष्य
 प्राणा इह प्राणाः । आमित्यादि अमुष्य जीव इह स्थितः ।
 आमित्यादि अमुष्य सर्वेन्द्रियाणि । आमित्यादि अमुष्य

देवप्रतिष्ठातत्त्वम् ।

५०७

वाङ्मनश्चक्षुःश्रोत्रघ्राणप्राणा इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु
 स्वाहा । अमुष्येति षष्ठान्तदेवतानामोपलक्षणम् 'अदः पदं
 हि यद्रूपं यत्र मन्त्रे हि दृश्यते । साध्याभिधानं तद्रूपं तत्र
 स्थाने नियोजयेत्' इति नारदीयात् । वशिष्ठसंहितायां
 'हृदि हस्तं समादाय मूलमन्त्रञ्च संजपेत्' । मूलमन्त्रं
 सत्तद्देवतामन्त्रकं स च वैदिकस्तान्त्रिकश्च 'ओङ्कारादिसमा-
 युक्तं नमस्कारान्तकीर्तितम् । स्तनामसर्वसत्वानां मन्त्र
 इत्यभिधीयते' । इति ब्रह्मपुराणीयेन ओङ्कारादिचतुर्थ्यन्त
 तत्तद्देवतानामरूपो वा । कालिकापुराणेऽपि । 'प्रतिमायाः
 कपोली द्वौ सृष्ट्वा दक्षिणपाणिना । प्राणप्रतिष्ठां कुर्वीत
 तस्या देवस्य वा हरेः । वासुदेवस्य वीजेन तद्विष्णोरित्यनेन
 तथैवाङ्गाङ्गिमन्त्राभ्यां प्रतिष्ठामाचरेच्चरेः । तथैव हृदयेऽङ्गुष्ठं
 दत्त्वा शश्वच्च मन्त्रवित् । एभिर्मन्त्रैः प्रतिष्ठान्तु हृदयेऽपि
 समाचरेत् । असौ प्राणाः प्रतिष्ठन्तु असौ प्राणाः चरन्तु च ।
 असौ देवत्वसंख्यायै स्वाहेति यजुरीरयन् । अङ्गमन्त्रैरङ्गि-
 मन्त्रैर्वैदिकैरित्यनेन च । प्राणप्रतिष्ठां सर्वत्र प्रतिमासु
 समाचरेत् देवीप्रतिष्ठायाम् अस्मा इत्यत्र अस्यै देवत्वसंख्यायै
 इत्युक्तः । सारस्वत्यां मेष्ठां प्रास्मा इत्यत्र प्रास्यै इत्युक्तवत् ।
 अङ्गमन्त्रैरङ्गन्यासमन्त्रैः अङ्गिमन्त्रैः प्रधानमन्त्रैः वैदिकैः ओम्
 मनो ज्योतिर्जुषतामित्यादिमन्त्रैः स्तपनात् पूर्वं वल्मीक-
 मृत्तिकादिभिस्त्रिभिः चालनमाह हयग्रीर्षपञ्चरात्रं 'वल्मीक-
 मृत्तिकाभिस्तु गोमयेन सुभस्मना । चालयेत् शिल्पिसंस्पर्श-
 दोषाणामुपशान्तये । स्नापयेद्बन्धतोयेन शुद्धवत्या तु देशिकः ।
 नमस्तेऽर्चे सुरेशानि प्रणीते विश्वकर्मणा । प्रभाविताशिष-
 जगद्धात्रि तुभ्यं नमो नमः । त्वयि संपूजयामीशे नारायण-
 भवामयम् । रहिता शिल्पदोषैस्तु मृद्वियुक्ता सदा भव' ।

५०८

देवप्रतिष्ठातृत्वम् ।

तेन च यथाशक्तिसंप्रपन्नादीतिकर्तव्यताकः प्रतिमाहृदये
 तन्मूलमन्त्रविन्यासो देवताविशेषसन्निधिः प्रतिष्ठेति । राघव-
 भट्टृतमहाकपिलपञ्चरात्रेऽपि 'प्रतिष्ठाशब्दसंसिद्धिः प्रति-
 पूर्वाच्च तिष्ठते । वह्न्यर्थात्त्रिपातानां संस्कारादौ प्रतेः स्थितिः ।
 अर्थस्तदयमेतस्य गीयते शाब्दिकैर्जनैः । विशेषसन्निधेर्या तु
 क्रियते व्यापकस्य तु । मन्मूर्त्तौ भावना मन्त्रैः प्रतिष्ठा सा
 विधीयते' । सुभस्मना गोमयभस्मना गन्धतोयेन चन्दनादि-
 युक्ततोयेन देवतास्नानीयद्रव्यपरिमाणमाह ब्रह्मपुराणम्
 अष्टोत्तरं पलशतं स्नाने देयञ्च सर्वदा' । पलमाह मनुः ।
 'पञ्च क्षणलको माषस्ते सुवर्णस्तु षोडश । पलं सुवर्णा-
 श्रत्वारः' इति । ततश्च अष्टरत्तिकाधिकलौकिकमाषद्वयाधिका-
 तोलकत्रयेण वैधपलं भवति । ३ । २ । ८ । एवं तथाविधा-
 ष्टोत्तरशतपलपरिमितेन । लौकिकषष्ट्यधिकशतत्रयतोलका
 इति एवं वल्मीकसृत्तिकादिज्ञाने सर्वाङ्गान् जलस्पर्शने
 स्नानरूपत्वात्तत्रापि अष्टोत्तरं शतपलमिति वदन्ति । वल्मीक-
 सृदादिस्नाने मन्त्रविशेषानुपादानात् मन्त्रानादेशे गायत्रीति
 शूलपाणिलिखितात् गायत्र्या तत्तन्मूलमन्त्रेण वा स्नानं
 कारयितव्यं गन्धोदकस्नाने तु शुद्धवत्या एतान्निन्दमित्यादि
 ऋक्त्रयात्मिकैर्देविको यजमानो गुरुर्वा विज्ञः । नमस्ते
 इत्यादि विज्ञापनमन्त्रौ देवतान्तरे च । नारायणमित्यत्र
 तत्तद्देवतानामोहः शिवलिङ्गस्यार्चत्वात् अर्चाविशेषणत्वात्
 स्त्रीलिङ्गमविरुद्धम् । यमः 'कृत्वा देवगृहं सर्वं प्रतिष्ठाप्य च
 देवताम् । विधाय विधिवत् पूजां तल्लोकं विन्दते ध्रुवम्' ।
 नारसिंहे । 'प्रतिमां लक्ष्मणोपेतां नरसिंहस्य कारयेत् ।
 सर्वपापानि संत्यज्य स तु विष्णुपुरं व्रजेत् । प्रतिष्ठां नर-
 सिंहस्य यः करोति यथाविधि । निष्कामो नरशार्दूल देह-

देवप्रतिष्ठातत्त्वम् ।

५०८

अस्मात् प्रमुच्यते । सकामो नरसिंहस्य पुरं प्राप्य प्रमोदते ।
विधिवत् स्नापयेद् यस्तु कारयित्वा जनार्दनम् । न जातु
निर्गमस्तस्य विष्णुलोकात् कथञ्चन' । नरसिंहस्य विष्णोः ।
उपसंहारे तथा दर्शनात् । माधवोल्लासे । 'देवस्य प्रति-
मायास्तु यावन्तः परमाणवः । तावद्वर्षसहस्राणि विष्णुलोके
मह्यीयते' । राजमार्त्तण्डे । 'पुन्नोत्पत्तौ तथा आहमन्न-
प्राशनिके तथा । चूडाकार्यं व्रते चैव नाम्नि पुंसवनेषु च ।
पाणिग्रहे प्रतिष्ठायां प्रवेशे नववेश्मनः । एतद्वृद्धिकरं नाम
गृहस्थस्य विधीयते' वृद्धिकरं आहमित्यन्वयः सूत उवाच ।
'कलौ चेकाहसाध्येन प्रतिष्ठां मन्दवित्तवान् । मध्यमेनाधमे-
नापि प्रकुर्यात्तान्त्रिकोत्तमः । नित्यं निर्वर्त्य मतिमान् कुर्या-
दभ्युदयन्ततः । विप्रान् संभोजयेन्नाथ ततो यागगृहं
व्रजेत् । गणेशग्रहदिक्पालान् प्रतिष्ठाकुम्भेषु पूजयेत् ।
स्थण्डिले पूजयेद्विष्णुं परिवारगणं यजेत् । स्नापयेत्
प्रथमं देवं तोषैः पञ्चविधैरपि । पञ्चासृतैः पञ्चगव्यैः पञ्चभूत-
पिण्डकैरपि । तिलतैलैस्तथा स्नेहैः कषायैरपि सत्तमाः ।
तथा जम्बुशाल्मलिवाय्यालं वदरं वकुलं तथा । एतेषां
वल्कलरसः कषायः परिकीर्तितः । पञ्चपुष्पोदकैर्वाथ त्रिप-
त्रैरपि सत्तमाः । तुलसीकुन्दमालूरपद्राण्याहुस्त्रिपत्रकम् ।
चम्पकास्त्रशमीपद्मकरवीरञ्च पञ्चकम् । मृत्तिका करिदन्तस्य
पर्वताश्वत्थुरस्य च । कुशवल्मीकसम्भूतं मृत्पद्ममीरितम् ।
गोमूत्रं गोमयं चीरं दधिसर्पिः कुशोदकम् । कुर्यात् प्राण-
प्रतिष्ठाञ्च होमं कुर्याद् यथाविधि । दक्षिणां विधिवत्
कुर्यात् पूर्णार्घ्यं तदनन्तरम्' । इति भविष्यपुराणे तृतीय-
भागे नवमोऽध्यायः । नरसिंहपुराणे । 'पञ्चगव्येन देवेशं
यः स्नापयति भक्तितः । ब्रह्मकूर्चविधानेन विष्णुलोके मह्यी-

५१०

देवप्रतिष्ठातत्त्वम् ।

यते' । ब्रह्मकूर्चविधानेन कुशोदकयुक्तेन स्नानीयो लेपने
तदुद्धरणे फलमाह तत्रैव 'यवगोधूमजैश्वर्णैरुद्धर्त्योणेन वारिणा ।
प्रक्षाल्य देवदेवेशं वारुणं लोकमाप्नुयात्' । स्मृतिः । 'चतु-
रङ्गलविस्तारा दीर्घा हस्तद्वयावधि पताका लोकपालानां
दशानां परिकीर्तिताः' । 'पञ्चहस्ताश्च वै दण्डा पताकानां
प्रकीर्तिताः' । ज्योतिषे । 'दुग्धं सशर्करञ्चैव घृतं दधि तथा
मधु । पञ्चामृतमिदं प्रोक्तं विधेयं सर्वकर्मसु' । प्रतिष्ठान-
न्तरं मतस्ये । 'ततः सहस्रं विप्राणामथवाष्टशतं तथा । भोज-
येच्च यथाशक्त्या पञ्चाशद्वाथ विंशतिम्' । षोडशोपचाराः ।
'आसनं स्वागतं पादमध्यमाचमनीयकम् । मधुपर्काचमन-
स्नानवसनाभरणानि च । गन्धपुष्पे धूपदीपौ नैवेद्यं वन्दनं
तथा' । दशोपचारास्तु 'पादार्घ्यमाचमनीयमधुपर्काचमना-
न्यपि । गन्धादिपञ्चकञ्चेति उपचारा दशोदिताः' । पञ्चोप-
चारास्तु । 'गन्धादयो नैवेद्यान्ताः पूजा पञ्चोपचारिका' ।
उपचारद्रव्याणि शारदायां 'पादं श्यामाकदूर्वाजविष्णुक्रान्ता-
भिरौरितम्' । विष्णुक्रान्ता अपराजिता एतद्द्रव्ययुक्तं जल-
मिति शेषः । 'गन्धपुष्पाक्षतयवकुशाग्रफलमर्षपैः । सदूर्वैः
सर्वदेवानाम् एतदर्घ्यमुदौरितम्' । एतद् युक्तं जलमित्यर्थः ।
'जातीलवङ्गककोलैर्जलमाचमनीयकम् । आज्यं दधि मधू-
न्मिश्रं मधुपर्कं निवेदयेत्' । कात्यायनः । 'मधुपर्कं दधि-
घृतमधुपिहितं कांस्ये कांस्येन' । मधुपर्कतिस्थाने स्नानीयेति
पाठः पूर्वोक्तद्रव्ययुक्तं जलमात्रं वा । 'गन्धवन्दनकपूर्वका-
लागुरुभिरौरितः' । राघवभट्टघृतं 'शङ्खपात्रस्थितं गन्धं मन्त्रैः
कुर्यात् कनिष्ठया । कनिष्ठाङ्गुष्ठसंयुक्ता गन्धमुद्रा प्रकीर्तिता ।
पुष्पाणि तत्तद्देवदेयानि अगुरुशौरगुणु लु मधुपर्ककुचन्दनैः ।
धूपपेक्षाज्यसंमिश्रैश्चूर्णैर्देवस्य देशिकः । तत्र तत्र जलं दद्यात्

देवप्रतिष्ठातत्त्वम् ।

५११

उपचारान्तरान्तरे' । इति । राघवभट्टधृतम् । 'सर्वोपचार-
वस्तूनामभावे भावनैव हि । निर्मलेनोदकेनाथ पूर्णतयाह
नारदः' । नारसिंहे 'पञ्चगव्येन देवेशं यः स्नापयति भक्तितः ।
ब्रह्मकूर्चविधानेन विष्णुलोके महीयते' । ब्रह्मकूर्चविधानेन
कुशोदकयुक्तेन । ब्रह्मपुराणे । 'देवानां प्रतिमा यत्र घृता-
भ्यक्तक्षमा भवेत् । पलानि तस्यै देयानि श्रद्धया पञ्चविंशतिम् ।
अष्टोत्तरशतं स्नाने पलं देयञ्च सर्वदा । यवगोधूमजैश्वर्णैरुद्ध-
त्योष्णेण वारिणा । प्रक्षाल्य देवदेवेशं वारुणं लोकमाप्नु-
यात् । पादपीठं तु यो दद्यात् विल्वपत्रैर्निघर्षयेत् । उष्णा-
म्बुना च प्रक्षाल्य सर्वपापेः प्रमुच्यते' देवीपुराणम् । 'होमो-
ग्रहादिपूजायां शतमष्टोत्तरं भवेत् । अष्टाविंशतिरष्टौ वा
यथाशक्ति विधीयते' । कात्यायनः 'आज्यद्रव्यसनादेशे जुहो-
तिषु विधीयते' । कालिकापुराणं 'यद्दीयते च देवेभ्यो गन्ध-
पुष्पादिकं तथा । अर्घ्यपात्रस्थितैस्तोयैरभिषिच्य तदुत्सृ-
जेत्' । नरसिंहपुराणम् । 'स्नाने वस्त्रे च नैवेद्ये दद्यादा-
चमनीयकम्' । अत्र नौराजनविधिः पूजारत्नाकरे देवी-
पुराणम् । 'भक्त्या पिष्टप्रदोपाद्यैश्चूताश्वत्यादिपल्लवैः । ओष-
धीभिश्च मेध्याभिः सर्ववीजैर्यवादिभिः । नवम्यां पर्वकालेषु
यात्राकाले विशेषतः । यः कुर्याच्छ्रद्धया वीर देव्या नौरा-
जनं नरः । शङ्खमेर्यादिनिनदैर्जयशब्दैश्च पुष्कलैः । यावतो
दिवसान् वीर देव्या नौराजनं कृतम् । तावद्वर्षसहस्राणि
स्वर्गलोके महीयते । यस्तु कुर्यात् प्रदीपेन सूर्यलोकं स
गच्छति' । पर्वकाले उत्सवकाले । देव्या इति स्त्रीत्व-
मविवक्षितम् ।

अथ प्रतिष्ठितसूक्तौ कदाचित् पूजाभावे महाकपिलपञ्च-
रात्रम् । एकाहपूजाविहता कुर्याद्विगुणमर्चनम् । द्विरात्रे

५१२

देवप्रतिष्ठातत्त्वम् ।

तु महापूजा संप्रोक्षणमतः परम् । मासादूर्द्ध्वमनेकाहं पूजा चेद् हन्यते यदि । प्रतिष्ठैवोच्यते कैश्चित् कैश्चित् संप्रोक्षणक्रमः । संप्रोक्षणक्रमः 'संप्रोक्षणन्तु देवस्य देवस्यत्वेति पूर्ववत् । गवां रसैश्च संस्नाप्य दर्भतोयैर्विशोध्य च । प्रोक्षयेत् प्रोक्षणीतोयै-
मूर्लेनाष्टोत्तरं शतम् । सपुष्पं सकुशं पाणिं न्यसेद्देवस्य मस्तके । पञ्चवारं जपेन्मूलमष्टोत्तरं शतं तथा । ततो मूलेन मूर्द्धादि पीठान्तं संस्पृशेत्' इति । 'तत्त्वन्यासं लिपिन्यासं मन्त्रन्यासञ्च विन्यसेत् । प्राणप्रतिष्ठामन्त्रेण प्राणस्थापन-
माचरेत् । पूजाञ्च महतीं कुर्यात् स्वतन्त्रोक्तां यथाविधि । यागहोनादिषु प्रायःसंक्षेपेण विधिः स्मृतः' ।

अथासृष्ट्यस्पर्शने तु बोधायनः 'द्रव्यवत् कृतशौचानां देवा-
र्चानां भूयः प्रतिष्ठापनमिति' । देवतार्चा देवताप्रतिमा । तासा-
मसृष्ट्यसृष्टानां प्रकृतिद्रव्यस्य स्पर्शानां प्रकृतिद्रव्यस्य तास्मादे-
र्यथेष्टं शौचं कृत्वा पुनः प्रतिष्ठापनात् पूज्यत्वमित्यर्थः । इति
रत्नाकराः आदिपुराणे । खण्डिते स्फुटिते दग्धे भ्रष्टे स्थान-
विवर्जिते । यागहोने पशुसृष्टे पतिते दुष्टभूमिषु । अन्यमन्त्रा-
र्चिते चैव पतितस्पर्शदूषिते । दशस्वतेषु नो चक्रुः सन्नि-
धानं दिवौकसः । इति सर्वगतो विष्णुः परिभाषाञ्चकारह ।
अन्यत्र वृद्धिश्चाङ्गहोमी तु आवश्यकी । यथाशक्तीत्यभिधा-
नात् इति कश्चित् यथा चाल्पधनानां यदि यज्ञं विनाऽपि
पूजनमाह विष्णुधर्मोत्तरे प्रथमकाण्डम् । पूजाकर्म वह्नि-
र्वेद्यां अद्वया भृगुनन्दन । न त्वल्पदक्षिणैर्यज्ञैर्यजेतेह कदा-
चन । विष्णुदेवनिकायस्थं यथा आङ्गमरिन्दम । तपसा
पूजयेन्नित्यं यस्मादल्पधनो नरः । यद्येकाहे वास्तुयाग-
सृष्टोत्सर्गौ तदा तन्त्रेण वृद्धिश्चाङ्गं कुर्यात् तथा एक-
स्मिन् नाग्नौ होमद्वयं विधेयम् एकाग्नौ अनेकहोमकरणे

जलाशयोत्सर्गतत्त्वम् ।

५११

परिसमूहनादिकमाह गोभिलः । 'गणेष्वेकं परिसमूहनमिध-
वर्हिः पर्युक्षणमाज्यभागाविति' पूजादिकं प्रत्येकमेव ।

इति श्रीरघुनन्दनभट्टाचार्यविरचितं देवप्रतिष्ठातत्त्वं
समाप्तम् ।

जलाशयोत्सर्गतत्त्वम् ।

प्रणम्य कमलाकान्तं निवन्धानवलोक्य च ।

जलाशयोत्सर्गतत्त्वं वक्ति श्रीरघुनन्दनः ॥

अथ जलाशयाः । ते च खननसाध्यास्तत्वारः । कूपवापी-
पुष्करिणीतडागरूपाः । तथाच मत्स्यपुराणम् । 'एवमेव
पुराणेषु तडागविधिरुच्यते । कूपवापीतडागेषु तथा पुष्करि-
णीषु च' । कूपोऽद्वारको गर्तविशेषः वृक्षसोपानकोऽयं
वापीति द्वैतनिर्णयः वस्तुतो लक्षणं वक्ष्यते । पुष्करिणीतडा-
गावाह वशिष्ठसंहितायां 'चतुर्विंशाङ्गुली हस्तो धनुस्तच्चतु-
रुत्तरः । शतधन्वन्तरश्चैव तावत् पुष्करिणी मता । एतत्
पञ्चगुणः प्रोक्तस्तडाग इति निश्चयः' । धनुर्हस्तचतुष्टयं
चतुरुत्तरतश्चतुर्गुणो हस्तो यस्तद्धनुः । तथाच विष्णुधर्मो-
त्तरे प्रथमकाण्डम् । 'द्वादशाङ्गुलिकः शङ्खस्तद्वयश्च शयः
स्मृतः । तच्चतुष्कं धनुः प्रोक्तं क्रोशो धनुः सहस्रकः' ।
कापिले । 'चतुर्विंशाङ्गुली हस्तश्चतुर्भिश्च करैर्धनुः' । शयो
हस्तस्तेन खातचतुर्दिक्षु विंशतिहस्तान्यूनतायां चतुःशत-
हस्तान्यूनान्तरत्वेन पुष्करिणी । चतुर्दिक्षु पञ्चचत्वारिंशद्व-
स्तान्यूनतायां सहस्रद्वितयहस्तान्यूनान्तरत्वेन तडागः । एतच्च

५१४

जलाशयोत्सर्गतत्त्वम् ।

जलाधारपरं न तु उपरितटपरम् । नव्यवर्द्धमानधृतो वशिष्ठः ।
 'शतेन धनुर्भिः पुष्करिणी । त्रिभिः शतेर्दीर्घिका । चतुर्भि-
 र्द्रीणः पञ्चभिस्तडागः । द्रोणाद्दशगुणा वापी' इति संहिता-
 यामन्तरपदश्रुतेरत्रापि तथावगम्यते । तेन चतुर्दिक्षु पञ्च-
 त्रिंशद्वस्तान्यूनतायां द्वादशशतहस्तान्तरान्यूनत्वेन दीर्घिका ।
 चतुर्दिक्षु चत्वारिंशद्वस्तान्यूनतायां षोडशशतहस्तान्तरान्यून-
 त्वेन द्रोणः । चतुर्दिक्षु त्रिंशदधिकशतहस्तान्यूनतायां षोडश-
 सहस्रहस्तान्तरान्यूनत्वेन वापी । करोऽत्र कफोऽथुपक्रम-
 मध्यमाङ्गुल्यग्रपर्यन्तः तथाच कल्कतरुर्वाकरयोः । 'मध्य-
 माङ्गुलिकुर्परयोर्मध्यः प्रामाणिकः करः' । तत्करणफल-
 माह आदित्यपुराणम् । 'सेतुबन्धरत्ना ये च तीर्थशौचरताश्च
 ये । तडागकूपकर्तारो मृच्यन्ते ते तृषाभयात्' । सेतुर्जल-
 धारणहेतुर्धन्यः । तीर्थशौचं घट्टकपरिष्कारः तेन सेतुबन्ध-
 घट्टपरिष्कारतडागादीनां करणे प्रत्येकं तड्भयेमाचनं फलं
 विष्णुः 'अथ कूपकर्तुस्तत्प्रवृत्ते पानीये दुष्कृताहं विनश्य-
 तीति' । तत्प्रवृत्ते कूपादुत्थिते । विष्णुधर्मोत्तरे 'तडाग-
 कूपकर्तारस्तथा कन्याप्रदायिनः । कुत्रोपानहातारस्ते नराः
 स्वर्गगामिनः' । तीर्थं विना सङ्कुचितप्राणिदेशे तु नन्दिपुराणं
 'यो वापीमथवा कूपं देशे तोयविवर्जिते । खनयेत् स दिवं
 याति विन्दौ विन्दौ शतं समाः' । ततश्च वाप्यादिखनने
 प्रत्येकजलविन्दुसमसंख्यशतवर्षावच्छिन्नस्वर्गप्राप्तिः फलम् ।
 एतत् सङ्कल्पानन्तरं वास्तुयागसङ्कल्पः कार्यः । विष्णुः 'कूपा-
 रामतडागेषु देवतायतनेषु च । पुनः संस्कारकर्त्ता तु लभते
 मौलिकं फलम्' । संस्कारविधौ तु अजले जलमुत्पाद्य इति
 वक्ष्यमाणवचनात् जलशून्यदेशखनन एव प्रतिष्ठा न तु
 पङ्कोद्धारमात्रे । मत्स्यपुराणे । 'प्रासादभवनादीनां विशेषं

जलाशयोत्सर्गतस्त्वम् ।

५१५

विस्तरादद । कुर्यात् केन विधानेन कश्च वास्तुददाहृतः । इत्युपक्रम्य वाप्यादीनामप्यभिधानात् आदिपदात् कूपादे-
र्ग्रहणम् । 'प्रासादेष्वेवमेव स्यात् कूपवापीषु शस्यते' इत्यभि-
धानाच्च तेन वाप्यादिकरणेऽपि वास्तुयागः । महाकपिलपञ्च-
रात्रं 'जलाधारग्रहार्थञ्च यजेद्वास्तु' विशेषतः । ब्रह्माद्यदिति-
पर्यन्ताः पञ्चाशत्तयसंयुताः । सर्वेषां कुलवास्तूनां नायकाः
परिकीर्त्तिताः । असंपूज्य हि तान् सर्वान् प्रासादादीन्
कारयेत् । अनिष्टसिर्विनाशः स्यादुभयोर्धर्मधर्मिणोः ।
ब्रह्माद्यदितिपर्यन्ता इति कल्पान्तरम् । देवीपुराणोक्ते-
शादिकल्पो व्यवहियते । धर्मधर्मिणोस्तडागादितत्कर्त्तव्यः ।
तद्दिने तदकरणे उत्सर्गदिनेऽपि वाप्यादौ तत्करणम् । 'प्रासाद-
भवनोद्यानप्रारम्भपरिवर्त्तने पुरवेश्म प्रवेशे च सर्वदोषापनु-
त्तये । इति वास्तूपशमनं कृत्वा सूत्रेण वेष्टयेत् । वास्तु-
यागमकुर्वाणस्तवाहारो भविष्यति' । इति मत्स्यपुराणवचने
पुरवेश्म प्रवेशे वास्तुयागप्राप्तेः पूर्वोक्तवचनेन प्रासाद-
धर्मातिदेशादत्रापि प्रासादप्रतिष्ठावत् वाप्यादिप्रतिष्ठादिने
वास्तुयागकरणम् । दीपिकायां 'पुण्यामैत्रकरोत्तराश्विन-
ब्रह्माश्वपित्रेन्दुभिः । शस्तेऽके' शुभयोगवारतिथिषु क्रूरे-
श्ववौष्येषु च पुष्टेन्दौ जलराशिगे दशमगे शुक्रे शुभांशोदये
प्रारम्भः सलिलाशयस्य शुभदो जीवेन्दुपुत्तोदये' । तैः पुण्या-
नुराधाहस्तोत्तरात्रयाश्विनौशतभिषारोहिणीपूर्वाषाढामघासृ-
गशिरोभिः । मात्स्ये । 'चन्द्रादित्य बलं लब्ध्वा लग्नं
शुभनिरीक्षितम् । स्तम्भोच्छायादिकर्त्तव्यमन्यत्र परिवर्ज-
येत् । अश्विनौरोहिणीमूलमुत्तरात्रयमैन्दवम् । स्वातीहस्ता-
नुराधा च गृहारम्भे प्रशस्यते । वज्रव्याघातशूले च व्यती-
पातातिगण्डयोः । विष्कुम्भ गण्डपरिघ वर्जं योगेषु कारयेत् ।

५१६

जलाशयोत्सर्गतत्त्वम् ।

आदित्यभौमवर्जन्तु सर्वे वाराः शुभावहाः । प्रासादेऽप्येवमेव
 स्यात् कूपवापीषु चैव हि । ज्योतिषे । 'गुरोर्भृगोरस्तवात्ये
 वार्द्धके सिंहगे गुरौ । वक्रि जीवाष्टविंशेऽङ्गि गुर्वादित्ये
 दशाह्निके । पूर्वराशावनायातातिचारिगुरुवत्सरे । प्राग्नाशि-
 गन्तृजीवस्य चातिचारे विपक्षके । कम्पाद्यङ्गुतसप्ताहे
 नौचस्थेज्ये मलिन्नुचे । भानुलङ्घितके मासि चये राहुयुते
 गुरौ । पौषादिकचतुर्मासे चरणाङ्कितवर्षणे । एकेनाङ्का
 चैकदिने द्वितीयेन दिनत्रये । तृतीयेन च सप्ताहे मङ्गल्यानि
 विवर्जयेत् । विद्यारम्भकर्णवेधौ चूडोपनयनोदहान् । तीर्थ-
 स्नानमनावृत्तं तथानादिसुरेक्षणम् । परीक्षारामयज्ञांश्च पुर-
 स्करणदीक्षणे । व्रतारम्भप्रतिष्ठे च गृहारम्भप्रवेशने । प्रतिष्ठा-
 रम्भणे देवकूपादेः परिवर्जयेत् । द्वात्रिंशद्विसाञ्चास्ते जीवस्य
 भार्गवस्य च । द्वासप्ततिर्महत्स्यस्ते पादान्ते द्वादशक्रमात् ।
 अस्तात् प्राक्परयोः पक्षं गुरोर्बार्द्धिक्यबालते । पक्षं वृद्धमहास्ते
 तु भृगुर्बालो दशाह्निकः । पादास्ते तु दशाह्नानि वृद्धो बालो
 दिनत्रयम् । उत्सर्गफलमाह नन्दिपुराणं 'यो वापीमग्नि-
 साध्येण विधिवत् प्रतिपादयेत् । कोणेषदककुम्भस्थान् समुद्रा-
 नार्च्य श्रद्धया । चतुरन्ता चतुरर्णास्तेन दत्ता मही भवेत्' ।
 चतुरन्ता समुद्रानार्च्यतिश्रुतेः । तच्चतुःपरिच्छिन्ना चतुरर्णा
 चतुर्दिगवच्छिन्नजला । अम्भोऽर्णस्तोयपानीयमित्यमरकोषा-
 दर्णः पदं जलपरम् । कपिलपञ्चरात्रे । सन्नेपात् प्रवक्ष्यामि
 जलदानफलं शृणु । पुष्करिण्यादिदानेन विष्णुः प्रीणाति
 विश्वष्टक्' । जलाधारकरणार्थं भूमिदाने फलमाह चित्र-
 गुप्तः । 'जलाशयार्थं यो दद्यात् वारुणं लोकमाप्नुयात्' ।
 भूमिमिति शेषः । कालमाह भट्टस्यपुराणे । 'शृणु राजन्
 प्रवक्ष्यामि तद्भागादिषु यो विधिः । चैत्रे वा फाल्गुने वापि

जलाशयोत्सर्गतत्त्वम् ।

५१७

जैष्ठे वा माघवे तथा । माघे वा सर्वदेवानां प्रतिष्ठा शुभदा भवेत् । प्राप्य पक्षं शुभं शुक्लमतीते चोत्तरायणे । पुण्ये ऽङ्गि विप्रकथिते कृत्वा ब्राह्मणवचनम् । अतीते प्रवृत्ते तथाच प्रतिष्ठासमुच्चये 'माघे च फाल्गुने चैव चैत्रवैशाखयोरपि । ज्यैष्ठाषाढकयोर्वापि प्रवृत्ते चोत्तरायणे' । पुण्ये ऽङ्गि अष्टम-चन्द्रादिशून्ये ब्राह्मणवाचनं पुण्याहस्वस्त्यृद्धिवाचनम् । 'पञ्चमी च द्वितीया च तृतीया सप्तमी तथा । दशमी पौर्णमासी च तथा श्रेष्ठा त्रयोदशी । आसु प्रतिष्ठाविधिवत् कृता शुभफला भवेत्' । मात्स्ये 'आषाढे द्वे तथा मूलमुत्तरावयमेव च । ज्यैष्ठाश्रवणरोहिण्यः पूर्वभाद्रपदा तथा । हस्ताश्विनी रेवती च पुष्यो मृगशिरस्तथा । अनुराधा तथा स्वाती प्रतिष्ठादिषु शस्यते । बुधो बृहस्पतिः शुक्रस्तथ एते शुभावहाः एतन्निरीक्षितं लग्नं नक्षत्रञ्च प्रशस्यते । ग्रहताराबलं लब्ध्वा ग्रहपूजां विधाय च । निमित्तं सफलं ज्ञात्वा वर्जयित्वा तथा शुभम् । शुभयोगे शुभे लग्ने क्रूरग्रहविवर्जिते । लग्ने ऋत्वे च कुर्वीत प्रतिष्ठादिकमुत्तमम् । अयने विषुवे तद्वत् षडशीतिमुखे तथा । सुराणां स्थापनं कार्यं विधिदृष्टेन कर्मणा' । भविष्ये 'प्रति-पक्ष द्वितीया च तृतीया पञ्चमी तथा । दशमी त्रयोदशी चैव पौर्णमासी च कीर्तिता । सोमो बृहस्पतिश्चैव शुक्रश्चैव तथा बुधः । एते सौम्यग्रहाः प्रोक्ताः प्रतिष्ठायागकर्मणि' । प्रतिष्ठाधिकारे व्यवहारसमुच्चयः । 'क्षणपक्षे च पञ्चम्यामष्ट-म्यामपि शस्यते' । दीपिकायां 'पुण्याश्विशुक्रभगदैवतवासवेषु सौम्यानिवेशमघरोहिणिमूलहस्ते । पौष्णानुराधाहरिभेषु पुनर्वसौ च कार्याभिषेकतरुकूपरथप्रतिष्ठा' । वसवो धनिष्ठा ईश आर्द्रा । आर्द्रायाञ्चैव सौभाग्यमिति प्रतिष्ठासमुच्चयात् । वापीदानादीनां पूर्त्तत्वात् स्त्रीशूद्राधिकारे जातूकर्णः । 'वापी-

५१८

जलाशयोत्सर्गतत्त्वम् ।

कूपतडागादिदेवतायतनेषु च । अन्नप्रदानमारामापूर्तं इत्य-
 भिधीयते । अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदानामनुपालनम् ।
 आतिथ्यं वैश्वदेवञ्च इष्टमित्यभिधीयते । ग्रहोपरामे यद्दानं
 पूर्तमित्यभिधीयते । इष्टापूर्तं द्विजातीनां धर्मः सामान्य
 उच्यते । अधिकारी भवेच्छुद्रः पूर्तधर्मे न वैदिके । वैदिके
 वेदाध्ययनसाध्येऽग्निहोत्रादाविति रत्नाकरः । एवं स्त्रीणा-
 मपि पूर्ताधिकारः । यथानारोत्यनुवृत्तौ वृहस्पतिः । 'पितृ-
 व्यगुरुदौहितान् भर्तुः स्वस्रीयमातुलान् । पूजयेत् कथ्य-
 पूर्ताभ्यां वृद्धानां आतिथीन् स्त्रियः' । एतेन जलाशयोत्सर्गादौ
 गौरवतारणानुमन्त्रणयोर्यजमानकर्तृको मन्त्रपाठः । तत्रा-
 मन्त्रकतया स्त्रीशूद्रयोरनधिकारेण तद्वति यागेऽप्यनधिकारः ।
 विशेषोपदेशविरहादिति हेतुनिर्णयोक्तं निरस्तम् । मन्त्रपाठस्तु
 ब्राह्मणद्वारा 'अमन्त्रस्य तु शूद्रस्य विप्रो मन्त्रेण गृह्यते' । इति
 वराहपुराणात् । अमन्त्रस्येति परिभाषया स्त्रीणामप्यधिकारः ।
 अस्य पूर्तत्वाद्बृद्धिश्चाहमप्यादौ क्तव्यम् । यथा गोभिलः
 'वृद्धिः पूर्तेषु युग्मानाशयेत् प्रदक्षिणमुपचारः यवैस्त्रिलार्थ
 इति' । हयशीर्षपञ्चरात्रे 'वापीकूपतडागानां पश्चिमे याग-
 मण्डपम् । कुर्याद् यथाक्रमेणैव कन्यसंमध्यमोत्तमम् ।
 कन्यसंदशहस्तन्तु कूपे शस्त्रं तथानघ । द्विषट्कं कारये-
 दाप्यां पुष्करिण्यां चतुर्दश । द्विरष्टहस्तं कुर्वीत तडाग-
 मण्डपं शुभम्' । कन्यसङ्कनौयांसम् । सङ्कल्पविधिस्तु भविष्ये ।
 'गृहीत्वौडुम्बरं पात्रं वारिपूर्णमुदञ्चुखः । दर्भत्रयं साग्रमूलं
 फलपुष्पतिलान्वितम् । जलाशयारामकूपे सङ्कल्पे पूर्वदिञ्चुखः ।
 साधारणे चोत्तरास्य एशान्यां तज्जलं क्षिपेत्' । मत्स्य-
 पुराणे । 'प्रागुदकप्लवने देशे तडागस्य समीपतः । चतुर्हस्तं
 शुभां वेदीं चतुरस्रां चतुर्मुखीम्' । कारयेदिति शेषः ।

जलाशयोत्सर्गतत्त्वम् ।

५१६

तथा 'सर्वतः समवर्णाः स्युः पताकाध्वजसंयुताः' । समवर्णा
 वक्ष्यमाणलोकपालवर्णाः । अश्वत्थोडुम्बरप्लवटशाखाकृतानि
 च । मण्डपस्य प्रतिदिशं द्वाराखेतानि कारयेत्' । तथा 'कुल-
 शीलसमापन्नः स्थापकः स्याद्विजोत्तमः' । स्थापक आचार्य
 इति रत्नाकरः । तथा 'सौवर्णौ कूर्ममकरौ राजतौ मत्स्य-
 दुण्डुभौ । ताम्रौ कुलीरमण्डूकावायसः शिशुमारकः । एव-
 मासाद्य तान् सर्वानादौ चैव विशाम्यते । शुक्लमात्याम्बर-
 धरः शुक्लगन्धानुलेपनः । सर्वौषध्युदकस्नानस्त्रापितो वेद-
 पुङ्गवैः । यजमानः सपत्नीकः पुच्छपौच्छसमन्वितः । पश्चिमं
 द्वारमाश्रित्य प्रविशेद् यागमण्डपम् । ततो मङ्गलशब्देन
 भेरीणाञ्च स्त्रनेन च । रजसामण्डपं कुर्यात् पञ्चवर्णेन तत्त्व-
 वित् । षोडशारं भवेच्चक्रं पद्मगर्भं चतुर्मुखम् । चतुरस्रन्तु
 परितो हत्तं मध्ये गुणोत्तरम् । वेद्याश्चोपरितत्कृत्वा ग्रहास्तो-
 कपतींस्तथा । विन्यसेन्नन्वतः सर्वान् प्रतिदिक्षु विचक्षणः ।
 भूषादीन् स्थापयेन्नध्ये वाहणं मन्त्रमाश्रितः' । भूषादीन्
 कूर्मादीन् । 'ब्रह्माणञ्च शिवं विष्णुं तत्रैव स्थापयेद्वुधः ।
 विनायकन्तु विन्यस्य कमलामम्बिकान्तथा' । पूजयेदिति
 शेषः । मत्स्यपुराणम् । 'नवग्रहमखं कृत्वा ततः कर्म समा-
 रभेत् । अन्वथाफलदं पुंसां न काम्यं जायते क्वचित्' । ग्रह-
 पूजामण्डलं शान्तिदीपिकायां 'वर्तुलो भास्करः कार्य्योऽर्द्ध-
 चन्द्रो निशाकरः । अङ्गारकस्त्रिकोणः स्यात् बुधश्चापाकृति-
 स्तथा । पद्माकृतिर्गुरुः कार्य्यश्चतुष्कोणस्तु भार्गवः । सर्पा-
 कृतिः शनिः कार्य्यो राहुस्तु मकराकृतिः । खड्गाकृतिस्तथा
 केतुः कार्य्यो मण्डलपूजने' । मत्स्यपुराणे 'देवताश्च तथा
 स्थाप्या विंशतिर्द्वादशाधिका । सूर्यः सोमस्तथा भीमो बुध-
 जीवसितार्कजाः । राहुः केतुरिति प्रोक्तो ग्रहा लोकहिते

५२०

जलाशयोत्सर्गतत्त्वम् ।

रताः । मध्ये तु भास्करं विद्याल्लोहितं दक्षिणेन तु । उत्तरेण गुरुं विद्याद् बुधं पूर्वोत्तरेण तु । पूर्वेण भार्गवं विद्यात् सोमं दक्षिणपूर्वके । पश्चिमेन शनिं विद्यात् राहुं दक्षिणपश्चिमे । पश्चिमोत्तरतः केतुं स्थापयेत् शुक्लतण्डुलैः । भास्करस्येश्वरं विद्यादुमाञ्च शशिनं तथा । स्कन्दमङ्गारकस्यापि बुधस्यापि तथा हरिम् । ब्रह्माणञ्च गुरोर्विद्यात् शुक्रस्यापि प्रजापतिम् । शनैश्चरस्य तु यमं राहोः कालं तथैव च । केतूनाञ्चित्रगुप्तञ्च सर्वेषामधिदेवताः । अग्निरापः क्षितिर्विष्णुरिन्द्र ऐन्द्री च देवता । प्रजापतिश्च सर्पश्च ब्रह्मा प्रत्यधिदेवताः । विनायकं तथा दुर्गां वायुमाकाशमेव च । आवाहयेद्वाहृतिभिस्तथैवाश्विकुमारकौ । संस्मरेद्द्रक्तमादित्यमङ्गारकसमन्वितम् । सोमशुक्रौ तथा श्वेतौ बुधजीवौ तु पिङ्गलौ । मन्दराह्ण तथा कृष्णौ धूम्रं केतुगणं विदुः । ग्रहवर्णानि देयानि वासांसि कुसुमानि च । धूपा-मोदोऽत्र सुरभिरुपरिष्ठादितानकम् । शोभनं स्थापयेत् प्राज्ञः फलपुष्पसमन्वितम् । गुडौदनं रवेर्दद्यात् सोमस्य घृतपायसम् । संयावकं कुजे दद्यात् क्षीराञ्च सोमसूनवे । दध्नीदनन्तु जीवाय शुक्राय तु घृतौदनम् । शनैश्चराय कशरमाज्यं मासञ्च राहवे । चित्रौदनञ्च केतुभ्यः सर्वभक्षैः समर्चयेत् । स्कन्दपुराणम् । 'जन्मभूर्गीर्तमेतेषां वर्णस्थानमुखानि च । यो ज्ञात्वा कुरुते शान्तिं ग्रहास्ते नावमानिताः । उत्पन्नोऽर्ककलिङ्गेषु यमुनायाञ्च चन्द्रमाः । अङ्गारकस्त्ववन्त्यान्तु मागधेषु हिमांशुजः । सैन्धवेषु गुरुर्जातः शुक्रो भोजकटे तथा । शनैश्चरश्च सीराष्ट्रे राहुर्वैनाटिकापुरे । अन्तर्वेद्यां तथा केतुरित्येता ग्रहभूमयः । आदित्यः काश्यपो गोत्र आत्रेयश्चन्द्रमा भवेत् । भरद्वाजो भवेद्भौमस्तथात्रेयश्च सोमजः ।

जलाशयोत्सर्गतत्त्वम् ।

५२१

शुक्रः पूज्योऽङ्गिरो गोत्रः शुक्रो वै भार्गवस्तथा । शनिः
 काश्यप एवायं राहुः पैठीनसिस्तथा । केतवो जैमिनेयाश्च
 ग्रहालोकहिते रताः । तद्गोत्रजातीरज्ञात्वा होमं यः कुरुते
 नरः । न तस्य फलमाप्नोति न च तुष्यन्ति देवताः । न हुतं
 न च संस्कारो न च यज्ञफलं लभेत् । गोभिलकात्यायनौ ।
 'ब्राह्मणौ भार्गवाचार्यौ चक्रियावर्कलोहितौ । वैश्यौ सोम-
 बुधौ चैव शेषान् शूद्रान् विनिर्दिशेत् । शान्तिदीपिकायाम् ।
 'शुक्राकौ प्राङ्मुखौ स्थाध्यौ शशाङ्कारौ च दक्षिणौ । उत्त-
 रास्थौ गुरुबुधौ पश्चिमास्यास्तथापरैः । अग्निप्रणयनानन्तरं
 ग्रहावाहनमाह वैशम्पायनः । 'अग्निप्रणयनं कृत्वा पश्चादा-
 वाहयेत् ग्रहान् । मध्ये तु भास्करं विद्याल्लोहितं दक्षिणेन
 तु' । इत्यादि यद्यपि ग्रहादीनां बहवः शब्दा वाचकाः सन्ति
 शब्दोपहितश्चार्थः अर्थोपहितः शब्दो वा उभयथापि शब्दा
 नियमादविनिगमः स्यात्तथापि सूर्यादिशब्दत्वेन ग्रहाणां
 देवतात्वं तेन सूर्यसोममङ्गलबुधहस्तशक्रशनिराहुकेतु-
 पदैर्देवतात्वम् अधिदेवतानान्तु त्र्यम्बको मा स्कन्दविष्णु-
 ब्रह्मेन्द्रयमकालचित्तगुप्तानामेभिरेव पदैस्तथा प्रत्यधिदेवता-
 नाम् अन्यप्यपृथिवीविष्णुन्द्रशशिप्रजापतिसर्पब्रह्मणामेभि-
 रेव पदैः । तथा विनायकदुर्गावायुकाश अग्निनामभि-
 रेवेति कृत्यप्रदीपोक्तध्यानानि प्रयोगे वक्ष्यन्ते लोकपालस्य
 मन्त्रानाह भविष्ये । 'न्यासमन्त्रानयो वक्ष्ये लोकपाला-
 त्मकानिह । इन्द्रस्तु महसादीप्तः सर्वदेवाधिपौ महान् ।
 वज्रहस्तो मकासत्त्वस्तस्मै नित्यं नमो नमः । १ । आग्नेयः
 पुरुषो रक्तः सर्वदेवमयोऽव्ययः । धूमकेतुरनाष्टयस्तस्मै नित्यं
 नमो नमः । २ । यमश्चात्यलवर्णाभः किरीटो दण्डधृक्
 सदा । धर्मसाक्षी विशुद्धात्मा तस्मै नित्यं नमो नमः । ३ ।

५२२

जलाशयोत्सर्गतत्त्वम् ।

निर्ऋतिस्तु पुमान् तृष्णः सर्वरक्षोऽधिपो महान् । खड्ग-
हस्तो महासत्वस्तस्मै नित्यं नमो नमः । ४ । वरुणो धवलो
जिष्णुः पुरुषो निम्नगाधिपः । पाशहस्तो महाबाहुस्तस्मै
नित्यं नमो नमः । ५ । वायुश्च सर्ववर्णोऽयं सर्वगन्धवहः
शुभः । पुरुषो ध्वजहस्तश्च तस्मै नित्यं नमो नमः । ६ ।
गौरवर्णः पुमान् सौम्यः सर्वौषधिसमन्वितः । नक्षत्राधिपतिः
सौम्यस्तस्मै नित्यं नमो नमः । ७ । ईशानः पुरुषः शुक्लः
सर्वविद्याधिपो महान् । शूलहस्तो विरूपाक्षस्तस्मै नित्यं
नमो नमः । ८ । पद्मयोनिश्चतुर्भुजः सर्वमहाकायः पितामहः ।
यज्ञाध्यक्षश्चतुर्वर्गस्तस्मै नित्यं नमो नमः । ९ । योऽसावनन्त-
रूपेण ब्रह्माण्डं सचराचरम् । पुष्पवद्भारयेन्मूर्द्धि तस्मै नित्यं
नमो नमः । ओङ्कारपूर्विका ह्येत न्यसेदलि निवेदने । मन्त्राः
स्युः सर्वकार्याणां सिद्धिपुष्टिफलप्रदा । ह्यशौर्षपञ्चरात्रे ।
‘अथ वाध्यामतः कुर्यात् सूक्ष्मरत्नादिनिर्मितम् । द्विभुजं
हंसपृष्ठस्थं दक्षिणेनाभयप्रदम् । वामेन नागपाशन्तु धारयन्तं
सुभोगिनम् । सलिलं वाममाभोगं कारयेद् यादसां पतिम् ।
वामे तु कारयेद् वृद्धिं दक्षिणे पुष्करं शुभम् । नागैर्नदीभि-
र्यादोभिः समुद्रैः परिवारितम् । कृत्वैवं वरुणं देवं प्रतिष्ठा
विधिना चयेत् । पुष्करं तत् पुत्रं ततः प्रसन्नवदनमिति
ध्यानं प्रवक्ष्यते वरुणमन्त्रोद्धारस्तु अत्रैव ‘अष्टाविंशान्तवीजेन
चतुर्दश स्वरेण च । अर्द्धेन्दुविन्दुयुक्तेन प्रणवोद्दीपितेन च’ ।
तेन ओम् रौ इति मन्त्रः । ‘प्रतिमायां स्थितिं कृत्वा प्रणवेन
निबोधयेत् । पूजयेद्गन्धपुष्पाद्यैः सान्निध्यं पाशमुद्रया’ ।
स्थितिं प्रतिष्ठां निबोधयेत् अन्तर्गताङ्गुष्ठमुष्टिभ्यां निबोध मुद्रां
दर्शयेत् । दानकल्पतरुत्ताकरयोर्वह्नु च गृह्यपरिशिष्टम् ।
अथातो वारुणविधिं वापीकूपतडागविधिं व्याख्यास्यामः ।

जलाशयौत्सर्गतत्त्वम् ।

५२३

पुण्ये तिथिकरणे शुभे नक्षत्रे प्रतीचीं दिशमास्थाय प्राक् प्लवने
 उदकप्लवने वा लदकसमीपे उदकमुपसमाधाय वारुणचक्रं
 अपयित्वाज्यभागान्तं हुत्वाज्याहुतीर्जुहुयात् । समुद्रज्येष्ठा
 इति प्रत्यृचं ततो हविषाऽष्टाहुतीर्जुहुयात् तत्वायामि ब्रह्मणा
 वन्दमान इति पञ्च त्वन्नोऽग्ने वरुणस्य विद्वान् इति हे इमं
 देवरुशुधीहवेति च स्विष्टिक्ततच्च नवमं नव वै प्राणा प्राणा वा
 आपस्तस्मादापो नवभिर्जुहोति मार्जनान्ते धेनुमवतारयेत् ।
 अवतार्यमाणां तामनुमन्त्रयेत् इदं सलिलं पवित्रं कुरुष्व
 अशुद्धः पूतो मृतः सन्तु नित्यं भावयन्ती सर्वतीर्थाभिषिक्तं
 लोकालोकं तरते तीर्थ्यते च इत्यनेन पुच्छाग्ने यजमानः स्वयं
 लग्न आचार्येणान्वारब्ध उच्चीर्यापोऽस्मात्मातरः शुद्धयन्तु
 इत्यैशान्यां दिशि उत्थापयेत् सुषसा भवतीह भूया इति यदि
 सा हिं करोति तदा हिं कृन्वती वसुमती वसूनामिति जपेत्
 तां सचेलकण्ठां कनकशृङ्गीं ताम्रपृष्ठां वृषप्रजां रूप्यसुरां
 कांस्योपदोहां विप्राय सामगाय दद्यात् इतरां वा यथाशक्ति
 दक्षिणाचार्याय देयेति तत उत्सर्गं कुर्यात् देवपितृमनुष्याः
 प्रीयन्तामित्युत्सृज्य आह श्रौतकः । 'यजमानो ब्राह्मणान्
 भोजयित्वा स्वस्ति वाचयतीति' देवाः पितरो मनुष्याः प्रीय-
 न्तामिति कल्पतरुः । अस्यार्थः । तीर्थादीनां शुद्धत्वं पूर्वोक्त-
 वचनेभ्यो ज्ञेयम् । एष विधिर्गोभिलपारस्करगृह्यकर्मानु-
 ष्ठानाभ्यामनुष्ठीयते । 'यन्नाङ्गातं सप्तशाखायां परोक्तमवि-
 रोधि च । विद्वद्भिस्तदनुष्ठेयमग्निहोत्रादिकर्मवत्' । इति
 कन्दोगपरिशिष्टात् ततश्च अग्निसुपममाधयेति स्वगृह्योक्त-
 विधिनाऽग्निं संस्थाप्य वरुणदेवताकं चक्रं निष्पाद्याज्य-
 भागान्तं हुत्वा इति सात्त्विकतरपत्रं न तु विरूपाक्षजपान्तां
 कुशण्डिकां समाप्य महाव्याहृतिहोमं कृत्वा प्रकृतं कर्म

५२४

जलाशयोक्तगंतत्वम् ।

कुर्यात् । तत्र प्रथमतः पिङ्गभृशमशुकेशाच्च इत्यनेन ध्यात्वा
 वारुणपाकयज्ञे अग्ने त्वं वरुणनामासौति नाम कुर्यात् यथा
 प्रतिष्ठायां लोहितो वास्तुयागे प्रजापतिः । जलाशयप्रति-
 स्थायां वरुणः समुदाहृतः' इति मत्स्यपुराणात् तत आवाह्य
 पूजयित्वा समित्प्रक्षेपानन्तरं महाव्याहृतिहोमं कृत्वा समुद्र
 ज्येष्ठा इत्यादिचतुर्भिर्मन्त्रैश्चतस्र आहुतीर्जुहुयात् ओम् तत्वाया-
 मीति ओम् तदिदन्नक्तमिति ओम् शुनः शेषोयामीति ओम्
 अवेतेहलो वनु इति ओम् उदुत्तममिति पञ्चभिः । ओम् तन्नो-
 ऽग्ने इति ओम् स तन्नोऽग्ने इति द्वाभ्याम् ओम् इमं मे शुधी
 हर वरु इत्येकेन एवं स्थानत्रयोक्तेर्बह्वचोक्तेः प्रत्येकमष्टाभि-
 र्मन्त्रैश्चतुरावर्त्तं भृगुगोत्रभार्गवप्रवरश्च पञ्चावर्त्तं सुचा जुहुयात्
 अग्नये स्विष्टिक्तते च ततः कुशण्डिकोक्तविधानेन शेषं समा-
 पयेत् । नव वै प्राणा इति नवाहुतिस्तु मार्जनान्ते इति
 मार्जनं यजमानाभिषेकः । तद्विधानन्तु मत्स्यपुराणे 'गजा-
 श्वरय्या वल्मीकसङ्गमे ऋदगोकुलात् । सृदमादाय कुम्भेषु
 प्रक्षिपेच्चत्वरान्तथा । रोचनान्तु समिद्धार्थान् गन्धान् गुग्गुलु-
 मेव च । स्नपनं तस्य कर्त्तव्यं पञ्चभङ्गसमन्वितम् । पूर्त्तकर्त्तु-
 र्महामन्त्रैरेवं कृत्वा विधानतः । पञ्चभङ्गाः शान्तिकपौष्टिक-
 कल्पतरूक्ताः । अश्वत्योडुम्बरप्लक्षवटचूतस्य पल्लवाः । महा-
 मन्त्रैः सुरास्त्वामित्यादिभिः । एतत् पर्यन्तोऽपि कूपेऽपि
 कापिले 'ऐशान्यां स्थापयेद् यूपं खातात् पञ्चकरान्तरम् ।
 यूपवृत्तेति मन्त्रेण सर्पाकारं सुशोभनम् । पूजयित्वा तु
 वस्त्राद्यैस्ततो यष्टिं प्रचालयेत्' मात्स्ये 'चरन्निमात्रो यूपः
 स्यात् क्षीरिहृत्तविनिर्मितः । यजमानप्रसाणी वा संस्थाप्यो
 भूतिमिच्छता' । क्षीरिहृत्तोऽष्टाद्व्यादिः । ततो धेनुं सचेल-
 कण्ठाद्युक्तविशेषणविशिष्टां जलेऽवतारयेत् । तथाच हयशीर्षं

जलाशयोत्सर्गतत्त्वम् ।

५२५

‘गां सवत्सां समानीय सुशीलाञ्च पयस्विनीम् । कांस्थो-
पदोहां स्वर्णशृङ्गीं वस्त्रपुष्पादिमण्डिताम् । लाङ्गूलन्यस्त-
हस्तोऽसौ यजमानः सबान्धवः । शनैः सन्तारयित्वा च आचा-
र्याय निवेदयेत्’ । कांस्थोपदोहां कांस्थक्रीडाम् । कापिले
‘अजले जलमुत्पाद्य यजमानः सभार्यकः । तरेहै प्राङ्मुखो
भूत्वा धृतगोलाङ्गुलाङ्गुलिः’ । इदं सलिलं पवित्रमिति मन्त्रेण
अवतार्यमानामनुमन्त्रयेत् । प्राङ्मुखः सन् अवतारयेत् सा
च गौः पश्चिमतोऽवतार्य । ततः कूलसमीपं गत्वा तर्पयेत्
यथा कापिले ‘पुनः पुच्छोदकेनाथ सतिलेन कुशेन तु । भुग्ने-
नैवापसव्येन पितृतीर्थेन तर्पयेत् । गताश्चात्र गमिष्यन्ति ये
कुले मम बान्धवाः । ते सर्वे तृप्तिमायान्तु मया दत्तजलेन
वै । ततो मुञ्चामि मन्त्रेण मुञ्चेद्वा वत्ससंयुताम्’ । आचार्येण
अन्वारब्धा उत्तीर्थ्य आपोऽस्मान्मातरः शुन्वन्तु इति मन्त्रेणै-
शान्यां दिश्युत्थापयेत् । सुयवसा भगवतीह भूया इति ब्रूयात्
हिङ्कारं यदि करोति तदा हिङ्कन्नतीति पठेत् । ततश्च उक्त
विशेषणविशिष्टां तां धेनुमाचार्याय सामगाय दद्यात् ।
यथाशक्ति दक्षिणाञ्च दद्यात् एतत् पर्यन्तं कर्म कूपे न व्य-
ङ्गियतेऽसम्भवात् तत उत्सर्गं कुर्यात् जलाशयस्येति शेषः ।
अत्र विशेषमाह रत्नाकरधृतं मत्स्यपुराणं ‘फलानि चिन्तय-
न्त्यो विविधानि शुभानि च । प्रदद्यात् सर्वभूतेभ्यो जलपूर्णं
जलाशयम्’ । कापिलम् । ‘ततस्तत्पश्चिमं तीरं गत्वा पूर्वा-
ननः स्थितः । जलोत्सर्गं प्रकुर्वीत सर्वभूतार्थकं ध्रुवम्’ । सर्व-
भूतार्थकं सर्वभूतप्रयोजनकं सर्वभूतेभ्य उत्सृजेदित्यर्थः । देव-
पितृमनुष्याः प्रीयन्तामिति पठेदिति शेषः । उत्सृज्य यज-
मानो ब्राह्मणान् स्वस्तिवाचयौत दक्षिणाभिरिति शेषः ।
एतत्पर्यन्तं कूपेऽपि । जलाशयोत्सर्गस्य सर्वभूतोद्देश्यकत्वेन

५२६

जलाशयोत्सर्गतस्त्वम् ।

प्रकृष्टचेतनोद्देश्यकत्ववदप्रकृष्टचेतनोद्देश्यकत्यागत्वमपि ततश्च
 कौटादेर्ममेदमिति स्वीकारयोग्यत्वेन वेदमेयोद्देश्यगतस्वत्वा-
 जनकत्यागरूपत्वादस्य यागत्वम् । अतएव जलाशयोत्सर्ग-
 सुप्रकृतस्य मत्स्यपुराणेऽपि प्राप्नोति तदयागवत्त्वेन भूय इति
 यागत्वेनाभिहितं ततश्च तज्जलं स्वस्वत्वदूरीकरणेन नद्यादि-
 वत् साधारणीकृतम् अतएव 'सामान्यं सर्वभूतेभ्यो मया दत्त-
 मिदं जलम् । रमन्तु सर्वभूतानि स्नानपानावगाहनैः' । इति
 मन्त्रलिङ्गे नोपादानं विना कस्यापि स्वत्वमिति । ततश्चान्य-
 यागवदुत्तरप्रतिपत्तेरश्रुतत्वात् साधारणजलस्य परिग्रहमात्रेण
 गोतमोक्तेन दातुः स्वामित्वश्रुतेर्यजमानस्यापि तथात्वेन स्वामि-
 त्वात्तत्र स्नानादावदोषः । तथाच गोतमः 'स्वामी ऋक्थ-
 क्रयसंविभागपरिग्रहाधिगमेषु ब्राह्मणस्यार्त्विज्यं लब्धं क्षत्रि-
 यस्य विजितं निर्दिष्टं वैश्यशूद्रयोः' इति परिग्रहोऽनन्यपूर्वस्व
 जललक्षणकाष्ठादेः स्वीकार इति मितान्नरा । ऋक्थाधिकारे
 व्यक्तमाह आपस्तम्बः 'दायाद्यं शिलोञ्छोचान्यच्चापरपरिगृही-
 तमिति' । अपरपरिगृहीतम् अन्यास्वीकृतम् अस्वामिकमिति
 यावत् निर्दिष्टं वेतनलब्धं निर्वेशो भृतिभोगयोरित्यमरसिंह-
 त्रिकाण्डशेषात् । हयशीर्षे 'आपोहिष्ठेति तिसृभिः पञ्चगव्यं
 विनित्तिपेत् । तीर्थतोयं तथा पुण्यं शान्तितोयं द्विजैः कृतम् ।
 गोकुलं प्रार्थयेत् पश्चात् द्विजान् वेदविदस्तथा । ततोऽन्नं
 भोजयेत् द्विजान् दद्यात्तेभ्यश्च दक्षिणाम्' । एतत् पर्थ्यन्तं कूपे-
 ऽपि । कापिले 'नागानामष्टनामानि लिखितानि पृथक्
 पृथक् । ततः कुम्भे च नित्तिप्य गायत्र्या च विलोड्य वै ।
 उद्धरेत् पत्रिकामेकां तत्र वै नागमीक्षयेत् । यस्य नामोद्धरे-
 द्दत्तं स वै जलाधिपः स्मृतः । तं वै संपूज्य गन्धाद्यैर्दद्यात्
 क्षीरञ्च पायसम्' । पत्राणाम्नास्य । योगौश्वरधृतवचनात्

जलाशयोत्सर्गतत्त्वम् ।

५२७

यथाऽष्टौ नामान्याम्रस्य पत्रे कृत्वा तु यत्नतः' । तानि च गारुडे । 'अनन्तो वासुकिः पद्मो महापद्मोऽथ तत्त्वकः । कुलीरः कर्कटः शङ्खो ह्यष्टौ नागाः प्रकीर्त्तिताः' । ततश्च अनन्त वासुकि कर्कटक पद्म महापद्म तत्त्वकशङ्खकुलीराणां नामान्याम्रपत्रे लिखित्वा कुम्भमध्ये निक्षिप्य गायत्र्या गोमूत्रेण वा छन्दसा मथ्यामीति रघुनाथधृतमन्त्रेण आलोड्य यस्य नामोत्तिष्ठति तं यज्यां समावाह्यानेन नागेन अथ जलाशयस्य रक्षाकर्त्तव्येति ब्राह्मणान् श्रावयेत् । हयशीर्षे 'वैत्त्वकं वारुण-
 चैव पुत्रागं नामकेशरम् । वकुलं चम्पकश्चैव विष्णुश्चैवाथ खादिरम् । एतेषामेव दारुणां नागयष्टिः प्रकीर्त्तिता । सवक्र-
 कोटरं त्यक्त्वा तस्मात् कुर्यात् यथेष्टितम्' । तथाच बृहस्पतिः 'शूलचक्राङ्कितं कृत्वा स्थापयित्वा जलाशये । द्वादशाङ्गुल-
 मानन्तु वापी चक्रं प्रकल्पयेत् । षोडशं पुष्करिस्थान्तु विंशतिन्तु सरोवरे । सागरे हस्तमात्रन्तु लौहं ताम्रञ्च पैत्तलम् । चक्रञ्च विविधं प्रोक्तं कुर्यात्तेषां यथेष्टितम् । शतहस्ता भवेद्वापी द्विगुणा पुष्करिणी मता । त्रिगुणन्तु सरोमानमत ऊर्ध्वन्तु सागरः' । ततो द्वादशपञ्चदशविंशत्येकविंशत्यन्यतमकनिष्ठाङ्गुल्य-
 वच्छिन्नहस्तप्रमाणयष्टिं वक्ष्यमाणमन्त्रेण स्थापयेत् । गन्ध-
 हारेति गन्धवारिणा । ओम् भद्रं कर्णेभिरिति तैलहरिद्रया ओम् काण्डात् काण्डादिति दूर्वाभिः ओम् द्रुपदादिवेत्यादिना सप्तसृङ्गिः । ओम् मधुवाते त्वचा पञ्चासृतेन ओम् याः फलि-
 नौति फलोदकेन ओम् युवा सुवासा इत्यादिना क्षुद्र-
 घण्टिकायुक्तां पताकां यज्यां बध्नीयात् । ओम् यज्यै नम इति पाद्यादिना पूजयेत् पुष्पाद्यलङ्घनां यष्टिं कन्दरसमीपे नयेत् गुरुस्तु शङ्खादिनिःस्वनै राजतवरुणप्रतिमाम् उत्तिष्ठेति उत्थाप्य प्रदक्षिणत्रयं कृत्वा आपोहिष्ठेति मन्त्रत्रयेण वरुण-

५२८

छन्दोगवृषोत्सर्गतत्त्वम् ।

स्योत्तम्भनमसीति मन्त्रेण जलाशयमध्ये क्षिपेत् ततस्तत्रैव
 खाते शाद्वलगोमयदधिमधुकुशमहानदीजलपञ्चरत्नानि ।
 ओम् येवामीरोचनेदिव इति मन्त्रेण क्षिपेत् । ओम् ध्रुवं
 ध्रुवेण मनसा इत्यादिना मन्त्रेण यष्टिमभिमन्त्र्य यूपहृत्तेति
 मन्त्रेण जलमध्ये आरोपयेत् । ततो जलमातृः पूजयेत् ।
 ह्रियं पूर्वस्यां श्रियमाग्नेय्यां शचीं दक्षिणस्यां मेधां नैऋत्यां
 अद्वां पश्चिमायां विद्यां वायव्यां लक्ष्मीमुत्तरास्यां सरस्वती-
 मैशान्यां विद्यामधो लक्ष्मीमूर्ध्वं पाद्यादिभिः पूजयेत्ततोऽग्निं
 प्रदक्षिणीकृत्य सूर्यादिद्वात्रिंशद्देवताः पूजयेत् । वरुणं
 क्षमस्वेति वरुणं क्षमापयेत् । कापिलं 'शङ्खभेरीनिनादैश्च
 तथा वै क्षीरधारया' । जलाशयं वेष्टयेदिति शेषः । प्रतिष्ठा-
 नन्तरं मातृस्ये । 'ततः सहस्रं विप्राणामथ वाष्टशतं तथा ।
 भोजयेच्च यथाशक्त्या पञ्चाशद्वाथ विंशतिम्' ।

इति श्रीरघुनन्दनभट्टाचार्यविरचितं जलाशयोत्सर्ग-
 प्रमाणतत्त्वं समाप्तम् ।

छन्दोगवृषोत्सर्गतत्त्वम् ।

प्रणम्य सच्चिदानन्दं परमात्मानमीश्वरम् ।

मुनीन्द्रानां स्मृतेस्तत्त्वं वक्ति श्रीरघुनन्दनः ॥

अथ तत्र जगन्नाथं नत्वा छन्दो विदां मुदे ।

वृषोत्सर्गप्रमाणानि वक्ति श्रीरघुनन्दनः ॥

तत्र कालमाह छन्दोगपरिशिष्टम् । 'कार्तिक्यामयने
 चैव फाल्गुन्यामष्टकासु च । आषाढ्यां विषुवे चैव पौष्णे आश्व-

कन्दोगवृषोत्सर्गतत्त्वम् ।

५२६

युजस्य च । स्वर्भानुना चोपसृष्टे आदित्ये चन्द्रमस्यपि ।
समावरान् सप्तपरानुत्सृष्टस्तारयेद् वृषः । स्वर्भानुना राहुणा
पौष्णे रेवत्याम् अवरान् पुत्रादीन् परान् पित्रादीन् ।
विष्णुधर्मोत्तरे 'अश्वयुक् शुक्लपक्षस्य पञ्चदश्यां नरेश्वरः ।
कार्तिकेऽप्यथवा मासि वृषोत्सर्गन्तु कारयेत् । ग्रहणे द्वे
महापुण्ये तथाचैवायनद्वये । विषुवद्वितये चैव मृताह्ने बान्ध-
वस्य च । मृताहो यस्य यस्मिन् वा तस्मिन्नहनि कारयेत्'
यस्य बान्धवस्य पित्रादेः यस्मिन्नहनि मृताहस्तस्मिन्नित्यर्थः ।
अत्र च आश्विनपौर्णमासीविधानात् पौष्णे आश्वयुजस्य
चेति रेवतीयुक्तपौर्णमासी ग्राह्या एकश्रुतिमूलत्वकल्पना-
लाघवात् । कालविवेकेऽपि अग्निपुराणम् । 'एकादशाह्ने
प्रेतस्य यस्य चोत्सृज्यते वृषः । प्रेतलोकं परित्यज्य स्वर्गलोकं
स गच्छति । आद्यश्राद्धे त्रिपक्षे वा षष्ठे मासि च वत्सर ।
वृषोत्सर्गश्च कर्त्तव्यो यावन्न स्यात् सपिण्डता । सपिण्डी-
करणादूर्ध्वं कालोऽन्यः शास्त्रचोदितः' । यस्य प्रेतस्येति
सामान्यतः श्रुतेः पितृभिन्नस्यापि वृषोत्सर्गः प्रतीयते । तथाच
'आत्मानञ्च पितृंश्चाथ पत्नीं मातामहान् सुतान्' । इत्यादि-
कार्णाजिनिवाक्यात् पुंगतत्ववत् स्त्रीगतत्वेऽपि फलस्याव-
गमात् स्त्रिया अपि वृषोत्सर्गः अतएव विभिन्नगोत्राणामपि
वृषोत्सर्ग इति द्वैतनिर्णये मिथ्याः । एष्टव्या वहवः पुत्रा यद्ये-
कोऽपौत्यादिवचनन्तु पुत्रस्यातिशयत्वप्रतिपादनार्थमिति ।
अत्र वत्सर इत्युपादानाद्विष्णुधर्मोत्तरोयमृताह इति पदं
पूर्णेसंवत्सरौयमृतततिथिपरम् । अतएव वशिष्टोक्तकन्दोग-
परिशिष्टमपि ।

अथ वृषोत्सर्ग व्याख्यास्यामः । 'कार्तिक्यां पौर्णमास्यां
रेवत्यामाश्वयुज्यां दशाह्ने गते संवत्सरेऽतीते वेति' अत्र मृत-

५३०

हृन्दीगवृषोत्सर्गतत्त्वम् ।

तिथिमादाय संवत्सरगणना दशाहवत् इत्यविरोधः । एकाह-
 दशाह इति आद्यश्चाह इति च अशौचान्ताद्वितीयदिनपरम् ।
 'अशौचान्ताद्वितीयेऽङ्गी शय्यां दद्याद्विलक्षणां । काञ्चनं
 पुरुषं तद्वत् फलवस्त्रसमन्वितम् । संपूज्य द्विजदाम्पत्यं
 नानाभरणभूषणैः । वृषोत्सर्गश्च कर्त्तव्यो देया च कपिला
 शुभा' इति मत्स्यपुराणेनैकवाक्यत्वात् । अशौचान्ताद्वितीये-
 ऽङ्गीति श्रुतेर्निमित्तत्वेन तदुल्लेखः 'मासपक्षतिथौनाञ्च निमि-
 त्तानाञ्च सर्वशः । उल्लेखनमकुर्वाणो न तस्य फलभागभवेत्'
 इति ब्रह्माण्डभविष्यपुराणोक्तेः । ननु तस्य निमित्तत्वे किं
 मानमिति चेत् तस्य कालत्वेन 'निमित्तं कालमादाय वृत्ति-
 विधिनिषेधयोः' इति कालमाधवीयधृतवृद्धगार्ग्यवचनम् ।
 आदायेत्यत्र आश्रित्येति कल्पतरुतिथिविवेकयोः पाठः ।
 अतएवावश्यकत्वेन कालस्य निमित्तत्वेन पर्वदिक्रियमाणस्य
 नित्यनैमित्तकत्वमाह मार्कण्डेयपुराणम् । 'नित्यं नैमित्तकं
 ज्ञेयं पर्वश्चाज्ञादिपण्डितैः' । अत्र वैदिकक्रियानिमित्तस्य
 कालविशेषस्य शुचि तत्कालजोवित्वेनाधिविशेषणीभूतस्य
 परतो या सप्तमी सा नाधिकरणे यो जटाभिः समुङ्क्ते इति-
 वत् कालस्य विशेषणत्वेन तद्वाधकत्वतयाप्राप्तेः किन्तु काल-
 भावयोः सप्तमीत्यनेन तृतीयाबाधिका पुनः सप्तमी विधीयते
 शरदि पुष्पप्रान्ति सप्तच्छदा इति वत् अतः कर्त्तृविशेषणीभूत-
 स्यापि कालस्य वैदिकक्रियानिमित्ततयोल्लेखः । अशौच-
 व्यपगमस्य तु विलक्षणशय्यादानादौ वचनानुपात्तत्वान्नोल्लेखः
 आद्यश्चाह्वीयविष्णुसूत्रश्रुतस्याशौचव्यपगमस्यापि ध्वंसस्वरूप-
 त्वेनानन्तस्य विशेषकल्पनायां सर्ववर्णसर्वाशौचसाधारणत्वेन
 अशौचान्ताद्वितीयदिनस्यैव मत्स्यपुराणश्रुतस्य कल्पत्वमिति
 सद्यःशौचेऽपि न तदुल्लेखासङ्गतिः । 'यावदशौचं पिण्डान्

कन्दोगवषोत्सर्ग तत्त्वम् ।

५२१

दद्यात्' इति विष्णुसूत्रानुरोधेन 'हे सन्ध्यो सद्य इत्याह-
स्त्रिमन्थैकाहिकः स्मृतः । द्वावङ्गावेकरात्रिश्च पक्षिणीत्यभि-
धीयते' । इति भट्टनारायणधृतवचनेन सद्यःपदस्य सज्योती-
रूपकालपरत्वात् आभरणपदं अवणकुण्डलवत् भूषणस्य
शरीरयुक्तत्वलाभाय भूषणपदं क्रियापरं अतो न पीनरुक्त्यं
द्विजदम्पती पूजयित्वा काञ्चनं प्रेतप्रतिकृतिरूपपुरुषं कृत्वा
फलवस्त्रयुतं शय्यायामारोप्य भूषितद्विजदम्पतीभ्यां शय्यां
दद्यादिति हारलताकृतः तेषामयमाशयः उपस्थितं द्विजं
विहाय पात्रान्तरकल्पने गौरवात् तद्वदिति च प्रेतवदित्येतत्-
परम् अतएवोक्तं प्रेतप्रतिकृतिरूपमिति स्पष्टमाह पद्मपुराणं
'संपूज्य द्विजदाम्पत्यं नानाभरणभूषणैः' इत्यन्तं मत्स्यपुरा-
णोक्ततुल्यमभिधाय 'उपवेश्य च शय्यायां मधुपर्कं ततो ददेत्'
इत्यभिधानात् । भविष्योत्तरेऽपि 'कार्यस्तु पुरुषो हेमस्तस्या-
मारोपयेच्च तम् । पूजयित्वा प्रदातव्या मृतशय्या यथोदिता' ।
अतएव फलवस्त्रयुतप्रेतप्रतिकृतिरूपकालञ्च पुरुषवतीत्वेन
शय्याया वैलक्षण्यं सङ्गच्छते एवं कर्मभेदाय चकारहयमभि-
हितमुत्तरार्द्धं । अतएव प्रागुक्ताग्निपुराणवचने एकादशाहे
केवलवषोत्सर्गोऽभिहितः अतएव अशीचान्ताद्वितीयदिने
वषोत्सर्गे द्विजदम्पतीपूजनमावश्यकमिति निरस्तं त्रिपक्षादौ
वषोत्सर्गे विलक्षणशय्यादानादौ प्रमाणं नास्ति न च 'देव-
व्रतवषोत्सर्गचूडाकरणमेखलाः । मङ्गल्यमभिषेकञ्च मलमासे
विवर्जयेत्' इति गृह्यपरिशिष्टीयान्मलमासेऽपि प्रेतवषोत्सर्गो
नास्तीति वाच्यम् 'अशीचान्तेऽपि कर्त्तव्यं वषोत्सर्गादिकं
सुतेः । मलिम्लुवादिदोषस्तु न ग्राह्यस्तत्र कश्चन' इति
विशारदप्रभृतिधृतवचनात् । 'नैऋतानां हितार्थाय जगत्-
कर्त्ता नृणां प्रभुः । निर्ममे मलिनं मासं प्रेतानाञ्च हिताय

५३२

कन्दोगवृषोत्सर्गतत्त्वम् ।

च । अतः प्रेतक्रियाः सर्वाः कर्त्तव्यास्तु मलिम्लुचे' इति भविष्यपुराणाच्च । एतद्वहुधा शुद्धितत्त्वे विवृतमिति नेह वितन्यते । प्रेतवृषोत्सर्गे वृद्धिश्चाहं न कर्त्तव्यं 'नार्वाक् संवत्-सराहृद्धिर्गवोत्सर्गे विधीयते । सपिण्डीकरणादूद्धं वृद्धिश्चाहं विधीयते' इत्युशनसो वचनात् वृषलक्षणमाह कात्यायनः 'अथङ्गो जीववत्सायाः पयस्विन्याः सुतो बली । एकवर्णो द्विवर्णो वा यो वास्यादष्टकासुतः । यूथादुच्चतरो यस्तु समो वा नौच एव वा । सप्तावरान् सप्तपरानुत्सृष्टस्तारयेद्वृषः' । अष्टकासुतः अष्टकासु जातः कामधेनुप्रभृतिषु मत्स्यपुराणं 'चरणानि मुखं पुच्छं यस्य श्वेतानि गोपते । लाक्षारससवर्णश्च तं नीलमिति निर्दिशेत् । वृष एव मयोक्तव्यो न सम्यार्थो गृहे वसन् । तदर्थमेषा चरति लोके गाथा पुरातनी । एष्टव्या वहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् । गौरीं वाप्य-द्वहेद्भार्यां नीलं वा वृषमुत्सृजेत्' । तृतीयचरणन्तु यजे-द्वाथ अश्वमेधेनेति नारायणोपाध्यायैर्लिखितं वत्सतरीर्विशेष-यति 'अग्रतो लोहिता पत्नी पार्श्वभ्यां नीलपाण्डरे । पृष्ठतश्च भवेत् कृष्णा वृषभस्य च मोक्षणे' । वैधकर्मार्थमण्डपान्त-र्वितानमुक्तं हयग्रीर्षपञ्चरात्रम् । 'नवेन चित्रवस्त्रेण वितानं कल्पयेद् बुधः' । अत्र च 'शुक्लवामाः शुचिभूत्वा ब्राह्मणान् स्वस्तिवाच्य च । कीर्त्तयेद्भारतञ्चैव तथा स्यादक्षयं हविः' इति दानधर्मस्थवृषोत्सर्गप्रकरणौयवचनात् अक्षयहविष्टकामेन स्वस्तिवाचनानन्तरं भारतनामोच्चारणं कार्यं 'यदङ्गा कुरुते पापं ब्राह्मणस्त्विन्द्रियैश्चरन् । महाभारतमाख्याय पूर्वां सम्यां विमुञ्चति' इति आदिपुराणोक्तप्रातर्महाभारतोच्चारण-वत् राट्टदेशीयास्तु विराटपर्व पाठयन्ति भविष्ये 'वृषोत्सर्गश्च द्विविधो जीवतो वा मृतस्य च' । इत्युपक्रम्य 'अनुज्ञां गृह्य

छन्दोगहोमोक्तगर्गतत्त्वम् ।

५३३

च पुनर्गणेशं पूजयेद् घटे । ग्रहांश्चैव यजेत् पश्चात् विष्णुं
 संपूजयेत्ततः । छन्दोगपरिशिष्टं 'गोशालायां प्रणूयाम्निं
 संस्तुत्य ब्रीहितण्डुलान् । अग्निपूषेन्द्रेश्वरेभ्यो निर्वपेत्
 पायसं चरुम्' । गोशालायामिति प्रधानकल्पः वृषभ इत्युप-
 क्रम्य 'उत्सृष्टव्यो विधानेन श्रुतिस्मृतिनिदर्शनात् । प्रागु-
 दक् प्लवने देशे मनोज्ञे निर्जने वने' । इति ब्रह्मपुराणेन
 देशान्तरविधानात् प्रणूयाम्निमिति सङ्कल्पमाह हारीतः
 'मनसा सङ्कल्पयति वाचाभिलपति कर्मणा चोपपादयति'
 इति भविष्यपुराणञ्च 'सङ्कल्पेन विना राजन् यत्किञ्चित्
 कुरुते नरः । फलञ्चाल्पाल्पकन्तस्य धर्मस्यार्द्धक्षयो भवेत्'
 इति पूर्वोक्तफलाभिसन्धानेन सङ्कल्पानन्तरं यजमान एव
 प्रथमं ब्रह्मवरणादिकं कुर्यात् 'दानवाचनान्वारक्षणवरण-
 व्रतप्रमाणेषु यजमानं प्रतीयात्' इति कात्यायनसूत्रात् तत्र
 ब्रह्मवरणं प्रथमतो ज्योतिष्टोमे ब्रह्मोद्गाढहोत्रध्वर्यु इत्यादि-
 दर्शनेन अवाकाङ्क्षादृष्टकल्पनाया न्याय्यत्वात् सुगतिसोपान-
 प्रसृतयोऽप्येवं गृह्यासंग्रहे 'द्यूते च व्यवहारे च प्रव्रते यज्ञ-
 कर्मणि । यानि पश्यन्त्युदासीनाः कर्त्ता तानि न पश्यति ।
 एकः कर्मनियुक्तः स्यात् द्वितीयस्तन्त्रधारकः । तृतीयः
 प्रब्रूयात् प्रश्नं ततः कर्म समाचरेत्' । प्रव्रते प्रकृष्टव्रते पूर्वोक्त-
 उक्तोर्द्वितीयवचनं कर्म नियुक्त आचार्यः । स च ब्रह्माङ्गके
 कर्मणि ब्रह्मा स्वयं होमाकरणे होतापि स्वयं प्रधानकर्मा-
 करणे प्रतिनिधिरपि तन्त्रधारकः पुस्तकधारकः प्रश्नवक्ता
 सदस्यः । वरणविधिमाह पारस्करः 'आसनमाह्वर्याह
 साधुभवानास्ताम् अर्चयिष्यामो भवन्तमिति' आसनमाह्वर्याह
 आसनीयं संस्थाप्याह साधुभवानास्तामिति साध्वहमासे इति
 प्रतिवचनम् अर्चयिष्यामो भवन्तमिति पुनरुक्ते अर्चय इति

५३४

छन्दोगहोतृगर्गतत्त्वम् ।

प्रतिवचनं सामर्थ्यादिति हरिश्मां ब्रह्मास्थापनञ्च होतृकर्तृक-
मेव अग्निमुपसमाधाय दक्षिणतो ब्रह्मासनमास्तौर्य्येति
कात्यायनेन एककर्तृकत्वाभिधानात् । प्रणोयाग्निमिति
गोभिलाद्युक्तसर्वहोमसाधारणप्रकारेण अग्निं स्थापयित्वा ।
तमाह गोभिलः । 'अनुगुप्ता अप आहृत्य उदकप्लवनं देशं
समं वा परिसमूहोपलिप्य मध्यतः प्राचीं रेखामुल्लिख्योदो-
चीञ्च संहतां पश्चान्मध्ये प्राचीं रेखामुल्लिख्य मध्ये प्राचींस्तिस्र-
उल्लिख्याभ्युक्षेत् लक्षणावृद्धेः सर्वत्रेति' अनुगुप्ता आच्छा-
दिताः पतितादिभिरसृष्टा इति यावत् प्राङ्नीचादिदेशफल-
माह गृह्यासंग्रहे गोभिलपुत्रः 'प्राङ्नीचं ब्रह्मावर्चस्यमुदङ्-
नीचं यशोत्तमम् । पितॄन् दक्षिणतो नीचं प्रतिष्ठालभ्यन्
तमम्' यशोत्तममित्यत्र सान्ता अप्यदन्ता इत्युक्तेरदन्तो यश-
शब्दः गयाशिरवत् । परिसमूह्य सर्वतः पांशूनुत्साय्य तत्
उपलेपनं तत्करणमाह गृह्यासंग्रहः 'इन्द्रेण वज्राभिहतः
पुराहवो महासुरः । मेदसा तस्य संक्लिन्ना तदर्थमुपलेपयेत्' ।
मध्यतः स्थण्डिलाभ्यन्तरे दक्षिणांशे न तु मध्यमांशे । उदग्ग-
तैकविंशाङ्गुलरेखानुरोधात् अन्यथा हस्तप्रमाणे स्थण्डिले
तदनुपपत्तेः 'प्राचीं प्राग्गताम् उदोचीञ्च संहतां पश्चादिति
प्राग्गतायाः पश्चिमे भागे संलग्नामुदग्गतां मध्ये उदग्गतायाः
प्राचीः प्राग्गतास्तिस्रो रेखा उल्लिख्याभ्युक्षेतेति' रेखाभ्यः सृत्ति-
कोद्धारणपूर्वकमभ्युक्षेत् 'उल्लिख्योद्धृत्याभ्युक्षेत्' इति कात्यायन-
सूत्रात् उत्करप्रक्षेपदेशमाह गृह्यासंग्रहः । 'उत्करं गृह्य
रेखाभ्योऽरत्निमात्रं निधापयेत् । हारमेतत् पदार्थानां प्राग्ग-
दोच्यां दिशि स्मृतम्' । लक्षणावृद्धेः सर्वत्रेति परिसमूहनादि-
परिषेकान्तं कर्मलक्षणसंज्ञकं तस्य लक्षणस्य आहृत्यप्रक्रिया-
सर्वत्र यत्न यत्न अग्निप्रणयनं तत्र रेखाप्रमाणमाह छन्दोग-

छन्दोगवृषोक्तगतस्त्वम् ।

५३५

परिशिष्टं 'दक्षिणे प्राग्गतायास्तु प्रमाणं द्वादशाङ्गुलम् ।
तन्मूललग्नायोदीची तस्या एवं नवोत्तरम् । उदग्गतायां
संलग्नाः शेषाः प्रादेशमात्रिकाः । सप्तसप्ताङ्गुलांस्त्यक्त्वा कुशे-
नैव समुल्लिखेत्' । नवोत्तरं नवाधिकं द्वादशाङ्गुलम् एकविंश-
त्यङ्गुलमित्यर्थः । शेषाः उक्तेरेखयोरवशिष्टास्तिस्रः कुशेनेति
सर्वत्राभिसम्बुध्यते । एवकारेण शाखान्तरीक्तस्फादिव्या-
वृत्तिः । मानकर्त्तारमाह स एव 'मानक्रियायामुक्तायामनुक्ते
मानकर्त्तरि । मानकृद् यजमानः स्याद्विदुषामेष निश्चयः' ।
अङ्गुष्ठाङ्गुलिमानस्वरूपमाह स एव । अङ्गुष्ठाङ्गुलि-
मानस्तु यत्र यत्रोपदिश्यते । तत्र तत्र बृहत् पर्वगन्धि-
भिर्मिनुयात् सदा' स एव यजमानासन्निहितहोमे तु
साधारणाङ्गुलिमानं यथा कपिलपञ्चरात्रम् 'अष्टभिस्तेर्भवे-
ज्जैष्ठं मध्यमं सप्तभिर्यवैः । कन्यसंषड्भिरुद्दिष्टमङ्गुलं मुनि-
सत्तम' । तैः प्रक्रंस्यमानयवैः । कन्यसं कनिष्ठं मानन्तु पार्श्वेन
'षड्यवाः पार्श्वसम्मिताः' इति कात्यायनवचनात् । अग्नि-
स्थापनमन्त्रमाह गोभिलः 'भूर्भुवः स्वरित्यभिमुखमग्निं प्रण-
यन्ति' इति अभिमुखं होत्रभिमुखं पाञ्च नौत्वावत्यं
स्थापयतीति हरिशर्मधृतवचनात् । प्रणयन्ति रेखोपरि स्थाप-
यन्ति अग्निस्थापनपर्यन्तं सव्यहस्तप्रादेशस्य भूमौ निधान-
माह गृह्यासंग्रहः । 'सव्यं भूमौ प्रतिष्ठाप्य प्रोल्लिखेत्
दक्षिणेन तु । तावन्नोत्थापयेत् पाणिं यावदग्निं समापयेत्'
तद्वकारमाह गृह्यासंग्रह छन्दोगपरिशिष्टं 'जातस्य लक्षणं
कृत्वा तं प्रणीय समिध्य च । आधाय समिधश्चैव ब्रह्माण-
मुपवेशयेत्' जातस्यारण्याद्युत्पन्नाग्नेरिति साग्निपरम् ।
लक्षणं प्रागुक्तं रेखादि । ओम् 'क्रव्यादमग्निं' प्रहिणोमि
दूरं यमराज्यं गच्छतु रिप्रवाह इति मन्त्रेणाग्नेः क्रव्यादांशं

५३६

छन्दोगब्रह्मोत्सर्गतत्त्वम् ।

परित्यज्य मन्त्रलिङ्गात् दक्षिणस्यां दिशि प्रणीय उक्तप्रकारेण
 स्थापयित्वा यद्यग्निस्थापनानन्तरं कर्मकाले वृद्ध्याद्याशङ्कया
 तदग्निरन्यत्र नीयते तदा पुनर्भू संस्कारः कार्यः परिसमूहो-
 पलिप्य उल्लिख्योष्ठृत्वाभ्युचेतेति संस्कारोऽनुगतोऽग्नौ भूय इति
 गृह्यान्तरात् तमग्निं समिध्य ज्वालयित्वा समिधं तूष्णीं तच्च
 दत्त्वा वक्ष्यमाणक्रमेण ब्राह्मणमुपवेशयेत् । ज्वालनं मुखेनाह
 गृह्यासंग्रहः 'वस्त्रेण तु भवेद् व्याधिः शूर्पेण धननाशनम् ।
 पाणिना सृत्तुमादत्ते मुखेन सिद्धिभाग्भवेत्' । समिल्लक्षणं
 तत्रैव 'नाङ्गुष्ठादधिका नोना समित् स्थूलतया क्वचित् । न
 निर्मुक्ता त्वचा चैव न स कौटा न पाटिता । प्रादेशानाधिका
 नोना न तथा स्याद्विशाखिका । न सपत्रा न निर्वीर्या होमेषु
 च विजानता' । विशाखिका विविधशाखायुक्ता । तथा
 'शुभं पात्रन्तु कांस्थं स्यात्तेनाग्निं प्रणयेद् बुधः । तस्याभावे
 शरावेण नवेनाभिमुखश्च तत् । सर्वतः पाणिपादान्तः सर्वतो-
 ऽक्षिशिरोमुखम् । विश्वरूपो महानग्निः प्रणीतः सर्वकर्मसु' ।
 एवञ्चास्याग्निप्रणयनानन्तरं पाठो युज्यते मन्त्रलिङ्गात् अन्यथा
 स्थापनानन्तरम् एतदभिधानं व्यर्थं स्यात् । ब्रह्मोपवेशन-
 प्रकारमाह गोभिलः 'अग्नेणाग्निं परिक्रम्य दक्षिणतोऽग्नेः
 प्रागग्रान् कुशानास्तौर्यं तेषां पुरस्तात् प्रत्यङ्मुखस्तिष्ठन्
 सव्यस्य पाणेरङ्गुष्ठेनोपकनिष्ठया चाङ्गुल्या ब्रह्मासनात्तृणमभि-
 संगृह्य दक्षिणापरमष्टमं देशं निरस्यति निरस्तः परावसुरिति
 अप उपसृश्याथ ब्रह्मासन उपविशति आवसोः सदाने सीदा-
 मौत्यग्न्यभिमुखो वाग्यतः प्राञ्जलिरास्ते आक्रमणः पर्यव-
 सानात् भाषेत यज्ञसंसिद्धिं नायज्ञीयां वाचं वदेत् तदा वैष्ण-
 वीमृचं ययुर्वा जपेदपि वा नमो विष्णवे इत्येवं वा ब्रूयात् ।
 यद्युवा उभयच्चिकीर्षेद्वीचं ब्रह्मत्वञ्च तेनैव कल्पेन छत्रम् उत्त-

छन्दोगवृषीठसर्गतत्त्वम् ।

५३७

रासङ्गम् उदककमण्डलुं दर्भवटुं वा ब्रह्मासने निधाय तेनैव परावृत्त्याधोऽन्यच्चेष्टेतेति' । अग्रेण पूर्वया दिशा प्रदक्षिणे-
नाग्निं गत्वा अग्नेर्दक्षिणस्यां दिशि प्रागग्रान् कुशानास्तौर्य्य
अन्यच्चेष्टेतेति वक्ष्यमाणेन सम्बन्धः न तु निरस्यतीत्यनेन तत्र
ब्रह्मेति कर्त्तृनिर्देशात् न च ब्रह्मेत्यासनेन सम्बन्धः उपवेश-
नात् पूर्वं तत्सम्बन्धाभावात् ततश्च दर्भास्तरणान्तं याजमानिकं
कर्म ब्रह्मा तु तेषां पुरस्तात् आस्तृतकुशानां पूर्वदिग्भागे तिष्ठ-
न्ननुपविष्टः सव्यस्य वामस्य उपकनिष्ठया अनामिकया आस-
नात् यजमानास्तृतात् त्वणं कुशपत्रं गृहीत्वा दक्षिणपश्चिमा-
ष्टमदेशे नैऋतकोणमिति यावत् निरस्तः परावसुरित्यनेन
क्षिपति अप उपसृश्य दक्षिणपाणिना जलं स्पृष्ट्वा अथानन्तर-
मासने ब्रह्मा ब्रह्मत्वेन परिकल्पित उपविशति आवसोः सदने
सौदामीति मन्त्रेण एवमेव भट्टनारायणव्याख्यानात् तेषां
पुरस्तादित्यादि आवसोः सदने सौदेत्यन्तं कर्म यजमानकर्त्तृकं
सौदामीति प्रतिवचनं ब्रह्मकर्त्तृकमिति भवदेवभट्टकल्पनं हेय-
मेव सौदेति सूत्रानुपात्तत्वाच्च भाषेत यज्ञसंसिद्धिमिति होत्रा-
न्यथा क्रियमाणे कर्मणि तत्संसिद्धयर्थम् एतदेवं कुरु एतत्
कृत्वा एवं कुर्वित्यादि भाषेत अत्राप्ययज्ञीयामसंस्कृतां वाचं
वदेद् यदि तदा वैष्णव्युचम् इदं विष्णुरिति यजुर्विष्णोवराट्-
मसीति नमो विष्णवे इति प्रकारचितयान्यतमप्रकारं प्राय-
श्चित्तमिति यद्युवाऽशक्तावुत्तरासङ्गमुत्तरीयं दर्भवटुः कुश-
ब्राह्मणः सचापरिमितकुशदलैर्भवतौति भट्टभाष्यात् एकप-
त्रीकृतान् कुशानिति भवदेवभट्टलिखनाच्च दलैर्व्यवह्रियते
अत्र परिमितसंख्यात्वमाह छन्दोगपरिशिष्टे 'यज्ञवास्तुनि
मुष्ट्याश्च स्तम्भे दर्भवटौ तथा । दर्भसंख्या न विहिता विष्टरा-
स्तरणेषु च' इति छन्दोगपरम् अन्येषान्तु शान्तिदीपिकायां

५३८

कुन्दोगवृषोत्सर्गतत्त्वम् ।

‘सप्तभिर्नवभिर्वापि सार्द्धद्वितयवेष्टितम् । ओङ्कारेणैव मन्त्रेण
 द्विजः कुर्यात् कुशद्विजम्’ । कर्मोपदेशिन्यान्तु नवभिरित्यत्र
 पञ्चभिरिति पाठः एतदेकवाक्यतया ‘द्विरावृत्त्या च मध्ये वै
 चार्द्धवृत्त्यान्तदेशतः । ग्रन्थिप्रदक्षिणावर्त्तः स ब्रह्मा ग्रन्थि-
 संस्रक्तः’ इति कालिकापुराणोक्तं व्याख्येयं रत्नाकरे गृह्या-
 संग्रहपरिशिष्टम् । ‘ऊर्ध्वकेशो भवेद् ब्रह्मा लम्बकेशस्तु
 विष्टरः । दक्षिणावर्त्तको ब्रह्मा वामावर्त्तस्तु विष्टरः’ । तेनै-
 वेत्येवकारेण ब्रह्मकर्म स्वयं कर्तृत्वेऽपि आवसोः सद्ने मौदा-
 मौत्स्यस्य मन्त्रस्योह प्रतिषेधार्थः । स्वयञ्चेदुभयं कुर्यादिति
 कुन्दोगपरिशिष्टात् कृताकृतावेक्षणवत् स्वयं तद्देशोपवेशनस्य
 कर्त्तव्यत्वात् कुशमयब्राह्मणादिद्वारा तदुपपत्तेः तेनैव पूर्व-
 वत्सर्गना अथेति विशिष्टमानन्त्यर्थं द्योतयति तच्च द्रव्याण्युप-
 योगक्रमेण अग्निरुत्तरतः उदगग्राणि पूर्वपूर्वाक्रमेणामाद्य
 वीक्ष्य प्रोक्षणं तदनन्तरं ब्राह्मणोपवेशनमित्यर्थः अन्यद्व्यमाणं
 भूमिजपादिकर्म चेष्टेत् कुर्यात् यजमानः परस्मैपदं कुन्दो-
 वत् सूत्राणि भवन्तीत्युक्तेः । तथा द्रव्यासादनमाह कात्या-
 यनः ‘प्राञ्चं प्राञ्चमुदगग्निरुदगग्रं समीपतः । तत्तथासादयेद्
 द्रव्यं यद् यथा विनियुज्यते’ । इति भट्टभाष्यदृष्टतश्च ‘द्रव्याणा-
 मुपकृतानां होमौयानां यथाक्रमम् । सादयन् वीक्षणं कुर्या-
 दङ्गिरभ्युक्षणं तथा’ । कुन्दोगपरिशिष्टम् । ‘आज्यस्थालौ
 च कर्त्तव्या तैजसद्रव्यसम्भवा । माहेयौ वापि कर्त्तव्या नित्यं
 सर्वाग्निकर्मसु’ । एवं क्रमेणाग्निं प्रणीय ब्रीहितण्डुलान्
 इति शरत्पक्वधान्यतण्डुलानित्यर्थः अभावे शालितण्डुलान्
 ‘यथोक्तवस्त्वसम्पत्तौ ग्राह्यं तदनुकारि यत् । यवानामिव
 गोधूमाव्रीहीणामिव शालयः’ । इति कात्यायनोक्तेः अत्र
 च हविर्निर्वपति ब्रीहीन् यवान् वेति गोभिलपरिभाषासि-

कन्दोगवृषोत्सर्गतस्त्वम् ।

५३८

क्षेषु व्रीहिषु यद् व्रीहिग्रहणं तद्वै कल्पिकयवनिरासनियमार्थं
 सिद्धे सत्यारम्भस्य नियमार्थत्वात् संस्कृत्य निर्वापादिक्रमेण
 निष्पाद्याग्न्यादिदेवेभ्यो होमाय पायसं पयोभिः पक्वं भवि-
 श्यन्तं चरुं निर्वपेत् अग्नावारोपयेत् यद्यपि पूषाचपिष्टकभाग-
 दन्तको हि स इति श्रुत्या पूषः पैष्टचरुचरितस्तथापि भूयो
 विरोधे स्वल्पमन्याय्यमिति न्यायेनाग्नीन्द्रेऽश्वराणामनुरोधात्
 तण्डुलेन चरुमाह कन्दोगपरिशिष्टं 'यद्यप्यदन्तकः पूषा पैष्ट-
 मन्ति सदा चरुम् । अग्नीन्द्रेऽश्वरसामान्यात्तण्डुलोऽत्र विधी-
 यते' । पिष्टचरुस्तु केवलपूषदैवतपरः । सर्वत्र चरुहोम-
 प्रकारमाह गोभिलः अथोदूखलमूषले प्रक्षाल्य शूर्पञ्च पञ्चा-
 दम्बैः प्रागग्रान् दर्भानास्तौर्योपसादयति अथ हविर्निर्वपति
 व्रीहीन् यवान् वा कांस्येन चरुस्याख्या वा अमुष्मै त्वाजुष्टं
 निर्वपामीति देवतानामोद्देशं सकृद् यजुषा हिस्तूष्णीम् अथ
 पञ्चात् प्राङ्मुखोऽवहन्तुमुपक्रमते दक्षिणोत्तराभ्यां पाणिभ्यां
 त्रिःफलीकृतांस्तण्डुलां स्निर्देवेभ्यः प्रक्षालयेद्दिर्भन्येभ्यः सकृत्
 पितृभ्य इति पवित्रान्तर्हितांस्तण्डुलान् वपेत् कुशलः
 शृतमिव स्थालीपाकं अपयेत् प्रदक्षिणमुदा युवन् शृतमभि-
 घार्थ्य उदगुदास्य प्रत्यभिचारयेदिति । उपसादयति स्थाप-
 यति देवतानामोद्देशं देवतानामोच्चारणं यथा स्वात्तथा अमुष्मै
 त्वाजुष्टं निर्वपामीति मन्त्रेणोदूखलोपरि व्रीह्यादीन् कंसा-
 दिना सकृन्निर्वपेत् निक्षिपेत् अत्रामुष्मा इत्यत्र चतुर्थ्यन्त तत्त-
 देवतानामोच्चारणम् अतएव कात्यायनः 'असाविति नाम
 गृह्णातीति' नारायणीयेऽपि 'अदःपदं हि यद्रूपं यत्र मन्त्रे
 हि दृश्यते । साध्याभिधानं तद्रूपं तत्र स्थाने नियोजयेत्
 अदःपद एवोहो न तु विरूपाक्षजपादाविदमित्यादौ एवञ्चा-
 ख्ये त्वाजुष्टं निर्वपामीति सामगानां यजुः प्रयोगः बहुदैवत्यः

५४०

ऋन्दोगवृषोत्सर्गतत्त्वम् ।

चरौ तत्तद्देवतानामभिः प्रत्येकं निर्वापः अन्ननिर्वापो तु तन्त्रे-
 णैव होमोऽपि पृथक् निर्वापपरिमाणन्तु होमसंख्याशेषस्थि-
 त्वनुसारेणेत्याह ऋन्दोगपरिशिष्टं 'देवतासंख्यया गृह्यनिर्वा-
 पांश्च पृथक् पृथक् । तूष्णीं द्विरेव गृह्योयाहोमस्यापि पृथक्
 पृथक् । यावता होमनिष्पत्तिर्भवेद् या यत्र कीर्तिता ।
 शेषश्चैव भवेत् किञ्चित् तावन्तं निर्वपेच्चरुम्' । यद्यपि देव-
 तासंख्ययेति वचनम् । चरुः समसनीयो य इत्युपक्रम्य पठितं
 तथाप्याकाङ्क्षया लाघवेन च चरुसामान्यपरमिति । गोभिले
 निर्वापमात्रश्रुतेर्यजुर्वेदिकसमन्वकग्रहणप्रोक्षणे सामगेन न
 कार्यम् । यजुःपरिभाषामाह जैमिनिः 'शेषे यजुःशब्द इति'
 शेषे ऋक्सामभिर्न मन्त्रजाते । ततश्च यन्मन्त्रजातं प्रश्लिष्य
 पठितं गानपादभेदरहितं तद् यजुरिति अत्र विद्याकरवाज-
 पेयी तु शास्त्रावधारणवेलायां हि यत्र प्रयोजनाभावादिति
 निश्चयः तत्रैव तदुपादानादिलोपः शास्त्रार्थः यथा कृष्णलेऽव-
 घातादिलोपः यत्र त्वनुष्ठानवेलामेव पुरुषदोषेण प्रयोजना-
 भावो ज्ञायते तदा प्राक् तन्निश्चयात् शास्त्रप्रापितपदार्थी
 नियमापूर्वमात्रार्थमनुष्ठेयः अतएव प्रकृतावप्यालस्यादिना
 त्रौद्धादिस्थाने तण्डुलादिषु गृहीतेषु अवघातादि समाचरन्ति
 याज्ञिकाः पठन्ति च 'घाते न्यूने तथा छिन्ने सान्नाय्ये मान्निके
 तथा । यज्ञे मन्त्राः प्रयोक्तव्या मन्त्रा यज्ञार्थसाधकाः' । मान्निके
 मन्त्रसाध्येऽवघातादौ न्यूने तत्काले मन्त्रपाठाभावेऽपि यज्ञ-
 काले मन्त्राः प्रयोक्तव्याः अस्मिंस्तु कल्पे मन्त्रार्थज्ञानस्य
 नास्त्युपयोगः इत्यमेव इदानीं प्रयोगानुष्ठानमित्याह । चरु-
 स्थालीपरिमाणमाह ऋन्दोगपरिशिष्टं 'तिर्य्यगूर्ध्वसमिन्मात्रा
 दृढानातिवृहन्मुखी । गृह्यस्थौदुम्बरी वापि चरुस्थाली प्रश-
 स्यते' । गर्भप्रस्तारदर्घ्याभ्यां प्रादेशप्रमाणा चरुस्थाली

छन्दोगहृषोत्सर्गतत्त्वम् ।

५४१

श्रीदुम्बरी ताम्रमयी एषा पायसचरावपि न विरुद्धा । 'पयोऽनुद्धृतसारश्च ताम्रपात्रे न दुष्यति' इति स्मृतिसागरसारष्टत-
वचनात् । अतएव शारदातिलके । 'ततश्च संस्कृते वज्री
गोक्षीरेण चक्रं पचेत् । अस्त्रेण क्षालिते पात्रे नवे ताम्र-
मयादिके' । दक्षिणोत्तराभ्यामिति दक्षिण उत्तर उपरि ययोः
पाण्योस्ताभ्यां मुसलं गृहीत्वेति शेषः त्रिःफलीकृतान् त्रिधा
वितुषीकृतान् कण्डनप्रच्छटनाभ्यामिति शेषः' पवित्रान्त-
र्हितान् पवित्रमन्तर्हितं व्यवहितं येषां तान् । तेन चरु-
स्थाल्यामुत्तराग्रं पवित्रं निक्षिप्य तण्डुलान् निक्षिपेत् कुशल-
शृतमिव कुशलेनात्र परिपाकनिपुणेन शृतं यथा न दग्धं
भवति नातिक्लिन्नं न मन्दपक्व तथा स्थालीपाकं यथा स्यात्
तथा श्रपयेत् अतएव छन्दोगपरिशिष्टं 'स्वशाखोक्तचक्रः स्वित्री
ह्यदग्धो कठिनः शुभः । न चाति शिथिलः पाथ्यो न च
वौतरसो भवेत्' वौतरसो गालितमण्डः । दक्षिणमुदा-
युवन्निति दक्षिणावर्त्तं यथा स्यात्तथा मेक्षणेनोर्द्ध्वमीषदवघट्ट-
यन् मिश्रयन् युमिश्रण इत्यस्य रूपम् । शृतमभिघार्य इति
स्फुटितं चरुमाज्यसुवेणाप्लाव्य उदगग्नेरुत्तरस्थाम् उदास्यो-
त्तोर्य प्रत्यभिचारयेत् पुनर्घृतेन तथा सेचयेत् हृषोत्सर्गेत्यभि-
घारणइयात् पूर्वं ज्वलदङ्गारेण अवद्योतनमाह छन्दोगपरि-
शिष्टम् 'अधिश्रितम् अवद्योत्य सुशृतं चाभिघारयेत् । पश्चात्
पुनरवद्योत्य पुनः प्रत्यभिघारयेत्' । मेक्षणादीनां प्रमाण-
माह छन्दोगपरिशिष्टम् 'इध्मजातीयमिध्मार्द्धप्रमाणं मेक्षणं
भवेत् । वृत्तं वार्त्तश्च पृथ्व्यमवदानक्रियाक्षमम्' । इध्मार्द्ध-
प्रमाणं प्रादेशइयमिध्मस्य प्रमाणं परिकल्पितमित्युक्तं तदर्द्धम्
'एषैव दर्वी यस्तत्र विशेषस्तमहं ब्रुवे । दर्वी इष्टजलपृथ्व्या
तुरीयेणास्तु मेक्षणम् । मुसलोदूखले वार्त्तं स्नायते सुदृढे

५४२

छन्दोगवृषोक्तगर्तस्त्वम् ।

तथा । इच्छाप्रमाणे भवतः शूर्पं वैणवमेव च' । तत्र
 तिर्य्यगूर्ध्वेत्यादि वैणवमेव चेत्यन्तेन चर्वङ्गमभिधाय भूमि-
 जपपरिसमूहनहस्तविन्यासमाह छन्दोगपरिशिष्टं 'दक्षिणं
 वामतो वाह्यमात्माभिमुखमेव च । करं करेण कुर्वीत
 करेण्यश्च कर्मणः । कृत्वाग्न्यभिमुखौ हस्तौ स्वस्थानस्थौ
 सुसंहतौ । प्रदक्षिणं तथासौनः कुर्यात् परिसमूहनम्' ।
 करेणेति षष्ठ्यर्थे तृतीया करं करस्येति पाठान्तरम् । दक्षिणं
 करं वामतो वामकरस्य वाह्यं कुर्यात् दक्षिणहस्तमधीमुखं
 तथाविधवामहस्तपृष्ठोपरिभावेन विपर्य्यस्तमात्माभिमुखं
 कृत्वा भूमिजपं कुर्यादित्यर्थः । अग्न्यभिमुखौ नात्माभि-
 मुखौ स्वस्थानस्थौ न भूमिजपवद्दृष्टौ सुसंहते विस्तृतसंलग्नौ
 तथात्वेनैवाग्नेः परिसमूहनं विक्षिप्तावयवानामेकत्रीकरण-
 रूपं सुकरं स्यात् एवमेव भट्टनारायणोपाध्यायाः एतेन
 दक्षिणहस्तेन कुशान् गृहीत्वा इति भवदेवभट्टलिखनं निष्प्र-
 साणकम् । इमं स्तोममर्हति इति वृत्रेण परिसमूहेदिति
 सूत्रस्य परिशिषोऽयम् एतदनुसारादेव ब्रह्मस्थापनचक्रस्थाप-
 नानन्तरं भूमिजपपरिसमूहनादि भवदेवभट्टवैरीश्वरोक्तं युक्तं
 भट्टभाष्ये तु भूमिजपं वृत्रेण परिसमूहनं कुर्यात् पश्चाद्
 ब्रह्मोपवेशनमिति । सरलापरिशिष्टप्रकाशयोस्तु भूमिजपा-
 नन्तरं चक्रप्रणमित्युक्तम् । अग्निस्तरणमाह गोभिलः ।
 'अग्निमुपसमाधाय कुशैः समन्तात् परिस्तृणुयात् पुरस्ता-
 दक्षिणतः उत्तरतः पश्चादिति सर्वतस्त्रिहृतं पञ्चहृतं बहुल-
 सयुग्ममसंहतं प्रागग्रैर्मुलानि क्वादयन्निति' । उपसमाधाय
 प्रज्वाल्य समन्तात् सर्वतः पुरस्तादित्यनेन क्रमेण सर्वतः
 सर्वासु दिक्षु त्रिहृतं पञ्चहृतं वा त्रिःकत्वः पञ्चकत्वो वा ।
 बहुलं बहुदणकम् अयुग्मं युग्ममभिजम् असंहतमसंलग्नं पृथक्

इन्द्रो गृह्योक्तं न तत्त्वम् ।

५४३

पृथक् त्रिवृतं पञ्चवृतं वेत्यनेनायुग्मे सिद्धेऽयुग्मग्रहणमेका-
 वृतस्यापि प्राप्त्यर्थं तथाच गृह्यान्तरं सकृन्निर्वा प्रतिदिशं
 प्रदक्षिणम् अग्निं स्तृणातीति एवमेव भट्टनारायणचरणाः
 तत्र सकृदावृतमशक्तविषयं पूर्वास्तृतावृतानां मूलानि पश्चादा-
 स्तृतायैः करणभूतैश्चादयन् परिस्तृणुयात् एवञ्च प्रतिदिशं
 दर्भत्रयेणावृतानि कृत्वा तेषां मूलानि तथैवाच्छादयेत् ।
 इति संस्कारतत्त्वेऽधिकं लिखितम् । ततो दशदिक्षु स्वस्ति-
 कान् दद्यादिति भवदेवभट्टः । अस्मिन्नेव समये प्रासानाम्
 अथेभ्यानुपकल्पयति खादिरान् पालाशान् वेति गोभिले-
 नोक्तानां 'प्रादेशद्वयमिधस्य प्रमाणं परिकीर्तितम् । एवं-
 विधाः स्युरेवैह समिधः सर्वकर्मसु । समिधोऽष्टादशेभ्यस्य
 प्रवदन्ति मनीषिणः । दर्शे च पौर्णमासे च क्रियास्वन्थासु
 विंशतिम्' इति कात्यायनेन विरोधितानां विंशतिकाष्टिका-
 रूपसमिधमङ्गहोममाचनिषेधाद्विषोक्तमङ्गहोमेऽपि निषेधः
 अङ्गहोमसमित्तन्त्रशोथन्वाख्येषु कर्मसु । येषाञ्चैतदुपर्युक्तं
 तेषु तत्सदृशेषु च । अक्षभङ्गादिविपदि जपहोमादिकर्मसु ।
 सोमाहुतिषु सर्वासु नैतेष्विधौ विधीयते' इति कात्यायन-
 वचनात् । अङ्गहोमाः सीमन्तोन्नयनचूडाकरणादौ विहिता-
 स्तेषु अथ सीमन्तोन्नयनादेः प्राधान्यात् तथा द्विधा
 होमा यज्ञिका प्रसिद्धाः तन्त्रहोमाः क्षिप्रं ह्यते इति
 व्युत्पत्त्या सायं प्रातर्होमादयः तन्त्रहोमाश्च परिसमूहन-
 वहिरास्तरणायङ्गविस्तारयुक्ताः तत्र ये समिधविष्कास्तन्त्र-
 होमाः यश्च सुखप्रसवार्थं शोथन्तीहोमः येषां च सायं
 प्रातर्होमादीनाम् एतदिध्याख्यं द्रव्यं पश्चात् अथे-
 भ्यानुपकल्पयते इत्यनेन सूत्रेणोक्तं तेषु तत्सदृशेषु क्षिप्र-
 होमादिषु इधस्य निवृत्तिर्भवेदिति विवाहोत्तरगोभिलोक्त-

५४४

हृन्दीगृहपोस्तर्गतस्वम् ।

गोयानकालीनाक्षमङ्गादिविपदि तन्निमित्तके होमे 'लौकिके वैदिके चैव हुतोच्छिष्टे जले क्षिती । विश्वदेवस्तु कर्तव्यः पञ्च-सूनापनुत्तये' इत्याद्युक्तजलक्षित्यादिहोमेषु सोमरसाहुतिषु इक्षस्य निवृत्तिमित्यर्थः । गोभिलः 'वर्हिषि स्थालीपाकमासाद्य इक्षमभ्याधायाज्यं संस्कुरुते' इति आस्तीर्णकुशेषु चरु-त्रिधाय समिधमग्नावाधाय ज्वलनार्थत्वादमन्त्रकम् । तथाच कात्यायनः 'इक्षोऽप्ये धार्थमेवाग्नेर्हविराहुतिषु स्मृतः' । आज्य-माह गृह्यासंग्रहे 'अग्निना चैव मन्त्रेण पवित्रेण च चक्षुषा । चतुर्भिरेव यत् पूतं तटाज्यमितरद् दृतम् । दृतं वा यदि वा तैलं पयो वा दधि यावकम् । आज्यस्थाने नियुक्ता-नामाज्यशब्दो विधीयते' शेषवचनं यज्ञपाश्चात्त्यमपि संस्कार-विधिमाह गोभिलः । 'तत एव वर्हिषः प्रादेशमात्रे पवित्रे कुरुते' । इति तत आस्तृतात् प्रादेशमात्रे विस्तृततर्जन्य-ङ्गुष्ठप्रमाणे द्विवचनं दलापेक्षं न तु 'अनन्तर्गभिणं मायं कौशं द्विदलमेव च । प्रादेशमात्रं विज्ञेयं पवित्रं यच्च कुत्रचित्' इति कात्यायनोक्तद्विदलपवित्रस्य द्वित्वं तथात्वे प्रादेशमात्र इति व्यर्थं स्यात् अतएव कात्यायनेनैव आज्य-स्योत्पवनार्थं यत्तदप्येतावदेवत्वेकत्वेन निर्दिष्टम् अनन्त-र्गभिणमन्तर्गमस्याभावोऽनन्तगर्भं तद्युक्तमन्तर्गमशून्य-मित्यर्थः । 'अनन्तस्तरुणी यौ तु कुशौ प्रादेशसन्निती । अनखच्छेदिनी साग्रौ ती पवित्राभिधायकौ' इति शौनक-वचनैकवाक्यत्वात् । अत्र दलेऽपि कुशपदप्रयोगः । गोभिलः ओषधिमन्तर्धाय क्षिन्नन्ति न नखेन पवित्रेस्थो वैष्णव्याविति' ब्रीह्यादिकमन्तराकृत्वा गोभिलः 'अथैने अङ्गिरनुमाष्टि' विष्णोर्मनसा पूतेत्यर्थः' इति । एने पवित्रे । 'संपूयोत्-पुनात्युदगग्राभ्यां पवित्राभ्यामङ्गुष्ठाभ्यां चोपकनिष्ठाभ्यां

कन्योमहोत्सवमंतस्वम् ।

५४५

‘आहुलिभ्यामिति’ अभिसंगृह्य प्राक्शस्त्रिरुत्पुनाति ‘देवस्वा-
 सवितोत्पुनात्वच्छिद्रेण पवित्रेण वसोः सूर्यस्य रश्मिभिः’
 इति सकृद् यजुषाद्विस्तूणीमिति संपूय प्रकृतमाज्यं कथं
 पवित्रमन्तरा कृत्वा स्थात्वामाज्यं समावपेत् इत्येवं
 वक्ष्यमाणविधिनेति भट्टभाष्यं संपूय मत्तिकाद्यपनीयेति
 सरला उत्पुनात्युद्धं शोधयति तत्प्रकारमाह उदगयाभ्या-
 मिति अङ्गुष्ठाभ्यामिति द्विवचनं पाण्डित्यार्थम् एवमनेन
 प्रकारेण प्रतिसंगृह्य प्रकृते पवित्रे प्राक्श इति प्राग्गतं
 चिरुत्पुनाति अग्नौ वारचयं घृतं निक्षिपति तत्प्रकारमाह
 मन्त्रेण सकृद्विस्तूणीं गोभिलः ‘अथैने अद्भिरभ्युक्ष्याग्ना-
 वुत्सृजेत् इति अथान्तरमेवासुञ्चन एने पवित्रे सव्येन
 गृहीत्वा दक्षिणेनाभ्युक्ष्य गोभिलः । ‘अथैतदाज्यमधि-
 श्रित्वोदगुहासयेदेवमाज्यसंस्कारकल्पो भवतीति’ । आज्यं
 तदयुतपात्रमधिश्रित्याग्नेरुपरि कृत्वा उदगुत्तरतः उदासयेत्
 अवतारयेत् यत्रैवाज्यसंस्कारस्तत्रैवायं कल्प इत्यत्र गर्भपात-
 संस्कार सकृत् संस्कृताज्यपात्रे यानि प्रक्षिप्यन्ते तेषां संस्कारा-
 न्तरापेक्षा नास्तीत्याह गृह्यासंग्रहः । ‘तथा सीमन्तिनी
 नारौ पूर्वगर्भेण संस्कृता । एवमाज्यस्य संस्कारः संस्कार-
 विधिदेशितः’ । आश्वलायनगृह्यपरिशिष्टं ‘सीमन्तोन्नयनं
 प्रथमे गर्भे सीमन्तोन्नयनसंस्कारो गर्भपात्रसंस्कार इति’
 श्रुतिरिति गर्भपात्रयोरयं गर्भपात्रः गर्भस्य उदरस्थस्य पात्रस्य
 तदाधारस्य स्त्रिया इति कल्पतरुः । हारीतः ‘सकृच्च
 ‘कृतसंस्काराः सीमन्तेन कुलस्त्रियः । यं यं गर्भं प्रसूयन्ते
 स गर्भः संस्कृतो भवेत्’ । गोभिलः । ‘पूर्वमाज्यमपरस्थाली-
 पाक’ इति अत्र पूर्वापरदेशस्थित्याज्यस्थालीपाकयोस्तथा
 ह्यपदेशः तेन तौ पूर्वापरौ स्थाप्यौ प्रथमतो अग्नेरुत्तरस्था-

५४६

छन्दोगवृषोत्सर्गतत्त्वम् ।

मासादनं ततश्च कर्मकाले सौकर्यात् अग्नेः पश्चात् तथाच
 गृह्यान्तरं 'होमन्वोरन्तराज्यहविषौ आसादयेदिति'
 छन्दोगपरिशिष्टं 'होमपात्रमनादेशे द्रवद्रव्ये सुवः स्मृतः'
 तथा । खादिरो वायु पालाशो द्विवितस्तिः सुवः स्मृतः ।
 सुगन्धाहुमात्रा विज्ञेया वृत्तस्तु प्रग्रहस्तयोः' । खादिरः
 खदिरकाष्ठनिर्मितः पलाशकाष्ठनिर्मितो वा प्रगृह्यतेऽस्मि-
 न्निति प्रग्रहो दण्डः स च वर्तुलः सुवाग्रे घ्राणवत् खातं
 द्वाङ्गुष्ठपरिमण्डलं जुह्वाः सराववत् खातं सनिर्वाहं षड्-
 ङ्गुलम् । सुवाग्रे नासारन्ध्रवन्मध्यस्थितमर्यादमङ्गुष्ठद्वयमिदं
 वर्तुलविलं जुह्वास्तु खातं सरावाकारं निःशेषवहनसाधनता
 निर्वाहपदवाच्यः प्रणालीसहितं षड्ङ्गुलं जानीयात् ।
 'तेषां प्राक्शः कुशैः कार्यः संप्रमार्जो जुह्वयता प्रतापनञ्च
 लिप्तानां प्रक्षाल्योष्णेन वारिणा' । सुवसुचोर्व्यक्तिभेदात्
 बहुवचनं पूर्वाभिमुखं मार्जनं कुशैः कार्यं घृतादिलेपवता-
 न्तृक्तेन वारिणा प्रक्षालनमग्नौ प्रतापनं कार्यं लेपरहिता-
 नान्तु प्रतापनं दर्भैः संमार्जनमभ्युक्षणं पुनः प्रतापनमुत्तरतो
 निधानञ्च कुर्यात् तथाच कात्यायनः 'सुवं प्रतप्य दर्भैः
 सम्मार्ज्याभ्युक्ष्य पुनः प्रतप्य निदध्यादिति' । आज्यादि-
 संस्कारं वारत्रयं कुर्यादिति भवदेवमदः । हरिशर्माणाप्येतत्-
 प्रकरणे सकृच्चिर्वेति वचनादित्युक्तं होमकाले पञ्चाङ्गुलांस्त्यक्त्वा
 शङ्खमुद्रया सुवो धार्यः 'पञ्चाङ्गुलान् वह्निस्यक्त्वा धारयेच्छङ्ख-
 मुद्रया' इति वचनात् पाण्याहुतौ च गोभिलः 'उत्तानेनैव
 हस्तेन ह्यङ्गुष्टाग्रेण पौडितम् । संहताङ्गुलिपाणिस्तु वाग्-
 यतो जुहुयाद्विः' । अत्र परिमाणमाह कात्यायनः । 'पाण्या
 इति द्वादशपर्वपूरिका कंसादिना चेत् सुवमात्रपूरिका ।
 देवेन तीर्थेन च ह्ययते हविः स्वङ्गारिणि स्वर्चिषि तच्च

छन्दोगप्रबोद्धमर्तत्त्वम् ।

५४७

पावके' अशक्तौ तु स्मृतिः 'आर्द्रामलकमानेन कुर्याद्दोमहवि-
र्बलीन् । प्राणा इति बलिश्चैव मृदं गात्रविशोधनीम्' ।
कात्यायनः 'योऽनर्चिषि जुहोत्यग्नी व्यङ्गारिणि च मानवः ।
मन्दाग्निरामयावी च दरिद्रश्च प्रजायते । तस्मात् समिद्धे
होतव्यं नासमिद्धे कदाचन । आरोग्यमिच्छतायुश्च श्रिय-
मात्यन्तिकीन्तथा । जुह्वंश्च हुते चैव पाणिशूर्पस्फुरदारुभिः ।
न कुर्यादग्निधमनं न कुर्याद्वज्रनादिना । सुखेनैव धमे-
दग्निं सुखाद्देषोध्यजायत । नाग्निं सुखेनेति च यत्लौकिके
योजयन्ति तत्' । हि यस्मात् सुखपात्र्यमन्वात् एष संस्कृ-
ताग्निः ततश्च लौकिक इति तदितराग्निपरम् एतेन लौकिक
इति श्रौताग्निभिन्नपरमिति मैथिलोक्तं हेयम् । जुह्वंश्च
हुतेनैवोपक्रमवचनेन संस्क्रियमाणसंस्पृताग्न्योरेव पाणिशू-
र्पादि निषेधमुखेन न सुखोपधमनस्य विदितत्वात् तद्व्यति-
रिक्तस्यैव लौकिकशब्देनाभिधानस्योचित्यात् आहितत्वस्या-
नुपस्थितेश्च एवमेव गुरुचरणाः तत्तु 'अग्निस्तु नामधेयादौ
होमे सर्वत्र लौकिके' इति छन्दोगपरिशिष्टवचनेन नामकर-
णाद्यर्थान्तेर्लौकिकमुक्तं तत् न ह्यग्ना वन्यहोमः स्यात् इति
तस्यैव वचनान्तरेण साग्नेः स्वीयश्रौताग्नी तत्करणनिषेधात्
लौकिकान्यन्तरमादाय कर्तव्यताविधायकं न तु तदग्नेः
संस्कारानन्तरमपि लौकिकत्वप्रतिपादकम् । इति संस्कार-
तत्त्वे लिखितम् । गोभिलः 'अग्निमुपसमाधाय परिसमूह्य
दक्षिणजान्वक्तो दक्षिणेनाग्निमदितेऽप्यनुमन्यस्वेत्युदकाञ्जलिं
प्रसिञ्चेदिति अनुमतेऽनुमन्यस्वेति पश्चात् सरस्वत्यनुमन्यस्वेत्यु-
त्तरतो देवसवितः प्रसुवेति प्रदक्षिणमग्निं पर्युञ्चेत् सकृत्
त्रिर्वा पर्युञ्चणान्तान् व्यतिहरन्नभिपर्युञ्चण होमीयमिति' ।
अग्निमुपसमाधाय काष्ठादिना प्रज्वाल्य परिसमूह्य विक्षिप्ता-

५४८

हृन्दोगवृषोत्सर्गतस्त्वम् ।

वयवानेकीकृत्य दक्षिणजान्वक्तो भूमिगतदक्षिणजानुर्दक्षिणे-
नाग्निमग्नेर्दक्षिणेऽदितेऽनुमन्यस्वेति मन्त्रेणोदकाञ्जलिं प्राग्-
गतं सिञ्चेदनुमत इत्यादिना अग्नेः पश्चादुदकसंस्थं सिञ्चेत्
अग्नेरुत्तरे सरस्वत्यनुमन्यस्वेत्यनेन प्राक् संस्थं सिञ्चेत् देव-
सवितः प्रसुवमित्यादिमन्त्रेण प्रदक्षिणमग्नेर्यथा स्यात्तथा
अग्निमुदकाञ्जलिना वेष्टयेत् । त्रिवेति फलभूमार्थं तत्र मन्त्रो-
ऽपि त्रिधोच्चार्य मुख्यावृत्तौ गुणावृत्तेर्युक्तत्वात् पर्युक्षणात्ता-
निति बहुवचनं चित्वपक्षे दण्डवदुदकधारादिरप्यन्तो भवती-
त्यन्तद्वयं व्यतिहरन् मिश्रीकुर्वन् होमीयं होमद्रव्यं पर्युक्षण-
तज्जलेन स्पर्शयन्निति वेष्टनप्रकार उक्तः चरुहोमे विशेषमाह
गोभिलः । 'पर्युक्ष्य स्थालीपाके आज्यमानीयमेक्षणेनोपघातं
होतुमेवोपक्रमतः' इति । अदितेऽनुमन्यस्वेत्येवं पर्युक्ष्यस्था-
लीपाके चरावाज्यमानीय प्रक्षिप्य मेक्षणेनोपघातम् उपहृत्या-
दाय होतुमेवोपक्रमते आरभते उपघातमिति हिंसायाञ्चैक-
कर्मकादित्यनेन तृतीयान्तोपपदणमासिद्धम् एवकारकरणमुप-
घातहोमेऽभिधारितक्षताभ्यङ्गप्रतिषेधार्थं होतुमेवोपक्रमते
नान्यत् उपघातहोमलक्षणञ्च गृह्यासंग्रहे । 'पाणिना मेक्षणेनाथ
सुवेणैव तु यद्धविः । ह्यते चानुपस्थीर्य उपघातः स उच्यते ।
यद्युपघातं जुहुयात् चरावाज्यं समावपेत् । मेक्षणेन तु होतव्यं
नाज्यभागे न स्विष्टिक्तत्' । बहुदैवत्यचरुहोमे तु उपघात-
होम एव चरौ च बहुदैवत्ये होमस्तस्योपघातवदिति परि-
शिष्टप्रकाशश्रुतवचनात् ततश्च चरावाज्यमानीय प्रपदविरू-
पाक्षौ जपित्वा समिधमादाय जुहुयादिति भट्टभाष्यं युक्त-
ञ्चेतत् क्षिप्रहोम एव परिसमूहनादिवर्जनेन तदितरत्र तेषां
लाभात् तथाच हृन्दोगपरिशिष्टम् । 'न कुर्यात् क्षिप्रहोमेषु
द्विजः परिसमूहनं विरूपाक्षञ्च न जपेत् प्रपदञ्च विवर्जयेत्'

छन्दोगवृषोत्सर्गतन्त्रम् ।

५४६

क्षिप्रहोमेषु अब्रह्मकेषु सायं प्रातः शोथन्ती होमादिषु ब्राह्मण
इमं स्तोममर्हत इत्यादिमन्त्रकपरिसमूहनं न कुर्यात् विरू-
पाक्षप्रपदौ च त्यजेत् । प्रपदश्च तपश्च तेजश्चेति मन्त्रः काम्य-
कर्मायं यदि कुशण्डिका तदा प्रपदजपानन्तरं विरूपाक्षजप
इति भवदेवभट्टः । ततः प्रकृतहोमकर्मणि वज्रेस्तत्तन्नामाह्वाने
गृह्यासंग्रहे गोभिलपुत्रः 'प्रायश्चित्ते विधुश्चैव पाकयज्ञे तु
साहसः । लक्षहोमे तु वज्रिः स्यात् कौटिहोमे हुताशनः ।
पूर्णाहृत्यां मृडौ नाम शान्तिके वरदस्तथा । आह्वय चैव
होतव्यं यो यत्र विहितोऽनलः' । ततश्च वृषोत्सर्गाङ्गहोमस्य
पाकाङ्गत्वात् साहसनामत्वमग्नेरिति वृषोत्सर्गकर्मणि अग्ने-
त्वं साहसनामासौति नाम कृत्वा पिङ्गभूः श्मश्रुकेशाक्षः
इति आदित्यपुराणीयं ध्यानं कृत्वा साहसाग्ने इहागच्छ इहा-
गच्छ इत्यावाह्य एतत् पाद्यम् ओम् साहसनाम्नेऽग्नये नमः
इत्यादिभिः पूजयेत् । होमात् पूर्वं वज्रिपूजनमाह मार्क-
ण्डेयपुराणं 'पूजयेच्च ततो वज्रं दद्याच्चाप्याहुतोः क्रमात्' ।
ततश्च प्रकृतहोमपूर्वापरयोस्तृणीं समित्प्रक्षेपमाह छन्दोग-
परिशिष्टम् । 'समिदादिषु होमेषु मन्त्रदेवतवर्जिता । पुर-
स्ताच्चोपरिष्ठाच्च इन्धनार्थं समिद्धवेत्' । स्मृतिः 'मन्त्रेणोद्धार-
पूतेन स्वाहान्तेन विचक्षणः । स्वाहावसाने जुहुयाद्वायन्
वै मन्त्रदेवताम्' । स्वाहान्तमन्त्रे स्वाहान्तरं निषेधयति सर-
लाभट्टभाष्ये मन्त्रतन्त्रप्रकाशश्च 'नमोऽन्तेन नमो दद्यात्
स्वाहान्ते द्विठमेव च । पूजायामाहुतो चापि सर्वत्रायं विधिः
स्मृतः' द्विठः स्वाहेत्यागमविदः । सरलाभट्टभाष्ययोरप्येवम् ।
गोभिलः 'आज्याहुतिष्वज्यमेव संस्कृत्योपघातं जुहुयाद्वाज्य-
भागौ न स्विष्टिक्कदाज्याहुतिष्वनादेशे पुरस्ताच्चोपरिष्ठाच्च
महाज्याहुतिभिर्हीमो यथा पाणिग्रहणे तथा चूडाकर्मण्युप-

५५०

हन्दीगवृषोक्षर्गतस्त्वम् ।

नयने गोदाने' इति आज्याहुतिषु चतुर्थीकर्मादिषु आज्य-
मेव यथोक्तविधिना संस्कृत्य उपघातं सुवेणोपहृत्य जुहुयात् ।
आज्यमात्रकहोमेषु आज्यभागस्त्रिष्टिकृतातिदेशप्राप्तानां
निषेधः । एवमाज्यमात्रकहोमेषु प्रतिहोमादिषु अनादेशे यत्र
पुंसवनशङ्काकर्मसीमन्तोन्नयनचूडाकरणादिषु पश्चादग्नेरुद-
गेषु दर्भेष्वित्यादिनाग्निग्रहणं प्रागुक्तं विशिष्य होमो नोप-
दिष्टस्तत्र प्रधानकर्मणोऽंशाभिमर्षणादेः पुरस्ताच्चोपरिष्टाच्च
महाव्याहृतिभिः भूर्भुवःस्वरिति तिसृभिर्होमः कर्त्तव्यः पाणि-
ग्रहणादौ तु महाव्याहृतिभिः पृथक् समस्ताभिसत्तुर्थीमिति
गोभिलसूत्रेण यथा पाणिग्रहणे चतस्रस्तथा चूडादिषु संस्कार-
रूपेषु पूर्वे पश्चाच्च चतस्रस्तसौ महाव्याहृतिभिराहुतयः स्युः
इति चरुहोमानन्तरं गोभिलेन महाव्याहृतिभिराज्येनाभि-
जुहुयादिति सूत्रेण चरुहोमे पश्चान्महाव्याहृतिभिर्होमः कर्त्त-
व्यो न तु पूर्वमिति गोभिलः 'यद्युवा उपस्तीर्णाभिघारितं
जुहुयादाज्यभागावेव प्रथमौ जुहुयाच्चतुर्गृहीतमाज्यं गृहीत्वा
पश्चात्तत् भृगूणामग्नये स्वाहेत्युत्तरतः सोमायेति दक्षिणतः
प्राक्शो जुहुयादिति' सूत्रेण सूचि यदाज्यं प्रथमं गृह्यते तदु-
पस्तीर्णं यद्विगृहीत्वानन्तरमाज्यं दौयते तदभिघारितं
यदि तथाविधं होतुमिच्छेत्तदाज्यभागावेव प्रथमौ जुहुयात्
सुवा होमस्तु अनेन गृहीतं जुह्वा जुहोतीति गृह्यान्तरात्
सुवेण सूचि चतुर्वारमाज्यं गृहीत्वा भृगूणां भृगुगोत्राणामिति
सरला पञ्चावदानानि पञ्चार्षेयाणामिति गृह्यान्तरात् भार्गव-
प्रवराणामिति भट्टभाष्यं भृगुगोत्राणां भार्गवप्रवराणामिति
भवदेवभट्टः तेषां पञ्चवारं तथा गृहीत्वा ओम् अग्नये स्वाहे-
त्यनेनाग्नेर्मध्यदेशादुत्तरे प्राङ्मुखधारया जुहुयात् 'उत्तरे
आग्नेयं दक्षिणे सौम्यं मध्ये अन्या आहुतयः' इति सांख्या-

छन्दोगहोमोत्सर्गतत्त्वम् ।

५५१

यनसूत्रात् तथैव दक्षिणभागे ओम् सोमाय स्वाहेति जुहुयात्
 एतत् सर्वचरुसाधारणं विधाय प्रकृतहोमं कुर्यात् तत्र हवोत्-
 सर्गे छन्दोगपरिशिष्टम् 'ओम् अग्नये स्वाहा ओम् पूषे स्वाहा
 ओम् इन्द्राय स्वाहा ओम् ईश्वराय स्वाहा एतेभ्य एव जुहु-
 याम्नेक्षणेनावदाय च । सुच्याहुतीश्वरोः पृथक् सिद्धेदाज्या-
 भिघारितम्' ओम् अग्नये स्वाहेत्यादिमन्त्रैर्मन्त्रप्रकाश्र्य देव-
 ताभ्यः सुचि घृतोपस्तरणानन्तरं चरोर्मेक्षणेन मध्यपूर्वाह्नयो-
 द्विरवदाय भृगूणां पञ्चादह्नावदानेन च त्रिरवदाय घृतेनाभि-
 घार्य चतुरावर्त्तं पञ्चावर्त्तं वा जुहुयात् पृथगाहुतीर्न तु तन्त्रे-
 षेति अवदाय च होमात् पूर्वमवदानक्षतं चरुस्थानं क्षताभ्य-
 ङ्गार्थमाज्येन प्लावयेदिति वक्ष्यमाणगोभिलसूत्रेण स्निष्टिक्तव-
 विरभिघारानन्तरं क्षताभ्यङ्गनिषेधादन्यत्र क्षताभ्यङ्गप्रतीते-
 रिति तथा सोमं राजानं वरुणं शुक्रन्तेऽन्यदित्यपि । इन्द्रा-
 पर्वता वृद्धता आवो राजानमित्यृचः । 'चतुर्गृहीतं कृत्वाज्य-
 माभिर्ऋग्भिः पृथक् पृथक् । स्वाहाकारान्ताभिर्जुहुयात्
 विधिवत् सदा' । सुवेण चतुर्धा घृतं सुचि गृहीत्वा ओम्
 सोमं राजानमित्यादि ऋग्भिश्चतसृभिः स्वाहाकारान्ताभिश्च-
 तस्र आहुतीर्जुहुयात् । ऋक्परिभाषामाह जैमिनिः । तेषा-
 मृक् यत्रार्थवशेन पादव्यवस्थितिस्तेषां मन्त्राणां मध्ये यत्रार्थ-
 वशेन एकान्वयित्वेनानुष्टुवादिना पादव्यवस्थितिः सा ऋक्
 भृगूणाञ्चेदत्रापि पञ्चावर्त्तं तदा सर्वचरुहोमसाधारणगोभिलो-
 क्त्स्निष्टिक्ततादि होमः । यथा गोभिलः 'अथ स्निष्टिक्तत
 उपस्तीर्यावाह्य उत्तरार्धं पूर्वाह्नात् सकृदेव भूयिष्ठ' द्विरभि-
 घारयेत् यद्युवा पञ्चावर्त्तं स्यात् द्विरुपस्तीर्यावदाय द्विरभि-
 घारयेत् न प्रत्यनक्त्यवदानस्थानम् अयातयामताये अग्नये
 स्निष्टिक्ते स्वाहा इत्युत्तरार्धं पूर्वाह्ने जुहुयात् मन्त्राः

५५२

छन्दोगहृषीकेशगर्तस्त्वम् ।

व्याहृतिभिराज्येनाभिजुहुयात् प्राक्स्त्रिष्टिकृत आवापो गण्ये-
 श्वेकं परिसमूहनामिधो वर्हिः पर्युक्षणमाज्यभागी सर्वेभ्यः
 समवदाय सकृदेव सौविष्टिकृतं जुहोति हुत्वैतन्मेक्षण-
 मनुप्रहरेदिति' स्त्रिष्टिकृतं स्मृचि घृतस्रुवं दत्त्वा चरोरुत्तरतः
 पूर्वाह्णभागादौशनकोणरूपान्मेक्षणेन बहुतरमेकवारं गृहीत्वा
 स्मृचि स्थापयित्वा वारद्वयं घृतेन सेचयेत् । पञ्चावदानपक्षे
 घृतस्रुवद्वयेनोपस्तरणं सकृद्विनिर्ज्ञेयः पुनर्घृतं तेनाभिषेचनद्वय-
 मिति अत्र मेक्षणक्षतस्थानं न घृतेन प्लावयेत् पुनर्यागार्थमेव
 तत् ततश्च यागायोग्यतारूपयातयामतायामपि न दोष
 इत्यर्थः । ततोऽग्नये स्त्रिष्टिकृते स्वाहेत्यनेन ईशानकोणे जुहु-
 यात् । ततो भूर्भुवःस्वरिति तिसृभिर्महाव्याहृतिभिर्होमः अस्य
 चरुहोमे पश्चादुपदेशान्न प्राक्करणमिति । आ उप्यते इत्यावापः
 प्रधानहोमः स तु स्त्रिष्टिकृद्वोमात् प्राक् न पश्चादित्यर्थः एवञ्च
 मुख्यहोमे त्वक्कते यदि चरुर्नष्टो दुष्टो वा तदान्यः पाच्यः मुख्ये
 कृते चेन्नाशदुष्टो तदाज्येनैव स्त्रिष्टिकृद्वोम इति सरला ।
 गण्येकदानेकयागीषु एकमेव न प्रत्येकं परिसमूहनादि उप-
 लक्षणत्वात् उदूखलमुसलाद्यपि एवं स्त्रिष्टिकृद्वोमोऽपि सकृत्
 उपलक्षणमेतत् व्याहृत्याद्यपीति सरला । अनुप्रहरेत् अग्नौ
 प्रक्षिपेत् । एवम् उक्तप्रकारेण यथायथं प्रकृतहोमं समापये-
 दिति । छन्दोगपरिशिष्टं 'रूपिण्यो वत्सतर्थ्यस्तु चतस्र
 उपकल्पयेत् । ताभिः सहैनं प्राग्ग्रीवमग्नेरभ्यासमानयेत् ।
 ततोऽरुणेन गन्धेन मानस्तोक इतीरयन् । वृषस्य दक्षिणे
 पार्श्वे त्रिशूलाङ्गं समुल्लिखेत् । वृषाज्यसीति सव्येऽस्य चक्रा-
 ङ्गमपि दर्शयेत् । तप्तेन पश्चादयसा स्पष्टौ तावेव कारयेत् ।
 अथैनं कलसस्थाभिरङ्गिरिको वृषेण वा । सर्वौषधिसुगन्धीभिः
 स्नापयेद्वत्सिका अपि । परिधाप्याहते शक्ते वाससी हेमपट्टकम् ।

छन्दोगहोममन्त्रम् ।

५५३

सत्यमिथा हषा सोम सामभ्यां शिरसि न्यसेत् । वक्षतरी-
 ऋतुष्टययुक्तं प्राञ्चुखं हषमग्निसमीपमानयेत् । कुङ्कुमा-
 दिना मानस्तोक इति मन्त्रेण हषस्य दक्षिणफलके त्रिशू-
 लाङ्कं हषान्यसीति मन्त्रेण वामफलके चक्राकारमङ्कं कुर्यात्
 तप्तलोहेन तौ स्पष्टौ कारयेत् । ततश्च प्राञ्चं प्राञ्चमुदगग्ने-
 रिति प्रागुक्तवचनात् पूर्वासादिताभिः कलसस्थाभिरङ्गिः 'सुरा
 मांसौ वचा कुष्ठं शैलेयं रजनीदयम् । शठीचम्पकमुस्तश्च
 सर्वौषधिगणः स्मृतः । इति सर्वौषधित्वेन परिभाषितैर्दशभि-
 रद्रव्यैः सुगन्धोक्तताभिरङ्गिरेको हषा विराजत्यनुगीयमानेन
 एको हषाभिधानेन साम्ना अग्नेरर्थं हषं स्थापयेत् न तु
 'व्रीहयः शालयो मुद्गा गोधूमाः सर्षपास्तिलाः । यवाश्चौष-
 धयः सप्त विपदो घ्नन्ति धारिताः' इति छन्दोगपरिशिष्टोक्त-
 द्रव्यैर्मिश्र्य नारायणोपाध्यायोक्तं युक्तं सामपरिभाषामाह
 जैमिनिः । 'गीतेषु सामाख्येति' गीतेषु गीयमानेषु मन्त्रेषु
 सामसंज्ञा इत्यर्थः । सर्वौषधित्वेनापरिभाषितत्वात् सुगन्धित्वा-
 योगाच्च तथैव वक्षिका अपि स्थापयेत् तूष्णीं न तु मन्त्रेण
 मन्त्रलिङ्गविरोधादिति नारायणोपाध्यायाः । वस्तुतस्तु ऋगर्थे
 विरोधो न दृश्यते आहतमाह वशिष्ठः 'ईषद्वीतं नवं श्वेतं सदशं
 यज्ञं धारितम् । आहतस्तद्विजानीयात् सर्वकर्मसु पावनम्'
 एवं लक्षणवस्त्रद्वयेन हषमासाद्य ओम् सत्यमिथाहषोदसि
 हषाज्जतिर्नोविता । हषाग्रशृथिषेपरावतिहषोर्वारतिश्रुतिः हषा-
 देव शुमाम् असिहषादेव हषव्रतः । हषाधर्माणि दक्षिणे
 इति ऋग्वेदगीयमानसामभ्यां हषस्य ललाटे सौवर्णवीरपटं
 बध्नीयात् छन्दोगपरिशिष्टम् अथाग्निपरिक्रमणमासां वक्ष-
 तरीणामेकामनुगमयेत् । ताञ्च अनुगच्छन्तीं प्रति मन्त्रयेत्
 काम्यासि प्रियासि हव्यासि इडासि अनस्तासि सरस्वत्यासि

५५४

हृन्दोगवृषोत्सर्गतत्त्वम् ।

मह्यसि विश्रुतिरसि इति वत्सतरीणां मध्ये चोत्सृजति । एनं युवानं पतिं वो ददानि तेन क्रौडन्तीश्चरथः प्रियेण मानः साप्तजनुषा सुभगारायस्योषेण समिषामदेम इति मन्त्रेण स्नातां पौष्टीं पाद्यं वार्षवाद्यं सोमः पौषं गवां व्रतेन आवयेत् । रौद्रीञ्च संहितां वामदेव्यञ्चान्ते । अथोपचालयेत् यथेष्टं पर्यटेति । अथ वृषवत्सतरीणामलङ्कारं वाससौ च आचार्याय प्रयच्छेद् गाञ्च । उदाहरति वेदार्थान् यज्ञविद्याः स्मृतोरपि । श्रुतिस्मृतिसमापन्नमाचार्यन्तं विदुर्बुधाः । अथ यज्जीवनवृषोऽश्नाति पिबति प्रजनयत्यङ्गानि धुनोति तेन देवान् पितॄंश्च प्रीणातीत्याह कात्यायन इति अग्निपरिक्रमणम् अग्नेः सर्वतोभ्रमणं प्रदक्षिणमिति यावत् वृषं कारयेदिति शेषः । तं वृषं लोहितवर्णां वत्सतरीमनुगमनं कारयेत् । व्रजन्तीं तां काम्यादिभिर्गोनामभिः काम्यासीत्यादिमन्त्रेणाभिमन्त्रयेत् । अत्र इडासीति क्लृप्तादिः तथा चामरः भूगोवाचस्विडा इला इति परिभ्रमणानन्तरं यूपमाह स्मृतिः ‘चतुर्हस्तो भवेद् यूपो यज्ञवृक्षसमुद्भवः । वर्तुलः शोभनः स्थूलः कर्तव्यो वृषमौलिकः’ इति ‘विल्वस्य वकुलस्यैव कलौ यूपः प्रशस्यते’ । इति भविष्योक्ते यूपे नूतनवस्त्रेण बद्धा पूर्वादिक्रमेण लोहितनीलपाण्डुरक्वणवत्सिका यथायोग्यमुपयूपचतुष्टये बद्धा संस्थाप्य ओम् एनं युवानम् इति मन्त्रं पठित्वा वक्ष्यमाणब्रह्मपुराणकात्यायनोक्तं सर्वोपकरणोपेतं वत्सतरीचतुष्टयसहितं वृषम् ओम् अद्येत्यादिवाक्येनोत्सृजेत् । एवमेव पितृदयितापरिशिष्टप्रकाशप्रभृतयः । मैथिलास्तु ओम् अद्येत्याद्यमुककामो रुद्रदेवतं वृषम् एनं युवानम् इत्यादि लौकिकपदमन्त्राभ्यां वृषोत्सर्गवाक्यमाहुः तच्च परम्परान्वयबोधाय लौकिकपद-

कन्दोगृधोत्सर्गतत्त्वम् ।

५५५

विशिष्टमन्त्रोक्तेस्ते मानाभावात् । अन्यथा भूःस्वाहेत्यादौ
 घृताद्युक्तेस्तेन तथात्वापत्तेः । अष्टाभिर्धेनुभिर्युक्तश्चतस्रभिरनु-
 क्रमात् । त्रिहायनीभिर्धन्याभिः स्वरूपाभिश्च शोभितः ।
 सर्वोपकरणोपेतः सर्वशस्त्रचरो महान् । उत्सृष्टव्यो विधा-
 निन श्रुतिस्मृतिनिदर्शनात्' इति ब्रह्मपुराणोक्तधेनुयुक्तसर्वकर-
 णोपेतत्वानुक्तेष्वक्ष । अत्र धेनुपदं वत्सतरीपरम् । 'पयस्विन्याः
 पुत्रो यूथे च रूपवान् स्वात् तमलङ्कृत्य यूथे मुख्याश्चतस्रो
 वत्सतर्क्यालङ्कृत्य एनं युवानं पतिं वो ददानि तेन क्रीडन्तीश्च-
 रथ प्रियेण मानः साप्तजनुषा सुभगा रायस्योषेण समिषा-
 मदेमः इत्येतयैवोत्सृजेरन्निति' कात्यायनसूत्रदर्शनात् न
 चेनं तदनुसारेण वत्सतरीचतुष्टययुक्तमिति हृषविशेषणं वाच्यं
 तथात्वे तादृशं हृषमिति विशिष्टे वो युष्माकं वत्सतरीणां
 पतिमित्यनन्वयापत्तेः प्रागुक्तदोषाच्च । न च कात्यायनीये
 एवकारश्रुतेः केवलमन्त्रेणोत्सर्गो न तु वाक्येनेति वाच्यम्
 एतयैवेत्युत्तरैवकारेण सजातीयत्वे सर्वशाखाप्रत्ययमेकं कर्मेति
 न्यायप्राप्तस्य नैयतकालिककल्पतरुधृतविष्णूक्तस्य ऋगन्तरस्य
 व्यावृत्तिर्न तु वाक्यस्य एवञ्चेन्नन्तस्य करणत्वमुपपन्नम् अन्यथा
 ददानीत्यनेन मन्त्रान्तरेणोत्सर्गाच्च तथात्वं मन्त्रान्ते कर्मादि-
 सन्निपात इति न्यायस्याप्यबाधः । मन्त्रान्ते संप्रदानमिति सर-
 लाधृतकाठकश्रुतेरप्यबाधः । व्यक्तमाह आपस्तम्बः । 'मन्त्रान्ते
 कर्मादीन् सन्निपातयेदिति' । समग्रं मन्त्रं पठित्वा कर्म
 कारयेदिति कर्मविपाकः । एवञ्च अमुककाम इति सोप-
 करणं वत्सतरीचतुष्टययुक्तहृषमिति चाभिलष्य उत्सर्गः
 सङ्गच्छते एवञ्च अमन्त्राहि स्त्रियो मता इति विष्णुधर्मो-
 च्छरवेदमन्त्रवर्जं शूद्रस्य इति सूत्रं य इह वै वेदं पठति तस्य
 सहस्रकृत्वो जिह्वां निकृन्तति इति श्रुतिभ्यः शूद्रादेः पाठा-

५५६

छन्दोगवृषोत्सर्गतत्त्वम् ।

नधिकारोऽपि अमन्त्रस्य तु शूद्रस्य इति वचनात् ब्राह्मणद्वारा
मन्त्रपाठोपपत्तेरुच्छन्दोगपरिशिष्टादौ कर्त्तृविशेषणामिधानेन
सर्वाधिकारत्वप्रतीतिः 'न स्त्रीणामधिकारोऽस्ति आद्यादिषु
कथञ्चन । कन्यादानवृषोत्सर्गे चाधिकारो भवेत् स्त्रियाः'
इति प्रतिहस्तकहलायुधधृतवचनाच्च स्त्रीशूद्राणामप्यधिकारः
एवमेव सुगतिसोपानप्रभृतयः । कृष्णेनाप्यन्यजन्मन इति
वर्णप्रशंसामात्रपरम् । स्नात्वा उपत्वाजामय इति । शौण्णौ ।
अवापरेति पाद्यं माम प्रमस्त्राजश्चर्षणीनामिति वार्षवाद्यं
साम अचिक्रददेति सोमः पौषं साम सोमः पूषेति गवां
व्रते साम्नेति मन्वत प्रथममिति । अग्निमौले पुरोहित-
मिति गान्धर्वमारण्यकचतुर्थपाठके पठितं 'न त्वारण्यक-
पञ्चमप्रपाठकश्रुते मन्वत इति गवां व्रतरूपमेकं माम रौद्रीं
संहिताम् आवोवाजेति तन्नो गायेति मूर्ध्वानन्दिव इति
अधिपते इति ऋक्चतुष्टयं वामदेव्यं कयान इत्यादि एतत्
सर्वं गीयमानं वृषं आवयेत् । गानाशक्तौ सर्वा ऋचस्त्रिधा
पठेत् वामदेव्यगानेषु छन्दोगपरिशिष्टेन तथाभिधानात्
यथा 'अन्ते च वामदेव्यस्य गानं कुर्यादृचस्त्रिधा' इति
अन्यत्राप्यकाङ्क्षया 'बहूनामेकधर्माणामेकस्यापि यदुच्यते ।
सर्वेषामेव तत् कुर्यादेकरूपा हि ते स्मृताः' इति बोधायन-
वचनान्तथा कल्पयते अतएव एकत्र निर्णीतः शास्त्रार्थो
बाधकमन्तरेणान्यत्रापि तथा कल्पयते इत्युक्तम् अथेति
श्रवणानन्तरं यूपान्निमुच्य वत्सतरीचतुष्टयसहितं वृषम्
ऐशान्यां गत्यर्थं प्रार्थयेत् यथेष्टं यूथं पर्यटेति मन्त्रेण 'वृषं
वत्सतरीयुक्तमैशान्यां चालयेद्दिशि' इति विष्णुवचनात्
'होतुर्वत्सयुगं दद्यात् सुवर्णं कांस्यमेव च । अयस्काराय
दातव्यं वेतनं मनसिष्ठितम्' इति वचनात् । ओम् 'न स्वादेत्

हृषीकेशगोत्रगतत्वम् ।

५५९

परशस्यानि नाक्रामेत् गर्भिणीञ्च गाम्' इति वदेत् । तदा
 हृष' प्रदक्षिणीकृत्य ओम् 'धर्मोऽसि त्वं चतुष्पादश्चतस्रस्तौ
 प्रियास्त्विमाः । चतुर्णां पोषणार्थाय मयोत्सृष्टास्त्वया सह ।
 देवानाञ्च पितॄणाञ्च मनुष्याणाञ्च योषितः । भूतानां हृषि-
 जननास्त्वया सार्द्धं व्रजन्विमाः । नमो ब्रह्मण्य देवेश पितृ-
 भूतर्षिपोषक । त्वयि मुक्तेऽक्षया लोका मम सन्तु मनो-
 रथाः । मामे ऋणोऽस्तु दैवेऽथ पैत्रो भीतोऽथ मानुषः ।
 धर्मस्त्वं त्वत्प्रपन्नस्य या गतिः सा तु मे ध्रुवा । यत्किञ्चित्
 दुष्कृतं कर्म लोभमोहात् कृतं भवेत् । तस्मादुद्धृत्य देवेश
 पितुः स्वर्गं प्रयच्छ मे । यावन्ति तव लोमानि शरीरे सम्भ-
 वन्ति च । तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गे वासोऽस्तु मे पितुः' इति
 स्वल्पमव्ययपुराणोक्तं पठेत् । तत आचारात् प्राचीनावीतो
 दक्षिणाभिमुखः भुग्नकुशपत्रद्वयसहितं हृषपुच्छगलितोदक-
 मादाय दक्षिणायकुशत्रयोपरि ओम् 'अमुकगोत्रं' प्रेतममुक-
 शर्माणं सतिलहृषपुच्छगलितोदकेन तर्पयामीति त्रिस्तर्प-
 येत् । प्राप्तपितृलोकस्य तु ओम् 'अमुकगोत्रः पितामुक-
 देवशर्मा' हृष्यतामेतत् सतिलहृषपुच्छगलितोदकं तस्मै स्वधेति
 विशेषः । एवमन्येषां हृषीकेशं ऊह्यमिति ततो ब्रह्मपुरा-
 णोक्ततर्पणं कुर्यात् ओम् 'स्वधापितृभ्यो मातृभ्यो बन्धुभ्यश्चापि
 हृष्ये । मातृपक्षाश्च ये केचित् ये चान्ये पितृपक्षकाः ।
 गुरुश्चशरवभ्यूनां ये कुलेषु समुद्भवाः । ये प्रेतभावमापन्ना
 ये चान्ये आद्ववर्जिताः । हृषीकेशं ते सर्वे लभन्तां प्रीति-
 मुत्तमाम् । दद्यादनेन मन्त्रेण तिलाक्षतयुतं जलम् । पितृ-
 भ्यश्च समासेन ब्राह्मणेभ्यश्च दक्षिणाम् । ततः प्रमुदितास्तेन
 हृषभेण समन्विताः । वनेषु गावः क्रीडन्ति हृषीकेशं प्रसि-
 दये । अथ हृते हृषीकेशं दाता वक्रोक्तिभिः पदैः ।

५५८

छन्दोगवृषोत्सर्गतत्त्वम् ।

ब्राह्मणानाह यत्किञ्चिन्मयोत्सृष्टन्तु निर्जने । तत् कश्चिदन्यो
 न नयेद्विभाज्यञ्च यथाक्रमम् । वृषोत्सर्गादृते नान्यत् पुण्य-
 मस्तीह भूतले । तस्मात् कुरु वृषोत्सर्गं पितृणामात्मनोऽपि
 च' । तर्पणान्तप्रकृतकर्मानन्तरं महाव्याहृतिभिस्त्रिभिः
 समित्प्रक्षेपपूर्वकं जुहुयात् । महाव्याहृतिभिराज्येनाभि
 जुहुयात् इति गोभिलसूत्रात् । ततः समित्प्रक्षेपादिकं कुर्या-
 त्तथा च गोभिलः । 'समिधमादाय अनुपर्युक्ष्य यज्ञवास्तु-
 करोति तत एव वह्निषः कुशमुष्टिमादायाज्ये हविषि वा
 त्रिरवदध्यादग्राणि मध्यानि मूलानि अक्तं रिहानाव्यन्तु
 वय इति अथैनमद्भिरभ्युक्ष्याग्नौ वर्जयेत् । यः पशूनामधि-
 पतौ रुद्रस्तन्ति चरो वृषापशूनस्माकं मा हिंसीरेतदस्तु हुतं
 तव स्वाहेत्येतयज्ञवास्त्वित्याचक्षत' इति तूष्णीं समिधं प्रक्षि-
 पेत् । 'समिदादिषु होमेषु मन्त्रदैवतवर्जिता । पुरस्ताच्चोप-
 रिष्टाच्च इन्धनार्थं समिद्भवेत्' । इति छन्दोगपरिशिष्टात्
 अत्र समित् प्रक्षेपः कर्मान्त इत्यवगम्यते । एतदनन्तरं कर्म
 वेगुण्यसमाधानाय प्रायश्चित्तं गोभिलेनोक्तमपि तत् परिशि-
 ष्टोक्तं कुर्यात् । तद् यथा 'यत्र व्याहृतिभिर्होमः प्रायश्चित्ता-
 त्मको भवेत् । चतसस्तत्र विज्ञेयाः स्त्रीपाणिग्रहणे यथा ।
 अपि वा ज्ञातमित्येषा प्राजापत्यापि वा हुतिः । होतव्या
 त्रिविकल्पोऽयं प्रायश्चित्तविधिः स्मृतः' । यत्र प्रायश्चित्तहोमार्थं
 व्याहृतिभिर्होमो विधीयते तत्र चतस्र आहुतयो होतव्याः ।
 यथा विवाहे तथा च गोभिलः । 'समस्ताभिश्चतुर्थीमिति'
 अस्यार्थः भूराद्याभिर्व्यस्ताभिस्त्रिभिस्त्रिभिस्त्रि आहुतौ भूर्भुवःस्वः
 स्वाहेति समस्ताभिश्चतुर्थीं जुहुयात् । अपि वा अथवा
 अज्ञातं यदनाज्ञातम् इति मन्त्रेणाहुतिर्हीतव्या । प्रजापतये
 स्वाहेति वा प्रायश्चित्तविधिर्विकल्पत्रयवान् मुनिभिः स्मृत

कन्दोगवृषोक्षमर्गतत्त्वम् ।

५५८

इत्यनेन पक्षान्तरं निरस्तं ततश्च भवदेवभट्टोक्तशाव्यायन-
होमो निष्प्रमाणकः भट्टनारायणचरणैर्गोभिलभाष्ये तदप्रमा-
णोक्ततत्वात् ततः प्रायश्चित्तहोमार्थं सङ्कल्प्य प्रायश्चित्तहोमे
अग्ने त्वं विधु नामासीति नाम कृत्वावाह्य संपूज्य समिधं
प्रक्षिप्य 'आज्यं द्रव्यमनादेशे जुहोतिषु विधीयत' इति कन्दो-
गपरिशिष्टादाज्यद्रव्यकहोमत्वेन पूर्वापरं महाव्याहृतिहोमः
तथाच गोभिलः । 'आज्याहुतिष्वनादेशे पुरस्ताच्चोपरिष्टाच्च
महाव्याहृतिहोम इति एवञ्च तिसृभिर्महाव्याहृतिर्हुत्वा
व्यस्तसमस्ताभिर्महाव्याहृतिभिश्च प्रायश्चित्तरूपाभिश्चतुराहु-
तीर्हुत्वा व्यस्ताभिस्तिसृभिः पुनर्हुत्वा समिधं प्रक्षिप्य तिसृ-
भिर्महाव्याहृतिभिर्हुत्वा समित्प्रक्षेपेण प्रायश्चित्तं समापयेत्
अन्विति पञ्चादित्यर्थः पर्युज्य देवसवित इत्यादिभिरग्निं परितो
जलेन वेष्टयेत् । ततो यज्ञवास्तु करोतीति यदुक्तं तद्विवरणेति
तत इति तत आस्तरणात् तत कृतास्तरणादपरिमितान्
दर्भान् गृहीत्वा घृतादावुक्तमिति मन्त्रेणाग्राणि मज्जयेत् ।
एवं मध्यान्यन्यानि मूलानि च । अनन्तरमेवामुञ्चन एनं
कुशमुष्टिमद्भिः प्रणीताभिरभ्युक्ष्याग्नी यः पशूनामधिपतीत्यनेन
क्षिपेत् । एतत्तत एव वर्हिष इत्यारभ्य यदुक्तं तदयज्ञवास्तु-
नामकं कथयति आचार्या एतत् प्रयोजनन्तु प्रतिपत्तिकर्मत्वेन
तद्द्रव्यविनाशे तत्कर्माप्राप्तावपि यज्ञो यस्मिन् वसतीति
व्युत्पत्तिः प्रतिपादयार्थसिद्धयर्थं कुशान्तरमुष्टिमादायापि तत्
कर्त्तव्यमिति एवमेव भट्टभाष्यम् । ततश्च पूर्णाहुत्यां सृङ्गो-
नामेति गोभिलपुत्रकृतकन्दोगपरिशिष्टान्मृङ्गनामानम् अग्निं
संपूज्य 'दद्यादुत्थाय पूर्णं वै नोपविश्य कदाचन' इति भवि-
ष्याग्निपुराणाभ्याम् उत्थाय पूर्णाहुतिं दद्यात् । ततश्च 'ऐशा-
न्या माहरेद्भस्म सुचा वाथ सुवेण वा । वन्दनां कारये-

५६०

छन्दोगवृषोत्सर्गतत्त्वम् ।

त्तेन शिरःकण्ठांशकेषु च । कश्यपस्येति मन्त्रेण यथानुक्रम-
योगतः । ततः शान्तिं प्रकुर्वीत अवधारणवाचनं दक्षिणा
च प्रदातव्या ग्रहाणाञ्च विसर्जनम्' इति वशिष्ठवचनोक्तानि
कर्माणि कुर्यात् । शान्तिः सामगानां वामदेव्यगानं तथाच
गोभिलः 'अपवृत्ते कर्माणि वामदेव्यगानं शान्त्यर्थमिति' ।
अपवृत्ते समाप्ते गानाशक्तौ त्रिधा पाठमाह छन्दोगपरिशिष्टं
'पर्युक्षणञ्च सर्वत्र कर्त्तव्यमदितेऽन्विति अन्ते च वामदेव्यस्य
गानमित्यथवा त्रिधा' गानं कुर्याद्वचस्त्रिधेति वा पाठः अव-
धारणमच्छिद्रावधारणं दक्षिणादानानन्तरं कर्त्तव्यं न तु
पाठक्रमादरः 'वृथा विप्रवचो यस्तु गृह्णाति मनुजः शुभे ।
अदत्त्वा दक्षिणां वापि स याति नरकं ध्रुवम्' । इति नार-
दीयात् अत एव भट्टेनापि वामदेव्यगानानन्तरं दक्षिणाभि-
हिता ततो दक्षिणात्रयं दद्यात् । न च 'ब्रह्मैवैक ऋत्विक्-
पाकयज्ञे संहोतेति' गोभिलसूत्रात् 'ब्रह्मणे दक्षिणा देया यत्र
या परिकीर्त्तिता । कर्मान्तेऽनुच्यमानायां पूर्णपात्रादिका
भवेत्' । इति छन्दोगपरिशिष्टात् ब्राह्मणे वृषोत्सर्गदक्षिणा
देयेति वाच्यं होमदक्षिणाया एव ब्रह्मसम्पदानकत्वात् अत
एव दर्शादियागमभिधाय गोभिलेनापि पूर्णपात्रो दक्षिणान्तं
ब्रह्मणे दद्यादित्युक्तम् । त्रान्तेऽपि पुंस्त्वं छान्दसम् एत-
दनुसारात् कर्मान्त इति ब्रह्मसाध्यहोमान्तपरं न तु
परिशिष्टप्रकाशोक्तनामकरणादिप्रधानकर्मान्तपरम् अतस्तद-
क्षिणा पात्रान्तरेऽपि देया एतेन वृषोत्सर्गं विष्णूक्ता दक्षिणा
स्वयं होमपक्षे ब्रह्मणे देया अन्यकर्त्तृकहोमपक्षे तु 'विदध्या-
दौत्रमन्यश्चेदक्षिणाईहरो भवेत् स्वयञ्चेदुभयं कुर्यादन्यस्मै
प्रतिपादयेत्' इति छन्दोगपरिशिष्टाईं ब्रह्मणे अईं होत्रे
देयमिति परिशिष्टप्रकाशोक्तं 'वृषं वक्षतरीयुक्तमैशान्यां

छन्दोगवृषोत्सर्गतस्त्वम् ।

५६१

चालयेद्दिशि । होतुर्वस्त्रयुक्तं दद्यात् सुवर्णं कांस्यमेव च ।
 अयस्काराय दातव्यं वेतनं मनसेषितम् । भोजनं बहुसर्पिष्कं
 ब्राह्मणांश्च विभोजयेत् । इति विष्णूक्ता होतृदक्षिणा सा
 कथं ब्रह्मणे देयेति । तस्मादत्र ब्रह्मणे पूर्णपात्रादिका दक्षिणा
 वस्त्रसुवर्णकांस्यादिरूपा । स्वयं होतृत्वे एषापि ब्रह्मणे
 देयेति आचार्याय च प्रागुक्त छन्दोगपरिशिष्टात् वृषवस्त्रतरी-
 णामलङ्कारवस्त्राणि प्रतिपाद्य गोरूपा वृषोत्सर्गस्य दक्षिणा
 देयेति भविष्यपुराणं 'वृषतुल्यवयो वर्णो वृषः स्याद्दक्षिणा-
 त्विजः । वृषोत्सर्गे तथा पुंसां स्त्रीणां स्त्री गौर्विशिष्यते' ।
 अतएव पारस्करेण गोयज्ञं प्रकृत्य तस्य तुल्यवया गौर्दक्षिणा
 इत्युक्ता तथा गोयज्ञेन वृषोत्सर्गो व्याख्यात इत्यनेन वृषरूप-
 दक्षिणातिदिष्टा अतएव ब्रह्महोत्राचार्य दक्षिणाभेदाय ब्राह्म-
 णेभ्य इति ब्रह्मपुराणेन निर्दिष्टं यथा 'दद्यादनेन मन्त्रेण
 तिलाक्षतयुक्तं जलम् । पितृभ्यश्च समासेन ब्राह्मणेभ्यश्च
 दक्षिणा । ततः प्रमुदितास्त्रेण वृषभेण समन्विता । वनेषु
 गावः क्रीडन्ति वृषोत्सर्गप्रसिद्धये । अथ वृत्ते वृषोत्सर्गे दाता
 वक्रोक्तिभिः पदैः । ब्राह्मणानाह यत् किञ्चिन्मयोत्सृष्टन्तु
 निर्जने । तत्कश्चिदन्यो न नयेद्दिभाज्यश्च यथाक्रमम् । न
 वाह्यं न च तत् क्षीरं पातव्यं केनचित् क्वचित् । एतदर्थं
 क्वचित् पूर्वत्र दृश्यते पङ्क्तिकारेणात्र लिख्यते । 'वृषोत्सर्गा-
 दृते नान्यत् पुण्यमस्ति महोतले' । ततः प्रागुक्तविष्णुवचनात्
 वृषाङ्गन कर्त्तुं वेतनं दातव्यं ब्राह्मणान् सर्पिरादिना भोज-
 येच्च । गोभिलेनापि परिभाषायामुक्तम् अपवर्गे अभिरूपभोजनं
 यथाशक्तीति । अपवर्गे कर्मसमाप्तौ अभिरूपमाह गृह्य-
 संग्रहकारः । 'यत्र विद्या च वृत्तञ्च सत्यं धर्मः शमोदमः ।
 अभिरूपः स विज्ञेय आश्रमे यद्यवस्थितः' । अथ यज्जीवन्निति

५६२

छन्दोगवृषोत्सर्गतत्त्वम् ।

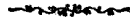
प्रजनयति गर्भोत्पादं करोति । अजीवतोऽशनाद्यसम्भवात्
 जीवन्निति वक्तुं न युज्यते इति चेन्न गर्भ एव जीवसम्बन्धा-
 दारभ्य चेष्टया भाव्यत्सर्गकर्त्ता फलभागीति ज्ञापनाय जीव-
 वित्युक्तं तथाच वायुपुराणं 'वृषेण गर्भिणी गौर्या चेष्टमानश्च
 लीलया । उत्सृष्टस्तेन तृप्यन्ति देवाः पितृगणैः सह' ।
 तेन गर्भस्यचेष्टमानवृषेण तथा 'यः पूर्वाह्णे वृषः किञ्चिदाहा-
 रादिकमाचरेत् । अमरास्तेन तृप्यन्ति प्रदिशन्ति च तन्म-
 दम् । मध्याह्णे चेष्टितेनास्य तृप्यन्त्यृषि गणाः सदा । अप-
 राह्णे तु पितरः सन्ध्यायां सिद्धचारणाः । शर्व्यां सर्वभूतानि
 तृप्यन्ति पितरस्तथा' । अत्र च तत्तत् क्रियाकरणोपाधिकं
 हि तत्तत्फलं तदकरणे सर्वथैव न सम्भवतीति सन्देहाच्च
 तत्तत्कामस्य अत्राधिकार इति किन्तु तथाभूतात्तत्फलं जायते
 इति प्रागुक्तनारदोयादच्छिद्रावधारणं कुर्यात् ततः साङ्गताथं
 विष्णुं स्मरेत् । 'प्रमादात् कुर्वतां कर्म प्रच्यवेताङ्गरेषु यत् ।
 स्मरणादेव तद्विष्णोः सम्पूर्णं स्यादिति श्रुतिः । तद्विष्णोरिति
 मन्त्रेण मज्जेदप्सु पुनः पुनः । गायत्री वैष्णवी ह्येषा विष्णोः
 संस्मरणाय वै' । इति योगियाज्ञवल्क्यात् । ततो 'गच्छध्व-
 ममराः सर्वे गृहीत्वार्चां स्वमालयम् । सन्तुष्टावरमस्माकं
 दत्त्वेदानीं सुपूजिताः' । इति विष्णुधर्मोत्तरीयेण विसर्जयेत् ।
 ततः 'प्रीयतां पुण्डरीकाक्षः सर्वयज्ञेश्वरो हरिः । तस्मिंस्तुष्टे
 जगत्तुष्टं प्रीणिते प्रीणितं जगत्' । इति मत्स्यपुराणोऽयं
 पठेत् ।

इति वन्द्यघटीय श्रीहरिहरभट्टाचार्यात्मज श्रीरघुनन्दन-

भट्टाचार्यविरचितं सामगवृषोत्सर्गतत्वं

समाप्तम् ।

श्रीपुरुषोत्तमतत्त्वम् ।



सच्चिदानन्दगोविन्दं नत्वा श्रीरघुनन्दनः ।

स्मृतितत्त्वे विधिं वक्ति क्षेत्रे श्रीपुरुषोत्तमे ॥

अथ पुरुषोत्तमदर्शनविधानादि । तत्र ब्रह्मपुराणं 'पृथिव्यां भारतं वर्षं कर्मभूमिरुदाहृता । न खल्वन्यत्र मर्त्यानां भूमौ कर्म विधीयते । तत्रास्ते भारते वर्षं दक्षिणोदधिसंस्थितः । ओड्रदेश इति ख्यातः स्वर्गमोक्षप्रदायकः । समुद्रादुत्तरे तीरे यावद्विरजमण्डलम्' । तीर्थकाण्डकल्पतरौ वामनपुराणम् 'उपोष्य रजनौमेकां विरजां स नदीं ययौ । स्नात्वा विरजसे तीर्थे दत्त्वा पिण्डं पितुस्तथा । दर्शनार्थं ययौ धीमानजितं पुरुषोत्तमम् । तं दृष्ट्वा पुण्डरीकाक्षमक्षरं परमं शुचिः । उपोष्य सतिला देया माहेन्द्रं दक्षिणं ययौ' । उपोष्य स्थित्वा । तथा 'आदौ यद्द्वारं प्लवते सिन्धोः पारे अपूरुषम् । तदा लभस्व दुर्दूनो तेन याहि परं स्थलम्' । अस्य व्याख्या सांख्यायनभाष्ये आदौ विप्रकृष्टे देशे वर्त्तमानं यद्द्वारं दारुमयपुरुषोत्तमाख्यदेवताशरीरं प्लवते जलस्योपरि वर्त्तते अपूरुषं निर्माद्वरहितत्वेन अपूरुषं तत् आलभस्व दुर्दूनोहे होतः तेन दारुमयेन देवेन उपास्यमानेन परं स्थलं वैष्णवं लोकं गच्छेत्यर्थः । अथर्ववेदेऽपि 'आदौ यद्द्वारं प्लवते सिन्धोर्मध्ये अपूरुषम् । तदा लभस्व दुर्दूनो तेन या हि परं स्थलम्' । अत्रापि तथैवार्थः मध्ये तीरे । स्कन्दपुराणम् 'इन्द्रयुञ्ज प्रसन्नस्ते भक्त्या निष्कामकर्मभिः । उत्सृज्य वित्त-कोटीस्तु यन्ममायतनं कृतम् । भङ्गेऽप्येतस्य राजेन्द्र स्थानं

५६४

श्रीपुरुषोत्तमतत्त्वम् ।

न त्यज्यते मया' । ब्रह्मपुराणे 'विरजे विरजा नाम ब्रह्मणा संप्रतिष्ठिता । तस्याः सन्दर्शने मर्त्यः पुनात्यासप्तमं कुलम् । स्नात्वा दृष्ट्वा तु तां देवीं भक्त्या पूज्य प्रणम्य च । नरः स्ववंशमुद्धृत्य मम लोकं स गच्छति । आस्ते वैतरणी नाम सर्वपापहरा नदी । तस्यां स्नात्वा नरश्रेष्ठ सर्वपापैः प्रमुच्यते' । वैतरणीमधिकृत्य महाभारते 'आयातभागं सर्वेभ्यो भागेभ्यो भागमुत्तमम् । देवाः सङ्कल्पयामासुर्भयाद्बुद्रस्य शाश्वतीम् । इमां गाथां समुद्धृत्य मम लोकं सगच्छति । देवायनं तस्य पत्न्याः शक्रस्यैव विराजते' । ब्रह्मपुराणे 'आस्ते स्वयम्भुस्तत्रैव क्रोडरूपी हरिः स्वयम् । दृष्ट्वा प्रणम्य तं भक्त्या नरो विष्णुपुरं व्रजेत्' । तथा 'विरजायां मम क्षेत्रे पिण्डदानं करोति यः । स करोत्यक्षयां दृष्टिं पितॄणां नात्र संशयः । मम क्षेत्रे मुनिश्रेष्ठ विरजे ये कलेवरम् । परित्यज्यन्ति पुरुषास्ते मोक्षं प्राप्नुवन्ति वै' । तथा 'नदी तत्र महापुण्या बिम्ब्यपादविनिर्गता । चित्रोत्पलेति विख्याता सर्वपापहरा शुभा' । चित्रोत्पला महानदी । तथा 'सत्यं सत्यं पुनः सत्यं क्षेत्रं तत्परमं महत् । पुरुषाख्यं सकृद्दृष्ट्वा सागराश्रमः सकृन्मृतः । ब्रह्मविद्यां सकृज्जप्त्वा गर्भवासो न विद्यते' । पुरुषोत्तमक्षेत्रदर्शनसागरमरणब्रह्मविद्या जपानां प्रत्येकं गर्भवासोजनकत्वम् । कूर्मपुराणे 'तीर्थं नारायणस्यास्य स्नात्वा तु पुरुषोत्तमम् । अत्र नारायणः श्रीमानास्ते परमपूरुषः । पूजयित्वा परं विष्णुं तत्र स्नात्वा द्विजोत्तमाः । ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु विष्णुलोकमवाप्नुयात्' । आङ्गकाण्डकल्पतरी वायुपुराणं 'धूतपापं तथा तीर्थं सुभद्रा दक्षिणस्तथा । गोकर्णं गजकर्णश्च तथाच पुरुषोत्तमः । एतेषु पितृतीर्थेषु आङ्गमानन्त्यमश्नुते' । ब्रह्मपुराणे 'चक्रं दृष्ट्वा हरेर्दूरात् प्रासादो-

श्रीपुरुषोत्तमतत्त्वम् ।

५६५

परिसंस्थितम् । सहसा सुच्यते पापात् सर्वस्मादिति मे
मतिः । तथा 'मार्कण्डेयऋदे गत्वा स्नात्वा चोदक्षुखः
शुचिः । निमज्जे श्रींश्च वारांश्च इमं मन्त्रमुदीरयन् । संसार-
सागरे मग्नं पापग्रस्तमचेतनम् । पाहि मां भगनेत्रघ्न त्रिपु-
रारे नमोऽस्तु ते । नमः शिवाय शान्ताय सर्वपापहराय च ।
स्नानं करोमि देवेश ! मम नश्यतु पातकम् । नाभिमात्र-
जले स्थित्वा विधिवद्देवता मुनीन् । तिलोदकेन मतिमान्
पितृनन्यांश्च तर्पयेत् । स्नात्वैव तु तथा तत्र ततो गच्छे-
च्छिवालयम् । प्रविश्य देवतागारं कृत्वा तु त्रिःप्रदक्षिणम् ।
मूलमन्त्रेण संपूज्य मार्कण्डेयस्य चेश्वरम् । अघोरेण च
मन्त्रेण प्रणिपत्य प्रसादयेत्' । ओम् नमः शिवायेति मूल-
मन्त्रः । ओम् अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्याघोरघोरतरेभ्यः सर्वतः
सर्वसर्वेभ्यो नमस्ते रुद्ररूपेभ्य इत्यघोरमन्त्रः । तथा 'त्रिलो-
चन नमस्तेऽस्तु नमस्ते शशिभूषण । पाहि मां त्वं विरू-
पाक्ष महादेव नमोऽस्तु ते । मार्कण्डेयऋदे त्वेवं स्नात्वा दृष्ट्वा
तु शङ्करम् । दशानामखंभधानां फलं प्राप्नोति मानवः ।
पापैः सर्वैर्विनिर्मुक्तः शिवलोके स गच्छति । तत्र भुक्त्वा
वरान् भोगान् यावदाहृतसंप्लवत् । इह लोकं समासाद्य ततो
मोक्षमवाप्नुयात् । कल्पवृक्षं ततो गत्वा कृत्वा तं त्रिःप्रद-
क्षिणम् । पूजयेत् परया भक्त्या मन्त्रेणानेन तं वटम् । ओम्
नमोऽथ्यक्तरूपाय महाप्रलयप्राणते । महद्रूपविष्टाय
न्यग्रोधाय नमो नमः । अमरस्त्व' महाकल्पे हरेश्चायतनं
वट । न्यग्रोध हर मे पापं कल्पवृक्ष नमोऽस्तु ते । भक्त्या
प्रदक्षिणं कृत्वा महत् कल्पवटं नरः । सहसा सुच्यते पापात्
जीर्णं त्वच इषोरगः । क्वायां तस्य समासाद्य कल्पवृक्षस्य
भो द्विजाः । ब्रह्महत्या नरो दद्यात् पापेष्वन्येषु का कथा ।

५६६

श्रीपुरुषोत्तमतत्त्वम् ।

दृष्ट्वा कृष्णाङ्गसम्भूतं ब्रह्मतेजो मयं वटम् । न्यग्रोधाकृतिनं
विष्णुं प्रणिपत्य च भो द्विजाः । राजसूयाश्वमेधाभ्यां फलं
प्राप्नोति चाधिकम् । तथा स्ववंशमुद्धृत्य विष्णुलोकं स
गच्छति । वैनतेयं नमस्कृत्य कृष्णस्य परतः स्थितम् । सर्व-
पापविनिर्मुक्तस्ततो विष्णुपुरं व्रजेत् । दृष्ट्वा वटं वैनतेयं यः
पश्येत् पुरुषोत्तमम् । सङ्कर्षणं सुभद्राञ्च स याति परमां
गतिम् । प्रविश्यायतनं विष्णोः कृत्वा तं त्रिःप्रदक्षिणम् ।
सङ्कर्षणं स्वमन्त्रेण भक्त्या पूज्य प्रसादयेत् । नमस्ते हलधृ-
ग्राम नमस्ते सुप्रलायुध । नमस्ते रेवतीकान्त ! नमस्ते
भक्तवत्सल ! । नमस्ते बलिनां श्रेष्ठ ! नमस्ते धरणीधर ! ।
प्रलम्बारे नमस्तेऽस्तु पाहि मां कृष्णपूर्वजः । एवं प्रसाद्य
चानन्तमजेयं त्रिदशार्चितम् । कैलाशशिखराकारं चन्द्रात्
कान्ततराननम् । नीलवस्त्रधरं देवं फणाविकलमस्तकम् ।
महाबलं हलधरं कुण्डलैकविभूषणम् । रौहिणेयं नरो भक्त्या
लभेताभिमतं फलम् । सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स
गच्छति । आहृतसंप्लवं यावत् भुक्त्वा तत्र सुखं नरः । पुण्य-
क्षयादिहागत्य प्रवरे योगिनां कुले । ब्राह्मणप्रवरो भूत्वा
सर्वशास्त्रार्थपारगः । ज्ञानं तत्र समासाद्य मुक्तिं प्राप्नोति
दुर्लभाम् । एवमभ्यर्च्य हलिनं ततः कृष्णं विचक्षणः । द्वाद-
शाक्षरमन्त्रेण पूजयेत् सुसमाहितः । आहृतसंप्लवं यावत् भूत-
संप्लवं यावत् आप्रलयकालम् इति यावत् छान्दसो भकारस्य
हकारः । द्वादशाक्षरमन्त्रेण ओम् नमो भगवते वासुदेवाय
इत्यनेन । 'द्विषट्कवर्णमन्त्रेण भक्त्या ये पुरुषोत्तमम् । पूज-
यन्ति सदा धीरास्ते मोक्षं प्राप्नुवन्ति वै । तस्मात्तेनैव मन्त्रेण
भक्त्या कृष्णं जगद् गुरुम् । संपूज्य गन्धपुष्पाद्यैः प्रणिपत्य
प्रसादयेत् । जय कृष्ण जगन्नाथ जय सर्वाधनाशन ! । जय

श्रीपुरुषोत्तमतत्त्वम् ।

५६७

चानूर केशिन्न जय कंशनिस्तदन ! । जय पद्मपलाशाक्ष जय
 चक्रगदाधर ! । जय नीलाम्बुदश्याम जय सर्वसुखप्रद ! । जय
 देव जगत् पूज्य जय संसारनाशन ! । जय लोकपते नाथ जय
 वाञ्छाफलप्रद ! । संसारसागरे घोरे निःसारे दुःखफेनिले ।
 क्रोधघाहाकुले रौद्रे विषयोदकसंप्लवे । नानारोगोर्मिकलिले
 मोहावर्त्तसुदुस्तरे । निमग्नोऽहं सुरश्रेष्ठ ! त्राहि मां पुरुषो-
 त्तम ! । एवं प्रासाद्य देवेशं वरदं भक्तवत्सलम् । सर्वपापहरं
 देवं सर्वकामफलप्रदम् । ज्ञानदं द्विभुजं देवं पद्मपत्रायते-
 क्षणम् । महोरसं महाबाहुं पीतवस्त्रं शुभाननम् । शङ्ख-
 चक्रगदापाणिं मुकुटाङ्गदभूषणम् । सर्वलक्षणसंयुतं वनमाला-
 विभूषितम् । दृष्ट्वा नरोऽञ्जलिं बध्वा दण्डवत् प्रणिपत्य च ।
 अश्वमेधसहस्राणां फलं प्राप्नोति भो द्विजाः । यत् फलं
 सर्वतीर्थेषु स्नानदाने प्रकीर्तितम् । नरस्तत् फलमाप्नोति
 दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च' । अत्र यद्यपि दृष्ट्वा प्रणम्येति श्रवणात्
 समुच्चित एव फलान्वयोऽन्यथा वाक्यभेदः स्यात् तथापि
 शेषे दर्शनमात्र एव फलोपसंहारात् प्रत्येकं फलान्वय इति
 वदन्ति । ब्रह्मपुराणे 'ततः पूज्य स्वमन्त्रेण सुभद्रां भक्त-
 वत्सलाम् । प्रसादयेत्ततो विप्राः प्रणिपत्य कृताञ्जलिः' ।
 स्वमन्त्रेण प्रणवादिनमोऽन्तेन नाम्ना । यथा मारुडे 'प्रण-
 वादिनमोऽन्तेन चतुर्थ्यन्तञ्च सत्तमाः । देवतायाः स्वकं नाम
 मूलमन्त्रः प्रकीर्तितः । नमस्ते सर्वदेवेशि नमस्ते सुख-
 मोक्षदे । त्राहि मां पद्मपत्राक्षि कात्यायनि नमोऽस्तु ते ।
 एवं प्रासाद्य तां देवीं जगद्धात्रीं जगद्धिताम् । बलदेवस्य
 भविनीं सुभद्रां वरदां शिवाम् । कामगेन विमानेन नरो
 विष्णुपुरं व्रजेत् । निष्क्रम्य देवतागारात् कृतकृत्यो भवे-
 क्षरः । प्रणम्यायतनं पश्चात् व्रजेत्तत्र च भो द्विजाः । भक्त्या

५६८

श्रीपुरुषोत्तमतत्त्वम् ।

दृष्ट्वा च तं देवं प्रणम्य नरकेशरिम् । सुच्यते पातकैर्मर्त्यः
 समस्तैर्नात्र संशयः । नरकेशरिं नरकेशरिणम् । तथा
 'अनन्ताख्यं वासुदेवं दृष्ट्वा भक्त्या प्रणम्य च । सर्वपाप-
 विनिर्मुक्तो नरो याति परं पदम्' । तथा 'श्वेतगङ्गां नरः
 स्नात्वा यः पश्येत् श्वेतमाधवम्' । तथा 'कुशाग्रेणापि
 राजेन्द्र ! श्वेतगाङ्गेयमम्बु च । स्पृष्ट्वा स्वर्गं गमिष्यन्ति मद्भक्ता
 ये समाहिताः । यस्त्विमां प्रतिमां लोके माधवाख्यां शशि-
 प्रभाम् । विहाय सर्वलोकान् वै मम लोके महीयते' । तथा
 'श्वेतमाधवमालोक्य समौपे मत्स्यमाधवम् । एकार्णवजले
 मग्नं रोहितं रूपमास्थितम् । देवानां तारणार्थाय रसातल-
 तले स्थितम्' । तथा 'आद्यावतारणं रूपं माधवं मत्स्यरूपि-
 णम् । प्रणम्य प्रयतो भूत्वा सर्वदुःखाद्विसुच्यते' । तथा
 'पूर्वोक्तेन तु मन्त्रेण नमस्कृत्य तु तं वटम् । दक्षिणाभि-
 मुखो गच्छेत् धन्वन्तरशतत्रयम्' । पूर्वोक्तेन श्रीम् नमो-
 ऽप्युक्तरूपायेत्यादिना । धनुश्चतुर्हस्तम् । तथा 'उग्रसेनं पुरा
 दृष्ट्वा स्वर्गद्वारेण सागरम् । गत्वा चम्य शुचिस्तत्र ध्यात्वा
 नारायणं परम् । न्यसेदष्टाक्षरं मन्त्रं पञ्चाङ्गस्तशरीरयोः' ।
 समुद्रोदकेन नाचामेत तस्यापेयत्वस्य तैत्तिरीयश्रुतावृत्तत्वात् ।
 'यैः कृतः सर्वभक्ष्योऽग्निस्त्वपेयश्च महोदधिः । क्षयी चाप्या-
 यितश्चन्द्रः को न नश्येत् प्रकीप्य तान्' । इति मनुनाभिहित-
 त्वाच्च । यैर्ब्राह्मणैः । तथा 'श्रीङ्कारश्च नमस्कारं यत्किञ्चि-
 ज्जीवसंज्ञितम् । अङ्गुष्ठे हस्तपादे च शिखायां शिरसि
 न्यसेत् । शेषान् हस्ततलं यावत् तर्जन्यादिषु विन्यसेत्' ।
 श्रीं नम इति वर्णं हस्ताङ्गुष्ठयोः हस्तयोः पादयोः शिखायां
 शिरसि च न्यस्य नाकारं तर्जन्योः राकारं मध्य-
 मयोः यकारम् अनामिकयोः नाकारं कनिष्ठयोः यकारं

श्रीपुरुषोत्तमतत्त्वम् ।

५६८

करतलयोः न्यसेत् । ओङ्कारं वामपादे तु नकारं दक्षिणे
न्यसेत् । मीकारं वामकव्यान्तु नाकारं दक्षिणे न्यसेत् ।
राकारं नाभिदेशे तु यकारं वामबाहुके । णाकारं दक्षिणे
न्यस्य यकारं मूर्ध्नि विन्यसेत् । अधश्चोर्ध्वं च हृदयेऽपार्श्वतः
पृष्ठतोऽग्रतः । ध्यात्वा नारायणं पश्चादाचरेत् कवचं बुधः ।
पूर्वं मां पातु गोविन्दो दक्षिणे मधुसूदनः । भूतले पातु
वाराहस्तथोर्ध्वं च त्रिविक्रमः । कृत्वेव कवचं पश्चादात्मानं
चिन्तयेद्वरिम् । अहं नारायणो देवः शङ्खचक्रगदाधरः ।
एवं ध्यात्वा तथात्मानमिमं मन्त्रमुदीरयेत् । त्वमग्निर्द्विपदां
नाथ रेतोधाः काकदौपनः । प्रधानः सर्वभूतानां जीवानां
प्रभुरव्ययः । अमृतस्थारणिस्त्वं हि देवयोनिरपां पतिः ।
हजिनं हर मे सर्वं तीर्थराज नमोऽस्तु ते । एवमुच्चार्य
विधिवत्ततः स्नानं समाचरेत् । अन्यथा भो द्विजश्रेष्ठाः स्नानं
तत्र न शस्यते । वनपर्वणि 'अग्निश्च तेजो वडवा च देहो
रेतोधाविष्णोरमृतस्य नाभिः । एवं ब्रुवन् पाण्डव सत्यवाक्य-
मतोऽवगाहेत पतिं नदीनाम् । अन्यथा हि कुरुश्रेष्ठ ! देव-
योनिरपां पतिः । कुशाग्रेणापि कौन्तेय ! स्पृष्टव्यो न महो-
दधिः' । वडवा इत्यत्र वडवा चेति क्वचित् पाठः । ब्रह्म-
पुराणे 'कृत्वा चाब्देवतैर्मन्त्रैरभिषेकञ्च मार्जनम् । अन्तर्जले
जपेत् पश्चात् त्रिराहुत्यघमर्षणम् । अब्देवतैः आपोहिष्ठा-
दिभिस्त्रिभिः । अघमर्षणञ्च ऋतञ्च सत्यञ्चेत्यादि । देवान्
पितृस्तथा चान्यान् सन्तर्प्याचम्य वाग्यतः' । अन्यान्
ऋषीन् । 'हस्तमात्रं चतुष्कोणं चतुर्द्वारं सुशोभनम् । पुरं
प्रलिख्य भो विप्रास्तूरे तस्य महोदधेः । मध्ये तत्र लिखेत्
पद्मम् अष्टपत्रं सकर्णिकम् । एकं मण्डलमालिख्य पूजयेत्तत्र
भो द्विजाः । अष्टाक्षरविधानेन नारायणमजं विभुम्' ।

५७०

श्रीपुरुषोत्तमतत्त्वम् ।

वृहद्विधिसुद्राभिहितम् । अर्चनं ये न जानन्ति हरिर्मन्त्रै-
 र्यथोदितम् । ते तत्र मूलमन्त्रेण पूजयन्त्वच्युतं सदा । श्री
 नमो नारायणायेति मूलमन्त्रः । 'एवं संपूज्य विधिवद्भक्त्या
 तं पुरुषोत्तमम् । प्रणम्य शिरसा पश्येत् सागरन्तु प्रसादयेत् ।
 प्राणस्त्वं सर्वभूतानां योनिश्च सरितांपते । तीर्थराजं नम-
 स्तुभ्यं ब्राहि मामच्युतप्रिय' अत्र च 'पिप्पल्याद समुद्रभूते
 कृत्ये लोकभयङ्करि । पाषाणन्ते मया दत्तमाहारं परि-
 कल्पय' इति मन्त्रेण पाषाणप्रक्षेपः सदाचारसिद्ध इति
 विद्याकरः ब्रह्मपुराणे 'तीर्थं चाभ्यर्च्य विधिवत् नारायणमन-
 मयम् । रामं कृष्णं सुभद्राञ्च प्रणिपत्य च सागरम् । दश-
 नामश्वमेधानां फलं प्राप्नोति मानवः । सर्वपापविनिर्मुक्तः
 सर्वदुःखविवर्जितः । कुलैकविंशमुद्धृत्य विष्णुलोकञ्च गच्छति ।
 पितॄणां ये प्रयच्छन्ति पिण्डं तत्र विधानतः । अक्षयां पितर-
 स्तेषां हस्तिं संप्राप्नुवन्ति वै' । तथा कोट्यो नवनवत्यश्च तत्र
 तीर्थानि सन्ति वै । तस्मात् स्नानञ्च दानञ्च होमं जप-
 सुरार्चनम् । यत्किञ्चित् क्रियते तत्र चाक्षयं भवति द्विजाः ।
 ततो गच्छेद्विज्यश्रेष्ठाः तीर्थं यन्नाङ्गसम्भवम् । इन्द्रद्युम्नसरो
 नाम यत्रास्ते पावनं शुभम् । गत्वा तत्र शुचिः श्रीमाना-
 चम्य मनसा हरिम् । ध्यात्वापि स्थाय च जपन्निदं मन्त्रमुदी-
 रयेत् । अश्वमेधाङ्गसम्भूत तीर्थसर्वाधनाशन । स्नानं त्वयि
 करोम्यद्य पापं हर नमोऽस्तु ते । एवमुच्चार्य विधिवत्
 स्नात्वा देवानृषीन् पितॄन् । तिलोदकेन चान्याश्च सन्तर्प्या-
 चम्य वागुयतः । दत्त्वा पितॄणां पिण्डांश्च संपूज्य पुरुषोत्त-
 मम् । दशाश्वमेधिकं सम्यक् फलं प्राप्नोति मानवः' । तथा
 'नानानद्यः समुद्राश्च सप्ताहं पुरुषोत्तमे । ज्यैष्ठशुक्लदश-
 म्यादिप्रत्यक्षं यान्ति सर्वदा । स्नानदानादिकं तस्मात् देवता-

श्रीपुरुषोत्तमतत्त्वम् ।

५७१

प्रेक्षणादिकम् । यत्किञ्चित् क्रियते तात तस्मिन् काले
 क्षयं भवेत् । एवं कृत्वा पञ्चतीर्थमेकादश्यामुपोषितः ।
 ज्यैष्ठे शुक्लदशम्यान्तु पश्येत् श्रीपुरुषोत्तमम् । स पूर्वाह्णं फलं
 प्राप्य क्रीडित्वा चाच्यतालये । प्रयाति परमं स्थानं यस्मान्न
 विनिवर्त्तते । तीर्थभेदेन स्नानान्तरावृत्तिमाह निगमः ।
 'नावर्त्तयेत् पुनः कर्म तर्पणादिकमन्वहम् । काम्यनैमित्तिके
 हित्वा एकं ह्येकत्र वासरे । व्यपोह्य चाष्टमं भागमुदयाद्
 यत्र कुत्रचित् । तिथ्योर्युग्मेऽप्ययुग्मे वा यद् यदाङ्गिकमाच-
 रेत्' । ब्रह्मपुराणे 'मार्कण्डेया वटः कृष्णो रौहिणेयो महो-
 दधिः । इन्द्रद्युम्नसरश्चैव पञ्चतीर्थी विधिः स्मृतः' मार्कण्डेया
 वटो मार्कण्डेयद्भटः । कृष्णः अक्षयवटः न्यग्रोधा कृतिनं
 विष्णुमिति पूर्वोक्तात् । वराहपुराणे 'यस्तिष्ठेदेकपादेन
 कुरुक्षेत्रे नराधिप । वर्षाणामयुतं सप्त वायुभक्ष्यो जितेन्द्रियः ।
 ज्यैष्ठे मासि सिते पक्षे द्वादश्यान्तु विशेषतः । पुरुषोत्तम-
 मासाद्य ततोऽधिकफलं लभेत्' । अग्निपुराणं 'वैशाखस्य
 सिते पक्षे तृतीयाक्षयसंज्ञिता । तत्र मां लेपयेद्गन्धलेपनैरति-
 शोभनम्' । तथा 'ज्यैष्ठ्यामहञ्चावतीर्णस्तत् पुण्यं जन्म-
 वासरम् । तस्यां मे स्नपनं कुर्यात् महास्नानविधानतः । ज्यैष्ठे
 प्रातस्तने काले ब्रह्मणा सहितञ्च माम् । रामं सुभद्रां
 संस्नाप्य मम लोकमवाप्नुयात्' । तथा 'आषाढस्य सिते पक्षे
 द्वितीया पुण्यसंयुता । तस्यां रथे समारोप्य रामं मां भद्रया
 सह । यात्रोत्सवं प्रवृत्त्याथ प्रीणयेच्च द्विजान् बह्वन्' ।
 तथा 'ऋक्षाभावान्नया कार्या सदा सा प्रीतये मम' । स्कन्द-
 पुराणे 'फाल्गुन्यां क्रीडनं कुर्यात् दोलायां मम भूमिप' ।
 ब्रह्मपुराणे 'उत्तरे दक्षिणे विप्रास्त्वयने पुरुषोत्तमे । दृष्ट्वा
 रामं सुभद्राञ्च विष्णुलोकं ब्रजेन्नरः । नरो दोलागतं दृष्ट्वा

१७२

श्रीपुरुषोत्तमतत्त्वम् ।

गोविन्दं पुरुषोत्तमम् । फाल्गुन्यां संयतो भूत्वा गोविन्दस्य
 पुरं व्रजेत् । विषुवद्विसे प्राप्ते पञ्चतीर्थी विधानतः । कृत्वा
 मञ्चगतं कृष्णं दृष्ट्वा तत्राय भो द्विजाः । नरः समस्तयज्ञानां
 फलं प्राप्नोति दुर्लभम् । विमुक्तः सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकञ्च
 गच्छति । यः पश्यति तृतीयार्यां कृष्णं चन्दनभूषितम् ।
 वैशाखस्य सिते पक्षे स यात्यच्युतमन्दिरम् । तथा 'मासि
 जैष्ठे तु संप्राप्ते नक्षत्रे शक्रदैवते । पौर्णमास्यां तथा स्नानं
 सर्वकालं हरेर्द्विजाः । तस्मिन् काले तु ये मर्त्याः पश्यन्ति
 पुरुषोत्तमम् । बलभद्रं सुभद्राञ्च स याति पदमव्ययम् ।
 तथा 'स्नातं पश्यति यः कृष्णं व्रजन्तं दक्षिणामुखम् । गुण्डि-
 कामण्डपं यान्तं ये पश्यन्ति रथस्थितम् । कृष्णं बलं सुभ-
 द्राञ्च ते यान्ति भवनं हरेः । ये पश्यन्ति तदा कृष्णं सप्ताहं
 मण्डपे स्थितम् । हरिं रामं सुभद्राञ्च विष्णुलोकं व्रजन्ति
 ते । तथा 'संवत्सरमुपोषित्वा मासत्रयमथापि वा । तेन
 यष्टं हुतं तेन तेन तप्तं तपो महत् । स याति परमं स्थानं
 यत्र योगेश्वरो हरिः' । तथा 'दृष्ट्वा रामं महाज्यैष्ठ्यां कृष्णं
 सह सुभद्रया । विष्णुलोकं नरो याति समुद्रत्य शतं कुलम्' ।
 तथा 'वार्षिकांश्चतुरो मासान् यावत् स पुरुषोत्तमे । काशी-
 वासयुगान्यष्टौ दिनेनैकेन लभ्यते' । मत्स्यपुराणं 'कोटिजन्म-
 कृतं पापं पुरुषोत्तमसन्निधौ । कृत्वा सूर्यग्रहे स्नानं विमुञ्चति
 मोहोदधौ' । ब्रह्मपुराणे 'पथि श्मशाने गृहमण्डपे वा रथ्या
 प्रदेशेऽपि च यत्र तत्र । इच्छन्ननिच्छन्नपि यत्र तत्र संत्यज्य
 देहं लभते च मोक्षम् । देहं त्यजन्ति पुरुषा ये तत्र पुरुषो-
 त्तमे । कल्पवृक्षं समासाद्य मुक्तास्तेनात्र संशयः । वटसागर-
 योर्मध्ये ये त्यजन्ति कलेवरम् । ते दुर्लभं परं मोक्षमाप्नुवन्ति
 न संशयः' । तत्रैव 'तथा चैवोत्कले देशे कीर्त्तिवास महे-

श्रीपुरुषोत्तमतत्त्वम् ।

५७३

श्वरः । सर्वपापहरं तस्य क्षेत्रं परमदुर्लभम् । लिङ्गकोटि-
समायुक्तं वाराणस्याः समं शुभम् । एकाग्रकेति विख्यातं
तीर्थाष्टकसमन्वितम् । तीर्थं विन्दुसरो नाम तस्मिन् क्षेत्रे
द्विजोत्तमाः । देवानृषीन् मनुष्यांश्च पितॄन् सन्तर्पयेत्ततः ।
तिलोदकेन विधिना नामगोत्रविधानवित् । स्नात्वैव विधि-
वत्तत्र सोऽश्वमेधफलं लभेत् । पिण्डं ये संप्रयच्छन्ति पितृभ्यः
सरसस्तटे । पितॄणामक्षयां तृप्तिं ते कुर्वन्ति न संशयः ।
ततः शश्वोर्गृहं गच्छेद् वाग्यतः संयतेन्द्रियः । प्रविश्य पूजयेत्
पूर्वं कृत्वा तत्र प्रदक्षिणम् । आगमोक्तेन मन्त्रेण वेदोक्तेन च
शङ्करम् । अदौक्षितश्च वा देवान् मूलमन्त्रेण चार्चयेत् ।
तथा 'सर्वपापविनिर्मुक्तो रूपयौवनगर्वितः । कुलैकविंश-
सुवृत्त्य शिवलोकं स गच्छति' । तथा 'पश्येद्देवविरूपाक्षं
देवीञ्च शारदां शिवाम् । गणचण्डं कार्तिकेयं गणेशं वृषभं
तथा । कल्पद्रुमञ्च सावित्रीं शिवलोकं स गच्छति । एत-
न्मया मुनिश्रेष्ठाः क्षेत्रं प्रोक्तं सुदुर्लभम् । कोनार्कस्योदधे-
स्तोत्रं भक्तिमुक्तिफलप्रदम् । स्नात्वैव सागरे दत्त्वा सूर्या-
यार्घ्यं प्रणम्य च । नरो वा यदि वा नारी सर्वकामफलं
लभेत् । ततः सूर्यालयं गच्छेत् पुष्पमादाय वाग्यतः ।
प्रविश्य पूजयेद्भानुं कुर्यात्तं त्रिः प्रदक्षिणम् । दशानामश्व-
मेधानां फलं प्राप्नोति मानवः' ।

इति श्रीहरिहरभट्टाचार्यात्मज श्रीरघुनन्दनभट्टाचार्य-

विरचितं पुरुषोत्तमतत्त्वं समाप्तम् ।

५७६

दिव्यतत्त्वम् ।

वह्निर्वादिक्ततानि अभियोक्तारं विना कृतानि एतच्च प्रायिकम्
आत्मशुद्धिपराणाम् अभियोक्तारं विनापि दिव्यविधानात्
तथाच नारदः 'राजभिः प्रक्षितानाञ्च निर्दिष्टानाञ्च दस्युभिः ।
आत्मशुद्धिपाराणाञ्च दिव्यं देयं शिरो विना' ।

अथ दिव्यदेशाः । तत्र कात्यायनः 'इन्द्रस्थानेऽभिषक्तानां
महापातकिनां नृणाम् । नृपद्रोहे प्रवृत्तानां राजद्वारे प्रयो-
जयेत् । प्रतिलोम्य प्रसूतानां दिव्यं देयं चतुष्पथे । अतो-
ऽन्येषु कार्येषु च सभामध्ये विदुर्बुधाः' इन्द्रस्थाने इन्द्रध्वज-
स्थाने ।

अथ दिव्यकालाः । तत्र पितामहः 'चैत्रो मार्गशिराश्चैव
वैशाखश्च तथैव हि । एते साधारणा मासा दिव्यानामविरो-
धिनः । धटः सर्वर्तुकः प्रोक्तो वाते वाति विवर्जयेत् । अग्निः
शिशिरहेमन्तवर्षासु परिकीर्तितः । शरदग्रौष्मे तु सलिलं
हेमन्ते शिशिरे विषम् । कोषस्तु सर्वदा देयस्तुला स्यात् ।
सार्वकालिकी' । इति मिताक्षरा । नारदः 'न शीते तोय-
शुद्धिः स्यात् नोष्णकालेऽग्निशोधनम् । न प्रावृषि विषं दद्यात्
प्रवाते न तुलां नृप' । शीते हेमन्तशिशिरवर्षासु उष्णकाले
ग्रीष्मशरदोः । वर्षासु विषनिषेधः चतुर्यवातिरिक्तविषनिषेध-
परः वर्षासु चतुरो यवानिति वक्ष्यमाणनारदवचनात् । तण्डु-
लादीनान्तु विशेषकालानभिधानात् सार्वकालिकत्वम् अत्र विषे
विशेषतो वर्षानिषेधात् वक्ष्यमाणवचनेन सिंहस्थरवावेव परी-
क्षामात्रनिषेधाच्च दिव्यान्तरं सिंहैतरवर्षास्वपि कुर्वीत । अतो
'याम्यायने हरी सुप्ते सर्वकर्माणि वर्जयेत्' । इत्यस्य न
विषयः । ज्योतिषे 'सिंहस्थे मकरस्थे च जीवे चास्तसुपागते ।
मलमासे न कर्त्तव्या परीक्षा जयकाङ्क्षिणा । रविशुद्धौ गुरौ
चैव न शुक्लेऽर्द्धं गते पुनः । सिंहस्थे च रवौ नैव परीक्षा

दिव्यतत्त्वम् ।

५७७

शस्यते बुधैः । नाष्टम्यां न चतुर्दश्यां प्रायश्चित्तपरीक्षणे । न परीक्षा विवाहश्च शनिभीमदिने भवेत् । रविशुद्धौ गुरौ चैवेत्यत्र शस्यत इति शेषः । तथाच दीपकलिकायाम् । 'नो शुक्रास्तेऽर्के गुरुसहितरवौ जन्ममासेऽष्टमेन्दौ विष्टौ मासे मलाख्ये कुजशनिदिवसे जन्मतारासु चाथ । नाडीनक्षत्रहीने गुरुरविरजनीनाथ तारा विशुद्धौ प्रातः कार्या परीक्षा दितनु-चरगृहांशोदये शस्तलग्ने' पितामहः । 'प्रत्यक्षं दापयेद्विष्यं राजा बाधितोऽपि वा । ब्राह्मणानां श्रुतवतां प्रकृतीनां तथैव च' । ब्राह्मणानां प्रकृतीनाञ्च दिव्यं प्रत्यक्षं दापयेदित्यर्थः । प्रकृतयोऽमात्यादयः 'स्वाम्यमात्यः सुहृत् कोषो राष्ट्रदुर्गबलानि च । राज्याङ्गानि प्रकृतयः पौराणां श्रेणयोऽपि च' इति अमरसिंहोक्ताः ।

अथ दिव्यविशेषाधिकारिणः । तत्र नारदः 'ब्राह्मणस्य धटो देयः क्षत्रियस्य हुताशनः । वैश्यस्य सलिलं देयं शूद्रस्य विषमेव च । साधारणः समस्तानां कोषः प्रोक्तो मनीषिभिः । विषवर्जं ब्राह्मणस्य सर्वेषान्तु तुला स्मृता' । यत् पुनरनेन 'सत्रतानां भृशार्त्तानां व्याधितानां तपस्विनाम् । स्त्रीणाञ्च न भवेद्विष्यं यदि धर्मस्त्वपेक्षितः' । इति स्यादीनां दिव्यं निषिद्धं तण्डुलेतरविषयमिति शूलपाणिः । मिताक्षरा तु पुंस्त्रियोर्विवादे न स्त्रीणां दिव्यमिति कृत्वावान्यतरः कुर्यादिति विकल्पनिषेधार्थम् एतदुक्तं भवति अवष्टम्भाभियोगेषु स्यादीनामभियोक्तृत्वेऽभियोज्यानां दिव्यम् एतेषामभियोज्यत्वेऽभियोक्तृणामेव दिव्यं परस्परभियोगे तु विकल्प एव तत्रापि तुल्येवेति नियम्यते तथा महापातकादिशङ्काभियोगे तु स्यादीनान्तु तुल्येव यथा याज्ञवल्करः 'तुला स्त्रीबाल-वृद्धान्पङ्कुराह्वणरोगिणाम् । अग्निर्जलं वा शूद्रस्य यवाः

५७८

दिव्यतत्त्वम् ।

सप्तविषस्य वा' । स्त्रीमात्रं जातिवयोऽवस्थाविशेषानादरेण बालस्वापोऽशद्वर्षात् जातिविशेषानादरेण वृद्धोऽशीति-
 पारगः एतद्वचनं/ सर्वदिव्यसाधारणेषु मार्गशीर्षचैत्र-
 वैशाखेषु स्यादौनां सर्वदिव्यसाधारणाभिधानेन निया-
 मकतयाऽर्थवत् न च सर्वकालं स्त्रीणान्तु तुलैवेति वाच्यं
 'स्त्रीणान्तु न विषं प्रोक्तं' न चापि सलिलं स्मृतम् । धट-
 कोषादिभिस्तासामतस्तत्त्वं विचारयेत् । इति विषसलिल-
 व्यतिरिक्तधटकोषादिभिः शुद्धिविधानात् एवं बालादिषु
 अपि योजनीया तथा ब्राह्मणादीनामपि सर्वकालिकस्तुलादि-
 नियमः 'सर्वेषामेव वर्णानां कोषात् शुद्धिर्विधीयते । सर्वा-
 ण्येतानि सर्वेषां ब्राह्मणस्य विषं विना' इति पितामहस्मर-
 णात् । तस्मात् साधारणकाले सकलदिव्यप्रसक्तौ तुलादि-
 नियमार्थं याज्ञवल्क्यवचनं कालान्तरे तु तत्तत्काले विहितं
 सर्वेषां तथाहि वर्षास्वग्निरेव सर्वेषां हेमन्तशिशिरयोस्तु
 क्षत्रियादीनां त्रयाणामग्निविषयोर्विकल्पः । ब्राह्मणाना-
 न्वग्निरेव न कदाचिद्विषं ब्राह्मणस्य विषं विनेति विधानात्
 ग्रीष्मशरदोस्तु सलिलान्येव येषां कुष्ठरादीनान्तु विशेषे-
 षामन्यादिनिषेधः 'कुष्ठिनां वर्जयेदग्निं सलिलं श्वासकासि-
 नाम् । पित्तश्लेष्मवतां नित्यं विषन्तु परिवर्जयेत्' । इति
 वचनात् तेषामन्यादिकालेऽपि साधारणकाले तुलाद्येव
 दिव्यं भवति । 'तोयमग्निर्विषञ्चैव दातव्यं बलिनां नृणाम्'
 इति स्मरणात् दुर्बलानामपि सर्वदा तोयादिप्रतिषेधाद्युक्त-
 कालानतिक्रमेण जातिवयोऽवस्थाविशेषाश्रितानि दिव्यानि
 देयानि अत्र च यस्य यानि विशेषसामान्यपर्थ्युदस्तोतरविहि-
 तानि मुख्यकल्पापत्कल्पानि वेदितव्यानि यथा ब्राह्मणस्य
 धटो मुख्यः कोषस्वनुकल्पः जलाग्नी आपत्कल्पो प्रागुक्त-

दिव्यतत्त्वम् ।

५७८

नारदवचने एवकारश्रुतेर्मुख्यकल्पादित्वं न तु प्रशस्ततरा-
 दित्वमिति । एवञ्च अन्यत्राप्यथोक्तप्रदत्तन्तु न शक्तं साध-
 साधने इयि प्रागुक्तं बोध्यम् । स्मृतिः ‘अवष्टम्भाभियुक्तानां
 धटादीनि विनिर्दिशेत् । तण्डुलाश्चैव कोषश्च शङ्खाश्चैव न
 संशयः’ । अवष्टम्भोऽत्र निश्चयः शिरोवर्त्तितेति केचिदिति
 व्यवहारदीपिकायां कात्यायनः । ‘अस्पृश्याधमदासानां
 क्लेच्छानां पापकारिणाम् । प्रातिलोम्यप्रसूतानां निश्चयो न
 च राजनि । तत्प्रसिद्धानि दिव्यानि समये तेषु निर्दिशेत्’
 तत्तत् प्रसिद्धानि सर्पधटादीनि तथा ‘देशकालाविरोधेन
 यथायुक्तं प्रकल्पयेत् । अन्येन हारयेद्दिव्यं विधिरेष विप-
 र्ययेत्’ । अन्येन प्रतिनिधिना हारयेत् कारयेत् विपर्यये-
 ऽभियुक्तस्यासामर्थ्यं अतएव महापातक्यादीनामन्यद्वारा दिव्य-
 माह स एव ‘मातापितृहृदिजगुरुवालस्त्रीराजघातिनाम् ।
 महापातकयुक्तानां नास्तिकानां विशेषतः’ । इत्यभिधाय
 ‘दिव्यं प्रकल्पयेन्नैव राजा धर्मपरायणः । एभिरेव प्रयुक्तानां
 साधूनां दिव्यमर्हति’ । कात्यायनः । ‘न लौहशिल्पिना-
 मग्निं सलिलं नाम्बुजीविनाम् । तण्डुलैर्न प्रयुञ्जीत ब्राह्मणं
 मुखरोगिणम् । श्वित्रान्धकुनखादीनां नाग्निकर्म विधीयते ।
 न मज्जनं स्त्रीबालयोर्धर्मशास्त्रविशारदैः । निरुत्साहान्
 व्याधिक्षशान्नार्त्तांस्तोये निमज्जयेत् । न चापि हारयेदग्निं
 न विषेण विशोधयेत्’ । यत्तु ‘स्थानेषु विवादेषु दिव्यानि
 परिवर्जयेत्’ इति पितामहवचनं तस्मिंश्चित्सामन्तादिसत्त्वे
 दिव्यनिषेधार्थम् । यद्यपि ‘अलेख्यसात्त्विके दैवीं व्यवहारे
 विनिर्दिशेत्’ । इति स्मृतेः विवादान्तरेऽपि लेख्यादिसत्त्वे
 दिव्यानादरः तथापि ऋणादानादिविवादे साक्ष्यपन्यासे कृते-
 ऽपि प्रत्यर्थी यदि दण्डस्वीकारेण दिव्यमङ्गीकरोति तदा

५८०

दिव्यतत्त्वम् ।

दिव्यमपि भवति साक्षिणां दोषसम्भवात् दिव्यस्य तु निर्दोष-
त्वेन वस्तुतत्त्वविषयत्वात् तल्लक्षणत्वाच्च धर्मस्य । यथा नारदः
'तत्र सत्ये स्थितो धर्मी व्यवहारस्तु साक्षिणि । दैवसाध्ये
पौरुषन्तु न लेख्यन्तु प्रयोजयेत्' । स्थावरविवादे तु प्रत्य-
र्थिना दण्डाङ्गीकारेण दिव्यावलम्बने कृते सामन्तादिदृष्ट-
प्रमाणसत्त्वेऽपि दिव्यं ग्राह्यमिति विकल्पनिराकरणाय स्थाव-
रेष्वित्यादि पितामहवचनं नात्यन्तिकदिव्यनिराकरणाय
लिखिताद्यभावे स्थावरादिषु निर्णयाप्रसक्तेः ।

अथ द्रव्यसंख्यया दिव्यविशेषाः । विष्णुः 'अथ समय-
क्रियाराजद्रोहसाहसेषु यथाकामं निक्षेपणस्तेयेषु अर्थप्रमाणा-
दिति' । समयो दिव्यं राजद्रोहादिषु यथाकामं राजेच्छानु-
रोधात् दिव्यं निक्षेपादिषु तु धनप्रमाणतारतम्यादित्यर्थः ।
बृहस्पतिः 'संख्यारश्मि रजो मूला मनुना समुदाहृता ।
कार्षापणान्ता सा दिव्ये नियोज्या विनये तथा । विषं
सहस्रेऽपहृते पादोने च हुताशनः । त्रिभागोने च सलिलम्
अर्द्धं देयो धटः सदा । चतुःशताभियोगे तु दातव्यस्तप्त-
माषकः । त्रिशते तण्डुला देयाः कोषश्चैव तदर्द्धके । शते
हृतेऽपहृते च दातव्यं धर्मशोधनम् । गोचौरस्य प्रदातव्यं
सभ्येः फालं प्रयत्नतः । एषा संख्या निकृष्टानां मध्यानां
द्विगुणा स्मृता । चतुर्गुणोत्तमानाञ्च कल्पनीया परीक्षकैः' ।
रश्मिरजः 'जालान्तरगते भानौ यत् सूक्ष्मं दृश्यते रजः ।
प्रथमं तत् प्रमाणानां त्रयसरेणुं प्रचक्षते' इति मनूक्तं कार्षा-
पणान्तापणान्ता कार्षापणः पण इति पर्यायदर्शनात् विनये
दण्डे एवञ्च सहस्र इत्यादौ पण इति ज्ञेयमुपक्रमात् निकृ-
ष्टानां जातिकर्मगुणैः । एवञ्च 'नासहस्रादरेदग्निं न तुलां
न विषं तथा' इति याज्ञवल्क्यवचनं मध्यमोत्तमविषयत्वेन

दिव्यतत्त्वम् ।

५८१

बृहस्पतिवचनेकवाक्यतयाऽविरुद्धम् । ‘सहस्रे तु धटं दद्यात्
 सहस्राङ्गं हुताशनम् । अर्द्धस्याङ्गं तु सलिलं तस्याङ्गं तु विषं
 स्मृतम्’ इति अत्र अल्पापराधे पातित्यं तद्विषयमिति एतत्
 सर्वं स्तेयसाहसविषयमिति । अपङ्गवे तु कात्यायनः ।
 ‘दत्तस्यापङ्गवो यत्र प्रमाणं तत्र कारयेत् । स्तेयसाहसयो-
 र्दिव्यं स्वल्पेऽप्यर्थं प्रदापयेत् । सर्वद्रव्यप्रमाणन्तु ज्ञात्वा हेम
 प्रकल्पयेत् । हेमप्रमाणयुक्तन्तु तदा दिव्यं प्रकल्पयेत् ।
 ज्ञात्वा संख्यां सुवर्णानां शतनाशे विषं स्मृतम् । अशीतश्च
 विनाशे तु दद्याच्चैव हुताशनम् । षष्ठ्यानाशे जलं देयं
 चत्वारिंशति वै धटम् । विंशद्दशविनाशे तु कोषपानं विधी-
 यते । पञ्चाधिकस्य वा नाशे ततोऽर्द्धाङ्गं तु तण्डुलाः ।
 ततोऽर्द्धाङ्गविनाशे तु स्पृशेत् पुत्रादिमस्तकान् । ततोऽर्द्धाङ्ग-
 विनाशे तु लौकिक्यश्च क्रियाः स्मृताः । एवं विचारयन् राजा
 धर्मार्थाभ्यां न ह्रीयते’ । सुवर्णानां ‘पञ्चकृष्णलको माषस्ते
 सुवर्णस्तु षोडशः’ इत्युक्ताशीतिरत्तिकापरिमितहेम्नां नाशे-
 ऽपङ्गवे दशाधिकस्य विंशतेर्वा नाशे कोषपानमित्यर्थः
 तण्डुलाः पुनरल्पचौर्याभिश्चङ्कायामिव ‘चौर्यं च तण्डुला
 देया नान्यत्रेति विनिश्चयः’ । इति पितामहस्मृतेः । तप्त-
 माषस्तु महाचौर्याभिश्चङ्कायां ‘महाचौर्याभियुक्तानां तप्त-
 माषो विधीयते’ इति स्मृतेः । व्यवहारमाहकायां ‘समत्वं
 साक्षिणां यत्र दिव्यैस्तमपि शोधयेत् । प्राणान्तिकविवादेषु
 विद्यमानेषु साक्षिषु । दिव्यमालम्ब्यते वादी न पृच्छेत् तत्र
 साक्षिणः’ ।

अथ धटोत्पत्तिविधिः । पितामहः ‘छित्वा तु यज्ञियं वृक्षं
 यूपवत्तन्त्रपूर्वकम् । प्रणम्य लोकपालेभ्यस्तुला कार्या मनी-
 षिभिः’ । यूपवदिति यूपेच्छेदनविहितसर्वेति कर्तव्यताति-

५८२

दिव्यतत्त्वम् ।

देशः । सा च श्रीम् स्वधितेमैनं हिंसीरिति ह्येदनमन्त्र-
विशेषादिरूपेति व्यवहारप्रदीपः । 'मन्त्रः सौम्यो वानस्पत्य-
च्छेदने जप्य एव च । चतुरस्रा तुला कार्या दृढा ऋज्वी
तथैव च । कटकानि च देयानि त्रिषु स्थानेषु चार्थवत्' ।
कटकानि बलयानि । 'चतुर्हस्ता तुला कार्या पादौ चोपरि
तत्समौ' । अत्र साधारणत्वेन शारदातिलकोक्तो हस्तो
ग्राह्यः । यथा 'चतुर्विंशत्यङ्गुलाख्यं हस्तं तन्त्रविदो विदुः ।
यवानामष्टभिः कृतं मानाङ्गुलमुदीरितम्' । यवानां
तण्डुलीकृतानां 'यवानां तण्डुलैरेकमङ्गुलं चाष्टाभिर्भवेत्
अदोर्ध्वयोजितैर्हस्तश्चतुर्विंशतिरङ्गुलैः' इति कालिकापुरा-
णात् प्रमाणन्तु पार्श्वेन 'यवानां षड्यवाः पार्श्वसन्निताः'
इति कात्यायनवचनात् । अनयोर्व्यवस्थामाह कापिलपञ्च-
रात्रम् । 'अष्टभिस्तैर्भवेज्जोष्ठं मध्यमं सप्तभिर्यवेः । कन्यसं
षड्भिरुद्दिष्टमङ्गुलं मुनिसत्तमं' कन्यसं कनिष्ठं पादौ
स्तम्भौ उपरि मृत्तिकोपरि तत्समौ चतुर्हस्तावित्यर्थः । वस्तु-
तस्तु उपरि तत्समौ उपरि तत्समं काष्ठान्तरं ययोः
पादयोस्ती स्तम्भप्रमाणमाह व्यासः । 'हस्तद्वयं निखेयन्तु
प्रोक्तं मुण्डकयोर्द्वयोः । षड्हस्तन्तु तयोः प्रोक्तं प्रमाणं
परिमाणतः' । मुण्डकयोः स्तम्भयोः षड्हस्तं निखातहस्त-
द्वयेन समम् अर्थान्मृत्तिकोपरि हस्तचतुष्टयमित्यर्थः । 'अन्त-
रन्तु तयोर्हस्ती भवेदध्यर्धमेव वा' । तयोस्तम्भयोः । हस्ताव-
न्तरं हस्तद्वयपरिमितमध्यमित्यर्थः । अर्धद्वै सार्धहस्तद्वयम् एतत्तु
'शालवृक्षोद्भवा कार्या पञ्चहस्तायता तुला' । इति विष्णूक्त-
पञ्चहस्तायततुलाविषयम् । व्यवहारदीपिकाऽप्येवम् ।

अथ धटारोपणविधिः । 'पितामहः हस्तद्वयं निखेयन्तु
पादयोरुभयोरपि' । अत्र हस्तद्वयं मृत्तिकाभ्यन्तरे हस्तचतु-

दिव्यतत्त्वम् ।

५८३

ष्टयं मृत्तिकोपरि तथा 'तोरणे च तथा कार्यं पार्श्वयोरुभयो-
रपि । धटादुच्चतरे स्यातां नित्यं दशभिरङ्गुलैः । अवलम्बी
च कर्त्तव्यौ तोरणाभ्यामधोमुखौ । मृगमयी सूत्रसम्बन्धौ
धटमस्तकचुम्बितौ । प्राङ्मुखो निश्चलः कार्यः शुचौ देशे
धटस्तथा' नारदः 'शिक्यद्वयं समासाद्य धटककटयोर्दृढम् ।
एकत्र शिक्ये पुरुषमन्यत्र तुलयेच्छिलाम्' । पितामहः 'प्राङ्मु-
खान् कल्पयेद्भान् शिक्ययोरुभयोरपि । पश्चिमे तोलयेत्
कर्त्तनन्यस्मिन् मृत्तिकां शुभाम् । पिटकं पूरयेत्तस्मिन् इष्ट-
काग्रावपांशुभिः' । अत्र मृत्तिकेष्टकाग्रावपांशूनां विकल्पः
'परौक्षका नियोक्तयास्तुलामानविशारदाः । वणिजो हेम-
काराश्च कांस्यकारास्तथैव च । कार्यः परौक्षकैर्नित्यमवलम्ब-
समो धटः । उदकञ्च प्रदातव्यं धटस्योपरि पण्डितैः । यस्मिन्
न प्लवते तोयं स विज्ञेयः समो धटः । तोलयित्वा नरं पूर्वं
पश्चात्तमवतार्य तु । धटन्तु कारयेन्नित्यं पताकाध्वजशोभितम् ।
तत आवाहयेद्देवान् विधिनानेन मन्त्रवित् । वादित् तूर्य-
घोषैश्च गन्धमाल्यानुलेपनैः । प्राङ्मुखः प्राञ्जलिभूत्वा प्राङ्-
विवाकस्ततो वदेत्' । प्राङ्विवाकसमाख्या तु पृच्छतीति
प्राट्विवेचयतीति विवाक इति व्यवहारमाटका । तथा
च ब्रह्मसूतिः । 'विवादे पृच्छति प्रश्नं प्रतिपन्नं तथैव च ।
प्रियपूर्वं प्राग्वदति प्राङ्विवाकस्ततः स्मृतः' । वस्तुतस्तु प्राङ्-
विवाकसमाख्यामाह कात्यायनः । 'व्यवहाराश्रितं प्रश्नं
पृच्छति प्राडिति स्मृतिः । विवेचयति यस्तस्मिन् प्राङ्विवाक
इति स्मृतः' । अभिशस्तं पृच्छतीति प्राट् तदनुरूपं दिव्यं
विविनक्ति इति विवाकः प्राट् चासौ विवाकश्चेति कर्मधारयः ।
अस्य काम्यत्वेन नवग्रहपूजामाह मत्स्यपुराणं 'नवग्रहमखं
कृत्वा ततः कर्म समारभेत् । अन्यथा फलदं पुंसां न काम्यं

५८४

दिव्यतत्त्वम् ।

जायते क्वचित्' । ततश्च प्राड्विवाकः पूर्वं कार्यं पृच्छेत्
निवेदितञ्च विवेचयेत् ततोऽभियुक्तं तोलयित्वाऽवतार्य धर्मा-
वाहनादि कुर्यात् । पितामहः 'एहोहि भगवन् धर्मं दिव्ये
ह्यस्मिन् समाविश । सहितो लोकपालैश्च वस्त्रादित्यमरुद्गणैः ।
आवाह्य च धटे धर्मं पश्चादङ्गानि विन्यसेत्' । अङ्गानि
परिवारदेवता । 'इन्द्र' पूर्वं तु संस्थाप्य प्रेतेशं दक्षिणे तथा ।
वरुणं पश्चिमे भागे कुबेरमुत्तरे तथा । अग्न्यादिलोकपालांश्च
कोणभागेषु विन्यसेत् । इन्द्रः पीतो यमः श्यामो वरुणः
स्फाटिकप्रभः । कुबेरस्तु सुवर्णाभो वज्रिश्चापि सुवर्णभः ।
तथैव निऋतिः श्यामो वायुधूम्रः प्रशस्यते । ईशानस्तु
भवेत् शुक्लोऽनन्तः शुक्ल एव च । ब्रह्मा चैव भवेद्रक्त एवं
ध्यायेत् क्रमादिमान् । इन्द्रस्य दक्षिणे पार्श्वे वसूनावाहयेद्
बुधः । धरो ध्रुवस्तथा सोम आपश्चैवानिलोऽनलः । प्रत्यूषश्च
प्रभासश्च वसवोऽष्टौ प्रकीर्त्तिताः । इन्द्रेशानयोर्मध्ये आदित्यानां
च तथायनम् । धातार्यमा च मित्रश्च वरुणोऽशुभगस्तथा ।
इन्द्रो विवस्वान् पूषा च पर्जन्यो दशमः स्मृतः । ततस्त्वष्टा
ततो विष्णुरजघन्यो जघन्यतः' । अजघन्य इति विष्णोर्विशे-
षणम् जघन्यत इति पश्चात् । 'इत्येते द्वादशादित्या मनुना
परिकीर्त्तिताः । अग्नेः पश्चिमभागे तु रुद्राणामयनं विदुः ।
वीरभद्रश्च शम्भुश्च गिरिशश्च महायशः । आजैकपादोहिर्ब्रध्नः
पिनाकी चापराजितः । भुवनाधोश्चरश्चैव कपाली च विशां-
यतिः । स्थाणुर्भवश्च भगवान् रुद्राश्चैकादश स्मृताः' । महा-
यशाविशंपतिर्भगवांश्चेति विशेषणानि । 'प्रेतेश रक्षसोर्मध्ये
मातृस्थानं प्रकल्पयेत् । ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी
वैष्णवी तथा । वाराही चैव माहेन्द्रो चामुण्डा गणसंयुता' ।
गणसंयुतो विशेषणं 'निऋतेरुत्तरे भागे गणेशायतनं विदुः ।

दिव्यतत्त्वम् ।

५८५

वरुणस्योत्तरे भागे मरुतां स्थानमुच्यते । श्वसनः स्पर्शनो वायुरनिलो मारुतस्तथा । प्राणः प्राणेश जीवी च मरुतोऽष्टौ प्रकीर्त्तिताः । धटस्योत्तरभागे तु दुर्गामावाहयेद् बुधः । एतासां देवतानाञ्च स्नानान्ना पूजनं विदुः । विशेषमाह ब्रह्मपुराणम् । 'ओङ्कारादिसमायुक्तं नमस्कारान्त कीर्त्तितम् । स्नानाम सर्वसत्त्वानां मन्त्र इत्यभिधीयते । अनेनैव विधानेन गन्धपुष्पे निवेदयेत् । एकैकस्य प्रकुर्वीत यथोद्दिष्टं क्रमेण तु' । मन्त्र इत्यभिधानादनेनैवेत्येवकारश्रुतेश्च इदं द्रव्यम् ओम् अमुकाय नम इति योज्यं न तु धर्मायाध्यं प्रकल्पयामि नम इति मिताक्षरोक्तं प्रमाणाभावादनन्वयाच्च । पितामहः । 'भूषावसानं धर्माय दत्त्वा चार्घ्यादिकं क्रमात् । अर्घ्यादि पश्चादङ्गानां भूषान्तमुपकल्पयेत् । गन्धादिकां नैवेद्यान्तां परिचर्यां प्रकल्पयेत्' । एतत् सर्वं प्राङ्विवाकः कुर्यात् यथा 'प्राङ्विवाकस्ततो विप्रो वेदवेदाङ्गपारगः । श्रुतव्रतोपपन्नश्च शान्तचित्तो विमत्सरः । सत्यसन्धः शुचिर्दक्षः सर्वप्राणिहिते रतः । उपोषितः शुद्धवासाः कृतदन्तादिधावनः । सर्वासां देवतानाञ्च पूजां कुर्याद् यथाविधि' । रक्तपुष्पगन्धादीनाह नारदः । 'रक्तैर्गन्धैश्च माल्यैश्च धूपदीपाक्षतादिभिः । अर्चयेत्तु धटं पूर्वं ततः शिष्टांश्च पूजयेत्' । धटं धर्मं तथाच विष्णुनारदौ 'धर्मपर्यायवचनं धट इत्यभिधीयते' । शिष्टानिन्द्रादीन् । अवशिष्टात् सर्वत्र रक्तान्वयः । मिताक्षरायान्तु धर्मपूजन एव रक्तत्वनियमः । तथा 'चतुर्दिक्षु ततो होमः कर्त्तव्यो वेदपारगैः । आज्येन हविषा चैव समिद्धिर्होमसाधनैः । सावित्र्या प्रणवेनैव स्वाहान्तेनैव होमयेत्' । तेन प्रणवादिकां गायत्रीमुच्चार्य पुनः स्वाहाकारान्तं प्रणवमुच्चार्य समिदाज्यचरुन् प्रत्येकमष्टोत्तरशतं जुहुयादिति मिताक्षरा ।

५८६

दिव्यतत्त्वम् ।

वस्तुतस्तु गायत्रीहोमे योगियान्नवल्काः । 'प्रणवव्याहृतिभ्याश्च स्वाहान्ते होमकर्मणि' । तेन प्रणवादिकां सव्याहृतिकां गायत्रीमुच्चार्य स्वाहाकारान्तं पुनः प्रणवमुच्चार्य आज्यपायस-समिधो मिलित्वा अष्टोत्तरशतं जुहुयात् लाघवात् अतएव देव-तैक्वे हि दधिपयसोस्तन्द्रेणानुष्ठानम् ऐन्द्रं दध्यमावास्यामैन्द्रं पयो भवत्यमावास्यायामित्यत्रेति आहविवेकः । यत्तु 'पञ्च-लाङ्गलमहादाने पर्जन्यादित्यरुद्रेभ्यः पायसं निर्वपेच्चरुम् । एकस्मिन्नेव कुण्डे च गुरुर्यस्मै निवेदयेत् । पलाशसमिधस्त-ददाज्यं कृष्णतिलां स्तथा' । इति मत्स्यपुराणात् चतुर्णां होहृणां मध्ये यस्मै गुरुः पर्जन्यादिभ्यो होमं कुर्विति आज्ञां करोति स एव पर्जन्यायादित्याय रुद्रेभ्यस्तत्तन्मन्त्रैः पायसं पलाश समिदाज्य कृष्णतिलांश्च प्रत्येकं जुहुयादिति भूपाल-प्रभृतिभिरुक्तं तदयुक्तं तद्वदिति तथेत्याभ्यां प्रत्येकद्रव्येण होमविधानात् । अतएव रत्नाकरकृद्भिश्चरुं जुहुयादित्युक्त्वा तद्वदिति पलाशादि जुहुयादित्युक्तम् अतएव वृषोत्सर्गं वाच-स्यतिमिश्र-प्रभृतिभिरग्न्यादिहोम-शेष-पायसपूषहोमशेष-पिष्ट-काभ्यां मिलिताभ्यां सकृत् स्विष्टिकृद्धोमो विहितः । अशक्तौ तु 'होमो ग्रहादिपूजायां शतमष्टाधिकं भवेत् । अष्टाविंशति-रष्टौ वा शतपेक्षमथापि वा' इति देवीपुराणादिपददर्शना-दत्राप्यन्यासंख्या उल्लेख्या एवं मत्स्यपुराणे 'शृणु राजन् महा-वाहो ! तडागादिषु यो विधिः । वेद्यास्तु परितो गर्तारत्नि-मात्रास्त्रिमेखलाः । नव सप्ताथवा पञ्च योनिवक्त्रा नृपात्मज' इति नवादिकुण्डानुक्त्वा 'स्वल्पेऽप्येकाग्निमत् कार्या वित्त-शाठ्यादृते नृभिः' इति दर्शनादत्राप्यशक्तावेकाग्निविधिरिति वदन्ति अत्र प्राङ्विवाकं गृह्ये नैव होमः । 'दिव्येषु सर्व-कार्याणि प्राङ्विवाकः समाचरेत् । अध्वरेषु यथाध्वर्युः

दिव्यतत्त्वम् ।

५८७

सोपवासो नृपाज्ञया' । इति मिताक्षराधृतपितामहवचनात्
 अर्ध्वर्युजमानमात्रं न चात्र भिन्नशाखिनामृत्विजां रथकार-
 वद्विद्याप्रयुक्तिकल्पनेति वाच्यं ब्राह्मणमात्रस्य नाना शाखापाठ-
 विधानेन कल्पनानुपपत्तेः । तथा च मनुः 'वेदानधीत्य वेदी
 वा वेदं वापि यथाक्रमम् । अविप्लुतब्रह्मचर्य्यो गृहस्थाश्रम-
 माचरेत्' इति प्रायश्चित्तहोमस्तु सामगानां महाव्याहृतिभिः ।
 'यत्र व्याहृतिभिर्होमः प्रायश्चित्तात्मको भवेत् । चतस्रस्तत्र
 कर्त्तव्याः स्त्रीपाणिग्रहणे यथा । अपि वा ज्ञातमित्येषा
 प्राजापत्यादि वाहुतिः । होतव्या त्रिविकल्पोऽयं प्रायश्चित्त-
 विधिः स्मृतः' । इति छन्दोगपरिशिष्टात् न तु शाव्यायनहोम
 भवदेवमदोक्तः त्रिविकल्प इत्यनेन तस्य तस्य निरासात् । भट्ट-
 नारायणादिभिरप्रमाणीकृतत्वाच्च । पितामहः 'तोलयित्वा
 नरं पूर्वं तस्मात्तमवतार्य्य च । प्राङ्मुखः प्राञ्जलिभूर्त्वा प्राङ्-
 विवाकस्ततो वदेत् । एहो हि भगवन् धर्मं दिव्ये ह्यस्मिन्
 समाविश । सहितो लोकपालैस्त्व' वस्त्रादित्यमरुद्गणैः ।
 तच्चार्थमभियुक्तस्य लेखयित्वा तु पत्रके । मन्त्रेणानेन सहितं
 कुर्यात्तस्य शिरोगतम् । आदित्यचन्द्रावनिलोऽनलश्च द्यौर्भू-
 मिरापो हृदयं यमश्च । अहश्च रात्रिश्च उमे च सन्ध्ये धर्मो
 हि जानाति नरस्य वृत्तम् । इमं मन्त्रं विधिं कृत्स्नं सर्व-
 द्रव्येषु योजयेत् । आवाहनञ्च देवानां तथैव परिकल्पयेत् ।
 धटमामन्त्रयेच्चैवं विधिनानेन मन्त्रवित् । त्वं धटो ब्रह्मणा
 सृष्टः परौक्षार्थं दुरात्मनाम् । धकाराद्धर्ममूर्त्तिस्त्व' टकारात्
 कुटिलं नरम् । धृतो धारयसे यस्माद्धटस्तेनाभिधीयते । त्वं
 वेत्सि सर्वभूतानां पापानि सुकृतानि च । त्वमेव देव जानीषे
 न विदुर्यानि मानवाः । व्यवहाराभिगच्छोऽयं मानुषः शुद्धि-
 मिच्छति । तदेनं संशयादस्माद्धर्मतस्मात्तुमर्हसि' । लिखनः

५८८

दिव्यतत्त्वम् ।

प्रकारमाह नन्दिपुराणम् । ‘शुभे नक्षत्रदिवसे शुभे राशि-
 दिनग्रहे । लेखयेत् पूज्य देवेशान् ब्रह्मरुद्रजनार्दनान् ।
 पूर्वदिग्बदनो भूत्वा लिपिज्ञो लेखकोत्तमः । निरोधो हस्त-
 वाह्योश्च मसौपत्यविधारणे’ । मत्स्यपुराणञ्च ‘शीर्षोपेतान् सुस-
 मन्त्रान् समश्रेणिगतान् समान् । अक्षरान् लेखयेद् यस्तु
 सपरो लेखकः स्मृतः’ । इति दानसागरधारयसे इत्यत्र
 भावयस इति पाठोऽनुपयुक्तः । तथाहि कुटिलं पापिनं
 संशयोपन्नं वा आद्ये पापिनमेतावन्मात्राभिधानमनुपपन्नम्
 ऊर्ध्वगत्या शुद्धस्यापि ज्ञापनात् द्वितीये पूर्वसिद्धत्वेन ज्ञाप-
 नानुपपत्तिः तस्मात् कुटिलं व्यवहाराभिशस्तं धारयसे
 इत्येवार्थः अतएव उपसंहारे संशयादस्मादित्युक्तम् अतएव
 कालिकापुराणेऽपि मानुषस्तोत्र्यते त्वयौत्युक्तमिति स्मृतिसमु-
 च्यव्यवहारदीपिकयोर्विष्णुः । धटञ्च समयेन गृह्णीयात् ।
 तुलाधारकञ्च ‘धर्मपर्यायवचनं धट इत्यभिधीयते । त्वमेव
 धट जानीषे न विदुर्यानि मानवाः । व्यवहाराभिशस्तोऽयं
 मानुषः शुद्धिमिच्छति । तदेनं संशयादस्माद्धर्मतस्त्रातुमर्हसि ।
 ब्रह्मघ्ना ये स्मृतालोका ये लोकाः कूटसाक्षिणः । तुलाधारस्य
 ते लोकास्तुलां धारयतो मृषा’ । समयेन त्वमेव धट इत्यादि-
 नियमेन धटं गृह्णीयात् योजयेत् । तुलाधारकञ्च ब्रह्मघ्ना ये
 इत्यादिना नियमेनेत्यर्थः अत्र नानामुनिप्रणीतमन्त्राणाम्
 एकतरपाठ्यानां समानप्रयोजकानां यवब्रीहिवदिकल्प इति
 ग्रन्थगौरवात्ते न लिखिताः । अभिशस्तप्राड्विवाकपाठ्यानान्तु
 दृष्टार्थानां समुच्चयः । पितामहः ‘नित्यं देयानि दिव्यानि
 शुचये चार्द्रवाससे’ । शुचये जननमरणशौचरहिताय ।
 क्षतिनं प्रति याज्ञवल्करदीपकलिकायां नारदः । ‘हस्तक्षतेषु
 सर्वेषु कुर्याद्वसपदानि च । तान्येव पुनरालक्षेद्वस्त्रौ विन्दु-

दिव्यतत्त्वम् ।

५८२

विचित्रितौ' । इत्यग्निविधौ हस्तक्षतिनो हस्तक्षतमलक्ता-
दिना चिह्नितं कृत्वा क्षतान्तरं जातं न वा इति ज्ञातव्यमिति
सुतरां क्षतिनो दिव्याधिकारः । नारदः 'अहोरात्रोषिते
स्नाते आर्द्रवाससि मानवे । पूर्वाह्णे सर्वदिव्यानां प्रदान-
मनुकौर्त्तितम्' । धटामन्त्रणात् प्रागपि पुनस्तोलनमाह
कालिकापुराणम् । 'उपोषितं तथा स्नातं सृक्षमं प्रथमं
तुलाम् । सन्तोष्य कारयेद्रेखामवतार्यानुमन्त्रयेत्' । याज्ञ-
वल्क्यः 'तुलाधारणविद्वद्भिरभियुक्तस्तुलाश्रितः । प्रतिमानसमी-
भूतो रेखां कृत्वावतारितः । त्वं तुले सत्यधामासि पुरा
देवैर्विनिर्मिता । तत्सत्यं वद कल्याणि संशयान्मां विमोचय ।
यद्यस्मिन् पापकृन्नातस्ततो मां त्वमधो नय । शुद्धयेत् गम-
योद्धुं मां तुलामित्यभिमन्त्रयेत्' । तुलाधारणाभिर्गैर्वणि-
गादिभिः पाषाणादिप्रतिमानसमीकृतस्तुलाधिरूढोऽभिशस्तो-
ऽभिशस्ता वा दिव्याधिकारौ येन सन्निवेशेन प्रतिमानसमीक-
रणदशायां यत्र पादादयो व्यवस्थिताः । शिक्वरज्जवच्च तत्र
पाण्डुलेखेनाङ्गयित्वा पिटकादवतारितस्त्वन्तुलेति मन्त्रेण
तुलां प्रार्थयेत् सत्यं सन्दिग्धार्थस्य स्वरूपं वद दर्शय । पापकृद-
सत्यवादी शुद्धश्च सत्यवादी मन्त्रश्चायं स्मार्त्तः पौराणिकत्वात्
शूद्रैरपि पाठ्यः वेदमन्त्रवर्जं शूद्रस्येति छन्दोगाङ्गिकधृष्टृती
वेदेति विशेषणात् आङ्गविश्वदेवादी तु विशेषतो नमस्कार-
मन्त्रविधानात् स्मार्त्तमन्त्रोऽपि निषिद्धः प्रपञ्चस्तु तिथितत्त्वे-
ऽनुसन्धेयः स्त्रीपरोक्षायामपि अविकृत एव प्रयोज्यः दिव्या-
नौह विशुद्धये इत्यनेन सन्दिग्धार्थसन्देहनिवृत्तिफलतयाऽवि-
शेषेण स्त्रीपुंसकर्त्तृकदिव्यविधानेन मानुषः शुद्धिमिच्छती-
त्यनेन च प्रकृतावूहायोगात् । अतएव पत्नीं सन्नध्याज्यं
नोधेहीति मन्त्रे दिवहुपत्नीकयजमानकर्त्तृकप्रयोगेऽपि न

५०—क

५८०

दिव्यतत्त्वम् ।

द्विवहुवचनोह इत्युक्तम् । पत्रस्थप्रतिज्ञेयार्थस्य शोध्याय तस्मिन्
 स्वस्य बोधाय श्रवणमाह नारदः । अमुमर्थञ्च पत्रस्थमभि-
 युक्तं यथार्हतः । संश्रय्य मूर्द्धि तस्यैव न्यस्य देयो यथा-
 क्रमम् । देयो दिव्यविशेषः प्राड्विवाकेनेति शेषः ततः
 शिरोऽवस्थितपत्रकं शोध्य नरं धटे पुनरारोपयेत् पुनरा-
 रोपयेत्तस्मिन् शिरोऽवस्थितपत्रकमिति स्मरणात् तुलारो-
 पितञ्च नरं विनाडीपञ्चककालं शतत्रयगुर्वक्षरोच्चारणयोग्यं
 'माकान्ते पक्षस्यान्ते पर्याकाशे देशे स्वाप्सीः कान्तं वक्तुं वृत्तं
 पूर्णं चन्द्रं मत्वा रात्रौ चेत् क्षुत्क्षामः प्राटंश्चेतश्चेतो राहुः
 क्रूरः प्राद्यात्तस्माद्धान्ते हर्मस्यान्ते शय्यैकान्ते कर्त्तव्या' इति
 श्लोकस्य पञ्चधा पाठयोग्यकालं पञ्चपलाकं यावत् तावत्
 स्थापयेत् । यथा स्मृतिः 'ज्योतिर्विदु ब्राह्मणः श्रेष्ठः कुर्यात्
 कालपरीक्षणम् । विनाद्यः पञ्च विज्ञेयाः परीक्षाकालको-
 विदैः' । तत्कालश्च ज्योतिषे 'दश गुर्वक्षरः प्राणः षट्प्राणाः
 स्युर्विनाडिका । तासां षष्ठ्यां घटो ज्ञेयाऽहोरात्रं घटिका-
 स्तथा' । तथा षष्ठ्या पितामहः 'साक्षिणो ब्राह्मणः श्रेष्ठा
 यथा दृष्टार्थवादिनः । ज्ञानिनः शुचयो लुब्धा नियोक्तव्या
 नृपेण तु । शंसन्ति साक्षिणः सर्वे शुद्धशुद्धौ नृपे तथा ।
 तुलितो यदि वर्द्धेत स शुद्धः स्यान्न संशयः । समो वा हीय-
 मानो वा न विशुद्धो भवेन्नरः । अल्पदोषः समो ज्ञेयो बहु-
 दोषस्तु हीयते' । अल्पत्वं व्यभिचारे आलिङ्गनादिना चौर्यं
 तद्देशगमनादिना । तत्र पुनस्तोलनमाह बृहस्पतिः । 'धटे-
 ऽभियुक्तस्तुलितो हीनश्चेद्धानिसाप्नुयात् । तत्समस्तु पुन-
 स्तोष्यो वर्द्धितो विजयी भवेत्' । शोध्यः स्वल्पदोषाङ्गीकारे-
 ऽपि प्रधानदोषनिर्णयार्थं तत्रैव पुनस्तोलनीयः । अन्यथा-
 ऽङ्गवैगुण्यसम्भावनायान्तु प्रयोगान्तरमिति यदा चानुपलभ्य-

दिश्यतस्त्वम् ।

५८१

मानदृष्टकारणक एव कक्षादीनां छेदनादिस्तदाप्यशुद्धिः ।
 'कक्षच्छेदे तुलाभङ्गे धटककटयोस्तथा । रज्जुच्छेदेऽक्षभङ्गे
 च तथैवाशुद्धिमादिशेत्' इति वृहत्सतिवचनात् कक्षं शिख्यतलं
 धटककटौ तुलान्तयोः शिख्याधारावौषदकावायसकौलकौ
 कर्कटशृङ्गनिभौ । अक्षः पादः स्तम्भयोरुपरिनिविष्टस्तुलाधार-
 पट इति मिताक्षरा द्वाव्यः प्रयोजनकः कौलक इति हला-
 युधः । कटकमिति पारिजातः । यदा तु दृश्यमानकारणक
 एवैषां भङ्गस्तदा पुनरारोपयेत् । शिख्यादिच्छेदभङ्गेषु पुनरा-
 रोपयेन्नरमिति स्मृतेः ततश्च 'ऋत्विक्पुरोहिताचार्यान् दक्षिणा-
 भिश्च तोषयेत् । एवं कारयिता भुक्त्वा राजा भोगान् मनो-
 रमान् । महतीं कौर्त्तिमाप्नोति ब्रह्मभूयाय कल्पते' । तदयं
 संक्षेपः । प्राङ्विवाको लोकपालादिनमस्कारपूर्वकं यथोक्त-
 लक्षणां तुलां कुर्यात् । ततः षड्हस्तौ सुदृढौ स्तम्भौ कृत्वा
 हस्तद्वयव्यवधानेन दक्षिणोत्तरयोर्दिशोर्हस्तद्वयनिखननं कृत्वा
 पटधारककौलकाग्रस्तम्भयोरुपरि मध्ये पार्श्वद्वये च विहित-
 छिद्रं मध्यनिवेशितलौहाङ्गुशं पट्टकं निधाय उपरिफलकस्य
 तत् पट्टकस्य मध्यस्थिताङ्गुशेन तुलामध्यवलयस्थलौहं सं-
 युञ्ज्यात् एवञ्च मध्ये स्तम्भयोरन्तरा तिर्यक् तुलादण्डा-
 स्तिष्ठति तुलाग्रस्थिताभ्यामायसकौलकाभ्यां शिख्यद्वयरज्जु-
 बन्धनं कुर्यात् तुलायाः पार्श्वयोः प्राक् प्रत्यक्दिशोस्तोरण-
 स्तम्भौ तुलातो दशाङ्गुलोच्छ्रयौ काव्यौ तोरणयोरुपरि सूत्र-
 सम्बद्धौ मृण्मयावधोमुखौ धटमस्तकचुम्बितौ अवलम्बौ काव्यौ
 यथाऽवलम्बनविशेषाभ्यां तुलायामवनतिरुन्नतिश्च ज्ञेया तथा
 जलद्वारापि ।

अथेतत्प्रयोगः । कृतोपवासः कृतस्नानादिः प्राङ्विवाको
 ब्राह्मणः कार्यं पृच्छेत् निवेदितं विवेचयेत् ततोऽभियुक्तं तोल-

५८२

दिव्यतत्त्वम् ।

यित्वावतार्य धर्मावाहनादि कुर्यात् । ओं तत्सदित्युच्चार्य
 ब्राह्मणत्रयं गन्धादिना पूजयित्वा अस्मिन्मृकपरीक्षाकर्मणि
 पुण्याहं भवन्तो ब्रुवन्स्वित्यादि वाचयित्वा पुण्याहं स्वस्ति
 ऋद्धिञ्च प्रत्येकं त्रिस्ततो दिव्याङ्गभूतहोमार्थं ब्राह्मणचतुष्टयञ्च
 पाद्यादिभिरभ्यर्च्य हणुयात् अशक्तावेकं ब्राह्मणमेकमृत्विजञ्च
 ततो घटे गणेशनवग्रहपूजा तत्र तुलां सपताकां ध्वजालङ्कृतां
 भूमौ निधाय तस्यां प्राञ्चुखः पुष्याक्षतमादाय ओं भूर्भुवः स्वर्-
 त्युच्चार्य ओम् 'एहोहि भगवन् धर्मं दित्ये ह्यस्मिन् समाविश ।
 सहितो लोकपालैश्च वस्त्रादित्यमरुद्गणैः' इति मन्त्रेण धर्ममावाह्य
 एषोऽर्घ्यं ओं धर्माय नम इत्यादिनाऽर्घपाद्याचमनीयमधुपर्कं
 पुनराचमनीयस्नानीय-वस्त्रयज्ञोपवीतमकुटकटकादिभूषणान्तं
 दत्त्वा तथैवाङ्ग देवतानामर्घ्यादि भूषणान्तं दत्त्वा प्रणवादि-
 नमोऽन्तेन स्वस्वनाम्ना पूजयेत् पूर्वस्याम् इन्द्राय दक्षिणस्यां
 यमाय पश्चिमायां वरुणाय उत्तरस्यां कुबेराय आग्नेय्यामग्नये
 नैऋत्यां निऋतये वायव्यां वायवे ऐशान्यामीशानाय ऊर्ध्वं
 ब्रह्मणे अधोऽनन्ताय इन्द्रस्य दक्षिणे पार्श्वेऽष्टवसुभ्यः प्रत्येकं
 स्वस्वनामभिः वसूनां ध्यानमाह आदित्यपुराणे 'प्रसन्नवदनाः
 सौम्याः वरदाः शक्तिपाणयः । पद्मासनस्था द्विभुजा वसवोऽष्टौ
 प्रकीर्त्तिताः' । तत्र धराय ध्रुवाय सोमाय अपाय अनिलाय
 अनलाय प्रत्यूषाय प्रभाषाय इन्द्रेशानयोर्मध्ये तथा द्वादशा-
 दित्येभ्यः तेषां ध्यानम् आदित्यपुराणे । पद्मासनस्था द्विभुजा
 पद्मगर्भाङ्गकान्तयः । करादिस्कन्धपर्यन्तनीलपङ्कजधारिणः ।
 धात्राद्या द्वादशादित्यास्तेजोमण्डलमध्यगाः' । तत्र धात्रे
 अर्थ्यन्ने मित्राय वरुणाय अंशवे भगाय इन्द्राय विवस्वते
 पूष्णे पर्जन्याय त्वष्ट्रे विष्णवे अग्नेः पश्चिमभागे तथैकादशरुद्रेभ्यः
 ध्यानम् आदित्यपुराणे 'करे त्रिशूलिनो वामे दक्षिणे चाक्ष-

दिश्यतत्त्वम् ।

५८३

मालिनः । एकादश प्रकर्त्तव्या रुद्रास्त्यन्वेन्दुमौलयः । तत्र
 वीरभद्राय शम्भवे गिरिशाय अजैकजादे अहिब्रध्नाय पिना-
 किने अपराजिताय भुवनाधीश्वराय कपालिने स्थाणवे भवाय
 यमराक्षसयोर्मध्ये तथा मातृभ्यः तत्र ब्राह्म्यै माहेश्वर्य्यै कौमार्य्यै
 वैष्णव्यै वाराह्यै नारसिंह्यै चामुण्डायै । निऋत्युत्तरे गणेश-
 शाय वरुणोत्तरेऽष्टमरुद्धः तत्र श्वसनाय स्पर्शनाय वायवे
 अनिलाय मारुताय प्राणाय प्राणेशाय जीवाय धटोत्तरे
 दुर्गायै अर्घादिकं दत्त्वा धर्माय रक्तगन्धपुष्पधूपदीपनैवेद्यानि
 पूर्ववद्दत्त्वा इन्द्रादि दुर्गान्तेभ्यो रक्तगन्धपुष्पादि दद्यात् ततश्च-
 तुर्दिक्षु चतुर्भिः ऋग्भिश्चतुरोऽग्नीन् अशक्तावेकेन ऋत्विजा
 एकमग्निं प्राङ् विवाक गृह्योक्तविधिना संस्थाप्य प्रणवपुटितां
 सव्याहृतिकां गायत्रीं स्वाहान्तामुच्चार्य्य घृतपायससमिद्धिर्मि-
 लिताभिरष्टोत्तरशतम् अष्टाविंशतिरष्टौ वा जुहुयात् सामगानां
 प्रायश्चित्तहोमस्तु व्यस्तसमस्ताभिर्महाव्याहृतिभिः एवं हव-
 नान्तां देवपूजां विधाय दक्षिणां दद्यात् ततः शोध्यं कृतो-
 पवासम् आर्द्रवाससं पश्चिमशिक्षे कृत्वा इष्टकाञ्च पूर्वशिक्षे
 कृत्वा उत्तोल्य धटोपरि जलदानेन साम्यमवगत्यावतारयेत् ।
 ततः प्राङ् विवाकस्तद्दिनकृतकजलमस्या विच्छेदाञ्जरादिशून्यां
 पंक्तिद्वयेन समसंख्याक्षरेण आदित्यचन्द्रावित्यादि चतुश्चत्वारिंशदक्षरमन्त्रसमेतामभियुक्तार्थकरणाकरण-रूपमिद-सृणमस्मै
 दत्तमिदसृणमस्मान्मया न गृहीतमित्यादिरूपां प्रतिज्ञां पत्रे
 विलिख्य प्रतिज्ञार्थं शोध्यं आवयित्वा तत् पत्रं शोध्यस्य शिरो-
 गतं कुर्यात् इति लिखनप्रकारविशेषस्तु हरिहरादिपद्धति-
 व्यवहारदौषिकयोरनुरोधात् कृतः । ततश्च प्राङ् विवाको
 धृतमामन्त्रयेदेभिः 'त्वं धटो ब्रह्मणा सृष्टः परोक्षार्थं दुरा-
 क्तनाम् । धकाराद्वर्त्ममूर्त्तिस्त्वं टकारात् कूटिलं नरम् ।

५६४

दिश्यतस्त्वम् ।

धृतो धारयसे यस्मात् धटस्तेनाभिधीयते । त्वं वेत्सि सर्व-
भूतानां पापानि सुकृतानि च । त्वमेव देव जानीषे न विदु-
र्यानि मानवाः । व्यवहाराभिगच्छोऽयं मानुषः शुद्धिमिच्छति ।
तदेनं संशयादस्माद्धर्मतस्त्रातुमर्हसि । तुलाधारकं निशामये-
दनेन मन्त्रेण 'ब्रह्मज्ञा ये स्मृता लोका ये लोकाः कूटसाक्षिणः ।
तुलाधारस्य ते लोकास्तुलां धारयतो मृषा' । ततोऽभिगच्छ-
स्तुलामामन्त्रयेदनेन 'त्वं तुले सत्यधामासि पुरा देवैर्विनि-
र्मिता । तत्सत्यं वद कल्याणि संशयान्मां समुद्धर । यद्य-
स्मिन् पापकृन्मातस्ततो मां त्वमधो नय । शुद्धश्चेद्भूमयोर्द्ध्वं
मां तुलामित्यभिमन्त्रयेत्' । ततः प्राङ्मवाकः पूर्वाननं तं
पूर्ववत् धटमारोपयेत् । आरोपितञ्च पलपञ्चककालं तञ्च
शुद्धाशुद्धिज्ञापनाय स्थापयेत् । ततः प्रतिमानद्रव्यादूर्द्ध्व-
स्थाने शुद्धः अधोऽवस्थानेऽशुद्धः समावस्थानोऽपि अल्पदोषः
कक्षकौलककर्कटशिक्यपादाच्चादीनां दृष्टकारणव्यतिरेकेण
छेदे भङ्गे वाप्यशुद्धिमादिशेत् । ततः पुरोहिताचार्यादीन्
दक्षिणाभिस्तोषयेत् ।

अथ अग्निपरीक्षा । पितामहः । 'अग्नेर्विधिं प्रवक्ष्यामि
यथावच्छास्त्रभाषितम् । कारयेन्मण्डलान्यष्टौ पुरस्ताद्भुवनं
तथा । आग्नेयं मण्डलं त्वायं द्वितीयं वारुणं स्मृतम् ।
तृतीयं वायुदेवत्यं चतुर्थं यमदेवतम् । पञ्चमन्विन्द्रदेवत्यं
षष्ठं कौबेरमुच्यते । सप्तमं सोमदेवत्यं सावित्रमष्टमं तथा ।
नवमं सर्वदेवत्यमिति दिव्यविदो विदुः । पुरस्ताद्भुवनं यच्च
तन्महत् पार्थिवं विदुः' । मन्त्रपार्थिवमित्यपरिमिताङ्गुल-
मित्यर्थः 'गोमयेन कृतानि स्युराणि पर्युक्षितानि च । द्वात्रिं-
शदङ्गुलान्याहुर्मण्डलात् मण्डलान्तरम् । अष्टाभिर्मण्डलैरेव-
मङ्गुलीनां शतद्वयम् । षट्षण्णमधिकं भूमेस्तु परिक-

दिश्यतत्त्वम् ।

५८५

ल्पना' । यहा 'कर्तुः पादसमं कार्यं मण्डलन्तु प्रमाणतः' ।
 आग्नेयमग्निदेवताकम् एवमन्यत्र तेनाग्न्यादयस्तेन पूज्याः
 मण्डलं षोडशाङ्गुलं तदन्तरालञ्च षोडशाङ्गुलं तेन मिलित्वा
 द्वात्रिंशदङ्गुलमिति तथाच याज्ञवल्क्यः 'षोडशाङ्गुलकं ज्ञेयं
 मण्डलन्तावदन्तरमिति' । तथा 'मण्डले मण्डले देयाः
 कुशाः शास्त्रप्रचोदिताः । विन्यसेत्तु पदं कर्त्ता तेषु नित्यमिति
 स्थितिः । प्राङ्मुखस्तु ततस्थिष्ठेत् प्रसारितकराञ्जलिः । आर्द्र-
 वासाः शुचिश्चैव शिरस्यारोप्य पत्रकम् । पश्चिमे मण्डले
 तिष्ठेत् प्राङ्मुखः प्राञ्जलिः शुचिः । लक्षयेयुः क्षतादौनि हस्त-
 योस्तस्य कारिणः' । तस्यावष्टुष्टब्रीहेः । तथाच याज्ञवल्क्यः
 'करो विमृदितब्रीहेर्लक्षयित्वा ततो न्यसेत् । समाश्रत्यस्य
 पत्राणि तावत् सूत्रेण वेष्टयेत्' । विमृदितब्रीहेः कराभ्या-
 मिति शेषः विमृदितब्रीहेः करो लक्षयित्वा क्षततिलादि-
 स्थानेषु हंसपदाकृतिरेखारूपेण रक्तचन्दनादिविन्दुना
 अङ्कयित्वा तदाह नारदः 'हस्तक्षतेषु सर्वेषु कुर्याद्वंस-
 पदानि तु तान्येव पुनरालक्षेद्वस्तौ विन्दुविचित्रितौ' ।
 ततश्च हस्तयोरुपरि समाश्रत्यपत्राणि सप्तशमीपत्राणि
 सप्त दूर्वापत्राणि दध्यक्तान् यवान् पुष्पाणि च विन्य-
 सेत् । 'सप्त पिप्पलपत्राणि शमीपत्राण्यथ क्रमात् । दूर्वायाः
 सप्त पत्राणि दध्यक्ताञ्चाक्षतान् न्यसेत्' । इति मिताक्षरा-
 धृतवचनात् । सप्तपिप्पलपत्राणि अक्षतं सुमनो दधि ।
 हस्तयोर्निक्षिपेत्तत्र सूत्रेण वेष्टनं तथा' इति पितामहवचनाच्च
 सूत्रं विशेषयति नारदः । 'वेष्टयीत सितैर्हस्तौ सप्तभिः
 सूत्रतन्तुभिः' । तथा 'जात्यैव लोहकारो यः कुशलश्चाग्नि-
 कर्मणि । दृष्टप्रयोगश्चान्यत्र तेनायोऽग्नौ प्रतापयेत् । अग्नि-
 वर्णमयं पिण्डं सस्फुलिङ्गं सुरञ्जितम् । पञ्चाशत्पलिकं भूयः

५८६

दिव्यतत्त्वम् ।

कारयित्वा शुचिर्हिजः । तृतीयतापे तप्यन्तं ब्रूयात् सत्य-
 पुरस्कृतं सत्यपुरस्कृतं सत्यशब्दयुक्तं त्वमग्ने सर्वभूतानामिति
 याज्ञवल्क्योक्तं मन्त्रं ब्रूयादित्यर्थः । अयःपिण्डं विशेषयति
 पितामहः 'असह्येनं तथा कृत्वा अष्टाङ्गुलमयोमयम् ।
 पिण्डन्तु तापयेदग्नौ पञ्चाशत्पलिकं समम्' । असं कोणं
 अङ्गुलिमानन्तु 'तिथ्यग्यवोदराण्यष्टावृद्धा वा ब्रौह्मसूयः ।
 प्रमाणमङ्गुलस्योक्तं वितस्तिर्द्वादशाङ्गुलः' । पलपरिमाण-
 माह मनुः । 'पञ्चकणलकोमाषस्ते सुवर्णस्तु षोडश । पलं
 सुवर्णाश्चत्वारः' इति लौकिकमानेनाष्टोलकपरिमितपलानि
 विंशतिः षट्ठोलकाः पञ्चमाषकाश्चतस्रो रत्तिकावैदिकपञ्चा-
 शतः पलेभ्यो निष्पद्यन्ते ततः 'शान्त्यर्थं जुहुयादग्नौ घृत-
 मष्टोत्तरं शतम्' इति मिताचराधृतात् । प्राङ्बिवाकी
 मण्डलभूमेर्दक्षिणदेशे स्वर्गद्वोक्तविधिनानि संस्थाप्य ओम्
 अग्नये पावकाय स्वाहेति मिताचरोक्तमन्त्रेणाज्येनाष्टोत्तरशतं
 हुत्वा तस्मिन्नग्नौ तत्तौहपिण्डं प्रक्षिप्य तत्पिण्डं जले क्षिप्त्वा
 पुनः संताप्य जले पुनः क्षिप्त्वा पुनस्तस्मिन् तप्यमाने धर्मा-
 वाहनादिहवनान्तपूर्वोक्तविधिं विधाय तत् पिण्डं जले
 क्षिप्त्वा पुनस्तप्यमानपिण्डस्यमग्निमेभिः पितामहाद्युक्तैर्मन्त्रै-
 रभिमन्त्रयेत् ओम् 'त्वमग्ने वेदाश्चत्वारस्त्वच्च यज्ञेषु ह्ययसे ।
 त्वं सुखं सर्वदेवानां त्वं सुखं ब्रह्मवादिनाम् । जठरस्थो
 हि भूतानां ततो वेत्सि शुभाशुभम् । पापं पुनासि वै यस्मात्
 तस्मात् पावक उच्यते । पापेषु दर्शयात्मानमर्चिष्मान् भव
 पावक । अथवा शुद्धभावेषु शीतो भव हुताशन । त्वमग्ने
 सर्वभूतानामन्तश्चरसि सान्निवत् । त्वमेव देव जानीषे न
 विदुर्यानि मानवाः । व्यवहाराभिश्चस्तोऽयं मानुषः शुद्धि-
 मिच्छति । तदेनं संशयादस्माद्धर्मतस्मात्तुमर्हसि' । ततो

दिव्यतत्त्वम् ।

५८७

ब्रौहिमर्दनसंस्कृतकरयोरुपरि सप्ताश्वत्थपत्राणि विन्यस्य सप्त-
 सूत्रैः संवेष्ट्याद्यमण्डले तिष्ठन् प्राड्विवाकेन सन्दंशानीतं
 लौहपिण्डमनेन याज्ञवल्क्योक्तैनाभिमन्त्रयेत् । 'त्वमग्ने सर्व-
 भूतानामन्तश्चरसि पावक । साक्षिवत् पुण्यपापेभ्यो ब्रूहि
 सत्यं करे मम' । अस्यार्थः हे अग्ने त्वं सर्वभूतानां जरायु-
 जाण्डजस्वेदजोद्भिज्जातानामन्तःशरीराभ्यन्तरे चरसि भुक्तान्न-
 पानादीनां पाचकत्वेन वर्त्तसे सर्वस्य हृदयगतं जानासीति
 वा । पावक शुद्धिहेतो करे अन्तर्दृशिन् सर्वार्थदर्शिन् सर्व-
 ज्ञेति यावत् अतः साक्षिवत् पुण्यपापेभ्यः सत्यं ब्रूहि पुण्य-
 पापेभ्य इति ल्यवलोपे पञ्चमी पुण्यपापान्यवेत्य सत्यं ब्रूहि
 दर्शयेत्यर्थः तदनन्तरं याज्ञवल्क्यः 'तस्येत्युक्तवतो लौहं
 पञ्चाशत्पलिकं समम् । अग्निवर्णं न्यसेत् पिण्डं हस्तयो-
 रुभयोरपि' न्यसेद्राजा प्राड्विवाको वा यथा पितामहः
 'ततस्तं समुपादाय राजा धर्मपरायणः । सन्दंशेन नियुक्तो
 वा हस्तयोर्हस्तस्य निक्षिपेत्' । तं लौहपिण्डं नियुक्तः प्राड्वि-
 वाकः अस्य दिव्यकर्तुः याज्ञवल्क्यः 'स तमादाय सप्तैव
 मण्डलानि शनैर्व्रजेत्' । एवकारेण मण्डलेषु एव पादन्यासो
 मण्डलानतिक्रमणञ्च दर्शितं व्यक्तमाह पितामहः 'न मण्डल-
 मतिक्रामेत् नाप्यर्वाक् स्थापयेत् पदम् । अष्टमं मण्डलं
 गत्वा नवमे क्षिपयेद् बुधः' कालिकापुराणं 'मण्डलानि तथा
 सप्तषोडशाङ्गुलिमानतः । तावदन्तरितो गच्छेद्गत्वा नवदण्डे
 क्षिपेत्' । अत्र च गन्तव्यानि सप्तैव मण्डलानि यतः प्रथमे
 तिष्ठति नवमे क्षिपति तेन न विरुध्यते । याज्ञवल्क्यः
 'अन्तरा पतिते पिण्डे सन्देहे वा पुनर्हरेत्' । सन्देहे दग्ध-
 त्वादग्धत्वसन्देहे तस्मिन्नेव प्रयोगे पिण्डं पुनरारोप्य शेषं
 समापयेत् न तु प्रयोगान्तरम् आरोपणमात्रस्य पुनर्विधानात्

५८८

दिव्यतत्त्वम् ।

तत् प्रयोगस्य विगुणत्वानिश्चयाच्च । कात्यायनः 'प्रसूतल-
क्षभियुक्तश्चेत् स्थानादन्यत्र दह्यते । न दग्धं तं विदुर्देवास्तस्य
भूयोऽपि दापयेत्' । याज्ञवल्क्यः 'सुक्ताग्निं मृदितव्रीहि-
रदग्धः शुद्धिमाप्नुयात्' । नारदः 'व्रीहिमतिप्रयत्नेन सप्तवारांश्च
मर्दयेत्' । पितामहः 'निर्विशङ्केन तेषान्तु हस्ताभ्यां मर्दने
कृते । निर्विकारो दिनस्यान्ते शुद्धिस्तस्य विनिर्दिशेत्' ।

अथैतत्प्रयोगः । पूर्वद्युर्भूमिशुद्धिं विधाय परेद्युर्थया
पूर्वमष्टमण्डलानि षोडशाङ्गुलप्रमाणानि तदन्तरालानि च
षोडशाङ्गुलप्रमाणानि तदन्तरालं नवमं मण्डलमपरिमिता-
ङ्गुलप्रमाणं गोमयेन निर्माय तेषु प्रागग्रान् कुशानास्तौर्ध्व
प्रथमे मण्डले रक्तपुष्पाक्षतमादाय ओम् भूर्भुवः स्वरग्ने इहा-
गच्छ इहागच्छ इह तिष्ठ इह तिष्ठ इत्यावाह्यं स्थापयित्वा
गन्धादिभिः प्राड्विवाकोऽभ्यर्चयेत् । एवं द्वितीये वरुणं
तृतीये वायुं चतुर्थे यमं पञ्चमे इन्द्रं षष्ठे कुबेरं सप्तमे सोमम्
अष्टमे सूर्यं नवमे सर्वदेवताः ततो मण्डलदक्षिणे प्राड्विवाकः
स्वगृहोक्तविधिनाग्निस्थापनं कृत्वा ओम् अग्नये पावकाय
स्वाहेति अष्टोत्तरशतम् आज्येन शान्तिहोमं कृत्वा तदग्नौ
लौकिकमानेन चतुरत्तिकाधिकपञ्चमाषकाधिकषट्षष्ट्यधिक-
शततोलकमितं कोणरहितम् अष्टाङ्गुलं लौहपिण्डं प्रतप्य
जले प्रक्षिप्य पुनरग्नौ प्रतप्य पुनर्जले प्रक्षिप्य पुनः प्रतप्य
तत् पिण्डे धर्मावाहनादि सर्वदेवतापूजां हवनान्तां तुलोक्तां
विधाय दक्षिणां दद्यात् उपोषितस्य स्नातस्यार्द्रवाससो
गत्वाद्यमण्डले तिष्ठतो व्रीहिमर्दनादिसंस्कारं विधाय
प्रतिज्ञापत्रं समन्त्रकं कर्तुः शिरसि बद्ध्वा प्राड्विवाकस्तृतीये
तापेऽयःपिण्डस्यमग्निमभिमन्त्रयेत् एभिर्मन्त्रैः । ओम् त्वमग्ने
वेदाश्चत्वारस्त्वञ्च यज्ञेषु ह्वयसे । त्वं सुखं सर्वदेवानां

दिव्यतत्त्वम् ।

५८८

त्वं सुखं ब्रह्मवादिनाम् । जठरस्थो हि भूतानां ततो वेक्षि
शुभाशुभम् । पापं पुनासि वै यस्मात्तस्मात् पावक उच्यते ।
पापेषु दर्शयात्मानमर्चिष्मान् भव पावक । अथवा शुद्धभावेन
शीतो भव हुताशन । त्वमग्ने सर्वभूतानामन्तश्चरसि साक्षि-
वत् । त्वमेव देव जानीषे न विदुर्यानि मानवाः । व्यव-
हाराभिश्चस्तोऽयं मानुषः शुद्धिमिच्छति । तदेनं संशया-
दस्माद्धर्मतस्मात्तुमर्हसि । ततः कर्त्तृहस्तयोरुपरि सप्ताश्वत्य-
पत्राणि सप्तशमीपत्राणि सप्तदूर्वापत्राणि दध्यक्षतान् यवान्
पुष्याणि च शुक्लसूत्रेण सप्तकृत्वो वेष्टयेत् । कर्त्ता लौह-
पिण्डस्यमग्निमभिमन्त्रयेदनेन मन्त्रेण 'त्वमग्ने सर्वभूताना-
मन्तश्चरसि पावक । साक्षिवत् पुण्यपापेभ्यो ब्रूहि सत्यं
करे मम' । ततस्तद्वस्तयोरुपरि लौहपिण्डं निदध्यात्
ततस्तं गृहीत्वा शनैरकुटिलं क्रमशः सप्तमण्डलानि गत्वा
नवममण्डलस्थलणोपरि त्यजेत् । ततः पुनरपि ब्रौहिभिर्मर्द-
येत् । अदग्धश्चेत् शुद्धिमाप्नुयात् अन्तरापतिते पिण्डे दग्धा-
दग्धत्वसन्देहे वा पुनर्हरेत् । स्वल्पेन हस्तयोरन्ध्र दाहे न
दोषः । पुनरारोपणञ्च ततो गुरुपुरोहितादौ न दक्षिणाभिः
परितोषयेत् । इति अग्निपरीक्षा

अथ उदकपरीक्षा । पितामहः 'तोयस्याथ प्रवक्ष्यामि
विधिं धर्म्यं सनातनम् । मण्डलं पुष्पधूपाभ्यां कारयेत् सुवि-
चक्षणः । शरान् संपूजयेद्भक्त्या वैणवञ्च धनुस्तथा' । तच्च
प्रथमतो वरुणं पूजयेत् यथा नारदः 'गन्धमात्यैः सुरभि-
भिर्मधुक्षीरघृतादिभिः । वरुणाय प्रकुर्वीत पूजामादौ समा-
हितः' । ततो धर्मावाननादिसकलदेवतापूजा होम समन्वक-
प्रतिज्ञापत्रशिरो निवेशान्तं कर्म कुर्यात् । कात्यायनः ।
'शरांस्वनायसाशांस्तु प्रकुर्वीत विशुद्धये । वैणुकाष्टमयाञ्चैव

६००

दिध्यतत्त्वम् ।

क्षेप्ता च सुदृढं क्षिपेत्' । पितामहः 'क्षेप्ता च क्षत्रियः
 कार्यः तद्दृष्टिर्ब्राह्मणोऽथवा । अक्रूरहृदयः शान्तः सोपवास-
 स्तथा शुचिः । इषून् प्रक्षिपेद्भीमान् मारुतो वाति वा भृशम् ।
 विषमे भूप्रदेशे च वृक्षस्थाणुसमाकुले' । नारदः 'क्रूरं धनुः
 सप्तशतं मध्यमं षट्शतं मतम् । मन्दं पञ्चशतं प्रोक्तमेष क्षेयो
 धनुर्विधिः' । अङ्गुलीनां सप्ताधिकं शतं यस्य धनुषः परिमाणं
 तत् सप्तशतम् एवं षट्शतादिकं पितामहः 'मध्यमेन तु चापेन
 प्रक्षिपेत्तु शरत्रयम् । हस्तानान्तु शते सार्धं लब्धं कृत्वा विच-
 क्षणः । तेषाञ्च प्रेषितानान्तु शराणां शास्त्रदेशनात् । मध्य-
 मस्तु शरो ग्राह्यः पुरुषेण बलीयसा । शराणां पतनं ग्राह्यं
 सर्पणं परिवर्जयेत् । सर्पन् सर्पन् शरो याति दूराद् दूरतरं
 यतः' । पतनं ग्राह्यमिति शरपतनस्थानपर्यन्तं गच्छेदित्यर्थः
 तेन प्रसरच्छपलेऽपि पतनस्थानकशरग्रहणं ततश्च प्रथमतः पुरु-
 षान्तरेण तत्स्थाने शर आनेतव्यः । नारदः 'नदीषु नाति-
 वेगासु तडागेषु सरःसु च । ज्जदेषु स्थिरतोयेषु कुर्यात्
 पुंसां निमज्जनम्' । नातिवेगासु स्थितिविरोधिवेगशून्यासु ।
 विष्णुः 'पद्मशैवालदुष्टग्राहमत्स्यजलौकादिवर्जिते तस्य नाभि-
 मात्रजले मग्नस्वारागद्वेषिणः । पुरुषस्यान्यस्योरु गृहीत्वा-
 ऽभिमन्त्रिताम्बः प्रविशेत् । ततः समकालञ्च नातिक्रूरमृदुना
 धनुषा पुरुषोऽपरः शरमोक्षं कुर्यादिति' तस्य शोध्यस्येत्यर्थः
 अन्यथा तस्येति व्यर्थं स्यात् अन्यपुरुषस्य स्तम्भधारणमाह
 स्मृतिः 'उदके प्राङ्मुखस्तिष्ठेद्धर्मस्थूणां प्रगृह्य च' शोध्यकर्त्तृ-
 कजलाभिमन्त्रणमाह पितामहः । 'तोय त्वं प्राणिनां प्राणः
 सृष्टेराद्यन्तु निर्मितम् । शुद्धेश्च कारणं प्रोक्तं द्रव्याणां
 देहिनान्तथा । अतस्त्वं दर्शयात्मानं शुभाशुभपरीक्षणे' ।
 शोध्यकर्त्तृकाभिमन्त्रणमाह याज्ञवल्क्यः 'सत्येन माभिरक्ष

दिव्यतत्त्वम् ।

६०१

वरुणेत्यभिशाप्यकम् । नाभिमात्रोदकस्थस्य गृहीत्वोरुजलं
विशेत् । मामभिशाप्य शपथं कारयित्वा कं जलं विशेत्'
तोरणञ्च निमज्जनसमीपे समे स्थाने शोध्यकर्णप्रमाणोच्छ्रितं
कार्यं यथा नारदः 'गत्वा तु तज्जलस्थानं तटे तोरणमुच्छ्रि-
तम् । कुर्वीत कर्णमात्रन्तु भूमिभागे समे शुचौ । शरमोक्षे
विशेषमाहृतुर्नारदवृहस्पती 'शरप्रक्षेपणस्थानाद् युवाजव-
समन्वितः । गच्छेत् परमया शक्त्या यात्रासौ मध्यमः शरः ।
मध्यमं शरमादाय पुरुषोऽन्यस्तथाविधः' । प्रत्यागच्छेत्तु
वेगेन यतः स पुरुषो गतः । आगन्तस्तु शरग्राही न पश्यति
यदा जले । अन्तर्जलगतं सम्यक् तदा शुद्धिं विनिर्दिशेत् ।
अन्यथा न विशुद्धः स्यादेकाङ्गस्यापि दर्शनात् । स्थाना-
द्धान्यत्रगमनाद् यस्मिन् पूर्वं निवेशयेत्' । जविनी विशे-
षयति नारदः 'पञ्चाशतो धारकाणां यौ स्यातामधिकौ जवे ।
तौ च तत्र नियोक्तव्यौ शरानयनकर्मणि' । एकाङ्गस्य दर्शना-
दिति च कर्णाद्यभिप्रायेण 'शिरोमात्रन्तु वृश्येत न कर्णौ
नापि नासिके । अप्सु प्रवेशने यस्य शुद्धं तमपि निर्दि-
शेत्' । इति विशेषाभिधानात् निमज्ज्योत्प्लवते यस्तु दष्ट-
श्चेत् प्राणिना नरः । पुनस्तत्र निमज्जेत दंशचिह्नविचारि-
तः' । जलान्तर्गतमत्स्यजलीकादिना दष्टः समुत्प्लवते यदि
तदा दष्टे पुनर्निमज्जनीयमित्यर्थः । पितामहः 'गन्तु-
श्चापि च कर्तुश्च समं गमनमज्जनम् । गच्छेत्तोरणमूलात्तु
शरस्थानं जवौ नरः । तस्मिन् गते द्वितीयोऽपि वेगा-
दादाय शायकम् । गच्छेत्तोरणमूलन्तु यतः स पुरुषो गतः ।
आगतस्तु शरग्राही न पश्यति यदा जले । अन्तर्जलगतं
सम्यक् ततः शुद्धिं विनिर्दिशेत्' । अत्र मज्जनसमकालगम-
नाभिधानाच्छरमोक्षसमकालं गमनं शूलपाण्युक्तमयुक्तं मज्जन-

६०२

दिव्यतत्त्वम् ।

समकालक्षितं मध्यमं शरमादायेत्यपरमुक्तमपि प्रमाणशून्यं ततश्च त्रिषु शरेषु मुक्तेषु एको वेगवान् मध्यमशरपतनस्थानं गत्वा तमादाय तत्रैव तिष्ठति अन्यस्तु पुरुषो वेगवान् शर-
मोक्षस्थाने तोरणमूले तिष्ठति एवं स्थितयोस्तृतीयायां करतालिकायां प्राङ्ग्विवाकदत्तायां शोध्यो निमज्जति तत्-
समकालमेव तोरणमूलस्थितोऽपि द्रुततरं मध्यमशरपतन-
स्थानं गच्छति शरग्राही च तस्मिन् प्राप्ते द्रुततरं तोरणमूलं प्राप्यान्तर्जलगतं यदि न पश्यति तदा शुद्धो भवतीति वर्तुलार्थः ।

तत्र प्रयोगः । उक्तलक्षणजलाशयनिकटे तथा तोरणं विधाय उक्तदेशे लक्ष्यं कृत्वा तोरणसमीपे सशरं धनुः संपूज्य जलाशये वरुणमावाह्य पूजयित्वा तत्क्षीरे धर्मादींश्च देवान् हवनान्तमिष्ट्वा दक्षिणां कृत्वा शोध्यस्य शिरसि प्रतिज्ञापत्रं बद्ध्वा प्राङ्ग्विवाको जलमभिमन्त्रयेत् । ‘ओम् तोय त्वं प्राणिनां प्राणः सृष्टेराद्यन्तु निर्मितम् । शुद्धेश्च कारणं प्रोक्तं द्रव्याणां देहिनां तथा । अतस्त्वं दर्शयात्मानं शुभाशुभपरीक्षणे’ इति मन्त्रेण । शोध्यस्तु ओं सत्येन माभिरक्षस्व वरुणेत्यनेन जल-
मभिमन्त्र्य गृहीतस्थूणस्य शोध्यस्य नाभिमात्रोदकावस्थितस्य वलीयसः । प्राङ्मुख पुरुषस्य समीपं जलमध्ये गच्छेत् । ततश्च शरेषु त्रिषु मुक्तेषु मध्यमशरपातस्थाने मध्यमशरं गृहीत्वा जवन्येकस्मिन् पुरुषे स्थिते अन्यस्मिंश्च तोरणमूल-
स्थिते प्राङ्ग्विवाकेन तालत्रये दत्ते शोध्यो गृहीतस्थूण-
प्राङ्मुखपुरुषोरु गृहीत्वा निमज्जति तत्समकालमेव तोरण-
मूलस्थोऽपि मध्यमशरस्थानं द्रुतं गच्छति । ततः शरग्राही च तस्मिन् प्राप्ते द्रुतं तोरणमूलं प्राप्य जलान्तःस्थं यदि न पश्यति तदा शुद्धः । कर्णाद्यङ्गं विना शिरोमात्रदर्शनेऽपि

दिव्यतत्त्वम् ।

६०१

शुद्धः मज्जनस्थानादन्यत्र ममनेऽपि अशुद्धः दक्षिणादिकं दद्यात् ।

अथ विषविधिः । नारदः 'शार्ङ्गं हैमवतं अस्त्रं गन्धवर्ण-
रसान्वितम् । अक्षत्रिमसमं मूढममन्त्रोपहतञ्च यत् । वर्षे चतु-
र्यवा मात्रा ग्रीष्मे पञ्चयवाः स्मृताः । हेमन्ते स्युः सप्तयवाः शर-
द्वत्पन्ततोऽपि हि । दद्याद्विषं सौपवासो देवब्राह्मणसन्निधौ ।
धूपोपहारमन्त्रैश्च पूजयित्वा महेश्वरम् । द्विजानां सन्निधावेव
दक्षिणाभिमुखे स्थिते । उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा दद्याद्विप्रः
समाहितः' । शार्ङ्गस्वरूपमाह कात्यायनः । 'अजाशृङ्गनिभं
श्यामं सुशीतं शृङ्गसम्भवम् । भङ्गे च शृङ्गवेराभं तत्ख्यातं
शृङ्गिणं विषम् । रक्तस्थमसितं कुर्यात् कठिनञ्चैव तत्क्षणात्' ।
शृङ्गवेरमार्द्रकं तदाभं तत्तुल्यम् । रक्तस्थमिति यद्विषं रक्ते
स्थापितं सत् तद्रक्तस्थं श्यामं कठिनं करोतीत्यर्थः अत्येति
पूर्वोक्तसप्तयवानामल्पत्वं षडयवमात्रेत्यर्थः । हेमन्तग्रहणे
शिशिरस्यापि ग्रहणं हेमन्तशिशिरयोः समानत्वमिति श्रुतेः ।
वसन्तस्य सर्वदिव्यसाधारणत्वेन तत्रापि सप्तयवाः सप्तविषस्य
वेति याज्ञवल्क्येन सामान्यतोऽभिधानात् कात्यायनः 'पूर्वाह्णे
शीतले देशे विषं देयन्तु देहिनाम् । हृतेन योजितं स्रक्ष्यं
पिष्टं त्रिंशद्गुणेन च' । देयं प्राङ्मुखेन तत्पाठ्यमाह पिता-
महः 'द्वीयमानं करे कृत्वा विषन्तु परिशापयेत् । विषं त्वं
ब्रह्मणा सृष्टं परीक्षार्थं दुरात्मनाम् । पापिनां दर्शयात्मानं
शुद्धानाममृतं भव । मृत्युमूर्ते विषं त्वं हि ब्रह्मणा परिनि-
र्मितम् । त्रायस्त्वेन नरं पापात् सत्येनास्त्रासृतं भव' । परि-
शापयेत् शपथं कारयेत् शोध्यपाठ्यमाह याज्ञवल्क्यः । 'विषं त्वं
ब्रह्मणः पुत्रः सत्यधर्मे व्यवस्थितः । त्रायस्त्वास्मदभीशापात्
सत्येन भव मेऽमृतम् । एवमुक्त्वा विषं शार्ङ्गं भक्षयेद्दिमशै-

६०८

दिव्यतत्त्वम् ।

लजम् । भक्षिते च यदा सुखे मूर्च्छाच्छर्दिर्विवर्जितः । निर्वि-
कारो दिनस्यान्ते शुद्धं तमिति निर्दिशेत् । त्रिरात्रं पञ्चरात्रं
वा पुरुषैः स्त्रैरधिष्ठितम् । कुहकादिभयाद्राजा वारयेद्दिव्य-
कारिणम् । ओषधीर्मन्त्रयोगांश्च मणौनथ विषापहान् ।
कर्तुः शरीरसंस्थांश्च गूढोत्पन्नान् परीक्षयेत् । विषतन्त्रे
वेगो रोमाञ्च माद्यो रचयति विषजः । स्वेदरक्तोपशोषौ तस्यो-
द्ध्वस्तत्परो द्वौ वपुषि जनयतो वर्णभेदप्रवेपौ यो वेगः पञ्चमो-
ऽसौ नयनविरसतां कण्ठभङ्गञ्च ह्रिकां षष्ठो निश्वासमोहौ
वितरति मृतिं सप्तमो भक्षकस्य । ब्रह्मस्यतिः । 'विधिदत्तं
विषं येन जीर्णं मन्त्रौषधं विना । स शुद्धः स्यादन्यथा तु टण्डो
दाप्यश्च तद्धनम्' । तत्र क्रमः । सोपवासः प्राङ्निवाकः
शिवं संपूज्य तत् पुरतो विषमुक्तपरिमाणं पिष्टं त्रिंशद्गुण-
घृतयुक्तं संस्थाप्य धर्मादीन् देवान् हवनान्तमिष्ट्वा दक्षिणां
दत्त्वा शोध्यशिरसि प्रतिज्ञापत्रं निधाय 'ओं विष त्वं ब्रह्मणा
सृष्टं परीक्षार्थं दुरात्मनाम् । पापिनां दर्शयात्मानं शुद्धाना-
ममृतं भव । सत्यमूर्ते विष त्वं हि ब्रह्मणा परिनिर्मितम् ।
त्रायस्त्वेनं नरं पापात् सत्येनास्यामृतं भव' । इत्याभ्यां प्राङ्मुख
उदङ्मुखो वा विषमभिमन्त्र्य दक्षिणाभिमुखाय शोध्याय
ददाति । शोध्यस्तु । ओं 'विष त्वं ब्रह्मणः पुत्रः सत्यधर्मे
व्यवस्थितः । त्रायस्वास्मादभीशापात् सत्येन भव मेऽमृतम्' ।
इत्यनेनाभिमन्त्र्य भक्षयति । यदि दिनान्तं निर्विकारस्तदा
शुद्ध इति ।

अथ कोषविधिः । नारदः 'पूर्वाह्णे सोपवासस्य स्नातस्यार्द्र-
पटस्य च । संसूचकस्याव्यसनिनः कोषपानं विधीयते । इच्छतः
अह्वानस्य देवब्राह्मणसन्निधौ । मद्यपस्त्रौव्यसनिनां किराता-
नान्तथैव च । कोषः प्राञ्जेन दातव्यो ये च नास्तिकहस्तयः ।

दिश्वतत्त्वम् ।

६०५

महापराधे निर्धर्मे कृतघ्ने क्लीवकुत्सिते नास्तिकब्राह्मणदासेषु
 कोषपानं विवर्जयेत् । तमाह्वयाभिशस्तन्तु मण्डलाभ्यन्तरे
 स्थितम् । आदित्याभिमुखं कृत्वा पाययेत् प्रसूतित्रयम् ।
 उद्धं यस्य हि सप्ताहाद्देकतन्तु महद्भवेत् । नाभियोज्यः स
 विदुषा कृतकालश्चतिक्रमात् । संसूचक आस्तिक इति
 मिताक्षरा । महापराधौ महापातकौ निर्धर्मौ वर्णाश्रम-
 रहितः कुक्षितः प्रतिलोमजः । दासः कैवर्त्तः । मण्डला-
 भ्यन्तरे गोमयकृतमण्डलाभ्यन्तरे वैकृतं रोगादिमहन्नात्यं
 तस्य देहिनामपरिहार्यत्वात् । तदाह कात्यायनः । 'अथ
 देवविसंवादे द्विसप्ताहन्तु दापयेत् । अभियुक्तं प्रयत्नेन
 तदर्थं दण्डमिव च । तस्यैकस्य न सर्वस्य जनस्य यदि तद्भवेत् ।
 रोगोऽग्निर्ज्ञातिमरणमृणं दाप्योदमञ्च सः । ज्वरातिसार-
 विस्फोटगूढास्थिरिपोडनम् । नेत्ररुक् गलरोगश्च तथोन्मादः
 प्रजायते । शिरोरुग्भुजभङ्गश्च दैविका व्याधयो नृणाम् गलरोग
 इत्यत्र शूलरोग इति क्वचित् पाठः द्विसप्ताहन्तु महाभियोग-
 भवविषयं महाभियोगेष्वेतानीति प्रस्तुत्य चतुर्दशकादङ्ग इति
 याज्ञवल्कराभिधानात् मिताक्षराप्येवम् । यत्तु 'त्रिरात्रात्
 सप्तरात्राद्वा द्वादशाहात् द्विसप्तकात् । वैकृतं यस्य दृश्येत
 पापकृत् स उदाहृतः' । इति पितामहोक्तं तन्महाभियोगात्
 कृतस्त्रद्रव्यादर्वाचीनं द्रव्यं त्रिधा विभज्य त्रिरात्रादिपक्षत्रयं
 व्यवस्थापनोपमिति मिताक्षरा । तथा 'भक्तौ यो यस्य देवस्य
 पाययेत्तस्य तज्जलम् । समभावे तु देवानामादित्यस्य तु
 पाययेत् । दुर्गायाः पाययेच्चौरान् ये च शस्त्रोपजीविनः ।
 भास्करस्य तु यत्तोयं ब्राह्मणं तन्न पाययेत् । दुर्गायाः स्नाप-
 येच्छूलमादित्यस्य मण्डलम् । अन्येषामपि देवानां स्नापये-
 दायुधानि च । अत्र सत्पापराधे देवानां स्नापयित्वायुधो-

६०६

दिश्यतत्त्वम् ।

दकम् । पाथ्यो विकारे चाशुद्धो नियम्यः शुचिरन्यथा' । इति कात्यायनोक्तविशेषान्महापराधे देवस्नानोदकमिति विषय-
भेदः । रत्नाकरोऽप्येवम् । मण्डलं व्योमेति व्यवहारदोषिका
तस्यां विष्णुः 'उग्रान् देवान् समभ्यर्च्य तत् स्नानोदकप्रसूति-
त्रयं पिबेत् । इदं मया न कृतमिति व्याहरन् देवतामुखः'
इति । एतदनुसारा देवान्यत्र प्रतिज्ञा प्रागुक्ता । तत्र क्रमः ।
प्राङ्निवाको गोमयकृतमण्डलाभ्यन्तरे धर्मावाहनादि सर्वदेव-
तापूजां हवनान्तां निर्वर्त्य दक्षिणां दत्त्वा समन्त्रकं प्रतिज्ञा-
पत्रं शोध्य शिरसि निधाय यथाविहितदेवं संपूज्य तत्
स्नानोदकमानीय ओं 'तोय त्वं प्राणिनां प्राणः सृष्टेराद्यन्तु
निर्मितम् । शुद्धेश्च कारणं प्रोक्तं द्रव्याणां देहिनान्तथा ।
अतस्त्वं दर्शयात्मानं शुभाशुभपरौक्षणे' । इत्याभ्यामभिमन्त्र्य
गोमयकृतमण्डलाभ्यन्तरे स्थितं सोपवासं स्नातार्द्रवासस-
मादित्याभिमुखम् । ओं सत्येन मामभिरक्षस्व वरुणेत्यनेन
शोध्य पठितेनाभिमन्त्रितं प्रसूतित्रयं जलं पाययेत् । ततो
यदि अवधिकालाभ्यन्तरे रोगपौडा न भवति तदा शुद्ध इति
ततो दक्षिणा देया ।

अथ तण्डुलविधिः । पितामहः । 'चौर्यं तु तण्डुला
देया नान्यत्रेति विनिश्चयः । तण्डुलान् कारयेच्छुक्लान् शाले-
र्नान्यन्य कस्यचित् । सृग्मये भाजने कृत्वा आदित्यस्याग्रतः
शुचिः । स्नानोदकेन सम्मिश्रान् रात्रौ तत्रैव वासयेत् ।
प्राङ्मुखोपोषितं स्नातं शिरोरोपितपत्रकम् । तण्डुलान्
भक्षयित्वा तु पत्रे निष्ठौवयेत्त्रिधा । भूर्जस्यैव तु नान्यस्य
अभावे पिप्पलस्य तु । शोणितं दृश्यते यस्य हनुस्तालु च
शौर्यते । गात्रञ्च कम्पते यस्य तमशुद्धं विनिर्दिशेत्' । स्नानो-
दकेन देवतास्नानोदकेन । तथाच कात्यायनः । देवतास्नान-

दिव्यतत्त्वम् ।

६०७

पानीयस्निग्धतण्डुलभक्षणे । शुद्धनिष्ठौवनात् शुद्धो नियम्यो-
ऽशुचिरन्यथा' । शिरोरोपितपत्रकं तण्डुलान् भक्षयित्वा
निष्ठौवयेत् । प्राङ्निवाक इति निष्ठौवयेदिति स्थानात्
सिद्धं तुलानिरूपितं सर्वदिव्यसाधारणञ्च धर्मावाहनादिहव-
नान्तं पूर्ववदिहापि कर्त्तव्यम् ।

अथ तप्तमाषकविधिः । पितामहः 'कारयेदायसं पात्रं
ताम्रं वा षोडशाङ्गुलम् । चतुरङ्गुलखातन्तु मृण्मयं वाथ
मण्डलम्' । मण्डलं सूर्यमण्डलाकारं वर्तुलमिति यावत् ।
'पूरयेद् दृढतैलाभ्यां विंशत्या तु पलैस्तु तत् । सुवर्णमाषकं
तस्मिन् सुतप्ते निक्षिपेत्ततः । अङ्गुष्ठाङ्गुलियोगेन उद्धरेत्तप्त-
माषकम् । कराग्रं यो न धनुयात् विस्फोटो वा न जायते ।
शुद्धो भवति धर्मेण पितामहवचो यथा' । कल्पान्तरमाह
'सौवर्णं राजते ताम्रे आयसे मृण्मयेऽपि वा । गव्यं दृढ-
मुपादाय तदग्नीं तापयेच्छुचिः । सौवर्णं राजतां ताम्रौ-
मायसौञ्च सुशोधिताम् । सलिलेन सकृद्वीतां प्रक्षिपेत्तत्र
मुद्रिकाम् । भ्रमद्वौचितरङ्गाढ्येन नखस्पर्शगोचरे । परीक्षेताद्र-
पर्णेन चुचुकारं सघोषकम् । ततश्चानेन मन्त्रेण सकृत्तदभि-
मन्त्रयेत् । परं पवित्रममृतं दृढत्वं यज्ञकर्मसु । दह
पावक पापं त्वं हिमशीतं शुचौ भव । उपोषितं ततः स्नात-
मार्द्रावाससमागतम् । ग्राहयेन्मुद्रिकां तान्तु दृढमध्यगता-
न्तथा । प्रदेशिनीञ्च तस्याथ परीक्षेयुः परीक्षकाः । यस्य
विस्फोटका न स्युः शुद्धोऽसावन्यथा शुचिः' । प्रयोगस्तु ।
मध्यविधाष्टयवतण्डुलमध्यमिताङ्गुलि षोडशाङ्गुलमित-प्रस्तारे
तथाविधाङ्गुलिचतुष्टयखाते ताम्रादिघटितेऽशक्तौ मृण्मये
वा चक्राकारवर्तुले पात्रे लौकिकाष्टरत्तिकाधिकमाषक-
द्वयाधिकत्रयस्त्रिंशत्तोलक । ३३ । ३८ । रूपवैदिकपलदशक-

६०८

दिव्यतत्त्वम् ।

मितं घृतम् एवं तैलञ्च निक्षिप्य लौकिकचतुरत्तिकाधिक-
पञ्चमाषकषट्षष्टितोलक । ६६ । ५४ । रूपवैदिकविंशतिपल-
परिमितं केवलं गव्यघृतं वा निक्षिप्य तस्मिन् सुतप्ते सकृद्वीतां
पञ्चरत्तिकामितां काञ्चनमुद्रिकां राजतादिकां वा निक्षिपेत् ।
धर्मावाहनादिहवनान्तं तुलोक्तं सदक्षिणं कर्म कृत्वा, ओम्
'परं पवित्रममृतं घृतं त्वं यज्ञकर्मसु । दह पावक पापं त्वं
हिमशीतं शुची भव' । इत्यनेनाभिमन्त्रयेत् । प्राङ्विवाकः
ततः कृतोपवासः स्नातार्द्रवासाः शोध्यशिरसि प्रतिज्ञापत्रं
निधाय, ओम् 'त्वमग्ने सर्वभूतानामन्तश्चरसि पावक ।
साक्षिवत् पुण्यपापेभ्यो ब्रूहि सत्यं करे मम' । इत्यनेनाभि-
मन्त्रार्द्रपत्रनिक्षेपकृतचुचुकशब्दाद् घृतान्मुद्रिकां तर्जन्यङ्गुष्ठा-
भ्यामुत्तोलयेत् घृततैलाभ्यां वा तप्तमाषकमुत्तोलयेत् अदग्ध-
श्चेत्तदा शुद्ध इति ततो दक्षिणां दद्यात् ।

अथ फालविधिः । वृहस्पतिः 'आयसं द्वादशपलघटितं
फालमुच्यते । अष्टाङ्गुलं भवेद्दौर्घं चतुरङ्गुलविस्तरम् । अग्नि-
वर्णं ततश्चौरो जिह्वया लेहयेत् सकृत् । न दग्धश्चेच्छुद्धि-
मियादन्यथा स तु हीयते' । चौरोऽत्र गोचौरः । 'गोचौरस्य
प्रदातव्यं तप्तफालावलेहनम्' इति स्मृतेरिति मैथिलाः ।
अत्रापि त्वमग्ने इत्यादि मन्त्रानन्तरम् । 'आयसं लेलिहानस्य
जिह्वयापि समादिशेत्' । इति पितामहोक्तेः प्राङ्विवाक-
शोध्याभ्यामग्न्यभिमन्त्रणं कार्यम् । अत्र प्रयोगः । लौकिक-
चत्वारिंशत्तोलकमितं लौहघटितमष्टयवमध्यात्मकाङ्गुलाष्ट-
दौर्घम् । तथाविधचतुरङ्गुलप्रस्तरं फालमग्नौ च ताप-
येत् । तत्र प्राङ्विवाको धर्मावाहनादिहवनान्तं कर्म कृत्वा
दक्षिणां दत्त्वा समन्त्रकं प्रतिज्ञापत्रं शोध्य शिरसि निधाय,
ओम् 'त्वमग्ने वेदाश्चत्वारस्वञ्च यज्ञेषु ह्यसे । त्वं मुखं सर्वः

दिव्यतत्त्वम् ।

६०८

देवानां त्वं सुखं ब्रह्मवादिनाम् । जठरस्थो हि भूतानां ततो
 वेक्ति शुभाशुभम् । पापं पुनासि वै यस्मात् तस्मात् पावक
 उच्यते । पापेषु दर्शयात्मानमर्चिषान् भव पावक । अथवा
 शुद्धभावेन शीतो भव हुताशन । त्वमेव सर्वभूतानामन्त-
 श्वरसि साक्षिवत् । त्वमेव देव जानीषे न विदुर्यानि
 मानवाः । व्यवहाराभिगच्छोऽयं मानुषः शुद्धिमिच्छति ।
 तदेनं संशयादस्माद्धर्मतस्मात्तुमर्हसि' । इत्येतैः फालस्थमग्नि-
 मभिमन्त्रयेत् । शोध्यस्तु 'त्वमग्ने सर्वभूतानामन्तश्चरसि
 पावक । साक्षिवत् पृथ्वपापेभ्यो ब्रूहि सत्यं करे मम' ।
 इत्यनेनाभिमन्त्राग्निवर्णं फालं जिह्वया सक्तत् लिङ्घ्यात् ।
 न दग्धयेत् शुद्धः ।

अथ धर्मराजविधिः । ब्रह्मस्थितिः । 'पत्रद्वये लेखनीयौ
 धर्माधर्मौ सितासितौ । जीवदानादिकैर्मन्त्रैर्गायत्राद्यैश्च
 सामभिः । आमन्त्र्य पूजयेद्वन्द्वैः कुसुमैश्च सितासितैः ।
 अभ्युक्ष्य पञ्चगव्येन मृत्पिण्डान्तरितौ ततः । समौ कृत्वा नवे
 कुम्भे स्थाप्यौ चानुपलक्षितौ । ततः कुम्भात् पिण्डमेकं गृह्णी-
 यादविलम्बितः । धर्मे गृहीते शुद्धः स्यात् संपूज्यश्च परी-
 क्षकैः' । जीवदानमन्त्रस्तु शारदायां 'पाशाङ्कुशपुटाशक्ति-
 र्वायुविन्दुविभूषितायाद्याः सप्तसकारान्ता व्योमसत्येन्दुसंयु-
 तम् । तदन्ते हंसमन्त्रः स्यात् ततोऽमुष्यपदं वदेत् । प्राणा
 इति वदेत् पश्चादिह प्राणास्ततः परम् । अमुष्य जीव इह
 स्थितस्ततोऽमुष्यपदं वदेत् । सर्वेन्द्रियाण्यमुष्यान्ते वाङ्मन-
 सश्चक्षुरन्ततः । ओत्रघ्राणपदे प्राणा इहागत्य सुखं चिरम् ।
 तिष्ठन्त्वग्निबधूरन्ते प्राणमन्त्रोऽयमौरितः । प्रत्यमुष्यपदात्
 पूर्वं पाशाद्यानि प्रयोजयेत् । प्रयोगेषु समाख्यातः प्राणमन्त्रो
 मनोषिभिः' । पाशाङ्कुशपुटाशक्तिरित्यनेन प्रथमं पाश-

६१०

दिध्यतस्वम् ।

वीजम् । आं ततः शक्तिवीजं क्लीं ततो अङ्कुशवीजं क्लीं वायु-
 र्यकारो विन्दुविभूषितः तेन रं याद्याः सप्तसकारान्ता उद्धृत
 यकारमादाय सप्त अङ्कुशवायुनलावनिवरणवीजानीत्यु-
 त्थोक्तेः । अत्र वायोरेकस्य पूर्वं पृथगुपन्यासः सप्तानां सेविन्दु-
 त्वार्थः अतएव अन्यत्र वीजानीत्युक्तम् । व्योमसत्येन्दुभूषितं
 व्योमहकारः इन्दुर्विन्दुः तेनाहोम् अमुष्य इति षष्ठ्यन्त-
 देवतानामोपलक्षणम् । ‘अदःपदं हि यद्रूपं यत्र मन्त्रे प्रष्टु-
 श्यते । साध्याभिधानं तद्रूपं तत्र स्थाने नियोजयेत्’ । इति
 नारायणीयात् । अग्निवधूः स्वाहा गायत्र्यादिसामाजानि
 तु सप्रणवव्याहृतिगायत्रीमात्रं पठितव्यम् । ‘जपहोमादि
 यत्किञ्चित् कृतस्मोक्तं सम्भवेन्न चेत् । तत्सर्वं व्याहृतिभिः
 कुर्यात् गायत्र्या प्रणवेन च । इति मिताक्षराष्टतषष्ट्रिंश-
 शतवचनदर्शनादत्रापि तथा कल्प्यते पितामहः ‘अधुना
 संप्रवक्ष्यामि धर्माधर्मपरीक्षणम् । हन्तृणां याचमानानां
 प्रायश्चित्तार्थिनां नृणाम् । राजतं कारयेद्धर्ममधर्मं सीसकाय-
 सम् । लिखेद्भूर्जे पटे वापि धर्माधर्मौ सितासितौ ।
 अभ्युक्ष्य पञ्चगव्येन गन्धमाल्यैः समर्चयेत् । सितपुष्पस्तु
 धर्मः स्वात् अधर्मोऽसितपुष्पकः । एवंविधायोपलिख्य पिण्ड-
 योस्तौ निधापयेत् । गोमयेन मृदा वापि पिण्डी कार्या
 समौ ततः । मृङ्गाण्डकेऽनुपहते स्थाप्यौ चानुपलक्षितौ ।
 उपलिप्ते शुची देशे देवब्राह्मणसन्निधौ । आवाहयेत्ततो
 देवान् लोकपालांश्च पूर्ववत् । धर्मावाहनपूर्वन्तु प्रतिज्ञा-
 पत्रकं लिखेत् । यदि पापविशुक्तोऽहं धर्मस्त्रायाच्च मे
 करम् । अभियुक्तस्तयोश्चैकं प्रगृह्णीताविलम्बितः । धर्मे
 गृहीते शुद्धः स्वादधर्मे स तु हीयते । एवं समासतः प्रोक्तं
 धर्माधर्मपरीक्षणम्’ । हन्तृणामिति साहस्यभियोगेषु याच-

दिश्यतस्त्वम् ।

६११

मानानामिति अत्यन्तार्थाभियोगेषु प्रायश्चित्तार्थिनामिति पातकाभियोगेषु ।

तत्र प्रयोगः । पत्रद्वये शुक्लं धर्मं कृष्णमधर्मं पुत्तलक-
द्वयरूपं निधाय । ओम् आं ह्रीं क्रीं यं रं लं वं शं षं सं ह्रीं हं
सः धर्मस्य प्राणा इह प्राणाः पुनः आमित्यादिधर्मस्य जीव इह
स्थितः पुनः आमित्यादिधर्मस्य वाङ्मनश्चक्षुःश्रोत्रघ्राणप्राणा
इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहेत्यनेन जीवदानं धर्मप्रति-
मायाम् । एवमधर्मप्रतिमायां कृत्वा गायत्र्यादिसामज्ञाने
तेनैव नो चेत् सप्रणवव्याहृतिगायत्रीं पठित्वा धर्मस्यावाह-
नादि कृत्वा यथाक्रमं शुक्लकृष्णपुष्पाभ्यां धर्माधर्मौ संपूज्य
प्रणवेन पञ्चगव्यमुपादायाभ्युक्ष्य शुक्लपुष्पयुक्तं धर्मं कृष्णपुष्प-
युक्तमधर्मं मृत्पिण्डद्वये कृत्वा नवे कुम्भे स्थापयेत् । प्राङ्-
विवाकस्ततो देवब्राह्मणसन्निधौ धर्मावाहनादिहवनान्तं
कर्म कृत्वा दक्षिणां दत्त्वा समन्वकप्रतिज्ञापत्रं लिखित्वा
शोध्दशिरसि दद्यात् शोध्दस्तु । ओम् 'यदि पापवियुक्तोऽहं
धर्मस्त्रायाञ्च मे करम्' इत्युच्चार्य कुम्भात्तयोरेकं गृह्णीयात्
धर्मं गृहीते शुद्ध इति अन्यथा त्वशुद्ध इति ।

अथ शपथविधिः । मनुः 'सत्येन शापयेद्दिप्रं क्षत्रियं
वाहनायुधैः । गोवीजकाञ्चनैर्वैश्यं शूद्रं सर्वैस्तु पातकैः ।
पुत्रदारस्य वाप्येनं शिरांसि स्पर्शयेत् पृथक्' । मयैतत् कृतं
न कृतं वा सत्यमित्युच्चारणे ब्राह्मणं शापयेत् । सम्भाव्यमान-
ञ्चालीकव्यलीकत्वं तदुक्तस्यालीकत्वं मिथ्यात्वं निवेशयेत् ।
उक्तमिदं सत्यमिव गमयेदित्यर्थः । तदवगमप्रकारमाह
कात्यायनः । 'आचतुर्दशकादङ्गो यस्य नोराजदैविकम् । व्यसनं
जायते घोरं स ज्ञेयः शपथे शुचिः' । व्यसनम् आपद् घोर-
मिति षोडाशकम् । अल्पस्य शरीरधर्मत्वात् । तच्च प्रागुक्त-

६१२

दिव्यतत्त्वम् ।

रोगादि एवं मयैतत् कृतं न कृतं वा इति प्रतिज्ञामुच्चारयन्तं वाहनस्पर्शनेन एवमायुधेनापि क्षत्रियम् एवं गोवीजकाञ्चनानामन्यतमेन वेश्यं शूद्रं सर्वैः पातकैरिति वृथाकरणे पातकहेतुत्वात् पातकैः प्रकृतैः गोवीजकाञ्चनैः सर्वैर्मिलितैस्तेन मयैतत् कृतं न कृतं वेति प्रतिज्ञामुच्चारयन्तं गोवीजकाञ्चनत्रितयस्पर्शनेन शूद्रमिति । एतेषां स्पर्शने किं मानमिति चेत् । 'पुत्रदारस्य वाप्येनं शिरांसि स्पर्शयेत् पृथक्' । इति मनुवचनान्तरे तथा दर्शनात् एनं शपथकारिणं ततश्च मयैतत् कृतं न कृतं वेति प्रतिज्ञामुच्चारयन्तं पुत्रस्य दाराणां वा शिरः स्पर्शयेत् । एवं वक्ष्यमाणस्पर्शेऽपि कल्पं स्पर्शनन्तु दक्षिणकरेण । 'यत्रोपदिश्यते कर्म कर्तुरङ्गं न तूच्यते । दक्षिणस्तत्र विज्ञेयः कर्मणां पारगः करः' इति कात्यायनोक्तेः । अतएव विष्णुना दूर्वाकराद्यभिहितम् । यथा 'सर्वेष्वर्थविवादेषु मूल्यं स्वर्णं प्रकल्पयेत्' । तत्र कृष्णलोने शूद्रं दूर्वाकरं शापयेत् । द्विकृष्णलोने तिलकरं त्रिकृष्णलोने जलकरं चतुःकृष्णलोने सुवर्णकरं पञ्चकृष्णलोने सीतोद्भूतमह्वीकरम् । सुवर्णाङ्गेने कोषो देयः शूद्रस्य यथाविहिता समयक्रिया । तथा 'द्विगुणेऽर्थे वैश्यस्य त्रिगुणेऽर्थे राजन्यस्य चतुर्गुणेऽर्थे ब्राह्मणस्य' इति । कृष्णलोने काञ्चनरत्तिका-मूल्यद्रव्यादूने एवमन्यत्र वृहस्पतिः 'सत्यं वाहनशस्त्राणि गोवीजकनकानि च । देवब्राह्मणपादांश्च पुत्रदारशिरांसि च । इत्येते शपथाः प्रोक्ताः स्वल्पेऽर्थे सुकराः सदा । साहसेष्वभियोगेषु दिव्यान्याहुर्विशोधनम्' । स्वल्पेऽर्थे धर्मलेख्यविषयादल्पविषय इत्यर्थः । अत्र शपथानां दिव्याङ्गेदेनोपन्यासाद्वटादिमध्येऽगणितत्वाच्च न दिव्यत्वम् अतोऽत्र दिव्यधर्माणामुपवासाद्र्वासस्त्वादीनां नातिदेशः । शौचार्थन्तु

मठप्रतिष्ठादितत्त्वम् ।

६१३

ज्ञानाचमनादीनामादरः कर्त्तव्यः । यमः 'कृत्वा मृषा तु शपथं कौटस्य बधसंयुतम् । अनृतेन च युज्येत बधेन च तथा नरः । तस्मान्न शपथं कुर्यात् नरो मिथ्या बधेप्सितम्' । कौटस्वेति प्राणिमात्रोपलक्षणं तेन प्राणिनोऽत्यन्तानुपयुक्तस्यापि बधसंयुक्तः शपथोऽनर्थहेतुस्तद्वधपापेन मृषा शपथकर्त्ता युज्येत इत्यर्थः ।

इति वन्द्यघटीय श्रीहरिहरभट्टाचार्यात्मज
श्रीरघुनन्दनभट्टाचार्यविरचिते स्मृतितत्त्वे
दिव्यतत्त्वं समाप्तम् ।

मठप्रतिष्ठादितत्त्वम् ।

चतुर्वर्गप्रदं विष्णुं नत्वा तत्प्रीतयेऽमितम् ।

तत्त्वं मठप्रतिष्ठादेर्वक्ति श्रीरघुनन्दनः ॥

अथ प्रासादादिकरणम् । तत्र यमः 'कृत्वा देवालयं सर्वं प्रतिष्ठाप्य च देवताम् । विधाय विधिवच्चित्रं तत्सौकं विन्दते ध्रुवम्' । विष्णुः 'यस्य देवस्थायतनं करोति स तत्सौकमाप्नोति' । तत्र केवल देवतायनकरणे तत्सौकगमनदर्शनात् । पूर्ववचने प्रत्येकं फलमिति । कल्पतरुभविष्यपुराणम् । 'स्नाने महति वा वित्तं फलमाख्यदरिद्रयोः । मृण्मयात् कोटिगुणितं फलं स्नाहारुभिः कृते । कोटिकोटिगुणं पुण्यं फलं स्नादिष्टकामये । द्विपराङ्गुणं पुण्यं शैलजे तु विदुर्बुधाः । मृच्छैलयोः समं ज्ञेयं पुण्यमाख्यदरिद्रयोः' । देवगृहकरणार्थभूमिदानफलमाह चित्रगुप्तः 'दत्त्वा च देव-

६१४

मठप्रतिष्ठादितत्त्वम् ।

वैश्वार्थं तस्य देवस्य सोऽश्रुते । यस्तत्र विद्यते नित्यं लोकं
 द्विजवराभ्रुवम् । यो देवस्तत्कृतवैश्वर्यं स्थास्यति तद्देव-
 लोकं तद्गृहभूमिदाता प्राप्नोति । विष्णुः 'कूपारामतडागेषु
 देवतायतनेषु च । पुनः संस्कारकर्त्ता च लभते मौलिकं
 फलं' ज्योतिषे 'गुरोर्भृगोरस्तबाल्ये वार्द्धके सिंहगे गुरौ ।
 वक्रिजीवाष्टविंशेऽङ्गि गुर्वादित्ये दशाह्निके । पूर्वराशावना-
 यातातिचारिगुरुवत्सरे । प्राग्राशि गन्तृजौवस्य चातिचारि
 त्रिपक्षके । कम्पाद्यद्भुतसप्ताहे नीचस्थेज्ये मलिन्नुचे । भानु-
 लङ्घितके भासि क्षये राहुयुते गुरौ । पौषादिकचतुर्मासि
 चरणाङ्कितवर्षणे । एकेनाङ्का चैकदिनं द्वितीयेन दिनत्रयम् ।
 तृतीयेन तु सप्ताहे माङ्गल्यानि जिजीविषुः । विद्यारम्भकर्ण-
 वेधौ चूड़ोपनयनोदहान् । तीर्थस्नानमनाहुतं तथानादि-
 सुरेक्षणम् । परीक्षारामयज्ञांश्च पुरश्चरणदक्षिणे । व्रता-
 रम्भप्रतिष्ठे च गृहारम्भप्रवेशने । प्रतिष्ठारम्भे देवकूपादेः परि-
 वर्जने । द्वात्रिंशद्विंशसाक्षास्ते जीवस्य भार्गवस्य च । द्वासप्तति-
 र्महत्स्यस्ते पादास्ते द्वादशक्रमात् । अस्तात् प्राक् परयोः
 पक्षं गुरोर्वार्द्धिकबालते । पक्षं वृद्धो महास्ते तु भृगोर्बालो
 दशाह्निकः । पादास्ते तु दशाह्नानि वृद्धो बालो दिनत्रयम् ।
 देवीपुराणे 'यथा जीवे स्थिते सिंहे तथैव मकरे स्थिते । देवा-
 रामतडागादिपुरोद्यानगृहाणि च । विवाहादि महाभाग
 भयदानानि निर्दिशेत्' । ज्योतिः कीमुद्यां 'गण्डक्या उत्तरे
 तीरे गिरिराजस्य दक्षिणे । सिंहस्थं मकरस्थञ्च गुरुं यत्नेन
 वर्जयेत्' । भुजबलभीमे 'युगादावयने पुण्ये कार्तिक्यां विषुव-
 द्ये । चन्द्रसूर्यग्रहे वापि दिने पुण्येऽथ पर्वसु । या तिथि-
 र्यस्य देवस्य तस्या वा तस्य कीर्त्तिता । गृह्यागमविशेषेण
 प्रतिष्ठा मुक्तिदायिनी' । कल्पतरौ देवीपुराणम् । 'यस्य

मठप्रतिष्ठादितत्त्वम् ।

६१५

देवस्य यः कालः प्रतिष्ठा ध्वजरोपणे । गत्तापूरशिलान्यासे
 शुभदस्तस्य पूजितः । यस्य देवस्य प्रतिष्ठाध्वजरोपणे यः
 कालः शुभदस्तस्य गत्तापूरशिलान्यासे गृहहारभे स कालः
 पूजित इत्यर्थः । प्रतिष्ठाकालश्च मास्ये 'चैत्रे वा फाल्गुने
 वापि ज्येष्ठे वा माघेऽपि वा । माघे वा सर्वदेवानां प्रतिष्ठा
 शुभदा भवेत् । प्राच्य पक्षं शुभं शुक्लमतीते चोत्तरायणे ।
 पञ्चमी च द्वितीया च तृतीया सप्तमी तथा । दशमी
 षोडशमासी च तथा श्रेष्ठा त्रयोदशी । तासु प्रतिष्ठा विधि-
 वत् कृता बहुफला भवेत् । अतीते प्राप्ते गत्यर्थस्य प्राप्त्यर्थ-
 त्वात् उत्तरायण इत्यभिधानादाषाढेऽपि । तथाच प्रतिष्ठा-
 समुच्चये 'माघेऽथ फाल्गुने वापि चैत्रवैशाखयोरपि । ज्येष्ठा-
 षाढकयोर्वापि प्रतिष्ठा शुभदा भवेत्' । तथाच माघादावेव
 देवतानां गृहहारभप्रवेशो दीपिकायाम् । 'द्वादशैकादशी
 राका शुक्ले कृष्णे च पञ्चमी । अष्टमी च विशेषेण प्रतिष्ठायां
 हरेः शुभा' । एवं दुर्गाया दक्षिणायनेऽपि । तथाच देवी-
 पुराणम् । 'महिषासुरहन्त्राश्च प्रतिष्ठा दक्षिणायने' । मास्ये
 'आदित्य भौमवर्जन्तु सर्वे वाराः शुभावहाः । प्रासादेऽप्येवमेव
 स्यात् कूपवापीषु चैव हि । अश्विनो रेवती मूलसुत्तरत्रय-
 मेन्दवम् । स्वातिहस्तानुराधा च गृहहारभे प्रशस्यते । वज्र-
 व्याघातशूले च व्यतीपातातिगण्डयोः । विष्कम्भगण्डपरिघ-
 वर्जं योगेषु कारयेत् । चन्द्रादित्यबलं लब्ध्वा लग्नं शुभनिरी-
 क्षितम् । स्तम्भोच्छ्रयादिकर्त्तव्यमन्यत्र परिवर्जयेत्' । ऐन्दवं
 मृगशिरः गृहहारभे उक्तकालः प्रवेशकालः । यथा ज्योतिषे ।
 'उग्रं विशाखामदितिश्च शक्रं भुजङ्गमग्निश्च विहाय गेहम् ।
 ग्राम्यस्तलमन्स्थिरमन्दिरेषु कुर्यात् सोम्यग्रहैर्युक्तनिरीक्षितेषु ।
 ज्येष्ठादितिभ्यां संयुक्तं गृहहारभोदितश्च यत् । तत्सर्वं योज-

६१६

मठप्रतिष्ठादितत्त्वम् ।

येद्देशम् प्रवेशे दैवचिन्तकः' । उग्रगणः पूर्वाग्रयमघाभरणः ।
 अदितिः पुनर्वसुः शक्रो ज्येष्ठा भुजङ्गोऽश्लेषा अग्निः कृत्तिका ।
 ग्राम्याणि मिथुनकन्यातुलाधनुः कुम्भलग्नानि स्वलग्नं स्वजन्म-
 लग्नं स्थिराणि वृषसिंहवृश्चिककुम्भलग्नानि कृत्यचिन्तामणी
 योगीश्वरः 'गृहे स्वे यो विधिः प्रोक्तो विनिवेशप्रवेशयोः । स
 एव विदुषा कार्यो देवतायतनेष्वपि' । स्वे स्वकीये विनिवेशः
 करणम् उत्सर्गानन्तरप्रवेशाचरणादुत्सर्गस्यापि स एव कालः
 स्वयमशक्तौ मठारम्भप्रतिष्ठादीनि काम्यान्यपि स्मार्त्तत्वात् प्रति-
 निधिना कर्त्तव्यानि तथाच अधिकरणमालाकृन्नाधवाचार्य-
 कृतपराशरभाष्ये शातातपः 'श्रौतं कर्म स्वयं कुर्यादन्योऽपि
 स्मार्त्तमाचरेत् । अशक्तौ श्रौतमप्यन्यः कुर्यादाचारमन्ततः' ।
 एतद्वचनं काम्ये प्रतिनिधिविधायकं नित्यनैमित्तिकमात्रपरत्वे
 श्रौतस्मार्त्तभेदेनोपादानं व्यर्थं स्यात् तयोरविशेषादेव प्रति-
 निधिलाभात् । अन्ततः उपक्रमात् परतः । 'काम्ये प्रतिनिधि-
 नास्ति नित्यनैमित्तिके हि 'सः । काम्येषूपक्रमादूर्ध्वं केचि-
 दिच्छन्ति सत्तमाः' । इत्येकवाक्यत्वात् । ततः स्मार्त्तं काम्यं
 प्रतिनिधिनाप्यारभ्यते न तु श्रौतमिति स्थितम् । एवञ्च वैदि-
 केतरमन्त्रपाठे शूद्रादेरप्यधिकारः । 'वेदमन्त्रवर्जं शूद्रस्य'
 इति कृन्दोगाङ्गिकाचारचिन्तामणिधृतस्मृतौ वेदेतिविशेषणात्
 पञ्चयज्ञादी तु 'नमस्कारेण मन्त्रेण पञ्चयज्ञान्न हापयेत्' । इति
 आपस्तम्बादिविशेषविधिना नमस्कारमन्त्रविधानात् । तत्र
 वैदिकोऽपि निषिद्धः । कर्मादौ नवग्रहपूजामाह मत्स्यपुराणम् ।
 'नवग्रहमखं कृत्वा ततः कर्म समारभेत् । अन्यथा फलदं पुंसां
 न काम्यं जायते क्वचित्' । गोभिलपुत्रकृतगृह्यासंग्रहपरिशिष्टे ।
 'द्युते च व्यवहारे च प्रव्रते यज्ञकर्मणि । यानि पश्यन्त्युदा-
 सीनाः कर्त्ता तानि न पश्यति । एकः कर्म नियुक्तश्च द्वितीय-

मठप्रतिष्ठादितत्त्वम् ।

६१७

स्तन्त्रधारकः । तृतीयः प्रश्नं प्रब्रूयात्ततः कर्म समारभेत् । प्रव्रते प्रकृष्टव्रते । पूर्वोक्तहेतौ द्वितीयवचनात् कर्मनियुक्तो-
 होतैवाचार्यः स्वयं होतृपक्षे ब्रह्माचार्यः अन्यहोतृपक्षे सोऽप्य-
 धिक आचार्यः । तन्त्रधारकः पुस्तकवाचक आचार्यः प्रश्न-
 वक्ता सदस्यः । महाकपिलपञ्चरात्रं 'जलाधारगृहार्थञ्च यजे-
 द्वास्तु' विशेषतः । ब्रह्माद्यदितिपर्यन्ताः पञ्चाशत्त्रयसंयुताः ।
 सर्वेषां किल वास्तूनां नायकाः परिकीर्तिताः । असंपूज्य हि
 तान् सर्वान् प्रासादादौन्न कारयेत् । अनिष्ट्यतिर्विनाशः
 स्यादुभयोर्धर्मधर्मिणोः' । धर्मधर्मिणोस्तडागादितत्त्वर्त्तः ।
 वास्तुयागविधानन्तु वास्तुयागतत्त्वेऽनुसन्धेयम् । अशक्नो गृहा-
 रम्भदिने अशक्नो प्रवेशदिनेऽपि कर्त्तव्यतामाह मात्स्ये
 'प्रासाद भवनादौनां प्रारम्भपरिवर्त्तने । पुरवेश्म प्रवेशेषु सर्व-
 दोषापनुत्तये । इति वास्तूपशमनं कृत्वा सूत्रेण वष्टयेत् ।
 वास्तुपूजामकुर्वाणस्तवाहारो भविष्यति' । तव वास्तुनाम्नो
 राक्षसस्य । मत्स्यपुराणे 'घण्टावितानकतीरणचित्रयुक्तं नित्यो-
 त्सवप्रमुदितेन जनेन सार्द्धम् । यः कारयेत् सुरगृहं विधि-
 वद्भजाङ्गम् । श्रीस्तु न मुञ्चति सदा दिवि पूज्यते च' ।
 तीरणमाह देवीपुराणं 'प्लात्तं द्वारं भवेत् पूर्वं याम्ये चौडुस्वरं
 भवेत् । पश्चादश्वत्थघटितं नैयग्रोधं तथोत्तरे । भूमौ हस्तं
 प्रमाणानि चतुर्हस्तानि चोच्छ्रये' शारदायां 'तिर्थक्फलक-
 मानं स्यात् स्तम्भानामूङ्मानतः' । तिर्थक्फलकमुच्छ्रित-
 स्तम्भद्वयोपरि विस्तृतैककाष्ठं सिद्धान्तशेखरे । 'एवमेषामलाम्भे
 स्यात् तदलाम्भे शमौद्रुमः' । ध्वजयष्ट्यादिमानमाह हयशीर्षे
 'ध्वजवंशः प्रकर्त्तव्यो निर्घृणः शोभनो दृढः । तदूङ्' ताम्रजं
 चक्रं सूक्ष्मं कुर्यात् द्विजोत्तमः । प्रासादस्य च विस्तारे
 मानं दण्डस्य कौर्त्तितम् । ध्वजयष्टिर्देवगृहे ऐशान्यां दिशि

६१८

मठप्रतिष्ठादितत्त्वम् ।

देशिकैः । स्थापनीयोऽथ वायव्यां साम्प्रतं ध्वजमुच्यते । पट्ट-
कर्पासक्षौमाद्यैर्ध्वजं कुर्यात् सुशोभनम् । एकवर्णं द्विवर्णं
वा घण्टाचामरभूषितम् । किङ्किणीजालकोपेतं वर्हिपत्र-
विभूषितम् । दण्डाग्राद्वरणीं यावत् हस्तैकं विस्तरेण तु ।
महाध्वजन्तु विख्यातं सर्वकामप्रदं शुभम् । ध्वजेन रहितो
यस्तु प्रासादश्च हृथा भवेत् । पूजाहोमादिकं सर्वं जपाद्यं
यत् कृतं नरैः । शिवसर्वस्वे देवेभ्यश्च ध्वजं दद्यात् वाहनै-
रुपशोभितम् । तुरङ्गमेण सूर्यस्य हरस्य वृषचिह्नितम् ।
विष्णवे गरुडाङ्गन्तु दुर्गायै सिंहचिह्नितम् । कार्यं ध्वजं
पताकाद्यम् अन्यथा न कथञ्चन । नारदपञ्चरात्रे । 'उपेन्द्र-
स्याग्रतः पक्षी लम्गाधीशः कृताञ्जलिः । सव्यजानुगतो भूमौ
मूर्द्धाधोमण्डिमण्डितम् । पक्षिजङ्घो नराद्विष्य तुङ्गनाथो नरा-
ङ्गकः । द्वित्राहुः पक्षयुक्तश्च कर्त्तव्यो विनतायुतः' । विष्णु-
धर्मोत्तरे 'प्रतिपाद्य तथा भक्त्या ध्वजं त्रिदशवेश्मनि । निद-
र्हत्याहु पापानि महापातकजान्यपि' ।

अथ तत्प्रतिष्ठाप्रमाणम् । हयग्रीर्षे श्रीभगवानुवाच ।
'गोपथारामसेतूनां मठसंक्रमवेश्मनाम् । नियमव्रतकच्छाणां
प्रतिष्ठां शृणु सत्तम । ब्राह्मेण विधिना वर्द्धि समाधाय विच-
क्षणः । शिलां पूर्णघटं कांस्यं सभारं स्थापयेत्ततः । ब्राह्मणः
सर्वमाहृत्य अपयेद् यवमयं चरुम् । क्षीरेण कपिलायास्तु
तद्विष्णोरिति साधकः । प्रणवेनाभिघार्थ्याथ द्रव्यां संघट्टये-
त्ततः । साधयित्वावतार्याथ तद्विष्णोरिति होमयेत् । व्याहृत्या
चैव गायत्र्या तद्विप्रा सेति होमयेत् । विश्वतश्चक्षुरित्युक्ता
वेदाद्यैर्होमयेत्तथा । सोमं राजानमिति च जुहुयात्तदनन्त-
रम् । दिक्पालेभ्यः स्वस्वमन्त्रैर्ग्रहेभ्यश्चैव होमयेत्' । ओम्
अग्नये स्वाहा ओम् सूर्याय स्वाहा ओम् प्रजापतये स्वाहा

मठप्रतिष्ठादितत्त्वम् ।

६१८

ओम् अन्तरीक्षाय स्वाहा ओम् द्यौ स्वाहा ओम् ब्रह्मणे स्वाहा
 ओम् पृथिव्यै स्वाहा ओम् महाराजाय स्वाहा 'एवं हुत्वा चरो-
 र्भागान् दद्यात् दशदिशां बलिम् । ततः पलाशसमिधा
 हुनेदष्टोत्तरं शतम् । आज्येन जुहुयात् पश्चादेभिर्मन्त्रैर्द्विजो-
 त्तमः' । ततः पुरुषसूक्तस्य मन्त्रैराद्यन्तु होमयेत् । इरा-
 वतीति जुहुयात्तिलान् घृतपरिप्लुतान् । हुत्वा तु ब्रह्म-
 विष्णुश देवानामनुयायिनाम् । ग्रहाणामाहुतौर्हुत्वा लोके-
 शानामथो पुनः । पर्वतानां नदीनाञ्च समुद्राणान्तथैव च ।
 हुत्वा व्याहृतिभिः कुर्यात् सुवा पूर्णाहुतित्रयम् । वौ षडन्तेन
 मन्त्रेण वैष्णवेन सुरोत्तमाः । पञ्चगव्यञ्च संप्राश्य दद्यादाचार्य्य-
 दक्षिणाम् । तिलपात्रं हेमयुक्तं सवस्त्रां गामलङ्कृताम् । प्रीयतां
 भगवान् विष्णुरित्युत्सृज्य धृतव्रतः । आरामं कारयेद् यस्तु
 नन्दने स चिरं वसेत् । मठप्रदानात् स्वर्गलोकमाप्नोति पुरुषः
 सदा । सेतुप्रदानादिन्द्रस्य लोकमाप्नोति मानवः । प्रपा-
 प्रदानादरुणलोकमाप्नोत्यशंसयम् । संक्रमाणान्तु यः कर्त्ता
 स स्वर्गं तरते नरः । स्वर्गलोके च निवसेदिष्टकासेतुकृत् सदा ।
 गोपथस्य तथा कर्त्ता गोलोके निवसेच्चिरम् । नियमव्रत-
 कञ्चापि विष्णुलोकं नरोत्तमम् । कृच्छ्रकृत् सर्वमाप्नोति
 सर्वपापविवर्जितः । अनेन विधिना मर्त्यः संपूर्णं फलमाप्नु-
 यात् । इयं प्रतिष्ठा सामान्या सर्वसाधारणा । 'कर्त्तव्या
 देशिकेन्द्रैस्तु प्रतिष्ठात्रयविव्यते । इति सञ्चेपतः प्रोक्तः समु-
 दाय विधिस्तव । सर्वेषामेव वर्णानां सर्वकामफलप्रदः ।
 सर्वसूक्तेषु कर्त्तव्या प्रतिष्ठा विधिना बुधैः । फलार्थिभिस्त्व-
 प्रतिष्ठं यस्मान्निष्फलमुच्यते । इति वल्लालसेनदेवाहृतद्विखण्डा-
 क्षरलिखितहयशीर्षपञ्चरात्रीयसङ्कर्षणकाण्डे समुदायप्रतिष्ठा-
 पटलः अस्यार्थः ब्राह्मीण वैदिकेन स्वगृह्योक्तेनेति यावत् ।

६९०

मठप्रतिष्ठादितत्त्वम् ।

शिलेति उदूखलोपलक्षणं तण्डुलार्थत्वात् । कांस्यम् अग्नि-
 प्रणयनार्थम् । तथाच गृह्यासंग्रहः । 'शुभं पात्रन्तु कांस्यं
 स्यात्तेनाग्निं प्रणयेद् बुधः । तस्याभावे शरावेण नवेनाभि-
 मुखञ्च तम् । सर्वतः पाणिपादान्तः सर्वतोऽक्षि शिरोमुखः ।
 विश्वरूपो महानग्निः प्रणीतः सर्वकर्मसु' । एवञ्चाग्निप्रण-
 यनानन्तरं सर्वत इत्यस्य पाठो युज्यते । प्रणीत इति मन्त्र-
 लिङ्गात् अन्यथा स्थापनानन्तरमेतद्विधानं व्यर्थं स्यात् ।
 गुणविष्णुनापि श्रुतिरित्युक्त्वा सर्वतः पाणिपादान्त इति
 लिखितम् । अत्र च पाकाङ्गयज्ञत्वात् साहसनामानमग्नि-
 माह गृह्यासंग्रहः । 'प्रायश्चित्ते विधुश्चैव पाकयज्ञे तु साहसः ।
 पूर्णाहुत्यां सृङो नाम शान्तिके वरदस्तथा । आह्वय चैव
 होतव्यं यो यत्र विहितोऽनलः' । प्रायश्चित्ते वैगुण्य-
 समाधानार्थं प्रायश्चित्तात्मकमहाव्याहृतिहोमादौ । तथाच
 कन्दोगपरिशिष्टम् । 'यत्र व्याहृतिभिर्होमः प्रायश्चित्तात्मको
 भवेत् । चतस्रस्तत्र विज्ञेया स्त्रीपाणिग्रहणे तथा । अपि
 वा ज्ञातमित्येषा प्राजापत्यापि वा हुतिः । होतव्या त्रिवि-
 कल्पोऽयं प्रायश्चित्तविधिः स्मृतः' । अत्र त्रिविकल्प इत्यभि-
 धानात् । सामगानां भवदेवभट्टोक्तशाखायनहोमोऽपि निष्प्र-
 माणकः । भट्टनारायणचरणा अप्येवम् । अत्र 'प्रत्येकं
 नियतं कालमात्मनो व्रतमादिशेत् । प्रायश्चित्तमुपासीनो
 वाम्यतस्त्रिसवनं सृशेत्' । इति शङ्खलिखितवचने प्रत्येकं
 नियतं कालमिति । तत्तद् व्रतकालसंख्यामात्मनो व्रतम्
 आत्मसम्बन्धित्वेन आत्मकर्तृत्वेनेति यावत् । तेनामुकपाप-
 क्षयकामोऽमुकव्रतमहं करिष्ये इति चादिशेत् उल्लेखं
 कुर्यादित्यनेन प्रायश्चित्तव्रते सङ्कल्पविधानात् । प्रायश्चित्त-
 होमोऽपि तथा अतएव भवदेवभट्टेनापि लिखितम् । तेन

मठप्रतिष्ठादितत्त्वम् ।

६२१

सर्ववेदिभिः प्रायश्चित्तहोमे संकल्पः कार्यः आह्वयामुक अग्ने
इहागच्छ इत्युच्चार्य । यवमयं चरुमित्यत्र । यवाभावे
व्रीह्यादिभिरपि । न च वृषोत्सर्गे सत्कृत्य व्रीहितण्डुला-
नित्यनेन यवतण्डुलनिरासवत् अत्रापि यवेन व्रीहिनिरासो-
ऽस्त्विति वाच्यम् अत्र गोभिलपरिभाषितत्वेन व्रीहियवयोः
प्राप्तावपि तत्परिशिष्टे पुनर्व्रीह्यभिधानात् यवनिरासोऽस्तु
सिद्धे सत्यारम्भो नियमाय इति न्यायात् । इह तु पञ्चरात्रे
पूर्वं प्राप्यभावेन यवविधानं मुख्यार्थमेव । 'हविष्येषु यवा मुख्या-
स्तदनु व्रीहयो मताः । माषकोद्वगौरादीन् सर्वाभावेऽपि
वर्जयेत् । यथोक्तवस्त्वसम्पत्तौ ग्राह्यं तदनुकारि यत् ।
यवानामिव गोधूमाव्रीहौणामिव शालयः' । इति कन्दोगपरि-
शिष्टात् अतएव प्रतिष्ठाकाण्डकल्पतरावपि तत्तत्द्रव्यविशेष-
मुक्त्वा तत्तदसत्त्वे भविष्यपुराणेन काम्येऽपि प्रतिनिधिरुक्तः ।
यथा 'काञ्चनं हरितालञ्च सर्वाभावे विनक्षिपेत् । दद्याद्द्वौजौ-
षधिस्याने सहदेवां यवानपि' । सहदेवा मेदिन्युक्ता । यथा
'सहदेवा बला दण्डोत्पलयोः साविरोधधौ' । चरुमित्यभिधा-
नात् । हवनीयनिर्वापादिना चरुनिष्पत्तिः कर्त्तव्या तत्र
गोभिलेन अथ हविर्निर्वपति व्रीहौन् यवान् वा चरुस्थाल्या
वा अमुष्मै त्वाजुष्टं निर्वपामि इति देवतानामोद्देशं सकृद्
यजुषा द्विस्तूष्णीमित्यनेन निर्वापमात्राभिधानात् सामगेन
तन्मात्रं कर्त्तव्यम् अत्र च श्रीं विष्णवे त्वाजुष्टं निर्वपामीत्या-
दिना यजुषा यजुः परिभाषामाह जैमिनिः 'शेषे यजुः शब्दः'
इति ऋक्सामभिन्ने मन्त्रजाते ततश्च यन्मन्त्रजातं प्रक्षिप्य पठितं
गानपादविच्छेदरहितं तदयजुरिति । यजुर्वेदिना तु ग्रहण-
निर्वापणप्रोक्षणानि कर्त्तव्यानि । तथाह सांख्यायनः 'स्थाली-
पाकेषु च ग्रहणासादनप्रोक्षितानि मन्त्रदेवताभ्यः' इति ।

६२२

मष्टप्रतिष्ठादितत्त्वम् ।

ऋग्वेदिना तु निर्वापणप्रोक्षणे कर्त्तव्ये तथाश्वलायनः । 'तस्यै
 तस्यै देवतायै चतुरश्वतुरो मुष्टीन् निर्वपतीति' पवित्रेणान्त-
 र्धायामुष्मै त्वाजुष्टं निर्वपामीत्यथेनं प्रोक्षति अमुष्मै त्वाजुष्टं
 प्रोक्षामीति । तत्रे कन्दोगपरिशिष्टं 'देवतासंख्यया ग्राह्य-
 निर्वापांश्च पृथक् पृथक् । तूष्णीं हिरवगृह्णीयात् होमश्चापि
 पृथक् पृथक्' । अत्र देवतासंख्यया पृथक् पृथक् यवादिनि-
 र्वापः अन्ननिर्वापः सर्वदेवनिर्वापान्ते सकृद्धोमश्च पृथक् पृथ-
 गिति । अत्र च आलस्यादिना पुरुषदोषे गृहीततण्डुलेष्वपि
 मन्त्रपूर्वेण निर्वापादिकं समाचरन्ति याज्ञिकाः । 'घाते न्यूने
 तथा छिन्ने मान्नाज्ये मान्निके तथा । यज्ञे मन्त्राः प्रयोक्तव्या
 मन्त्रा यज्ञार्थसाधकाः' । इत्युक्तेः । मान्निके मन्त्रसाध्ये
 घातादौ न्यूने तत्काले मन्त्रपाठाभावेऽपि यज्ञकाले मन्त्राः
 प्रयोक्तव्या इति कपिलाया अमत्त्वेऽन्यधेनोरपि प्रणव-
 सहितेन अभिघार्य्य श्रीं तद्विष्णोरित्यनेन घृतेन सिक्त्वा दर्व्या
 दक्षिणावर्त्तेन संमिश्रयेत् । दर्वीं च प्रादेशप्रमाणा द्वाङ्गुल-
 विस्ताराया 'इधज्जातीयमिधार्द्धेप्रमाणं मेक्षणं भवेत् । वृत्ते
 वार्चश्च पृथ्वग्रमवदानक्रियाक्षमम् । एषैव दर्वी यस्त्वत्र विशेष-
 स्तमहं ब्रूवे । दर्वीं द्वाङ्गुलपृथ्वया तुरीयोऽनन्तु मेक्षणम्' ।
 इति कन्दोगपरिशिष्टात् । अथेत्यनेन स्वगृह्योक्तविशेषकर्म-
 समापनानन्तरं प्रकृतहोमः । अत्र च बहुदैवत्यचरुहोमत्वात्
 उपघातहोमः चरौ तु बहुदैवत्यो होमस्तस्योपघातवदिति
 परिशिष्टप्रकाशधृतवचनात् । उपघातहोमलक्षणमाह गृह्या-
 संग्रहे 'पाणिना मेक्षणेनाथ शुवेणैव तु यद्वविः । ह्रयते चानुप-
 स्तीर्य्य उपघातः स उच्यते । यद्युपघातं जुहुयात् चरावाज्यं
 समावपेत् । मेक्षणेन तु होतव्यं नाज्यभागौ न स्विष्टिक्तत्' ।
 अनुपस्तीर्य्येत्यनेन शुचि यच्चतुरावर्त्ते पञ्चावर्त्तार्थं घृतेनोपस्तर-

मठप्रतिष्ठादितत्त्वम् ।

६२३

णादिकं तदत्र नास्ति तेन केवल मेक्षणादिना सकृत् गृहीत्वा
 होतव्यं प्रकृतहोमात् पूर्वं वज्रिपूजनमाह मार्कण्डेयपुराणं
 'पूजयेच्च ततो वज्रिं दद्याच्चाप्याहुतौः क्रमात्' । तत इति
 वज्रेर्विशेषनामकरणध्यानानन्तरम् । होमानुष्ठाने स्मृतिः
 'मन्त्रेणोङ्कारपूतेन स्वाहान्तेन विचक्षणः । स्वाहावसाने
 जुहुयात् ध्यायन् वै मन्त्रदेवताम् । ततस्तद्विष्णोः परमं पद-
 मित्यनेन चरुणा होमयेत् । एवं व्याहृत्या प्रत्येकम् ओं भूरा-
 दिना गायत्र्या सावित्र्या । ओं तद्विप्रासो विपश्यवो जागृ-
 वांस इत्यादिना ओं विश्वतश्चक्षुरुतविश्वतोमुख इत्यादिना
 वेदाद्यैः अग्निमीले पुरोहितमित्यादिना इषेतोर्जत्वा इत्या-
 दिना अग्न आयाहि वीतये इत्यादिना शन्नो देवीरित्यादिना
 चतुर्भिर्मन्त्रैर्लोकपालेभ्यः स्वस्वमन्त्रैस्तत्तत्वेदोक्तदशदिक्पाल-
 मन्त्रैस्तत्र सामगानाम् इन्द्रस्य त्रातारमिन्द्रमित्यादिना अग्ने-
 रग्निं द्रुतं वृणीमहे इत्यादिना यमस्य नाके सुवर्णमित्यादिना
 निऋतेऽथ वेत्याहि निऋतीनामित्यादिना वरुणस्य घृतवती
 भुवनानामित्यादिना वायोः वात आवातु भेषजमित्यादिना
 सोमस्य ओं सोमं राजानमित्यादिना ईशानस्य अभित्वासुरणो
 नुम इत्यादिना ब्रह्मणो ब्रह्मयज्ञानामित्यादिना अनन्तस्य
 चर्षणीघृतमित्यादिना । तथा च गोभिलीयकर्मप्रदीपे
 'त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रस्य परिकीर्तितः । अग्निं द्रुतं
 वृणीमहे वज्रेर्मन्त्रं यमस्य वै । नाके सुवर्णमुपयत् वेत्याहि
 निऋतेस्तथा । घृतवती वरुणस्य वात आवातु भेषजम् ।
 वायोर्मन्त्रं समुदितं सोमं राजानमित्युच्चा । सोमस्य मन्त्रः
 कथितः अभित्वेतीश उच्यते' । ईश ईशानस्य इह इति इष्ट-
 तस्य । 'ब्रह्मयज्ञानां प्रथमं ब्रह्मणः परिकीर्तितम् । चर्षणी-
 घृतमित्येवं सर्पस्य समुदाहृतम्' । इति । सूर्यादिभ्यः

६२४

मठप्रतिष्ठादितत्त्वम् ।

स्वस्त्रमन्त्रैः सर्ववेदसाधारणा कृष्णेनेत्यादिमत्स्यपुराणोक्त-
 मन्त्रैः अत्र सूर्यस्य आकृष्णेनेत्यादिना । सोमस्य आप्या-
 यस्व समे तु ते इत्यादिना मङ्गलस्य अग्निमूर्द्धा इत्यादिना ।
 बुधस्य अग्ने विवस्व इत्यादिना । बृहस्पते परिदीया रथेन
 इत्यादिना । शुक्रस्य शुक्रन्त इत्यादिना । शनेः शन्नो-
 देवीरित्यादिना राज्ञोः कयानश्चित्र इत्यादिना केतूनां
 केतुं कन्वन्नेत्यादिना । तथाच मत्स्यपुराणम् 'आकृष्णेनेति
 सूर्याय होमः कार्यो द्विजन्मना । आप्यायस्वेति मन्त्रेण
 सोमाय जुहुयात् पुनः । अग्निमूर्द्धादिवो मन्त्रमिति भीमाय
 कौर्त्तयेत् । अग्ने विवस्वदुषस इति सोमसुताय च । बृहस्पते
 परीदीयारथेनेति गुरोर्मतः । शुक्रन्तेऽन्यदिति च शुक्रस्यापि
 निगद्यते । शन्नो देवीरिति पुनः शनैश्चराय होमयेत् ।
 कयानश्चित्र आभुवदूतीराज्ञोरुदाहृतम् । केतुं कन्वन्नेति
 कुर्यात् केतूनामुपशान्तये' एवं चरुहोमं समाप्य चरुशेषेण
 प्राच्यादिदिग्भ्यः पायसबलिं दद्यात् । तद् यथा एष पायस-
 बलिः ओम् प्राच्ये दिशे नमः इत्यादि मन्त्रेण ओम् दक्षिणायै
 दिशे स्वाहा इति श्रुतिदर्शनात् इति हरिहरकृत्यप्रदीपाभ्यां
 दशदिग्भ्यो बलिं दद्यात् वस्तुतस्तु बलिप्रकरण एव प्राच्यूर्द्धा-
 वाचीभ्यो अहरहर्नित्यप्रयोगे नमः इति गोभिलसूत्रे स्त्रीलिङ्ग-
 दर्शनात् दिशां देवतात्वं बली प्रतीयते । अत्रावाचीपाठात्
 श्रुत्युक्तहोमीयदक्षिणायै इत्यनादृत्य ओम् अवाच्यै दिशे नमः
 इति बली प्रयुज्यते एभिर्मन्त्रैः प्रागुक्त तदिष्णोरित्यादि मन्त्रैः ।
 आज्यन्त्विति तु शब्देन समिद्धोमे तेषां व्यावर्त्तनात् मन्त्रा-
 काङ्क्षायां प्राथमिकत्वेन तदिष्णोरित्यस्य परिग्रहः । तत-
 स्तदिष्णोरिति मन्त्रेण स्वाहान्तेन घृताक्तपलाशसमिधमष्टो-
 त्तरशतं जुहुयात् । पूर्वोक्तमन्त्रैः पूर्वोक्तदेवताभ्यः श्रुवेणा-

मठप्रतिष्ठादितत्त्वम् ।

६२५

ज्याहुतीर्जुहुयात् । पुरुषसूक्तस्य तत्तद्देदोक्तस्य तत्र सामगा-
नाम् ओम् इदं विष्णुरिति प्लक्षस्य वृष्णलप्रकाव्यमुषलेव ब्रुवा-
णेति सहस्रशीर्षेति त्रिपादूर्ध्व इति पुरुष एवेदम् इति एता-
वानस्येति । प्रकाव्यमुषलेव ब्रुवाण इति वाराहयन्यमित्यने-
नैको मन्त्रः पुरुष इत्यनेन इति पुरुषपदयुक्ताः पञ्चमन्त्राः
ब्रूत इत्यनेन कयानश्चित् इत्येकः । एतैः सामगो जुहुयात् ।
यजुर्वेदो तु तत्प्रसिद्धाभिः ओम् सहस्रशीर्षेत्यादिषोडशभौ
ऋग्भिः षोडशाहुतीर्जुहुयात् । इरावती धेनुमतीत्यादिमन्त्रेण
वृताक्तांस्तिलान् सक्तत् जुहुयात् । एवं ब्रह्मानुयायिभ्यः
स्वाहा विष्णुनुयायिभ्यः स्वाहा ईशानानुयायिभ्यः स्वाहा
देवानुयायिभ्यः स्वाहा ग्रहाणां प्रत्येकेन लोकपालानाञ्च
प्रत्येकेन जुहुयात् पुनरिति श्रवणात् ओं पर्वतेभ्यः स्वाहा ओं
नदीभ्यः स्वाहा ओं समुद्रेभ्यः स्वाहा ओं भूः स्वाहा ओं भुवः
स्वाहा ओं स्वः स्वाहा इति जुहुयात् । ततः परिभाषासिद्धं
स्वशास्त्रोक्तं महाव्याहृतिहोमं प्रायश्चित्तहोमादिकञ्च कृत्वा
सुचा ओं तद्विष्णोरिति मन्त्रेण वीषडन्तेन पूर्णाहुति-
वयम् उत्थाय जुहुयात् । इति विशेषोपादानात् नात्र स्वशा-
स्त्रोक्तपूर्णहोमः ततश्च पञ्चगव्यं चरुशेषं प्राश्य घ्रात्वा वा
हेमयुक्तं सवस्त्रं तिलपात्रम् अलङ्कृतां गाञ्च दक्षिणामाचार्याय
दद्यात् । तत्र 'उदाहरति वेदार्थान् यज्ञविद्याः स्मृतीरपि ।
श्रुतिस्मृतिसमापन्नमाचार्यन्तं विदुर्बुधाः' । इति कुन्दोग-
परिशिष्टे कर्मोपदेष्टृर्होतुराचार्यपदेनाभिधानं स्वयं होतृपक्षे
ब्रह्मपरम् अन्यहोतृपक्षे ब्रह्महोतृद्वितयपरं स्वयं ब्रह्मकर्महोतृ-
कर्मकरणपक्षे पुस्तकधारकपरम् । 'ब्रह्मणे दक्षिणा देया
यत्र या परिकीर्त्तिता । कर्मान्तेऽनुच्यमानायां पूर्णपात्रादिका
भवेत् । विदध्याद्द्वौत्रमन्यश्चेत् दक्षिणाद्द्विहो भवेत् । स्वयं

६२६

मठप्रतिष्ठादितत्त्वम् ।

चेदुभयं कुर्यादन्यस्मै प्रतिपादयेत्' । इति कन्दोगपरिशिष्टैक-
वाक्यत्वात् । एवञ्च ब्राह्मविधानाग्निस्थापनादि प्रीयतां
भगवान् विष्णुरित्यन्तं कर्म समाप्तं संस्कृतगोपथादिदाननि-
यम-व्रत-कृच्छादि-करणान्यतमरूपा-समुदाय-प्रतिष्ठावगन्तव्या
समुदायस्य संस्कृतगोपथादेः प्रतिष्ठा समुदायप्रतिष्ठा । तथाच
कपिलपञ्चरात्रं 'प्रतिष्ठाशब्दसंसिद्धिः प्रतिपूर्वाच्च तिष्ठते ।
वह्नर्थत्वान्निपातनानां संस्कारादौ प्रतेः स्थितिः' । ततश्च
गोपथादेरुक्तकर्मसंस्कृतस्य तस्य फलजनकत्वम् । अप्रतिष्ठन्तु
निष्फलमित्युक्तेः । एतत् कृतकर्मणा प्रीयतां भगवान् विष्णु-
रिति समर्पयेत् । मठप्रदानात् स्वर्लोकमित्यत्र मठप्रदं देव-
वेश्मपरम् । उपक्रमोक्तेऽपि तस्मिन् फलान्तरानुपदेशात् ।
अत्र दणकाष्ठादिभेदेन स्वर्गतारतस्य रक्ष्यमाणविष्णुधर्मी-
त्तरवचनादवगन्तव्यमिति । ततः प्रासादसमीपे श्रीम्
उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते इति मन्त्रेण देवतामानोय पूजयित्वा
प्रासादं गत्वा दानानि च दत्त्वा देवतामादाय तां प्रदक्षिणं
कारयित्वा श्रीं भद्रं कर्णेभिरिति मन्त्रेण प्रवेशयेत् । श्रीं
देवस्यत्वेति मन्त्रेण पिण्डिकोपरि न्यसेत् । श्रीं स्थिरोभवेति
मन्त्रेण स्थिरीकरणम् । ततो गन्धपुष्पाभ्यां पूजयित्वा
यावद्भरेति मन्त्रेण देवतासन्निधिं कुर्यात् । तथाच
कपिलपञ्चरात्रम् 'एवं कृत्वा विधानन्तु प्रासादे देवमानयेत् ।
उत्तिष्ठेति यथायोगं पठेद्देव सुसमाहितः । प्रासादञ्च ततो
दत्त्वा कारयेत्तं प्रदक्षिणम् । ततः संवेशयेद्देवं भद्रं कर्णेभि-
मन्वितम् । देवस्यत्वेति मन्त्रेण पिण्डिकोपरि विन्यसेत् ।
स्थिरोभवेति मन्त्रेण स्थिरं कुर्याज्जनार्दनम् । पूजयित्वा ततो-
देवमिमं मन्त्रमुदीरयेत् । यावद्भराधरो देवो यावत्तिष्ठति
नेदिनौ । तावदत्र जगन्नाथ सन्निधीभव केशव' । अत्र च

मठप्रतिष्ठादितत्त्वम् ।

६२७

वास्तुयागे कृत्वा मठादौ कृते तत् प्रतिष्ठां कृत्वा । मठादि-
दातरि सृते तद्धनस्वामिना प्रतिष्ठा कर्तव्या । 'सुखेनार्त्तं
वा दत्तं श्रवितं धर्मकारेणात् । अदत्ता तु सृते दाप्यस्तु
पुत्री नात्र संशयः' । इति विवादरत्नाकरधृतकात्यायन-
वचनात् । 'चतुःषष्टिपदं कृत्वा वास्तु सर्वगृहं प्रति' । इति
लिङ्गपुराणवचनेन 'वास्तूपशमनं कुर्यात् पूर्वमेव विचक्षणः' ।
इति मत्स्यपुराणवचनेन न चैतदमुकदेवगृहवास्तुसर्वदोष-
शमनार्थत्वेन प्राप्तस्य वास्तुयागस्य प्रतिष्ठाकर्त्ता सैककर्तृत्व-
विधानाभावाच्च ।

अथ देवसंप्रदानकदानानि । पूजारत्नाकरेऽग्निपुराणम्
'सुवर्णमणिमुक्तादि यदन्यदपि दुर्लभम् । तत्तु देवादिदेवाय
केशवाय निवेदयेत्' । यदन्यदपि दुर्लभमित्यनेन गृहादि-
कमपि बोध्यम् । तथाच विष्णुधर्मोत्तरे 'सुरवेश्म नरो दद्यात्
यथाशक्ति विधानतः । पुण्यक्षेत्रेषु भूमौ वा शोधयित्वा वसु-
न्धराम् । सुरवेश्मनि यावन्तो द्विजेन्द्राः परमाणवः । ताव-
द्दर्पसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते । तृणकाष्ठमये पुण्यं मयै-
तत् कथितं द्विजाः । तस्माद्दशगुणं पुण्यं कृतेष्टकमये भवेत् ।
तस्माद्दशगुणश्चापि शैलनिर्मितमन्दिरे' । तथा 'अकामः
सात्त्विको लोके यत्किञ्चिद्विनिवेदयेत् । तेनैव स्थानमाप्नोति
यत्र गत्वा न शोचति । धर्मवाणिजिका मूढाः फलकामा
नराधमाः । अर्चयन्ति जगन्नाथं ते कामानाप्नुवन्त्यथ । अन्तवत्तु
फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम्' । तथा 'पद्भ्यां प्रतीच्छते देवः
स्वकामेन निवेदितम् । मूर्ध्ना प्रतीच्छते द्रव्यमकामेन द्विजो-
त्तमाः' । वामनपुराणम् । 'यद् यदिष्टतमं लोके यच्चाप्यस्ति गृहे
शुचि । तत्तद्वि देयं तुष्ट्यर्थं देवदेवस्य चक्रिणः' । एतस्य ब्राह्मण-
संप्रदानकविषयेऽपि सुतरां विष्णुसंप्रदानेऽपि विष्णुप्रतीतिः

६२८

मठप्रतिष्ठादितत्त्वम् ।

फलम् । नरसिंहपुराणे 'त्रिवृत् शुक्लञ्च पीतञ्च पट्टसूत्रादिनिर्मितम् । यज्ञोपवीतं गोविन्दे दत्त्वा वेदान्तगो भवेत्' । त्रिवृत् नवगुणं नव वै त्रिवृत् इति श्रुतेः । नन्दिपुराणम् । 'अलङ्कारञ्च यो दद्यात् विप्रायाथ सुराय वा । स गच्छेद्भारुणं लोकं नानाभरणभूषितः । जातः पृथिव्यां कालेन ततो ह्योपपत्ति-नरः' । सुरायेति पुंस्त्वमविवक्षितम् । अलङ्कारदानेन नाना-भरणभूषितत्वपूर्वकवरुणलोकगन्तृत्वान्तरह्योपपत्तित्वं फलम् । विष्णुधर्मोत्तरे 'यानं शय्यासनं कृत्वा पादुके चाप्युपानहौ । वाहनं गाञ्च धर्मञ्च त्रिदशेभ्यो ददाति यः । एकैकस्माद-वाप्नोति वङ्गिष्ठोमफलं नरः' । यानादिप्रत्येकदानेनाग्नि-ष्टोमयज्ञजन्यफलसमफलप्राप्तिः फलम् ।

अथ विष्णुसंप्रदानकदानानि । विष्णुधर्मोत्तरे तृतीय-काण्डे 'विष्णोरायतने दत्त्वा तत्कथा पुस्तकं नरः । ब्रह्म-लोकमवाप्नोति बह्वन् संवत्सरानपि' । विष्णुकथापुस्तकदानेन बहुसंवत्सरब्रह्मलोकप्राप्तिः फलम् । 'विष्णोः शङ्खप्रदानेन वारुणं लोकमाप्नुयात्' । शङ्खस्य वारुणलोकप्राप्त्यनन्तर-मनुष्यलोकख्यातशब्दत्वं फलम् । 'घण्टाप्रदानेन तथैव सहस्रशतमाप्नुयात्' घण्टायाः सहस्रशतसंख्यकघण्टाप्राप्तिः फलम् । 'सौभाग्यं महदाप्नोति किङ्किणीं प्रददद्भरेः' । सौभाग्यं पुष्टिः किङ्किणी क्षुद्रघण्टिका । तस्य महासौभाग्य-प्राप्तिः फलम् । वितानकप्रदानेन सर्वपापैः प्रमुच्यते । परां निर्हतिमाप्नोति यत्र यत्राभिजायते' । वितानकस्य सर्व-पापविमुक्तिपूर्वकपरमनिर्हतिप्राप्तिः फलम् । 'दत्त्वा तु देव-कर्मार्यं नरो वेदीं दृढां शुभाम् । पार्थिवत्वमवाप्नोति वेदी हि पृथिवी यतः' । वेदीदोलपिण्डिका । वेद्याः पार्थिवत्व-प्राप्तिः फलम् । 'यः कुम्भं देवकर्मार्यं नरो दद्यान्नवं शुभम् ।

मठप्रतिष्ठादितत्त्वम् ।

६२६

वारुणं लोकमाप्नोति सर्वपापैः प्रमुच्यते' । कुम्भस्य सर्वपाप-
विमुक्तिपूर्वकवारुणलोकप्राप्तिः फलम् । 'कमण्डलुप्रदानेन
गोदानफलमाप्नुयात्' कमण्डलोर्गोदानजन्यसमफलप्राप्तिः
फलम् । 'पतदगृहप्रदानेन सर्वपापमपोहति' । पतदगृहञ्च
विततामूलादिद्रव्यप्रेक्षेपविशेषः । पतदगृहस्य सर्वपापहननं
फलम् । 'पादुकानां प्रदानेन गतिमाप्नोत्यनुत्तमाम्' । पादु-
काया अनुत्तममति प्राप्तिः फलम् । 'दर्पणस्य प्रदानेन रूप-
वान् दर्पवान् भवेत्' । दर्पणस्य रूपवद्दर्पवद्भवनम् । 'दर्श-
यित्वा तथा तच्च सुभगस्त्वभिजायते' सुभगत्वकामो विष्णवे
दर्पणमहं दर्शयिष्ये 'कुप्यदो रूपमाप्नोति विशेषाद् भुवि
दुर्लभम् । कुप्यस्य दुर्लभविशेषरूपप्राप्तिः फलम् । 'नरः
सुवर्णदानेन सर्वकामानुपाप्नुते' । सुवर्णस्य सर्वकामाशनं
फलम् । 'नरदानेन लोकेऽस्मिन् प्रामाण्यमुपगच्छति' ।
नरस्य प्रामाण्योपगमनं फलम् । 'परलोकमवाप्नोति धेनुं
दत्त्वा पयस्विनीम्' । धेनोः परलोकप्राप्तिः फलम् । 'अनु-
दुहः प्रदानेन दशधेनुफलं लभेत्' । अनदुहानस्य धेनुदशक-
दानजन्यसमफलप्राप्तिः फलम् । 'शय्यासनप्रदानेन स्थितिं
विन्दति शाश्वतौम्' । शयनस्य शाश्वतस्थितिलाभः फलम् ।
एवमासनस्य । 'उत्तरच्छददानेन सर्वान् कामानवाप्नुयात्' ।
उत्तरच्छदं प्रावरणवस्त्रम् । उत्तरच्छदनस्य सर्वकामप्राप्तिः
फलम् । 'देववेश्मोपयोग्यानि शिल्पभाण्डानि यो नरः ।
दद्याद्वा वाद्यभाण्डानि गणेशत्वमवाप्नुयात्' । चित्राद्युपयुक्त-
शिल्पभाण्डस्य गणेशत्वप्राप्तिः फलम् । एवं वीणादिवाद्य-
भाण्डस्य । 'प्रेक्षणीयप्रदानेन शक्रलोकमवाप्नुयात्' । प्रेक्ष-
णीयं नृत्यं तत्प्रदानञ्च देवसम्मुखे श्रीरामसीताद्यभिनयोत्-
पादनं तेन शक्रलोकप्राप्तिकामो विष्णवे प्रेक्षणीयं प्रेक्षयिष्ये ।

६१०

मठप्रतिष्ठादितत्त्वम् ।

‘यानवाहनदानेन सर्वकालं सुखं लभेत्’ । यानस्य चतुर्दोलादेः सर्वकालसुखित्वभवनं फलं वाहनस्य उष्ट्रादेस्तथा । ‘शिविकां ये प्रयच्छन्ति तेऽपि यान्यमरावतीम्’ । शिविकाया दोलाया अमरावतीगमनं फलम् । ‘राजा भवति लोकेऽस्मिन् कृत्’ दत्त्वा द्विजोत्तमे । नाप्नोति रिपुजं दुःखं संग्रामे रिपुजिह्ववेत्’ । कृत्स्य एतल्लोकराजत्वरिपुजदुःखाप्राप्तिसंग्रामरिपुजित्वं फलम् । ‘तालवृन्तप्रदानेन निर्वृतिं प्राप्नुयात् पराम्’ । तालवृन्तस्य परमनिर्वृतिप्राप्तिः फलम् । ‘तथाचामरदानेन विमानमधिरोहति । यथेष्टं तेन लोकेऽस्मिन् विचरत्यमरप्रभुः’ । चामरस्य विमानकरणकयथेष्टलोकविचरणामरप्रभुत्वम् । ‘मात्याधारं तथा दत्त्वा धृपाधारं तथैव च । गन्धाधारं तथा दत्त्वा कामनां पात्रतां व्रजेत्’ । मात्याधारस्य कामपात्रत्वम् । एवं धूपगन्धाधारयोश्च । ‘समुद्रजातपात्राणि दत्त्वा वै तैजसानि च । पात्रौभवति कामानां विद्यानाञ्च धनस्य च’ । समुद्रजातपात्रस्य कामविद्याधनपात्रत्वम् । एवं तैजसस्य च । ‘गन्धतैलादिद्रव्याणि सुगन्धौनि शुचौनि च । केशवाय नरो दत्त्वा गन्धर्वैः सह मोदते’ । गन्धतैलस्य गन्धर्वसहितमोदमानत्वं तत्प्रतिपत्तिमाह दानरत्नाकरे स्कन्दपुराणं ‘यत्किञ्चिद्देयमौशनसमुद्दिश्य ब्राह्मणे शुचौ । दीयते विष्णवे वाथ तदनन्तफलं स्मृतम्’ । यत्किञ्चिद्देयं दानार्हं वस्तु ईशानमुद्दिश्य त्यक्तं विष्णवे वा त्यक्तं पश्चाद् ब्राह्मणाय प्रदीयते । प्रतिपाद्यते तदनन्तफलं तथाच मत्स्यसूक्तम् । ‘देवे दत्त्वा तु दानानि देवे दद्याच्च दक्षिणाम् । तत्सर्वं ब्राह्मणे दद्यादन्यथा निष्फलं भवेत्’ । दत्त्वेत्यत्र देयानीति वाराहीतन्त्रे पाठः एवञ्च प्रतिपत्तिश्रवणात्तदभाव एव सुमन्तूक्तं प्रायश्चित्तम् । तद् यथा देवद्विजद्रव्यापहर्त्ताऽऽसु

मठप्रतिष्ठादितत्त्वम् ।

६३१

निमग््नोऽधामर्षणमावर्त्तयेत् । अधमर्षणमावर्त्तनञ्च द्रव्य-
 तारतम्यात् कल्पं योगिनोतन्त्रम् । 'देवोपभुज्यमाने तु
 मणिमुक्ता सुवर्णानां देवे दत्तानि यानि च । न निर्मास्यं
 द्वादशाब्दं ताम्रपात्रं तथैव च । पटौ शाटी च षण्मासै-
 र्नेवेद्यैर्दत्तमात्रतः । मोदकं कृपरञ्चैव मासार्द्धेन महेश्वरि ।
 पट्टवस्त्रं त्रिमासञ्च यज्ञसूत्रं त्वहः स्मृतम्' । त्रिमासमित्यत्र
 त्रियाममिति पाठान्तरं 'यावदुष्णं भवेदन्नं परमान्नं तथेव
 च । विसर्जनीयं देवे तु विसर्जनमनन्तरं' विसर्जनं तदीय-
 द्रव्यप्रतिपत्तिव्यवहारः अत्र नीराजनविधिमाह पूजारत्ना-
 करे देवीपुराणम् । 'भक्त्या पिष्टप्रदीपाद्यैश्चूताश्वत्यादिपल्लवैः ।
 ओषधीभिश्च मेध्याभिः सर्ववौजैर्यवादिभिः । नवम्यां पूर्व-
 कालेषु यात्राकाले विशेषतः । यः कुर्यात् अङ्गया वीर
 देव्या नीराजनं नरः । शङ्खभेर्यादिनिनर्देज्यशब्दैश्च पुष्कलैः ।
 यावतो दिवसान् वीर देव्यै नीराजनं कृतम् । तावत्कल्पसह-
 स्राणि स्वर्गलोके महीयते । यस्तु कुर्यात् प्रदीपेन सूर्यलोकं
 स गच्छति' । पर्वकाले उत्सवकाले देव्यास्त्रीत्वमविवक्षितम् ।
 तथाचारात् प्रतिष्ठायामाभ्युदयिकमाह राजमार्त्तण्डः ।
 'पुत्रोत्पत्तौ सदा आङ्गमन्नप्राशनिके तथा । चूडाकार्ये व्रते
 चैव नान्नि पुंसवने तथा । पाणिग्रहे प्रतिष्ठायां प्रवेशे नव-
 वेश्मनः । एतत् वृद्धिकरं नाम गृहस्थस्य विधीयते' । वृद्धि-
 करं आङ्गमित्यर्थः । गोभिलः 'वृद्धिपूर्त्तेषु युग्मानाशयेत् ।
 प्रदक्षिणमुपचारः यवेस्तिलार्थ इति वृद्धिराशास्यमानार्थलाभः
 पुरुषसंस्कारादिश्च । पूर्वमाह रत्नाकरे जातूकर्णः । 'वापी-
 कूपतडागादिदेवतायतनानि च । अन्नप्रदानमारामाः पूर्व-
 मित्यभिधीयते । अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदानाञ्चानुपालनम् ।
 आतिथ्यं वैश्वदेवञ्च द्रष्टमित्यभिधीयते । ग्रहीपरामे यद्दानं

६३२

मठप्रतिष्ठादितत्त्वम् ।

पूर्त्तमित्यभिधीयते । इष्टापूर्त्तं द्विजातीनां धर्मः सामान्य-
 सुच्यते । अधिकारी भवेच्छूद्रः पूर्त्तधर्मे न वैदिके । वैदिके
 वेदाध्ययनसाध्येऽग्निहोत्रादाविति रत्नाकरः । यथा नारी-
 त्यनुवृत्तौ वृहस्पतिः 'पितृव्यगुरुदौहितान् भर्तुः स्वस्त्रीयमातु-
 लान् । पूजयेत् कव्यपूर्त्ताभ्यां वृद्धानायातिथौ स्त्रियः' ।
 एकदिने प्रतिमामठप्रतिष्ठावास्तुयागानां करणे सक्तदेव मातृ-
 पूजादिकं विधेयम् । न च 'एकस्मिन् कर्मणि तते कर्मान्य-
 त्तायते ततः' । इति कुन्दोगपरिशिष्टेन एकस्मिन् कर्मणि
 आरब्धेऽन्यकर्मकरणनिषेधे इति वाच्यं तस्य प्रयोगविषयत्वात्
 अन्यथा 'गणशः क्रियमाणे तु मातृभ्यः पूजनं सक्तम् । सक्तदेव
 भवेच्छ्राद्धमादौ न पृथगादिषु' इति कुन्दोगपरिशिष्टीयस्य
 निर्विषयतापत्तिः । अनेकाह साध्यकर्मण्यारब्धे तन्मध्ये
 कर्मान्तरानुष्ठानापत्तिः मातृपूजावृद्ध्यादयोः सक्तत्वादेत-
 दन्तरालपठितवसोर्धाराभिपातायुष्यमन्त्रजपयोरपि सक्तत्व-
 मिति । आयुष्यमन्त्राज्ञाने तु गायत्रीजपः । 'जपहोमादि
 यत्किञ्चित् कृच्छ्रोक्तं सम्भवेन्न चेत् । सर्वव्याहृतिभिः कुर्यात्
 गायत्र्या प्रणवेन च' इति मिताक्षराधृतषट्त्रिंशन्मतदर्शनात् ।
 प्रतिमाप्रतिष्ठाविधानञ्च देवप्रतिष्ठातत्त्वेऽनुसन्धेयम् । योगि-
 याज्ञवल्करः 'ध्यायेन्नारायणं नित्यं स्नानादिषु च कर्मसु ।
 तद्विष्णोरिति मन्त्रेण स्नायादप्सु पुनः पुनः । गायत्री
 वैष्णवी ह्येषा विष्णोः संस्मरणाय वै' । ध्यायेत् स्मरेदित्यर्थः
 स च मन्त्रः ओम् 'तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः ।
 दिवीव चक्षुराततम्' । वामनपुराणे 'सर्वमङ्गलमङ्गल्यं वरेण्यं
 वरदं शुभम् । नारायणं नमस्कृत्य सर्वकर्माणि कारयेत्'
 इति । यमः 'पुण्याहवाचनं देवे ब्राह्मणस्य विधीयते' ।
 यमः 'संपूज्य गन्धपुष्पाद्यैर्ब्राह्मणान् स्वस्ति वाचयेत् । धर्म्यं

शूद्रकृत्यविचारणतत्त्वम् ।

६३३

कर्मणि माङ्गल्ये संश्रामाद्भुतदर्शने' । धर्म्यं कर्मणीति सप्तमी-
निर्देशान्निमित्तत्वे तत्तत्कर्मोक्तेः । प्रतिष्ठानन्तरं मातृस्ये 'ततः
सहस्रं विप्राणामथवाष्टोत्तरं शतम् । भोजयेच्च यथा शक्त्या
पञ्चाशद्वाथ विंशतिम्' ।

इति महामहोपाध्याय श्रीहरिहरभट्टाचार्यात्मज
श्रीरघुनन्दनभट्टाचार्यविरचिते स्मृतितत्त्वे
मठप्रतिष्ठादितत्त्वं समाप्तम् ।

शूद्रकृत्यविचारणतत्त्वम् ।

प्रणम्य सच्चिदानन्दं शूद्राणां न्यायवर्तिनाम् ।

आद्वाहः कृत्ययोस्तत्त्वं वक्ति श्रीरघुनन्दनः ॥

तत्र मत्स्यपुराणम् 'एवं शूद्रोऽपि सामान्यं वृद्धिश्राद्धन्तु
सर्वदा । नमस्कारेण मन्त्रेण कुर्यादामान्नवद् बुधः । दान-
प्रधानः शूद्रः स्यादित्याह भगवान् प्रभुः । दानेन सर्वकामा-
प्तिरस्य संजायते यतः' । ततो दानमेवापेक्षितं न तु भोजन-
मपि । सामान्यं सर्वजनकर्तव्यत्वेन प्रतिमासकृष्णपक्षादि-
विहितश्राद्धम् आभ्युदयिकश्राद्धञ्च एवं द्विजातिवत् शूद्रोऽपि
कुर्यादित्यन्वयः नमस्कारेण मन्त्रेण न तु स्वयं पठितमन्त्रेण
आमान्नवदित्यनेन जलसेकसिद्धान्नव्यावृत्तिः 'स्निन्नमन्नमुदा-
हृतम्' इति वशिष्ठेन स्निन्नस्यैवान्नत्वाभिधानात् कन्दुपक्वस्य
भष्टत्वं न तु स्निन्नत्वं हारीतेन स्वेदनभर्जनयोः पृथक्त्वमुक्तं
यथा 'आदीपनतापनस्वेदनभर्जनपचनादिभिः पञ्चमीति'
अस्यार्थः आदीपनं काष्ठानां तापनं तोयादेः स्वेदनं धान्यादे-
र्भर्जनं यवादेः पचनं तण्डुलादेः इति पञ्चमीसूना इति कल्पतरुः

६३४

शूद्रकृत्यविचारणतत्त्वम् ।

अतएव स्विन्नधान्येन व्यवह्रियते । 'कन्दुपक्वानि तैलेन पायसं दधिशक्तवः । द्विजेरेतानि भोज्यानि शूद्रगेहकृतान्यपि' । इति कूर्मपुराणवचने शूद्रकर्त्तृककन्दुपक्वादेर्ब्राह्मणभक्ष्यत्वेन आह्वे देयत्वं युक्तम् । कन्दुपक्वं जलोपसेकं विना केवलपात्रेण यद्वह्निना पक्तम् । पायसं पाकेन काठिन्यविकारापन्नं दुग्धं परमान्नपरत्वे पुंलिङ्गनिर्देशापत्तेः । तथा चामरः 'परमान्नन्तु पायसः' इति 'दिनत्रयोदशे प्राप्ते पाकेन भोजयेद्विजान् । अयं विधिः प्रयोक्तव्यः शूद्राणां मन्त्रवर्जितः' । इति आह्वि-
चिन्तामणिधृतवराहपुराणवचनमपि कन्दुपक्कपरम् एवन्तु एतद्वचनं सच्छूद्रपरं मैथिलोक्तं हेयम् । एवम् आमसां-
स्यापि आह्वे देयत्वं सामग्याद्धतत्वेऽनुसन्धेयं तत्र द्रव्यदेवता प्रकाशार्थं ब्राह्मणेन मन्त्राः पाठ्याः 'अयमेव विधिः प्रोक्तः शूद्राणां मन्त्रवर्जितः । अमन्त्रस्य तु शूद्रस्य विप्रो मन्त्रेण गृह्यते' । इति वराहपुराणात् अयं आह्वेतिकर्त्तव्यताको विधिः शूद्रकर्त्तृक मन्त्रपाठरहितः शूद्रस्य मन्त्रपाठानधिकार-
सिद्धौ यदमन्त्रस्येति पुनर्वचनं तत् स्त्रियाग्रहणार्थं परिभाषा-
र्थश्च ततश्च तत् कर्मसम्बन्धिमन्त्रेण विप्रस्तदीयकर्मकारयितृ-
ब्राह्मणो गृह्यते तेन ब्राह्मणेन तत्र मन्त्रः पठनीय इति तात्पर्यं तत्र यजुर्वेदिको मन्त्रः तथा च स्मृतिः 'आर्षक्रमेण सर्वत्र शूद्रा वाजसनेयिनः । अस्माच्छूद्रः स्वयं कर्म यजुर्वेदोव कारयेत्' । आर्षक्रमेण सुन्यक्तक्रमेण यजुर्वेदिसम्बन्धि गृह्यादिना । 'चतुर्णामपि वर्णानां यानि प्रोक्तानि वेधसा । धर्मशास्त्राणि राजेन्द्र ! शृणु तानि नृपोत्तम ! । विशेषतस्तु शूद्राणां पावनानि मनोषिभिः । अष्टादश पुराणानि चरितं राघवस्य च । रामस्य कुरुशार्दूल धर्मकामार्थसिद्धये । तथोक्तं भारतं वीर पाराशर्य्येण धीमता । वेदार्थं सकलं

शूद्रकृत्यविचारणतत्त्वम् ।

६३५

योज्य धर्मशास्त्राणि च प्रभो' ।। इति भविष्यपुराणवचनात्तेषां पौराणिकादिविधिर्योज्यो योजयित्वा अत्र च 'आहवेदमन्त्र-वर्जं शूद्रस्य' इति वचने वेदलुपादानात् आह्वे पुराणमन्त्रः शूद्रेण पठनीय इति मैथिलोक्तं तन्न वराहपुराणे शूद्राणां मन्त्रवर्जित इत्यनेन मन्त्रमात्रनिषेधात् मत्स्यपुराणेन नमस्कारेण मन्त्रेण इत्युपादानाच्च पौराणिकस्यापि आह्वे निषेधः प्रतीयते । एवं स्नानेऽपि 'ब्रह्मचरविशामेव मन्त्रवत् स्नानमिष्यते । तूष्णीमेव हि शूद्रस्य सनमस्कारकं मतम् । इत्यनेन नमस्कारविधानात् पञ्चयज्ञेऽपि 'शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा तथा जीवनवान् भवेत् । शिल्पैर्वा विविधैर्जीवेत् द्विजातिहितमाचरन् । भार्यारतिः शुचिर्भृत्य-भर्ता आह्वक्रियारतः । नमस्कारेण मन्त्रेण पञ्चयज्ञान्नं ह्यापयेत्' । इति नमस्कारमात्रविधानात् आह्वादिषु पौराणिकमन्त्रनिषेधः । ततश्च स्नानआह्वतर्पणपञ्चयज्ञेतरत्र शूद्रस्य पौराणिकमन्त्रपाठः प्रतीयते । अत्र 'षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि यद्देष्टं मङ्गलं कुले' । इति मनुवचनात् 'चूडाकार्या यथा-कुलम्' इति याज्ञवल्क्यवचनाच्च संस्कारमात्रे कुलधर्मानुरोधेन कालान्तरस्य नामविशेषोच्चारणस्याभिधानाच्च शूद्रादीनां नामकरणे वसुधोषादिकपद्धतियुक्तनामकरणस्य च प्रतीते-र्वैदिककर्मणि शूद्राणां पद्धतियुक्तनामाभिधानं क्रियते इति । शूद्रस्वाचमने दैवतीर्थेन ओष्ठे जलं सकृत् क्षिपेत् न पिबेत् तथा च याज्ञवल्क्यः 'हृत्कण्ठतालुगाह्विस्तु यथासंख्यं द्विजा-तयः । शूद्रेण स्त्री च शूद्रश्च सकृत् स्पृष्टाभिरन्ततः' । अन्ततो हृदयादिसमीपेन ओष्ठेन उत्तरोत्तरमपकर्षात् अतएव स्पृष्टा-भिरित्युक्तं न तु भक्षिताभिरिति 'स्त्री शूद्रः शूद्रेण नित्यं बालनाच्च करोष्ठयोः' इति ब्रह्मपुराणवचनञ्च याज्ञवल्क्यः

६३६

यजुर्वेदिष्टोत्सर्गतत्त्वम् ।

‘प्राग्वा ब्राह्मणेण तीर्थेन द्विजो नित्यमुपसृशेत्’ । अत्र द्विज-
स्त्रैवाचमने ब्राह्मणतीर्थोपादानात् स्त्रीशूद्रयोर्न तेनाचमनम्
एवमेव मिताक्षरायां व्यक्तमुक्तं मरौचिना ‘स्त्रियास्त्रैदशिकं
तीर्थं शूद्रजातेस्तथैव च । सकृदाचमनाच्छुद्धिरेतयोरेव
चोभयोः’ इति । एतदनन्तरम् इन्द्रियादिस्पर्शनन्तु ब्राह्मण-
वदेव प्रमाणान्तरन्तु वाजसनेयिसामग्राह्याङ्गिकतत्त्वयोरनु-
सन्धेयम् ।

इति वन्यघटीय श्रीहरिहरभट्टाचार्यात्मज श्रीरघुनन्दन-
भट्टाचार्यविरचितं शूद्राङ्गिकाचारतत्त्वं
समाप्तम् ।

यजुर्वेदिष्टोत्सर्गतत्त्वम् ।

प्रणम्य सच्चिदानन्दं हृषोत्सर्गं यजुर्विदाम् ।

प्रमाणकृत्ययोस्तत्त्वं वक्ति श्रीरघुनन्दनः ॥

पारस्करः । ‘अथ हृषोत्सर्गो गोयज्ञे व्याख्यात इति’ ।
गोयज्ञे शूलगवमभिधाय एतेनैव गोयज्ञो व्याख्यातः पायसेन
चरुणाऽर्थलुप्तस्तस्य तुल्यवया गौर्दक्षिणा इति सूत्रोक्तः एतेन
शूलगवोक्ताग्नेयादि नवनामकरुद्रदेवतहोमेन तथाच सूत्रं
‘स्थालीपाकमिश्राख्यवदानानि जुहोत्यग्नये रुद्राय सर्वाय पशु-
पतये उग्राय अश्विनये भवाय महादेवाय ईशानाय इति च’
अत्र सर्वशब्दो दन्त्यादिः अश्वनिशब्दश्चेदन्तः शतपथश्रुती षष्ठ-
काण्डे तथादर्शनात् वाचस्पतिमिश्रोऽप्येवम् । अवदानानि
पशोर्हृदयमांसानि तत्र पायसेनेत्यभिधानात् शूलगवप्राप्त-
मांसायप्राप्तिः तदप्राप्त्या च नवदेवतातिरिक्तानां शूलगव-

यजुर्वेदिदृषोक्तगर्गपशुम् ।

६१७

देवतानामप्राप्तिस्तद्व्यक्तीकरोति अर्थलुप्त इत्यस्यार्थः पाशुकादि-
विधेरनुगतोऽर्थो यो विधिस्तेन लुप्तो विहीन इति अनर्थलुप्तपाठे
अस्मिन् पायसविधौ अनर्थो निष्प्रयोजनकोषः पाशुकादि-
विधिस्तेन विहीन इति स्विष्टिकृत् प्राप्तिस्तु सामान्यपरि-
भाषाबलात् एवमेव हरिशर्मप्रभृतयः । अत्र गोयज्ञे पायस-
चरुरिति गोभिलसूत्राच्चरुभाषोक्तग्रहणनिर्वापणप्रोक्षणादयः
स्युः । यद्यपि गोयज्ञे उपदिष्टपायसेन शूलगवातिदिष्टपशु-
निवृत्तौ तुल्यवया गौरित्यनुपपन्नस्तथापि तत्र तच्छब्देन
प्रकान्तशूलगवप्रक्रंस्यमानवृषोक्तगर्गपशुः परामृश्यः अविशेषात्
अतस्तयोर्दक्षिणेयं गोयज्ञप्रकरणे पाठात् तत्रापि तुल्यवयस्का
गोर्दक्षिणा हरिशर्मार्प्येवं विशेषस्तु भविष्ये 'वृषतुल्य-
वयो वर्षो वृषः स्याद्दक्षिणा द्विजाः । वृषोक्तगर्गं तथा पुंसां
स्त्रीणां स्त्री गौर्विशिष्यते' । वृषोक्तगर्गविधौ पारस्करः 'मध्ये
गवां सुसमिद्धमग्निं कृत्वाज्यं संस्कृत्य इह रतिरिति
षड्जुहोति' । गवां मध्ये गोष्ठे गोशालायां वा शूलगवाति-
दिष्टगोयज्ञातिदेशादावसथ्याग्निलाभे सुसमिद्धमग्निं कृत्वेति
यदुपादानं तल्लौकिकाग्नेरपि प्रात्यर्थम् अतो निरग्नेरपि
तत्राधिकारः । एवं कृष्णेणाप्यन्यजन्मनः एवं सङ्गच्छते ।
आज्यं होमार्थं संस्कृत्य इह रतिरित्यादि षण्मन्त्रैः पायस-
होमात् पूर्वं षडाहुतौर्जुहोति न चाज्यं संस्कृत्य इह रति-
रिति तदभिधानस्य फलवत्त्वात् उत्तरे आग्नेयं दक्षिणे सौम्यं
मध्ये अन्वा आहुतयः इति सांख्यायनीक्ताज्यभागहोमदेशान्त-
रानादेशस्यान्यहोमौयस्य च बाधापत्तेः । आज्यसंस्कारानन्तरं
प्राप्तोपयमनकुशादानसमिधादानपर्युक्षणानां षडाहुतैः पूर्वं
बाधापत्तेस्तानि च तेनापि पूर्वमुक्तानि ततश्चातिदेशप्राप्त-
चरोरवदानधर्मे आगुक्तादिदेशपरम्पराप्रात्यन्धादिभ्यो नवाहु-

६३८

यलुर्वेदिदृषोक्तगर्गतत्त्वम् ।

तयः । ततः प्रकरणोक्तपौष्णहोमः । यथा पारस्करः 'पूषा गा अन्ने ओनः पूषा रक्षत्वसर्वतः । पूषा वाजसनी ओनः स्वाहा इति' पौष्णस्य पूषदैवतश्रुतीभूतपिष्टपचरोरवदानधर्मेण उद्धृत्य पूषेत्यनेन मन्त्रेण जुहोति अत्र पूष्णः पृथग्विधानात् पिष्टप्राप्तिः कन्दोगपरिशिष्टस्य तु सामान्यतो विधानात् तदर्थतेति तथाच कन्दोगपरिशिष्टम् । 'यद्यप्यदन्तकः पूषा पैष्टमत्ति सदा चरुम् । अग्नीन्द्रेष्वरसामान्यात्तण्डुलोऽत्र विधीयते' । अत्र चरुश्रुतेष्वरुभाषया पूष्णोत्वाजुष्टं निर्वपा-
 सौत्यादेः प्राप्तिरिति एतेन पौष्णस्य चरोः अपणानुपदेशात् सिद्धस्यैवासादनमिति निरस्तम् । 'अग्निं परिस्तीर्य चरुं अप-
 यित्वा पूषा गा' इति विष्णुसूत्रेण स्पष्टमुक्तत्वात् न चैतत् काण्वशास्त्रिमात्रपरम् अन्योक्तस्यान्यत्राकाङ्क्षितत्वेनान्वयात् ।
 तथाच कन्दोगपरिशिष्टं 'यन्मन्त्रा तं स्वशाखायां परोक्तमवि-
 रोधि च । विहङ्गिस्तदनुष्ठेयमग्निहोवादि कर्मवत्' इत्यत्र चकारादाकाङ्क्षितं समुच्चितम् अन्यथा 'वह्न्य' वा स्वगृह्योक्तं
 यस्य यत् कर्म कीर्तितम् । तस्य तावति शास्त्रार्थे कृते सर्व-
 कृतो भवेत्' इति गृह्यपरिशिष्टीयेन विरुद्धेति एवमेव आह-
 विवेकहरिशर्मप्रभृतयः अन्यथा विष्णूक्तस्यापि बाधः स्यात्
 यथा होमानन्तरं विष्णुः 'अग्नस्कारमाह्वयेदेकस्मिन् पार्श्वे
 शूलेनाङ्कितं हिरण्यवर्णेति चतसृभिः शन्नोदेवीति स्नापयेत्
 स्नातालङ्कृताभिषिक्तं चतसृभिर्वत्सतरीभिः सार्द्धं रुद्रान्
 पुरुषसूक्तान् कुष्माण्डीर्जपेत् पिता वत्सेति मन्त्रं वृषस्य दक्षिणे
 कर्णेऽन्वर्थञ्च । वृषो हि भगवान् धर्मश्चतुष्पादः प्रकीर्तितः ।
 वृष्णोमि तमहं भक्त्या स मां रक्षतु सर्वतः । एनं युवानं पतिं
 वो ददानीत्यादि' अत्र कुष्माण्डीः यद्देवादेवहेलनमिति माध्य-
 न्दिनस्तिष्ठन् ऋचो ग्राह्या यद्देवास्तिष्ठोऽग्निवायुसूर्यदेवत्याः

यजुर्वेदविष्णोस्तर्गतत्वम् ।

६३८

क्रमेणानुष्टुपः कुष्माण्डीरिति माध्यन्दिनशाखायां सर्वानुप-
क्रमस्थानां कात्यायनवचनात् अत्र रुद्रजपात् पूर्वं गायत्रीमघ-
मर्षणसूक्तञ्च जपन्ति 'सावित्रीञ्च जपेत् पूर्वं तथा चैवाघमर्ष-
णम्' इति आदित्यपुराणात् । अघमर्षणसूक्तञ्च ऋग्वेदोक्त-
मिह ग्राह्यं सन्ध्यावन्दनवत् न तु यजुर्वेदिकमपि तैत्तिरीयं
याज्ञवल्क्योद्गीर्णत्वात् अत्र पौराणिकत्वात् गायत्र्याघमर्षण-
जपावविरुद्धौ विष्णूक्तानाङ्कितमपि आचारानुरोधादत्रावस्थ-
मिति । होमे तु परिभाषासिद्धः स्विष्टिकृद्धोमः पायस-
पिष्टाभ्यां कर्त्तव्यः तथा महाव्याहृत्यादिप्राशनान्त इति
एतत् सर्वं गृह्यस्थालीपाकसाध्यं ततस्तत्प्रमाणमभिधीयते
यथा पारस्करः 'गृह्यस्थालीपाकानां कर्म परिसमूह्य उपलिप्य
उद्धृत्याभ्युक्ष्याग्निमुपसमाधाय दक्षिणतो ब्रह्मासनमास्तीर्य
प्रक्षीय परिस्रौर्घ्यार्थवदासाद्य पवित्रे कृत्वा प्रोक्षणीं संस्कृत्यार्थ-
वत् प्रोक्षणीरूपाण्यमधिश्रित्य पर्यग्निं कुर्यात् सूवं प्रतप्य
निदध्यात् आण्यमुद्वासीत्पूयावेक्ष्य प्रोक्षणीं पूर्ववदुत्पूय
उपयमनकुशानादाय समिधमाधाय पर्येक्ष्य जुहुयात् एष एव
विधिः यत्र क्वचिद्धोम इति अथ औतकर्मविधानानन्तरं यतो
हेतोः औतानि कर्माणि विहितानि स्मार्त्तानि विधेयानि
अतो होताः गृह्य अवसथ्याग्नी ये स्थालीपाकास्तेषां कर्मानु-
ष्ठानं व्याख्यास्यते इति शेषः अत्र चतुष्कोणस्थानमाह
सांख्यायनः 'चतुरस्रं स्थण्डिलं गोमयेनोपलिप्येति' शार-
दायाञ्च 'नित्यं नैमित्तिकं काम्यं स्थण्डिले वा समाचरेत् ।
हस्तमावन्तु तत् कुर्यात् चतुरस्रं समन्ततः' । परिसमूह्य
त्रिभिर्दर्भैः पांशून् अपसार्य उपलिप्य गोमयोदकाभ्यां एत-
दुभयमपि उदकसंस्थमुल्लिख्य स्फेनरेखामुल्लिखेदिति कुशेन
सम्प्राजर्जनमिति वचनाभ्यां स्फेन खड्गाकारपात्रेण तदभावे

६४०

यजुर्वेदिदृष्टोत्सर्गतत्त्वम् ।

कुशेरुदकसंस्थाः प्रादेशप्रमाणास्तिस्रो रेखाः कृत्वा उद्धृत्य
अनामिकाङ्गुष्ठाभ्यां यथा उल्लिखिताभ्यो रेखाभ्यश्च पांशूनुद्धृत्या-
भ्युक्ष्याद्भिरभिषिच्य अग्निमुपसमाधाय कांस्यपात्रस्य मग्निम्
आत्माभिमुखं संस्थाप्य दक्षिणतो ब्रह्मासनमास्तौर्त्य यज्ञीय-
दारुमयं ब्रह्मण आसनं प्रागग्रैः कुशैराच्छाद्य अत्र ब्रह्म-
कर्मकरणाय ब्रह्माणमुपवेश्य प्रणीय वरुणकाष्ठमयं षडङ्गुल-
प्रस्तारं विंशत्यङ्गुलदीर्घं चतुरङ्गुलस्वातं चतुरङ्गुलमूलदण्ड-
मात्रं मृण्मयपात्रं वा सव्यहस्तेन धृत्वा दक्षिणहस्तोपरि
उद्धृतपात्रस्य उदकेन पूरयित्वा परिस्तरणकुशादुत्तरस्थां दिशि
कुशोपरि स्थापयेत् परिस्तीर्य वह्निर्मृष्टिमादाय प्रागग्रैर्वह्नि-
भिराग्नेयादीशानान्तं ब्रह्मणोऽग्निपर्यन्तं नैऋताहायव्यन्तम्
अग्नेः प्रणीतापर्यन्तं परिस्तरणं तथा सांख्यायनसूत्रं 'सर्वा-
द्यावतो दक्षिणतः प्रवृत्तय उदकसंस्था भवन्तीति' एवमेव
हरिश्मपशुपतिरामदत्ताचार्यचूडामणिप्रभृतयः एतेन वाच-
स्पतिमिश्रोक्त ईशानोक्तः सौम्यन्तक्रमो निरस्तः । यत् पितृ-
भक्तितरङ्गिण्याम् आवृत्तेः सामान्यप्रदक्षिणमिति श्रौतकात्या-
यनसूत्रं तत् स्मार्त्तकर्मणि स्मार्त्तोक्तविशेषात्तस्य विषयत्वात् ।
अथर्वदासाद्य यावद्भिः पदार्थैरर्थप्रयोजनं तावतः 'प्राञ्चं प्राञ्च-
मुदगग्नेरुदगग्रसमीपतः । तत्तथा साधयेद्ब्रह्म यद्यथा विनि-
युज्यते' इति छन्दोगपरिशिष्टादग्नेरुत्तरतः प्रतीच्यादिप्राच्यन्त-
मुत्तरायकुशोपरि आसाद्य न तु उत्तरोत्तरत इति हरिश्मर्मा ।
तद् यथा पवित्रच्छेदनार्थं दर्भास्त्रयः पवित्रार्थमन्तर्गभशून्यं
साग्रं कुशपत्रद्वयं प्रोक्षणीपात्रं द्वादशाङ्गुलदीर्घम् आज्य-
स्थाली तैजसी मृण्मयी वा द्वादशाङ्गुलविस्तृता प्रादेशोच्या
चरुस्थाली सम्मार्जनार्थं कुशास्त्रयः समिधस्त्रिचः पालाश्य
श्रीडुम्बर्यो वा प्रादेशमात्रः सुवः खादिरो हस्तमात्रोऽङ्गुष्ठ-

यजुर्वेदिदृषोत्सर्गतत्त्वम् ।

६४१

मात्रखातायः । आज्यं गव्यं चर्वथं ब्रीहितण्डुलाः षट्पञ्चाश-
 दुत्तरमुष्टिशतप्रघातातपतण्डुलाः बहुभोक्तुस्तृप्तिक्षमतण्डुला
 वा पूर्णपात्रं दक्षिणार्थं यथाशक्ति हिरण्यञ्चेति पवित्रे कृत्वा
 त्रिभिः कुशैः प्रादेशमात्रे पवित्रे कृत्वा प्रोक्षणीं संस्कृत्य
 प्रोक्षणीपात्रं प्रणीतासन्निधौ निधाय तत्र पात्रान्तरेण हस्तेन
 वा प्रणीतोदकेनासिच्य पवित्राभ्यामुत्पूय पवित्रे प्रोक्षिष्यां
 निधाय दक्षिणहस्तेन प्रोक्षणीपात्रमुत्थाप्य सव्ये कृत्वा तदु-
 दकं दक्षिणहस्तेनाच्छाद्य अर्थवत् प्रोक्ष्य अर्थवन्ति प्रयोजन-
 वन्ति । आज्यस्थाल्यादीनि प्रक्षाल्याङ्गिरासादनक्रमेण एकै-
 कशः प्रोक्षणीरूपाज्यम् आसादितमाज्यमौपयिकम् आज्य-
 स्थाल्यां पश्चादग्नेर्निहितायां प्रक्षिप्य चरुपक्षे तु यवादि-
 ग्रहणासादनप्रोक्षणानि मन्त्रदेवताभ्य इति सांख्यायनसूत्रात्
 न तु तण्डुलस्यासादनं मिश्रोक्तं युक्तं ब्रीहीन् यवान् वा
 हवींषि इति परिभाषासिद्धत्वात् । दृषोत्सर्गं ब्रीहिणामेव
 ग्रहणादिति छन्दोगपरिशिष्टे सत्कृत्य ब्रीहितण्डुलानि
 इत्युपदेशात् तदभावे शालौनामपि ततः प्रस्फोटनम् अशक्तौ
 तण्डुलस्यासादनं ततस्त्रिः प्रक्षाल्य चरुस्थाल्यां प्रोक्षणीत
 उदकमासिच्यासादिततण्डुलांस्तत्र प्रक्षिप्य अधिश्रित्याग्ने-
 रुत्तरतो दर्भान् विस्तीर्य तदुपरि आज्यस्थालीं निधाय
 तथाच आपस्तम्बः 'आज्यस्थाल्यामाज्यं निरूप्य उदीच्याङ्गारे
 तन्निरूप्याधिश्रित्येति' स्थालीपाकेषु ग्रहणासादनप्रोक्षणादि-
 मन्त्रदेवतामुद्दिश्य कुर्यात् चरीरधिश्रयणञ्च मध्येऽग्नौ पाक-
 योग्यत्वात् पर्यग्निं कुर्यात् ज्वलदुत्प्लवकं प्रदक्षिणमाज्यचर्वीः
 समन्ततो भ्रमयेत्, सुवं प्रतप्य दक्षिणहस्तेन सुवमादाय
 प्राञ्चमधोमुखमग्नौ पुनः प्रतप्य दर्भैः संमृज्य सव्ये पाणी
 कृत्वा दक्षिणहस्तेन सप्तार्जनकुशैर्मूलादग्रपर्यन्तं संशोध्या-

६४२

यजुर्वेदिष्टपोक्सगतत्वम् ।

भ्युक्ष्य प्रणीतोदकेनेति शेषः । पुनः प्रतप्य पूर्ववत् प्रतप्य उत्तरतो निदध्यात् न तु वाचस्पतिमिश्रोक्तं दक्षिणत आसादनम् । आश्वलायनसांख्यायनापस्तम्बोक्ते वर्हिषि सवोत्तरतो निदध्यात् चर्वीश्च उदगुद्वासनम् आज्योत्तरतो निधानञ्च उत्पूयावेक्ष्येति पूर्ववत् गृहीतमाज्यं सवितुस्त्विति वारत्रय-सुत्पूयोक्तोक्त्य तदेव चावेक्ष्यालोच्य प्रोक्षणीश्च पूर्ववदिति प्रोक्षणीः स्थापिताः पश्चादानीय ओम् सवितुर्व इति मन्त्रेण ताभ्यां पवित्राभ्यां तदुत्पुनाति तथाच सांख्यायनः 'आज्य-मुद्वास्य उदगये पवित्रे धारयन् अङ्गुष्ठोपकनिष्ठाभ्यामुभयतः प्रतिगृह्य ऊर्द्धाग्रे प्रह्वे कृत्वा आज्ये उद्वास्यति ओम् सवितुस्त्वा प्रसवम् उत्पुनात्वच्छिद्रेण वसोः सूर्यस्य रश्मिभिरित्याज्य-संस्कारः । सर्वत्र नासंस्कृतेन जुहुयादिति श्रुतितः ओम् सवितुर्व इति प्रणीताः प्रोक्षणीश्चेति उपयमनकुशानादाय समिधोऽभ्या-धाय पर्युक्ष्य जुहुयादिति । उपयमनं संयमनमिधस्य समिधा-मुद्धम्यन् यैः कुशैः क्रियते उपयमनकुशान्तानादाय दक्षिण-पाणिना गृहीत्वा वामे पाणी संस्थाप्य तथाच आश्वलायन-गृह्यपरिशिष्टं 'समूलान् दर्भानादाय इधमन्धः कुशेन तु । होमकाले तथा मुक्ता सव्ये पाणी च वेष्टितान् । ताः समिधोऽभ्याधाय उत्तिष्ठन्नग्नी तूष्णीं प्रक्षिप्य उपविशेत् । पर्युक्ष्य उदकेनाग्निं परिसर्वतो भावेन वेष्टयित्वा जुहुयात् अघारादीनिति शेषः । होमे देवतोद्देशमाह कठसंवादिनी स्मृतिः 'आदौ च देवतोद्देशस्तैत्तिरीकठशाखिनोः । काण्व-माध्यन्दिनानाञ्च पश्चादुल्लेखयेत् सुरान्' । स्मृत्यर्थसारमदन-पारिजातयोः 'सन्निधौ यजमानः स्यादुद्देशत्यागकारकः । असन्निधौ तु पत्नी स्यादुद्देशत्यागकारिका । 'असन्निधौ तु पत्न्याः स्यादध्वर्युस्तदनुज्ञया । उन्मादे प्रसवे चर्तौ कुर्वी-

यजुर्वेदिहोमोत्सर्गतत्त्वम् ।

६४३

तानुन्नया विना' । एष परिसमूहनादिपर्युक्षणांतो विधिः
यत्र क्वचित् गृह्यकर्मणि होमो विधीयते तत्र भवति तथा
पारस्करः अन्वारब्धम् आधाराज्यभागौ महाव्याहृतयः सर्व-
प्रायश्चित्तं प्राजापत्यं स्विष्टिकृच्चैतन्नित्यं सर्वत्रेति ब्रह्मा
दक्षिणबाहुना दक्षिणबाह्वन्वारब्धहोतरि प्रजापतौन्द्रदेवताके
आधारसंज्ञके चाहुती तत्र पूर्वाहुतिर्वायुकोणादारभ्याग्निकोणं
यावत् अविच्छिन्नघृतधारया सुवेण परा नैऋतकोणादारभ्य
ऐशानीं यावत् आधारेण सामर्थ्यात् तथाचोक्तं 'प्राञ्चाव-
धारौ विदिशावेके' इति । विदिशावेव कर्त्तव्यौ सर्वेदृष्टत्वा-
दिति हरिशर्मप्रभृतयः । अग्निसोमदेवताके आज्यभाग-
संज्ञके इति । तत्राहुतिरग्नेरुत्तरभागे परा दक्षिणभागे
एते प्रागग्रे आज्यभागावधिकृत्ये अग्नये स्वाहेत्युत्तरतः
सोमायेति दक्षिणतः प्रागग्रां जुहुयादिति सूत्रात् ।
एतयोर्मध्येऽन्याश्चाहुतयः तथाच सांख्यायनसूत्रम् 'उत्तरा-
ग्नेयं दक्षिणे सौम्यं मध्येऽन्या आहुतयः' इति । महा-
व्याहृतयो भूराद्या व्यस्तसमस्ताश्च तयोर्व्याहृतयः सर्वप्राय-
श्चित्तम् ओं त्वमन्नोऽग्ने ओं सत्वं नोऽग्ने ओम् अयाश्वाग्ने ओं
ये ते शतम् ओम् उदुत्तममितिमन्त्वेर्वर्णदेवताकाः पञ्चाहुतयः
प्राजापत्यं प्रजापतये स्वाहेति स्विष्टिकृदग्नये स्विष्टिकृते
स्वाहेति चकारात् जुहुयादित्यन्वयः एतदुक्तं दशाहुतिकं
कर्म नित्यम् आवश्यकम् अवश्यभावि सर्वत्रैतद् गृह्योक्तहोम-
मात्रे स्विष्टिकृदोमस्य विशेषमाह स एव प्राञ्चहाव्याहृतिभ्यः
स्विष्टिकृदन्यच्चेदाहुतिरिति स्थालीपाकहविष्येत्तदा महाव्या-
हृतिहोमात् पूर्वं तेन हविषा स्विष्टिकृदोमः । केवलाज्यहोमे
तु सर्वाहुतिशेष महाव्याहृत्यादयस्तु सर्वत्राज्येनैव परिभाषा-
सिद्धत्वात् इति तथा च छन्दोगपरिशिष्टम् 'आज्यं द्रव्यमना-

६४४

यजुर्वेदिदृषोत्सर्गतत्त्वम् ।

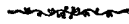
देशे जुहोतिषु विधीयते' । इति महाव्याहृत्यादयस्तु प्रकृत-
होमकर्मान्ते कर्त्तव्याः । ततः प्रकृतकर्माह पारस्करः 'रुद्रान्
जपित्वा एकवर्णं द्विवर्णं वा यो वा यूयं क्वादयति लोहितो वा
स्यात् सर्वाङ्गैरप्युपेतो जीववत्सायाः पयस्विन्याः पुत्त्रोऽथ
रूपवान् स्यात् तमलङ्कृत्य यूथमुख्याश्चतस्रो वत्सतर्थ्यश्चालङ्कृत्य
एनं युवानं पतिं वो ददानि तेन क्रीडन्तीश्वरथ प्रियेण मानः
साम्पन्ननुषा सुभगा रायस्योषेण समिषामदेम एतेनैवोत्सृजे-
रन् इति' रुद्राध्यायं पठित्वा एकवर्णं शुक्लं कृष्णं वा द्विवर्णं
शुक्लकृष्णं विहितो यस्तु वर्णेनेति परिभाषितो नीलवृषः तमलं-
कृत्य सौवर्णवीरपट्टादिभिर्यथायोग्यं भूषयित्वा वत्सतरीचतु-
ष्टयसहितं वृषम् एनं युवानमित्यादिमन्त्रं पठित्वा निमित्ता-
न्युद्दिश्य उत्सृजेत् । पारस्करः 'मध्यस्थमभिमन्त्रयेत् मयो-
भूरित्यनुवाकशेषेणेति' । मध्यस्थं वत्सतरीणां मध्यस्थं वृषं
पूर्वादिदिक्षु लोहितवत्सिकाः संस्थाप्य तन्मध्ये प्राङ्मुखं स्थाप्य
ओं मयोभूरभिमयोहोत्यादि स्वर्णसूर्यः स्वाहेत्यन्तेन अनुवाक-
शेषमन्त्रेणाभिमन्त्रणं करोति । एतदवशिष्टकृत्यप्रमाणं सामग-
वृषोत्सर्गतत्वे द्रष्टव्यं विस्तरभयात् नेहाभिलिखितमिति संक्षेपः ।

इति वन्द्यघटौय श्रीहरिहरभट्टाचार्यात्मज श्रीरघुनन्दन-

भट्टाचार्यविरचितं यजुर्वेदिदृषोत्सर्गतत्वं

समाप्तम् ।

दीक्षातत्त्वम् ।



प्रणम्य सच्चिदानन्दं संसारध्वान्तभास्करम् ।

दीक्षातत्त्वञ्च तत्प्रीत्यै वक्ति श्रीरघुनन्दनः ॥

शारदातिलकाद्येषु बहुलाङ्गप्रदर्शनात् ।

इदानीमननुष्ठानाद्दीक्षा संचिष्य लिख्यते ॥

प्रयोगसारे । 'दीयते ज्ञानमत्यन्तं क्षीयते पापसञ्चयः ।
तेन दीचेति सा ज्ञेया पापच्छेदक्षमा क्रिया । गुरोर्भृंगो-
रस्तबाल्ये बार्हके सिंहगे गुरौ । गुर्वादित्ये दशाहे च वक्त्रि-
जीवेष्टविंशके । दिने प्राग्राश्यानायातातिचारिगुरुवत्सरे ।
प्राग्राशिगन्तृजीवस्यातिचारे त्रिपक्षके । कम्पाद्यद्भुतसप्ताहे
नीचस्थेज्ये मलिस्तुचे । पौषादिकचतुर्मासे चरणाङ्कितवर्षणे ।
एकेनाङ्गा चैकदिने द्वितीयेन दिनत्रये । तृतीयेन च सप्ताहे
मङ्गल्यानि जिजीविषुः । विद्यारम्भकर्णवेधौ चूडोपनयनो-
द्बहान् । तीर्थस्नानमनावृत्तं तथानादिसुरेक्षणम् । परीक्षा-
रामवृक्षांश्च पुरश्चरणदीक्षणे । व्रतारम्भप्रतिष्ठे च गृह्यारम्भ-
प्रवेशने । प्रतिष्ठारम्भणे देव कूपादेः परिवर्जयेत् । द्वात्रिं-
शद्विंशसाक्षास्ते जीवस्य भार्गवस्य च । द्वासप्ततिर्महत्सु
पादास्ते द्वादशक्रमात् । अस्तात् प्राक्परयोः पक्षं गुरो-
र्बार्हिकबालते । पादास्ते तु दशाहानि वृद्धे बाले दिनत्रयम् ।
अगस्त्यसंहितायाम् । 'यदा ददाति सन्तुष्टः एसन्नवदनो
मनुम् । स्वयमेव तथा चैवमिति कर्त्तव्यताक्रमः । विशुद्ध-
देशकालेषु शुद्धात्मा नियतो गुरुः । मधुमासे भवेद् दुःखं
माधवे रत्नसञ्चयः । मरणं भवति ज्यैष्ठे चाषाढे बन्धुना-

६४६

दौक्षातत्त्वम् ।

शनम् । समृद्धिः श्रावणे नूनं भवेद्भाद्रपदे क्षयः । प्रजाना-
माश्विने मासि सर्वतः शुभमेव च । ज्ञानं स्यात् कार्तिके
सौख्यं मार्गशीर्षे भवत्यपि । पौषे ज्ञानक्षयो माघे भवेन्नेधा-
विवर्द्धनम् । फाल्गुनेऽपि विवृद्धिः स्यान्मलमासं विवर्जयेत् ।
गुरौ रवौ शनौ सोमे कर्त्तव्यं बधशुक्रयोः । अश्विनी भरणी
स्वाती विशाखाहस्तभेषु च । ज्येष्ठोत्तरार्द्रयोश्चैवं कुर्यान्मन्त्रा-
भिषेचनम् । शुक्लपक्षे च कृष्णे वा दौक्षा सर्वसुखावहा ।
पूर्णिमा पञ्चमौ चैव द्वितीया सप्तमौ तथा । त्रयोदशी च
दशमौ प्रशस्ता सर्वकामदा । पञ्चाङ्गशुद्धिदिवसे सोदये
शशितारयोः । गुरुशुक्रोदये शुङ्गलग्ने द्वादशशोधिते । चन्द्र-
तारानुकूले च शस्यते सर्वकर्म च । सूर्यग्रहणकालेन समानो
नास्ति कश्चन । तत्र यद् यत् कृतं कर्म तदनन्तफलं भवेत् ।
वारादिशोधनं मासो न चैवं सूर्यपर्वणि । ददातीष्टमृहीतं
यत्तस्मिन् काले गुरुर्ऋजुः । सिद्धिर्भवति मन्त्रस्य विना-
यासेन वेगतः । मनुर्मन्त्रः । विघ्नकालं दर्शयति मधुमास
इत्यादि । पञ्चाङ्गशुद्धिदिवसे वारतिथिनक्षत्रकालयोगशुद्धि-
दिवसे । तथाच महाकपिलपञ्चरात्रे । 'एवं नक्षत्रतिथ्यादौ
करणे योगवासरे । मन्त्रोपदेशो गुरुणा साधकानां सुखा-
वहः' । शशितारयोरानुकूल्ययुक्ते गुरुशुक्रोदये इति प्रागुक्त-
समयशुद्धिपरम् । द्वादशशोधिते द्वादशांशशोधिते । तन्त्रान्तरे ।
'रविवारे भवेद्विज्ञं सोमे शान्तिर्भवेत् किल । आयुरङ्गारके
हन्ति तत्र दौक्षां विवर्जयेत् । बुधे सौन्दर्यमाप्नोति ज्ञानं
स्यात्तु बृहस्पतौ । शुके सौभाग्यमाप्नोति यशोहानिः शनै-
श्चरे । प्रतिपत्सु कृता दौक्षा ज्ञाननाशकरो मता । द्विती-
यायां भवेज्ज्ञानं तृतीयायां शुचिर्भवेत् । दशम्यां सर्वसिद्धिः
स्यात्त्रयोदश्यां दरिद्रता । निर्यग्योनिश्चतुर्दश्यां हानिर्मासा-

दीक्षातत्त्वम् ।

६४७

धसानके । पक्षान्ते धर्मवृद्धिः स्यादस्वाध्यायं विवर्जयेत् ।
 सन्यागर्जितनिर्घोषभूकम्पोल्कानिपातनम् । एतानन्यांश्च
 दिवसान् श्रुत्युक्तान् परिवर्जयेत् । त्रयोदश्यां कृष्णायाम् ।
 'अमा वै सोमवारे च भौमवारे चतुर्दशी । चतुर्थङ्गारवारे
 च सूर्यपर्वशतैः समा' । वीरतन्त्रे । 'रोहिणी अवणार्द्रमे
 धनिष्ठा चोत्तरात्रयम् । पुष्या शतभिषार्द्रं च दीक्षानक्षत्र-
 सुच्यते' । अर्द्धा हस्ता । रत्नावल्याम् । 'योगाश्च प्रीति-
 रायुषान् सौभाग्यः शोभनो धृतिः । वृद्धिर्ध्रुवः सुकर्मा च
 साध्यः शुक्रश्च हर्षणः । वरीयांश्च शिवः सिद्धो ब्रह्म इन्द्रश्च
 षोडश । एतानि करणानि स्युर्दीक्षायान्तु विशेषतः । शकु-
 न्यादीनि विष्टिश्च विशेषेण विवर्जयेत्' । शकुन्यादीनि शकु-
 निचतुष्पदनार्गकिन्तुघ्नानि । 'कृष्णाष्टम्यां चतुर्दस्यां पूर्वपक्ष-
 दिने तथा' । कृष्णपक्षे इति शेषः । कालोत्तरे । 'कृष्ण-
 पक्षे भूतिकामः सिद्धिकामः सिते सदा' । दीपिकायाम् ।
 'ध्रुवमृदुनक्षत्रगणे शुभवासरेषु सत्तिथौ दीक्षा । स्थिरलग्ने
 शुभे चन्द्रे केन्द्रे कोणे गुरौ धर्मे' । ध्रुवाणि व्रीष्युत्तराणि
 रोहिणी च । मृदूनि चित्रानुराधामृगशिरो रेवत्यः । ज्ञान-
 मालायाम् । 'रविभंक्रमणेनैव सूर्यस्य ग्रहणे तथा । अत्र
 लग्नादिकं किञ्चिदविचार्यं कथञ्चन' । तत्त्वसागरे । 'यदै-
 वेच्छा तदा दीक्षा गुरोराज्ञानुरूपतः । न तिथिर्न व्रतं
 होमो न स्नानं न जपक्रिया । दीक्षायां कारणं किन्तु
 स्वेच्छावाप्ते तु सद्गुरौ' । सारसंग्रहे । 'शिष्यत्रिजन्मदिवसे
 संप्राप्तौ विषुवायने । सत्तीर्थैर्ऽर्कविधुश्रासे तन्मुदामनपर्वणोः ।
 मन्त्रदीक्षां प्रकुर्वाणो मासर्चादीन् शोधयेत्' । तन्तुपर्व-
 परमेश्वरोपवीतदानतिथिः श्रावणी द्वादशी । दामनपर्व-
 दमनभस्त्रनतिथिश्चैत्रशुक्लचतुर्दशी । योगिनौतन्त्रे । 'गयायां

६४८

दीक्षातत्त्वम् ।

भास्करक्षेत्रे विरजे चन्द्रपर्वते । चट्टने च मतङ्गे च तथा
 कन्याश्रमेषु च । न गृह्णीयात्ततो दीक्षां तीर्थेष्वेतेषु पार्वति' ।
 कूर्मपुराणे । 'यानि शास्त्राणि दृश्यन्ते लोकेऽस्मिन् विवि-
 धानि च । श्रुतिस्मृतिविरुद्धानि निष्ठा तेषां हि तामसी ।
 करालभैरवश्चापि जामलं वाममेव च । एवंविधानि चान्यानि
 मोहनार्थानि यानि च । मया सृष्टानि चान्यानि मोहायैषां
 भवार्णवे' । आर्यादिदुष्टमन्त्रप्रतीकारे तु राघवभट्टधृतम् ।
 'तेषु दोषेषु सर्वत्र मायां काममथापि वा । क्षिप्त्वा वादौ
 श्रियं दद्याद् दूषणस्य विमुक्तये । तारसंपुटितो वापि दुष्ट-
 मन्त्रोऽपि सिद्धापि' । नृसिंहतापनीये । सावित्रीं प्रणवं
 यजुर्लक्ष्मीं स्त्रीशूद्रयोर्नेच्छन्ति । सावित्रीं लक्ष्मीं यजुः प्रणवं
 स्त्रीशूद्रो यदि जानीयात् स मृतोऽधो गच्छति नेच्छन्तीत्यन्तं
 पराशरभाष्येऽपि लिखितम् । गोविन्दभट्टधृतम् । 'स्नाहा-
 प्रणवसंयुक्तं शूद्रे मन्त्रं ददद्भिजः । शूद्रो निरयगामी स्याद्
 ब्राह्मणः शूद्रतामियात्' । शारदायाम् । 'मन्त्रविद्याविभा-
 गेन द्विविधा तन्त्रशास्त्रतः । मन्त्राः पुं देवता ज्ञेया विद्या-
 स्त्रीदेवता पुनः' । एतेन मन्त्रविद्ययोर्यथायथमुल्लेखः । मन्त्र-
 तन्त्रप्रकाशे । 'आचार्यानुमतिप्राप्तः प्राप्तश्चादत्तदक्षिणः ।
 सततं जप्यमानोऽपि मन्त्रसिद्धिं न गच्छति' । नारदीये ।
 'अनृत्विजोऽशुभं मन्त्रं क्लृप्तेनाभिजनेन वा । पत्रेऽङ्कितं वा
 माथावत्तथाप्राप्तस्त्वनर्थकत्' । अन्यत्रापि 'गुर्वनुक्ताः क्रियाः
 सर्वा निष्फलाः स्युर्यतो ध्रुवम् । गुरुं न मर्त्यैर्बुध्येत यदि
 बुध्येत कर्हिचित् । कदापि न भवेत् सिद्धिर्न मन्त्रैर्देव-
 पूजनैः' । अतएव शारदायाम् । 'पुरुषार्थं सदा वास्यै
 सच्छिष्यो गुरुमाश्रयेत्' । तेन गुरुकर्मकरणाय तस्य वरणं
 प्रतीयते । गुरुशिष्यावाह । 'सर्वागमानां सारज्ञः सर्व-

दीक्षातत्त्वम् ।

६४८

शास्त्रार्थतत्त्ववित् । परोपकारनिरतो जपपूजादितत्परः ।
 इत्यादि गुणसम्पन्नो गुरुरागमपारगः । वाङ्मनः कायवसुभि
 गुरुशुश्रूषणे रतः । एतादृशगुणोपेतः शिष्यो भवति नापरः ।
 होममूले । 'चीर्णाचारव्रतो मन्त्रो ज्ञानवान् सुसमाहितः ।
 ब्रह्मनिष्ठोऽतिविख्यातो गुरुः स्याद्भौतिकोऽपि च' । भौति-
 कोऽपि देवयोन्युपसेवकोऽपि । 'देवताचार्यशुश्रूषां मनो-
 वाक्कायकर्मभिः । शुद्धभावो महोत्साहो बोद्धाशिष्य इति
 स्थितः' । देवं कर्म यजुः कुर्यात् स इति पूरणीयम् । 'न
 तूपदेश्यः पुत्रश्च व्यत्ययी वस्तुदस्तथा' । व्यत्ययी परस्पर-
 विद्यादायी । प्रयोगसारे । 'तत्रापि भक्तियुक्ताय पुत्राय
 वस्तुदाय च' । एतानि राघवभट्टवृत्तानि । महाकपिलपञ्च-
 रात्र नारदीययोः । 'मन्त्रं यः साधयेदेकं जपहोमार्चना-
 दिभिः । क्रियाभिर्भूरिभिस्तस्य सिद्धिन्यन्येऽप्यसाधनात् ।
 सम्यक्सिद्धैकमन्त्रस्य नासिद्धमिह किञ्चन । बहुमन्त्रवतः
 पुंसः का कथा हरिरेव सः' । पिङ्गलामते । 'मननं विश्व-
 विज्ञानं त्राणं संसारबन्धनात् । यतः करोति संसिद्धैः मन्त्र
 इत्यभिधीयते' । अन्यत्रापि । 'प्राप्तोपदेशतो मन्त्रो मन-
 नाज्जपनादपि । सिद्धिप्रदः साधकानां पूजाहोमादिकं
 विना' । यमः । 'पुण्याहं वाचयेद्देवे ब्राह्मणस्य विधीयते' ।
 व्यासः । 'संपूज्य गन्धपुष्पाद्यैर्ब्राह्मणान् स्वस्ति वाचयेत् ।
 धर्म्यं कर्मणि माङ्गल्ये संग्रामादभुतदर्शने' । पूजाधारमाह
 पद्मपुराणम् । 'शालग्रामशिलारूपी यत्र तिष्ठति केशवः ।
 तत्र देवाऽसुरा यक्षा भुवनानि चतुर्दश' । अत्र सर्वसान्निध्या-
 दत्र तेषां पूजा प्रतीयते । तत्रावाहनविसर्जने नस्तः । 'शाल-
 ग्रामे स्थावरे वा नावाहनविसर्जने' । इति राघवभट्टवृत्तात् ।
 बौधायनः । 'प्रतिमास्थानेष्वप्सुग्नौ नावाहनविसर्जनमिति' ।

६५०

दौष्घातत्वम् ।

पूजाप्रदीपे । 'अनुक्तकल्पे यन्त्रन्तु लिखेत् पद्मं दलाष्टकम् ।
षट्कोणकर्णितं तत्र वेदहारोपशोभितम्' । अत्रावाहनप्रति-
ष्ठाविसर्जनानीति शेषः । उपचारद्रव्याणि शारदायाम् । 'पादं
श्यामाकदूर्वाजविष्णुकान्ताभिरौरितम्' । विष्णुकान्ताऽपरा-
जिता । श्यामाकादियुक्तं जलमिति शेषः । 'गन्धपुष्पाक्षत-
यवकुशाग्रतिलसर्षपैः । सदूर्वैः सर्वदेवानामर्घ्यमेतदुदीरि-
तम्' । गन्धादियुक्तं जलमित्यर्थः । 'जातीलवङ्गकक्कोलै-
र्जलमाचमनीयकम् । दधिमध्वाज्यसंमिश्रं मधुपकं विनिर्दि-
शेत् । गन्धचन्दनकर्पूरकालागुरुभिरौरितः' । पुष्पाणि तान्येव
देयानि शास्त्रान्तरेऽवगम्यानि । 'गुग्गुल्वगुरुकोशीरशर्करा-
मधुचन्दनैः । धूपं गन्धाम्बुसंमिश्रैर्नीचैर्देवस्य साधकः' ।
उशीरं वीरणमूलम् । साधकः पूजाकर्त्ता । राघवभट्टधृतम् ।
'सर्वोपचारवस्तूनामलामे भावनेव हि । निर्मलेनोदकेनाथ
पूर्णतयाह नारदः' । नारसिंहे । 'स्नाने वस्त्रे च नैवेद्ये
दद्यादाचमनीयकम्' । देवीपुराणम् । 'यद्दीयते च देवेभ्यो
गन्धपुष्पादिकं तथा । अर्घ्यपात्रस्थितैस्तोयैरभिषिच्य तदुत्-
सृजेत्' । शारदायाम् । 'मन्त्राणां दश कथ्यन्ते संस्काराः
सिद्धिदायिनः । जननं जीवनं पञ्चात्ताडनं बोधनं तथा ।
अथाभिषेको विमलीकरणाप्यायने तथा । तर्पणं दीपनं
गुप्तिर्दशैता मन्त्रसंस्क्रियाः । मन्त्राणां मातृका यन्त्रादुच्चारो
जननं स्मृतम् । प्रणवान्तरितान् कृत्वा मन्त्रवर्णान् जपेत्
सुधीः । एतज्जीवनमित्याहुर्मन्त्रतन्त्रविशारदाः । मन्त्रवर्णान्
समालिख्य ताडयेच्चन्दनाभ्रसा । प्रत्येकं वायुना मन्त्री ताडनं
तदुदाहृतम्' । लिखनविधिमाह दानसागरे । 'शुभे नक्षत्र-
दिवसे शुभे चापि दिनग्रहे । लेखयेत् पूज्य देवेशान् रुद्र-
ब्रह्मजनार्दनान् । पूर्वदिश्वदनो भूत्वा लिपिज्ञो लेखको-

दीक्षातत्त्वम् ।

६५१

त्तमः । निरोधो हस्तवाङ्मोक्ष मसौपत्रविधारणे । मत्स्य-
पुराणे । 'शीर्षेपितान् सुसम्पन्नान् सममात्रांश्च तान् समान् ।
अक्षराणि लिखेद् यस्तु लेखकः स उदाहृतः' । वायुना
वायुवीजेन । 'यमित्यनेन तं मन्त्री प्रसूनैः करवीरजैः ।
तन्मन्त्राक्षरसंख्यातैर्हन्त्याद् यान्तेन बोधनम्' । यान्तेन
रमित्यनेन इति । 'स्वतन्त्रोक्तविधानेन मन्त्री मन्त्रार्णसंख्यया ।
अखत्यपल्लवैर्मन्त्रमभिषिञ्चेद्दिशुश्चये । स्वतन्त्रोक्तविधानेन मूर्द्धि-
तोयेन देशिकः । नमोऽन्तं मन्त्रमुच्चार्य तदन्ते देवताभि-
धाम् । द्वितीयान्तामहं पश्चादभिषिञ्चाम्यनेन तु । तोयै-
रञ्जलिवड्डैश्चाप्यभिषिञ्चेत् स्वमूर्धनि' । स्वतन्त्रोक्तविधानेन
पुरश्चर्याप्रकरणोक्तविहिताञ्जलिना इत्यभिहितेन । 'सच्चिन्म्य
मनसा मन्त्रं ज्योतिर्मन्त्रेण निर्दहेत् । मन्त्रे मलत्रयं मन्त्री
विमलीकरणन्विदम्' । मलत्रयं मायिकं कार्मिणं मानव-
रूपम् । 'तारं व्योमाग्निमनुयुग्दण्डी ज्योतिर्मनुर्मतः' । तारं
प्रणवः व्योम हकारः अग्नीरेफः मनुरीकारः तद्युक्तोऽनु-
स्वारः । तेन ओम् ह्रीं इति ज्योतिर्मन्त्रः । कुशोदकेन
मन्त्रेण प्रत्यर्घ्यं प्रोक्षणं मनोः' । प्रत्यर्घ्यं प्रत्यक्षरम् । 'तेन
मन्त्रेण विधिवदेतदाध्यायं मतम् । मन्त्रेण वारिणा मन्त्र-
तर्पणं तर्पणं मतम्' । मन्त्रेण मूलमन्त्रेण । 'मूलमन्त्रं
समुच्चार्य तदन्ते देवताभिधाम् । द्वितीयान्तामहं पश्चात्तर्प-
यामि नमोऽन्तकम्' । इति पुरश्चर्याोक्तक्रमेण लिखितमन्त्रा-
धाररूपयन्त्रे । 'तारमायारमायोगो मनोर्दीपनमुच्यते' ।
तार ओम् माया ह्रीं रमा श्रीम् । 'जप्यमानस्य मन्त्रस्य
गोपनन्वप्रकाशनम् । संस्कारा दशसंख्याताः सर्वतन्त्रेषु
गोपिताः । यान् कृत्वा सम्प्रदायालं मन्त्री वाञ्छितमश्नुते' ।
शारादायाम् । 'तत्तन्मन्त्रोदिताभ्यासान् कुर्याद्देहे शिशो-

६५२

दीक्षातत्त्वम् ।

स्तथा । पक्षीपचारैः कुम्भस्थां पूजयेद्विष्टदेवताम् । दद्यात्
वेद्यां ततस्तस्मै विनीताय प्रयत्नतः' । षडुन्नयमहातन्त्रे ।
'गुरुवक्त' निजं वक्त' विभाव्य गुरुरादरात् । गुरुवक्तप्रयोगेण
दिव्यमन्त्रादिकं शिष्योः । मुद्रान्यासादिभिः सार्द्धं दद्यात्
सेयं हि वाचिकी' । गुरुः स्वीयं वक्त' गुरुवक्तत्वेन विभाव्य
शिष्याय दद्यादित्यर्थः । 'दीक्षापरा तथा मन्त्रन्याससंयुक्त-
विग्रहा । सेयं मन्त्रतनुभूत्वा संक्रमं मन्त्रमादरात् । दद्यात्
शिष्याय सा दीक्षा मन्त्री मनुविघातिनी' । दक्षिणामूर्ति-
संहितायाम् । 'भूमौ लिखित्वा मन्त्रन्तु पूजयित्वा यथा-
विधि । जपता मनसा देवि शिष्याय निर्मलात्मने । प्रका-
श्वार्थं जने दद्यात् ऋष्यादिसहितं गुरुः' । वशिष्ठसंहि-
तायाम् । 'ततस्तत् शिष्यशिरसि हस्तं दत्त्वा शतं जपेत् ।
अष्टोत्तरशतं मन्त्रं दद्यादुदकपूर्वकम्' । क्रमदीपिकायाम् ।
'ऋष्यादियुक्तमथ मन्त्रवरं यथावद् ब्रूयात् शिष्योर्गुरुवरस्त्रि-
वामकर्णे' । शारदायां 'गुरोर्लब्ध्वा पुनर्विद्यामष्टकत्वे
जपेत् सुधीः । गुरुविद्यादेवतानामैक्यं सम्भावयन् धिया ।
प्रणमेद्दण्डवद्भूमौ गुरुं तं देवतात्मकम् । तदा पादाम्बुज-
हस्तं निजमूर्ध्नि योजयेत्' । वशिष्ठः 'आवयोस्तुल्यफलदो
भवत्वेवमुदीरयेत् । वरं प्राणपरित्यागश्चेदनं शिरसोऽपि
वा । न त्वनभ्यर्थं भुञ्जीत भगवन्तं त्रिलोचनम्' । अन्यत्रा-
धोक्षजमित्यूहः । नारायणीयमहाकपिलपञ्चरात्रे । 'मन्त्रं
दत्त्वा सहस्रं वै स्वसिद्धैः देशिको जपेत्' । मन्त्रप्रकाशे ।
'स सर्वस्व' तद्वै वा वित्तशाख्यविवर्जितः । गुरवे दक्षिणां
दत्त्वा ततो मन्त्रग्रहो मतः' । अन्यत्रापि 'तां वित्तशाख्यं
परिहृत्य दक्षिणां दत्त्वा स्वकीयां तनुमर्पयेत् सुधीः' । नारा-
यणीयकपिलपञ्चरात्रयोः । 'त्वत्प्रसादादहं मुक्तः कृतकृत्यो-

दीक्षातत्त्वम् ।

६५३

ऽस्मि सर्वतः । मायामृत्युमहापाशादिमुक्तोऽस्मि शिवोऽस्मि च' । शारदायां 'ब्राह्मणां स्तुर्पयेत् पश्चात् भक्ष्यभोज्य सदक्षिणाम्' । शैवे । 'यो गुरुः स शिवः प्रोक्तो यः शिवः स च शङ्करः । शिवविद्यागुरुणाञ्च भेदो नास्ति कथञ्चन । शिवे मन्त्रे गुरौ यस्य भावना सदृशी भवेत् । भोगो मोक्षश्च सिद्धिश्च शीघ्रं तस्य भवेत् ध्रुवम् । वस्त्राभरणमाख्यानि शयनान्यासनानि च । श्रेयांसि चात्मनो यानि तानि देयानि वै गुरौ । तोषयेच्च प्रयत्नेन कर्मणा मनसा गिरा' । योगिनीतन्त्रे । 'मन्त्रं दत्त्वा गुरुश्चैव उपवासं यदाचरेत् । मोहान्धकारनरके कृमिर्भवति नान्यथा । दीक्षां कृत्वा यदा मन्त्री उपवासं समाचरेत् । तस्य देवः सदा रुष्टः शापं दत्त्वा व्रजेत् पुरम्' । उद्योगपर्वणि 'गुरोरप्यवलितस्य कार्याकार्यमजानतः । उत्पथप्रतिपन्नस्य परित्यागो विधीयते' ।

तत्र प्रयोगः । पूर्वदिने कृतोपवासः कृतहविष्यादिको वा यथाशक्ति सहस्रादिकां सावित्रीं जप्त्वा परदिने कृतस्नानादिः पुण्याहं स्वस्ति ऋद्धिञ्च वाचयित्वा ओं तद्विष्णोरित्यनेन विष्णुं संस्मृत्य ताम्रपात्रे कुशत्रयतिलफलपुष्पजलान्यादाय ओं तत्सदय अमुके मासि अमुकराशिस्थे भास्करे अमुकपक्षे अमुकतिथावमुकगोत्रः श्री अमुकदेवशर्मा पापक्षयदिव्यज्ञानलाभकामः अमुकदेवताया अमुकमन्त्रग्रहणमहं करिष्ये इति सङ्कल्प्य गुरुं वृणुयात् तत्र क्रमः । उत्तरामुखो गुरोः समीपे आसनमानीय ओं साधु भवानास्तामिति वदेत् ओं साध्वहमासे इति प्रतिवाक्यं तदासने कृते गुरुस्तदासने उपविशेत् । ओम् अर्चयिष्यामी भवन्तम् ओम् अर्चय इति प्रतिवचनम् । ततः पादार्घ्याचमनीयगन्धपुष्पवस्त्रालङ्कारादिभिर्गुरुमभ्यर्च्य दक्षिणं जानुं स्पृष्ट्वा ओम् अद्येत्यादि भवत्सङ्कल्पि-

६५४

दीक्षातत्त्वम् ।

तामुकदेवताया अमुकमन्त्रग्रहणकर्मणि अमुकगोत्रममुक-
 प्रवरम् अमुकदेवशर्माणं गुरुत्वेन भवन्तमहं वृणे । ओं वृतो-
 ऽस्मीति प्रतिवचनं कृताञ्जलिः ओं यथाविहितं वृतकर्म कुरु ।
 ओं यथान्नानं करवाण्येति प्रतिवचनम् । ततो गुरुः सामा-
 न्यार्घ्यं कृत्वा तज्जलेनास्त्राय फट् इति द्वारमभ्युक्ष्य ओं द्वार-
 देवताभ्यो नम इति संपूज्य वामाङ्गं सृशन् दक्षिणाङ्गं सङ्को-
 चयन् दक्षिणपादपुरःसरं मण्डपे प्रविश्य ओं वास्तुपुरुषाय
 नमः ओं ब्रह्मणे नम इति नैऋत्यां संपूज्य निर्निमेषदृष्ट्या
 देयमन्त्रेण दिव्यान् अस्त्राय फट् इति जलेनान्तरीचगान्
 फडिति वामपाणिंघातेस्त्रिभिर्भौमान् विघ्नान्निःसार्य फडिति
 सप्तमन्त्रितान् विकिरानादाय ओम् अपसर्पन्स्त्रित्यादिना
 चतुर्दिक्षु विघ्नानुत्सार्य ओं ह्रीं आधारशक्तिकमलासनाय नम
 इत्यासनं संपूज्य ओम् आसनमन्त्रस्य मेरुपृष्ठ ऋषिरित्यादिना
 प्राङ्मुख उदङ्मुखो वा बन्धपद्मासनो मौनो दक्षिणभागे पूजा-
 द्रव्याणि वामभागे जलं स्थापयित्वा कृताञ्जलिपुटो भूत्वा
 वामदक्षिणमस्तकेषु यथाक्रमं गुरुत्रयगणपतिदेवता नत्वा
 फडिति गन्धपुष्पाभ्यां करौ संशोध्य देयमन्त्रेण वामे क्षिप्त्वा
 ऊर्ध्वोर्ध्वतालत्रयं दत्त्वा षोडशदिग्बन्धनं कृत्वा
 रमिति जलधारया वज्रप्राकारं विचिन्त्य भूतशुद्धिं कुर्यात्
 यथा । सोऽहमिति मन्त्रेण सुसुम्ना वर्त्मना दीपकलिका-
 कारजोवात्मानं हृदयाभोजात् पृथिव्यप्तेजोवायुकाशानि
 शब्दस्पर्शरूपरसगन्धेषु तन्मात्ररूपेषु लीनानि तन्मात्राण्यपि
 भीतिकान्यहङ्कारे वाक्पाणिपादपायूपस्थकर्मेन्द्रियाणि त्वक्-
 चक्षुः श्रोत्रजिह्वानासिकाज्ञानेन्द्रियाणि उभयात्मकमन-
 साहङ्कारेऽहङ्कारं महत्तत्त्वे महत्तत्त्वञ्च प्रकृती कुण्डलिनीरू-
 पायां तन्मूलाधारस्त्राधिष्ठानत्रिणिपूरकानाहतविशुद्धाद्याख्यानि

दीक्षातत्त्वम् ।

६५५

षट्चक्राणि भित्त्वा कुण्डलिन्या सह शिरोऽवस्थितसहस्रदल-
 कमलोदरवर्त्तिचन्द्रमण्डलान्तर्गतपरमात्मनि संयोज्य नाभि-
 स्थेन यमिति वायुबीजोत्थेन वायुना सकलं संशोष्य हृदयस्थेन
 रमिति वज्रबीजोत्थेन वज्रिना पापपुरुषं संदह्य दोषान्
 दहेत् । लमिति वायुबीजोत्थेन वायुना भस्म प्रोक्षार्थं वायुना
 वमिति वरुणबीजोत्थेन चन्द्रमण्डलविगलदन्तधारया सपाद-
 समस्तं देवतारूपं देहसम्पाद्यात्मादीनि स्वस्वस्थाने संस्थाप्य
 जीवात्मानं हृदयाभोजे हंस इति मन्त्रेण नयेत् । ततो
 ऋष्यादिन्यासः । यथा गोपाले । शिरसि नारद ऋषये
 नमः मुखे गायत्रीकुन्दसे नमः हृदि श्रीकृष्णाय देवतायै नमः
 एवमन्यत्र यथायथमूहनीयम् । ततः प्राणायामः । यथा
 तत्तन्मन्त्रेण षोडशधा जप्तेन दक्षिणानासां धृत्वा वामनासया
 वायूत्तोलनरूपं नासिके धृत्वा चतुःषष्टिवारजपेन वायुधारण-
 रूपं कुम्भकं कृत्वा वामनासां धृत्वा दक्षिणनासया द्वात्रिंश-
 द्वारजपेन त्यागरूपं रेचकं कुर्यात् । पुनर्वामनासया पूरकम्
 उभाभ्यां कुम्भकं दक्षिणया रेचकमिति । ततो मातृका-
 न्यासः यथा अं नम इति ललाटे इत्यादि तः करन्यासः ।
 गोपाले यथा क्लीं अङ्गुष्ठाभ्यां नम इत्यादि । ततोऽङ्गन्यासः ।
 गोपाले क्लीं हृदयाय नम इत्यादि अन्यत्र यथायथमूह्यम् ।
 ततः पीठन्यासः । श्रीं धर्माय नम इति दक्षिणांशे एवं सर्वत्र
 ओङ्कारादि नमोऽन्तेन ज्ञानाय वामांशे । वैराग्याय ऐश्वर्याय
 ऊरुद्वये । मुखे अधर्माय वामपार्श्वे अज्ञानाय नाभौ अवै-
 राग्याय दक्षिणपार्श्वे अनेश्वर्याय हृदि अनन्ताय पद्माय अं
 सूर्यमण्डलाय द्वादशकलात्मने उं सोममण्डलाय षोडशकला-
 त्मने मं वज्रिमण्डलाय दशकलात्मने सं सत्वाय रं रजसे तं
 तमसे आं आत्मने अं अन्तरात्मने पं परमात्मने क्लीं ज्ञानात्मने

६५६

दीक्षातत्त्वम् ।

तत्तद्देवतोक्तपीठमन्त्रं न्यसेत् । ततो मन्त्रस्य दशविधसंस्कारान् कुर्यात् । यथा चन्दनलिप्तताम्रादिपात्रे मातृकायन्त्रं विलिख्य तत्रस्थ मन्त्रवर्णान् मनसा समाहृत्य वीजादिरूपमन्त्रनिरूपणं जननम् । १ । तत्तद्बीजाक्षरं प्रत्येकम् ओङ्कारद्वयमध्यस्थं कृत्वा दशधा जपरूपं जीवनम् । २ । चन्दनलिप्तताम्रादिपात्रे तान् वीजादिरूपमन्त्रवर्णान् समालिख्य यमिति वायुबीजेन चन्दनोदकप्रक्षेपरूपं ताडनम् । ३ । पुनस्तान् मन्त्रसंख्यककरवीरजैः पुष्पैः प्रत्येकं रमिति वज्रबीजेन दहनरूपं बोधनम् । ४ । नमोऽन्तं दातव्यमन्त्रमुच्चार्य तत्तद्देवतानाम उच्चार्याभिषिञ्चामीत्यनेन मन्त्रवर्णसंख्यया मन्त्रवर्णोपरि अश्वत्थपल्लवोदकप्रक्षेपरूपमभिषेकम् । ५ । मनसा समस्तमन्त्रं सच्चिन्त्य ओं क्लीं इति मन्त्रेण मलत्रयदहनरूपं विमलीकरणम् । ६ । ओं क्लीं इति मन्त्रजपेन कुशोदकेन मन्त्रस्य प्रत्यक्षरप्रक्षालनरूपमाप्यायनम् । ७ । दातव्यमन्त्रमुच्चार्य तमहं तर्पयामि नम इति मन्त्रेण देवतीर्थजलेन लिखितमन्त्राधाररूपयन्त्रे मन्त्रतर्पणम् । ८ । ओं क्लीं श्री इत्युच्चार्य दातव्य मन्त्रोच्चारणरूपं दीपनम् । ९ । जप्यमानमन्त्रस्यान्यत्राप्रकाशनरूपं गोपनम् । १० । गुरुशिष्योभयकर्तृकं कुर्यात् । ततोऽर्घ्यस्थापनं यथा स्वामे त्रिकोणमण्डलं विलिख्य तत्र आधारशक्तये नम इति संपूज्य तत्र त्रिपदिकामारोप्य फलितिशङ्खं प्रक्षाल्य तदुपरि संस्थाप्य विश्वसृतामृतस्वरूपैस्तोयैः सुगन्धिपुष्पाद्यैराकीर्य तीर्थमावाह्य आधारं दशकलात्मानं पावकं शङ्खं द्वादशकलात्मानं रविं जलं षोडशकलात्मानं सोमम् अनुक्रमतः स्मृत्वा संपूज्य जलं स्पृष्ट्वा मूलं जपेत् । ह्रमित्यवगुण्ठ्य षडङ्गन्यासमन्त्रैः अग्नीशासुरवायुमध्ये दिक्षु च क्रमेण संपूज्य मत्स्यमुद्रया

दीक्षातत्त्वम् ।

६५७

पात्रमाच्छाद्य वमिति धेनुमुद्रया मृतीकृत्य वषडिति गालि-
नौमुद्रां प्रदर्श्य वी षडिति वीक्ष्य मूलमष्टधा जप्त्वा षडिति
संरक्ष्य यथायथमुद्राः प्रदर्श्य दक्षिणे प्रोक्षणीपात्रे तज्जलं
किञ्चिद्दत्त्वा तेनोदकेनात्मानं पूजोपकरणञ्चाभ्युक्ष्य न्यासक्रमेण
धर्मादीन् स्वीयदेहे पूजयित्वा शिरोहृदयाधारपादसर्वाङ्गेषु
मूलेन पुष्पाञ्जलिपञ्चकं निःक्षिप्य मानसिकगन्धाद्यैर्नैवेद्य-
रहितैर्मानसपूजां कुर्यात् ततः शालग्रामे कुम्भजले वा ओम्
आधारशक्तये नमः एवं कूर्माय अनन्ताय पृथिव्यै क्षीरसमुद्राय
मणिमण्डपाय कल्पतरुभ्यः मणिवेदिकायै रत्नसिंहासनाय
धर्माय ज्ञानाय वैराग्याय ऐश्वर्याय अधर्माय अज्ञानाय
अवैराग्याय अनैश्वर्याय आनन्दाय कन्दाय सम्मिल्लाय प्रक-
तिमयपत्रेभ्यः विकारमयकेशरेभ्यः कर्णिकायै अं सूर्यमण्ड-
लाय द्वादशकलात्मने उं सोममण्डलाय षोडशकलात्मने
मं वज्रिमण्डलाय दशकलात्मने सं सत्वाय रं रजसे तं
तमसे आं आत्मने पं परमात्मने ओङ्कारादिनमो-
ऽन्तेन सर्वत्र पूजयेत् । ततस्तत्तन्मन्त्रोक्तां नवशक्ति-
पूजां पीठपूजाञ्च कुर्यात् । आवाहनादिरहितां यन्त्रे तु
तत्तद्देवतोक्तरूपं ध्यात्वा तत्तन्मन्त्रं समुच्चार्य सुसुम्ना वर्त्मना
वामेनासारम्भुर्निर्गतं तेजः पुष्पाञ्जलिमादाय । गोपाले चेत्
मन्त्रमुच्चार्य ओं श्रीकृष्ण इहागच्छ इत्यादिमुद्राभिः कुर्यात् ।
प्राणप्रतिष्ठामन्त्रस्तु । आं क्लीं क्रौं इत्यादि । विसर्जनमन्त्रस्तु
क्षमस्वेति । एवमन्यदेवपत्रेऽप्युच्यम् । एतत्त्रयरहितपूजा-
स्थाने तत्तद्देवतोक्तरूपं ध्यात्वा देवताङ्गे षडङ्गन्यासं मन्त्र-
विशेषे नेत्रशून्यत्वेन पञ्चाङ्गन्यासं वा कवचेनावगुण्ठनम्
इत्यादि धेन्वादिमुद्राः प्रदर्श्य मूलमुच्चार्य यथासम्भवमास-
नादि ताम्बूलान्तं दद्यात् । यथा गोपाले मूलमुच्चार्य इद-

६५८

दौक्षातत्त्वम् ।

भासनम् श्रीं श्रीकृष्णाय नम इत्यासनं दद्यात् एवं सर्वदृश्य-
दानरूपोपचारि सर्वत्रोपचारान्तरे जलं दद्यात् । पाद्यं
श्यामाकदूर्वापराजितायुक्तजलं पादास्त्रुजे दद्यात् । एवं
जातीलवङ्गकङ्कोलयुक्तजलमाचमनीयं मुखे स्वधान्तेन ।
गन्धपुष्पाक्षतयवकुशाग्रतिलसर्षपयुक्तजलमर्घ्यं स्वाहान्तेन
मूर्धनि । दधिमधुघृतात्मकमधुपर्कः स्वधान्तेन मुखे । पूर्व-
वदाचमनीयम् । लौकिकषष्ट्यधिकशतत्रयतोलकपरिमिता-
न्यूनं स्नानीयं निवेदयामीत्यन्तेन चन्दनकर्पूरागुरुमिलितो
गन्धः । तत्तद्देवतादेयपुष्पं वीषडन्तेन । गुग्गुल्वगुरुश्चेत-
वीरणमूलं शर्करामधुचन्दनघृताक्तो धूपः इत्यादि नमोऽन्तेन
पूजयेत् । ततस्तत्तद्देवताङ्गमन्त्रैरङ्गपूजनम् आवरणपूजन-
मित्यादि लोकपालास्त्रपूजान्तं विधाय मन्त्रं दद्यात् । तत्र
क्रमः गुरुर्निजवक्तुं स्ववक्तृत्वेन चिन्तयित्वा भूमौ मन्त्रं
विलिख्य अमुकमन्त्राय नम इति मन्त्रं संपूज्य तत्तद्देवतोक्त-
धेन्वादिमुद्राप्रदर्शनपूर्वकम् ऋथादिकं ब्रूयात् । यथा दातव्य-
गोपालमन्त्रस्य नारदपिर्णायत्रीकन्दः श्रीकृष्णोदेवता अमुक-
मन्त्रदापने विनियोगः । एवमन्यत्रापि ततः शिष्यशिरसि
हस्तं दत्त्वा अष्टोत्तरशतं जप्त्वा ओम् अद्येत्यादि अमुकगोत्राया-
मुकदेवशर्मणे मन्त्रमुच्चार्य इमं मन्त्रं विष्णुदेवतं तुभ्यमहं
सम्प्रददे इत्युत्सृज्य ददस्वेति प्रत्युक्ते शिष्यदक्षिणकर्णे त्रिव-
देत् । विद्यादाने तु इमां विद्यां विष्णुदेवताम् इति विशेषः ।
शिष्यः मन्त्रोऽयं विष्णुदेवत इति वदेत् । विद्याग्रहणे इयं
विद्या विष्णुदेवता इति । ततोऽष्टवारं गुरुदेवतयोरैक्यं भाव-
यन् जपेत् । भूमौ दण्डवत्पतित्वा प्रणम्य शिरसि गुरुपाद-
द्वयं योजयेत् । गुरुस्तु 'उत्तिष्ठ वत्स मुक्तोऽसि सम्यगाचारवान्
भव' इत्युक्त्वा एष मन्त्रः आवयोस्तुल्यफलदोऽस्तु इति वदेत् ।

श्रीदुर्गार्चनपद्धतिः ।

६५६

ततो मन्त्रमुच्चार्य एष मन्त्रः आवयोः सम्यक्फलदोऽस्तु इति गुरुं प्रणमेत् । ततो 'वरं प्राणपरित्यागश्छेदनं शिरसोऽपि वा । न त्वनभ्यर्च्य भुञ्जीत भगवन्तमधोक्षजम्' । इत्युच्चार्य पूजानियमं कुर्यात् । अन्यत्र तु तत्तदूहेत् ततो मन्त्रग्रहण-प्रतिष्ठार्थं दक्षिणां काञ्चनादिकां तस्मै निवेदयेत् । ततः प्रभृति गुरोः प्रियमेवाचरेत् । 'त्वत्प्रसादादहं देव कृतकृत्योऽस्मि सर्वतः । मायानृत्यमहापाशादिमुक्तोऽस्मि शिवोऽस्मि च' । इति पठित्वाऽच्छिद्रावधारणं कृत्वा वैगुण्यसमाधानार्थम् ओं तद्विष्णोरित्यादिना विष्णुं स्मृत्वा विप्रान् भक्ष्य-भोज्यदक्षिणाभिः यथाशक्ति परितोषयेत् । गुरुस्तु मन्त्रदानानन्तरं स्वसिद्धये सहस्रकृत्वो मन्त्रं विद्यां वा प्रणिधानपूर्वकं जपेत् ।

इति बन्धघट्टीय श्रीहरिहरभट्टाचार्यात्मज श्रीरघुनन्दन-
भट्टाचार्यविरचितं दीक्षातत्त्वं

समाप्तम् ।

श्रीदुर्गार्चनपद्धतिः ।

ओं दुर्गायै नमः ।

प्रणम्य सच्चिदानन्दरूपां दुर्गां जगन्मयीम् ।

प्रयोगं शरदर्चाया वक्ति श्रीरघुनन्दनः ॥

अथाश्विन दुर्गापूजा नित्या काम्या च । अथ नवम्यादि-
कल्पः । पौर्णमास्यन्ताश्विनकृष्णपक्षे आर्द्रानक्षत्रयुक्त-नवम्या-
न्तिथौ केवलायां वा पूर्वाह्ने दिवाद्रुमे वा उभयदिने तथा-
विधलाभि पूर्वादिने शुक्लादरेण कृत्यम् । तत्र च पूर्वादिने

६६०

श्रीदुर्गार्चनपद्धतिः ।

कृतनियमः परदिने कृतस्नानादिः गोमयीपलितदेशे दर्भपाणि-
 राचान्त उदङ्मुख उपविष्टः ओं स्वस्ति न इत्यादिना ब्राह्मणान्
 स्वस्ति वाचयित्वा ओं सूर्यः सोम इति पठित्वा ओं तद्विष्णो-
 रित्यादिना विष्णुं स्मृत्वा ओं तत्सदित्युच्चार्य ताम्रपात्रं
 शुक्ति-शङ्ख-पाषाण-केवल-हस्त-कांस्यं रूप्य-सीसक लौह सृग्म-
 येतरपात्रं वा दर्भत्रय पुष्प-फल-तिल-जलपूर्णं यथोपपन्नं
 वा आदाय ओम् अद्य आश्विने मासि कृष्णे पक्षे नवम्यान्तिथा-
 वारभ्य शुक्लदशमीं यावत् प्रत्यहम् अमुकगोत्रः श्री अमुक-
 देवशर्मा अतुलविभूतिकामः संवत्सर सुखप्राप्तिकामो दुर्गा-
 प्रीतिकामो वा वार्षिक-शरत्कालीन-दुर्गा-महापूजामहं
 करिष्ये । इति संकल्प्य तज्जलमैशान्यां क्षिपेत् । ततो देवो
 व इति पठेत् । यद्यन्यद्वारा पूजां करोति तदा तं वरयेत् ।
 यथा यजमानः प्राङ्मुखः उदङ्मुखं ब्राह्मणम् ओं साधु भवा-
 नास्ताम् इति वदेत् । ओं साध्वहमासे इति प्रतिवचनम् । ओम्
 अर्चयिष्यामी भवन्तम् इति वदेत् । ओम् अर्चय इति प्रति-
 वचनम् । ततो गन्ध-पुष्पवस्त्राङ्गुरीयकादिना अर्चयित्वा
 दक्षिणं जानु स्पृष्ट्वा ओम् अद्येत्यादि वार्षिक-शरत्कालीन-
 दुर्गा महापूजाकरणाय अमुकगोत्रममुकदेवशर्माणं भवन्तं
 ब्राह्मणमहं वृणे इति वदेत् । ओं वृतोऽस्मीति प्रतिवचनम् ।
 यथाविहितं कर्म कुरु इति वदेत् । ओं यथाज्ञानं करवा-
 णीति प्रतिवचनम् । यदि तद्दिने एकदा संकल्प्य शुक्लनवमी-
 पर्थ्यन्तं देवीमाहात्म्यं पठति तदा पूर्ववज्जलमादाय अद्ये-
 त्यादि नवम्यान्तिथावारभ्य शुक्लनवमीपर्थ्यन्तं प्रत्यहं वार्षिक-
 शरत्कालीन-दुर्गा-महापूजायाम् अमुकगोत्रः श्री अमुकदेव-
 शर्मा सर्वबाधाविनिर्मुक्तत्वधनधान्यसुतान्वितत्वकामः सर्व-
 कामसिद्धिकामो वा विशिष्टफलोद्देशे तु धनकामः पुत्रकाम

श्रीदुर्गाचर्चनपद्धतिः ।

६६१

इत्यादिना वा श्रीदुर्गाप्रौतिकामो वा मार्कण्डेयपुराणीय श्री सावर्णिः सूर्यतनय इत्यादि सावर्णिर्भविता मनुरित्यन्तं देवी-माहात्म्यमहं पठिष्यामि श्रवणपक्षे श्रोष्यामि । प्रत्यहं संकल्प-पक्षे आरभ्येत्यादि न वक्तव्यम् । अन्यद्वारा पाठपक्षे पाठयिष्ये इति विशेषः । ततः पूर्ववत् संपूज्य वरयेत् । ओम् अद्ये-त्यादि शतावृत्ति देवीमाहात्म्यपाठकर्मणि पञ्चदशावृत्ति देवी-माहात्म्यपाठाय वा अमुकगोत्रम् अमुकदेवशर्माणं ब्राह्मणं भवन्तमहं वृणे इति वरयेत् । एवमन्यसंख्यापाठेष्वप्युक्तम् । ततो देवीं संपूज्य श्रीं नारायणाय नमः श्रीं नाराय नमः श्रीं नरोत्तमाय नमः श्रीं देव्यै नमः सरस्वत्यै नमः श्रीं व्यासाय नम इति नत्वा ऋष्यादिज्ञानाय इदं पठेत् । प्रथमचरितस्य ब्रह्म ऋषिरित्यादि पठेत् । पुरस्तात् सूत्रं ततः सुक्ता पुनस्तत् सूत्रं बद्ध्वा पुस्तकमाधारे संस्थाप्य प्रणवाद्यन्तं देवीमाहात्म्यं अर्थं भावयन् अद्भुतं स्पष्टाक्षरं पठेत् । अध्यायमध्ये विरामश्चेत् पुनरध्यायादितः पठेत् । ततः पाठकाय दक्षिणां दद्यात् ।

अथ बोधनम् । विल्ववृक्षसमीपं गत्वा आचान्तो दर्भयुक्ता-सने उपविश्य श्वेतसर्पपमादाय श्रीं वेतालाश्च पिशाचाश्च राक्ष-साश्च सरीसृपाः । अपसर्पन्तु ते सर्वे ये चान्ये विघ्नकारकाः । श्रीं विनायका विघ्नकरा महोग्रा यज्ञहिषो ये पिशिताश-नाश्च । सिद्धार्थकैर्वज्रसमानकल्पैर्मया निरस्ता विदिशः प्रयान्तु इति मन्त्राभ्यां श्वेतसर्पपप्रक्षेपैः विघ्नकरान् अपसार्य गायत्र्या घटस्थापनं कृत्वा घटादिस्थजले श्रीं सूर्याय नम इत्यनेन पूजयेत् एवं सोमाय मङ्गलाय बुधाय वृहस्पतये शुक्राय शनै-श्चराय राहवे केतुभ्यः इति ग्रहान् संपूज्य पञ्चदेवताः संपूज-येत् । एष गन्ध श्रीं सूर्याय नम इति पञ्चोपचारैः गन्ध-पुष्पाभ्यां वा पूजयेत् एवं गणेशं दुर्गां शिवं विष्णुञ्च संपूज्य

५६—क

६६२

श्रीदुर्गार्चनपद्धतिः ।

अर्घ्यस्थापनं कुर्यात् शङ्खादिपात्रे दूर्वाक्षतदधिपुष्पाणि दत्त्वा यथालाभं वा वम् इति धेनुमुद्रयाऽमृतीकृत्य श्रीं विल्ववृक्षाय नम इति अष्टधा जप्त्वा तेन उदकेन आत्मानं पूजोपकरणञ्चाभ्युक्ष्य विल्ववृक्षे एतत् पाद्यं श्रीं विल्ववृक्षाय नमः सामगानामिदमर्घ्यम् । अन्येषाम् एषोऽर्घः । एवमाचमनीयादि दद्यात् । पञ्चोपचारैर्गन्धपुष्पाभ्यां वा पूजयेत् । सम्भवे एतद्वस्त्रं वृहस्पति-दैवतम् श्रीं विल्ववृक्षाय नम इति दद्यात् । ततो विल्ववृक्षे दुर्गां पूजयेत् । यथा शङ्खादिपात्रं पुरतो निधाय त्रिभागं जलेनापूर्य्य तत्र अक्षतपुष्पाणि दत्त्वा यथालाभं वा वम् इति धेनुमुद्रया अमृतीकृत्य “श्रीं जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी दुर्गा शिवा क्षमा धात्री स्वाहा स्वधा नमोऽस्तु ते ओम् ह्रीं दुर्गायै नमः” इति अष्टधा जप्त्वा तेन उदकेन आत्मानं पूजोपकरणञ्च अभ्युक्ष्य ओम् जटाजूट्यादि ध्यात्वा स्वशिरसि पुष्पं दत्त्वा मानसोपचारैः संपूज्य अर्घ्यान्तरं स्थापयित्वा पुनर्ध्यात्वा ओम् भूर्भुवः स्वर्भगवति दुर्गे इहागच्छ इहागच्छ इह तिष्ठ इह तिष्ठ इति उक्त्वा एतत् पाद्यम् ओम् जयन्तीत्यादि उक्त्वा ओम् ह्रीं दुर्गायै नमः एवमर्घ्यादिभिः पञ्चोपचारैर्वा पूजयेत् । सम्भवे वस्त्रं पुनराचमनीयञ्च दद्यात् । ततो वायुपुरःसरमञ्जलिं बद्ध्वा पठेत् । ओम् इषे मास्यसिन्ने पक्षे नवम्यामार्द्रयोगतः । श्रीवृक्षे बोधयामि त्वां यावत् पूजां करोम्यहम् । ऐं रावणस्य वधार्थाय रामस्यानुग्रहाय च । अकाले ब्रह्मणा बोधो देव्यास्त्वयि कृतः पुरा । इति मन्त्राभ्यां देवीं बोधयेत् । शूद्रस्तु प्रणवव्याहृतिस्थाने नम इत्युच्चार्य्य पूजयेत् । ततः शुक्लनवमीपर्यन्तं यथाशक्ति दुर्गां पूजयेत् । षष्ठ्यादौ देव्या आमन्त्रणादिकन्तु प्रक्ष्यमाणं बोध्यम् ।

श्रीदुर्गावर्चनपद्धतिः ।

६६३

अथ प्रतिपदादिकल्पः । तत्र उभयदिने पूर्वाह्ने शुक्ल-
प्रतिपक्षाभे पूर्ववत् संकल्पपूर्वकालीनं कर्म कृत्वा ओम् अद्य
आश्विने मासि शुक्ले पक्षे प्रतिपदि तिथावारभ्य शुक्लदशमीं
यावत् प्रत्यहम् अमुकगोत्रोऽमुकदेवशर्मा स्कन्दवत् पालना-
संख्यातपुत्रदारधनर्द्धिमदैहिक-परमभोगलाभपूर्वकामुत्र देव-
भवनकामो दुर्गाप्रीतिकामो वा वार्षिकशरत्कालीन
श्रीदुर्गा महापूजामहं करिष्ये इति संकल्प्य “ओं देवोवो
द्विषिणोदा पूर्णं विवृष्टा सिचम् । उदा सिञ्चध्वमुप वा
पृणध्व मा दिदो देव ओहते ॥” इति सूक्तं पठित्वा घटं
संस्थाप्य पूर्ववत् दुर्गां संपूज्य गन्धामलक्यादि केशसंस्कार-
द्रव्यं कङ्कतिकाञ्च दद्यात् । एवं द्वितीयायां केशसंयमनहेतुकं
षष्ठोदरकं, तृतीयायां चरणरागार्थमलक्तकं, शिरसि धारणार्थं
सिन्दूरं, मुखविलोकनार्थं दर्पणं, चतुर्थ्यां मधुपर्कं, तिलकाकारं
रजतादिकं नेत्रमण्डनं कज्जलं, पञ्चम्यां चन्दनमनुलेपनं
यथाशक्त्या अलङ्कारञ्च दद्यात् । षष्ठ्यादिषु देवोबोधनादिकं
पञ्चाद्वक्ष्यमाणं बोध्यम् ।

अथ षष्ठ्यादिकल्पः । तत्राश्विनशुक्लपक्षे पक्षीप्रवेशपूर्व-
दिने ज्येष्ठानक्षत्रयुक्तायां षष्ठ्यां केवलायां वा सायं समये
बोधनात् प्राक् प्रातरादिकाले वा विष्वक्क्षसमीपं गत्वा पूर्व-
वत् संकल्पप्राक्कालीनं कर्म कृत्वा ओम् अद्य आश्विने मासि
शुक्ले पक्षे षष्ठ्यान्तिथावारभ्य शुक्लदशमीं यावत् प्रत्यहम्
अमुकगोत्रः अमुकदेवशर्मा अतुलभूतिकामः संवत्सरसुख-
कामो श्रीदुर्गाप्रीतिकामो वा वार्षिकशरत्कालीनदुर्गापूजामहं
करिष्ये इति संकल्प्य देवोव इति पठित्वा घटं संस्थाप्याचारात्
विष्वक्तरुं दुर्गां संपूज्य सायं ज्येष्ठायुक्तायां केवलायां वा षष्ठ्यां
विष्वक्तरुसमीपं गत्वा पूर्ववत् दुर्गापूजान्तं कर्म कृत्वा

६६४

श्रीदुर्गार्चनपद्धतिः ।

“ए’ रावणस्य बधार्थाय रामस्यानुग्रहाय च । अकाले ब्रह्मणा
 बोधो देव्यास्त्वयि कृतः परा । अहमप्याश्विने षष्ठ्यां सायाह्ने
 बोधयाम्यतः ।” इति देवीं बोधयित्वा च विष्वक्काममन्त्रयेत् ।
 यदि तु पत्नीप्रवेशपूर्वादिने सायं षष्ठ्यलाभस्तदा पूर्वदिने सायं
 बोधयित्वा परदिने आमन्त्रयेत् । यदि उभयदिने सायं षष्ठ्य-
 लाभः तदा सायं विना षष्ठ्यां बोधयित्वा सायमामन्त्रयेत् । यथा
 “मेरुमन्दर कैलास हिमवच्छिखरे गिरौ । जातः श्रीफलवृक्ष
 त्वमम्बिकायाः सदा प्रियः । श्रीशैलशिखरे जातः श्रीफलः
 श्रीनिकेतनः । नेतव्योऽसि मया गच्छ पूज्यो दुर्गास्वरूपतः ।”
 ततो गन्धं गृहीत्वा ओम् गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां
 करीषिणीम् । ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम् ।
 अनेन गन्धेन अमुष्या भगवत्या दुर्गादेयाः शुभाधिवासनमस्तु ।
 ततो महीं गृहीत्वा तत्तन्मन्त्रं गायत्रीं वा पठित्वा अनया
 मञ्ज्या अमुष्या भगवत्या दुर्गादेव्याः शुभाधिवासनमस्तु इत्यादिना
 विष्वक्कामेऽधिवासयेत् । पुनर्गन्धेन । तत्र द्रव्याणि मही गन्धः
 शिला धान्यं दूर्वा पुष्पं फलं दधि । घृतं स्वस्तिक सिन्दूरं
 शङ्ख कज्जल रोचनाः । सिद्धार्थः काञ्चनं रूप्यं ताम्रं चामरं
 दर्पणम् । दीपः प्रशस्तिपात्रञ्च विज्ञेयमधिवासने । ततः
 आचारात् पूजामण्डपं गत्वा आचम्य कदली दाडिमी धान्यं
 हरिद्रा माणकं कचुः । विल्वोऽशोको जयन्ती च विज्ञेया
 नवपत्रिका । इत्युक्तनवपत्रिकां प्रतिमाञ्च संपूज्य गन्धा-
 दिना अधिवासयेत् ।

अथ सप्तम्यादिकल्पः । तत्र सप्तम्यां मूलानक्षत्रयुक्तायां
 केवलायां वा कृतस्नानादिः पूर्ववत् संकल्पप्राक्कालीनं कर्म
 कृत्वा संकल्पं कुर्यात् । नवम्यादि कल्पकरणे तु संकल्पं
 विनैव सप्तम्यादि कृत्यं कुर्यात् ।

श्रीदुर्गाचर्चनपद्धतिः ।

६६५

अथ सप्तमीकृत्यम् । तत्र सप्तम्यां मूलानक्षत्रयुक्तायां वा
 क्षतस्नानादिः कन्यालग्ने चरांशे वा स्थापनाय विल्वतरुसमीपं
 गत्वा तमभ्यर्च्य कृताञ्जलिः “ओम् विल्ववृक्ष महाभाग सदा त्वं
 शङ्करप्रियः । गृहीत्वा तव शाखाञ्च दुर्गापूजां करोम्यहम् ।
 शाखाच्छेदोद्भवं दुःखं न च कार्यं त्वया प्रभो । क्षम्यतां
 विल्ववृक्षेश वृक्षराज नमोऽस्तु ते ।” इत्युक्त्वा विल्ववृक्षाद्वायव्य-
 नैर्ऋतेतरस्यां शाखां फलयुगलशालिनीं केवलां वा शाखाम्
 ओम् छिन्दि छिन्दि फट् फट् हुं फट् स्वाहा इत्यनेन छेदयेत् ।
 ततस्तां शाखां गृहीत्वा पूजालयमागत्य पीठोपरि स्थापयेत् ।
 ततः श्वेतसर्पपमादाय ओम् वेतालाश्च पिशाचाश्च राक्षसाश्च
 सरीसृपाः । अपसर्पन्तु ते सर्वे ये चान्ये विघ्नकारकाः ।
 विनायका विघ्नकरा महोग्रा यज्ञहिषो ये पिशिताशनाश्च ।
 सिद्धार्थकैर्वज्रसमानकल्पैर्मया निरस्ता विदिशः प्रयान्तु ।
 इत्याभ्यां श्वेतसर्पपत्रेपैर्विघ्नकरान् अपसार्य माषभक्तबलिं
 गृहीत्वा एष माषभक्तबलिः ओम् जय त्वं कालि सर्वेशे सर्व-
 भूतगणाह्वते । रक्ष मां निजभूतेभ्यो बलिं गृह्ण नमोऽस्तु ते ।
 ओम् काल्यै नमः । ओम् मातर्मातर्वरे दुर्गे सर्वकामार्थ-
 साधिनि । अनेन बलिदानेन सर्वान् कामान् प्रयच्छ मे ।
 इति प्रार्थयेत् । तत आचारादपराजितालतावद्वां नवपत्रिकां
 विल्वशाखाञ्च स्थापयित्वा ओम् विल्वशाखायै नम इति
 संपूज्य विल्वशाखायां मृगमयप्रतिमायाञ्च एतत् पादम् ओम्
 चामुण्डायै नम इति चामुण्डां संपूज्य ओम् श्रीगैलशिखरे
 जातः श्रीफलः श्रीनिकेतननः । नतव्योऽसि मया गच्छ
 पूज्यो दुर्गास्वरूपतः । चामुण्डे चल चल चालय चालय
 श्रीघ्नं मम मन्दिरं प्रविश पूजालयं गच्छ स्वाहा इति वदेत् ।
 ततो घटं संस्थाप्य नवग्रहपञ्चदेवताः संपूज्य मृगमयप्रतिमां

६६६

श्रीदुर्गाचर्चनपद्धतिः ।

तद्वक्षिणे नवपत्रिकाञ्च गीतवाद्यादिभिः पीठोपरि स्थापयित्वा भूतशुद्धादिकं विधाय सामान्यार्घ्यं स्थापयित्वा देवीसमीपे ताम्रादिपात्रे विल्वशाखां स्थापयित्वा ओम् आरोपितासि दुर्गे त्वं मृण्मये श्रीफलेऽपि च । स्थिरात्यन्तं हि नो भूत्वा गृहे कामप्रदा भव । ओम् स्थां स्थीं स्थिरा भवेति स्थिरोक्त्य प्राणप्रतिष्ठां कुर्यात् । यथा । प्रतिमायाञ्चक्षुषि कज्जलं दत्त्वा कपोलौ स्पृष्ट्वा ओम् कालि कालि स्वाहा हृदयाय नमः । ओम् कालि वज्रिणि शिरसि स्वाहा । ओम् कालि कालेश्वरि शिखायै वषट् । ओम् कालि कालि वज्रेश्वरि कवचाय हुम् । ओम् कालि वज्रेश्वरि लीहदण्डायै स्वाहा । नेत्रत्रयाय वीषट् । ओम् कालि लीहदण्डायै अस्त्राय फट् । ओम् जयन्तीत्यादि पठित्वा हृदयेऽङ्गुष्ठं दत्त्वा अस्यै प्राणाः प्रतिष्ठन्तु अस्यै प्राणाः क्षरन्तु च । अस्यै देवत्व संख्यायै स्वाहा । पुनः कालि कालि स्वाहा हृदयाय नम इत्यादि सर्वम् ओम् जयन्तीत्यादि च पठित्वा ओम् मनो जूति-जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनो त्वरिष्टं यज्ञं समिमं दधातु विश्वेदेवास इह मादयन्तामीम् प्रतिष्ठ इत्येतैः कालिकापुराणोक्तमन्त्रैरिति । अथवा आगमोक्तमन्त्रैः प्राणप्रतिष्ठा यथा । हृदये हस्तं दत्त्वा ओम् आं ह्रीं क्रौं यं रं लं वं शं षं सं हौं हं सः भगवत्या दुर्गायाः प्राणा इह प्राणाः । पुनरपि दुर्गाया इत्यन्तमुक्त्वा जौव इह स्थितः । पुनः दुर्गाया इत्यन्तमुक्त्वा इह सर्वेन्द्रियाणि वाङ्मनस्त्वक्चक्षुःश्रोत्रघ्राणप्राणा इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा इति । एवमन्येषां गणेशादीनाम् । ततः सपुष्पाक्षतमादाय देवीं ध्यायेत् यथा । ओं जटाजूटसमायुक्तामर्द्धन्दुकृतशेखराम् । लोचनत्रयसंयुक्तां पूर्णेन्दुसदृशाननाम् । अन्तर्लोपुष्पवर्णां सुप्रतिष्ठां सुलोचनाम् ।

श्रीदुर्गार्चनपद्धतिः ।

६६७

नवयौवनसम्पन्नां सर्वाभरणभूषिताम् । सुचारुदशनां देवीं
पीनोन्नतपयोधराम् । त्रिभङ्गस्थानसंस्थानां महिषासुर-
मर्दिनीम् । त्रिशूलं दक्षिणे हस्ते खड्गं चक्रं क्रमादधः ।
तीक्ष्णबाणं तथा शक्तिं वामतोऽपि निबोधत । खेटकं पूर्ण-
चापञ्च पाशमङ्कुशमेव च । घण्टां वा परशुं वापि वामतः
सन्निवेशयेत् । अधस्तान्महिषं तद्वद् विशिरस्कं प्रदर्शयेत् ।
शिरश्छेदोद्भवं तद्वद्दानवं खड्गपाणिनम् । हृदि शूलेन निर्भिन्नं
निर्यदन्त्रविभूषितम् । रक्तारक्तीकृताङ्गञ्च रक्तविस्फुरितेक्षणम् ।
वेष्टितं नागपाशेन भ्रुकुटीभीषणाननम् । सपाशवामहस्तेन
धृतकेशञ्च दुर्गया । वमद्रुधिरवक्त्रञ्च देव्याः सिंहं प्रदर्शयेत् ।
देव्यास्तु दक्षिणं पादं समं सिंहोपरि स्थितम् । किञ्चिद्दूर्ध्वं
तथा वाममङ्कुष्ठं महिषोपरि । स्तूयमानञ्च तद्रूपममरैः सन्नि-
वेशयेत् । इति अजातशीलस्य कनकोत्तम-कान्तिकान्तमिति
मार्कण्डेयपुराणीयतप्तकाञ्चनवर्णाभामिति पुराणान्तरेकवाक्य-
त्वादितदं मत्स्यपुराणीयं ध्यात्वा स्वशिरसि पुष्पं दत्त्वा सोऽह-
मिति विचिन्त्य सपुष्पाक्षतमादाय आवाहयेत् । ओं सर्वभूत-
मयोद्भूते सर्वासुरविमर्दिनि । अनुकम्पय मां देवि पूजास्थानं
व्रजस्व मे । ओं आवाहयास्यहं देवीं मृण्मये श्रीफलेऽपि च ।
कौलासशिखराद्देवि विन्ध्यार्द्रर्हिमपर्वतात् । आगत्य विल्क्-
शाखायां चण्डिके कुरु सन्निधिम् । ओं भूर्भुवः स्वर्भगवति
दुर्गे इहागच्छ इहागच्छ इति आवाह्य ओम् स्थापितासि
मया देवि मृण्मये श्रीफलेऽपि च । आयुरारोग्यमैश्वर्यं देहि
देवि नमोऽस्तु ते । ओम् भगवति दुर्गे इह तिष्ठ इह तिष्ठ इति
स्थापयित्वा कृताञ्जलिः ओम् दुर्गे दुर्गस्वरूपासि सुरतेजो-
महाबले । सदानन्दकरे देवि प्रसीद मम सिद्धये । ओम्
एह्येहि भगवत्यस्मै शत्रुक्षयजयप्रदे । भक्तितः पूजयामि त्वां

६६८

श्रीदुर्गार्चनपद्धतिः ।

नवदुर्गे सुरार्चिते । पल्लवैश्च फलोपेतैः पुष्पैश्च सुमनोहरैः ।
 पल्लवे संस्थिते देवि पूजये त्वां प्रसीद मे । ओम् दुर्गे देवि
 समागच्छ सान्निध्यमिह कल्पय । यज्ञभागान् गृहाण त्वं
 योगिनीकोटिभिः सह । एह्येहि परमेशानि सान्निध्यमिह
 कल्पय । पूजाभागं गृहाणेमं दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते । दुर्गे
 देवि समागच्छ गणैः परिकरैः सह । पूजाभागं गृहाणेमं
 मखं रत्नं नमोऽस्तु ते । इति ततः शङ्खादिपात्रं पुरतो निधाय
 त्रिभागं जलेन आपूर्य दध्यक्षतपुष्पाणि यथालाभं वा दत्त्वा
 वमिति धेनुमुद्रया अमृतोक्त्या ह्रीं ओम् दुर्गायै नम इति
 अष्टधा जप्त्वा तेनोदकेनात्मानं पूजोपकरणञ्चाभ्युक्ष्य पुनर्ध्यात्वा
 इदमासनम् ओम् जयन्तीत्यादि उच्चार्य ह्रीं ओम् दुर्गायै
 नम इति दत्त्वा कृताञ्जलिः ओम् भूर्भुवः स्वर्भगवति दुर्गे
 देवि स्वागतासि इति उच्चार्य एतत् पादम् इदमर्घ्यं
 सामगेतरस्तु एषोऽर्घ्वं इति पूर्ववद्दद्यात् । इदमाचमनीयम् ।
 एष मधुपर्कः । इदमाचमनीयम् । इदं स्नानीयम् । इदं वस्त्रम् ।
 इदमाभरणम् । एष गन्धः । एतत् पुष्पम् । पुष्पाञ्जलित्रयं
 मालां गृहीत्वा ओम् कौसुमस्रजमेताच्च चन्दनागुरुवर्चिताम् ।
 गृहाण त्वं महादेवि प्रसीद परमेश्वरि । एषा माला
 ओम् जयन्तीत्यादिना दद्यात् । कुमुदोत्पलपद्मानि कुन्द
 शेफालिका जवा । बकुलं तगरञ्चैव पुष्पाष्टकमुदाहृतम् ।
 इदं पुष्पाष्टकम् । विल्वपत्रं गृहीत्वा ओम् अमृतोद्भवं
 श्रीवृक्षं शङ्करस्य सदाप्रियम् । विल्वपत्रं प्रयच्छामि पवि-
 त्रं ते सुरेश्वरि । इदं विल्वपत्रम् । द्रोणपुष्पसत्ते ओम् ब्रह्म-
 विष्णुशिवादीनां द्रोणपुष्पं सदाप्रियम् । तत्ते दुर्गे प्रयच्छामि
 धर्मकामार्थसिद्धये । इदं द्रोणपुष्पम् । एष धूपः । एष दीपः ।
 एतन्नैवेद्यम् । इदमाचमनीयम् । एतत्ताम्बूलम् । अन्यानि

श्रीदुर्गार्चनपद्धतिः ।

६६८

द्रव्याणि यथालाभं दद्यात् । ततो नवपत्रिकासमीपं गत्वा श्रीम्
 एहि दुर्गे महाभागे पत्रिकारोहणं कुरु । तव स्थानमिदं मर्त्ये
 शरणं त्वां व्रजाम्यहम् । इत्युक्त्वा घटे ह्रीं श्रीम् कदलोस्थायै
 ब्रह्मास्थ्यै नम इति क्रमेण दशोपचारैः पञ्चोपचारैर्गन्धपुष्पाभ्यां
 वा पूजयेत् । एवं दाडिमस्थां रक्तदन्तिकां, धान्यस्थां लक्ष्मीं,
 हरिद्रास्थां दुर्गां मानस्थां चामुण्डां, कचुस्थां कालिकां,
 विस्वस्थां शिवाम्, अशोकस्थां शोकरहितां, जयन्तीस्थां
 कार्तिकीञ्च पूजयेत् । एवं गणेशादीनामपि यथाशक्ति
 पूजा । ततो देवीं पाद्यादिभिः संपूज्य छागादिबलिं
 दद्यात् । यथा स्वयमुत्तरामुखः स्नातं पूर्वाभिमुखं बलिं
 कृत्वा श्रीम् अस्त्राय फट् इत्यवलोक्य “श्रीम् अग्निः
 पशुरासीत् तेनाजयन्त स एतल्लोकमजयत्तस्मिन्नग्निः स
 ते लोको भविष्यति तं जेथसि पिबैता अपः । ओं वायुः
 पशुरासीत्तेनाजयन्त स एतल्लोकमजयत्तस्मिन् वायुः स ते
 लोको भविष्यति तं जेथसि पिबैता अपः । ओं सूर्यः
 पशुरासीत्तेनाजयन्त स एतल्लोकमजयत्तस्मिन् सूर्यः स ते
 लोको भविष्यति तं जेथसि पिबैता आपः इति कुशोदकैः
 संप्रोक्ष्य ओं छागपशवे नम इति गन्धादिभिरभ्यर्च्य ओं छाग
 त्वं बलिरूपेण मम भाग्यादुपस्थितः । प्रणमामि ततः सर्व-
 रूपिणं बलिरूपिणम् । चण्डिकाप्रीतिदानेन दातुराप-
 हिनाशनम् । चामुण्डाबलिरूपाय वले तुभ्यं नमोऽस्तु ते ।
 यद्गार्थं पशवः सृष्टाः स्वयमेव स्वयम्भुवा । अतस्त्वां घातया-
 म्यद्य तस्माद् यज्ञे बधोऽबधः । इत्युच्चार्य ऐं ह्रीं श्रीं इति
 मन्त्रेण बलिं शिवरूपिणं ध्यात्वा तस्य मूर्द्धि पुष्पं न्यसेत् ।
 श्रीम् अद्येत्यादि महाबलभवनकामो दुर्गाप्रीतिकामो वा
 इमं छागपशुं वज्रिदैवतं भगवत्यै दुर्गादेव्यै तुभ्यमहं घात-

६७०

श्रीदुर्गाचर्चनपद्धतिः ।

यिथे इति जलं दद्यात् । ततः कृष्णं पिनाकपाणिञ्च कालं-
 रान्निस्वरूपिणम् । उग्रं रक्ताक्षनयनं रक्तमाख्यानलेपनम् ।
 रक्ताम्बरधरश्चैव पाशहस्तं कुटुम्बिनम् । पिवमानञ्च रुधिरं
 भुञ्जानं क्रव्यसंहतिम् । एवं खड्गं ध्यात्वा श्रीं रसना त्वं
 चण्डिकायाः सुरलोकप्रसाधक । इत्यभिमन्त्र्य ह्रीं श्रीं ओम्
 खड्गाय नम इति गन्धादिभिः संपूज्य ओम् अग्निर्विशसनः
 खड्गस्तौल्यधारो दुरासदः । श्रीगर्भो विजयश्चैव धर्मपाल
 नमोऽस्तुते । इत्यष्टौ तव नामानि स्वयमुक्तानि वेधसा ।
 नक्षत्रं कृत्तिका तुभ्यं गुरुर्देवो महेश्वरः । हिरण्यञ्च शरीरं ते
 धाता देवो जनार्दनः । पितापितामहो देवस्त्वं मां पालय
 सर्वदा । नीलजीमूतसङ्काशस्तौल्यदंष्ट्रः कृशोदरः । भाव-
 शुद्धोऽमर्षणश्च अतितेजास्तथैव च । इयं येन धृता क्षौणी
 हतश्च महिषासुरः । तौल्यधाराय शुद्धाय तस्मै खड्गाय ते नमः ।
 इति पुष्पं दद्यात् । आं ह्रीं फट् खड्गमादाय कालि कालि
 वज्रेश्वरि लौहदण्डायै नम इति जप्त्वा पूर्वाभिमुखं बलिं
 स्वयम् उत्तराभिमुखं उत्तराभिमुखं बलिं स्वयं पूर्वाभिमुखो
 वा सकृच्छिन्यात् । ततो मृण्मयादिपात्रे रुधिरमादाय
 देवीसन्मुखे स्थापयित्वा ओम् अद्येत्यादि दशवर्षावच्छिन्न
 दुर्गाप्रौतिकाम इमं ह्यागपशुरुधिरबलिं दास्यामीति संकल्प्य
 एष ह्यागपशुरुधिरबलिः ओम् जयन्तीत्याद्युच्चार्य दद्यात् ।
 ततः ओम् कालि कालि महाकालि कालिके पापनाशिनि ।
 शोणितञ्च बलिं गृह्ण वरदे वामलोचने । ऐं ह्रीं श्रीं कौशिकि
 रुधिरेणाप्यायताम् इति वदेत् । ततश्चागशिरसि ज्वल-
 ह्मशां दत्त्वा ओम् अद्येत्यादि दशवर्षावच्छिन्न दुर्गा प्रौतिकाम
 इमं सप्रदीपच्छागशीर्षबलिं दास्यामीति संकल्प्य एष सप्रदीप-
 च्छागपशुशीर्षबलिः ओम् जयन्तीत्याद्युच्चार्य दद्यात् । ततः

श्रीदुर्गार्चनपद्धतिः ।

६७१

श्रीम् जय त्वं सर्वभूतेशे सर्वभूतसमाहृते । रक्ष मां निज-
 भूतभ्यो बलिं भुङ्क्ष्व नमोऽस्तु ते । इत्युक्त्वा खड्गस्वरुधिरमादाय
 ओम् यं यं स्पृशामि पादेन यं यं पश्यामि चक्षुषा । स स
 मे वश्यतां यातु यदि शक्तसमो भवेत् । ओम् ऐं ह्रीं श्रीं
 नित्यक्लिन्ने मदद्रवे स्नाहा इति सर्ववश्यमन्त्रेण स्वीयललाटे
 तिलकं कुर्यात् । महिषोत्सर्गे तु महिषारण्यपशुत्वेनागस्त्य-
 प्रोक्षितत्वात्तद्दाने अग्निः पशुरासीदित्यादि मन्त्रैः प्रोक्षणं
 नास्ति ततश्च एतत् पाठ्यम् । ओम् यथा वाहं भवान् द्वेष्टि यथा
 वहसि चण्डिकाम् । तथा मम रिपून् हिंस शुभं वह लुलाप ह ।
 यमस्य वाहनस्त्वं वै वररूपधराव्यय । आयुर्वित्तं यशो देहि
 कासराय नमोऽस्तु ते । ओम् महिषपशवे नम इति गन्धादिभिः
 संपूज्य छाग इत्यत्र पशो इत्यूहेन वदेत् । रुधिरदाने तु फलं
 शतवर्षावच्छिन्न दुर्गाप्रौतिः । पूर्ववदन्यत् सर्वम् । मेषघाते
 तु मेष इत्यूहेन प्रयोज्यम् । रुधिरदाने तु एकवर्षाव-
 च्छिन्न दुर्गाप्रौतिः फलम् । अन्यत् सर्वं पूर्ववत् ।
 स्वदेहरुधिरदाने तु एष स्वगात्ररुधिरबलिः ओम् महा-
 माये जगन्मातः सर्वकामप्रदायिनि । ददामि देहरुधिरं
 प्रसीद वरदा भव । इत्युक्त्वा जयन्तीत्यादिना दद्यात् । प्रभू-
 तबलिदाने ह्री वा द्वौन् वायतः कृत्वा संप्रोक्ष्य तत्तत्पशुभ्यो
 नम इति संपूज्य छाग त्वमिति बहुवचनानूहेन प्रयोगः ।
 पञ्चन्तरेऽप्येवं वाक्ये तु महाबलभवनकामोऽतुलविभूतिकामो
 दुर्गाप्रौतिकामो वा एतान् पशून् घातयिष्ये इति रुधिरदाने
 तु एष पशुरुधिरबलिः ओं जयन्तीत्याद्युच्चार्य ह्रीं ओं
 दुर्गायै नमः पशुशीर्षदाने एष सप्रदीपपशुशीर्षबलिः पूर्ववत् ।
 कुष्माण्डेक्षुबलिं दद्यात् । तत ओं जयन्तीति मन्त्रं यथा-
 शक्तिं जप्त्वा ओं गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपं

६७२

श्रीदुर्गाचर्चनपद्धतिः ।

सिद्धिर्भवतु मे देवि त्वत्प्रसादात् त्वयि स्थिते । इति जपं सम-
पयेत् । ततः स्तवं पठेद्यथा । ओं दुर्गां शिवां शान्तिकरीं
ब्रह्माणीं ब्रह्मणः प्रियाम् । सर्वलोकप्रणेत्रीञ्च प्रणमामि सदा-
शिवाम् । मङ्गलां शोभनां शुद्धां निष्कलां परमां कलाम् ।
विश्वेश्वरीं विश्वमातां चण्डिकां प्रणमाम्यहम् । सर्वदेवमयीं
देवीं सर्वलोकभयापहाम् । ब्रह्मेशविष्णुनमिताम् प्रणमामि
सदाशिवाम् । विन्ध्यस्थां विन्ध्यनिलयां दिव्यस्थाननिवासिनीम् ।
योगिनीं योगमातां च चण्डिकां प्रणमाम्यहम् । ईशान-
मातरं देवीमौश्वरीमौश्वरप्रियाम् । प्रणतोऽस्मि सदा दुर्गां
संसारार्णवतारिणीम् । य इदं पठति स्तोत्रं शृणुयाद्वापि यो
नरः । स मुक्तः सर्वपापेभ्यो मोदते दुर्गया सह ।

अथ वरप्रार्थनम् । ओं महिषासि महामाये चामुण्डे मुण्ड-
मालिनि । आयुरारोग्यविजयं देहि देवि नमोऽस्तु ते । भूत-
प्रेतपिशाचेभ्यो रक्षोभ्यः परमेश्वरि । भयेभ्यः मानुषेभ्यश्च देवेभ्यो
रक्ष मां सदा । सर्वमङ्गलमङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके । उमे
ब्रह्माणि कौमारि विश्वरूपे प्रसीद मे । रूपं देहि यशो देहि
भाग्यं भगवति देहि मे । पुत्रान् देहि धनं देहि सर्वान् कामांश्च
देहि मे । चन्दनेन समालम्ब्य कुङ्कुमेन विलेपिते । विल्वपत्र-
कृतापीडे दुर्गे त्वां शरणं गतः । इत्युच्चार्य मूलमन्त्रेण
पुष्पाञ्जलित्रयं दद्यात् । ततो यथाकालमन्नञ्च नूपपपाय-
सादिकमुपानीय पूर्वोक्तमन्त्रेण दत्त्वा पानार्थं वासितजलम्
आचमनीयं ताम्बूलञ्च दद्यात् । गीतवाद्यादिभिः शेषकालं
नयेत् । इति सप्तमीपूजा ।

अथ महाष्टमीपूजा । तत्र पूर्वाषाढायुताष्टम्यां केवलायां वा
कृतस्नानादिराचान्तः पूर्वमुख उदङ्मुखो वा दर्भासने उप-
विश्य भूतशुद्धिं कुर्याद् यथा । सोऽहमिति मन्त्रेण जीवात्मानं

श्रीदुर्गार्चनपद्धतिः ।

६७३

नाभितो हृदिस्थे परमात्मनि संयोज्य पृथिवीं जले जलं तेजसि तेजो वायौ वायुमाकाशे प्रविश्य दक्षिणाङ्गुष्ठेन दक्षिणनासापुटं धृत्वा यम् इति वायुवीजेन षोडशधा जप्तेन वायुत्वर्षस्वरूपपूरकसंज्ञया वायव्या धारणया देहं शोषयित्वा नासापुटावङ्गुष्ठानामिकाभ्यां धृत्वा रम् इति वङ्गिवीजेन चतुःषष्टिधा जप्तेन वायुस्तम्भनरूपकुम्भकसंज्ञया अग्निचिन्तनरूपया आग्नेया धारणया देहं दाहयित्वा लम् इति इन्दुवीजेन द्वात्रिंशजप्तेन दक्षिणनासापुटेन वायुनिःसरणरूपया रेचकसंज्ञया ऐन्द्र्या धारणया स्थिरीकृत्य वं इति वरुणवीजेन वायादिभूतानि व्योमादिभ्यो बहिःकृत्वा हंस इति मन्त्रेण परमात्मतो जीवं नाभिपद्मे न्यसेत् । ततः प्राणायामः । दक्षिणनासापुटं धृत्वा श्रीं जयन्तीत्यादि मन्त्रेण शनैरेकधा जप्तेन वामनासया वायुत्तोलनरूपं पूरकं नासिके धृत्वा चतुर्धा जप्तेन वायुधारणं कुम्भकं वामनासां धृत्वा दक्षिणनासया त्रिधा जप्तेन वायुत्यजनं रेचकं पुनर्दक्षिणनासया पूरकं पूर्ववत्ताभ्यां कुम्भकं वामया रेचकं पुनर्वामया पूरकम् उभाभ्यां कुम्भकं दक्षिणया रेचकमिति । ततोऽङ्गन्यासः । अनङ्गुष्ठहस्ताङ्गुलिभिः श्रीं कालि कालि स्वाहा हृदयाय नम इति हृदि । तर्जनीमध्यमाभ्याम् श्रीं कालि कालि वज्रिणि शिरसि स्वाहा इति शिरसि । अधोऽङ्गुष्ठमुष्टिकया श्रीं कालि कालेश्वरि शिखायै वषट् इति शिखायाम् । विपरीतपार्थन्तरतलाभ्याम् ओम् कालि कालि वज्रेश्वरि कवचाय हुं इति आशिरः पादपार्थन्तरम् । तर्जनी मध्यमानाभिकाभिः ओम् कालि वज्रेश्वरि लौहदण्डायै नेत्रत्रयाय वौषट् इति नेत्रयोः । ओम् कालि लौहदण्डायै अस्त्राय फट् इति एवं करन्यासं न्यस्य ऊर्ध्वाध ऊर्ध्वोर्ध्वातालत्रयं दत्त्वा क्णोटिकादिभिः दशदिशो बध्नीयात् । ततः

६७४

औदुर्गार्चनपद्धतिः ।

शङ्खादिपात्रं पुरतो निधाय त्रिभागजलेन आपूर्य्य तत्र दध्वा-
 क्षतपुष्पाणि यथालाभं दत्त्वा वं इति धेनुमुद्रया अमृतोक्त्य
 क्रीं ओम् दुर्गायै नम इति अष्टधा जप्त्वा तेन उदकेन आत्मानं
 पूजोपकरणञ्च अभ्युक्ष्य जटाजूटेत्यादिना ध्यात्वा स्वशिरसि
 पुष्पं दत्त्वा सोऽहमिति विचिन्त्य मानसोपचारैः संपूज्य पुन-
 र्ध्यात्वा इदम् आसनम् ओम् जयन्तीत्यादि उच्चार्य्य क्रीं
 ओम् दुर्गायै नम इति दत्त्वा कृताञ्जलिः ओम् भूर्भुवः
 स्वर्भगवति दुर्गे स्वागतासि इति पृच्छेत् एवं पादम्
 अर्घ्यादि दधि मधु घृतात्मको मधुपर्कः पुनराचमनीयं
 ततो दर्पणप्रतिविम्बस्थां देवीं लौकिक षष्ठ्यधिकं शत-
 त्रयतोलकान्यूनं जलमादाय इदं स्नानीयं जलम् । ओम्
 नारायण्यै विद्महे चण्डिकायै धीमहि तन्नश्चण्डौ प्रचोद-
 यात् । जयन्तीत्यादि उच्चार्य्य क्रीं ओम् दुर्गायै नम इति
 स्नापयेत् । फलभूमार्थी तु दर्पणप्रतिविम्बस्थां घृताभ्यङ्गो-
 दत्तनीशोदकप्रक्षालनपूर्वकम् अन्यस्नानीयेन तथैव स्नाप-
 यित्वा जलेन स्नापयेत् । तत्र अष्टरत्तिकाधिकं लौकिक
 भाषद्वयाधिकदशशोतिसंख्यकं तोलकान्यूनं घृतमानीय इदम्
 अभ्यञ्जनीयं घृतम् ओम् जयन्तीत्यादिना अभ्यञ्जयेत् । यव-
 गोधूमयोश्चूर्णमादाय इदम् उदत्तनीयं चूर्णं पूर्वोक्तमन्त्रेण
 उदत्तयेत् । घृतस्नाने तु पूर्वपरिमितं घृतमानीय इदं स्नानीयं
 घृतम् एवं दुग्धेन दध्ना मधुना ततः पूर्ववत् उदत्तनं ततस्तत्-
 संख्यकैश्चन्दनजलैर्मिलितं प्रत्येकं वा द्रोणपुष्पजलेन वा रत्न-
 जलेन वा अगुरुजलेन वा स्नापयेत् । ततो नूतनवाससा जल-
 मपनीय इदम् आचमनीयम् इदं वस्त्रम् ओम् तन्नुसन्तान-
 संयुक्तं रञ्जितं रागवस्तुना । दुर्गे देवि भज प्रीतिं वासस्ते
 परिधीयताम् । पूर्ववत् आचमनीयं यथालाभम् इदं द्विमधूष-

श्रीदुर्गाचर्नपद्धतिः ।

६७५

णम् इदं रजतभूषणं इदं शङ्खभूषणं मणिमुक्तादिना विचित्र-
 भूषणं सिन्दूरभूषणं दर्पणं पट्टसूत्रं विचित्रभूषणं यथालाभम्
 अन्नपात्रोपभूषणं जलपात्रोपभूषणं रैत्यपात्रोपभूषणं ताम्र-
 पात्रोपभूषणं हेमपात्रोपभूषणं रजतपात्रोपभूषणं कृत्रोपभूषणं
 चामरोपभूषणं ध्वजोपभूषणं तालवृन्तोपभूषणं घण्टोपभूषणं
 शय्योपभूषणम् इदं चन्दनानुलेपनम् अङ्गुष्ठयुक्तया कनिष्ठा-
 रूपया मन्थमुद्रया एवं कृष्णागुरुकालेयकं कर्पूरं कुङ्कुम-
 कस्तूरीप्रभृतौनि प्रत्येकमेकत्र वा यथालाभं वा दद्यात् ।
 एषां पञ्चरजसां चूर्णानि मन्थत्वेन देयानि । पद्मचम्पक-
 कुमुदोत्पलमालतीमल्लिकाजवाबन्धुकापराजिता कुन्दाशीका-
 दौनि पुष्पाणि आदाय यथालाभम् एतानि पुष्पाणि एतत्
 पुष्पं वा दद्यात् अङ्गुष्ठयुक्ततर्जनौरूपया पुष्पमुद्रया अपामार्ग-
 भङ्गराजामलकीतुलसीविल्वपत्राणि यथालाभं वा आदाय
 एतानि पत्राणि एतत्पत्रं वा दद्यात् । एषा माला ओम्
 कौसुमस्रजम् एताञ्चन्दनागुरुचर्चिताम् । गृहाण त्वं
 महादेवि प्रसीद परमेश्वरि । जयन्तीत्यादिना दद्यात् ।
 द्रोणपुष्पम् आदाय ब्रह्मविष्णुशिवादीनां द्रोणपुष्पं सदा
 प्रियम् । तत्ते दुर्गे प्रयच्छामि सर्वकामार्थसिद्धये । ओं
 जयन्तीत्यादिना दद्यात् । विल्वपत्रम् आदाय ओम् असृतो-
 ज्ञवं श्रीवृत्तं शङ्करस्य सदा प्रियम् । तत्ते दुर्गे प्रयच्छामि
 पवित्रं ते सुरेश्वरि । पूर्ववद्दद्यात् । दक्षमानं घृतं गुग्गुलुम्
 आनीय एष धूपः ओं धूपोऽयं देवदेवेशि घृतगुग्गुलुयोजितः ।
 गृहाण वरदं मातः दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते । ओं जयन्तीत्या-
 दिना दद्यात् । सम्भवे मधुमुस्तं घृतं गन्धो गुग्गुल्वगुरु-
 शैलजम् । सरलं सिंहसिद्धार्थं दशाङ्गो धूप उच्यते । दशाङ्ग-
 धूपमादाय पूर्वोक्तं मन्त्रं विना मूलेन दद्यात् । एष दीपः ।

६०६

श्रीदुर्गाचर्चनपद्धतिः ।

अग्निज्योतीरविज्योतिश्चन्द्रज्योतिस्तथैव च ज्योतिषामुत्तमो दुर्गे दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् । सर्वत्र एतादृशपाठेऽपि जयन्ती-
त्यादिना दद्यात् । विशेष मन्त्राभावे सुतरां तथा घृततिल-
तैल सर्षपतैलाद्यन्यतमोपस्कृतां यथालाभं वा दत्त्वा जयध्वनि
मन्त्रमातः स्वाहा इति घण्टां मंपूज्य वादयन् देवीं नीरा-
जयेत् । यथालाभं नैवेद्यानि दद्यात् । विशेष नाम्ना चेत्तदा
एतद्घृतम् इदं दधि इदं दुग्धम् एते चिपिटका एते लड्डुका
एते लाजा एतानि कदलकानि नारिकेलफलानि एतानि
जम्बीराणि एते इक्षुदण्डाः एतानि कुष्माण्डानि एतानि
सुखाशकानि एते मोदकाः इदमाचमनीयम् एतानि ताम्बूलानि
जयन्तीत्यादिना दद्यात् ततो यथालाभं द्रव्यं दत्त्वा यथा-
शक्ति जयन्तीति मन्त्रं जप्त्वा जपं समर्थं स्तुत्वा प्रणमेत् ।
ततो महिषासुरसिंहगणेशादौनां यथाशक्ति पूजा कार्या ।

अथ आवरणपूजा । देव्या दक्षिणपार्श्वे पञ्चोपचारैः गन्ध-
पुष्पाभ्यां वा क्लीं श्रीं जयन्त्यै नमः एवं मङ्गलायै काल्यै भद्र-
काल्यै कपालिन्यै दुर्गायै शिवायै क्षमायै धात्र्यै स्वाहायै
स्वधायै । देव्याः पूर्वभागे क्लीं उग्रचण्डायै नमः एवं प्रच-
ण्डायै चण्डनायिकायै चण्डायै चण्डवत्यै चण्डरूपायै अति-
चण्डिकायै । ततो देव्या वामदिशि तथैव क्लीं श्रीम् उग्रदं-
ष्ट्रायै नमः एवं महादंष्ट्रायै शुभदंष्ट्रायै करालिन्यै भीमनेत्रायै
विशालाक्ष्यै मङ्गलायै विजयायै जयायै । ततो देवी पुरत-
स्तथैव क्लीं श्रीं मङ्गलायै नमः एवं नन्दिन्यै भद्रायै लक्ष्म्यै
कीर्त्यै यशस्विन्यै पुष्ट्यै शिवायै साध्वर्यै यशायै शोभायै जयायै
धृत्यै आनन्दायै सुनन्दायै । ततो देव्या दक्षिणे चतुःषष्टि-
मातरः अशक्तौ द्वात्रिंशत् षोडश अष्टौ वा पञ्चोपचारैर्गन्ध-
पुष्पाभ्यां वा पूजयेत् । यथा क्लीं श्रीं विजयायै नमः एवं

श्रीदुर्गाचनपद्धतिः ।

६७७

मङ्गलायै भद्रायै धृष्टे शा न्त्यै शिवायै क्षमायै सिद्धेयै तुष्ट्यै
 उमायै पुष्ट्यै श्रियै ऋद्धेयै रत्न्यै दीप्तायै कान्त्यै । यशायै लक्ष्म्यै
 ईश्वर्य्यै सृद्धेयै शक्त्यै जयावत्यै ब्राह्म्यै जयन्त्यै अपराजितायै
 अजितायै मानस्यै श्वेतायै दिव्यै मायायै महामायायै मोहि-
 न्यै ३२ । लालसायै तौव्रायै विमलायै गौर्य्यै मत्स्यै दुर्गायै
 क्रियायै अरुन्धत्यै घण्टायै कर्णायै सकर्णायै कपालिन्यै
 रौद्रेयै काल्यै मायूर्य्यै त्रिनेत्रायै सुरूपायै बहुरूपायै रिपुहायै
 अस्त्रिकायै चर्चिकायै सुरपूजितायै वैवस्वत्यै कौमार्य्यै माहे-
 श्वर्य्यै वैष्णव्यै महालक्ष्म्यै कार्तिक्यै कौशिक्यै शिवदूत्यै शिवायै
 चामुण्डायै ६४ । अथ मातरः । ह्रीं श्रीं ब्राह्मण्यै नमः एवं माहे-
 श्वर्य्यै कौमार्य्यै वैष्णव्यै वाराह्यै इन्द्रायै चामुण्डायै महा-
 लक्ष्म्यै । पूर्वादि दिक्षु श्रीं शिवदूत्यै मध्ये चण्डिकायै मातृणां
 पुरोभागे ओम् भैरवाय नम इति पञ्चोपारैः पूजयेत् । ओम्
 महिषासुराय नमः । ततोऽङ्गपूजा । ओम् कालि कालि
 स्वाहा हृदयाय नम इति मन्त्रपुष्पाभ्यां पूजयेत् । एवं
 कालि कालि वज्रिणि शिरसे स्वाहा नमः । ओम् कालि
 कालेश्वरि शिखायै वषट् नमः । कालि वज्रेश्वरि कवचाय हुं
 नमः । आग्नेयादिर्वादिक्षु ओम् कालि कालि वज्रेश्वरि लोह-
 दण्डायै स्वाहा नेत्रत्रयाय वौषट् नमः । देव्यग्रे ओम् कालि
 लोहदण्डायै अस्त्राय फट् नमः इति पूर्वादिदिक्षु पूजयेत् ।
 देव्याः शिखां भावयन् ओम् ईशानाय नमः इति संपूज्य मुखं
 भावयन् ओम् कालि कालि तत्पुरुषाय नमः हृदयं भावयन्
 ओम् वज्रेश्वरि अघोराय नम अघो भावयन् ओम् लोहद-
 ण्डायै वामदेवाय नमः सर्वाङ्गं भावयन् ओम् स्वाहा सद्यो-
 जाताय नमः । ततोऽस्त्राणि पूजयेत् । देव्या दक्षिणभागे
 ओम् त्रिशूलाय नमः एवं खड्गाय चक्राय तीक्ष्णबाणाय

६७८

श्रीदुर्गार्चनपद्धतिः ।

शक्तये । वामभागे खेटकाय पूर्णचापाय पाशाय अङ्गुशाय घण्टायै । ततः सिंहासनपूजा । ओम् वज्रनखदंष्ट्रायुधाय सिंहासनाय हुं फट् नमः । ततो देव्याः पुरतः पद्मं निर्माय प्रागादिदलेषु कर्णिकाया जले वा एतत् पाद्यम् ओम् रुद्र-चण्डायै नमः अभावे पञ्चोपचारैर्गन्धपुष्पाभ्यां वा पूजयेत् । एवं प्रचण्डायै चण्डोग्रायै चण्डनायिकायै चण्डायै चण्डवत्यै चण्डरूपायै अतिचण्डिकायै मध्ये उग्रचण्डायै । तत्र ओम् दत्तयज्ञविनाशिन्यै महाघोरायै योगिनौकोटिपरिवृतायै भद्रकाल्यै ह्रीं दुर्गायै नम इति पुष्पाञ्जलितयेन पूजयेत् ।

अथ शस्त्रपूजा । तत्रादौ खड्गपूजा । ओम् अर्षिर्वश-सनः खड्ग इति पूर्वोक्तं पठन् ओम् खड्गाय नम इति संपूज्य कुरिकां पूजयेत् । ओम् सर्वायुधानां प्रथमं निर्मितासि पिनाकिना । शूलायुधादिनिष्कृष्य कृत्वा मुष्टिग्रहं शुभम् । चण्डिकायाः प्रदत्तानि सर्वदुष्टनिवर्हिणी । तथा निस्तारिता चासि देवानां प्रतिदेवता । सर्वसत्त्वात्मभूतासि सर्वाशुभ-निवर्हिणी । कुरिके रक्ष मां नित्यं शान्तिं यच्छ नमोऽस्तु ते । ओम् कुरिकायै नमः । ततः कटारकपूजा । ओम् रक्षा-ङ्गानि गजान् रक्ष, रक्ष वाजिबलानि च । मम देहं सदा रक्ष कटारक नमोऽस्तु ते । ओम् कटारकाय नमः ।

अथ धनुःपूजा । ओम् सर्वायुधमहामात्र सर्वदेवारि-सूदन । चाप मां ससरे रक्ष साकं शरगणैरिह । धृतं कृष्णो न रक्षार्थं संहाराय हरेण च । त्रयीमूर्त्तिगतं देवं धनुरस्त्रं नमाम्यहम् । ओम् धनुषे नमः ।

अथ कुन्तपूजा । प्रास पातय शत्रून् स्वमनया लोकमा-यया । गृहाण जीवितं तेषां मम सैन्यञ्च रक्षताम् । ओम् कुन्ताय नमः ।

श्रीदुर्गाचर्चनपद्धतिः ।

६७८

अथ वर्मपूजा । शर्मप्रदस्त्वं समरे वर्मन् सैन्य यशोऽयमे ।
रक्ष मां रक्षणीयोऽहं तापनेय नमोऽस्तु ते । ओम् वर्मणे नमः ।

अथ चामरपूजा । शशाङ्ककरसङ्काश हिमहिण्डीर-
पाण्डुर । प्रोत्सारय त्वं दुरितं चामरामरवल्लभ । ओम्
चामराय नमः ।

अथ कृत्तपूजा । यथास्त्रुदम्ष्ट्रादयते शिवायेनां वसुन्ध-
राम् । तथा मां क्वादय कृत्त युद्धाध्वनिगतं सदा । ओम्
कृत्ताय नमः ।

अथ ध्वजपूजा । शक्रकेतो महावीर्यः सुपर्णस्त्वां समा-
श्रितः । पक्षिराजो वैनतेयस्तथानारायणध्वजः । काश्य-
पेयोऽमृताहर्ता नागारिविष्णुवाहनः । अप्रमेयो दुराधर्षो
रणे देवारिसूदनः । गरुडान् मारुतगतिस्त्वयि सन्निहितः
स्थितः । साश्ववमैशुधानाञ्च रक्षास्माकं रिपून् दह । ओम्
ध्वजाय नमः ।

अथ पताकापूजा । हुतभुग् वसवो रुद्रा वायुः सोमो
महर्षयः । नागकिन्नरगन्धर्वा यक्षभूतमहोरगाः । प्रमथाञ्च
सहादित्यैर्भूर्तेशो मातृभिः सह । शक्रसेनापतिःस्कन्दो
वरुणश्चाश्रितः त्वयि । प्रतिहन्तुं रिपून् सर्वान् राजा विजय-
मृच्छतु । यानि प्रयुक्तान्यरिभिर्दूषणानि समग्रतः । निह-
तानि सदा तानि भवन्तु तव तेजसा । कालनेमिवधे
युद्धे युद्धे त्रिपुरघातने । हिरण्यकशिपोर्युद्धे युद्धे देवासुरे
तथा । शोभितासि तथैवाद्य शोभस्व समरं स्मर । नीलां
वक्त्रां सितां दृष्ट्वा नश्यन्त्वाश्च ममारयः । ओं पताकायै नमः ।

अथ दुन्दुभिपूजा । दुन्दुभे त्वं सपत्नानां घोषाद् हृदय-
कम्पनः । भव भूमिपसैन्यानां तथा विजयवर्द्धनः । यथा
जीमूतशब्देन हृष्यन्ति वरवारणाः । तथास्तु तव शब्देन

६८०

श्रीदुर्गार्चनपद्धतिः ।

हर्षोऽस्माकं जयावहः । यथा जीमूतशब्देन स्त्रीणां
वासोऽभिजायते । तथात्र तव शब्देन त्वस्यन्त्वस्मद् द्विषो
रणे । ओं दुन्दुभये नमः ।

अथ शङ्खपूजा । ओं पुण्य त्वं शङ्ख पुण्यानां मङ्गलानाञ्च
मङ्गलम् । विष्णुना विधृतो नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ।
ओं शङ्खाय नमः ।

अथ सिंहासनपूजा । विजयो जयदो जेता रिपुघाती
प्रियङ्करः । दुःखहा शमदः शान्तः सर्वारिष्टविनाशनः ।
इत्यष्टौ तव नामानि यस्मात् सिंहपराक्रमः । तेन सिंहा-
सनेति त्वं नाम्ना देवेषु गोयते । त्वयि स्थितः शिवः साक्षात्
त्वयि शक्रः सुरेश्वरः । त्वयि स्थितो हरिर्देवस्त्वदर्थं तप्यते
तपः । नमस्ते सर्वतोभद्र शिवो भव महौपती । त्रैलोक्य-
जयसर्वस्व सिंहासन नमोऽस्तु ते । ओं सिंहासनाय नमः ।

ततो नवपत्रिकासमीपं गत्वा पञ्चोपचारैर्गन्धपुष्पाभ्यां
वा पूजयेत् । एष गन्धः क्लीं ओं ब्राह्मणै नमः एवं रक्तदन्ति-
कादयः प्रत्येकं पूज्याः । ततो देवीसमीपं गत्वा पूर्ववत्
जयन्तीत्यादिना देवीं पूजयित्वा च क्वागाटिबलिं दद्यात् ।
ततो जम्बा जपं समर्थं स्तुत्वा प्रणमेत् । ततो माषभक्तबलिं
दद्यात् यथा । गोमयेनोपलिप्तायां भूमौ माषभक्तबलि-
मुपानीय एष माषभक्तबलिः ओं जयन्त्यै नमः एवं मङ्गलायै
काल्यै भद्रकाल्यै कपालिन्यै दुर्गायै शिवायै क्षमायै धात्र्यै
स्वाहायै स्वधायै इति दत्त्वा ओम् उग्रचण्डायै नम इत्याद्य-
ष्टाभ्यः क्लीं ओम् उग्रदंष्ट्रायै नमः इत्यादि चतुःषष्टि मातृभ्यः
एवं क्लीं ओं ब्राह्मणै नम इत्यादि मातृभ्यः । ततो माषाक्ष-
मांसाद्यैर्देव्यो दिक्षु बलिर्निशि । तत्र एष माषभक्तबलि ओं
लोकपालग्रहनक्षत्रसुरासुरगणगन्धर्वयक्षराक्षसविद्याधरगरुड-

श्रीदुर्गार्चनपद्धतिः ।

६८१

महोरगकिन्नरगजेन्द्र देवतासु रो भूत पिशाच क्रव्याद मनुष्य
मातृगण योगिनी डाकिनी शाकिनीगणा इमं नानाद्रव्य-
सहितबलिं गृह्णन्तु हुं फट् स्वाहा । ओं लोकपालादिभ्यो
नम इति दत्त्वा ओम् शिवाः कङ्कालवेतालाः पूतना जम्बका-
दयः । सर्वे ते तृप्तिमायान्तु बलिदानेन तोषिताः । एष
माघभक्तबलिः ओम् शिवादिभ्यो नमः । ततो यथाकालं
यथालाभमन्नव्यञ्जनपूपपायसादिकमानीय गन्धादिना संपूज्य
दद्यात् । पानार्थं वासितजलम् आचमनीयं ताम्बूलञ्च शेषे
कुमारीर्भोजयेत् ब्राह्मणानपि । शेषं नृत्यगीतवाद्यादिभिः
नयेत् । इति महाष्टमीपूजा ।

अथ सन्धिपूजा । तत्र महाष्टमी शेषदण्ड महानवमौ
प्रथमदण्डात्मको यः कालः तत्र महाष्टमीपूजावत् यथालाभं
पूजां कुर्यात् । महानवमौक्षण एव ह्यागादि बलिदानं
न तु महाष्टमौक्षणे । अथ अर्द्धरात्रपूजा यहिनेऽर्द्धरात्रे महा-
ष्टमी लाभस्तद्दिने फलभूमार्थिना पूर्ववत् यथालाभं पूजा
कर्त्तव्या यदि तु उभयदिनेऽर्द्धरात्रे महाष्टमीलाभस्तदा पूर्व-
दिने एव पूजा ।

अथ नवमीकृत्यम् । तत्र उत्तराषाढायुक्तायां केवलायां वा
महानवम्यां महाष्टमीपूजावत् (कालात्ये तु सप्तमी पूजावच्च)
यथालाभं कृत्यं विधाय पिष्टप्रदौपयवधान्यसर्षपैर्यथालाभो-
पपत्रैः आचारात् व्यस्तपाणिभ्यां शिरः प्रभृतिपादपर्यन्तं निर्म
ञ्चयन् देवीं नौराजयेत् । ततो होमं कुर्यात् । तद्दिने होमा-
सामर्थ्यं महाष्टम्यां होमं कुर्यात् । शक्तस्तु उभयदिन एव
कुर्यात् । तत्र स्वयच्छोक्तविधिना वलदनामाग्निं संस्थाप्य
विल्वपत्रसहितैस्त्रिलैर्द्वादशपर्वपूरिकया आद्रामलकमालया
वा उत्तानकरणेन देवतीर्थेन ओम् जयन्तीत्यादि स्वाहान्त-

६८२

श्रीदुर्गाचर्चनपद्धतिः ।

मन्त्रेण अष्टोत्तरशतकत्वा जुहुयात् । स्वगृह्योक्तविधिना दक्षिणासहितं होमशेषं समापयेत् । असामर्थ्यं होमकरणाय ब्राह्मणं वृणुयात् । शूद्रस्तु सदैव होमाय ब्राह्मणं वृणुयात् । ततः प्रार्थयेत् । ओम् यज्ञच्छिद्रं तपश्छिद्रं यच्छिद्रं पूजने मम । सर्वं तदच्छिद्रमस्तु भास्करस्य प्रसादतः । यद्वत् भक्तिभावेन पत्रं पुष्पं फलं जलम् । आवेदितञ्च नैवेद्यं तद् गृहाणानुकम्पया । ओम् यदक्षरं परिभ्रष्टं मात्राहीनञ्च यद्वेत् । क्षन्तुमर्हमि मे देवि कस्य न स्वलितं मनः । ततस्तान्त्रादिपात्रे कुशत्रयतिलजलानि आदाय ओम् अद्य आश्विने मासि शुक्ले पक्षे महानवम्यां तिथौ अमुकगोत्रः श्री अमुकदेवशर्माकृतैतद्वार्षिक शरत्कालीन दुर्गामहापूजा-कर्मणः प्रतिष्ठार्थं दक्षिणामिदं काञ्चनं तन्मूल्यं वा विष्णुदेवतम् अमुकगोत्राय अमुकदेवशर्मणे ब्राह्मणाय तुभ्यमहं ददे । अन्यार्थकरणे तु ददे इत्यत्र ददानीति विशेषः । ब्राह्मणा-सन्निधाने तुभ्यं विना यथासम्भवगोत्रनाम्ने इति विशेषः । ततो ब्राह्मण कुमारीं पादप्रक्षालनपूर्वकं यथेष्टं द्रव्यं भोजयित्वा तद्वस्त्रादक्षतादिकं शिरसि विधाय भक्त्या अनुव्रजेत् । ब्राह्मणान् भोजयेत् शेषकालं गौतवाद्यादिभिर्नयेत् ।

अथ दशमोक्त्यम् । कृतस्नानादिराचान्तः पूर्ववद्देवीं पाद्या-दिभिर्यथालाभं वा संपूज्य ओम् दुर्गां शिवाम् [६७२ पृ० २ पं] इत्यादिना स्तुत्वा प्रणम्य महिषघ्नोति आदिना सर्वमङ्गल मङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके । शरख्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते । इत्यन्तेन संप्रार्थ्य ओम् विधिहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं यदर्चितम् । पूर्णं भवतु तत् सर्वं त्वत् प्रसासादात् महेश्वरि । इति संप्रसाद्य संहारमुद्रया पुष्पं गृहीत्वा क्षमस्वेति विमृज्य निर्माल्यं गृहीत्वा चण्डेश्वर्यै नम इति ऐशान्यां दिशि पूज-

श्रीदुर्गाचर्नपद्धतिः ।

६८३

येत् । ओम् उत्तिष्ठ देवि चामुण्डे शुभां पूजां प्रगृह्य च ।
 कुरुस्व मम कल्याण मष्टाभि शक्तिभिः सह । गच्छ गच्छ
 परं स्थानं स्वस्थानं देवि चण्डिके । व्रज स्रोतो जले वृद्धै
 तिष्ठ गेहे च भूतये । इत्याभ्यां प्रतिमां विल्वशाखाञ्च नव-
 पत्रिकाञ्च उत्थाप्य स्थानान्तरे नीत्वा पूर्ववत् पिष्टकप्रदीपा-
 दिभिर्नीराजयेत् । ततो नृत्यगौतवाद्यब्रह्मघोष क्रीडा-
 कौतुकमङ्गलपुरःसरं स्रोतो जलसमीपं गत्वा ओम् दुर्गे देवि
 जगन्मातः स्वस्थानं गच्छ पूजिते । संवत्सरव्यतीते तु पुन-
 रागमनाय च । इमां पूजां महादेवि यथाशक्ति निवेदिताम् ।
 रक्षार्थं तु समादाय व्रजस्व स्थानमुत्तमम् । इत्याभ्यां स्रोतसि
 मज्जयेत् । ततो धूलिकर्दमविक्षेपक्रीडाकौतुकमङ्गलभग-
 लिङ्गाभिधानं भगलिङ्गप्रगीतपराक्षिप्तपराक्षेपकरूपं शाव-
 रोत्सवं कुर्यात् । ततो देव्या अलङ्कारादिकं ब्राह्मणेभ्यो
 दद्यात् । ततः शान्त्याशिषो ब्राह्मणेभ्यो गृह्णीयात् इति ।

इति वन्द्यघटीय श्रीमन्महामहोपाध्याय रघुनन्दनभट्टाचार्य-

विरचिता शारदीया महापूजापद्धतिः

समाप्ता ।

एतानि मुद्रितसंस्कृतपुस्तकानि ।

| | | | |
|-------------------------------------|-----|--------------------------------------|-----|
| ४ आशुनीष व्याकरणम् | २ | २५ भामिनीविलास संक्षिप्तटीकासहितः।० | |
| ५ अष्टकम् पाणिनीयम् | ४० | २६ चम्पूरामायणम् सटीक | १ |
| ६ सभादिपञ्चम् सटीक | २ | २७ (चम्पूरामायणम्) भोजचम्पू | १० |
| ७ कविकल्पद्रुम (धातुपाः) | १० | २८ शतकावलिः | ४० |
| ८ कलापव्याकरणं वा कातन्त्र | २ | २९ माधवचम्पू काव्य | १० |
| ९ धातुरूपादर्शः | १४० | ३० मेघदूत मल्लिनाथकृत टीकासहितः। | |
| १० परिभाषेन्दुशेखर सटीक | १ | ३१ मेघदूत सटीक तुलभमूल्याकम् | १० |
| ११ सुगन्धोपव्याकरणम् सटीक | १४० | ३२ रघुवंश काव्य सटीक | १४० |
| १२ वाक्यमञ्जरी (वङ्गाक्षरैः) | १० | ३३ रघुवंश मूलमात्र ७, ८, १२ सर्गाः।० | |
| १३ वैयाकरणभूषणसार | ४० | ३४ राजप्रशस्ति सटीक | १ |
| १४ लघुकौमुदीव्याकरणम् | ४० | ३५ शिशुपालवधकाव्य सटीक (माध) | २ |
| १५ लिङ्गानुशासनं सटीक | १० | ३६ गद्यकथासरित्सागर सम्पूर्ण | ६ |
| १६ शब्दरूपादर्शः | ४० | ३७ कादम्बरी विसृतव्याख्यासहिता | ३ |
| १७ शब्दार्थरत्नम् | ४० | ३८ दशकुमारचरितगद्यकाव्य सटीक | १ |
| १८ सारस्वतव्याकरण सटीक पूर्वाह्नम् | १ | ३९ द्वाविंशत्युत्तलिकासिंहासन | १ |
| १९ सारस्वतव्याकरणं सटीक उत्तराह्नम् | २ | ४० पञ्चतन्त्रम् विष्णुशर्मकृत सटीक | २ |
| २० सिद्धान्तकौमुदी सरलासहिता | १० | ४१ बहुविवाहवाद | १० |
| २१ ऋतुसंहार काव्य सटीक | ४ | ४२ वासवदत्ता गद्यकाव्य सटीक | १ |
| २२ काव्यसंग्रह मूलमात्र | ५ | ४३ वेतालपञ्चविंशतिः (सरलगद्य) | ४० |
| २३ काव्यसंग्रह सटीक प्रथमभागः | ३ | ४४ शङ्करविजय | १४० |
| २४ काव्यसंग्रह सटीक द्वितीयभागः | २ | ४५ भोजप्रबन्ध सरल गद्य | १० |
| २५ काव्यसंग्रह सटीक तृतीयभागः | २ | ४६ हर्षचरित सटीक बाणभट्टकृत | २४० |
| २६ किरातार्जुनीयकाव्य सटीक | १४० | ४७ हर्षचरितबाणभट्टकृतगद्य | १ |
| २७ कुमारसम्भवकाव्य पूर्वखण्ड सटीक॥० | | ४८ संस्कृतशिवामञ्जरी प्रथमभागः | १ |
| २८ कुमारसम्भवकाव्य उत्तरखण्डसटीक॥ | | ४९ संस्कृतशिवामञ्जरी द्वितीयभागः | १० |
| २९ गीतगोविन्द काव्य सटीक | ४० | ५० संस्कृतशिवामञ्जरी तृतीयभागः | ४० |
| ३० चन्द्रशेखरचम्पू काव्य | ३ | ५१ संस्कृतशिवामञ्जरी चतुर्थभागः | १० |
| ३१ नलीदय काव्य सटीक | ४ | ५२ द्वितीपदेश सटीक | ४० |
| ३२ नैषधचरितम् काव्य सम्पूर्ण सटीक५ | | ५३ अमरकोष | १० |
| ३३ नैषधकाव्य नवमसर्गपर्यन्त सटीक२॥ | | ५४ वाचस्पत्यम् (वृहदभिधान) | १०० |
| ३४ पुष्पबाणविलास काव्य सटीक | ४० | ५५ मेदिनीकोष | १ |
| ३५ विहङ्गीदतरङ्गिणी (चम्पू काव्य) | ४० | ५६ शब्दसौममहानिधिः | ८ |
| ३६ भट्टिकाव्य टीकासहित | २ | ५७ अनघराधवनाटक सटीक [सुरारि] | १ |
| ३७ भामिनीविलासकाव्य सटीक | ४० | ५८ अनघराधवनाटक मूलमात्र | ६ |

[२]

| | |
|------------------------------------|--|
| ६६ उत्तररामचरितनाटक सटीक १ | १०३ काव्यालङ्कारमूलवृत्तिवामनकृत ॥० |
| ६७ कर्पूरमञ्जरीनाटिका सटीक ॥० | १०४ वाग्भटालङ्कार ॥० |
| ६८ चण्डकौशिकनाटक सटीक ॥० | १०५ सरस्वतीकण्ठाभरण सटीक २ |
| ६९ चैतन्यचन्द्रोदयनाटक सटीक २ | १०६ सङ्गीतपारिजात[सङ्गीतशास्त्र] १॥० |
| ७० धनञ्जयविजयनाटक सटीक ॥० | १०७ छन्दोमञ्जरी उत्तरवाकर सटीक ॥ |
| ७४ नागानन्दनाटक सटीक ॥० | १०८ युतबोधः (छन्दोग्रन्थ) सीक / |
| ७५ नागानन्दनाटक मूल ॥० | १०९ पिङ्गलछन्दः शास्त्र वृत्तिसहित १॥ |
| ७६ प्रबोधचन्द्रोदयनाटक सटीक १ | ११० मङ्गलनिर्वाणतन्म सटीक ४ |
| ७७ प्रसन्नराजवनाटक जयदेवकृत १ | १११ सारदातिलक तन्म २ |
| ७८ प्रियदर्शिका नाटिका सटीक ॥० | ११२ मन्मसहोदधि तन्म सटीक २ |
| ७९ वसन्ततिलक भाष्य नाटक ॥ | ११३ रुद्रयामल तन्म २ |
| ८० बालरामायणनाटक सटीक २ | ११४ इन्द्रजालविद्यासंग्रहः २ |
| ८१ विक्रमोर्वशी नाटक (सटीक) १ | ११५ कामन्दकी नीतिसारः ॥० |
| ८२ विद्वत्शालभञ्जिकानाटिका सटीक ॥० | ११६ चाणक्यशतकम् सटीक / |
| ८३ वेशीसंहारनाटक सटीक ॥० | ११७ युक्तीनीतिसारः सटीक २ |
| ८४ मल्लिकामारुतनाटक सटीक २ | ११८ गयाश्राद्धादिपद्धतिः २ |
| ८५ मङ्गलनाटक हनुमन्नाटक सटीक १॥ | ११९ तुलादानादिपद्धतिः (वङ्गाक्षरैः) ४ |
| ८६ मङ्गलनाटकम् (हनुमन्नाटकम्) ॥० | १२० धर्मशास्त्रसंग्रहः १० |
| ८७ मङ्गलवीरचरितनाटक सटीक १॥० | १२१ वीरमित्रोदय (स्मृतिशास्त्र) ५ |
| ८८ मङ्गलवीरचरितनाटक मूलमात्र ॥० | १२२ अनुसंहिता कुल्लूकभट्टकृत टीका- सहित २ |
| ८९ भालतीमाधवनाटक सटीक ॥० | १२३ वेदान्तदर्शन सभाष्य सटीक ६ |
| ९० भालविकाश्रिमित्रनाटक सटीक १ | १२४ भामती(वेदान्त)वाचस्पतिमिश्रकृत ५ |
| ९१ सुद्राराजसनाटक सटीक १ | १२५ वेदान्तपरिभाषा ॥० |
| ९२ मृच्छकटिकनाटक सटीक १॥० | १२६ वेदान्तसार सटीक ॥० |
| ९३ रत्नावलीनाटिका सटीक ॥० | १२७ विवेकचूडामणि वेदान्त ॥ |
| ९४ शकुन्तलानाटक सटीक १ | १२८ पञ्चदशी (सटीक) वेदान्त १॥० |
| ९५ काव्यप्रकाश अलङ्कार सटीक ४ | १२९ सिद्धान्तविन्दुसारः (वेदान्त) ॥० |
| ९६ काव्यादर्श सटीक (अलङ्कार) १ | १३० पुरुषप्रश्नदर्शनम् सभाष्य ॥० |
| ९७ काव्यदोषिका अलङ्कार सटीक ॥० | १३१ साङ्ख्यदर्शन (भाष्यसहित) २ |
| ९८ कुवलयानन्द अलङ्कार सटीक २ | १३२ सांख्यसूत्र अनिरुद्धवृत्तिसहित ॥० |
| ९९ चन्द्रालोक प्राचीन अलङ्कार ॥० | १३३ साङ्ख्यसार ॥० |
| १०० दशरूपकम् (अलङ्कार) १ | १३४ सांख्यतत्त्वकौमुदी सटीक २ |
| १०१ साहित्यदर्पण सटीक अलङ्कार १॥ | १३५ सांख्यकारिका गौडपादभाष्य ४३ |
| १०२ साहित्यदर्पणम् (मूलमात्र) ॥० | |

[३]

१३६ मीमांसादर्शनम् भाष्यसहित १२

१३७ मीमांसापरिभाषा १०

१३८ शाण्डिल्यकृत सभाष्य १०

१३९ जैमिनीय (न्यायमालावित्तरः) ६

१४० अर्थसंग्रह (लौगादिमीमांसा) १०

१४१ न्यायदर्शन सभाष्य सहित २॥०

१४२ भाषापरिच्छेदः मुक्तावली १०

१४३ भाषापरिच्छेदमुक्तावली दिनकरी १॥

१४४ शब्दशक्तिप्रकाशिका (न्याय) १०

१४५ कुसुमाञ्जलि सटीक (न्याय) १०

१४६ उपमानचिन्तामणिः ४

१४७ आत्मतत्त्वविवेक (बौद्धाधिकार) २

१४८ अनुमानचिन्तामणिः सटीक ४॥

१४९ तर्कामृत (जगदीशकृत) न्याय १०

१५० तर्कसंग्रह द्वं अनुवादसहित १०

१५१ पातञ्जलदर्शन (सभाष्य सटीक) २

१५२ पातञ्जलदर्शन भोजवृत्तिसहित १

१५३ वैशेषिकदर्शनम् सटीक २

१५४ सर्वदर्शनसंग्रहः [दर्शनशास्त्र] १

१५५ आद्यवर्णोपनिषद् सभाष्य २

१५६ आरण्यसंहिता सभाष्य १०

१५७ ईश केन कठ प्रश्न सुख्य माण्डूक्य

उपनिषद् (सटीक सभाष्य) २

१५८ गायत्री व्याख्या १०

१५९ गोपथब्राह्मण (अथर्ववेदस्य) १

१६० छान्दोग्य उपनिषद् सटीक सभाष्य ३

१६१ तैत्तिरीय ऐतरेय श्रुताश्रतर सभाष्य २

१६२ देवत तथा षड्विंशब्राह्मणसभाष्य २

१६३ निरुक्त सभाष्य सटीक १२

१६४ वृत्तिज्ञतापनी सभाष्य २

१६५ वृद्धदारण्यक सटीक सभाष्य ७

१६६ मुक्तिकोपनिषत् ४

१६७ यक्तयजुर्वेदसंहिता सभाष्य ४

१६८ यक्तयजुर्वेदस्य प्रातिशाख्य

सभाष्य २

१६९ सामवेदसंहिता सभाष्य ४

१७० अग्निपुराणम् २

१७१ अध्यात्मरामायणम् सटीक २

१७२ कल्किपुराणम् १

१७३ गरुडपुराणम् २

१७४ सटीक बाळीकिरामायण

बालकाण्डम् १

१७५ विष्णुपुराणम् सटीक १

१७६ ब्रह्मवैवर्तपुराण सम्पूर्ण ४

१७७ मत्स्यपुराणम् २

१७८ मार्कण्डेयपुराणम् १॥०

१७९ लिङ्गपुराणम् २

१८० श्रीमद्भगवद्गीता सभाष्य सटीक ४

१८१ अष्टाङ्गहृदय (वाग्भट) वैद्यक २

१८२ अक्रदान (वैद्यक) १॥०

१८३ चरकसंहिता (वैद्यक) सम्पूर्ण ६

१८४ माधवनिदान सटीक १॥०

१८५ भावप्रकाश (वैद्यक) ५

१८६ मदनपालनिर्घण्टुः (वैद्यक) १०

१८७ रसिन्धुचिन्तामणितयारसरत्नाकरः ६

१८८ शार्ङ्गधरसंहिता (वैद्यक) २

१८९ सुश्रुतसंहिता सटीक (वैद्यक) १०

१९० सुश्रुतसंहिता मूलभाष्य (वैद्यक) ४

१९१ चिकित्सासारसंग्रह वङ्गसेनकृत ५

१९२ गणितआध्यायः भास्कराचार्यकृत १

१९३ गीताध्यायः भास्कराचार्यकृत १०

१९४ वृद्धसंहिता वा वाराहसंहिता २

१९५ भावकुतूहल (व्योतिष) १०

१९६ खीलावती भास्कराचार्यरचित १०

१९७ बीजगणित भास्कराचार्यरचित १०

१९८ सूर्यसिद्धान्त सटीक १

कलिकाता संस्कृतविद्यामन्दिरं वि, ए, उपाधिधारितः

[श्रीजीवागन्धर्वविद्यासागर-भट्टाचार्यस्य सङ्ग्रहान्तरं]

[४]

| | | | |
|--|-----|-----|------|
| १६६ दायभाग श्रीमूतवाहनकृत स्मृतिशास्त्र श्रीकृष्ण तर्कालङ्कारकृत व्याख्यासहित | ... | ... | ३ |
| २०० अथशास्त्र तथा अथवेदक जयदत्तकृत | ... | ... | १५० |
| २०१ आश्वलायन गृह्यसूत्र सभाष्य | ... | ... | ३ |
| २०२ स्मृतितत्त्व रघुनन्दनभट्टाचार्यकृत स्मृतिशास्त्र (१ तिथितत्त्वम्, २ याज्ञतत्त्वम्, ३ आश्रिततत्त्वम्, ४ प्रायश्चित्ततत्त्वम्, ५ ज्योतिषतत्त्वम्, ६ मलमासतत्त्वम्, ७ संस्कारतत्त्वम्, ८ एकादशीतत्त्वम्, ९ उवाचतत्त्वम्, १० व्रततत्त्वम्, ११ दायतत्त्वम्, १२ व्यवहारतत्त्वम्, १३ शुद्धितत्त्वम्, १४ वास्तुयागतत्त्वम्, १५ कृत्यतत्त्वम्, १६ यजुर्वेदिशाज्ञतत्त्वम्, १७ देवप्रतिष्ठातत्त्वम्, १८ जलाशयोत्सर्गतत्त्वम्, १९ छन्दोगवृषोत्सर्गतत्त्वम्, २० श्रीपुरुषोत्तमतत्त्वम्, २१ दिव्यतत्त्वम्, २२ मठप्रतिष्ठादितत्त्वम्, २३ शुद्धकृत्यविचारणतत्त्वम्, २४ यजुर्वेदिष्टवृषोत्सर्गतत्त्वम्, २५ दीक्षातत्त्वम् २६ श्रीदुर्गाचर्चन-पद्धति) | ... | ... | ५ |
| २०३ प्रायश्चित्तविवेक शूलपाणिकृत स्मृतिशास्त्र सटीक | ... | ... | ३ |
| २०४ चतुर्वर्गचिन्तामणि (हिमाद्रिकृत) दान व्रत परिशेषखण्डानि | ... | ... | २४ |
| २०५ प्रायतीषिणी तन्त्रशास्त्र | ... | ... | ८ |
| २०६ हारीतसंहिता वेदकशास्त्र | ... | ... | २ |
| २०७ संगीतरत्नाकर स्वराध्याय संगीतशास्त्र | ... | ... | ५ |
| २०८ ताण्ड्यमहाब्राह्मण | ... | ... | ७१० |
| २०९ दत्तकचन्द्रिका दत्तकमीमांसा सटीक | ... | ... | १३३० |
| २१० मिताक्षरा (याज्ञवल्क्यस्मृति) | ... | ... | ५ |
| २११ तत्त्वचिन्तामणिः प्रत्यक्ष खण्ड (सटीक) | ... | ... | ८ |
| २१२ आपस्तम्ब श्रौतसूत्र | ... | ... | ४॥० |
| २१३ ऐतरेय आरण्यक [सभाष्य] | ... | ... | १॥१० |
| २१४ कूर्मपुराण | ... | ... | ३१०० |
| २१५ देवीभागवत | ... | ... | १२ |
| २१६ वाल्मीकि रामायण (सम्पूर्ण सटीक) | ... | ... | १० |
| २१७ वराहपुराणम् | ... | ... | ५१० |
| २१८ महाभारतम् सटीक | ... | ... | ३५ |
| २१९ हरिवंश (सटीक) | ... | ... | १० |
| २२० आयुर्वेदविज्ञान १म+२य भाग सम्पूर्ण | ... | ... | ४ |
| २२१ भैषज्यरत्नावली | ... | ... | २ |
| २२२ कविकल्पलता | ... | ... | १ |
| २२३ श्रीमहागवतं तथा श्रीधरस्वामिकृत टीकासहित | ... | ... | १२ |
| २२४ विवादरत्नाकर | ... | ... | २१०० |

Serving JinShaan



027246

gyanmandir@kobatirth.org